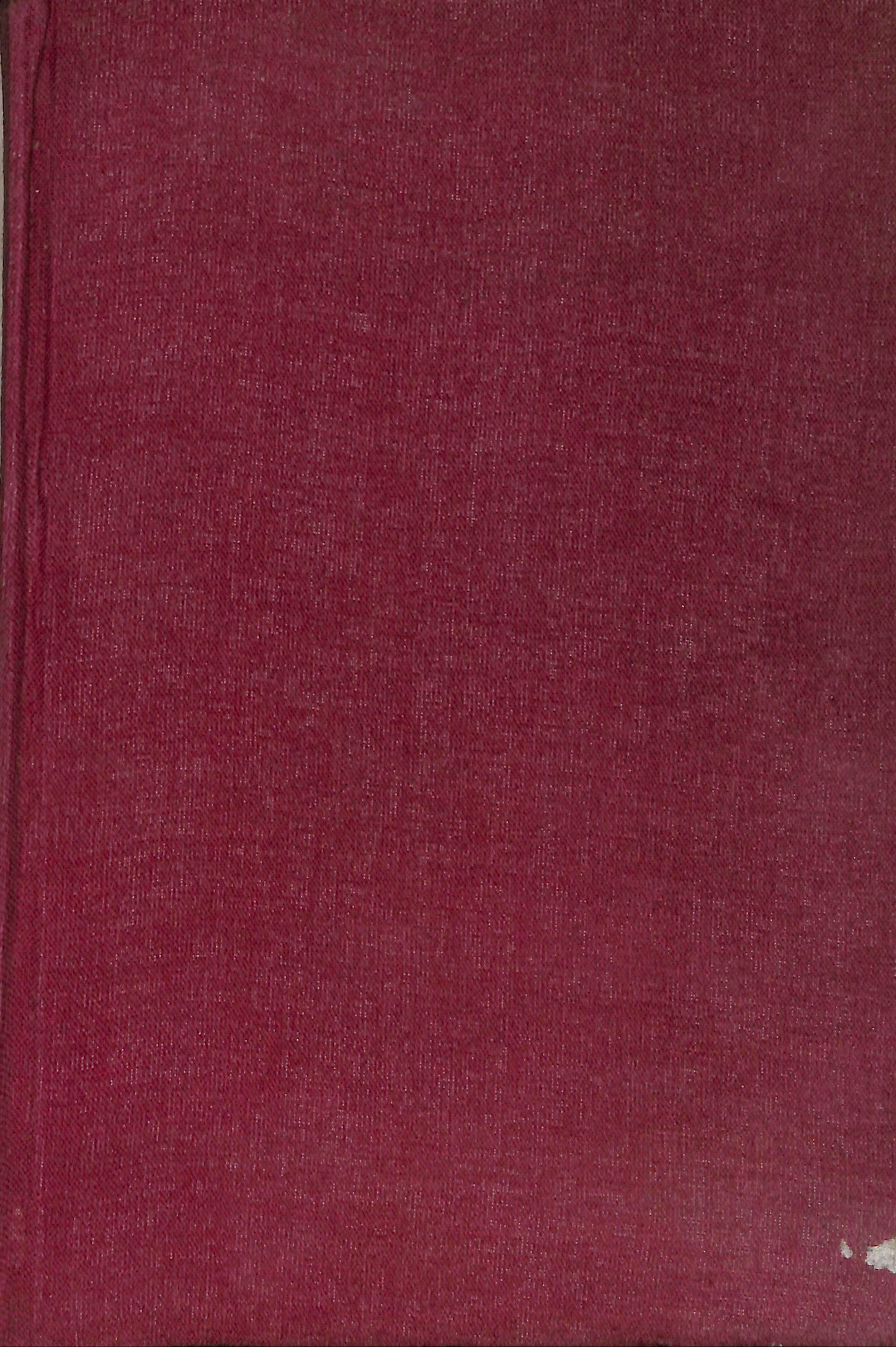
कालिका पुराणम्





नवशक्ति ग्रन्थमाला - ५

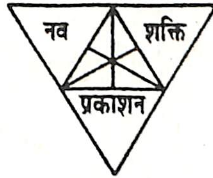
कल्याणी हिन्दी टीका

कालिकापुराणम्

(कालिकेयखण्ड)

सम्पादक/टीकाकार

आचार्य मृत्युञ्जय त्रिपाठी



नवशक्ति प्रकाशन,

चौकाघाट, वाराणसी

२००८ ई.

प्रकाशक :
नवशक्ति प्रकाशन
जे० १३/२४ के० चौकाघाट, वाराणसी-२
दूरभाष : ०५४२-२२०२२३७, ०९९५६०१४७०४

I.S.B.N. 81-87904-06-2

प्रथम संस्करण : २००८ ई०

मूल्य : ४००/-

अक्षर विन्यास :
न्यूमाप्रॉस कम्प्यूटर्स
चौकाघाट, वाराणसी-२
मो. ०९८३८९२७०९५

मुद्रक :
प्रभा प्रेस
चौकाघाट, वाराणसी-२
दूरभाष : ०५४२-२२०२२३७, ०९८३८९२७०९५

Navshakti Granthmālā - 5

With Kalyāṇī Hindī Tīkā

KĀLIKĀ PURĀṆAM

(KĀLIKEYAKHAṆD)

Edited & Translated

By

Achārya Mrityunjay Tripāthi



NAVSHAKTI PRAKASHAN
CHOUKAGHAT, VARANASI-221002

Published By :
Navshakti Prakashan
J. 13/24 k,
Choukaghat, Varanasi-2
Phone : 0542-2202237, 09956014704

I.S.B.N. 81-87904-06-2

First Edition : 2008

Price : Rs. 400/-

Composed By :
Numaproce Computers
Choukaghat, Varanasi-2
Mobile : 09838927095

Printed By :
Prabha Press
Choukaghat, Varanasi-2
Phone : 0542-2202237, 09838927095

विषयानुक्रमणिका



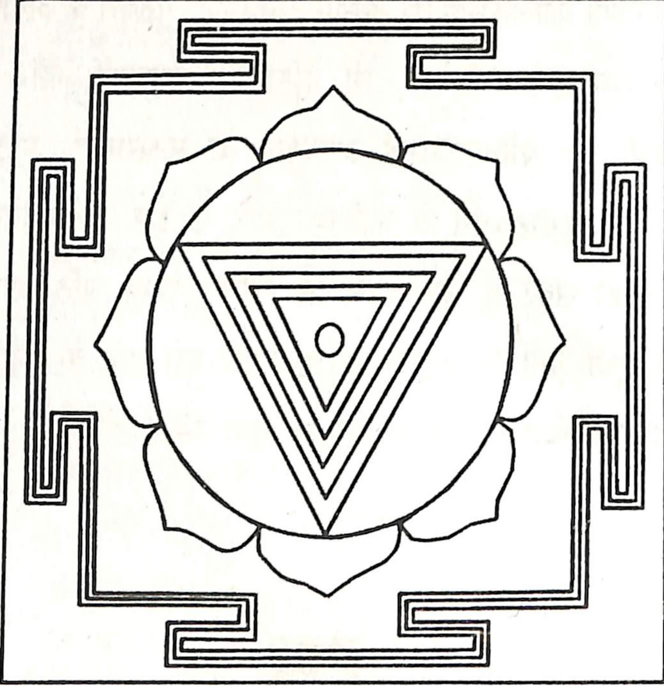
पुनश्च

कल्याणी कालिकाम्बा की असीम अनुकम्पा, गुरुवरों के अमोघाशीर्वाद तथा डॉ० व्रजवल्लभ द्विवेदी, श्री हेमेन्द्रनाथ चक्रवर्ती, डॉ० राजनाथ त्रिपाठी एवं डॉ० शीतलाप्रसाद उपाध्याय के सत्परामर्श, पाठकों और विक्रेताओं के उत्साहवर्धन से कालिकापुराण के इस कालिकेयखण्ड की जो प्रस्तुति हो सकी है, सम्पादक उस निमित्त सबके प्रति आभार व्यक्त करते हुये सुधी जनों से अनुरोध करता है कि इस ग्रन्थ के उपासना परक अंशों का गुरूपदिष्ट एवं विवेकसम्मत रीति से उपयोग करें।

—सम्पादक



काली-यन्त्रम्



॥ क्रीं कालिकायै नमः ॥

कालिकापुराणम्

षट्चत्वारिंशोऽध्यायः

भृङ्गी-महाकालजन्मवर्णनम्

॥ सगर उवाच ॥

कोऽसौ भैरवनामाभूत् को वा वेतालसंज्ञकः ।
कथं वा तौ शरीरेण मानुषेण गणाधिपौ ।
अभूतां द्विजशार्दूल तन्मे वद महामुने ॥१॥

सगर बोले -हे महामुनि ! भैरव नाम का कौन हुआ और बेताल नाम का कौन हुआ ? या कैसे मनुष्यशरीरधारी होते हुए भी वे दोनों शिव के गणों के स्वामी का पद प्राप्त किये ? हे द्विजों में शार्दूलवत् श्रेष्ठ महामुनि ! वह सब मुझे बताइये ॥१॥

जानामि नन्दिनं विप्र सहायं शशभृद्धृत ।
यथाभवद्गणाध्यक्षस्तन्नारदमुखाच्छ्रुतम् ॥२॥

हे विप्रवर ! जिस प्रकार चन्द्रमा को धारण करने वाले शिव के सहायक नन्दि, गणों के स्वामी बने वह प्रसङ्ग, मैंने नारद के मुँह से सुना है ॥२॥

यथा भृङ्गिमहाकालौ विश्रुतौ हि हरात्मजौ ।
कथं वा तौ समुत्पन्नौ त्वत्तः श्रोतुं समुत्सहे ॥३॥

भगवान् शङ्कर के भृङ्गी और महाकाल जैसे दो विख्यात पुत्र कैसे उत्पन्न हुए ? उसे मैं आपसे सुनना चाहता हूँ ॥३॥

योऽसौ शरभरूपस्य महादेवस्य वै पुरा ।
कायभागः श्रुतः पूर्वं स महाभैरवाह्वयः ॥४॥
स एव किं भैरवाख्यः किं वान्यो द्विजसत्तम ।
वेत्तुं तत्त्वेन तत् सर्वमिच्छामि द्विजसत्तम ॥५॥

हे द्विजों में श्रेष्ठ ! प्राचीन काल में महादेव शिव ने जब शरभरूप धारण किया था । उस समय उनके शरीर के अंश से उत्पन्न पहले जो महाभैरव बताये गये हैं । यह भैरव वही है या कोई अन्य? वह सब मैं यथार्थरूप से सुनना चाहता हूँ ॥४-५॥

कस्य वा तनयौ भूत्वा गणाध्यक्षत्वमागतौ ।
तच्चापि कथयस्वाद्य यथा तौ वानराननौ ।।६।।

या वे दोनों किसके पुत्र थे? वे कैसे गणाध्यक्ष पद को प्राप्त किये ? आज यह भी बताइये कि उन दोनों का वानर के समान मुख किस कारण से हो गया ?।।६।।

।। और्व उवाच ।।

शृणु राजन् प्रवक्ष्यामि महाकालस्य भृङ्गिणः ।
भैरवस्यापि चरितं वेतालस्य महात्मनः ।।७।।

और्व बोले– हे राजन्! मैं आपसे महाकाल, भृङ्गी, भैरव और बेताल नामक महान् आत्मावालों के चरित को कहूँगा। आप उसे सुनिये।।७।।

योऽसौ भृङ्गी हरसुतो महाकालोऽपि भर्गजः ।
तावेव गौरीशापेन सम्भूय नरयोनिजौ ।
वेतालभैरवौ जातौ पृथिव्यां नृपवेश्मनि ।।८।।

भृङ्गी नामक शिव का एक पुत्र हुआ। एक महाकाल नामवाला भी उन्हीं भर्ग (शिव) का पुत्र हुआ। ये दोनों ही शिव-पुत्र, गौरी के शाप से नरयोनि से पृथिवी पर राजा के घर में, बेताल और भैरव के रूप में उत्पन्न हुए थे।।८।।

यथा भृङ्गिमहाकालाव्युत्पन्नौ प्राक् तथा शृणु ।
योऽसौ महाभैरवाख्यः स कायः शरभो हरः ।।९।।
भैरवः पृथगेवायं गणाध्यक्षो हरात्मजः ।
ऊढायां हिमवत्पुत्र्यां भर्गेण सुमहात्मना ।।१०।।

अब भृङ्गी एवं महाकाल प्राचीन काल में जैसे उत्पन्न हुए उसे मैं कहूँगा, उसे आप सुनिये। पहले जिस महाभैरव का वर्णन आया है, वह तो शिव का शरभ-शरीर ही है किन्तु यह महात्मा शिव द्वारा विवाहिता हिमालय की पुत्री से उत्पन्न भैरव नामक पुत्र जो गणाध्यक्ष है, वह उससे भिन्न है।।९-१०।।

तारकस्य वधार्थाय देवैः शक्रपुरोगमैः ।
स्तुतिभिर्नतिभिः शम्भुं सन्ततिर्याचिता पुरा ।।११।।

प्राचीन काल में देवराज इन्द्र के नेतृत्व में देवताओं द्वारा अनेक स्तुतियों एवं दीनता से तारकासुर के वधहेतु भगवान् शिव से पुत्र उत्पन्न करने के लिए प्रार्थना की गई ।।११।।

स याचितो देवगणैर्भगवान् वृषभध्वजः ।
महामैथुनमारेभे सन्तानायोमया सह ।।१२।।

तब देवगणों की प्रार्थना को सुनकर उन भगवान् वृषभध्वज शिव ने सन्तान उत्पन्न करने के लिए उमा के साथ महामैथुन प्रारम्भ किया ।।१२।।

आरब्धे मैथुने तेन नरवर्य्येण वै ययुः ।
द्वात्रिंशद् वत्सरा राजन् क्षणवच्चन्द्रधारिणः ।।१३।।

हे राजन् ! उस चन्द्र को धारण करने वाले श्रेष्ठपुरुष शिव द्वारा प्रारम्भ किये मैथुन में बत्तीस वर्ष एक क्षण की भाँति बीत गये । (यहाँ देवाधिदेव हेतु नरवर्य का प्रयोग उनके मैथुनगत पुरुषार्थ का सूचक है) ।।१३।।

स महामैथुनं कुर्वंस्तृप्तिं नाप महेश्वरः ।
नाप्यस्य प्रच्युतं तेजो न तृप्तिं प्राप पार्वती ।।१४।।

उस समय न तो उस महामैथुन में रत, महेश्वर शिव ने ही तृप्ति का अनुभव किया, न पार्वती ही तृप्त हुईं और न उनका तेज (वीर्य) ही च्युत हुआ ।।१४।।

तन्महासङ्गसमये चकम्पे वसुधा स्फुटम् ।
आकुलाः सकला देवाः स्युः स्वर्गस्थाश्च येऽपरे ।।१५।।

उस महासङ्गमन के समय पृथिवी तेजी से काँपने लगी तथा स्वर्ग में रहने वाले अन्य समस्त देवता व्याकुल हो उठे ।।१५।।

सर्वं जगत्तदा भूतमाकुलं शिवयोस्तयोः ।
ततो निवृत्तिजातेन महामैथुनकर्मणा ।।१६।।

तब शिव-शिवा के महामैथुनकर्म से निवृत्ति के परिणाम को सोचकर सम्पूर्ण जगत् व्याकुल हो उठा ।।१६।।

अथ सेन्द्राः सुराः सर्वं ब्रह्माणं जगतां पतिम् ।
शरण्यं शरणं जग्मुर्भीताः शङ्करकेलिभिः ।।१७।।

तब शंकर जी की उस काम-क्रीड़ा से भयभीत हो, इन्द्र के सहित सभी देवता शरणागतों के शरणभूत, सम्पूर्ण संसार के स्वामी, ब्रह्मा के शरण में गये ।।१७।।

ते सम्भूयाथ धातारं प्रणम्य च सुरोत्तमाः ।
आकुलं सर्वमाचक्षुर्हरमैथुनकर्मणा ।।१८।।

उन उत्तम देवताओं ने एकत्र हो, ब्रह्मा को प्रणाम कर, शिव के उस मैथुनकर्म से उत्पन्न अपनी समस्त आकुलता का, उनसे वर्णन कर दिया ।।१८।।

ततः सर्वान् देवगणान् पश्चात् कृत्वैव वृत्रहा ।
स्वयमाह विधातारं तत्कालभयभाषितम् ।।१९।।

तब तत्काल सभी देवगणों को पीछेकर वृत्रासुर का वध करनेवाले इन्द्र ने विधाता से स्वयं सबकुछ भयभीत स्वर में कहा ।।१९।।

।। इन्द्र उवाच ।।

आकुलाः सकलालोका हरमैथुनकर्मणा ।
अहं महद्भयं प्राप्य शरणं त्वामिहागतः ।।२०।।

इन्द्र बोले– शिव के महामैथुनकर्म से सभी लोक व्याकुल हो उठे हैं। मैं भी महान् भय का अनुभव करता हुआ यहाँ आपकी शरण में आया हूँ ॥२०॥

एवम्भूते सङ्गमे च शङ्करस्योमया सह।
यः पुत्रो जायते ब्रह्मन् स मामभिभविष्यति ॥२१॥

हे ब्रह्मन्! शङ्कर और उमा के इस सम्पर्क से जो पुत्र उत्पन्न होगा वह मुझे भी अभिभूत करेगा ॥२१॥

तत्क्रियादर्शनादेव सूत्पन्नादपि तत्सुतात्।
ब्रह्मन् जातं भयं मेऽद्य तारकादपि चाधिकम् ॥२२॥

उनकी मैथुनक्रिया के देखने मात्र से ही उससे उत्पन्न होने वाले पुत्र से आज मुझे तारकासुर से भी अधिक भय उत्पन्न हो गया है ॥२२॥

तस्मादेवं त्वं विधेहि तत्सुतो मां सुरान्यथा।
न बाधेत तथा यत्नात्तारयास्मान्महाभयात् ॥२३॥

इसलिए आप कुछ ऐसा उपाय कीजिये जिससे वह हम देवताओं को कष्ट न पहुँचाये। आप इस महान् भय से हमारा उद्धार कीजिये ॥२३॥

॥ ब्रह्मोवाच ॥

उमायां जायते पुत्रो यदि शङ्करतेजसा।
अशक्यः सर्वलोकेशैः सेन्द्रैरपि सुरासुरैः ॥२४॥

ब्रह्मा बोले– यदि शङ्कर के तेज से उमा को पुत्र उत्पन्न होगा तो वह इन्द्रादि सभी लोकपालों के सहित समस्त देवताओं और असुरों द्वारा अशक्य, अजेय होगा॥२४॥

तस्माद्धरो यथोमायां न प्रसूतो भविष्यति।
तथाहं संविधास्यामि गत्वा देवैर्हरान्तिकम् ॥२५॥

इसलिए जिस प्रकार शिव, उमा के गर्भ से पुत्ररूप में न उत्पन्न हों, देवताओं के सहित शिव के समीप जाकर मैं, कुछ ऐसा ही यत्न करूँगा ॥२५॥

तारकस्य विघातश्च यथा स्याद्धरतेजसा।
तच्चाप्यहं करिष्यामि व्येतु ते मानसो ज्वरः ॥२६॥

जिस प्रकार से शिव के वीर्य से तारकासुर का वध हो तथा तुम्हारा मानसिक कष्ट दूर हो, उसके लिए भी मैं यत्न करूँगा ॥२६॥

॥ और्व उवाच ॥

इत्युक्त्वा सह देवौघैः कैलासाद्रिं प्रजापतिः।
जगाम रेमे गिरिशो गिरिपुत्र्या समं भृशम् ॥२७॥

और्व बोले– ऐसा कहकर देवताओं के समूह के सहित प्रजापति (ब्रह्मा) उस कैलास पर्वत पर गये जहाँ भगवान् शङ्कर पार्वती के साथ अत्यधिक रमण कर रहे थे।।२७।।

तत्र गत्वा महादेवं ब्रह्मा लोकपितामहः ।
सर्वैः सुरगणैः सार्धं तुष्टाव वृषभध्वजम् ।।२८।।

वहाँ जाकर ब्रह्मा ने सभी देवगणों के साथ, वृषभध्वज महादेव की स्तुति की ।।२८।।

।। देवा ऊचुः ।।

प्रीतये यस्य न रतिर्न कामो यन्मनोभवः ।
न यस्य जन्मनो हेतुस्तस्मै तुभ्यं नमो नमः ।।२९।।

देवगण बोले– मनोभव काम और रति जिसे प्रसन्न नहीं करते, जिसके जन्म का कोई कारण नहीं है, उस आप (शिव) को बारम्बार नमस्कार है ।।२९।।

यस्य लोकहितायैव जातो जायापरिग्रहः ।
त्र्यम्बकाय नमस्तस्मै स शिवो नः प्रसीदतु ।।३०।।

जिन्होंने लोक के कल्याण के ही लिए जायापरिग्रहण (विवाह) किया है । उन त्र्यम्बक, तीन नेत्रों वाले शिव को नमस्कार है। वे शिव हम पर प्रसन्न हों।।३०।।

यन्मन्मथं विना देवं शृङ्गाराद्या विशन्ति च ।
स्वबलेनैव तं देवं त्वां वयं प्रणता हरम् ।।३१।।

जिस मन्मथ कामदेव के बिना अपने बल से श्रृंगारादि प्रवृत्त होते हैं, हम उस प्रकार के समर्थ देव, आप (शिव) की शरण में हैं ।।३१।।

हिरण्यरेताः स्वर्णाभो यो हिरण्यभुजाह्वयः ।
स त्वं सर्गहरो देवो नित्यं नोऽभिप्रसीदतु ।।३२।।

हिरण्यरेता (स्वर्णिमवीर्य वाले), स्वर्णिम आभा वाले, जो हिरण्यभुज नाम से पुकारे जाते हैं, वे आप सृष्टि का हरण करने वाले किन्तु स्वयं नित्य शाश्वतरूप से विराजमान रहने वाले, देवाधिदेव महादेव, हम पर सब ओर से प्रसन्न हों ।।३२।।

जगन्मयी योगनिद्रा विष्णुमाया बलीयसी ।
तस्याभवत् स्वयं जाया तस्मै तुभ्यं नमो नमः ।।३३।।

स्वयं जगन्मयी, योग-निद्रा, बलशालिनी, विष्णुमाया जिनकी पत्नी बनी हैं, उन आप को बार-बार नमस्कार है ।।३३।।

पञ्चभूतमयं यस्य पञ्चशीर्षं विराजते ।
तं पञ्चवदनं देवं भक्त्या त्वां प्रणमामहे ।।३४।।

पाँच महाभूतों के प्रतीक रूप जिनके पाँचशिर शोभायमान हो रहे हैं, उन पाँच-मुँहवालेदेव, आप शिव को हम सब भक्तिपूर्वक प्रणाम करते हैं ।।३४।।

सद्योजातमघोरं च वामदेवमुमापतिम् ।
ईशानं प्रणमामोऽद्य यं तत्पुरुषमाह वै ।।३५।।

जिनको सद्योजात, अघोर, वामदेव, ईशान, तत्पुरुष, कहा जाता है, हम सब ऐसे उमापति शिव को आज प्रणाम करते हैं ।।३५।।

योऽसतामशिवो नित्यं यो वा भक्तिमतां शिवः ।
शिवाशिवस्वरूपाय नमस्तस्मै शिवाय ते ।।३६।।

जो दुष्टों के लिए नित्य अशिव अर्थात् अकल्याणकारी तथा भक्तों के लिए शिव अर्थात कल्याणकारी हैं, उस शिव और अशिव स्वरूपवाले भगवान् शिव को नमस्कार है ।।३६।।

रूपैस्त्रिभिर्यः स्थितिसृष्टिनाशं
विष्ण्वात्मभिः शम्भुरिति प्रसिद्धैः ।
करोति शश्वज्जगतां नुमस्तं
शिवं विरूपाक्षममुं शिवेशम् ।।३७।।

जो शम्भु अपने विष्णु आदि तीन प्रसिद्ध रूपों से निरन्तर संसार की स्थिति, सृष्टि एवं नाश करते हैं। उन शिव, विरूपाक्ष तथा शिवा (काली) के पति को हम सब नमस्कार करते हैं ।।३७।।

यः शूलखट्वाङ्गमृगाङ्कधारी
यो गोध्वजः शक्तिमान् पञ्चरूपी ।
तस्मै तुभ्यं जातवेदःप्रभाय
भूयो भूयो नो नमः शङ्कराय ।।३८।।

जो शूल, षट्वाङ्ग, मृगाङ्क धारण करने वाले हैं, जो गो (वृष) ध्वज हैं। जो शक्तिमान् और प्रपञ्च स्वरूप हैं, जो अग्नि के समान प्रभा वाले हैं, उन भगवान् शङ्कर को हम बार-बार नमस्कार करते हैं ।।३८।।

ब्रह्मर्चिष्मान् भोगभृद्दैत्यहन्ता
यन्ता योद्धा वीतगर्भो जगत्याः ।
स त्वं स्तुतो नः प्रसीदत्वनन्तो
नित्योद्रेकी मुक्तरूपः प्रधानः ।।३९।।

आप जो ब्रह्म की किरणों से युक्त, सर्पों के आभूषण से सुसज्जित, दैत्यों का वध करने वाले, संसार के संचालक, योद्धा, संसार के जन्मदाता, मुक्तरूप, प्रधान तथा नित्यवृद्धि को प्राप्त हैं, उन आपकी हम प्रार्थना करते हैं, हे अनन्त ! आप हम पर प्रसन्न हों ।।३९।।

परब्रह्मरूपी नियतैकमुक्तः
परज्योतिरूपी नियतस्त्वनन्तः ।
परः पाररूपी नियतात्मभागी
स नो भर्गरूपी गिरिशोऽस्तु भूत्यै ।।४०।।

जो परब्रह्मरूप वाले, नियत, एक मात्र मुक्त, परमज्योतिरूप, अनन्त, पर से भी पार, सर्वश्रेष्ठ, नियतात्मा वाले हैं, वे भर्ग (शिव) रूपधारी गिरीश, हमारे लिए ऐश्वर्य का कारण हों।।४०।।

उमापतिं महामायं महादेवं जगत्पतिम् ।
शिवं शिवकरं शान्तं नमामः स प्रसीदतु ।।४१।।

हम उमा के पति, महान् माया वाले, महादेव, जगत्पति, कल्याण कारक, शान्त, शिव को नमस्कार करते हैं। वे हम पर प्रसन्न हों ।।४१।।

।। और्व उवाच ।।

इति स्तुतो महादेवः शक्राद्यैस्त्रिदशैः स्वयम् ।
उमासङ्गं परित्यज्य भर्गोऽगात्त्रिदिवौकसः ।।४२।।

और्व बोले– जब इन्द्रादि देवताओं द्वारा इस प्रकार (उपर्युक्त) स्तुति की गई तो स्वयं भगवान् शंकर, उमा का सङ्ग छोड़कर देवताओं के पास पहुँच गये ।।४२।।

येन भावेन स तदा महामैथुनतत्परः ।
आसीत् तेनैव भावेन ब्रह्मादीनां ससादह ।।४३।।

उस समय वे जिस भाव से महामैथुन में लगे हुए थे उसी भाव से ब्रह्मा-आदि के पास पहुँच गये ।।४३।।

अथ तान् स सुरान् प्राह महादेवस्त्वरन्निव ।
किमर्थमागता यूयं तन्मे वदत निर्जराः ।
तमूचुस्त्रिदशाः सर्वे ब्रह्मशक्रपुरोगमाः ।।४४।।

तब वे **महादेव** उन देवताओं से शीघ्रता से **बोले**—हे देवगण ! आप लोग जिस उद्देश्य से यहाँ आये हैं, उसे मुझसे कहिये तब ब्रह्मा और इन्द्र के नेतृत्व में आये उन सब देवताओं ने उन शिव से कहा—।।४४।।

।। ब्रह्मादयः ऊचुः ।।

त्वन्महामैथुनाद्भर्ग व्याकुलं सकलं जगत् ।
पृथिवी कम्पतेऽतीव सशैलवनकानना ।।४५।।
सागराः क्षुभिताः सर्वे नदा नद्यश्च शङ्कर ।
देवाश्च सर्वे दिक्पाला न शान्तिं प्राप्नुवन्ति वै ।।४६।।

ब्रह्मा आदि बोले– हे शंकर ! हे भर्ग ! आपके महामैथुन से समस्त जगत व्याकुल हो गया है, पर्वत और वनों के सहित सम्पूर्ण पृथिवी बहुत अधिक काँप रही है । सभी नदियाँ, नद एवं समुद्र आज क्षुब्ध हो उठे हैं। सभी देवता एवं दिग्पाल शान्ति नहीं पा रहे हैं।।४५-४६।।

तस्मात् त्वं सर्वलोकेश सकलाननुकम्पय ।
त्यक्त्वा महामैथुनं तु रतिमात्रं नियोजय ।।४७।।

इसलिए हे सभी लोकों के स्वामी ! आप हम सब पर कृपा कीजिए । इस महामैथुन को छोड़कर रतिमात्र तक ही इसे सीमित कीजिए ।।४७।।

।। और्व उवाच ।।

एतच्छ्रुत्वा वचस्तस्य ब्रह्मणः परमात्मनः ।
उवाच शङ्करो देव नातिहृष्टमना इव ।।४८।।

और्व बोले– परमात्मा ब्रह्मा के इन वचनों को सुनकर देवाधिदेव शंकर बहुत प्रसन्न न होते हुए बोले— ।।४८।।

।। ईश्वर उवाच ।।

इयं प्रवृत्तिर्भवतां शिवायामरसत्तमाः ।
त्यक्ते महामैथुने तु रतिमात्रं प्रयोजिते ।
नोमायां भविता पुत्रस्तदर्थमयमुद्यमः ।।४९।।

ईश्वर (शिव) बोले– हे देवताओं में श्रेष्ठजन ! आप सब की शिव के प्रति यह प्रवृत्ति कि नित महामैथुन छोड़कर रतिमात्र में ही चित्त लगाया जाय ! उमा को पुत्र न हो, इसीलिए आप लोगों का यह सारा उद्यम है ।।४९।।

उमाशरीरजः पुत्रो यो भवेन्मम तेजसा ।
स एव तु रिपून् हत्वा त्रिदशान् वर्धयिष्यति ।।५०।।

मेरे वीर्य से उमा के शरीर से जो पुत्र उत्पन्न होगा वही शत्रुओं को मार कर देवताओं की अभिवृद्धि करेगा ।।५०।।

तस्मान्महामैथुने मेऽतीव भीताः सुरोत्तमाः ।
स्वं स्वं स्थानं प्रगच्छन्तु अहं तदनुचिन्तये ।।५१।।

अतः मेरे महामैथुन से अत्यंत भयभीत देवगण, आप सब अपने-अपने स्थान को जायें । मैं आपके निवेदन पर विचार करूँगा ।।५१।।

।। देवा ऊचुः ।।

उमाशरीरजः पुत्रो यथा न भविता हर ।
तथा कुरु जगन्नाथ तन्महामैथुनं त्यज ।।५२।।

देवगण बोले– हे हर ! उमा के शरीर से जिस प्रकार पुत्र उत्पन्न न हो, ऐसा कुछ करें । इसलिए हे जगत् के स्वामी ! आप महामैथुन को छोड़िये ॥५२॥

॥ ईश्वर उवाच ॥

रतिमात्रेण नोमायां मत्पुत्रः सम्भविष्यति ।
महामैथुनसन्त्यागात् स्यादपुत्री तु पार्वती ॥५३॥

ईश्वर बोले– रतिमात्र से ही उमा से मेरा पुत्र उत्पन्न नहीं होगा तथा मेरे महामैथुनत्याग से पार्वती बिना पुत्र की रह जायेगी॥५३॥

तस्मादहं तु देवानां वचनाद् ब्रह्मणस्तथा ।
त्यक्ष्ये महामैथुनं तु किं त्वेकं कुरुतामराः ॥५४॥

इसलिए मैं ब्रह्मा तथा देवताओं के कथनानुसार महामैथुन तो छोड़ दूँगा किन्तु हे देवगण ! आप एक कार्य करें ॥५४॥

येन मे प्रसृतं तेजो महामैथुनकारणात् ।
धार्यं तेजस्विनं देवमानयन्त्वमरास्तु तम् ॥५५॥
यो निष्कम्पो निर्विकारो भूत्वा तेजोग्रहीष्यति ।
तन्मे वदन्तु त्रिदशास्त्यक्ष्ये तेजः शरीरजम् ॥५६॥

हे देवगण ! जो महामैथुन से उत्पन्न मेरें वीर्य को धारण करने में समर्थ हो, उस तेजस्वी देव को आप सब ले आयें । जो स्थिररूप से निर्विकारभाव से मेरे तेज को ग्रहण करे । उसके बारे में मुझे बतायें तब मैं अपने शरीर से उत्पन्न वीर्य को छोड़ूँगा ॥५५-५६॥

॥ और्व उवाच ॥

वृषध्वजवचः श्रुत्वा देवा ब्रह्मपुरोगमाः ।
हरतेजोग्रहायाथ वीतिहोत्रं ययुर्द्धिया ॥५७॥

और्व बोले–वृषभध्वजशिव के उपर्युक्त वचनों को सुनकर ब्रह्मादि देवता विचारपूर्वक अग्नि के समीप, शिव के वीर्य को ग्रहण कराने के लिए गये ॥५७॥

अथ ब्रह्माणमामन्त्र्य तथानुज्ञाप्य पावकम् ।
सेन्द्रा देवगणाः सर्वे हरमूचुरिदं वचः ॥५८॥

तब ब्रह्मा से विचारविमर्श कर तथा अग्नि की आज्ञा लेकर, इन्द्र के सहित सभी देवगण, शिव के निकट जाकर उनसे ये वचन बोले ॥५८॥

॥ देवा ऊचुः ॥

एष वैश्वानरः श्रीमान् भूरितेजमयो बली ।
महामैथुनबीजं तु त्वत्तेजः संग्रहीष्यति ॥५९॥

देवतागण बोले– ये अग्निदेव, श्रीमान्, अत्यधिक तेजवान् एवं बलवान् हैं। ये ही आपके महामैथुन के कारण उत्पन्न वीर्य का संग्रह करेंगे॥५९॥

।। और्व उवाच ।।

इत्युक्त्वा त्रिदशाः सर्वे वीतिहोत्रं पुरःस्थितम् ।
तस्मै निदेशयामासुः शम्भवे सर्वहेतवे ।।६०।।

और्व बोले– ऐसा कहकर सभी देवता वीतिहोत्र (अग्नि) को आगे कर उन्हें सब के कारणभूत् शिव की सेवा में प्रस्तुत किये ॥६०॥

ततः षडङ्गं स्वं रेतो व्यादिते दहनानने ।
उत्ससर्ज महाबाहुर्महामैथुनकारणम् ।।६१।।

तब महाबाहु शिव ने महामैथुन के कारण अपने षडङ्गों से उत्पन्न वीर्य को अग्नि के खुले हुये मुख में छोड़ दिया ॥६१॥

अग्नावुत्सृज्यमानस्य तेजसः शशभृद्भृतः ।
अणुद्वयमतिस्वल्पं गिरिप्रस्थे पपात ह ।।६२।।

उस समय चन्द्रमा से सुशोभित शिव के तेज को अग्नि में छोड़े जाते समय दो अत्यन्त छोटे अणु गिरिशिखर पर गिर गये ॥६२॥

तयोस्तु कणयोः सद्यः सम्भूतौ शङ्करात्मजौ ।
एको भृङ्गसमः कृष्णो भिन्नाञ्जननिभोऽपरः ।।६३।।

उन दोनों कणों (अणुओं) से शिव के दो पुत्र तत्काल उत्पन्न हो गये। उनमें से एक भृङ्गी के समान काला था तो दूसरा अञ्जन के समान आभावाला था॥६३॥

भृङ्गाभस्य तदा ब्रह्मा नाम भृङ्गीति चाकरोत् ।
महाकृष्णैकरूपस्य महाकालेति लोकभृत् ।।६४।।

तब लोक के भरण-पोषण करने वाले ब्रह्मा ने भृङ्गी के समान आभावाले पुत्र का नाम भृङ्गी तथा अत्यधिक काले रङ्ग वाले पुत्र का नाम महाकाल रखा ॥६४॥

ततस्तौ पालयामास शङ्करः प्रमथोत्करैः ।
अपर्णया चापि तथा क्रमात् तावति वर्द्धितौ ।।६५।।

तब भगवान् शङ्कर ने अपने गणों द्वारा उन दोनों का पालन किया और अपर्णा (पार्वती) द्वारा भी वे क्रमशः अत्यन्त वृद्धि को प्राप्त हुए ॥६५॥

प्रवृद्धौ तौ महात्मानौ हरोमाप्रतिपालितौ ।
क्रमाद् गणेशौ कृत्वा तौ हरो द्वारि न्ययोजयत् ।।६६।।

शिव और उमा द्वारा विशेष रूप से पाले गये वे दोनों महान् आत्मा वाले

जब बड़े हो गये तो शिव ने उन दोनों को गणों का अधिपति बनाकर द्वार पर रक्षा के लिए नियुक्त कर दिया ।।६६।।

।। सगर उवाच ।।

उत्सृष्टमग्नौ यत्तेजस्तत् किं वृत्तं द्विजोत्तम ।
तदप्यहं श्रोतुमिच्छुः संक्षेपात् तद्वदस्व मे ।।६७।।

सगर बोले– हे द्विजोत्तम ! अग्नि में शिव का जो तेज छोड़ा गया उसका क्या हुआ? वह मैं सुनने को उत्सुक हूँ। आप उस वृतान्त को मुझसे संक्षेप में बताइये।।६७।।

।। और्व उवाच ।।

अग्नावुत्सृज्य तेजांसि तावत्कालं वृषध्वजः ।
आकाशगङ्गामुद्दिश्य देवानिदमुवाच ह ।।६८।।

और्व बोले– जब वृषध्वज ने अग्नि में अपने तेज को छोड़ दिया तब उन्होंने आकाशगङ्गा को लक्ष्य करके देवताओं से ये वचन कहे ।।६८।।

।। वृषध्वजोवाच ।।

एतत् तेजो दुराधर्षं स्त्रीभिरन्यैः सुरोत्तमाः ।
योगनिद्रामृते देवीं शैलपुत्रीमृतेऽथवा ।।६९।।

वृषध्वज (शिव) बोले– हे श्रेष्ठ देवताओं। मेरा यह तेज, योगनिद्रा (काली) अथवा शैलपुत्री (पार्वती) के अतिरिक्त अन्य किसी भी स्त्री के लिए असहनीय है ।।६९।।

तस्मादहं प्रवक्ष्यामि यथेदं तेजसा सुतः ।
यत्र वा भविता देवो या च वा तद्ग्रहीष्यति ।।७०।।

इसके तेज से जो पुत्र उत्पन्न होगा, जैसे या जहाँ जो देव उसे ग्रहण करेंगे मैं आप लोगों को बताउँगा ।।७०।।

इयं त्वाकाशगा गङ्गा शैलराजसुतापरा ।
उमाया भगिनी ज्येष्ठा ततोऽपत्यं हुताशनात् ।।७१।।
जनिष्यत्यात्मवीर्येण तेजसानुपमद्युतिः ।
भविष्यति स वः श्रीमान् सेनापतिररिन्दमः ।।७२।।

यह जो आकाशगंगा है वह शैलराज हिमालय की दूसरी कन्या है । यह उमा की बड़ी बहन है। यही अग्नि से पुत्र उत्पन्न करेगी । जो अपने पराक्रम और चमक में अनुपम होगा । वह श्रीमान् होगा, शत्रुओं का दमन करने वाला तथा तुम लोगों का सेनापति होगा।।७१-७२।।

स तारकं वः पुरतो विजेष्यति शिखिध्वजः ।
अमोघया महाशक्त्या मयैव प्रतिवर्द्धितः ।।७३।।

वह तुम लोगों के सामने ही तारकासुर को जीतेगा। वह अपनी ध्वजा पर मोर का चिन्ह धारण करेगा। वह अमोघ महाशक्ति से मेरे ही द्वारा बढ़ाया गया होगा ।।७३।।

।। और्व उवाच ।।

इत्युक्त्वा स महादेवो विसृज्य सकलान् सुरान् ।
पार्वतीमभिसंमन्त्र्य शौचार्थं गतवांस्तदा ।।७४।।

और्वमुनि बोले– उन महादेव ने ऐसा कहकर सभी देवताओं को विदा किया और पार्वती से विचार-विमर्श के पश्चात् उस समय शौचादिक के लिए चले गये ।।७४।।

पार्वतीवचनं श्रुत्वा देवानामप्रियं सती ।
चुकोप त्रिदशौघाय पुत्राशा परिवर्जिता ।।७५।।

पुत्र की आशा से वञ्चित की गई सती पार्वती ने देवताओं की उपर्युक्त अप्रिय बातों को सुनकर देवसमूह के प्रति अत्यधिक क्रोध किया ।।७५।।

मन्युना दह्यमानेव स्फुरदोष्ठाधरा तदा ।
इदमाह सुरान् दृष्ट्वा हरं च त्यक्तमैथुनम् ।।७६।।

जो क्रोध से जलती हुई की भाँति प्रतीत हो रही थी और जिनके ओठ फड़क रहे थे ऐसी पार्वती ने तब देवताओं तथा मैथुन को छोड़े हुए शिव को देखकर ये वचन कहे—।।७६।।

।। देव्युवाच ।।

यस्माद्वियोजितः शम्भुर्युष्माभिर्मम मैथुने ।
अजातपुत्रा च कृता वारस्त्रीवाहम्मर्दिता ।।७७।।
तस्मात् सर्वे सुरगणा अद्यावधि निरन्तरम् ।
महामैथुनविभ्रष्टा भवन्तु निजयोषिति ।।७८।।

देवी बोली– आप सबने शिव को मेरे मैथुन से अलग किया है तथा मुझे वारस्त्री (वेश्या) की भाँति मर्दित दशा को पहुँचाया है और पुत्र न उत्पन्न करने वाली बना दिया है इसलिए आज से सभी देवगण अपनी पत्नियों के प्रति निरन्तर महामैथुन (सन्तानप्रदमैथुन) से वञ्चित हों ।।७७-७८।।

तेषामपि तथा पुत्रा न जनिष्यन्ति मे यथा ।
भार्याश्च सन्त्वपत्येन हीना देव्यो वराङ्गनाः ।।७९।।

उनको भी मेरी ही तरह पुत्र उत्पन्न नहीं होंगे। उनकी पत्नियाँ, श्रेष्ठअङ्गों वाली देवपत्नियाँ, सन्तान से रहित हों।।७९।।

यथाहं परितप्यामि पुत्राशा परिवर्जिता ।
तथा सन्तु समस्तास्ता देव्यः पुत्राशयाच्युताः ।।८०।।

जैसे मैं पुत्र की आशा से वञ्चित हो कष्ट प्राप्त कर रही हूँ वैसे ही वे सभी देवियाँ भी पुत्र की आशा से वञ्चित हों।।८०।।

।। और्व उवाच ।।

एवं सुरान् गिरिसुता शशाप कुपिता भृशम् ।
तत्कालावधि न स्वर्गे जायन्ते देवपुत्रकाः ।
नाद्यापि सम्प्रजायन्ते पुत्रास्तासु सुधाशिनाम् ।।८१।।

और्व बोले– जब से अत्यधिक क्रोधित हो गिरिसुता पार्वती ने देवताओं को इस प्रकार का शाप दिया तब से स्वर्ग में देवताओं को पुत्र नहीं उत्पन्न होते। आज भी उन अमृतभोजी देवताओं की पत्नियों को पुत्र उत्पन्न नहीं होते ।।८१।।

दहनोऽपि तथा काले प्राप्ते गङ्गोदरे स्वयम् ।
रेतः संक्रामयामास शाम्भवं स्वर्णसन्निभम् ।।८२।।

अग्निदेव ने भी समय पर शिव के उस स्वर्ण के समान प्रकाशित वीर्य को गङ्गा के उदर में संक्रामित कर दिया।।८२।।

सा तेन रेतसा देवी सर्वलक्षणसंयुतम् ।
एकः स्कन्दो विशाखाख्यो द्वितीयश्चारुरूपधृक् ।
शक्तिद्वयधरौ द्वौ तौ तेजःकान्तिविवर्द्धितौ ।।८३।।

उस देवी गंगा ने भी उस वीर्य से सभी सुलक्ष्णों से युक्त, हाथों में दो शक्तियाँ धारण किये हुए, सुन्दर रूप धारण करने वाले, स्कन्द तथा विशाख नामक दो पुत्रों को जन्म दिया। वे दोनों ही तेज और कान्ति से समृद्ध थे ।।८३।।

तावेकत्वं जगामाशु विशाखः स्कन्द एव च ।
शिशुश्चाप्यभवद् यातो यथान्यस्य सुतस्तथा ।।८४।।

पैदा होते ही वे दोनों स्कन्द एवं विशाख एक होकर अन्य लोगों के बच्चों की भाँति शिशुरूप में आ गये ।।८४।।

ततस्तं तनयं जातं तथा दृष्ट्वातिविस्मिता ।
मध्ये शरवणस्याशु गङ्गा तं व्यसृजद्धठात् ।।८५।।

तब उस प्रकार के पुत्र को उत्पन्न हुआ देखकर आश्चर्य चकित हो गंगा ने उसे हठवश, शीघ्र ही नरकट के समूह में छोड़ दिया।।८५।।

विसृज्य गर्भं तं गङ्गा बहुलायै स्वयं तदा ।
गर्भवृत्तान्तमाचख्यौ जातं च व्यसृजद् यथा ।।८६।।

तब गंगा ने उस गर्भ को छोड़ने के बाद गर्भसम्बन्धी यह सम्पूर्ण वृत्तान्त स्वयं बहुला को बताया कि कैसे वह उत्पन्न हुआ तथा उसे कैसे छोड़ा गया॥८६॥

तच्छ्रुत्वा बहुला ज्ञात्वा महादेवतनूद्भवम् ।
परिगृह्य सुतं तं तु पालयामास कृत्तिका ॥८७॥
उमायाः शङ्करस्यापि विज्ञाप्यानुमते तयोः ।
ततो नीत्वा ददौ देव्यै तं पुत्रमरिमर्दनम् ॥८८॥

बहुला ने उस वृत्तान्त को सुनकर तथा उसे महादेव के शरीर से उत्पन्न जानकर, उसको ग्रहण कर लिया। शिव-पार्वती को सूचित कर उनकी अनुमति से उस पुत्र का पालन कृत्तिकाओं ने किया तत्पश्चात् शत्रुओं के मर्दन करने वाले उस पुत्र को ले जाकर देवी पार्वती को दे दिया ॥८७-८८॥

सोऽतिवृद्धः शक्तिधरो महाबलपराक्रमः ।
वर्द्धितः शङ्करेणाशु देवसेनाधिपोऽभवत् ॥८९॥

अत्यन्त विकसित, भगवान शङ्कर द्वारा विकास को प्राप्त कर शक्ति-अस्त्रधारी महान् बल और पराक्रम से युक्त, वह बालक शीघ्र ही देवताओं का सेनापति हो गया॥८९॥

ततः सुरारिं सगणं तारकं लोकतारकम् ।
शक्तिहस्तो हरसुतः प्रममाथ महाबलम् ॥९०॥

तब हाथों में शक्तिधारी, उस शिवपुत्र ने महाबली, लोकों के सञ्चालक, देवताओं के शत्रु, तारकासुर को उसके गणों एवं सेवकों सहित मार डाला॥९०॥

एवमग्नौ समुत्सृष्टं तेजो भर्गेण सङ्गतम् ।
यथा वृत्तं तथा तेऽद्य कथितं नृपसत्तम ॥९१॥

हे नृपसत्तम ! शिव के शरीर से उत्पन्न और अग्नि में छोड़े गये वीर्य सम्बन्धी जो वृत्तान्त हुआ था, उसे आज मैंने तुमसे कह दिया ॥९१॥

साम्प्रतं प्रस्तुतं श्राव्यं महाकालस्य भृङ्गिणः ।
वृत्तान्तं शृणु राजेन्द्र तौ भूतौ मनुजौ यथा ॥९२॥

॥ इति श्रीकालिकापुराणे भृङ्गीमहाकालजन्मवर्णननाम षट्चत्वारिंशोऽध्यायः ॥४६॥

अब तुम सुनायेजानेयोग्य महाकाल और भृङ्गी का वृत्तान्त सुनो कि वे किस प्रकार मनुष्यरूप को प्राप्त हुए ॥९२॥

॥ श्रीकालिकापुराण में भृङ्गिमहाकालजन्मवर्णननामक छियालिसवाँ अध्याय सम्पूर्ण हुआ ॥४६॥



सप्तचत्वारिंशोऽध्यायः

चन्द्रशेखरचरितवर्णनम्

।। और्व उवाच ।।

हरो यावद् जगत्यर्थे देववर्गैः प्रसादितः ।
तावन्महामैथुनेन हीनोऽभूदुमया सह ।।१।।

और्व बोले—संसार के कल्याण हेतु जब से शिव देवताओं द्वारा प्रसन्न किये गये तब से वे पार्वती के प्रति महामैथुन से रहित हो गये ।।१।।

वर्तते रतिमात्रेण स्वेच्छां सम्पूरयन् सदा ।
यथा मनोरथं देव्याः सततं पूरयन्मृडः ।।२।।

तब से वे शिव रतिमात्र से ही सदैव अपनी इच्छा की पूर्ति तथा देवी के मनोरथ की पूर्ति करते रहते थे ।।२।।

अथैकदोमया सार्धं निगूढे रतिमन्दिरे ।
नर्माकरोन्महादेवो मोदयुक्तो रतिप्रियः ।।३।।

रति के प्रेमी वे महादेव, पार्वती के साथ गुप्तरति मन्दिर में एक बार प्रसन्नतापूर्वक कामक्रीड़ा रत थे ।।३।।

यदा सा नर्मणे याता गौरी स्मरहरान्तिकम् ।
तदा भृङ्गिमहाकालौ द्वाःस्थौ द्वारि प्रतिष्ठितौ ।।४।।

जब वे गौरी केलि के निमित्त कामारि शिव के समीप थीं । उस समय भृङ्गी एवं महाकाल दोनों द्वार पर ही स्थित थे ।।४।।

नर्मावसाने सा देवी मुक्तधम्मिल्लबन्धना ।
बन्धहीनं गलद्गात्राद्वस्त्रमालम्ब्य पाणिना ।।५।।
व्यस्तहारा गन्धपुष्पैराकुलैर्नातिशोभना ।
विलुप्तकुंकुमा दंष्टदशनच्छदविभ्रमा ।।६।।
निःसृता रतिसङ्केलिनिलयाज्जलजानना ।
ईषदाघूर्णनयना निचिता स्वेदबिन्दुभिः ।।७।।

कामक्रीड़ा समाप्त होने पर वे देवी, खुले हुए जूड़े के बन्धन, उन्मुक्त, ढीले शरीर से, हाथों से वस्त्रों को पकड़ी हुई निकलीं। उस समय उनके गले के हार अस्त-व्यस्त थे तथा गन्ध-पुष्प आदि के अस्त-व्यस्त हो जाने से वे बहुत सुन्दर नहीं लग रही थीं। उनके माथे का कुंकुम पुँछ गया था, क्रीड़ा में दाँतो के काटे जाने के चिह्न दिखाई दे रहे थे। इस प्रकार की अवस्था को प्राप्त, कमल के समान मुखवाली पार्वती, जिनके नेत्र कुछ अस्थिर थे तथा शरीर से पसीने टपक रहे थे, रतिकेलिक्रीड़ामन्दिर से निकलीं ॥५-७॥

तां निःसरन्तीं सदनात् तथाभूतामनिन्दिताम् ।
अयोग्यां वीक्षितुञ्चान्यैर्वृषध्वजमृते पतिम् ॥८॥
ददर्शतुर्महात्मानौ नातिहृष्टात्ममानसौ ।
भृङ्गी चापि महाकालः प्राप्तकालं चुकोपतुः ॥९॥

जो अपने पति शिव के अतिरिक्त किसी अन्य द्वारा देखने योग्य नहीं थीं उन अनिन्द्यसुन्दरी, देवी पार्वती को महात्मा भृङ्गी एवं महाकाल ने बिना अधिक प्रसन्न हुए, उस अवस्था में देखा तथा उस अवसर पर वे क्रोधित हो गये ॥८-९॥

दृष्ट्वा तां मातरं दीनौ तथाभूतावधोमुखौ ।
चिन्तां च जग्मतुस्तीव्रां निशश्वसतुरुत्तमौ ॥१०॥

उस अवस्था में अपनी माता को देखकर दीनभाव से नीचे मुख किये, उत्तम-गुणोंवाले वे दोनों तीव्रचिन्ता को प्राप्त हुए तथा लम्बी-लम्बी साँसे लेने लगे ॥१०॥

तौ पश्यन्तौ तदा देवी ददर्श हिमवत्सुता ।
चुकोप च तदापर्णा वाक्यं चैतदुवाच ह ॥११॥

जब हिमालय की पुत्री पार्वती ने उस समय उन दोनों को उस प्रकार क्रोधित दृष्टि से देखते देखा तब क्रोधित हो, देवी अपर्णा ने ये वचन कहे ॥११॥

॥ देव्युवाच ॥

एवं भूतां च मां कस्मादसम्बद्धावपश्यताम् ।
भवन्तौ तनयौ शुद्धौ ह्रीमर्यादाविवर्जितौ ॥१२॥

देवी बोलीं– इस घटना से तुम्हारा कोई सम्बन्ध न होने पर भी तुम दोनों शुद्धरूप से मेरे पुत्र होते हुए भी लज्जा एवं मर्यादा रहित हो, इस अवस्था में मुझे देख रहे हो॥१२॥

यस्मादिमाममर्यादां भवन्तौ निरपत्रपौ ।
अकुर्वतां ततो भूयाद् भवतोर्जन्म मानुषे ॥१३॥

लज्जारहित तुम दोनों इस प्रकार का अमर्यादापूर्ण कार्य कर रहे हो इसलिए तुम दोनों का अगला जन्म, मनुष्य योनि में हो॥१३॥

मानुषीं योनिमासाद्य मदवेक्षणदोषतः ।
भविष्यन्तौ भवन्तौ तु शाखामृगमुखौ भुवि ॥१४॥

इस अवस्था में मुझे देखने के दोष के कारण पृथ्वी पर मनुष्य-योनि में जन्म लेने पर भी तुम दोनों का मुख बन्दर जैसा होगा॥१४॥

॥ और्व उवाच ॥

इति तावुमया शप्तौ हरपुत्रौ महामती ।
भृङ्गी चैव महाकालः स्वमातुरन्तिकं तदा ॥१५॥

और्व बोले– तब वे भृङ्गी और महाकाल नामक दोनों महाबुद्धिमान् शिव-पुत्र, उमा द्वारा इस प्रकार से शापित हो, अपनी माता के समीप गये॥१५॥

तौ प्राप्तदुःखौ तु तदा दुर्मनस्कौ हरात्मजौ ।
शापं तस्या न सेहाते प्रोचतुश्चेदमद्रिजाम् ॥१६॥

तब वे दोनों शिवपुत्र जो दुखद शाप को प्राप्त कर उदास हो गये थे, उन के शाप को न सह पाने के कारण अद्रिजा (पार्वती) से यह कहे–॥१६॥

॥ तौ ऊचतुः ॥

अनागसौ सदैवावां भवत्या हिमवत्सुते ।
कथं शप्तौ त्वया मातर्हठादेवं प्रकोपया ॥१७॥

वे दोनों बोले– हे हिमालय की पुत्री ! हम दोनों सदैव निर्दोष हैं। ऐसी परिस्थिति में आपके द्वारा अनायास क्रोधित हो, हमें शाप क्यों दिया गया?॥१७॥

नियोजितौ यथा द्वारि महेशेन त्वया सह ।
तथा नियोगं कुर्वन्तौ तिष्ठावो द्वारि संयतौ ॥१८॥

आप के सहित भगवान् शिव द्वारा जिस प्रकार द्वार पर नियोजित किये गये थे, उसी के अनुसार हमदोनों अपना दायित्व सम्पादन करते हुए संयत रूप से द्वार पर उपस्थित थे॥१८॥

हठान्निःसरणं गेहात् तवैव न हि युज्यते ।
आगच्छन्त्या भवत्या तु दृष्टावावां सुसंयतौ ॥१९॥

आपका उस समय अचानक घर से निकलना उचित नहीं था। हम दोनों उस रूप में आपको आता हुआ देखकर भलीभाँती व्यवस्थितरूप से खड़े ही हुए थे॥१९॥

तस्मान्निरर्थकः कोपः को दोषस्तत्र चावयोः ।
तस्मात् तत्र प्रतीकारं शृणु मातरनिन्दिते ।।२०।।

हम दोनों का इसमें क्या दोष था ? अतः हम दोनों पर आपका क्रोध निरर्थक ही था । इसलिए हे श्रेष्ठ माता ! अब आप उसका प्रतिकार सुनिये ।।२०।।

त्वं मानुषी क्षितौ भूया हरो भवतु मानुषः ।
मानुषस्य हरस्याथ जायायां हरतेजसा ।
भवत्याश्चापि मानुष्या भविष्यावस्तथोदरे ।।२१।।

आप पृथिवी पर मनुष्य-स्त्री तथा भगवान शङ्कर मनुष्य (पुरुष) रूप में जन्म लें। मनुष्यवेशधारी शिव की पत्नी के गर्भ से, आपके ही उदर से हम दोनों मनुष्ययोनि में जन्म लें।।२१।।

यदि सत्यं हरसुतावावां यदि निरागसौ ।
तदावयोरिदं वाक्यं सत्यमस्तु गिरेः सुते ।।२२।।

हे गिरिसुते ! यदि सचमुच में हम दोनों शिवपुत्र हैं, और निर्दोष हैं तो हम दोनों का उपर्युक्त कथन सत्य हो।।२२।।

।। और्व उवाच ।।

इत्यन्योन्यमथो शापं दत्त्वा दत्त्वा सुदारुणम् ।
विविशुर्नृपशार्दूल गौरी हरसुतौ च तौ ।।२३।।

और्व बोले–हे राजाओं में शार्दूलवत् श्रेष्ठ ! इस प्रकार परस्पर एक दूसरे को भयंकर शाप देकर गौरी और शिव के वे दोनों पुत्र, चले गये ।।२३।।

अथ काले व्यतीते तु सर्वज्ञो वृषभध्वजः ।
तद्भावि कर्म ज्ञात्वैव मानुषो ह्यभवत् स्वयम् ।।२४।।

तत्पश्चात् कुछ समय बीत जाने पर सब कुछ जानने वाले शिव, उस भावी-कर्म को जानकर स्वयं मनुष्य हुए ।।२४।।

ब्रह्मणो दक्षिणांगुष्ठाद् दक्षो ब्रह्मसुतोऽभवत् ।
अदितिस्तत्सुता जाता ततः पूषाह्वयोऽभवत् ।।२५।।

ब्रह्मा के दाहिने अंगुठे से दक्ष नाम के ब्रह्मा के एक पुत्र उत्पन्न हुये । जिनकी अदिति नामक एक पुत्री उत्पन्न हुई । उस आदिति को पूषा नामवाला एक पुत्र उत्पन्न हुआ ।।२५।।

पूष्णः पुत्रोऽभवत् पौष्यः सर्वशास्त्रार्थपारगः ।
यस्य तुल्यो नृपो भूमौ न भूतो न भविष्यति ।।२६।।

उस पूषा को एक पौष्य नाम का, सभी शास्त्रों के अर्थ को भली-भाँती जानने वाला पुत्र हुआ, जिसके समान इस पृथ्वी पर न कोई राजा हुआ है, न होगा।।२६।।

स पुत्रहीनो राजाभूत् पौष्यो नृपतिसत्तमः ।
शेषे वयसि सम्प्राप्ते भार्याभिस्तिसृभिः सह ।।२७।।
पौष्यः परमया भक्त्या ब्रह्माणं पर्यतोषयत् ।।२८।।

वह पौष्य राजाओं में श्रेष्ठ किन्तु पुत्रहीन राजा हुआ। उसकी तीन रानियाँ थीं। वय का उत्तरार्ध उपस्थित होने पर उसने अपनी तीनों पत्नियों के साथ परमभक्ति से ब्रह्मा को प्रसन्न किया ।।२७-२८।।

तस्य प्रसन्नो भगवान् ब्रह्मा लोकपितामहः ।
तमुवाच च राजानं किमिच्छसि वदस्व मे ।।२९।।

उसकी आराधना से लोक पितामह भगवान् ब्रह्मा प्रसन्न हो गये तथा उस राजा से बोले— क्या चाहते हो? मुझे बताओ ।।२९।।

प्रसन्नोऽस्मि नृपश्रेष्ठ प्रदास्यामि यथेप्सितम् ।
यदिष्टं तव जायानां तद्वदिष्यसि साम्प्रतम् ।।३०।।

हे राजाओं में श्रेष्ठ राजा ! मैं इस समय प्रसन्न हूँ। अतः तुम जो चाहते हो और तुम्हारी पत्नियों को जो अभीष्ट है, वह मैं प्रदान करूँगा ।।३०।।

।। पौष्य उवाच ।।

हिरण्यगर्भापुत्रोऽहं पुत्रार्थी त्वामुपास्महे ।
त्वयि प्रसन्ने पुत्रो मे भूयाल्लक्षणसंयुतः ।।३१।।

पौष्य बोले– हे हिरण्यगर्भ ! मैं पुत्र हीन हूँ तथा पुत्र की आकांक्षा से ही आपकी उपासना कर रहा हूँ। आपके प्रसन्न होने से मुझे लक्षणसम्पन्न, उत्तमपुत्र हो, यही कामना है।।३१।।

एतदर्थे सभार्योऽहं भक्त्या त्वां समुपस्थितः ।
यथा मे जायते पुत्रस्तथा कुरु जगत्पते ।।३२।।

इसी हेतु मैं अपनी पत्नियों सहित आपकी सेवा में भक्तिपूर्वक उपस्थित हुआ हूँ। हे जगत्पति ! जिससे मुझे पुत्र उत्पन्न हो ऐसा उपाय कीजिये।।३२।।

पुन्नाम्नो नरकात् पुत्रस्त्रायते पितरं प्रसूम् ।
अतस्तस्माद् भयं ब्रह्मंस्त्वं नाशयितुमर्हसि ।।३३।।

क्योंकि पुत्र उत्पन्न होकर पितरों का पुम् नामक नरक से उद्धार कर देता है ब्रह्मदेव ! अतः आप पुत्रप्रदान कर उस नरक का हमारा भय दूर करें ।।३३।।

।। ब्रह्मोवाच ।।

शृणु पौष्य यथा भावी पुत्रस्तव कुलोद्वहः ।
तदहं ते वदाम्यद्य भार्याभिस्तत् समाचर ।।३४।।

ब्रह्मा बोले– हे पौष्य ! जिस प्रकार से तुम्हें कुल को बढ़ाने वाला पुत्र उत्पन्न होगा। आज उसे मैं तुमसे कहता हूँ। उसे तुम सुनो तथा अपनी पत्नियों सहित उस पर आचरण करो ।।३४।।

इदं फलं गृहाण त्वं मया दत्तं नृपोत्तम ।
अजीर्णं बहुले काले प्राप्तेऽपि सुरसं सदा ।।३५।।

हे नृपोत्तम ! मेरे द्वारा दिये गये इस फल को ग्रहण करो जो बहुत समय के बाद भी पुराना नहीं होगा और सदैव सुन्दर रसयुक्त बना रहेगा ।।३५।।

फलमेतत् समादाय तावत् संवत्सरत्रयम् ।
आराधय महादेवं स प्रसन्नो भविष्यति ।।३६।।
यथा सम्भाषते भर्गः फलमेतत् तथा भवान् ।
करिष्यति फलं राजन् भार्याभिस्तिसृभिः सह ।।३७।।

हे राजन् ! इस दिव्यफल को लेकर तीन वर्षों तक तुम महादेव की आराधना करो। इससे वे प्रसन्न हो जायेंगे, उस समय भगवान् शिव इस फल के विषय में जैसा कहें, अपनी तीनों पत्नियों सहित आप वैसा ही करोगे।।३६-३७।।

ततस्ते लक्षणोपेतस्तनयः कुलवर्धनः ।
भविष्यति स्वयं शास्ता चक्रवर्ती वसुन्धराम् ।।३८।।

तब तुम्हें सभी लक्षणों से युक्त, कुल को बढ़ाने वाला, पृथ्वी का स्वयं (एकमात्र) शासक, चक्रवर्ती पुत्र उत्पन्न होगा ।।३८।।

।। और्व उवाच ।।

इत्युक्त्वा प्रययौ ब्रह्मा राजापि सह भीरुभिः ।
हरं यष्टुं समारेभे भक्त्या परमया युतः ।।३९।।
निराशीः संयताहारः कदाचित् फलभोजनः ।
दृषद्वतीनदीतीरे फलं संस्थाप्य चाग्रतः ।
पुष्पार्घ्यधूपदीपैश्च वृषध्वजमतर्पयत् ।।४०।।

*और्व बोले–*ऐसा कह कर ब्रह्मा अपने स्थान को चले गये तब राजा ने भी अपनी भीरु (धर्मभीरु) पत्नियों के सहित परमभक्तिपूर्वक भगवान् शिव की पूजा करना प्रारम्भ किया। उन्होंने दृषद्वती नदी के तट पर कभी बिना खाये रहते, कभी संयत-आहार करते तो कभी फलाहार करते हुए, ब्रह्मा द्वारा दिये गये फल को आगे रखकर वृषध्वज शिव को पुष्प, अर्घ्य, धूप और दीप समर्पित कर सन्तुष्ट किया।।३९-४०।।

स तु वर्षद्वयेऽतीते महादेवो जगत्पतिः ।
पौष्यस्य नृपतेः सम्यक् प्रससादार्थसिद्धये ।।४१।।

उनके इस प्रकार पूजा करते दो वर्ष व्यतीत हो जाने पर जगत्पति महादेव, राजा पौष्य की कार्यसिद्धि हेतु उनके सम्मुख भली-भाँति प्रसन्नतापूर्वक उपस्थित हुए।।४१।।

प्रसन्नः प्राह नृपतिः महादेवो हसन्निव ।
उपाससे किमर्थं मां तन्मे वद ददामि ते ।।४२।।

तब **महादेव शिव ने** प्रसन्न हो राजा से हँसते हुये **कहा–** "हे राजन् ! तुम जिस उद्देश्य से मेरी उपासना कर रहे हो, वह मुझसे कहो, उसे मैं तुम्हें प्रदान करूँगा।।४२।।

।। पौष्य उवाच ।।

अपुत्रोऽहं पुत्रकामस्तच्छृणुष्व वृषध्वज ।
यथाहं पुत्रवान् वै स्यां वृषध्वज तथा कुरु ।।४३।।

पौष्य बोले–हे वृषध्वज ! मैं अपुत्र हूँ, मैं पुत्र की कामना करता हूँ उसे सुनिये और कुछ वैसा कीजिये जिससे मैं पुत्रवान् हो जाऊँ।।४३।।

।। और्व उवाच ।।

इति स न्यगदद्राजा भार्याभिः सह हर्षितः ।
प्रणम्य स्तुतिपूर्वेण भक्तिनम्रात्ममानसः ।।४४।।

और्व बोले– पत्नियों सहित उस राजा ने भक्तिवश विनम्रमन से उन्हें प्रणाम करके शिव की स्तुति करते हुये जब ऐसा कहा।।४४।।

ततः पुत्रार्थिनं भूपं प्रसन्नो वृषभध्वजः ।
ब्रह्मदत्तं फलं हस्ते कृत्वेदं तमुवाच ह ।।४५।।

तब वृषध्वज शिव प्रसन्न हो, ब्रह्मा द्वारा दिये गये फल को हाथ में लेकर पुत्र की इच्छा रखने वाले राजा से बोले–।।४५।।

।। ईश्वर उवाच ।।

इदं फलं ब्रह्मदत्तं विभज्य नृपते त्रिधा ।
भोजयेथाः स्वजायास्त्वं प्रहृष्टः सुस्थमानसः ।।४६।।

ईश्वर बोले– हे राजन् ! ब्रह्मा द्वारा दिये गये इस दिव्यफल को तीन भागों में बाँटकर तुम प्रसन्न और सुस्थिर मन से, अपनी रानियों को खिला दो।।४६।।

ततः प्रवृत्ते भवत एतासु ऋतुसङ्गमे ।
आधास्यन्ति तु गर्भास्तु भार्यास्ते युगपन्नृप ।।४७।।
कालप्राप्ते च युगपत् प्रसवो योषितां तव ।
भविष्यति नृपश्रेष्ठ तत्रेत्थं त्वं करिष्यसि ।।४८।।

हे नृप ! तब तुम्हारे द्वारा इनके साथ ऋतुकालिकसंगम के पश्चात् ये तुम्हारी पत्नियाँ एक साथ गर्भधारण करेंगी तथा समय आने पर ये एक ही साथ बच्चों को जन्म भी देंगी। हे नृपश्रेष्ठ ! तब तुम ऐसा करोगे॥४७-४८॥

एकस्या जठरे शीर्षभागस्ते सम्भविष्यति ।
अपरस्यास्तदा कुक्षेर्मध्यभागो भविष्यति ।
अधो नाभ्यास्तु यो भागः सोऽपरस्यां भविष्यति ॥४९॥

एक के उदर से बालक का शिरोभाग उत्पन्न होगा। तो दूसरी की कोख से मध्यभाग तथा नाभि से नीचे का निचलाभाग अन्य तीसरी के गर्भ से उत्पन्न होगा॥४९॥

तच्च खण्डत्रयं भूप यथास्थानं पृथक् पृथक् ।
योजयिष्यसि पश्चात् ते पुत्र एको भविष्यति ॥५०॥
तस्य शीर्षे चन्द्ररेखा सहजा सम्भविष्यति ।
तेनैव नाम्ना स ख्यातिं गमिष्यति च भूतले ॥५१॥

हे राजन् ! उन तीनों टुकड़ों को अलग-अलग यथास्थान रखकर जब तुम जोड़ोगे तो वह एक पुत्र हो जायेगा। उसके मस्तक पर चन्द्रमा की रेखा स्वाभाविकरूप से होगी इसीलिए वह बालक पृथ्वी पर चन्द्रशेखर नाम से प्रसिद्ध होगा॥५०-५१।

॥ और्व उवाच ॥

इत्युक्त्वा स महादेवस्तासां गर्भान् स्वयं तदा ।
संस्कर्तुं जाह्नवीतोयमात्मवासाय वै न्यधात् ॥५२॥

और्व बोले– ऐसा कहकर वे महादेव स्वयं उन गर्भों का संस्कार करने के लिए गङ्गा के जल को अपना आवास बनाये ॥५२॥

ततः फले स्वयं देवः प्रविवेश वृषध्वजः ।
तत्क्षणात् तत्फलं भूतं त्रिभागं स्वयमेव हि ॥५३॥

तब वृषध्वज शिव ने उस फल में स्वयं प्रवेश किया जिससे ब्रह्मा द्वारा दिया गया वह फल, स्वयं ही तत्काल तीन भागों में विभक्त हो गया॥५३॥

पौष्यस्तत्फलमादाय मुदितः सह भार्यया ।
प्रययौ मन्दिरं हृष्टो अनुज्ञाप्य वृषध्वजम् ॥५४॥

तब शिव की अनुमति से राजा पौष्य, उस फल को लेकर अपनी रानियों सहित, प्रसन्नमन से अपने राजभवन में गये॥५४॥

ततः समुचिते काले प्राप्ते ताभिस्तु भक्षितम् ।
तत्फलं नृपशार्दूलः गर्भाश्चाप्यायिताः शुभाः ॥५५॥

तब समुचित अवसर आने पर वह फल उन रानियों द्वारा खाया गया। हे राजाओं में शार्दूलवत्! उस फल से वे गर्भवती भी हुईं॥५५॥

सम्पूर्णे गर्भकाले तु गर्भेभ्यः समजायत।
खण्डत्रयं पृथग्राजंस्तथा भर्गेण भाषितम्॥५६॥

हे राजन्! गर्भकाल सम्पूर्ण हो जाने पर शिव ने जैसा कहा था वैसे ही उन गर्भों से शरीर के तीन खण्ड अलग-अलग उत्पन्न हुए॥५६॥

तच्च खण्डत्रयं पौष्यो यथास्थानं नियोज्य च।
एकपिण्डं चकाराशु तत्र पुत्रो व्यजायत॥५७॥

पौष्य ने उन तीनों खण्डों को यथास्थान जोड़कर एकपिण्ड बनाया जो शीघ्र ही पुत्ररूप में हो गया॥५७॥

तस्य शीर्षे तदा राजन् सहजेन्दुकला शुभा।
विरराज यथा स्वस्था शरत्काले कला विधोः॥५८॥

हे राजन्! उस समय उसके सिर पर स्वाभाविकरूप से (जन्मजात) सुन्दर चन्द्रमा की एक कला थी। वह वैसी ही शोभायमान हो रही थी जैसी शरदऋतु में चन्द्रमा की कला सुशोभित होती है॥५८॥

तं सर्वलक्षणोपेतं पीनोरस्कं सुनासिकम्।
सिंहग्रीवं विशालाक्षं दीर्घायतभुजं तदा॥५९॥
दृष्ट्वा पौष्योऽथ भार्याभिस्तिसृभिः सह सम्मुदम्।
लेभे दरिद्रः सत्कोषं प्राप्येव विपुलं ततः॥६०॥

उस समय उस सभी लक्षणों से युक्त पुत्र को जिसके कन्धे पुष्ट थे, नाक सुन्दर थी, गला सिंह के समान था, जिसका वक्षस्थल विशाल था, भुजायें लम्बी और चौड़ी थीं, देखकर राजा पौष्य ने अपनी तीनों पत्नियों सहित वैसा ही आनन्द प्राप्त किया जैसा कि एक दरिद्र को अच्छा और बहुत अधिक खजाना प्राप्त कर के होता है॥५९-६०॥

तस्य नामाकरोद्राजा ब्राह्मणैः स्वैः पुरोहितैः।
चन्द्रशेखर इत्येव कान्त्या चन्द्रमसः समः॥६१॥

चन्द्रमा के समान कान्ति के कारण उस बालक का नाम, पुरोहितों और ब्राह्मणों के सहित राजा ने चन्द्रशेखर निर्धारित किया॥६१॥

ववृधे स महाभागः प्रत्यहं चन्द्रवत् सुतः।
कलाभिरिव तेजस्वी शरदीव निशाकरः॥६२॥

शरदऋतु में जिस प्रकार चन्द्रमा अपनी कलाओं से बढ़ता है उसी प्रकार वह महाभाग्यवान्, तेजस्वी, राजपुत्र, दिनों दिन बढ़ने लगा॥६२॥

एवं तिसृणामम्बानां गर्भे जातो यतो हरः ।
अतस्त्र्यम्बक नामाभूत् प्रथितो लोकवेदयोः ॥६३॥

शिव, इस प्रकार से तीन माताओं के गर्भ से उत्पन्न होने के कारण, लोक और वेद में त्र्यम्बक नाम से प्रसिद्ध हुए॥६३॥

स राजपुत्रः कौमारीमवस्थां प्रापयत् तदा ।
सर्वशास्त्रार्थतत्त्वज्ञो विष्णोस्तुल्यो बभूव ह ॥६४॥

तब वह राजपुत्र धीरे-धीरे कुमारावस्था को प्राप्त किया और वह विष्णु के समान ही सभी शास्त्रों के अर्थ और तत्त्व को जानने वाला हो गया॥६४॥

बले वीर्ये प्रहरणे शास्त्रे शीले च तत्समः।
नान्योऽभूद् नृपशार्दूल नो वा भूमौभविष्यति ॥६५॥

हे नृपशार्दूल ! बल, वीर्य एवं शस्त्रसञ्चालन तथा शास्त्रज्ञान और आचार में इस पृथिवी पर उसके समान दूसरा कोई न हुआ है और न होगा॥६५॥

अभिषिच्याथ तं राज्ये कुमारं बलवत्तरम् ।
दशपञ्चैकवर्षीयं सर्वराजगुणैर्युतम् ॥६६॥
तिसृभिः सहभार्याभिर्वनं पौष्यो विवेश ह ।
वृद्धोचितक्रिया कर्तुं राजा परमधार्मिकः ॥६७॥

तब वे परम धार्मिकराजा पौष्य अपने उस सोलह-वर्षीय, बलवान्, सभी राजोचित गुणों से युक्त राजकुमार को राज्य पर अभिषिक्त कर, अपनी तीनों रानियों सहित वृद्धोचितक्रिया (तपस्या) करने के लिए वन में चले गये॥६६-६७॥

गते पितरि राजा स वनवासं महाबलः ।
सर्वां क्षितिं वशे चक्रे सामात्यश्चन्द्रशेखरः ॥६८॥

पिता के वन चले जाने पर उस महाबलशाली राजा चन्द्रशेखर ने अमात्य से युक्त हो सम्पूर्ण पृथ्वी को अपने वश में कर लिया ॥६८॥

सार्वभौमो नृपो भूत्वा राजभिः परिसेवितः ।
अमरैरिव देवेन्द्रो विजहारश्रियायुतः ॥६९॥

इस प्रकार सार्वभौम राजा हो, अन्य राजाओं से सब प्रकार से सेवित हो, शोभा एवं सम्पति से युक्त हो, उसने देवताओं द्वारा सेवा किये जाते हुए इन्द्र की भाँति विहार किया ॥६९॥

एवं पौष्यसुतो भूत्वा त्र्यम्बकः पुण्यनिर्वृतः ।
ब्रह्मावर्ताह्वये रम्ये करवीराह्वये पुरे ।।७०।।
दृषद्वतीनदीतीरे राजा भूत्वा मुमोद ह ।।७१।।

त्रयम्बक शिव इस प्रकार पौष्य के पुत्र के रूप में पुण्य (देव लोक) से लौटकर, सार्वभौम राजा हो, ब्रह्मावर्त के करवीर नामक सुन्दर नगर में जो दृषद्वती नदी के किनारे स्थित था, राज्य करते हुए आनन्दित हुए।।७०-७१।।

अथैकदा स पितरं वनवासगतं स्वयम् ।
मातृश्चापि नृपश्रेष्ठ द्रष्टुकामोऽभवन्नृपः ।।७२।।

हे नृपश्रेष्ठ ! पिता के वनवास जाने पर एक बार वह स्वयं माता-पिता को देखने के लिए इच्छुक हुये।।७२।।

स एकस्यन्दनेनैव एकाकी चन्द्रशेखरः ।
विपुलं धनुरादाय समार्गणगणं तदा ।।७३।।
तपोवनं पुण्यमयं विषयान्ते व्यवस्थितम् ।
आससाद दिदृक्षुः स तातं वृद्धं समातृकम् ।।७४।।

तब वह चन्द्रशेखर बाणों के सहित विशाल धनुष लेकर, एक रथपर सवार हो, माता के सहित वृद्ध पिता के दर्शन की इच्छा से अकेले राज्य की सीमा पर ही स्थित, पवित्र तपोवन में गये।।७३-७४।।

स गच्छन् पितुरभ्याशं नृपतिं चन्द्रशेखरः ।
ददर्श नमुचं नाम तपस्यन्तं महामुनिम् ।।७५।।

अपने पिता राजापौष्य के समीप जाते हुए उस राजा चन्द्रशेखर ने नमुच नाम के एक महान मुनि को, तपस्या करते देखा ।।७५।।

कृष्णाजिनोत्तरीयेण संवीतं सूर्यसन्निभम् ।
ऊर्ध्वगाभिर्जटाभिश्च संयुतं ध्यानिनं कृशम् ।।७६।।

वे महामुनि काले मृग के चर्म के बने उत्तरीय (दुपट्टे) से घिरे और सूर्य के समान प्रभावान् थे । उनकी जटाएँ ऊपर उठी हुईं थी । उनका शरीर दुर्बल था तथा वे ध्यानावस्थित अवस्था में थे।।७६।।

तपसा द्योतिततनुं निश्चलं कुशजासनम् ।
तं दृष्ट्वा दूरतो वीरो रथोपस्थादवातरत् ।।७७।।
उपतस्थे च विप्रेन्द्रं विनयानतकन्धरः ।
प्रणनाम मुनिं तं च वाक्यमेतदुदीरयन् ।।७८।।

उनका शरीर तपस्या से प्रकाशित हो रहा था। वे निश्चलभाव से कुशा के बने आसन पर बैठे हुए थे। दूर से ही उनको देखकर वीर चन्द्रशेखर, रथ के उपस्थ से उतर गये तथा नम्रता से कन्धा झुकाये हुये वे उन विप्रवर्य, मुनि के समीप पहुँचे और उन्हें प्रणाम कर ये वाक्य कहे।।७७-७८।।

।। चन्द्रशेखर उवाच ।।

पौष्यस्य तनयो ब्रह्मन् नाम्नाहं चन्द्रशेखरः ।
प्रणमामि महाभक्त्या भवन्तं मुनिसत्तमम् ।।७९।।

चन्द्रशेखर बोले– हे मुनिसत्तम ! हे ब्रह्मन् ! मैं चन्द्रशेखर नाम वाला, पौष्य का पुत्र, आपको महान् भक्तिपूर्वक प्रणाम करता हूँ।।७९।।

।। और्व उवाच ।।

इत्युक्त्वा प्राञ्जलिस्तस्थौ मुनेस्तस्याग्रतो नृपः ।
नमुचस्य मुखं वीक्ष्य भक्तिनम्रात्ममानसः ।।८०।।

और्वमुनि बोले– ऐसा कहकर राजा उनका मुख देखते हुए, उन मुनि नमुच के सामने हाथ जोड़कर, भक्ति से नम्रमुख किये हुए खड़े हो गये।।८०।।

पूर्वमेव यदा राजा प्राविशत् तपसे वनम् ।
तदैव सह भार्याभिस्तं मुनिं प्रत्यपूजयत् ।।८१।।

पहले ही जब राजा पौष्य ने तपोवन में स्त्रियों के सहित प्रवेश किया था उसी समय उन्होंने उन मुनि की भलीभाँति पूजा की थी।।८१।।

चिरमाराध्य नमुचं पौष्यः परमपण्डितः ।
प्रसादयामास मुनिं पुत्रार्थे सूनृताक्षरैः ।।८२।।
विषयान्ते तपः कुर्वन् मुनिश्रेष्ठेह तिष्ठसि ।
एकन्तु प्रार्थये त्वत्तो यदि मां दयसे मुने ।।८३।।

बहुत समय तक आराधना कर परम बुद्धिमान् पौष्य ने नमुच मुनि को अपनी सुन्दर और सत्य वाणी से, पुत्र के लिए प्रसन्न किया था और कहा था— हे मुनिश्रेष्ठ ! आप हमारे राज्य की सीमा पर तपस्या करते हुए सुख से रहते हैं किन्तु हे मुनि! यदि आप मेरे ऊपर दया करें तो आपसे एक मेरी प्रार्थना है।।८२-८३।।

शिशुर्मे तनयो राजा चन्द्रशेखरसंज्ञकः ।
सहजेन्दुकलायुक्तो बालभावाच्च चञ्चलः ।।८४।।

मेरा चन्द्रशेखर नाम का, शिशुस्वभाव का, बालभाव के कारण चञ्चल, जन्म से ही चन्द्रकला से सुशोभित, एक पुत्र है जो यहाँ का राजा है।।८४।।

स चेद् भवन्तमासाद्य कदाचिदपराध्यति ।
तदा क्षमिष्यसि मुने मयैतत् प्रार्थितं त्वयि ।।८५।।

वह यदि कभी आपके समीप आकर कोई अपराध करे तब आप उसे क्षमा कर दें, मेरी आपसे यही प्रार्थना है।।८५।।

पौष्यस्य वचनं श्रुत्वा मुनिश्चाङ्गीचकार ह ।
दृष्ट्वा तत्तनयं विप्रः पौष्यवाक्यमथास्मरत् ।।८६।।

पौष्य के वचन को सुनकर उस समय मुनि ने उसे स्वीकार कर लिया था, अब उसी के पुत्र को देखकर विप्र (नमुचमुनि) ने पौष्य के वाक्यों का स्मरण किया।।८६।।

स्मृत्वाग्रतः स्थितं नम्रं सुचिरं चन्द्रशेखरम् ।
इदं प्रोवाच स मुनिर्दयावान्नमुचाह्वयः ।।८७।।

उसका स्मरण कर नम्रतापूर्वक दीर्घकाल तक अपने आगे खड़े, विनम्र, चन्द्रशेखर से उन नमुचनाम के दयावान् मुनि ने यह वचन कहा—।।८७।।

।। नमुच उवाच ।।

विनयेनाद्य तुष्टोऽस्मि भवतः चन्द्रशेखर ।
वरं वरय दास्यामि वाञ्छितं मे महत्तरम् ।।८८।।

नमुच बोले– हे राजा चन्द्रशेखर ! मैं आपकी विनम्रता से आज प्रसन्न हूँ। मुझसे इच्छित वर मांगो, मैं तुम्हें वह श्रेष्ठ वर प्रदान करूँगा ।।८८।।

।। और्व उवाच ।।

तस्य श्रुत्वा ततो वाक्यं नृपतिश्चन्द्रशेखरः ।
पुनः प्रणम्य नमुचमिदमाहाति सूनृतम् ।।८९।।

और्व बोले– तब उन नमुच मुनि के वाक्यों को सुनकर उन्हें पुनः प्रणाम कर, राजा चन्द्रशेखर ने यह सत्य वचन कहा–।।८९।।

।। चन्द्रशेखर उवाच ।।

कायेन मनसा वाचा यदत्यर्थं द्विजोत्तम ।
तत्सर्वं विषये मेऽस्ति त्वादृशा यस्य दक्षिणाः ।।९०।।

चन्द्रशेखर बोले– हे द्विजोत्तम ! मन, वाणी और कर्म से जो कुछ अधिकतम है आप जैसे महात्मा की कृपा से वह सब मेरे राज्य में सुलभ है ।।९०।।

मनोगतं मे दुष्प्रापं वाञ्छनीयं न विद्यते ।
तदेव वरणीयं मे यद् ददाति स्वयं भवान् ।।९१।।

इसलिए मेरे मन में कुछ भी दुष्प्राप्य या वाञ्छित नहीं है अतः जो आप स्वतः दे दें, वही मेरे द्वारा ग्रहण करने योग्य है ।।९१।।

।। नमुच उवाच ।।

त्वं सप्तदशवर्षाणां प्राप्ते संवत्सरे परे ।
भविष्यसि नृपश्रेष्ठ वररामापतिः स्वयम् ।।९२।।

नमुच बोले– हे नृप श्रेष्ठ ! जब तुम जीवन का सत्रहवाँ वर्ष पार करोगे तभी तुम श्रेष्ठ स्त्री के पति होगे ।।९२।।

यथा गिरिसुता शम्भोर्यथा लक्ष्मीर्गदाभृतः ।
यथा सुरेशस्य शची तथा तेऽपि भविष्यति ।।९३।।

जैसे शिव की पार्वती, गदाधरविष्णु की लक्ष्मी, सुरेश, देवराज इन्द्र की शची पत्नी हैं, वैसी ही वह तुम्हारी भी पत्नी होगी ।।९३।।

।। और्व-उवाच ।।

इत्युक्त्वा स मुनिर्भूपं नमुचस्तपसां निधिः ।
विसर्जयामास तदा स चापि मुदितो ययौ ।।९४।।

और्व बोले– जब ऐसा कहकर तपस्या के खजाने, नमुच मुनि ने राजा को विदा किया तब वे भी प्रसन्न हो, अपने पिता के पास चले गये ।।९४।।

स गत्वा पितरं प्राप्य मातृश्च चन्द्रशेखरः ।
अपूजयद् यथार्हन्तु तैरप्याश्वासितः सुतः ।।९५।।

उन राजा चन्द्रशेखर ने वहाँ जाकर, माता-पिता के पास पहुँच कर यथायोग्य रूप से उनकी पूजा की तब उन माता-पिता के द्वारा भी पुत्र को आश्वस्त किया गया।।९५।।

अथागतो नृपः स्वीयां करवीरपुरीं प्रति ।
मुदितः सचिवैः सार्द्धं रेमे देवेन्द्रसन्निभः ।।९६।।

।। इति श्रीकालिकापुराणे चन्द्रशेखरचरितवर्णने सप्तचत्वारिंशोऽध्यायः ।।४७।।

तत्पश्चात् वे अपनी राजधानी करवीरपुरी में लौट आये तथा देवराज इन्द्र की भाँति अपने सचिवों के साथ वहाँ प्रसन्नता पूर्वक रमण (विहार) करने लगे।।९६।।

।। श्रीकालिकापुराण में चन्द्रशेखरचरितवर्णनसम्बन्धी सैंतालीसवाँ अध्याय सम्पूर्ण हुआ।।४७।।



अष्टचत्वारिंशोऽध्यायः

चन्द्रशेखरविवाहवर्णनम्

।। और्व उवाच ।।

अवतीर्णे महादेवे पौष्यजायासुखेच्छया ।
मानुषेण प्रमाणेन गते संवत्सरत्रये ।।१।।
गिरिजापि ककुत्स्थस्य राज्ञो भार्यास्वजायत ।
मेनकायां यथापूर्वं स्वेच्छया परमेश्वरी ।।२।।

***और्व बोले*–** राजा पौष्य की पत्नी के सुख की इच्छा से, महादेव शिव द्वारा अवतार लेने के पश्चात् मनुष्यमान से तीन वर्ष व्यतीत हो जाने पर, पूर्वकाल में जैसे परमेश्वरी ने मेनका से जन्म लिया था, गिरिजा (पार्वती) ने भी राजा ककुत्स्थ की पत्नी से वैसे ही जन्म लिया।।१-२।।

अथार्यावर्तविषये ब्रह्मण्यः शूरसत्तमः ।
इक्ष्वाकुवंशजो राजा ककुत्स्थो नाम धार्मिकः ।।३।।

आर्यावर्त देश में इक्ष्वाकुवंश में उत्पन्न, एक ककुत्स्थ नाम के राजा हुये । वे ब्राह्मणभक्त, वीरों में श्रेष्ठ और धार्मिक थे।।३।।

भोगवत्याह्वयायां तु पुर्यां रिपुनिषूदनः ।
सर्वलक्षणसम्पन्नो भूपालगुणसंयुतः ।।४।।

वे भोगवती नाम की पुरी में राज्य करते थे । वे शत्रुओं के दमन करने वाले, सभी लक्षणों से सम्पन्न तथा राजोचित सभी गुणों से युक्त राजा थे।।४।।

तस्य भार्या महाभागा भर्गदेवस्य पुत्रिका ।
सा मनोन्मथिनी नाम्ना पूजिता पतिवल्लभा ।।५।।

उनकी एक अत्यन्त सौभाग्यशालिनी पत्नी थी जो भर्गदेव की पुत्री थीं। वह मनोन्मथिनी नाम से पूजीजाती (सम्मानित की जाती) थी और अपने पति को अत्यंत प्रिय थी।।५।।

तस्याः पुत्रशतं यज्ञे देवगर्भाभमच्युतम् ।
बलवीर्यसमायुक्तं ककुत्स्थनृपसत्तमात् ।।६।।
पुत्री न विद्यते तस्यास्तदर्थं सा गृहान्तरे ।
निभृतं स्थण्डिलं कृत्वा चण्डिकां समपूजयत् ।।७।।

उस रानी के गर्भ से, राजा ककुत्स्थ के देवताओं के गर्भ के समान आभावाले श्रेष्ठ, सौ पुत्र उत्पन्न हुये जो बल और वीर्य से भली-भाँति युक्त थे किन्तु उसे कोई पुत्री नहीं थी, इसलिए उसने घर के भीतर एकान्तस्थान में वेदी बनाकर उस पर चण्डिकादेवी की भली-भाँति पूजा की॥६-७॥

पूज्यमाना महादेवी चण्डिका राजभार्यया ।
प्रसन्ना सा त्रिभिर्वर्षैस्तां स्वप्ने चाब्रवीदिदम् ॥८॥

उस राजपत्नी द्वारा तीन वर्षों तक पूजी जाती हुई महादेवी चण्डिका, उस पर प्रसन्न हुई तथा उन्होंने स्वप्न में उससे ये वचन कहे॥८॥

॥ चण्डिकोवाच ॥

योषिल्लक्षणसम्पन्ना सार्वभौमस्यभामिनी ।
नक्षत्रमालया युक्ता पुत्री तव भविष्यति ॥९॥

चण्डिका बोलीं–हे सार्वभौम सम्राट् ककुत्स्थ की पत्नी! तुम्हें स्त्रियोचित सभी लक्षणों से सम्पन्न, नक्षत्रसमूह से सुशोभित, एक उत्तम पुत्री उत्पन्न होगी॥९॥

॥ और्व उवाच ॥

सापि स्वप्ने वरं प्राप्य मुदिताभून्नृपाङ्गना ।
पार्वत्यपि स्वयं तस्या गर्भे काले विवेश ह ॥१०॥

और्व बोले– वह राजरानी भी स्वप्न में देवी द्वारा उपर्युक्त वर प्राप्त कर प्रसन्न हुई, तथा समय आने पर स्वयं पार्वती ने ही उसके गर्भ में प्रवेश किया॥१०॥

सा मनोन्मथिनी देवी प्रवृत्ते ऋतुसङ्गमे ।
गर्भं दधौ महासत्त्वं चन्द्रिकेवामृतोत्करम् ॥११॥

जिस प्रकार चन्द्रिका, अमृत किरणों वाले चन्द्रमा के गर्भ को धारण करती है, उसी प्रकार मनोन्मथिनी देवी ने ऋतुकालान्तर सङ्गम में प्रवृत्त हो, उस महाबलशाली के गर्भ को धारण किया॥११॥

सम्पूर्णे तु ततः काले प्राप्ते नक्षत्रमालिनीम् ।
सा मनोन्मथिनी देवी सुषुवे तनयां शुभाम् ॥१२॥

तब गर्भ-काल पूर्ण होने के पश्चात् उचित समय पर उस मनोन्मथिनी देवी ने नक्षत्र-मालाओं से युक्त, शुभ लक्षणों वाली, एक पुत्री को जन्म दिया ॥१२॥

तां दृष्ट्वा हारसंयुक्तां शरज्ज्योत्स्नोपमां शुभाम् ।
ककुत्स्थो भार्यया सार्द्धम् अत्यर्थमुदितोऽभवत् ॥१३॥

नक्षत्रों के हार से युक्त शरदऋतु की चाँदनी के समान सुन्दर, शुभलक्षण-सम्पन्न उस कन्या को देखकर, अपनी पत्नी के सहित राजा ककुत्स्थ भी बहुत अधिक प्रसन्न हुये।।१३।।

सहजेनाथ हारेण भूषिता तु ककुत्स्थजा ।
ववृधे मन्दिरे तस्य वर्षास्विव सुरापगा ।।१४।।

वह राजा ककुत्स्थ की पुत्री जो स्वाभाविकरूप से (जन्म से ही) नक्षत्रहार से सुशोभित थी, वर्षाऋतु में जिस प्रकार गङ्गा बढ़ती हैं, उस राजा के महल में उसी प्रकार बढ़ने लगी।।१४।।

तेनैव हारचिह्नेन तस्यास्तारावतीति वै ।
नामाकरोत् पिता काले यथोक्ते नृपसत्तम ।।१५।।

हे नृपसत्तम ! उस हार के चिन्ह के कारण ही उचित समय पर उसके पिता ने राजकुमारी का 'तारावती' नामकरण किया ।।१५।।

कालक्रमेण सा बाल्यं व्यतीता वरवर्णिनी ।
मञ्जुलं यौवनोद्भेदं प्राप श्रीरिव माधवे ।।१६।।

कालक्रम से उस सुन्दरी ने बाल्यावस्था व्यतीत कर लिया और वसन्तऋतु की शोभा की भाँति उसमें युवावस्था के सुन्दर अंकुर फूटने लगे ।।१६।।

सा श्रिया श्रियमन्वेति शौचेनाथ सती शुभा ।
सुशीलां शीलचरितैः स्वरूपेण च पार्वतीम् ।।१७।।

वह शोभा में लक्ष्मी की, पवित्रता में कल्याणकारिणी सती की, शील-सदाचार में सुशीला की तथा स्वरूप में पार्वती की समता करती थी।।१७।।

तस्यास्तु यौवनोद्भेदं दृष्ट्वा राजा सुतैः सह ।
ककुत्स्थः कारयामास समयेऽथ स्वयंवरम् ।।१८।।

अपने पुत्रों सहित राजा ककुत्स्थ ने उसके युवावस्था के आरम्भ को देखकर, समय आने पर स्वयंवर का आयोजन किया।।१८।।

माधवे मासि सम्प्राप्ते चन्द्रवृद्धौ शुभे दिने ।
स्वयंवरसभां चक्रे तारावत्याः पिता सुतैः ।।१९।।

वैशाख महीने के चन्द्रवृद्धि (शुक्ल पक्ष) में शुभ दिन आने पर राजकुमारी तारावती के पिता और उनके पुत्रों द्वारा स्वयंवरसभा का आयोजन किया गया।।१९।।

वार्तिकांस्तु बहून् राजा वडवाभिः क्रमेलकैः ।
तूर्णं प्रस्थापयामास नानादेशनृपान् प्रति ।।२०।।

इस हेतु राजा ककुत्स्थ ने बहुत से दूतों को घोड़ियों और ऊटों से शीघ्रतापूर्वक अनेक देशों के राजाओं के पास भेजा॥२०॥

ते राजानस्तदा श्रुत्वा वार्तां वै वार्तिकाननात् ।
तूर्णमेव समाजग्मुस्तारावत्याः स्वयंवरम् ॥२१॥

दूतों के मुख से उस सन्देश को सुनकर, वे राजागण तब शीघ्र ही राजकुमारी तारावती के स्वयंवर में आ पहुँचे॥२१॥

तं श्रुत्वा पौष्यतनयश्चतुरङ्गबलैर्युतः ।
स्वयंवरं जगामाशु दिव्यालङ्कारसंयुतः ॥२२॥

उस समाचार को ही सुनकर पौष्य के पुत्र चन्द्रशेखर भी दिव्य आभूषणों से युक्त हो, चतुरङ्गिणी सेना सहित, उस स्वयंवर में शीघ्र ही पहुँच गये॥२२॥

तत्र गत्वा नृपश्रेष्ठाः ककुत्स्थेन विनिर्मिते ।
स्वयंवरसभामध्ये यथायोग्यमुपस्थिताः ॥२३॥

वहाँ ककुत्स्थ द्वारा विशेषरूप से बनवाये गये स्वयंवरसभा में जाकर वे श्रेष्ठ राजागण, यथायोग्यरूप से उपस्थित हुये॥२३॥

आसीनेष्वथ भूपेषु ककुत्स्थस्तनयां स्वकाम् ।
शुभे मुहूर्ते सम्प्राप्ते सभां नेतुं मनोऽकरोत् ॥२४॥

उन राजाओं के यथास्थान बैठ जाने तथा शुभमुहूर्त प्राप्त होने पर राजा ककुत्स्थ ने अपनी पुत्री को सभा में लाने का मन बनाया ॥२४॥

एतस्मिन्नन्तरे राज्ञः कुमारी वरवर्णिनी ।
वृद्धां धात्रीं निजां सम्यक् सम्पूर्णज्ञानशालिनीम् ॥२५॥
स्वयंवरसभां द्रष्टुं प्राहिणोत् सदसं प्रति ।
उवाच च तदा धात्रीं राजपुत्री सुमङ्गलाम् ॥२६॥

इस बीच उत्तमरङ्गरूपवाली राजकुमारी ने भलीप्रकार के और सम्पूर्णज्ञान से युक्त सुमङ्गला नामक अपनी बूढ़ी धाय को, स्वयंवर सभा के सदस्यों को देखने के लिए भेजा तथा उस समय राजपुत्री ने उससे कहा—॥२५-२६॥

॥ राजपुत्री उवाच ॥

स्यंवरसभां गत्वा चारुरूपं सुलक्षणम् ।
नृपं निरूप्य भो धात्रि समक्षं मे निवेदय ॥२७॥

राजपुत्री बोली— हे धात्री ! आप स्वयंवरसभा में जाकर, सुन्दररूप तथा सुन्दरलक्षणों से युक्त राजा का निर्धारण, कर मेरे सम्मुख बताओ ॥२७॥

त्वं मातर्मम कल्याणं सौभाग्यमपि वाञ्छसि ।
यथा सौभाग्यदः स्वामी मम स्यात् त्वं तथाकुरु ॥२८॥

आप मेरी माता के समान हो। आप मेरा कल्याण और सौभाग्य भी चाहती हो, जिससे मुझे सौभाग्यदायक स्वामी प्राप्त हो, आप ऐसा ही करो।।२८।।

।। और्व उवाच ।।

एवं तां प्रेषयित्वाथ धात्रीं तां नृपपुत्रिका ।
सा मनोन्मथिनी यत्र प्राराधयत चण्डिकाम् ।
तत्र प्रायान्-महाभागा शुभा तारावती तदा ।।२९।।

और्व बोले– तब इस प्रकार से उस धात्री को विदाकर, महाभाग्यवती, सुन्दरी राजकुमारी, तारावती वहाँ गई जहाँ वे महारानी मनोन्मथिनी, चण्डिका देवी की आराधना कर रही थीं ।।२९।।

तत्र गत्वा महादेवीं प्रणम्य कालिकाह्वयाम् ।।३०।।
मानुषेणाथ भावेन तां ज्ञात्वात्मानमात्मना ।
प्रणनाम महाशक्त्या वाक्यं चैतदुवाच ह ।।३१।।

उसने वहाँ जाकर, कालिका नामक महादेवी को प्रणाम किया। उनको अपना ही स्वरूप जान, स्वयं अपने आप को मनुष्यभाव से प्रणाम किया और उन महाशक्ति से इन वाक्यों को कहा– ।।३०-३१।।

।। तारावत्युवाच ।।

प्रणमामि महामायां योगनिद्रां जगन्मयीम् ।
सा मे प्रसीदतां गौरी चण्डिका भक्तवत्सला ।।३२।।

तारावती बोलीं– मैं महामाया, जगन्मयी, योगानिद्रा को प्रणाम करती हूँ। वे भक्तों से प्रेमकरने वाली, गौरी, चण्डिका देवी, मुझ पर प्रसन्न हों।।३२।।

यदि सत्यं जनन्या मे मदर्थे त्वं प्रपूजिता ।
तेन सत्येन सुभगः पतिर्मम नृपोत्तमः ।
स्वयंवरेऽद्य भवतु प्रसीद हरवल्लभे ।।३३।।

हे हरप्रिये ! यदि यह सत्य है कि मेरी माता ने मेरे ही लिए आपकी पूजा की है तो उसके फल-स्वरूप, आज के स्वयंवर में उत्तमराजा ही मेरा पति हो। आप मुझ पर प्रसन्न हों।।३३।।

।। और्व उवाच ।।

इति तस्या वचः श्रुत्वा चण्डिका हरमोहिनी ।।३४।।
मोहयन्ती नृपसुतां यथात्मानं न वेत्ति च ।
तथा प्राहादृश्यमूर्तिरिदं सा सूनृतं वचः ।।३५।।

और्वमुनि बोले– उसके इस प्रकार के वचन को सुनकर शिव को मोहित करने वाली चण्डिका देवी ने, राजकुमारी को मोहित करते हुए, जिससे वह अपने आप को न पहचान सके, अदृश्यरूप से ये सत्य वचन कहे।।३४-३५।।

।। देव्युवाच ।।

पौष्यस्य तनयो योऽसौ नाम्नाभूच्चन्द्रशेखरः ।
स मनोहररूपस्ते प्रियः स्वामीभविष्यति ।।३६।।

देवी बोलीं– राजा पौष्य के जो चन्द्रशेखर नामक पुत्र उत्पन्न हुए हैं। सुन्दर रूप वाले वही, तुम्हारे प्रिय स्वामी होंगे ।।३६।।

तमिन्दुकलया शीर्षे चिह्नितंनृपसत्तमम् ।
वरयस्व वरारोहे पार्वतीव वृषध्वजम् ।।३७।।

हे श्रेष्ठजाँघोंवाली! मस्तक पर चन्द्रकला से सुशोभित, उस उत्तम राजा का तुम उसी प्रकार वरण करो जैसा कि पार्वती ने वृषध्वज शिव का वरण किया था।।३७।।

।। और्व उवाच ।।

इत्युक्त्वा विररामाशु पार्वती नृपपुत्रिकाम् ।
सापि नत्वा तथादृश्यां हर्षोत्फुल्लविलोचना ।
जगाम मङ्गलगृहं जनन्या यत्र वासिता ।।३८।।

और्व बोले– राजपुत्री से ऐसा कह कर पार्वती स्वयं चुप हो गईं। वह राजकुमारी भी अदृश्यरूप में ही उन्हें नमस्कार कर, हर्ष से खिले हुए नेत्रों से युक्त हो, जहाँ उसकी माता निवास कर रही थीं, उस मङ्गलगृह में चली गई ।।३८।।

अथाजगाम सा धात्री निरूप्य सदृशं पतिम् ।
तारावत्यास्तदाचष्ट रहस्यं नृपसत्तम ।।३९।।

हे नृपसत्तम ! तत्पश्चात् वह धात्री भी, उसके लिए उचित पति का निरूपण कर, वहाँ ही पहुँच गई तथा तारावती ने उससे रहस्य को पूछा ।।३९।।

दृष्ट्वा तामग्रतो धात्रीं प्रहृष्टां नृपतेः सुता ।
पप्रच्छ निभृतं कीदृक् को वा दृष्टस्त्वया नृपः ।।४०।।

उस प्रसन्नधात्री को सामने देखकर उस राजकुमारी तारावती ने एकान्त में पूछा कि उसने किस प्रकार के या किस राजा को देखा था ।।४०।।

सा प्राह धात्री वचनात् तव भूपा विलोकिताः ।।४१।।
चारुरूपाः कुलीनाश्च शास्त्रे शस्त्रे च पारगाः ।
तेषामहं न शक्नोमि प्रवक्तुं सुबहून् गुणान् ।।४२।।

उस धात्री ने कहा–हे राजकुमारी ! आपकी आज्ञा से मैंने राजाओं को देखा है। वे सभी सुन्दररूपवाले, कुलीन, शस्त्र और शास्त्र में पारङ्गत हैं। उनके बहुत से गुणों का मैं वर्णन नहीं कर सकती हूँ ।।४१-४२।।

येषु मे रोचते तांस्तु कथयामि शुभप्रभे ।
चारुरूपा मया तेषु चत्वारः पुरुषाः शुभे ।।४३।।

हे शुभप्रभावाली, हे शुभस्वरूपा ! उनमें भी जो मुझे विशेष अच्छे लगे, उनमें चार पुरुषों के विषय में तुमसे कहती हूँ।।४३।।

दृष्टास्तत्रापि नासत्यौ देवौ द्वावपरौ नरौ ।
देवयोः कथने कृत्यं किञ्चिन्नापि न विद्यते ।।४४।।

उन चारों में मैंने दो देवों, अश्विनीकुमारों और दो अन्य मनुष्यों को देखा। देवताओं के विषय में तो आपसे कहने योग्य कुछ भी नहीं है ।।४४।।

यौ पुनः पृथिवीपालौ तयोरेकः सदारकः ।
नाम्ना सर्वाङ्गकल्याणोऽथापरश्चन्द्रशेखरः ।।४५।।

अब पुनः जो दो राजा देखे गये, उनमें एक पत्नी के सहित अर्थात् विवाहित है और उसका नाम सर्वाङ्गकल्याण तथा दूसरे का नाम चन्द्रशेखर है।।४५।।

नासत्ययोरेतयोस्तु विशेषो नास्ति कश्चन ।
रूपे शरीरसौभाग्ये सर्वे चातिमनोहराः ।।४६।।
नृपौ पुनर्महासत्त्वौ सिंहस्कन्धौ महाभुजौ ।
आरक्तपाणिनयनमुखपादकरोद्भवौ ।।४७।।
पीनोरस्कौ विशालाक्षौ लग्नभ्रूयुगलावुभौ ।
सर्वलक्षणसम्पूर्णौ देवालङ्कारमण्डितौ ।।४८।।

अश्विनी कुमारों की कोई ऐसी विशेषता नहीं है जो उन दोनों में न हो । रूप, शरीर की सुन्दरता में सभी अति सुन्दर हैं किन्तु वे दोनों विशेष रूप से महान् बलशाली, सिंह के समान कन्धेवाले, विशाल भुजाओं वाले हैं। उनके मुख, नेत्र, हाथ, हाथ की अंगुलियाँ और पैर लाल हैं । वक्षस्थल पुष्ट, उनके नेत्र विशाल हैं तथा उनकी दोनों भौंहें परस्पर मिली हुई हैं । वे देवताओं के अलङ्कार से सुशोभित हैं एवं सभी लक्षणों से परिपूर्ण हैं ।।४६-४८।।

तयोरपि वयःस्थत्वात् प्रशस्तश्चन्द्रशेखरः ।
सुशीलः सूनृतवचाः शास्त्रे शस्त्रे च सम्मतः ।।४९।।

उनमें भी वय के कारण चन्द्रशेखर प्रशंसनीय हैं । वे सुशील, सत्यवादी और शस्त्र तथा शास्त्र में समान बुद्धि रखने वाले हैं ।।४९।।

ईषदुद्भिन्नरोम्णा तु नीलेन चारु निर्मलम् ।
राजते वदनं तस्य लक्ष्मणेव निशाकरः ।।५०।।

निर्मल तथा सुन्दर कालेवर्ण की थोड़ी उगी हुई मूछों के कारण उनका मुखमण्डल, लक्ष्म (दाग) से युक्त चन्द्रमा की भाँति शोभायमान हो रहा है ।।५०।।

दीप्तिमत्यापि कलया राजते स निशापतेः ।
सहजेन शिरस्थेन साक्षात् स चन्द्रशेखरः ।।५१।।

वे अपने मस्तक पर चमकती हुई चन्द्रकला के कारण, जो स्वाभाविकरूप से उनके सिर पर स्थित है, दूसरे शिव के समान शोभायमान हो रहे हैं ।।५१।।

स एव ते पतिर्योग्यश्चिह्नेनानेन सुन्दरि ।
तं त्वं वरय राजानं तव योग्यं शुभोदयम् ।।५२।।

हे सुन्दरी ! इन लक्षणों के कारण वे ही तुम्हारे योग्य पति हैं। शुभ लक्षणों से युक्त, उन्हीं योग्य राजा का तुम वरण करो।।५२।।

धात्र्याश्चैवं वचः श्रुत्वा राजपुत्री जगाद ताम् ।
मत्पार्श्वचारिणी भूत्वा निदेशय नृपोत्तमम् ।
धात्रि स्वयंवरसभाप्रवेशसमये मम ।।५३।।

धात्री के उपर्युक्त वचनों को सुनकर, राजपुत्री **तारावती ने उससे कहा–** हे धात्री ! तुम मेरे सभा में प्रवेश के समय, मेरे पार्श्वभाग में चलती हुई, उत्तम राजा चन्द्रशेखर को बताओ ।।५३।।

तयोरायात्तदा राजा त्वन्योन्यं भाषमाणयोः ।।५४।।
सुतां स्वयंवरसभां नेतुं काले शुभोदये ।
स्वयं तदा ककुत्स्थस्तु सुताया मङ्गलालये ।।५५।।

वे दोनों जिस समय परस्पर उपर्युक्त वार्तालाप कर रही थीं। उसी समय राजा ककुत्स्थ शुभबेला में अपनी पुत्री को स्वयंवरसभा में ले जाने के लिए मङ्गलभवन में, स्वयं आ गये।।५४-५५।।

आसाद्य पुत्रीं दयितां योषिद्भिः कृतमङ्गलाम ।
माल्यं सुगन्धिपुष्पाणां करेणादाय तत्करे ।
दत्त्वा चेदमुवाचाशु प्रापयन् मङ्गलालयात् ।।५६।।

स्त्रियों द्वारा मङ्गलाचार की जाती हुई अपनी पुत्री तारावती एवं पत्नी के समीप पहुँचकर, पत्नी के हाथ से सुगन्धित पुष्पों से बनी वरमाला लेकर, उन्होंने पुत्री के हाथ में दे दिया और उस मङ्गलभवन से शीघ्र प्रस्थान करते हुए कहा— ।।५६।।

।। राजोवाच ।।

प्रविश्य समितौ मातुर्माल्येनान्येन सत्तमम् ।
यं त्वमिच्छसि राजानं द्विजं वा त्वं वरिष्यसि ।।५७।।

राजा बोले– जिस उत्तम राजकुमार या द्विजवर्य को तुम चाहती हो, सभा में प्रवेश कर, माता द्वारा प्रदत्त इस माला से तुम उसका वरण करोगी।।५७।।

।। और्व उवाच ।।

एवमुक्त्वा शिविकया स्वाप्तैर्वृद्धैश्च पुरुषैः ।
प्रवेशयामास सुतां ककुत्स्थः समिति मुदा ।।५८।।

और्व बोले–ऐसा कहकर, राजा ककुत्स्थ ने अपनी पुत्री को शिविका में सवार कराकर तथा अपने प्रतिष्ठित, वृद्ध पुरुषों के सहित स्वयंवर सभा में प्रवेश कराया॥५८॥

तामागतां सभां दृष्ट्वा शक्राद्यास्त्रिदशास्तदा ।
अन्ये दिक्पतयश्चापि सभां तत्क्षणमागताः ॥५९॥

उस समय उस राजकुमारी को सभा में आयी हुई देखकर इन्द्रादि देवतागण तथा अन्य दिग्पाल तत्काल उस सभा में उपस्थित हो गये ॥५९॥

सावतीर्य तदावाप्य यानात् तारावती मुदा ।
धात्र्या चानुगया युक्ता व्यचरत् सदसोऽन्तरे ॥६०॥

तब वह राजकुमारी तारावती, यान (शिविका) से उतर कर, धात्री द्वारा अनुगमन की जाती हुई, सभा के मध्य प्रसन्नतापूर्वक विचरण करने लगी ॥६०॥

सभामध्ये चिरं सा तु विहृत्य वरवर्णिनी ।
भावित्वान्नियतेर्योगाच्चण्डिकायाः प्रसादतः ॥६१॥
तयोः समत्वादेकत्वात्तया धात्र्या विबोधिता ।
गतिस्वेदजघर्माम्भःकणिकानिचितानना ॥६२॥
पतिं पूर्वतरं पुत्री राज्ञस्तारावती सती ।
स्वयं स पार्वती देवी वव्रे च चन्द्रशेखरम् ॥६३॥

सभा में बहुत समय तक विहार कर, पूर्वकाल में जैसे पार्वती देवी ने चन्द्रशेखर शिव का वरण किया था, उस वरान्वेषिणी, राजपुत्री, सती, तारावती ने उसी प्रकार भावीवश, नियति के योग और चण्डिका देवी की कृपा से, उस धात्री द्वारा बताये जाने पर, उन दोनों की समानता में से भी एक, पहले के पति, चन्द्रशेखर का वरण कर लिया। उस समय चलने से उनके मुख पर आयी पसीने की बूँदे, उनके मुखमण्डल की शोभा बढ़ा रही थीं ॥६१-६३॥

वृतं दृष्ट्वा तदा तन्तु ब्राह्मणाः सामगीतिभिः ।
तयोर्वैवाहिकञ्चक्रुर्मङ्गलं यतमानसाः ॥६४॥

तब उनको वरा गया देखकर ब्राह्मणों ने नियतमन से, सामगान द्वारा उन दोनों के वैवाहिकमङ्गल का कार्य सम्पन्न किया॥६४॥

वैतालिका गायकाश्च तथा तौर्यत्रिका नृप ।
प्रशंसन्ति स्म गायन्ति वादयन्ति च कौतुकात् ॥६५॥

हे राजा ! उस समय चारण, गायक तथा तौर्यत्रिक (नाचगान और वादन के समेकित रुप सम्पन्न करने वाले), उत्सुकता से क्रमशः प्रशंसा कर रहे थे, गा रहे थे तथा बाजे बजा रहे थे ॥६५॥

सर्वे च त्रिदशा मोदमवापुश्चन्द्रशेखरे ।
तारावत्या वृते चाथ ककुत्स्थोऽप्यतिहर्षितः ।।६६।।

उस समय तारावती के द्वारा चन्द्रशेखर का वरण किये जाने पर सभी देवताओं ने प्रसन्नता का अनुभव किया तथा राजा ककुत्स्थ भी अत्यधिक प्रसन्न हुए ।।६६।।

वृत्तान्तं वीक्ष्य ये भूपाः सुबाहुप्रमुखाः परे ।
रुष्टास्तान् वारयामास समितौ चन्द्रशेखरः ।।६७।।

उस वृतान्त को देखकर सुबाहु आदि जो अन्य रुष्ट राजागण, उस सभा में उपस्थित थे, उन सबको चन्द्रशेखर ने रोका ।।६७।।

ततो यातेषु देवेषु त्रिदिवं प्रति स्वेच्छया ।।६८।।
भूपेषु च प्रयातेषु ककुत्स्थेनार्चितेषु च ।
वैवाहिकेन विधिना स राजा चन्द्रशेखरः ।।६९।।
तारावतीं तदा भार्यां ककुत्स्थानुमते पुनः ।
संस्कृत्य ज्ञापयामास देवेभ्यो वैदिकैर्मखैः ।।७०।।

तब ककुत्स्थ द्वारा पूजित हो स्वेच्छापूर्वक देवों के स्वर्ग तथा राजाओं के अपने-अपने स्थान को चले जाने पर, उस राजा चन्द्रशेखर ने वैवाहिकविधि के अनुसार, राजा ककुत्स्थ की अनुमति से वैदिक-याज्ञिक ब्राह्मणों तथा देवताओं द्वारा संस्कारित कर, तारावती को अपनी पत्नी घोषित किया।।६८-७०।।

पाणिग्रहणसंस्कारान् कृत्वा तां सहचारिणीम् ।
करवीरपुरायाशु प्रययौ चन्द्रशेखरः ।।७१।।

तब चन्द्रशेखर ने उस तारावती का पाणिग्रहणसंस्कार करके उसे अपनी सहचारिणी बनाकर, शीघ्र ही करवीरपुर के लिए प्रस्थान कर दिया ।।७१।।

द्वाविंशत् तु सहस्राणि दासीनां प्रददौ पुनः ।
ककुत्स्थाख्यो विश्पतये तस्मिन्नुद्वाहकर्मणि ।।७२।।

उस विवाहकर्म में, ककुत्स्थ नामक उस राजा ने, राजा चन्द्रशेखर को बाईस हजार दासियाँ प्रदान कीं ।।७२।।

गवां षष्टिसहस्राणि सौरभीणां तथैव च ।
दुहित्रे प्रददौ दायं दासान् दासीः प्रमाणतः ।।७३।।

साठ हजार सुरभिवंश की उत्तम गायें तथा दासियों की संख्या से (बाईस हजार) दास भी उस ककुत्स्थ नाम के राजा ने अपनी कन्या को दहेजरूप में दिया ।।७३।।

अपरा या निजा पुत्री ककुत्स्थाख्यस्य भूपतेः ।
नाम्ना चित्राङ्गदा ख्याता रूपैस्तारावती समा ।।७४।।

दासीनामधिपा भूत्वा स्वयं चानुययौ तदा ।
तारावतीं भूपसुतां ज्येष्ठां स्वां भगिनीं शुभाम् ।।७५।।

उस ककुत्स्थ नामक राजा की अपनी चित्राङ्गदा नामक जो दूसरी पुत्री थी, जो रूप तथा युवावस्था में तारावती के ही समान थी, उन दासियों की स्वामिनी बनकर, अपनी बड़ी बहन राजकुमारी तारावती की अनुगामिनी हो गई।।७४-७५।।

तान् दासान् सुसमादाय ककुत्स्थतनयो महान् ।
ज्येष्ठो विश्वावसुर्नाम गच्छन्तं चन्द्रशेखरम् ।।७६।।
तारावत्या च सहितं स्यन्दनेनाशुगामिना ।
धीमाननुययौ पश्चात् करवीरपुरं प्रति ।।७७।।

विश्वावसु नाम के ककुत्स्थ के ज्येष्ठ, बुद्धिमान् एवं महान् पुत्र ने, उन दहेज में दिये गये दासों को भलीभाँति लेकर तीव्रगामीरथ से बाद में तारावती के साथ करवीरपुर को जाते हुए राजा चन्द्रशेखर का अनुगमन किया।।७६-७७।।

तारावत्या समं राजा पौष्यजश्चन्द्रशेखरः ।
करवीरपुरे रम्ये रेमे नृपतिशेखरः ।।७८।।

राजाओं में श्रेष्ठ पौष्य-पुत्र, राजाचन्द्रशेखर ने तारावती के साथ, सुन्दर करवीरपुर में रमण किया।।७८।।

इति स्वयं महादेवो मानुषीं योनिमाश्रितः ।
पार्वती च स्वयं जाता नारयोनिमनिन्दिता ।।७९।।

इस प्रकार से स्वयं महादेव (शिव) ने मनुष्ययोनि का आश्रय लिया तथा अनिन्दिता पार्वती ने मनुष्ययोनि में जन्म लिया।।७९।।

यथा भृङ्गी महाकाल एतयोरभवत् सुतः ।
तथा त्वं शृणु राजेन्द्र कथयामि समुद्भवम् ।।८०।।

।। इति श्रीकालिकापुराणे चन्द्रशेखरविवाहवर्णनोनाम अष्टचत्वारिंशोध्यायः ।।४८।।

हे राजेन्द्र ! अब उस मनुष्ययोनि में जिस प्रकार भृङ्गी एवं महाकाल, उनके पुत्ररूप में उत्पन्न हुए, उसे मैं तुमसे कहता हूँ। तुम उसे सुनो।।८०।।

।। श्रीकालिकापुराण में चन्द्रशेखर-विवाहवर्णननामक अड़तालिसवाँ अध्याय सम्पूर्ण हुआ ।।४८।।



एकोनपञ्चाशोऽध्यायः

महाकाल-वेतालजन्मवर्णनम्

।। मार्कण्डेय उवाच ।।

अथ काले व्यतीते तु ककुत्स्थतनया सती ।
विधातुमार्तवं स्नानं योषिद्भिः परिवारिता ।।१।।
शीतामलजलां हृद्यां नदीं प्राप्ता दृषद्वतीम् ।
प्रभिन्नाञ्जनसङ्काशां कलुषध्वंसकोविदाम् ।।२।।

मार्कण्डेय बोले– इसके बाद बहुत समय बीत जाने पर, ककुत्स्थराजा की पुत्री, सती, रानी तारावती, ऋतुस्नान हेतु स्त्रियों से घिरी हुई, शीतल तथा निर्मल जल से युक्त, काले अञ्जन के टुकड़े के समान, कलुष को भी नष्ट कर देने वाली, दृषद्वती नदी के तट पर पहुँची।।१-२।।

कृतस्नानामनुत्तीर्णामर्धमग्नां महासतीम् ।
ददृशे स्वर्णगौराङ्गीं कपोतो मुनिसत्तमः ।।३।।

उसमें स्नान करके बिना पूर्णतः बाहर निकली, आधी जलमग्नावस्था में ही स्वर्ण के समान गोरे अङ्गों वाली, उस महासती तारावती को कपोत नाम के एक श्रेष्ठ मुनि ने देखा ।।३।।

कापोतं वपुरास्थाय प्राणिनां वधशङ्कया ।
विचचार यतः पूर्वं कपोतस्तेन स स्मृतः ।।४।।

पूर्वकाल में वह मुनि प्राणियों के वध की शङ्का से, कपोतशरीर धारण कर विहार किया करते थे । इसीलिए कपोत नाम से ही उनका स्मरण किया जाता है ।।४।।

तां दृष्ट्वा हेमगर्भाभां चन्द्रिकां शारदीमिव ।
कपोतः कामयामास कामबाणार्दितो भृशम् ।।५।।

शरदऋतु की चाँदनी की भाँति स्वर्णगर्भ की आभायुक्त उस तारावती को देख कर, कामबाण से बहुत अधिक पीड़ित, कपोत मुनि उसकी कामना करने लगे ।।५।।

कामाग्निपरितप्तः स ककुत्स्थतनयां मुनिः ।
अभिगम्याथ कल्याणीमिदं वचनमब्रवीत् ।।६।।

कामाग्नि से सब प्रकार से परितप्त हो, उस मुनि ने उस कल्याणस्वरूपा, ककुत्स्थ पुत्री से यह वचन कहा॥६॥

।। कपोत उवाच ।।

का त्वं कस्यासि वनिता पुत्री वा कस्य सुन्दरि ।
कस्मात् समागता वा त्वमुपांशुतटिनीजलम् ।।७।।

कपोत बोले–हे सुन्दरी ! तुम कौन हो ? तुम किसकी स्त्री या किसकी पुत्री हो ? तुम गुप्तरूप से इस नदी के जल में किसलिए आई हुई हो?॥७॥

रूपं ते सौम्यमाह्लादि पूर्णचन्द्रनिभं मुखम् ।
तिलपुष्पप्रतीकाशं नासिकायुगलं तव ।।८।।

तुम्हारा रूप सौम्य है तथा पूर्णचन्द्रमा के समान तुम्हारा मुख, आह्लादित करने वाला है और तुम्हारी दोनों नाक तिलपुष्प के समान सुन्दर हैं॥८॥

वातकम्पितनीलाब्जसदृशे लोचने तव ।
बाहू मनोहरौ वृत्तौ मृणालमृदुलायतौ ।
ऊरू गजकरप्रख्यौ मध्यं वेदिविलग्नकम् ।।९।।

तुम्हारे नेत्र वायु से काँपते हुए नीलेकमल के समान चञ्चल हैं, तुम्हारी दोनों बाहें कमलनाल की भाँति कोमल, लम्बी-चौड़ी, सुन्दर और गोलाकार हैं तथा तुम्हारी दोनों जाँघें, हाथी के सूँड़ के समान एवं मध्यभाग, वेदिका के समान है ॥९॥

ईदृशेन तु रूपेण न त्वं मानुषभामिनी ।
देवी वा दानवी वा त्वमप्सरागुणशालिनी ।।१०।।

इस प्रकार के रूप से युक्त तुम, मनुष्य की स्त्री नहीं हो। तुम कोई देवी हो, दानवी हो, या कोई गुणों से युक्त अप्सरा हो ॥१०॥

अथवा भोग्यभोगाय श्रीस्त्वं नारीत्वमागता ।
अपर्णा वा शची वा त्वं तन्मे वद मनोहरे ।।११।।

अथवा अपने भोग्य को भोगने के लिए नारी के रूप में उत्पन्न, तुम लक्ष्मी, पार्वती या इन्द्राणी हो ? हे सुन्दरी ! इस विषय में तुम मुझे बताओ ॥११॥

।। और्व उवाच ।।

इति वाक्यं मुनेः श्रुत्वा जलादुत्तीर्य भामिनी ।
प्रणम्य तं मुनिं नम्रा वचनं चेदमब्रवीत् ।।१२।।

और्व बोले– कपोतमुनि की इस बात को सुनकर उस देवी ने जल से बाहर आकर उन मुनि को प्रणाम किया, तत्पश्चात् नम्रतापूर्वक यह वचन कहा–॥१२॥

।। तारावत्युवाच ।।

अहं तारावती नाम्ना ककुत्स्थस्य सुता सती ।
चन्द्रशेखरभूपस्य भार्यां जानीहि मां मुने ।।१३।।

तारावती बोलीं– हे मुनि ! मैं राजा ककुत्स्थ की तारावती नाम की सती कन्या हूँ। आप मुझे राजा चन्द्रशेखर की पत्नी भी समझो ।।१३।।

नाहं देवी न गन्धर्वी न यक्षी न च राक्षसी ।
मानुष्यहं नृपसुता चारित्र्यव्रतधारिणी ।।१४।।

न मैं कोई देवी हूँ, न गन्धर्वपत्नी हूँ, न यक्षिणी हूँ, न राक्षसी हूँ, मैं तो चरित्रव्रतधारणकारिणी, मनुष्यरूपा, एक राजकन्या मात्र हूँ ।।१४।।

।। कपोत उवाच ।।

त्वां दृष्ट्वा मां स्वयं कामः सङ्गतः सङ्गमाय ते ।
पीडितश्चाति तेनाहं त्वया शक्त्या समक्षया ।।१५।।

कपोत बोले– तुम को देखकर तुम्हारे संगम के प्रति मुझे स्वयं काम उपयुक्त बना रहा है। मैं तुम्हारी शक्ति के सम्मुख अपने को उसी से अत्यन्त पीड़ित अनुभव कर रहा हूँ ।।१५।।

स्मरसागरकल्लोलपतितं मां निराकुलम् ।
त्वदूरुतरिणा त्राहि तूर्णं त्वं मृदुभाषिणी ।।१६।।

हे कोमल बोलने वाली ! काम के समुद्र की तरंगो के बीच गिरे हुये मेरे मन को तुम शीघ्र ही अपनी जाँघों की नौका द्वारा उबार लो।।१६।।

मत्तः पुत्रद्वयं चारु रूपलक्षणसंयुतम् ।
भविष्यति महाभागे बलवीर्ययुतं महत् ।।१७।।

हे महाभागे! तुम्हें मुझसे सुन्दर रूप और लक्षणों से युक्त महान् बल और पराक्रम से सम्पन्न, दो पुत्र होंगे।।१७।।

।। और्व उवाच ।।

कपोतस्य वचः श्रुत्वा भयदुःखसमाकुला ।
जगाद गद्गदं वाक्यं वाग्मिन्यथ ककुत्स्थजा ।।१८।।

और्व बोले– तब बोलने में चतुर, ककुत्स्थ की पुत्री, तारावती ने कपोतमुनि के उपर्युक्त वचनों को सुनकर भय एवं दुःख से व्याकुल हो, गद्गद वाणी से यह वचन कहा।।१८।।

।। तारावत्युवाच ।।

वाक्यमन्यन्मया कार्यं न कार्यमति निन्दितम् ।
तस्मान्मा वद मामित्थं प्रणम्य त्वां प्रसादये ।।१९।।

तवापि नैतद् योग्यं स्यान्मुनेरिह तपोधन ।
तपःक्षयकरं गर्ह्यं सतीत्वभ्रंशकं मम ।।२०।।

तारावती बोलीं– हे मुनि ! मैं आपकी प्रसन्नता के लिए आपको प्रणाम करती हूँ। आपको मुझसे इस प्रकार की अत्यन्त निन्दित वार्ता नहीं करनी चाहिये। यदि कोई अन्य बात हो तो कहें अन्यथा इस तरह की बातें मुझसे न करें क्योंकि तपोधनसम्पन्न, तपस्वी द्वारा अपनी तपस्या तथा मेरे सतीत्व का नाश करने वाली निन्दनीय बातें, आपके लिए भी इस समय उचित नहीं हैं ॥१९-२०॥

।। कपोत उवाच ।।

तपोव्ययो वा चान्यद्वा दूषणं तन्ममास्त्विह ।
तथापि त्वामहं त्यक्तुं नेच्छामि सुरतौ शुभे ।।२१।।

कपोत बोले– हे शुभ-लक्षणों वाली! मेरा तप नष्ट हो जाय, अन्य कोई दोष लगे तो भी मैं इस समय तुम्हें सुरतिप्रसङ्ग में, छोड़ना नहीं चाहता हूँ ॥२१॥

अवश्यं मम कामेभ्यस्त्राणं कर्तुमिहार्हसि ।
अन्यथा कामदग्धोऽहं त्वया त्यक्तो मनोहरे ।
भवतीं च करिष्यामि शापदग्धां सबान्धवाम् ।।२२।।

हे मन का हरण करने वाली सुन्दरी ! तुम्हें काम के प्रहार से मेरा उद्धार अवश्य करना चाहिये अन्यथा कामदग्ध हुआ मैं भी तुम्हारे द्वारा त्यागे जाने पर, बन्धु-बान्धवों के सहित तुम्हें शाप से दग्ध कर दूँगा॥२२॥

ततस्तद्वचनं श्रुत्वा देवी तारावती तदा ।
ऋषिशापभयात् साध्वी न किञ्चिच्चोत्तरं ददौ ।।२३।।

तब मुनि के उस वचन को सुनकर साध्वी देवी, तारावती ने ऋषि के शाप के भय से उसे कोई उत्तर नहीं दिया॥२३॥

सम्भाषयेऽहं स्वसखीहि तिष्ठ महामुने ।।२४।।
एवमुक्त्वा तदा देवी दासीनां मध्यमागता ।
चित्राङ्गदां समाहूय वचनं चेदमब्रवीत् ।।२५।।

हे महामुने ! इसे मैं अपने सखी से कहती हूँ, तुम अभी ठहरो। ऐसा कहकर वह देवी तारावती, दासियों के बीच चली गई और वहाँ चित्राङ्गदा को बुलाकर उससे यह वचन बोली ॥२४-२५॥

चित्राङ्गदे मुनिरसौ मां वै कामयते भृशम् ।
किं करिष्ये सतीभावान्नभ्रष्टा स्यामहं कथम् ।।२६।।

तारावती बोलीं– हे चित्राङ्गदे ! यह मुनि मेरे प्रति इस समय अत्यधिक कामोत्सुक हो गया है। मैं क्या करूँ? जिससे मैं सतीभाव से च्युत न होऊँ ॥२६॥

पतिं बन्धूंश्च कपोतः सद्यः शापाग्निना दहेत् ।
नाहं मुनिं कामये चेत् संशये पतिता त्वहम् ।।२७।।

क्योंकि यदि मैं इसे न चाहूँ, तो यह कपोत नामक मुनि, तत्काल मेरे पति और सम्बन्धियों को अपने शाप की अग्नि से दग्ध कर देगा और यदि मैं चाहूँ तो मैं सती-धर्म से भ्रष्ट हो, पतिता हो जाऊँगी ।।२७।।

।। और्व उवाच ।।

ततश्चित्राङ्गदा प्राह मा भैस्त्वं सत्यभाषिणि ।
तत्रोपायमहं वक्ष्ये यत्कृत्वा त्वं प्रमोक्ष्यसे ।।२८।।

और्व बोले– तब चित्राङ्गदा ने कहा ! हे सत्यवादिनी मत डरो, मैं तुम्हें उपाय बताती हूँ, जिसे करके तुम इस संकट से छुटकारा पा सकती हो ।।२८।।

न जहाति मुनिश्चेत्त्वां दासीमेकां मनोहराम् ।
सुभूषणैर्भूषयित्वा मुनये त्वं नियोजय ।।२९।।

यदि मुनि तुम्हें नहीं छोड़ता तो एक सुन्दरीदासी को अपने सुन्दर वस्त्राभूषणों से सुसज्जित कर, मुनि की सेवा में लगाओ।।२९।।

कामातुरो मुनिर्मोहात् कृपणो ज्ञास्यते न हि ।
दासीं त्वद्भूषणाच्छन्नां ज्योत्स्नाच्छन्नां मृगीमिव ।।३०।।

वह मोह से दीन, कामातुर मुनि, तुम्हारे आभूषणों से युक्त दासी को चाँदनी से ढकी मृगी की भाँति, जान नहीं पायेगा ।।३०।।

एवं कुरु महाभागे मा त्वं चिन्तां गमः शुभे ।
त्वं चेत् सतीति नियतं न ज्ञास्यति तदा मुनिः ।।३१।।

हे महाभागे ! हे शुभे ! तुम ऐसा ही करो और किसी प्रकार की चिन्ता न करो। यदि तुम ऐसा करोगी तो वह मुनि निश्चित रूप से नहीं जान पायेगा ।।३१।।

ततस्तारावती प्राह तां रूपगुणशालिनीम् ।
चित्राङ्गदां भूपपुत्रीं शश्वद्विनयसूनृताम् ।।३२।।

तब रानी तारावती ने उस गुण सम्पन्न, निरन्तर, विनय और सत्यता से युक्त राजकुमारी चित्राङ्गदा से कहा— ।।३२।।

।। तारावत्युवाच ।।

त्वमेव गच्छ भगिनी कपोताख्यमनिन्दिते ।
मद्भूषणैर्भूषयित्वा स्वशरीरं मनस्विनि ।।३३।।

तारावती बोलीं– हे बहन ! हे अनिन्दित आचरण वाली ! तुम मनस्विनी हो अतः मेरे आभूषणों से अपने को अलङ्कृत कर, तुम्हीं कपोत नामक मुनि के पास जाओ ।।३३।।

अन्यां प्रस्थापितां विप्रः सम्बध्य क्रोधवह्निना ।
धक्ष्यत्यवश्यं सकुलां मां तस्माद् गच्छ सुन्दरि ।।३४।।

हे सुन्दरि ! मेरे द्वारा भेजी गयी, दूसरे से सम्बन्ध स्थापित कर वह ब्राह्मण, अपनी क्रोध की अग्नि से शीघ्र ही कुल के सहित मेरा विनाश कर देगा । अतः तुम्हीं उसके पास जाओ ।।३४।।

त्वं मत्समा सर्वगुणैः सर्वभूषणभूषिता ।
मुनिं सङ्गमयस्वाद्य रक्ष मां सकुलां शुभे ।।३५।।

हे शुभे ! तुम सभी गुणों से युक्त तथा मेरे आभूषणों से युक्त हो, उस मुनि से सङ्गमन कर कुल के सहित आज मेरी रक्षा करो ।।३५।।

।। और्व उवाच ।।

ततस्तस्या वचः श्रुत्वा विनयं च सकातरम् ।
तूष्णीं भूत्वा क्षणं तस्थौ नातिहृष्टमना इव ।।३६।।
जगाद च महाभागां चित्राङ्गदा ककुत्स्थजाम् ।
करिष्ये वचनं तेऽद्य समये मां स्मरिष्यसि ।।३७।।
यदर्थे पितरं चेमं भूपं च चन्द्रशेखरम् ।
आश्वासयिष्यति तथा समस्तां च सखीगणान् ।।३८।।

और्व बोले– तब उस तारावती की वाणी तथा कातरप्रार्थना को सुनकर वह प्रसन्न न होती हुई, कुछ क्षण मौन रही और तत्पश्चात् चित्राङ्गदा ने ककुत्स्थपुत्री तारावती से कहा—आज मैं तुम्हारा कहा कर रही हूँ किन्तु समय पर मेरा स्मरण करोगी, जब तुम्हें अपने माता-पिता, राजा चन्द्रशेखर तथा समस्त सखियों को आश्वस्त करना होगा।।३६-३८।।

एवमुक्त्वा भूषणानि तारावत्याः पिधाय सा ।
चित्राङ्गदा जगामाशु मुनेः कामोत्सवाय च ।।३९।।

तब चित्राङ्गदा ऐसा कहकर, तारावती के वस्त्राभूषणों को पहनकर, मुनि के कामोत्सव के लिए शीघ्र ही चली गई।।३९।।

तारावती तदा दीना वस्त्रालङ्कारवर्जिता ।
दासीमध्यगता भूत्वा तामेवानुययौ प्रियाम् ।।४०।।

तत्पश्चात् तारावती भी अपने वस्त्रालङ्कार से रहित तथा दीनभाव से युक्त हो, दासियों के बीच स्थित हो, अपनी उसी प्रिय सखी का अनुगमन करने लगी।।४०।।

तामायान्तीं ततो दृष्ट्वा कपोतः काममोहितः ।
मुनीनां परजायासु सस्मार सङ्गमं तदा ।।४१।।

तब उस तारावती के समान आती हुई चित्राङ्गदा को देखकर, काम से मोहित, कपोत मुनि ने अन्य मुनियों द्वारा पराई स्त्रियों के प्रति किये गये पूर्वकालिक समागमों का स्मरण किया॥४१॥

प्रम्लोचा कामिता पूर्वं वतण्डस्य सुतेन वै।
यथा वा कामिता पद्मा भरद्वाजेन धीमता ॥४२॥
तथाहं कामयिष्यामि साम्प्रतं वरवर्णिनीम्।
पश्चात् तपोबलात् तद्वज्जायां पापाद् विमोक्षये ॥४३॥

जैसा पूर्वकाल में वतण्ड के पुत्र द्वारा प्रम्लोचा तथा बुद्धिमान् भरद्वाजऋषि द्वारा पद्मा का कामोपभोग किया गया था वैसा ही मैं भी इस समय इस सुन्दरी का उपभोग करुँगा तथा बाद में उन्हीं पूर्ववर्ती ऋषियों की भाँति तपोबल से पत्नी के प्रति किये गये पाप से मुक्त हो जाऊँगा॥४२-४३॥

इति चिन्तयतस्तस्य तदा चित्राङ्गदा शुभा।
समेत्य तं मुनिं लज्जायुक्ता चैषाह किञ्चन ॥४४॥

जब वे कपोत नामक मुनि इस प्रकार का विचार कर रहे थे उसी समय सुन्दरी चित्राङ्गदा ने लज्जायुक्त भाव प्रकट करते हुए उस मुनि से कुछ कहा-॥४४॥

तामासाद्य महाभागः कपोतो मुनिसत्तमः।
शृङ्गारवेषभावाय मदनं मनसास्मरत् ॥४५॥

तब उस सुन्दरी को पाकर महाभाग मुनिवर कपोत ने शृंगारवेषभाव की प्राप्तिहेतु कामदेव का मन ही मन स्मरण किया ॥४५॥

स्मृतमात्रोऽथ मदनः स्वयमेत्य महामुनिम्।
गन्धमाल्यैः सुवासोभिरध्युवासाति हर्षितः ॥४६॥

स्मरण करने मात्र से ही कामदेव ने स्वयं महामुनि के पास आकर, अत्यन्त प्रसन्नता पूर्वक उन्हें गन्ध-माला तथा सुन्दर वस्त्रादि से सुसज्जित कर दिया॥४६॥

तेनाधिवासितो विप्रः कपोतश्चारुरूपधृक्।
जज्वाल तेजसा चापि द्वितीय इव भास्करः ॥४७॥

उसके द्वारा सज्जित हो, ब्राह्मण कपोत, सुन्दररूप धारण कर, अपने तेज से द्वितीय सूर्य के समान प्रकाशित हो उठे॥४७॥

मनोहरं तथा दृष्ट्वा कपोतं मदनोपमम्।
तारावतीमृते सर्वाः सकामाश्चाभवन् स्त्रियः ॥४८॥

उस कपोत मुनि को कामदेव के समान सुन्दर देखकर, रानी तारावती के अतिरिक्त वहाँ उपस्थित सभी स्त्रियाँ, कामासक्त हो गई॥४८॥

तारावती मुनिं दृष्ट्वा सुन्दरं मदनोपमम् ।
विस्मयं परमं प्राप्ता मुनिं काममममन्यत ।।४९।।

तारावती ने भी मुनि को कामदेव के समान सुन्दर देखकर, अत्यधिक विस्मय से उन्हें दूसरा कामदेव ही समझा।।४९।।

अथ चित्राङ्गदां विप्रः कामुकः कामसङ्गमे ।
तदा नियोजयामास सुप्रीतश्चाभवत् क्षणात् ।।५०।।

तब उस कामुक ऋषि ने चित्राङ्गदा को ही उस समय कामाचार में लगाया तथा क्षणभर में ही वे उसके साथ से प्रसन्न हो गये।।५०।।

ततस्तस्यां समुत्पन्नं सद्योजातं सुतद्वयम् ।
देवगर्भोपमं दीप्तज्वलनार्कसमप्रभम् ।।५१।।

तब उससे शीघ्र ही देवगर्भ के समान, प्रज्वलित अग्नि एवं सूर्य के समान प्रभावाले दो पुत्र, उत्पन्न हुये ।।५१।।

जाते सुतद्वये तां तु मुनिः संसृज्य पाणिना ।
निनाय पूर्ववद्भावं वचनं चेदमब्रवीत् ।।५२।।

दो पुत्रों के उत्पन्न हो जाने पर मुनिवर कपोत ने उसे हाथों से पकड़कर पहले सा प्रेमपूर्णव्यवहार करते हुए, यह वाक्य कहा।।५२।।

।। कपोत्तोवाच ।।

मत्सङ्गमे कियत्कालं प्रिये तिष्ठ शुभानने ।
ममेच्छया यास्यसि त्वं भयं ते नास्ति राजतः ।।५३।।

कपोत बोले– हे शुभमुखोंवाली प्रिये ! तुम कुछ समय तक और मेरे सम्पर्क में रहो। यदि तुम मेरी इच्छा से जाओगी तो तुम्हें राजा से भी कोई भय नहीं होगा ।।५३।।

एवमस्त्विति सा प्राह ऋषिं शापभयात् सती ।
ततौ विसर्जयामास मुनिरन्याश्च योषितः ।।५४।।

तब उसने ऋषि के शाप के भय से उनसे कहा कि ऐसा ही हो । तदनन्तर मुनि ने अन्य सभी स्त्रियों को वहाँ से विदा कर दिया ।।५४।।

ततस्तारावती देवी दासीभिः परिवारिता ।
भगिनीमनुशोचन्ती जगाम भवनं निजम् ।।५५।।

तब दासियों से घिरी हुई तारावती देवी अपनी बहन चित्राङ्गदा के विषय में चिन्ता करती हुई, अपने भवन को चली गई।।५५।।

गत्वा तं सर्ववृत्तान्तं कपोतकृतमद्भुतम् ।
ब्रह्मावर्ताधिपायाशु शशंसाथ ककुत्स्थजा ।।५६।।

उस समय ककुत्स्थराजा की पुत्री तारावती ने ब्रह्मावर्तदेश के अधिपति राजा चन्द्रशेखर से कपोतमुनि द्वारा किये गये इस अद्भुतवृत्तान्त को कह सुनाया।।५६।।

स श्रुत्वा नृपशार्दूलः क्षणमात्रं विचिन्त्य च ।
चित्राङ्गदायाः साहाय्यं कपोतानुमतेऽकरोत् ।।५७।।

उन श्रेष्ठ राजा चन्द्रशेखर ने उस वृत्तान्त को सुनकर क्षण-भर विचार किया तथा कपोत मुनि की अनुमति से चित्राङ्गदा की सहायता की।।५७।।

ऋषितोऽपि तदा तस्यां जातयोः सुतयोस्तयोः ।
यथोक्तेनाथ विधिना संस्कारमकरोत्तदा ।।५८।।

उस समय उन्होंने ऋषि से उत्पन्न उसके उन दोनों पुत्रों का यथोचितरूप से संस्कार किया ।।५८।।

।। सगर उवाच ।।

चित्राङ्गदा कथं पुत्री ककुत्स्थस्याभवत् तदा ।
तदहं श्रोतुमिच्छामि कथयस्व द्विजोत्तम ।।५९।।

सगर ने कहा– हे द्विजों में श्रेष्ठ! चित्राङ्गदा, राजा ककुत्स्थ की पुत्री कैसे हुई ? यह आप बताइये, मैं उसे सुनना चाहता हूँ ।।५९।।

।। और्व उवाच ।।

एकदा तु ककुत्स्थोऽसौ हिमवन्तं महागिरिम् ।
मृगयायै जगामाथ मृगाश्चापि निपातिताः ।।६०।।

और्व बोले– एक बार वे राजा ककुत्स्थ, महान् हिमालय पर्वत पर शिकार के लिए गये। वहाँ उनके द्वारा मृगों का वध भी किया गया।।६०।।

लम्बन्तीं सुरलोकात् तु भूमिं प्रति तदोर्वशीम् ।
विश्रामायोपविष्टस्तु सानौ वेश्यां ददर्श ह ।।६१।।

उस समय, उस समय विश्राम के लिए पर्वत की चोटी पर स्वयं बैठे हुए, देवलोक से उतर कर पृथ्वी पर आती हुई उर्वशी अप्सरा को उन्होंने देखा।।६१।।

तामासाद्य महाराजः कामबाणप्रपीडितः ।
अवतीर्णां गिरौ शश्वदङ्गसङ्गमयाचत ।।६२।।

पर्वत पर उतरी हुई, उसके पास पहुँच कर, महाराज ने कामबाण से विशेष रूप से पीड़ित हो, निरन्तर अङ्ग-सङ्ग (सम्पर्क) की याचना की।।६२।।

सा ज्ञात्वा नृपशार्दूलं ककुत्स्थं शक्रसन्निभम् ।
उर्वशी रमयामास गिरिकुञ्जे यथेप्सितम् ।।६३।।

उस उर्वशी ने भी राजाओं में सिंह के समान उस महाराज ककुत्स्थ को इन्द्र के समान श्रेष्ठ जानकर, उनके साथ पर्वतों और वहाँ स्थित, कुञ्जों में यथेच्छरूप से रमण किया॥६३॥

ततो राज्ञः ककुत्स्थस्य स्वर्वेश्यायां तदा सुता ।
अभवन् नृपशार्दूलात् सद्योजाता मनोहरा ॥६४॥

तब उस स्वर्ग की वेश्या (अप्सरा) से तत्काल ही नृपशार्दूल राजा ककुत्स्थ की एक सुन्दरी कन्या उत्पन्न हुई॥६४॥

अथ कामेन सन्तुष्टं ककुत्स्थं सा तदोर्वशी ।
अथेष्टदेशं विज्ञाप्य गन्तुमैच्छदनिन्दिता ॥६५॥

तत्पश्चात् उस अनिन्दितसुन्दरी उर्वशी ने काम से सन्तुष्ट राजा ककुत्स्थ से अपने इच्छित देश में जाने की इच्छा व्यक्त की॥६५॥

तामाह राजा तनयां परित्यज्य कथं शुभे ।
गन्तुमिच्छसि चार्वंगि सुतामेनां तु पालय ॥६६॥

उससे राजा ने कहा— हे शुभे ! हे सुन्दर अंगोवाली ! तुम इस लड़की को छोड़कर क्यों जाना चाहती हो ? तुम इस पुत्री का पालन करो॥६६॥

सा प्राहाहं स्वर्गणिका मयि कस्य न चाभवत् ।
तनयस्तनया वापि सद्योजाता नृपात्मजा ॥६७॥

तब उस उर्वशी ने कहा— मैं स्वर्ग की गणिका हूँ । मुझसे आज तक किसी की भी लड़की या लड़का उत्पन्न नहीं हुई । इसकी भाँति कोई राजकुमारी भी तत्काल नहीं उत्पन्न हुई॥६७॥

स्वतेजसा शरीरस्य विकारो मे न विद्यते ।
सुताश्चापि न पाल्यन्ते वेश्याभावात् स्वभावतः ॥६८॥

मेरे अपने तेज के कारण मुझमें प्रसूति सम्बन्धी कोई परिवर्तन भी नहीं दिखता । हम सब वेश्याभाव में स्वाभाविक रूप से रहने के कारण सुताओं का पालन भी नहीं करतीं॥६८॥

दयास्ति यदि ते पुत्र्यां नीत्वैनां वर्धय स्वयम् ।
गन्तुं मामनुजानीहि सत्यमेतद् ब्रवीमि ते ॥६९॥

इसलिए यदि तुम्हारी इस पुत्री पर दया हो तो इसे ले जाओ और स्वयं इसको बढ़ाओ तथा मैं जो इस समय अपने इच्छितस्थान को जाना चाहती हूँ, उसे जाने की अनुमति दो । यह मैं तुमसे सत्य-सत्य कह रही हूँ॥६९॥

इत्युक्त्वा सा जगामाशु यथेष्टं सोर्वशी नृपः ।
पुत्रीं तां समुपादाय नगरं स्वं विवेश ह ।।७०।।

ऐसा कह कर वह उर्वशी, शीघ्र ही अपने इच्छितस्थान को चली गई तथा वे राजा ककुत्स्थ भी उस पुत्री को लेकर अपने नगर में प्रवेश किये ।।७०।।

तस्याश्चित्राङ्गदा नाम स चकार नृपः स्वयम् ।
मनोन्मथिन्यै चादात् तां भार्यायै पुत्रिकां शुभाम् ।।७१।।

उस राजा ने स्वयं उस कन्या का नाम चित्राङ्गदा रखा और उस सुन्दरी पुत्री को मनोन्मथिनी नामक अपनी रानी को दे दिया ।।७१।।

इदं च वचनं देवीं तदा प्राह नृपोत्तमः ।
देवि पुत्री ममेयं त्वमेनां पालय सद्गुणाम् ।
मयानीतां शैलजातां मा हेलां कर्तुमर्हसि ।।७२।।

तब राजा ने महारानी से ये उत्तम वचन कहे— हे देवी ! यह अच्छे गुणों से युक्त कन्या मेरी पुत्री है, तुम इसका पालन करो। यह पर्वत पर उत्पन्न हुई कन्या मेरे द्वारा यहाँ लाई गई है । इसलिए तुम इसकी अवहेलना न करो ।।७२।।

इत्युक्ता राजपुत्री सा पालने चाकरोन्मतिम् ।
भर्तुराज्ञां पुरस्कृत्य नान्यत् किञ्चिदुवाच ह ।।७३।।

ऐसा कहे जाने पर उस रानी ने पति की आज्ञा का सम्मान करते हुए कुछ नहीं कहा तथा उस राजपुत्री के पालन में मन लगाया ।।७३।।

सा चैकदा बाल्यभावादष्टावक्रं महामुनिम् ।
व्रजन्तं जिह्ममेवाशु जहासोपजहास च ।।७४।।

एक बार उस चित्राङ्गदा ने टेढ़े-मेढ़े अष्टावक्रमुनि को तेजी से जाते हुए देखा और बाल्यभाव (लड़कपन) से बार-बार हँस पड़ी।।७४।।

स चुकोप मुनिस्तस्यै शापं परमदारुणम् ।
ददौ दासी स्ववंशस्य भवितेति ककुत्स्थजे ।।७५।।
दासी भूता स्ववंशस्य ह्यनूढैव सुतद्वयम् ।
जनयिष्यसि पापिष्ठे ततो भद्रमवाप्स्यसि ।।७६।।

उसके उस व्यवहार से वे मुनि क्रुद्ध हो गये तथा उन्होंने परमभयानकशाप दे दिया—हे पापिष्ठे ! हे ककुत्स्थराज की लड़की ! तुम अपने वंश में ही दासीभाव को प्राप्त करोगी तथा अपने वंश की दासी अवस्था में कार्य करते हुए ही तुम बिना व्याहे ही दो पुत्रों को जन्म दोगी, तत्पश्चात् तुम्हारा कल्याण होगा ।।७५-७६।।

एवं ककुत्स्थतनया जाता चित्राङ्गदा नृप।
दासी च भूता सा ते तारावत्या निवासिता।
अनूढाप्यलभत् पुत्रयुग्मं मुनिवराच्छुभात् ।।७७।।

हे राजा ! इस प्रकार से वह चित्राङ्गदा, राजा ककुत्स्थ की पुत्री हुई। दासी होकर तारावती के साथ निवास किया तथा तारावती के निर्देश से बिना व्याहे ही उस शुभ मुनि से दो पुत्रों को प्राप्त किया।।७७।।

तौ च पुत्रौ महाभागौ महाकार्यं करिष्यतः ।।७८।।

उससे उत्पन्न वे दोनों महाभागपुत्र, भविष्य में महान कार्य करेंगे।।७८।।

इति ते कथितं राजन् यथाचित्राङ्गदाऽभवत्।
ककुत्स्थस्य सुता साध्वी प्रस्तुतं शृणु साम्प्रतम् ।।७९।।

।। इति श्रीकालिकापुराणे महाकालवेतालजन्मवर्णननाम एकोनपञ्चाशोऽध्यायः ।।४९।।

हे राजन्! जिस प्रकार साध्वी चित्राङ्गदा, ककुत्स्थ की पुत्री हुई, वह सब मैंने आपसे कह दिया, अब आप आगे सुनिये।।७८-७९।।

।।श्री कालिकापुराण में महाकालवेतालजन्मवर्णन नामक उन्चासवाँ अध्याय सम्पूर्ण हुआ।।४९।।



पञ्चाशोऽध्यायः
वेताल-भैरवजन्मवृत्तान्तम्

।। और्व उवाच ।।

अथ काले व्यतीते तु पुनस्तारावती शुभा ।
आर्तवं विहितं स्नानं नदीं प्राप्ता दृषद्वतीम् ।।१।।

और्व बोले– बहुत समय बाद सुन्दरी रानी तारावती एक बार आर्तवस्नान (ऋतुस्नान) करने के लिए पुनः दृषद्वती नदी के तटपर आईं ॥१॥

दासीसहस्त्रैः संयुक्ता नानालङ्कारमण्डिता ।
रम्भादिभिर्यथेन्द्राणी तथा सा प्रत्यदृश्यत ।।२।।

उस समय हजारों दासियों से घिरी, अनेक प्रकार के अलङ्कारों से सुसज्जित, वे, रम्भा आदि अप्सराओं से घिरी हुई इन्द्राणी के समान दिखाई दे रही थीं ॥२॥

सावतीर्णा जले देवी गौराङ्गी तडिदुज्ज्वला ।
नदीमुज्ज्वलयामास भिन्नाञ्जनसमाम्भसम् ।।३।।

उस बिजली के समान उज्ज्वल, गोरेअंगों वाली देवी ने अन्जन के समान काले रंग के जलवाली नदी में उतर कर उस नदी को ही उज्ज्वल बना दिया ॥३॥

स्थलीं काचमयीं स्वच्छां काञ्चनीप्रतिमा यथा ।
स्वभासाज्वलयामास प्रतिबिम्बेन सा तथा ।।४।।

जिस प्रकार सोने से बनी प्रतिमा, दर्पण (काँच) से बनी स्वच्छस्थली को अपने प्रतिबिम्ब से प्रकाशित करती है, उसी प्रकार उस रानी ने, अपनी आभा से उस जलराशि को प्रकाशित किया ॥४॥

अथ तां पुनरेवाथ कपोतो मुनिसत्तमः ।
आनाभिमग्नां तोयौघैर्ददर्श सुमनोहरम् ।।५।।

तब जलराशि में, नाभिपर्यन्तजल में डूबी हुई उन सुन्दरीं को, कपोत नामक श्रेष्ठमुनि ने पुनः देखा ॥५॥

दृष्ट्वा तामथ पप्रच्छ तदा चित्राङ्गदां मुनिः ।
केयं जले दृषद्वत्यामवतीर्णा सखीशतैः ।।६।।

श्रिया ज्वलन्ती श्रीतुल्या किमपर्णा गिरेः सुता ।
अतीव भ्राजते रूपैर्न संस्तौषि च तां किमु ।।७।।

तब उनको उस अवस्था में देखकर उस मुनि ने चित्राङ्गदा से पूछा—अपनी सैकड़ों सखियों के साथ दृषद्वती के जल में उतरी हुई यह सुन्दरी कौन है ? जो अपनी शोभा से लक्ष्मी के समान अथवा रूप के कारण पर्वतपुत्री, पार्वती के समान प्रकाशित होती हुई, अत्यधिक शोभायमान हो रही है? क्या तुम उसे नहीं जानती हो?।।६-७।।

अथ तस्य वचः श्रुत्वा मुनेश्चित्राङ्गदा तदा ।
ऋषिशापभयात् साध्वी संस्तौमीति तदाऽब्रवीत् ।।८।।

तब उन मुनि के वचनों को सुनकर साध्वी चित्राङ्गदा ने ऋषि के शाप के भय से कहा, जानती हूँ ।।८।।

इयं तारावती नाम ककुत्स्थस्य सुता सती ।
चन्द्रशेखरभूपाल भार्याऽतिदयिता शुभा ।।९।।

ये तारावती नाम की सती हैं जो राजा ककुत्स्थ की पुत्री तथा राजा चन्द्रशेखर की अत्यन्त शुभदायिनी पत्नी हैं।।९।।

एषा त्वया कामिता तु कामार्थं पूर्वतो मुने ।
स्वालङ्कारैरलङ्कृत्य मां दत्त्वा ते गृहं गता ।।१०।।

हे मुनि ! आपके द्वारा पहले यही कामसिद्धि के लिए चाही गई थीं । उस समय अपने अलङ्कारों से अलंकृत कर, ये मुझे आपकी सेवा में देकर, स्वयं घर चली गई थीं।।१०।।

सेयं पुनर्नदीं स्नातुं भगिनी मे समागता ।
ज्येष्ठां तां तु मुने वक्तुं न ते किञ्चिच्च युज्यते ।।११।।

वही ये मेरी बड़ी बहिन, पुनः स्नान करने के लिए पधारी हैं । हे मुनि ! अब उससे आपका कुछ बोलना उचित नहीं है ।।११।।

त्वमत्र तिष्ठ विप्रेन्द्र ज्येष्ठां तां भगिनीं प्रियाम् ।
समाभाष्य समेष्ये त्वामनुजानासि चेद् गतौ ।।१२।।

विप्रेन्द्र ! आप यहीं रुकें मैं अपनी प्रिय बड़ी बहिन से बात करके आऊँगी यदि आप चलना चाहते हैं तो हम दोनों चलें।।१२।।

इति श्रुत्वा वचस्तस्या मुनिः स्नेहेन वञ्चनाम् ।
तारावत्या कृतां पूर्वं मुनिस्तस्मै चुकोप ह ।।१३।।

उसके वचनों से, तारावती द्वारा प्रेम में, पहले की गई इस प्रकार की वंचना को सुनकर, कपोत मुनि, उस तारावती पर अत्यन्त क्रोधित हो गये ।।१३।।

इयं पापीयसी रामा वञ्चनामकरोन्मयि ।
तस्याः संकालनञ्चाहं करिष्याम्यद्य निश्चितम् ।।१४।।

इस पापिनी स्त्री ने मेरे प्रति वंचना की है अतः आज मैं निश्चितरूप से इसका संकालन (दाह) करूँगा ।।१४।।

इत्युक्त्वा स तया सार्धं मुनिश्चित्राङ्गदाख्यया ।
जगाम यत्र सा देवी स्थिता तारावती शुभा ।।१५।।

ऐसा कहकर वे कपोतमुनि, उस चित्राङ्गदा के साथ वहाँ गए जहाँ सुन्दरी तारावती देवी उपस्थित थीं ।।१५।।

गत्वा तां तु समासाद्य कपोतो मुनिसत्तमः ।
इदं तारावतीं प्राह कुपितः प्रहसन्निव ।।१६।।

वहाँ उनके समीप जाकर मुनिवर कपोत ने क्रोधित हो किन्तु हँसते हुए तारावती से यह वचन कहा।।१६।।

।। कपोतोवाच ।।

कामार्थं प्रार्थिता पूर्वं त्वं मया च्छद्मना त्वया ।
वञ्चितोऽस्मि दुराधर्षे फलं तस्य समाप्नुहि ।।१७।।

कपोत बोले– मैंने पूर्वकाल में तुमसे जब कामवश होकर प्रार्थना किया था। हे कठोरहृदयवाली! उस समय तुमने मुझे छलपूर्वक वंचित किया था। अब उसका फल भोगो।।१७।।

ममापि पुरतः पापे त्वं सतीति विकत्थसे ।
सतीत्वभ्रंशकं मां त्वं नैव कामितवत्यसि ।।१८।।

हे पापिनी मेरे ही सामने तुम अपने को सती हो, ऐसा दिखा रही हो। और मुझे अपना सतीत्व नाश करने वाला मान कर, तुम मेरी कामना नहीं कर रही हो।।१८।।

तस्माद् बीभत्सवेषस्त्वां कपाली पलितो रहः ।
विरूपो धनहीनश्च कामयिष्यति वै हठात् ।।१९।।

इसलिए कोई घृणितवेशवाला, कपालपात्र (खोपड़ी) धारण करने वाला, पके हुए बालों वाला, बुरेवेशवाला, धनहीन, तुम्हारे साथ एकांत में बलपूर्वक कामोपभोग करेगा।।१९।।

सद्योजातं पुत्रयुगं सश्रीकं वानराननम् ।
भविष्यति च ते पापे त्वेकाब्दाभ्यन्तरेऽधुना ।।२०।।

हे पापिनी ! आज से एक वर्ष के अन्तर्गत ही तुम्हें शीघ्रउत्पन्न हुए दो पुत्र होंगे जो शोभा से युक्त होंगे तथा जिनका मुख बन्दर के समान होगा।।।२०।।

।। और्व उवाच ।।

एतच्छ्रुत्वा मुनेर्वाक्यं प्राह तारावती मुनिम् ।
कोपाद् भयाच्च सा देवी स्फुरदोष्ठपुटा तदा ।।२१।।

और्व बोले– मुनि के इस वाक्य को सुनकर, उन रानी तारावती ने भय और क्रोधवश फड़कते हुए ओठों से उन मुनि से, उस समय कहा—।।२१।।

।। तारावत्युवाच ।।

यदि सा पूजयित्वा तु चण्डिका प्राप मा प्रसूः ।
यद्यहं व्रतिनी नित्यं भूपतौ चन्द्रशेखरे ।।२२।।
ककुत्स्थस्य सुता सत्यं यद्यहं द्विजसत्तम ।
तेन सत्येन मे देवान्नान्यो मां कामयिष्यति ।।२३।।
यदि सत्यं महादेवो नित्यमाराध्यते मया ।
तेन सत्येन मे देवादाराध्याच्चन्द्रशेखरात् ।
स्वप्नेऽपि मुनिशार्दूल नान्यो मां कामयिष्यति ।।२४।।

तारावती बोलीं– हे द्विज श्रेष्ठ, हे मुनि श्रेष्ठ! यदि मैं माता द्वारा चण्डिका की पूजा करके प्राप्त हुई हूँ। यदि मैं नित्य राजा चन्द्रशेखर में ही निष्ठा रखती हूँ। यदि मैं सचमुच ककुत्स्थ की पुत्री हूँ तो मेरी सत्यता के कारण आराध्यदेव चन्द्रशेखर के अतिरिक्त कोई भी दूसरा, स्वप्न में भी मेरा उपभोग नहीं करेगा।।२२-२४।।

।। और्व उवाच ।।

इत्युक्त्वा सा मुनिं नत्वा स्वामिविन्यस्तमानसा ।
ययौ तारावती देवी स्वस्थानमिति भामिनी।।२५।।

और्व बोले– ऐसा कहकर मुनि को नमस्कार कर, अपने पति में अपना मन लगाए हुए, वह रानी तारावती अपने स्थान को चली गई ।।२५।।

तस्यां गतायां देव्यां तु चिन्तयामास तां मुनिः ।।२६।।
ममैव पुरतश्चैषा निर्भीताति प्रवल्गते ।
अत्रान्तर्विनिगूढं तु बीजं शुद्धं भविष्यति ।।२७।।

उनके जाने के बाद कपोतमुनि उन्हीं के विषय में सोचने लगे। मेरे सामने ही इसने इतनी निर्भीकता से कहा है, इसके अन्दर धारण कराया हुआ बीज (संतान) अत्यन्त शुभ होगा ।।२६-२७।।

एवं विचिन्त्य स मुनिर्ध्यानसंयुक्तमानसः ।
दिव्यज्ञानपरो भूत्वा सर्ववृत्तान्तमाददे ।।२८।।
यथा भृङ्गिमहाकालौ देव्या शप्तौ सुतावुभौ ।
प्रतिशापं यथा तौ तु ददतुः पार्वतीं हरम् ।।२९।।

यथावतीर्णौ मानुष्ययोनौ तौ तु यदर्थतः ।
चित्राङ्गदा यथा जाता यदर्थं देवकन्यका ।।३०।।

इस प्रकार सोचते हुए वे मुनि ध्यानस्थ हो गए, तब उन्होंने दिव्यज्ञान का आश्रय ले, उस समस्त पूर्ववर्ती वृत्तान्त को जान लिया—जिस प्रकार देवी द्वारा अपने भृङ्गी और महाकाल नाम के दोनों पुत्रों को शाप दिया गया था तथा जिस प्रकार से उन दोनों ने शिव-पार्वती को बदले में शाप दिया था। उन्होंने वह भी जान लिया जिस प्रकार, जिस उद्देश्य के लिए देवकन्या चित्राङ्गदा, मनुष्ययोनि में उत्पन्न हुई थी।।२८-३०।।

दिव्यज्ञानेन तज्ज्ञात्वा मुनिः किञ्चन नाकरोत् ।
चित्राङ्गदामादरेण समादाय मुनिस्ततः ।
स्वस्थानं गतवान् विप्रः पूजयामास तां मुनिः ।।३१।।

तब दिव्यज्ञान से उपर्युक्त बातों को जानकर उन्होंने तारावती के प्रति कुछ नहीं किया और चित्राङ्गदा को आदर के साथ लेकर अपने स्थान को चले गए, वहाँ जाकर उन ब्राह्मण देवता ने चित्राङ्गदा का पूजन किया ।।३१।।

तारावती च तत्सर्वं चन्द्रशेखरभूपतेः ।
वृत्तान्तं मुनिशापस्य कथयामास भामिनी ।।३२।।

और रानी तारावती ने भी मुनि के शाप का वह समस्त वृत्तांत, राजा चन्द्रशेखर से कह दिया।।३२।।

तत्सर्वं पौष्यजो राजा स्वगतं चिन्तया युतः ।
आश्वास्य दयितां भार्यां माभैर्देवीति सोऽचिरात् ।।३३।।

सम्पूर्ण वृत्तांत को जानकर पौष्य के पुत्र, राजा चन्द्रशेखर, मन में तो बहुत चिन्तित हुए किन्तु प्रत्यक्षरूप में अपनी प्रियपत्नी से शीघ्र बोले—हे देवी ! तुम मत डरो।।३३।।

सततं सेवया पत्युर्धर्मार्थपरिसेवनैः ।
वर्जनादप्रशस्तानां मुनिशापोऽपनीयते ।।३४।।

धर्म और अर्थ के भलीभाँति सेवनपूर्वक निरन्तर पति की सेवा तथा अप्रशस्त (अनुचित) लोगों के संग को रोकने से मुनि का शाप दूर हो जाएगा।।३४।।

तस्मात् त्वं देवि सुभगे चारित्रव्रतधारिणी ।
कल्याणभागिनी नित्यं नापदं समवाप्स्यसि ।।३५।।

हे सुन्दर रानी, चरित्रव्रत को धारण करने वाली, हे कल्याण की अधिकारिणी! ऐसा नित्य करने से तुम आपत्ति को भी नहीं प्राप्त होगी।।३५।।

।। तारावती–महलवर्णन ।।

एवमुक्त्वा स राजा तु करवीरपुराधिपः ।।३६।।
प्रासादं कारयामास उच्चैरभ्रंकषं बहु ।
उच्चैश्चतुःशतं व्यामं त्रिंशद्योजनविस्तृतम् ।।३७।।

ऐसा कहकर करवीरपुर के स्वामी, राजा चन्द्रशेखर ने बादलों के समान बहुत ऊँचा एक महल बनवाया जो चार सौ व्याम (पुरसा) ऊँचा और तीन सौ योजन चौड़ा था ।।३६-३७।।

रत्नस्फटिकभूम्यन्तःखचितं रत्नकुर्बुरैः ।
वैदूर्यपटलैः शुभ्रैश्छादितं सुमनोहरम् ।।३८।।

उसकी अन्दर की भूमि स्फटिक और रत्नों से जड़ी थी। वह रत्नों के बने कुर्बुर (परकोटे) और वैदूर्यमणि के बने श्वेतछत से ढका हुआ, सुन्दर दिखाई दे रहा था।।३८।।

स्वर्ण रत्नतुलास्तम्भं विश्वकर्मविनिर्मितम् ।
रक्षार्थं कारयामास तारावत्याः प्रियङ्करम् ।।३९।।
रत्नसोपानसंयुक्तं वैदूर्यवलभीयुतम् ।
सौवर्णनीपसम्बुद्धसुधर्मा सदृशं गुणैः ।।४०।।

वह स्वर्ण और रत्न से बने हुए स्तम्भों से युक्त और विश्वकर्मा द्वारा बनाया हुआ था। रत्न की सीढ़ियों से युक्त, वैदूर्यमणियुक्त छत तथा सोने के बने हुए पहाड़ की तलहटी में स्थित, गुणों में सुधर्मासभा के समान प्रिय था। राजा ने रानी तारावती की रक्षा के लिए ऐसा श्रेष्ठभवन बनवाया।।३९-४०।।

तस्यां समस्तभोग्यानि स्वादूनि च मृदूनि च ।
आप्तैरासादयामास पुरुषैश्चन्द्रशेखरः ।।४१।।

राजा चन्द्रशेखर ने उसमें सभी प्रकार के स्वादिष्ट और कोमल भोग्यपदार्थ तथा विश्वसनीय पुरुषों को स्थापित किया।।४१।।

ततस्तारावतीं देवीमादाय चन्द्रशेखरः ।
नित्यं प्रासादपृष्ठं तमारुह्य रमते नृपः ।।४२।।

उस समय राजा चन्द्रशेखर, तारावती देवी को लेकर, महल की छत पर उनके साथ नित्य विहार करते थे ।।४२।।

एवं संवत्सरं यावदन्यैरप्राप्यवेश्मनि ।
आप्तैरधिष्ठितद्वारि तां देवीं समरक्षत ।।४३।।

इस प्रकार से बिना अन्य के प्रवेश किये तथा द्वार पर विश्वसनीय पुरुषों के द्वारा उनकी रक्षा करते, एक वर्ष बीत गए।।४३।।

एकदा तु विना तेन करवीराधिपेन तु ।
उच्चैः प्रासादमारुह्य स्थिता तारावती सदा ।।४४।।
चिन्तयन्ती नृपं तं तु दयितं चन्द्रशेखरम् ।
तत्पदे न्यस्तमनसा सावित्रीव पतिव्रता ।।४५।।

एक बार जब करवीरपुर के राजा, प्रिय, चन्द्रशेखर के अभाव में सदैव उनके ही विषय में सोचती हुई, उन्हीं के चरणों में मन को लगाई हुई, सावित्री की भाँति पतिव्रता तारावती, उच्च महल पर चढ़कर स्थित हुई थीं।।४४-४५।।

आराध्य च महादेवं पार्वत्या सहितं तदा ।
इष्टां देवीं च सा देवी चिन्तयन्ती स्म च स्थिता ।।४६।।

उस समय वह, पार्वती के सहित महादेव की पूजा कर, अपनी इष्टदेवी का चिन्तन कर रही थीं।।४६।।

तत्र सा चिन्तयन्ती तु त्र्यम्बकं चन्द्रशेखरम् ।
विवेद भेदं न तयोश्चन्द्रशेखरयोर्द्वयोः ।।४७।।

उस समय त्र्यम्बक चन्द्रशेखर शिव का चिन्तन करते हुए उन्होंने भगवान् शिव और राजा चन्द्रशेखर, दोनों में कोई भेद नहीं माना ।।४७।।

एवं प्रासादपृष्ठे तु स्थिता तारावती सती ।
सुधर्मामध्यगा देवी शक्रश्रीरिव भूषिता ।।४८।।
अथोमया समं देवो वियता चन्द्रशेखरः ।
आजगाम तदा गच्छन् प्रासादं प्रति तं नृप ।।४९।।

इस प्रकार वह सती तारावती जब महल की छत पर स्थित हो सुधर्मा के बीच इन्द्र की पत्नी की तरह खड़ी हुई, सुशोभित हो रही थी। उसी समय पार्वती के सहित आकाशमार्ग से जाते हुए, भगवान् चन्द्रशेखर शिव, राजा चन्द्रशेखर के महल पर आ पहुँचे।।४८-४९।।

ददृशे सूत्तरन्ती सा उमाया सदृशी गुणैः ।
सर्वलक्षण-सम्पूर्णा माधवस्येव माधवी ।।५०।।
तां दृष्ट्वा न्यगदद् देवीं गौरीं वृषभकेतनः ।
स्मितप्रसन्नवदनः प्रहसन्निव भामिनीम् ।।५१।।

उस समय साथ में उतरती हुई गुणों में पार्वती के समान, माधव (विष्णु) की माधवी (लक्ष्मी) के समान, सभी लक्षणों से युक्त, उन रानी को देखकर प्रसन्नता से मुस्कुराते हुए, वृषभध्वजावाले शिव ने अपनी पत्नी पार्वती से कहा-।।५०-५१।।

।। ईश्वर उवाच ।।

इयं ते मानुषी मूर्तिः प्रिये तारावतीति या ।
भृंगिमहाकालयास्ते जन्मनो विहिता स्वयम् ।।५२।।

शिव बोले– हे प्रिये ! यह जो तारावती देवी है, वह तुम्हारी ही मानवीयमूर्ति है । जो तुमने स्वयं भृंगी और महाकाल के जन्म के लिए धारण किया है।।५२।।

त्वत्तो ह्यनन्यकान्तोऽहं नान्यं गन्तुमिहोत्सहे ।
त्वमिदानीं स्वयं चास्यां मूर्त्यां प्रविशभामिनि ।
तत उत्पादयिष्यामि महाकालं च भृङ्गिणम् ।।५३।।

तुम्हारे अतिरिक्त किसी अन्य को पत्नी न बनाने वाला मैं, किसी दूसरे के प्रति सम्पर्क करने की इच्छा नहीं रखता इसलिए हे देवी ! इस समय इस रानी के शरीर में तुम प्रवेश करो । तब मैं महाकाल और भृंगी को उत्पन्न करूँगा ।।५३।।

।। देव्युवाच ।।

ममैव मानुषी मूर्तिरस्यां वृषभकेतन ।
विशामि तेऽत्र वचनादुत्पादय सुतद्वयम् ।।५४।।

देवी (पार्वती) बोलीं– हे वृषभ की ध्वजा वाले शिव ! यह मेरा ही मानवीयरूप है । अतः आपके वचन को मानकर अब मैं इसमें प्रवेश करती हूँ, आप दो पुत्रों को पैदा करो ।।५४।।

मम भृङ्गिमहाकाल कपोतानां च शापतः ।
एवं मोक्षो भवेद् भर्ग तस्मात् त्वं कुरु मत्प्रियम् ।।५५।।

हे भर्ग ! ऐसा करने से मेरा तथा भृंगी और महाकाल, मेरे और कपोत के शाप से मोक्ष हो जायेंगे । इसलिए आप मेरा प्रियकार्य अवश्य कीजिए ।।५५।।

।। और्व उवाच ।।

प्रविवेश ततो देवी स्वयं तारावतीतनौ ।
महादेवोऽपि तस्यां तु कामार्थं समुपस्थितः ।।५६।।

*और्व बोले–*तब स्वयं देवी पार्वती ने तारावती के शरीर में प्रवेश किया । महादेव भी उनसे कामोपभोग हेतु सम्पर्क के लिए वहाँ उपस्थित हुए ।।५६।।

ततः सापर्णयाविष्टा देवी तारावती सती ।
कामयानं महादेवं स्वयमेवाभजन्मुदा ।।५७।।

तब अपर्णा, पार्वती से आवेशित हुई उस सती देवी तारावती ने कामासक्त महादेव का प्रसन्नतापूर्वक स्वयं ही भोग किया ।।५७।।

तस्मिन्कालेऽभवद्भर्गः कपाली चास्थिमाल्यधृक् ।
बीभत्सवेशो दुर्गन्धः पलितोऽतिविरूपधृक् ।।५८।।

उस समय भगवान् शिव, कपालपात्र तथा हड्डियों की माला धारण कर लिए, उनका वेश, घृणित हो गया, उनके शरीर से दुर्गन्ध निकलने लगी तथा उनके बाल पक गए और वे कुरूप भी हो गए ।।५८।।

कामावसाने तस्यां तु सद्योजातं सुतद्वयम् ।
अभवन्नृपशार्दूल तथाशाखामृगाननम् ।।५९।।

हे राजाओं में सिंह के समान ! काम-क्रीडा समाप्त हो जाने के बाद उन तारावती से शीघ्र ही, तत्काल दो पुत्र उत्पन्न हुए। जिनके मुख वानरों के समान थे।।५९।।

तद्देहान्निःसृतापर्णा जातयोः सुतयोस्तयोः ।
मोहयित्वा यथात्मानं न जानाति ककुत्स्थजा ।
अहं गौरी तथा भर्गभावेन मानुषेण तु ।।६०।।

उन दोनों पुत्रों के पैदा होते ही पार्वती, उसको मोहित करती हुई, उस महारानी के शरीर से इस प्रकार से निकल गईं कि ककुत्स्थ की पुत्री तारावती, यह न जान सकी कि मैं गौरी हूँ तथा मनुष्यवेश में यहाँ शिव ही उपस्थित हैं ।।६०।।

अथ तारावती देवी सुतौ दृष्ट्वा क्षितिस्थितौ ।
पातिव्रत्यात् परिभ्रष्टाम् आत्मानं वीक्ष्य भामिनी ।।६१।।

तब रानी तारावती ने पृथ्वी पर पड़े हुए उन बच्चों को देखकर अपने को पतिव्रतधर्म से भ्रष्ट हुआ माना ।।६१।।

तथा बीभत्सवेशं तु हरं दृष्ट्वाग्रतः स्थितम् ।
मुनिशापं तदा मेने प्राप्तं कालान्तकोपमम् ।।६२।।

तथा अपने सामने शिव को वीभत्सवेश में उपस्थित देखकर, उस समय उन्होंने यह माना कि कपोतमुनि का, यमराज के कोप के समान दारुणशाप, उन्हें प्राप्त हो गया है।।६२।।

इति शोकविमूढा च निनिन्द च सतीव्रतम् ।
इदं चोवाच तं वीक्ष्य महादेवं त्रिशूलिनम् ।।६३।।

इस प्रकार शोक से मोहित हो तथा उस त्रिशूल को धारण करने वाले महादेव को देखकर, सतीव्रत की निन्दा करते हुए, वे उनसे इस प्रकार बोलीं।।६३।।

।। तारावती उवाच ।।

मुनिव्रतादपि वरं नारीणां च सतीव्रतम् ।
इति स्म सततं धीरा व्याहरन्ति पुराविदः ।
न तत्सत्यमहं मन्ये यत्प्रवृत्तं ममेदृशम् ।।६४।।

तारावती बोलीं– सती स्त्रियों का आचरण मुनियों के व्रत से भी श्रेष्ठ होता है। यही मानकर प्राचीन विद्वान् व्यवहार करते हैं किन्तु आज जो मेरे साथ हुआ, उसके कारण से उपर्युक्त कथन को मैं सत्य नहीं मानती।।६४।।

।। और्व उवाच ।।

इत्युक्त्वा सा तदा देवी शुशोच च मुमोह च ।।६५।।
तामाहाथ महादेवो मा कार्षीस्त्वं वरानने ।
शोकं सतीव्रतं चापि मा निन्द त्वं सुचेतने ।।६६।।

और्व बोले– ऐसा कहकर उस समय वह देवी सोचने लगी और मूर्छित हो गईं तब महादेव ने उससे कहा— हे श्रेष्ठ मुख वाली ! तुम चिन्ता न करो। हे सुन्दर चेतना वाली ! तुम शोक मत करो और सतीत्व की निन्दा भी न करो।।६५-६६।।

कपोतेन यदा शप्ता त्वं तदैव तदग्रतः ।
उक्तवत्यसि दीर्घाक्षि यत् यद्भूतं तवाधुना ।।६७।।

हे लम्बी आँखों वाली ! जब तुम्हें कपोतऋषि ने शाप दिया था, उस समय तुमने उनके सामने ही जो कहा था, अभी जो हुआ है, उसी के अनुरूप ही हुआ है।।६७।।

यदि सत्यं महादेवो नित्यमाराध्यते मया ।
तेन सत्येन मे देवादाराध्याच्चन्द्रशेखरात् ।
स्वप्नेऽपि मुनिशार्दूल नान्यो मां कामयिष्यति ।।६८।।

उस समय तुमने कहा था–हे मुनिशार्दूल! यदि यह सत्य है कि मैंने नित्य-महादेव की आराधना की है तो उस सत्य के कारण मेरे आराध्यदेव चन्द्रशेखर के अतिरिक्त कोई अन्य स्वप्न में भी मेरा भोग नहीं करेगा।।६८।।

सोऽहमेव महादेव आराध्यश्चन्द्रशेखरः ।।६९।।
त्वं मया कामिता चापि मा कार्षीः शोकमङ्गने ।
इत्युक्त्वा स महादेवस्तत्रैवान्तरधीयत ।।७०।।

हे देवी ! मैं वही महादेव हूँ तथा तुम्हारा आराध्य चन्द्रशेखर भी मैं ही हूँ, इसलिए मेरे द्वारा भोग किये जाने से, तुम्हें शोक नहीं करना चाहिए। ऐसा कहकर वे महादेव वहीं अन्तर्ध्यान हो गए।।६९-७०।।

मायया मोहिता देवी तत्र तारावती सती ।
भूमौ मलिनवेशेन मन्युना समुपाविशत् ।।७१।।

उस समय सती देवी तारावती, माया से मोहित हो, क्रोध से भरकर, मलिनवेश में ही भूमि पर ही बैठ गईं।।७१।।

सुतौ च पतितौ भूमौ सा देवी नासभाजयत् ।
भर्तुरागमनं शश्वत् कांक्षन्ती भर्गभाषितम् ।।७२।।

धरती पर पड़े हुए दोनों बच्चों को भी उन देवी ने स्वीकार नहीं किया और शिव के कथनानुसार पति के आगमन की प्रतीक्षा करती रही ।।७२।।

नरराजगृहे चापि मुक्तकेशी तथास्थिता ।
अथ क्षणान्महाभागः स राजा चन्द्रशेखरः ।
प्रासादपृष्ठमागच्छद् द्रष्टुं तारावतीं तदा ।।७३।।

उस समय उस स्थिति में वे बाल को खोले हुए राजा के घर में भी सुशोभित नहीं हो रही थीं। उसी समय क्षणभर में महाभाग, राजा चन्द्रशेखर, तारावती को देखने के लिए महल की छत पर आये।।७३।।

स तं प्रासादमारुह्य जायां तारावतीं तदा ।।७४।।
ददर्श पतितां भूमौ मुक्तकेशीं निरुत्सवाम् ।
श्यामाननां श्वसन्तीं च सत्यगर्हणतत्पराम् ।।७५।।

उन्होंने महल की छत पर चढ़ कर अपनी पत्नी तारावती को उत्सव से रहित, बाल खोले हुए, भूमि पर पड़ी हुई देखा। उस समय उनका मुख काला हो गया था। वे लम्बी-लम्बी साँसे ले रहीं थी तथा सत्य की निन्दा करने में लगी हुई थीं।।७४-७५।।

सुतौ च पतितौ भूमौ सूर्याचन्द्रमसौ तदा ।
वानरास्यौ स ददृशे पदक्षोभं वृषस्य च ।।७६।।

उस समय राजा ने पृथ्वी पर पड़े हुए सूर्य और चन्द्रमा के समान दो पुत्रों को देखा। जिनके मुख बन्दर के समान थे। साथ ही उन्होंने वहाँ बैल के पैर के चिन्हों को भी देखा।।७६।।

इति सर्वमवेक्ष्याथ सः राजा चन्द्रशेखरः ।
भीतश्च विस्मितश्चैव भार्यां पप्रच्छ सम्भ्रमात् ।।७७।।

राजा चन्द्रशेखर ने इस प्रकार से इन सबको देखकर स्वयं भयभीत और आश्चर्य चकित होकर, अपनी उस पत्नी से पूछा।।७७।।

।। राजोवाच ।।

किं किं तारावति तव प्रवृत्तं निर्जने गृहे ।
को वा धर्षितवांस्त्वां हि शिवः सिंहवधूमिव ।।७८।।

राजा बोले– हे तारावती ! इस निर्जनगृह में तुम्हारा निवास क्यों हो रहा है? क्या किसी शिव (श्रृंगाल) ने तुम जैसी सिंहवधू का मर्दन किया है?।।७८।।

कस्य वा पृथुकावेतौ प्रोद्दीप्तौ वानराननौ ।
तन्मे द्रुतं समाचक्ष्व को वा त्वां कामितोऽपरः ।।७९।।

या बन्दर के समान मुखवाले ये दोनों दीप्तिमान बच्चे किसके हैं? यह तुम शीघ्र ही मुझे बताओ या किस अन्य पुरुष ने तुम्हारा भोग किया है? यही बताओ।।७९।।

।। और्व उवाच ।।

एवमुक्ता तु भूपेन तदा तारावती सती ।
वृत्तान्तं कथयामास सकलं चन्द्रशेखरे ।।८०।।

और्व बोले– तब राजा द्वारा कहे जाने पर सती तारावती ने समस्त वृत्तांत, राजा चन्द्रशेखर से कह दिया ।।८०।।

यथा समागतो भर्ग उत्तरं च यथोक्तवान् ।
तत्सर्वं कथयामास वाष्पकण्ठा सगद्गदा ।।८१।।

जिस प्रकार शिव आए थे और उन्होंने जो उत्तर दिया था, वह सब कुछ आँसू से गद्‌गद् वाणी से उन्होंने उस समय कह दिया।।८१।।

तस्यास्तद्वचनं श्रुत्वा चिन्तयंश्चन्द्रशेखरः ।
किं वृत्तमिति विज्ञातुं भूतले समुपाविशत् ।
स्वगतं चिन्तयन् राजा चकारेमां विचारणाम् ।।८२।।

उनके उस कथन को सुनकर राजा चन्द्रशेखर चिन्तित हो उठे और क्या हुआ, यह जानने के लिए वे जमीन पर बैठ गये तथा मन ही मन यह विचार किये।।८२।।

अनन्यकान्तो गिरिशः स नान्यां पार्वतीमृते ।
कामयिष्यति तस्मात् स न भर्गः परमेश्वरः ।।८३।।

पार्वती के अतिरिक्त अन्य किसी दूसरे के पति न होने वाले शिव से यह सम्भव नहीं है। इसलिए रानी से सम्पर्क करने वाले परमेश्वरशिव नहीं हो सकते।।८३।।

ऋषिशापो हि बलवांस्तच्छापादेव राक्षसः ।।८४।।
कोऽपि मायाबलोपेतः शङ्करच्छद्मनागतः ।
एषा सती प्रिया भार्या राक्षसेनापि दूषिता ।।८५।।

ऋषि का शाप बलवान् होता है और उस शाप से ही कोई राक्षस, माया-बल से युक्त होकर शंकर के वेश में यहाँ आया था और यह मेरी प्रियपत्नी, सती तारावती उस राक्षस द्वारा ही भ्रष्ट कर दी गई है।।८४-८५।।

कथं चेयं मया ग्राह्या पूर्ववत् सर्वकर्मसु ।
एतौ च तनयौ तस्य सद्योजातौ च राक्षसौ ।
अन्यथा वा कथंभूतौ शाखामृगमुखौ सुतौ ।।८६।।

अब पहले की तरह सभी कार्यो में यह मेरे द्वारा कैसे ग्रहण की जाएगी और इससे तुरन्त उत्पन्न दोनों राक्षसपुत्रों को मैं कैसे स्वीकार करूँगा, नहीं तो इन बच्चों के मुख बन्दर के समान कैसे हो गए ।।८६।।

एवं चिन्तयतस्तस्य देवौघविनियोजिता ।
सरस्वती वियत्स्था तु राजानमिति चाब्रवीत् ।।८७।।

जब वे राजा इस प्रकार से सोच रहे थे। उसी समय देवगणों द्वारा भेजी हुई सरस्वती देवी ने आकाश में ही स्थित होकर राजा से यह कहा—।।८७।।

।। सरस्वत्युवाच ।।

न त्वया संशयः कार्यस्तारावत्यां नृपोत्तम ।
सत्यमेव महादेवो भार्यां तव समेयिवान् ।।८८।।
एतौ च तनयौ तस्य राजंस्त्वं परिपालय ।
योऽन्यस्ते संशयोऽत्रास्ति नारदस्तं विनेष्यति ।।८९।।

सरस्वती बोलीं– हे उत्तम राजा ! तुम्हें तारावती के विषय में संशय नहीं करना चाहिए। सचमुच ही महादेव शिव ने तुम्हारी पत्नी के साथ सम्पर्क किया है और ये दोनों बालक भी उन्हीं के पुत्र हैं। हे राजन् ! तुम इन दोनों का पालन करो। इस विषय में जो तुम्हारा अन्य संशय है। नारद मुनि उसे दूर करेंगे ।।८८-८९।।

।। और्व उवाच ।।

इत्युक्त्वा विररामाशु वाग्देवी प्रियवादिनी ।
जातसम्प्रत्ययो राजा भार्यामाश्वासयत्तदा ।।९०।।
सुतौ तु देवदेवस्य संस्कृत्य विधिना तदा ।
पालयामास नृपतिराकांक्षन्नारदागमम् ।।९१।।
अथाजगाम देवर्षिर्नारदस्तस्य मन्दिरम् ।।९२।।

और्व बोले– प्रिय बोलने वाली वाग्देवी ऐसा कहकर जब चुप हो गईं तब विश्वास उत्पन्न हो जाने के कारण, राजा ने अपनी पत्नी को आश्वस्त किया तथा देवाधिदेव महादेव के दोनों पुत्रों का विधिपूर्वक संस्कार किया और नारद के आगमन की प्रतीक्षा करते हुए उनका पालन-पोषण करने लगे। तब एक समय देवर्षि नारद उनके महल में पधारे ।।९०-९२।।

पूजाभिर्बहुभिस्तं तु प्रत्यगृह्णात् सभूपतिः ।
पूजयित्वा यथान्यायं तारावत्या समं नृपः ।।९३।।

तब राजा चन्द्रशेखर ने रानी तारावती के सहित, बहुत प्रकार की पूजाओं से उनका यथोचितरूप से स्वागत और पूजन किया।।९३।।

उच्चैः प्रासादमतुलं सुरेशभवनोपमम्।
आरोहयामास तदा तं मुनिं चन्द्रशेखरः ।।९४।।
तत्रोपांशु तदा राजा सभार्यश्चन्द्रशेखरः।
पूर्वप्रवृत्तवृत्तान्तमपृच्छन्नारदं तु सः ।।९५।।

तब रानी सहित राजा चन्द्रशेखर, उन नारद मुनि को इन्द्र के भवन के समान ऊँचे अपने अतुलनीय भवन पर चुपचाप ले गये और उनसे पूर्व में घटे वृत्तान्त के विषय में पूछा।।९४-९५।।

।। राजोवाच ।।

पूतोऽस्म्यनुगृहीतोऽस्मि भवता ब्रह्मसूनुना ।
अन्तर्बहिश्च विप्रेन्द्र तुङ्गप्रासादगामिना ।।९६।।

राजा बोले– आप जैसे ब्रह्मा जी के पुत्र के इस ऊँचे महल में आये होने के कारण मैं अन्दर और बाहर दोनों ही ओर से पवित्र हो गया हूँ। हे विप्रेन्द्र ! इस प्रकार मैं आप द्वारा अनुग्रहित हो गया हूँ।।९६।।

एकं मे संशयं ब्रह्मंश्छेत्तुमर्हसि हृद्गतम् ।
त्वदन्यः संशयस्यास्य च्छेत्ता नैवास्ति कुत्रचित् ।।९७।।

हे ब्रह्मन्! मेरे हृदय में एक संशय उत्पन्न हो गया है, आप ही उसे दूर कर सकते हैं क्योंकि आपके अतिरिक्त कहीं भी इस संशय को दूर करने वाला कोई नहीं है।।९७।।

ऋषिशापेन भार्येयं मम तारावती सती ।
बीभत्सवेशाकृतिना धर्षिता कृत्तिवाससा ।।९८।।

यह मेरी पत्नी सती तारावती, कपोतऋषि के शाप के कारण, घृणितवेश और आकृति से युक्त शिव द्वारा धर्षित की गयी है।।९८।।

तस्यात्मजौ समुत्पन्नौ सद्योजाताविमौ पुनः ।
तत्र मे संशयं शश्वन्नित्यं चित्ते प्रवर्तते ।।९९।।

उसी के ये दो पुत्र तत्काल उत्पन्न हुए हैं। उस विषय में मेरे चित्त में एक संशय, शाश्वत्‌रूप से (लगातार) उठ रहा है।।९९।।

अनन्यकान्तो गिरिशो गिरिजां पार्वतीमृते ।
कथं सङ्गमयामास मानुषीं हीनजन्मजाम् ।।१००।।

हिमालय की पुत्री पार्वती को छोड़कर अन्य के पति न होकर भी भगवान शंकर ने मनुष्यशरीरवाली, हीनजन्मवाली, मेरी पत्नी से सम्पर्क क्यों किया?।।१००।।

कथमुत्पादयामास मनुष्यौ तनयौ स्वकौ ।
एतत्सर्वं समाचक्ष्व यदि गुह्यं न ते भवेत् ।।१०१।।

उन्होंने अपने इन दो मनुष्य-पुत्रों को क्यों उत्पन्न किया? यदि इसे आपके दृष्टि में गुप्त रखना उचित न हो तो यह सब बातें आप मुझसे कहिए।।१०१।।

।। और्व उवाच ।।

इति पृष्टः स तु मुनिश्चन्द्रशेखरभूभृता ।
कथयामास तत्सर्वं नारदो मुनिसत्तमः ।।१०२।।

और्व बोले– तब राजा चन्द्रशेखर द्वारा इस प्रकार से पूछे जाने पर मुनियों में श्रेष्ठ, नारद मुनि ने वह सब वृत्तान्त कह सुनाया ।।१०२।।

यथा भृंगिमहाकालौ समुत्पन्नौ पुरातनौ ।
यथा शप्तौ च पार्वत्या तौ चोदाहरतां यथा ।।१०३।।
यथा पौष्यसुतो जातो भर्गः स चन्द्रशेखरः ।
तारावती ककुत्स्थस्य गृहे गौरी यथाभवत् ।।१०४।।
तत्सर्वं कथयामास नारदश्चन्द्रशेखरे ।
इदं च परमाख्यानं कथयामास नारदः ।।१०५।।

प्राचीन काल में जिस प्रकार भृंगि और महाकाल उत्पन्न हुए और पार्वती ने जिस प्रकार उन दोनों को शाप दिया। जिस प्रकार वे शिव, राजा पौष्य के पुत्र के रूप में उत्पन्न हुए तथा राजा ककुत्स्थ के घर में गौरी, तारावती हुईं, नारद जी ने उस सभी परमश्रेष्ठ आख्यान को राजा चन्द्रशेखर से कह सुनाया ।।१०३-१०५।।

।। नारद उवाच ।।

व्याजहार यदापर्णां कालीति वृषभध्वजः ।
तदोमा तपसे याता वपुर्गौरत्वकांक्षया ।।१०६।।

नारद जी बोले– एक बार जब भगवान् शंकर ने पार्वती को काली कहकर उलाहना दिया या व्यंग किया तब शरीर की गोराई प्राप्त करने की इच्छा से पार्वती तपस्या करने चली गईं ।।१०६।।

अमर्षयुक्ता वचनाच्छंकरस्य गिरेः सुता ।
विनीयमाना भर्गेण सानुं हिमवतो गिरेः ।।१०७।।

शंकर द्वारा अपमानित की हुई, पर्वतराजहिमालय की पुत्री, उस समय शंकर के वचनों से क्रोधित होकर हिमालयपर्वत पर चली गईं।।१०७।।

तस्यां गतायां पार्वत्यां शङ्करो विरहार्दितः ।
कैलासाद्रिं परित्यज्य मेरुपृष्ठं तदा ययौ ।।१०८।।

तब पार्वती के इस प्रकार से रूठ कर चले जाने पर भगवान् शंकर, विरह से पीड़ित हो, कैलाशपर्वत छोड़ कर, सुमेरुपर्वत पर चले गए।।१०८।।

तत्रापि शर्म ना लेभे पार्वत्या च विनाकृतः ।
मोहितः कामदेवेन तथा वै योगनिद्रया ।।१०९।।

वहाँ भी कामदेव तथा योगनिद्रा के द्वारा मोहित, भगवान् शिव, पार्वती के बिना शान्ति, अनुभव नहीं किये।।१०९।।

अथैकदा मेरुपृष्ठे चरन्तीं सुमनोहराम् ।
सावित्रीं ददृशे शम्भुः पार्वत्याः सदृशीं गुणैः ।।११०।।

एकबार सुमेरु पर्वत पर घूमते हुए भगवान शंकर ने सुन्दरी, सावित्रीदेवी को जो गुणों में पार्वतीदेवी के ही समान थीं, देखा।।११०।।

तां दृष्ट्वा मदनाविष्टः पार्वत्या विरहार्दितः ।
अविद्यया समाविष्टो बभूव प्राकृतो यथा ।।१११।।

उन्हें देखकर पार्वती के विरह से दुःखी शिव, सामान्यपुरुष की भाँति अज्ञान से ग्रस्त हो, कामाविष्ट (काम से आवेशित) हो गए।।१११।।

अथ तां पार्वतीभ्रान्त्या चरन्तीमन्वधावत ।
एहि मां पार्वति शुभे भवद्विरहपीडितम् ।।११२।।
प्रहरत्येष मां कामः पूर्ववैरमनुस्मरन् ।
मम तत्र प्रतीकारं कुरु सम्प्रति वल्लभे ।।११३।।

पार्वती के भ्रम में वे उनके पीछे दौड़ते हुए बोले, हे सुन्दरी पार्वती ! मेरे पास आओ । मैं तुम्हारे विरह में पीड़ित हो रहा हूँ क्योंकि इस समय यह कामदेव अपने पुराने वैर का स्मरण कर, मेरे ऊपर प्रहार कर रहा है । हे प्रिये ! इस समय तुम उसका प्रतिकार करो।।११२-११३।।

इत्युक्त्वा विमुखीं यान्तीं सावित्रीं वृषभध्वजः ।
स्कन्धे हस्तेन पस्पर्श सा चुकोप ततो भृशम् ।।११४।।

ऐसा कहकर वृषभध्वज ने मुँह मोड़कर जाती हुई, सावित्री के कंधे को हाथ से स्पर्श किया । तब वे बहुत अधिक क्रोधित हो उठीं।।११४।।

अथ सा सम्मुखी भूत्वा सावित्र्यतिपतिव्रता ।
इदमाह महादेवं गर्हयन्ती वृषध्वजम् ।।११५।।

तदनन्तर उन पतिव्रता सावित्री देवी ने शिव की ओर मुख करके, वृषभध्वज महादेव की निन्दा करते हुए यह कहा।।११५।।

किं त्वं पशुपते मूर्ख! मानुषः प्राकृतो यथा ।
निरस्य कलहैर्भार्यामनुनेतुमिहार्हसि ।।११६।।

हे मूर्ख पशुपती (महादेव)! सामान्य मनुष्य की भाँति झगड़े में अपनी पत्नी को निकाल कर, तुम इस समय क्यों मनाना चाहते हो?।।११६।।

विमूढचेतनः कामैर्न संस्तौषि परस्त्रियम् ।
असंस्तुत्वापि सम्प्रष्टुं मादृशीं युज्यते तव ।।११७।।

काम से विमूढ़बुद्धि हुए तुम पराई स्त्री को पहचानते भी नहीं हो और बिना पहचान की मुझ जैसी से, तुम्हारा पूछना, क्या उचित है?।।११७।।

किमहं पार्वती मूढ येन मत्स्कन्धदेशतः ।
हस्तं ददास्यविज्ञाय सावित्रीं विद्धि मां सतीम् ।।११८।।

ऐ मूर्ख! क्या मैं पार्वती हूँ, जो तुमने बिना जाने ही मेरे कंधे पर अपना हाथ रख दिया। मुझ सती को तुम सावित्री समझो ।।११८।।

यस्मान्मानुषवन्मां त्वमनुजानासि बर्बर ।
तस्मात् त्वं मानुषीयोन्यां सुरतं संविधास्यसि ।।११९।।

हे बर्बर (असभ्य)! इस समय एक मनुष्य की भाँति तुम मेरा अनुगमन कर रहे हो। अत: तुम मनुष्य योनि में उत्पन्न हुई स्त्री के साथ सम्भोग करोगे ।।११९।।

गौरीमृते नान्यकान्तस्त्वमन्यां तु समीहसे ।
तस्यैतत्फलितं भर्ग गच्छ मां त्वं परित्यज ।।१२०।।

यद्यपि तुम गौरी के सिवाय किसी अन्य के पति नहीं हो तो भी तुम अन्य स्त्री की इच्छा करोगे, तुम्हारे इस अपराध का यही फल होगा। इसलिए हे भर्ग ! तुम मुझे छोड़ दो और चले जाओ ।।१२०।।

इत्युक्त्वा सा गता देवी स्वमाश्रमपदं सती ।
लज्जाविस्मयसंयुक्तो हरोऽप्यायात् निजास्पदम् ।।१२१।।

ऐसा कहकर सती देवी सावित्री, अपने निवासस्थान पर चली गईं और शिव भी लज्जा तथा विस्मय से युक्त होकर अपने निवासस्थान पर लौट आये।।१२१।।

अतोऽयं मानुषीयौनौ सुरतं शङ्करोऽकरोत् ।
तस्मान्निःसंशयं राजन्निमां तारावतीं सतीम् ।
दयस्व तनयावेतौ भर्गस्य प्रतिपालय ।।१२२।।

इसीलिये इस समय भगवान् शंकर ने मानुषीयोनि से उत्पन्न, तारावती के साथ सम्भोग किया है। इसीलिए तुम संशयरहित होकर, इस सती तारावती को स्वीकार करो तथा शिव के इन दोनों पुत्रों का पालन करो ।।१२२।।

।। और्व उवाच ।।

ततः स राजा श्रुत्वैव नारदस्य मुखात् तदा ।
आत्मनः शम्भुरूपत्वं गौरी तारावतीति च ।
मनुष्ययोनावुत्पन्नावुमावृषभकेतनौ ।।१२३।।

और्व बोले– तब राजा चन्द्रशेखर ने नारद के मुख से अपने शिवरूप को

तथा तारावती के गौरीरूप को और शिव एवं पार्वती दोनों को ही मनुष्ययोनि में उत्पन्न हुआ सुना॥१२३॥

श्रुत्वाहितहर्षितो राजा विस्मितो नारदं पुनः।
पप्रच्छ मुनिशार्दूल विज्ञातुमिति चात्मनः॥१२४॥
शङ्करत्वं च गौरीत्वं तारावत्याः समक्षतः।
यथाहं तत्तु पश्यामि तं मां ज्ञापय निश्चितम्॥१२५॥

उपरोक्त हितकर वचनों को सुनकर राजा चन्द्रशेखर, प्रसन्न एवं आश्चर्य चकित होकर नारद जी से पुनः बोले–हे मुनि शार्दूल ! मैं अपने शंकररूप को तथा तारावती के गौरीरूप को, जिस प्रकार से निश्चित और प्रत्यक्षरूप में देख सकूं, उसका मुझे ज्ञान कराइए॥१२४-१२५॥

॥ नारद उवाच ॥

अङ्के तारावतीं कृत्वा अक्षिणी त्वं निमीलय।
क्षणं तारावती चापि निमीलयतु चक्षुषी॥१२६॥

नारद बोले– तुम तारावती को गोद में लेकर क्षणभर के लिए अपनी आँखे बन्द कर लो और तारावती भी उसी प्रकार अपनी आँखें मूद लें॥१२६॥

निमील्य पश्चाद्राजेन्द्र उन्मीलयं ततो द्रुतम्।
ततस्ते शाम्भवं ज्ञानं रूपं चापि भविष्यति॥१२७॥

हे राजेन्द्र ! इस प्रकार अपनी आँखें मूंदने के पश्चात् तेजी से खोल दो तब तुम्हें अपने शिवरूप का ज्ञान हो जायेगा॥१२७॥

॥ और्व उवाच ॥

इत्युक्तो नारदेनाथ स राजा चन्द्रशेखरः।
वामेन पाणिना धृत्वा देवीं तारावतीं सतीम्॥१२८॥
चक्षुषी च तया सार्धं निमील्योन्मील्य तत्क्षणात्।
तन्निमीलनकाले तु-तस्याभूच्छम्भुरूपता॥१२९॥
गौरीरूपाऽभवद् देवी ततस्तारावती सती।
अहं शम्भुरहं गौरीति विज्ञानं तयोरभूत्॥१३०॥

और्व बोले–नारद द्वारा ऐसा कहे जाने पर राजा चन्द्रशेखर ने सती, रानीतारावती को बायें हाथ से पकड़ लिया। तथा उन्हीं रानी के साथ अपने नेत्रों को बंद किया और तत्पश्चात् खोला। उस आँख मूंदने के समय ही राजा शिवरूप को प्राप्त हो गये। तब सती रानी तारावती भी गौरीरूप में हो गईं तथा दोनों को यह ज्ञान हो गया कि मैं शिव हूँ, तो मैं पार्वती हूँ॥१२८-१३०॥

ततः प्रोवाच तं शम्भुं नारदः प्रहसन्निव ।
शम्भुः साक्षाद् भवान् गौरी देवी तारावती स्वयम् ।
प्रत्यक्षं ते महाभाग संपश्यात्मानमात्मना ।।१३१।।

तब नारद ने शिवरूपधारी उस राजा से हँसते हुए कहा- ''आप साक्षात् शिव हो तथा रानी तारावती स्वयं पार्वती हैं। हे महाभाग ! यह आज आपके सामने प्रत्यक्ष है, अपने आपको देख लो।।१३१।।

ततो राजा भवत्वेवमित्युक्त्वाथ स्वकां तनुम् ।।१३२।।
व्याघ्रचर्मपरीधानां दशभिर्बाहुभिर्युताम् ।
त्रिशूलखट्वाङ्गधरां शक्त्यादिधृतहस्तकाम् ।।१३३।।
वृषभोपरि संस्थां तु जटाजूटविभूषिताम् ।
तारां च विद्युद्गौराङ्गीं पद्महस्तां शुभाननाम् ।
वीक्ष्य सम्प्रत्ययं प्राप ज्ञानेनापि तदात्मनि ।।१३४।।

तब राजा ने ऐसा ही हो कहकर, अपने शरीर को बाघ के चमड़े से ढका हुआ, दसभुजाओं से युक्त, हाथों में त्रिशूल, खट्वाङ्ग, शक्ति आदि धारण किये हुए देखा । वे स्वयं जटा-जूट से सुशोभित हो बैल पर सवार थे और रानी तारावती को जो बिजली के समान गोरेअंगोंवाली, हाथ में कमल-पुष्प लिए हुए, सुन्दरमुख-वाली थीं, देखा, उपर्युक्त अवस्था में अपने व रानी को देखकर उन्होंने अपने ज्ञानसे विश्वास प्राप्त किया।।१३२-१३४।।

ततस्तु नारदः प्राह शृणु राजन् वचो मम ।।१३५।।
नृयोनौ वैष्णवी माया युवां पूर्वममोहयत् ।
तेन तेन शरीरेण शम्भुत्वं नेक्षितं त्वया ।।१३६।।

तब नारद ने कहा हे राजन् ! मेरी वाणी सुनो । वैष्णवी माया ने पहले ही तुम दोनों को मोहित कर दिया था, जिससे तुम दोनों अपने शरीर के शिवरूप और गौरीरूप को नहीं देख सके।।१३५-१३६।।

अधुना दर्शिता तेऽद्य शम्भुना शम्भुरूपता ।
निमील्य नयनद्वन्द्वं पुनस्त्वं याहि मर्त्यताम् ।।१३७।।

अब शिवजी द्वारा तुम्हें आज अपने शिवरूप को दिखाया गया है । अब अपने दोनों नेत्रों को बन्द करके पुनः आप अपने मनुष्यरूप को प्राप्त करो।।१३७।।

आसाद्य मानुषं भावमादेहान्तं स्थिरो भव ।
तथा तारावती देवी तूर्णं भवतु मानुषी ।।१३८।।

अब आप मनुष्य भाव को प्राप्त करके देहान्त तक स्थिर हों। उसी प्रकार तारावती भी शीघ्र ही मनुष्य-स्त्री के रूप को प्राप्त करें।।१३८।।

।। और्व उवाच ।।

आत्मनो देवरूपत्वं ज्ञात्वा दृष्ट्वाऽथ चक्षुषा ।
जातसम्प्रत्ययो राजा न्यमीलयत लोचने ।।१३९।।

और्व बोले–अपने देवरूप को जानकर तथा आँखों से प्रत्यक्ष देखकर, विश्वास हो जाने पर, राजा चन्द्रशेखर ने अपने दोनों नेत्रों को बन्द कर लिया।।१३९।।

ततस्तारावती देवी न्यमीलयत चक्षुषी ।
पुनस्तौ मानवौ जातौ महिषी नृपतिस्तथा ।।१४०।।

तब रानी तारावती ने भी अपनी आँखों को मूंद लिया और दोनों ही राजा तथा रानी, मनुष्य हो गये।।१४०।।

उन्मील्य तौ तु नेत्राणि मानुषत्वं तदात्मनोः ।
दृष्ट्वा आवां तथा मर्त्याविति ज्ञानमभूत् तयोः ।।१४१।।

उन दोनों ने नेत्रों को खोलकर अपने मनुष्यरूप को पुनः देखा जिससे उन्हें यह ज्ञान हुआ कि हम दोनों मरणधर्मा मनुष्य ही हैं।।१४१।।

ततो विमोहितौ तौ तु दम्पती विष्णुमायया ।
अहं राजा च महिषी अहमित्यभवन्मतिः ।।१४२।।

तब विष्णुमाया से विशेष रूप से मोहित, उस दम्पति की, मैं राजा हूँ और मैं रानी हूँ, ऐसी बुद्धि हो गयी ।।१४२।।

तस्यां सुतौ तु जायायां देवांशाविति तन्मती ।
आवां स्थिता कला मूर्ध्नि अभूतां जातिचिह्नितौ ।।१४३।।

उनको यह बुद्धि हो गयी कि उनकी पत्नी के गर्भ से भी जो दो पुत्र उत्पन्न हुए हैं, वो महादेव के अंश से उत्पन्न हुए हैं। हम लोगों पर भी जन्म से ही चन्द्रकला और तारा का चिह्न, ईश्वरीयकृपा से ही प्राप्त हैं।।१४३।।

ततः स राजा न्यगदत् तं मुनिं नारदं मुदा ।
सत्यमेतत् त्वया प्रोक्तं करिष्ये वचनं तव ।।१४४।।
पालयिष्ये शम्भुपुत्रौ सत्यलभ्ये सदैव हि ।
किन्त्वेतौ मुनिशार्दूल त्वं संस्कुरु यथाविधि ।।१४५।।

तब **राजा ने नारदमुनि से प्रसन्नतापूर्वक कहा**–यह आपने सत्य ही कहा है, मैं आपके कथनानुसार करूँगा। सचमुच में प्राप्त इन दोनों शिवपुत्रों का पालन करूंगा किन्तु हे मुनिशार्दूल! आप इन दोनों का विधिपूर्वक संस्कार कीजिए ।।१४४-१४५।।

।। और्व उवाच ।।

ततस्तयोर्नाम चक्रे नारदो वचनान्नृप ।
ज्येष्ठो भैरवनामाऽभूद् गौरीपुत्रो भयङ्करः ।।१४६।।

औंर्व बोले—तब राजा के कथनानुसार नारद मुनि ने उन दोनों का नामकरण किया। उनमें गौरी का बड़ा पुत्र, जो देखने में भयंकर था, उसका नाम भैरव हुआ॥१४६॥

वेतालसदृशः कृष्णो वेतालोऽभूत् तथापरः ।
इति चक्रे तयोर्नाम देवर्षिब्रह्मणः सुतः ।।१४७।।

वेताल के समान जो काला, उनका दूसरा पुत्र था। वह वेताल हुआ। इस प्रकार से ब्रह्मा के पुत्र, देवर्षि नारद ने उन दोनों गौरीपुत्रों के क्रमशः भैरव और वेताल नाम रक्खे॥१४७॥

अन्यांश्च सर्वान् संस्कारान्नारदो मुनिसत्तमः ।
चकार क्रमशो वाक्याच्चन्द्रशेखरभूभृतः ।।१४८।

इस प्रकार राजा चन्द्रशेखर के कथनानुसार मुनियों में श्रेष्ठ, नारद मुनि ने उन दोनों के अन्य सभी संस्कार भी सम्पन्न किये॥१४८॥

एवं सर्वान् संशयांस्तु सञ्छिद्यमुनिसत्तमः ।
संस्कृत्य भर्गतनयौ विसृष्टस्तेन भूभृता ।
ययावाकाशमार्गेण नाकपृष्ठं स नारदः ।।१४९।।

इस प्रकार से मुनियों में श्रेष्ठ नारद जी, सभी शंकाओं को दूर करने तथा शिव के दोनों पुत्रों को संस्कारित करने के पश्चात्, राजा चन्द्रशेखर से विदा किए जाने पर आकाशमार्ग से स्वर्गलोक को चले गये॥१४९॥

नारदे तु गते राजा मुदितश्चन्द्रशेखरः ।
तारावत्या समं रेमे करवीराह्वये पुरे ।।१५०।।
शम्भोरंशोऽहमित्येवं गौर्यास्तारावतीति च ।
जातश्रद्धस्तदा राजा शशास सुचिरं क्षितिम् ।।१५१।।

इस प्रकार नारद जी के चले जाने के पश्चात् राजा चन्द्रशेखर, करवीर नामक उस नगर में तारावती के साथ में, मैं शिव का अंश हूँ और यह तारावती, गौरी का अंश हैं, इस प्रकार की श्रद्धा उत्पन्न हो जाने से, तारावती के साथ बहुत समय तक रमण किए तथा उन्होंनें दीर्घकाल तक पृथ्वी पर शासन किया॥१५०-१५१॥

तनयौ च हरस्याथ तदा वेतालभैरवौ ।
ववृधाते महात्मानौ शरच्चन्द्राविवोद्यतौ ।।१५२।।

तब शिव के भैरव और वेताल नामक वे दो महात्मापुत्र जो शरदऋतु के चन्द्रमा की भाँति देदीप्यमान थे, बड़े हुए॥१५२॥

चन्द्रशेखरभूपस्य तारावत्यां नृपोत्तमः ।।१५३।।
त्रयः पुत्रा महावीर्या रूपसम्पत्-समन्विताः ।
ज्येष्ठस्तत्रोपरिचरो दमनोऽलर्क एव च ।।१५४।।

तारावती से राजा चन्द्रशेखर के भी महान् शक्ति, रूप और धन से युक्त तीन पुत्र हुए। उनमें बड़ा उपरिचर था। दमन और अलर्क क्रमशः मझले और छोटे थे॥१५३-१५४॥

वेतालभैरवाभ्यां तु ज्यायांसस्तेऽभवंस्त्रयः।
एवमेते त्रयः पुत्राश्चन्द्रशेखरभूभृतः ॥१५५॥

राजा चन्द्रशेखर के उपर्युक्त तीनों पुत्र, वेताल और भैरव से ज्येष्ठ थे॥१५५॥

वेतालभैरवौ चापि सद्योजातौ हरात्मजौ।
समानभोगा ववृधुश्चन्द्रशेखरभूभृतः।
पालितास्तु सभार्येण समानासनवाहनाः ॥१५६॥

राजा चन्द्रशेखर और रानी तारावती के द्वारा आसन और वाहन जैसे समान भोग से पाले हुए, शिव के तत्काल उत्पन्न, वेताल और भैरव नामक पुत्र भी बड़े हुए॥१५६॥

इति पञ्चसुता महाबलाः
पञ्चभूतसदृशाः कृता विधेः।
ववृधिरे प्रथमं सकलं जगत्
समतीत्य मुदा बलदर्पिताः ॥१५७॥

॥ इति श्रीकालिकापुराणे वेतालभैरवजन्मवृत्तान्तनाम पञ्चाशोऽध्यायः ॥५०॥

इस प्रकार विधिद्वारा किए गए, पाँच महाभूतों के समान, बल में बड़े हुए, महान् बलशाली, पाँचोंपुत्र, प्रारम्भिक अवस्था में ही सारे संसार को पारकर, बल के दर्प से प्रसन्न हो बड़े हुए ॥१५७॥

॥श्रीकालिकापुराण का वेताल और भैरवजन्मवृत्तान्तनामक पचासवाँ अध्याय सम्पूर्ण हुआ॥५०॥



एकपञ्चाशोऽध्यायः
वेताल-भैरवचरितकथनम्

।। और्व उवाच ।।

अथ कालक्रमेणैव प्रवृद्धास्ते महाबलाः ।
शस्त्रास्त्रज्ञानकुशलाः शास्त्रार्थपरिनिष्ठिताः ।।१।।

और्व बोले–कालक्रम से धीरे-धीरे वे पाँचो बड़े हुए। वे सभी महान् बलशाली, शस्त्र-अस्त्र के ज्ञान में कुशल तथा शास्त्रार्थ में पारंगत थे।।१।।

सम्प्राप्तयौवना दीप्ता दुर्धर्षाः परिपन्थिभिः ।
धर्मार्थज्ञानकुशला ब्रह्मण्याः सत्यवादिनः ।।२।।

वे युवाअवस्था को प्राप्त होकर चमक रहे थे और शत्रुओं के लिए कठिनाई से जीते जाने वाले थे । वे धर्म और अर्थ के ज्ञान में कुशल, ब्राह्मणों के भक्त तथा सत्यवादी थे।।२।।

सदा सहचरौ तत्र प्रीत्या वेतालभैरवौ ।
अलर्को दमनश्चैव तथोपरिचरस्त्रयः ।
सदा सहचरा नित्यं भ्रातरश्चान्द्रशेखराः ।।३।।

वहाँ वेताल और भैरव जैसे साथियों के साथ अलर्क, दमन और उपरिचर नामक तीनों पुत्र सदैव प्रेमपूर्वक रहते थे । इस प्रकार चन्द्रशेखर के पुत्र, पाँचों भाई नित्य, सदैव साथ-साथ रहा करते थे।।३।।

त्रिष्वात्मजेषु नृपतेः सदोपरिचरादिषु ।
ममत्वमधिकं नित्यं प्रीतिस्नेहौ तथाधिकौ ।।४।।

राजाचन्द्रशेखर का उपरिचर आदि अपने तीनों पुत्रों में नित्य, सदैव अधिक प्रेम, स्नेह और ममत्व रहता था।।४।।

वेताले भैरवे चापि चन्द्रशेखरभूभृतः ।
नास्त्येव तादृशी प्रीतिर्यादृशी तेषु जायते ।।५।।

राजाचन्द्रशेखर की वेताल और भैरव में वैसी प्रीति नहीं थी जैसी उन तीनों में थी।।५।।

न तौ दृष्ट्वा स नृपतिः कदाचिच्चन्द्रशेखरः ।
अत्याह्लादयतेऽजस्रं पुत्रबुद्ध्येष्यतेऽथवा ।।६।।

राजा चन्द्रशेखर उन दोनों को देखकर न तो कभी प्रसन्न होते थे और न तो कभी उन दोनों के प्रति पुत्रभावना ही रखते थे।।६।।

तौ वीरौ धर्मकुशलौ महाबलपराक्रमौ ।
त्रैलोक्यविजये दक्षौ शस्त्रास्त्रग्रामपारगौ ।।७।।

वे दोनों वीर, धर्म में कुशल, महान्, बलवान और पराक्रमी, तीनों लोको को जीतने में दक्ष, शस्त्रास्त्र के समूहों में पारंगत थे।।७।।

ताभ्यां बिभेति च नृपः कदा किंवा करिष्यतः ।
वेतालभैरवावेतौ मां सुतान् राज्यमेव वा ।।८।।

राजा उन दोनों से डरते थे कि ये वेताल और भैरव न जाने कब, मेरे पुत्रों तथा मेरे राज्य के प्रति क्या कर दें।।८।।

इति चिन्तापरो राजा नित्यमेव निरीक्षते ।
प्रणतावपि तत्पुत्रौ सम्यग् वेतालभैरवौ ।।९।।

इस प्रकार की चिन्ता से ग्रस्त हो राजा, उन दोनों वेताल और भैरव नामक विनम्रपुत्रों को, नित्य ही भँली-भाँति देखा करते थे।।९।।

अथोपरिचरं राजा यौवराज्येऽभ्यषेचयत् ।
ज्यायांसमौरसं पुत्रं सर्वराजगुणैर्युतम् ।।१०।।

तब राजा ने सभी राजसी गुणों से युक्त, अपने औरस (सगे) पुत्रों में बड़े उपरिचर नामक पुत्र को युवराज के पद पर अभिषिक्त कर दिया।।१०।।

यः पश्चात् सर्वभूपालान् योजयिष्यति नीतिभिः ।
राजोपरिचरो नाम सर्वशास्त्रार्थपारगः ।।११।।

जो बाद में सभी राजाओं को नीतियों में लगायेंगे ऐसे राजा उपरिचर, सभी शास्त्रों के अर्थज्ञान में पारंगत थे ।।११।।

दमनाय ददौ दायं तथालर्काय भूमिभृत् ।
प्रभूतधनरत्नानि तथासनरथान् बहून् ।।१२।।
तावन्ति न ददौ ताभ्यां दायवित्तानि भागशः ।
वेतालभैरवाभ्यां तु ततस्तौ मन्युराविशत् ।।१३।।

उस राजा चन्द्रशेखर ने बहुत से धन एवं रत्न, आसन और रथ, हिस्से के रूप में दमन तथा अलर्क को भी दिया किन्तु उन दोनों (वेताल व भैरव) को उन्होंने कोई भी धन का हिस्सा नहीं दिया, जिससे वे दोनों ही क्रोध से भर गये।।१२-१३।।

मन्युनाभिपरीतौ तौ विचरन्तावितस्ततः ।
न भोगमीप्सतां वीरौ तपसे च कृतोद्यमौ ।
अनूढभार्यौ सततं निर्जने वसतः सदा ।।१४।।

क्रोध से भरकर वे दोनों इधर-उधर घूमते थे, इच्छितभोगपाने में असमर्थ, बिना पत्नी के, सदा निर्जन में रहते हुए, वे दोनों तपस्या में ही उद्यम करने लगे ।।१४।।

तथाभूतौ तदा पुत्रौ देवौ वेतालभैरवौ ।
बबुधे चिन्तयाक्रान्ता देवी तारावती तदा ।।१५।।

तब वेताल और भैरव नामक अपने दोनों देवपुत्रों को उस दशा में जानकर देवी तारावती चिन्तित हो उठीं।।१५।।

राजोपरिचराद् भीता पत्युश्च चन्द्रशेखरात् ।
नोवाच किञ्चित् सुदतीच्छन्नं तौ बोधयत्यपि ।।१६।।

वे सुन्दर दाँतो वाली, राजा उपरिचर और अपने पति चन्द्रशेखर के भय से कुछ भी नहीं बोलीं किन्तु गुप्तरूप से वेताल और भैरव को ही समझाती रहीं।।१६।।

एतस्मिन्नन्तरे विद्वान् कपोतो मुनिसत्तमः ।
चित्राङ्गदासङ्गभोगी सन्तुष्टः सुरतोत्सवैः ।।१७।।
चित्राङ्गदां परित्यज्य सपुत्रां सहचारिणीम् ।
इयेष गन्तुं स प्रोचे तदा चित्राङ्गदां वचः ।।१८।।

इसी बीच चित्राङ्गदा के संग, भोग करने वाले कपोतमुनि ने सुरतोत्सव से संतुष्ट होकर, अपनी सह चारिणी, चित्राङ्गदा को पुत्रों के सहित छोड़कर, वन में जाने की इच्छा की और तब चित्राङ्गदा से उन्होंने यह वचन कहा।।१७-१८।।

।। कपोतोवाच ।।

चित्राङ्गदे तपस्तप्तुं गमिष्यामि तपोवनम् ।
किं ते प्रियं करोमीह तं मे वदमनोहरे ।।१९।।

कपोत बोले–हे मन को हरने वाली चित्राङ्गदे ! मैं तपस्या करने के लिए तपोवन में जाऊँगा। मैं इस समय तुम्हारा कौन सा प्रिय कार्य करूँ, यह बताओ।।१९।।

।। चित्राङ्गदोवाच ।।

तुम्बुरुश्च सुवर्चाश्च तनयौ तव सुव्रत ।
एतयोस्त्वं मुनिश्रेष्ठ प्रियं कुरु यथोचितम् ।।२०।।

चित्रङ्गदा बोली– हे सुन्दरव्रतवाले ! तुम्बरु और सुवर्चा नामक आपके जो दोनों पुत्र हैं। यथोचित रूप से आप इन दोनों का प्रिय कीजिए।।२०।।

मां चापि भगिनीगेहे संस्थाप्य द्विजसत्तम ।
तदा तपोवनं गच्छ यदि ते रोचतेऽनघ ।।२१।।

हे निष्पाप ! हे द्विजों में श्रेष्ठ ! मुझे भी बहन के घर में स्थापित कर दीजिए तब यदि आपको अच्छा लगे तो आप तपोवन को जाइये।।२१।।

।। और्व उवाच ।।

इति श्रुत्वा वचस्तस्याः कपोतो मुनिसत्तमः ।
हिरण्यार्थं समालोच्य कुबेरसदनं ययौ ।।२२।।

और्व बोले– मुनियों में श्रेष्ठ कपोत मुनि, उसके इस प्रकार के वचनों को सुन और उस पर विचार कर, धन के लिए कुबेर के निवास, अलका पुरी गये ।।२२।।

प्रार्थयित्वा कुबेरं तु सुवर्णानां शतानि षट् ।
निष्काणां तु सहस्राणि स लेभे मुनिसत्तमः ।।२३।।

कुबेर से प्रार्थना करके उन मुनिश्रेष्ठ ने छः सौ सुवर्ण तथा एक हजार निष्क प्राप्त किये ।।२३।।

शतं भारांश्च रत्नानामानीय च सवीवधैः ।
पुत्राभ्यां प्रददौ विप्रो भार्यायै च विशेषतः ।।२४।।

तथा सौ भार (एक भार = दो हजार पल) तौल के रत्न, भारवाहकों सहित प्राप्त किया तथा उन्हें लाकर उस ब्राह्मणदेवता ने अपने पुत्रों को, विशेष कर अपनी पत्नी को दे दिया ।।२४।।

ततस्तां सहपुत्राभ्यां तैर्धनैरपि भूरिभिः ।
चित्राङ्गदामतेनाथ पुत्रयोरपि सम्मते ।।२५।।
सुवर्चसं तुम्बुरुं च तथा चित्राङ्गदामपि ।
आमन्त्र्य मुनिशार्दूलः करवीर-पुरं ययौ ।।२६।।

तब पुत्रों के सहित उस चित्राङ्गदा तथा पर्याप्तधन के साथ चित्राङ्गदा और अपने पुत्रों की सहमति से, सुवर्चस, तुम्बरू और चित्राङ्गदा को साथ लेकर मुनियों में सिंह के समान, कपोत मुनि करवीर पुर गये ।।२५-२६।।

तत्र गत्वा च कपोतो राजानं चन्द्रशेखरम् ।
राजोपरिचरं चैव वाक्यमेतदुवाच ह ।।२७।।

वहाँ जाकर कपोत मुनि ने राजा चन्द्रशेखर और राजा उपरिचर से यह वाक्य कहा ।।२७।।

।। कपोतोवाच ।।

इयं ककुत्स्थजा भूप तवैव विदिता पुरा ।
सद्योजातौ तथैवास्यामेतौ मे तनयौ शुची ।।२८।।

कपोत मुनि बोले– हे राजा ! यह ककुत्स्थ की पुत्री है जिसे आप पहले से ही जानते हो तथा ये दोनों उसी से तत्काल उत्पन्न हुए मेरे पवित्रपुत्र हैं।।२८।।

एभिर्वित्तैः समं पुत्रौ मम त्वं प्रतिपालय ।
राजोपरिचरश्चापि पालयत्विह मे सुतौ ।।२९।।

मेरे इन दोनों पुत्रों का भी तुम इन धनों के साथ पालन करो । मेरे इन दोनों पुत्रों का राजा उपरिचर भी इस समय पालन करें।।२९।।

अपुत्रस्य नृपः पुत्रो निर्धनस्य धनं नृपः ।
अमातुर्जननी राजाह्यतातस्य पिता नृपः ।।३०।।
अनाथस्य नृपो नाथो ह्यभर्तुः पार्थिवः पतिः ।
अभृत्यस्य नृपो भृत्यो नृप एव नृणां सखा ।
सर्वदेवमयो राजा तस्मात् त्वामर्थये नृप ।।३१।।

राजा अपुत्र का पुत्र तथा निर्धन का धन होता है। वह मातृहीन की माता तथा पितारहित का पिता भी होता है। हे राजा ! राजा ही अनाथ का नाथ तथा पतिविहीन का पति होता है। वह बिना सेवक वालों का सेवक तथा मनुष्य मात्र का मित्र होता है। इस प्रकार से राजा सभी देवों का स्वरूप होता है। इसलिए मैं अपनी इस पत्नी और इन पुत्रों के प्रति स्वामी और पिता जैसे व्यवहार के लिए आपसे प्रार्थना करता हूँ।।३०-३१।।

।। और्व उवाच ।।

ततः स राजा तं प्राह मुनिमेवं द्विजोत्तमम् ।
करिष्ये त्वद्वचश्चाहं राजोपरिचरश्च सः ।।३२।।

और्व बोले– तब उन राजा चन्द्रशेखर और राजा उपरिचर ने मुनियों में श्रेष्ठ, उन उत्तम मुनि से कहा कि हम आपके कथनानुसार ही करेंगे ।।३२।।

अथ चित्राङ्गदां राजा जग्राह मुनिसम्मते ।
सुतौ च तस्य सधनौ ज्यायसे सूनवे ददौ ।।३३।।

तब मुनि के परामर्श के अनुसार राजा ने चित्राङ्गदा को ग्रहण कर लिया तथा उसके दोनों पुत्रों को और धन को अपने बड़े पुत्र उपरिचर को दे दिया ।।३३।।

स चोपरिचरः प्रदाद्राज्यमर्धं सुवर्चसे ।
तथैव सचिवाध्यक्षमकरोत्तुम्बुरुं तदा ।।३४।।

तब उस राजा उपरिचर ने भी अपना आधा राज्य सुवर्चस को दे दिया तथा तुम्बुरु को अपने सचिवों का अध्यक्ष बना दिया ।।३४।।

कपोतश्चापि सुप्रीतः पुत्रार्थं समवेक्ष्य च ।
जगामामन्त्र्य नृपतिं तपसे च तपोवनम् ।।३५।।

अपने पुत्रों के प्रति किये गये व्यवहार को देखकर कपोत मुनि भी बड़े प्रसन्न हुए और राजा से परामर्श करके तपस्या करने, तपोवन में चले गये।।३५।।

पथि गच्छन् स कपोतः शम्भुपुत्रौ मनोहरौ ।
एकाकिनौ चरन्तौ तु सूर्याचन्द्रमसाविव ।।३६।।
तयोर्ददर्श च तदा वदने वानराकृती ।
स्मृत्वा पूर्वकथां दृष्ट्वा तावपृच्छत् तपोधनः ।।३७।।

रास्ते में जाते हुए उन तपस्वी कपोत नामक मुनि ने सूर्य और चन्द्रमा के समान सुन्दर, अकेले घूमते हुए, वानर के समान मुख वाले, वेताल और भैरव नामक उन दोनों शिवपुत्रों को देखा। तब उन्होंने पहले की कथा का स्मरण कर उन दोनों से पूछा— ॥३६-३७॥

।। कपोतोवाच ।।

कौ युवां देवगर्भासौ चरन्तौ विजने पथि ।
एकाकिनौ नरश्रेष्ठौ तन्मे वदतमीरितम् ।।३८।।

कपोत बोले– तुम दोनों देवताओं के अंश दिखाई दे रहे हो, फिर भी इस एकांत रास्ते में अकेले घूमने वाले कौन हो, हे नरश्रेष्ठों ! मेरे द्वारा पूछे जाने पर, तुम दोनों यह बताओ ॥३८॥

।। और्व उवाच ।।

अथ तौ प्रणिपत्यैनं सम्भाष्य च समञ्जसम् ।
कपोताख्यं मुनिश्रेष्ठमूचतुः शङ्करात्मजौ ।।३९।।

और्व बोले– तब मुनियों में श्रेष्ठ, कपोत नामक मुनि द्वारा इस प्रकार पूछे जाने पर उनको प्रणाम करके उन दोनों शिवपुत्रों ने कहा ॥३९॥

।। वेताल भैरवौ ऊचतुः ।।

चन्द्रशेखरपुत्रौ नौ तारावत्यां समुद्गतौ ।
विद्धि त्वं मुनिशार्दूल प्रणमावः पदं तव ।।४०।।

वेताल और भैरव बोले– हे मुनियों में सिंह के समान श्रेष्ठ मुनि ! हम दोनों को आप तारावती से उत्पन्न चन्द्रशेखर का पुत्र जानें, हम दोनों आपके चरणों में प्रणाम कर रहे हैं॥४०॥

अवज्ञां वीक्ष्य नृपतेरावयोः सततं मुने ।
एकाकिनौ निर्जनेषु भ्रमावो मन्युना सदा ।।४१।।

हे मुनि ! हम दोनों राजा के द्वारा निरंतर अपना अपमान देखकर, क्रोधवश, निर्जन में सदैव अकेले ही घूमते हैं॥४१॥

किमर्थमात्मजौ पुत्रौ प्रणतौ सततं नृपः ।
अवज्ञाय महाभाग दायमात्रं न दित्सति ।।४२।।

महाराज निरंतर, हम दोनों विनम्र पुत्रों की अवहेलना कर राजा हम दोनों का दायभाग भी क्यों नही देना चाहते?॥४२॥

तस्मादावां तपस्तप्तुमिच्छावो द्विजसत्तम ।
उपदेशप्रदानेन चानुगृह्णाति चेद्भवान् ।।४३।।

हे द्विजों में श्रेष्ठ ! यदि आप उपदेशप्रदान करने की कृपा करें तो हम दोनों अब तपस्या करने की इच्छा रखते हैं ॥४३॥

।। और्व उवाच ।।

ततस्तयोर्वचः श्रुत्वा प्रहस्य मुनिसत्तमः ।
भूतभव्यभवज्ज्ञानस्ताविदं मुनिरब्रवीत् ।।४४।।

और्व बोले- तब मुनियों में श्रेष्ठ, भूत, भविष्य व वर्तमान जानने वाले, कपोत मुनि ने उन दोनों की बातों को सुनकर हँसकर यह कहा- ।।४४।।

।। मुनिरुवाच ।।

न युवां तनयौ तस्य चन्द्रशेखरभूपतेः ।
तारावत्यां समुत्पन्नौ भवन्तौ शङ्करात्मजौ ।।४५।।

कपोत मुनि बोले- तुम दोनों तारावती से उत्पन्न उस चन्द्रशेखर के पुत्र नहीं हो। तुम दोनों तारावती से उत्पन्न शिव के पुत्र हो ।।४५।।

सद्यौ जातौ महावीर्यौ वेतालत्वे च सम्मतौ ।
भृङ्गिमहाकालसंज्ञौ शापाद् धरणिमागतौ ।।४६।।

तुम दोनों तत्काल उत्पन्न हुए महान बलशाली, वैतालत्व से युक्त, भृंगी और महाकाल नामक दो शिवगण हो, जो शापवश इस पृथ्वी पर आये हो ।।४६।।

युवयोरत्र तेनैव न दायं दित्सति प्रियम् ।
गच्छतं शरणं तातं शङ्करं वृषभध्वजम् ।।४७।।

इसीलिए राजा तुम दोनों को दायभाग नहीं देना चाहते। इसलिए तुम दोनों अपने पिता शिव की शरण में जाओ।।४७।।

स एव युवयोः सर्वं करिष्यति महेश्वरः ।
किं वात्युग्रेण तपसा चिरकालफलेन वै ।।४८।।

वही शिव, तुम दोनों का सब कुछ करेंगे। दीर्घकाल तक अत्यन्त उग्रतपस्या करने से क्या होगा?।।४८।।

।। और्व उवाच ।।

इत्युक्त्वा मुनिशार्दूलः कपोतः परमात्मधृक् ।
भूतभव्यभवज्ज्ञानन्ताभ्यां सर्वमथोचिवान् ।।४९।।

और्व बोले- हे राजन्! ऐसा कहकर मुनियों में सिंह के समान श्रेष्ठ, परमात्मतत्त्व को धारण करने वाले, भूत, भविष्य और वर्तमान को जानने वाले, मुनि ने शिव के उन दोनों पुत्रों से सब कुछ कह दिया।।४९।।

यथा भृङ्गिमहाकालौ शप्ताववनिमागतौ ।
यथा हरश्च गौरी च पृथिवीमागतौ नृप ।।५०।।
तारावती यथा शप्ता तेनैव मुनिना पुरा ।
यथा तौ च समुत्पन्नौ तारावत्युदरे पुरा ।।५१।।
यथा वा नारदेनैव संशयच्छेदनं नृपे ।
तत्सर्वं कथयामास पुत्राभ्यां गिरिशस्य तु ।।५२।।

जिस प्रकार भृंगी और महाकाल शाप पाकर पृथ्वी पर आये, जिस प्रकार शिव-पार्वती भी पृथ्वी पर आये। तारावती को जिस प्रकार कपोत मुनि ने शाप दिया। वे दोनों तारावती के गर्भ से जिस प्रकार उत्पन्न हुए, जैसे नारद जी ने राजा का संदेह दूर किया, वह सब कह सुनाया॥५०-५२॥

तच्छ्रुत्वा तौ महात्मानौ तदा वेतालभैरवौ ।
मुदा परमया युक्तौ बभूवतुरनिन्दितौ ॥५३॥

तब वे निन्दारहित दोनों महात्मा, वेताल और भैरव उसे सुनकर, परम प्रसन्नता से युक्त हुए ॥५३॥

मोदपूर्णौ तदा भूत्वा सिक्ताविव सुधारसैः ।
पुनः पप्रच्छ कपोतं वेतालो भैरवोऽपि च ॥५४॥

तब प्रसन्नता से भरे हुए, अमृत से सिञ्चित की भाँति, उन दोनों ने पुनः कपोत मुनि से पूछा–॥५४॥

॥ वेतालभैरवावूचतुः ॥

पितावयोर्महादेवस्त्वया सत्यमितीरितम् ।
सोऽर्चनीयो यथावाभ्यां सिद्धये मुनिसत्तम ॥५५॥

वेताल और भैरव बोले– हे मुनियों में श्रेष्ठ ! यह आपने सत्य ही कहा कि महादेव हम दोनों के पिता हैं। अतः सफलता के लिए हम दोनों के द्वारा उनकी पूजा की जानी चाहिए॥५५॥

आवाभ्यां च यथाराध्यो यत्र वाराधितो हरः ।
प्रसादमेष्यत्यचिरात् तन्नो वद महामते ॥५६॥

हे महान् बुद्धिमान् मुनि ! वे शिव, हम दोनों द्वारा जिस प्रकार जहाँ पर पूजे जायें और शीघ्र ही प्रसन्न हों, वह सब आप हमें बताइए॥५६॥

धन्यावनुगृहीतौ नौ यत् त्वया मुनिसत्तम ।
विज्ञापितमिदं सर्वं हृच्छल्यं चोद्धृतं च नौ ॥५७॥

हे मुनिसत्तम ! आपके द्वारा जो सब वृत्तान्त बताया गया और हमारे हृदय का कष्ट दूर किया गया, उससे हम दोनों धन्य व अनुगृहीत हुए हैं ॥५७॥

पुनरावां दयस्व त्वं कृपामय मुनीश्वर ।
प्राप्स्यावो न चिराद् भर्गं यथा वद तथैव नौ ॥५८॥

हे कृपा करने वाले मुनीश्वर ! आप पुनः हम पर दया करें और जिस प्रकार भर्ग (शिव), शीघ्र ही हमें प्राप्त हो सकें, वह ही हम दोनों को बताइये॥५८॥

॥ मुनिरुवाच ॥

शृणु त्वं कथयाम्यद्य यत्र चाराधितो हरः ।
नचिरादेव भवतोरायास्यति समक्षताम् ॥५९॥

कपोत बोले– जहाँ आराधना किये जाने से शिव शीघ्र ही तुम दोनों के सामने आ जायेंगे, वह आज मैं बता रहा हूँ, उसे तुम दोनों सुनो ।।५९।।

नित्यं यत्र महादेवो वसन् भवति तुष्टये ।
युवां तत् संप्रवक्ष्यामि स्थानं गुह्यं प्रकाशितम् ।।६०।।

जहाँ पर शिव, नित्य निवास करते हैं और शीघ्र ही संतुष्ट हो जाते हैं। मैं उस गुप्त किन्तु प्रसिद्ध स्थान के विषय में तुम दोनों से कहूँगा।।६०।।

।। वाराणसीमाहात्म्यवर्णन ।।

वाराणसी नाम पुरी गङ्गातीरे मनोहरे ।
वरुणायास्तथा चासेर्मध्ये चापाकृतिः सदा ।।६१।।

वह स्थान वाराणसी नामक नगरी हैं। जो सदैव वरुणा और अस्सी के बीच में, गंगा के तट पर, धनुषाकार स्थित है ।।६१।।

स्वयं वृषध्वजस्तत्र नित्यं वसति योगिनाम् ।
सदा प्रीतिकरो योगी स्वयं चाप्यात्मचिन्तकः ।।६२।।

भगवान शंकर जो स्वयं योगी हैं तथा आत्मतत्व के चिन्तन में लगे रहते हैं। योगियों का भला करने के लिए वहाँ स्वयं, नित्य निवास करते हैं।।६२।।

वियत्स्था सा पुरी नित्यं भर्गयोगबलाद् धृता ।
दिव्यज्ञानं ददात्येषा तत्र यो म्रियते नरः ।।६३।।

स्वर्ग में स्थित, शिव के योगबल से नित्य धारण की जाती हुई, वह पुरी उसमें मरने वाले मनुष्यों को दिव्यज्ञान प्रदान करती है ।।६३।।

तस्मै स्वयं महादेवः संसार-ग्रन्थिमुक्तये ।
स भूत्वा परमो योगी मृतस्तत्र भवान्तरे ।।६४।।
सुलभेनैव निर्वाणमाप्नोति हरसम्मतः ।
योगयुक्तो महादेवः पार्वत्या सहितः सदा ।।६५।।

उसमें मरने वालों को स्वयं महादेव, संसार के बंधन से मुक्तिप्रदान करते हैं। जिससे अगले जन्म में वहाँ मरने वाला परम योगी होता है और शिव द्वारा समर्थित हो निर्वाण को सुगमता से प्राप्त कर लेता है। वह नगरी पार्वती के सहित योगयुक्त महादेव से सदा युक्त है।।६४-६५।।

देवगन्धर्वयक्षाणां मानुषाणां च नित्यशः ।
ज्ञेयो हरः प्रकाशश्च क्षेत्रं तच्च प्रकाशितम् ।।६६।।

देव, गंधर्व, यक्ष और मनुष्यों द्वारा नित्य जाने-जाने वाले, प्रकाशस्वरूप शिव से वह क्षेत्र प्रकाशित है ।।६६।।

न तत्र कामदो देवो नचिराच्च प्रसीदति ।
आराधितश्चिरं प्रीत्या निर्वाणाय प्रसीदति ।।६७।।

किन्तु कामना पूरा करने वाले महादेव वहाँ उपासना किये जाने से शीघ्र नहीं प्रसन्न होते, अपितु चिरकाल, बहुत समय तक प्रेमपूर्वक आराधना किये जाने पर वे मोक्षप्रदान करने के लिए ही प्रसन्न होते हैं।।६७।।

गौर्या विवर्जिता सा तु पुरी तत्र न गच्छति ।
योगस्थानं महाक्षेत्रं कदाचिदपि शाङ्करी ।।६८।।

पार्वती के द्वारा वह पुरी वर्जित है। इसलिए वे शाङ्करी देवी उस योग के स्थान, महान् क्षेत्र में कभी भी नहीं जाती हैं।।६८।।

आसन्नं युवयोः क्षेत्रमिदं वाराणसी तु यत् ।
कथितं नातिदूरे च वर्तते नरसत्तमौ ।।६९।।

यद्यपि यह वाराणसी नामक क्षेत्र तुम लोगों के समीप है। हे मनुष्यों में श्रेष्ठ! इसीलिए मैंने सर्वप्रथम इसका वर्णन किया है।।६९।।

अपरं तु प्रवक्ष्यामि गुह्यं पीठं सदार्चितम् ।
हरगौरीसमायुक्तं परं धर्मार्थकामदम् ।।७०।।

अब मैं वाराणसी के अतिरिक्त दूसरे, सदैव पूजेजानेवाले, शिव-पार्वती से युक्त, धर्म, अर्थ और काम तीनों पुरुषार्थों को देने वाले, गुप्त, अन्य स्थान के विषय में कहूँगा।।७०।।

।। कामरूपमाहात्म्यवर्णन ।।

तपसा चाति तीव्रेण चिराद् भवति मोक्षदम् ।
नचिरात् कामदं पुण्यं क्षेत्रं पीठं निगद्यते ।।७१।।

जो अत्यन्त तीव्रतपस्या के कारण देर से मोक्ष प्रदान करनेवाला है किन्तु शीघ्र ही कामना पूरी करने वाला क्षेत्र, पीठ कहा जाता है।।७१।।

चिरात् तु कामदो देवो न चिराद् यत्र ज्ञानदः ।
तत्क्षेत्रमिति लोकेषु गद्यते पूर्ववन्दिभिः ।।७२।।
कामरूपं महापीठं गुह्याद्गुह्यतमं परम् ।
सदा सन्निहितस्तत्र पार्वत्या सह शङ्करः ।।७३।।

देर से कामनाओं की पूर्ति करने वाले महादेव, जहाँ शीघ्र ज्ञानप्रदान करते हैं, वह क्षेत्र पहले से ही वन्दना करने वाले ऋषियों द्वारा लोक में गोपनीय से भी गोपनीय, परमश्रेष्ठ, कामरूप, महापीठ कहा जाता है। वहाँ पार्वती के सहित भगवान शिव सदैव निहित रहते हैं।।७२-७३।।

न चिरात् पूजितो देवस्तस्मिन् पीठे प्रसीदति ।
पार्वती चानुगृह्णाति भर्गभक्तं तु तत्र वै ।।७४।।

पूजा किये जाने पर वह देव उस स्थान पर शीघ्र ही प्रसन्न हो जाते हैं। वहाँ पार्वती भी शिव के भक्तों पर कृपा करती हैं॥७४॥

ददाति नचिरात् कामं भक्ताय परमेश्वरः।
तत् तु पीठं प्रवक्ष्यामि शृणुत साम्प्रतं युवाम् ॥७५॥

जहाँ परमेश्वर शिव, शीघ्र ही भक्तों की कामना पूरी करते हैं। मैं उस कामरूप नामक पीठ के विषय में तुम दोनों से अब कहूँगा। तुम दोनों ध्यान से सुनो॥७५॥

करतोयानदीपूर्वं यावद् दिक्करवासिनीम्।
त्रिंशद् योजनविस्तीर्णं योजनैकशतायतम् ॥७६॥
त्रिकोणं कृष्णवर्णं च प्रभूताचलपूरितम्।
नदीशतसमायुक्तं कामरूपं प्रकीर्तितम् ॥७७॥

करतोयानदी के पूर्व में, दिक्करवासिनी नदी तक फैला हुआ, तीस योजन चौड़ा और सौ योजन लम्बा, त्रिकोण के आकार में, काले रंग के बहुत से पर्वतों और सैकड़ों नदियों से युक्त क्षेत्र, कामरूप कहा गया है॥७६-७७॥

शम्भुनेत्राग्निनिर्दग्धः कामः शम्भोरनुग्रहात्।
तत्र रूपं यतः प्राप कामरूपं ततोऽभवत् ॥७८॥

पहले शिव के नेत्र से निकली हुई अग्नि से जले हुए कामदेव ने शिव की कृपा से ही वहाँ अपने रूप को प्राप्त किया था। उसी से वह क्षेत्र कामरूप हो गया॥७८॥

तस्य पीठस्य वायव्यां नैर्ऋृत्यां मध्यभागतः।
ऐशान्यां च तथाग्नेय्यां मध्ये पार्श्वे च शङ्करः ॥७९॥
स्वमाश्रमपदं कृत्वा षट्सु स्थानेषु शोभनम्।
नित्यं वसति तत्रापि पार्वत्या सह नर्मभिः ॥८०॥

वहाँ उस पीठ के मध्यभाग से वायव्यकोण, नैर्ऋत्यकोण, ईशानकोण, अग्निकोण तथा उनके मध्यवर्ती और पार्श्व के छः स्थानों में अपना सुन्दर आश्रम बना करके, भगवान् शंकर, पार्वती के साथ प्रमोदपूर्वक, नित्य निवास करते हैं॥७९-८०॥

मध्ये देवीगृहं तत्र तदधीनं तु शङ्करः।
नीलाख्ये पर्वतश्रेष्ठे पार्वती तत्र तिष्ठति ॥८१॥

उसके मध्य में वहाँ उस नीलनामक श्रेष्ठपर्वत पर देवी का एक मन्दिर है, जहाँ पार्वती निवास करती हैं, भगवान् शंकर वहाँ, उन्हीं के अधीन रहते हैं॥८१॥

ऐशान्यां नाटके शैले शङ्करस्य महाश्रमः।
नित्यं वसति तत्रेशस्तदधीना च पार्वती ॥८२॥

वहाँ ईशान कोण में नाटक नामक पर्वत पर भगवान शंकर का महान् आश्रम है। जहाँ भगवान् शिव और उनके अधीन, पार्वती नित्य निवास करती हैं॥८२॥

अपरे चाश्रमाः सन्ति हरगौर्योः सदातनाः ।
नैतयोः सदृशः कोऽपि विद्यते शङ्कराश्रमः ।।८३।।

वहाँ पर शिव-पार्वती के अन्य भी स्थायी आश्रम हैं। किन्तु इसके समान भगवान् शंकर का अन्य कोई निवास नहीं है।।८३।।

यत्राराध्यो महादेवो भवद्भ्यां नरसत्तमौ ।
तत्स्थानं मनसादाय प्रसादय वृषध्वजम् ।।८४।।

हे मनुष्यों में श्रेष्ठ ! वहाँ तुम दोनों द्वारा महादेव की आराधना करनी चाहिए। उस स्थान को मन में धारण कर, भगवान शिव को प्रसन्न करो।।८४।।

।। वेतालभैरवावूचतुः ।।

कामरूपं गमिष्यावः रहस्यं नाटकाचलम् ।
गौरीहरौ स्थितौ यत्र नित्यं सन्निहितौ मुने ।।८५।।

वेताल और भैरव बोले– हे मुनि ! हम दोनों कामरूप के नाटक-पर्वत पर जाएँगे जो रहस्य पूर्ण है और जहाँ शिव-पार्वती एक साथ नित्य स्थित रहते हैं ।।८५।।

आराधनीयो भूतेशो ह्यवश्यमिह चावयोः ।
यथैवाराधयिष्यावस्तथाचक्ष्व द्विजोत्तम ।।८६।।

हे द्विजों में श्रेष्ठ ! हम दोनों द्वारा भूतों के स्वामी, शिव की आराधना इस स्थान पर अवश्य की जानी चाहिए। अत: जिस प्रकार हम दोनों उनकी आराधना करेंगे, वह विधि बताइये ।।८६।।

येन मन्त्रेण वा देवो नचिरात् तु प्रसीदति ।
तत् त्वं वद महाभागानुग्रहोऽस्त्यावयोर्यदि ।।८७।।

यदि हम दोनों पर आपकी कृपा हो तो, हे महानुभाव ! जिस मन्त्र से महादेव शीघ्र ही प्रसन्न हो जाते हैं, उसे कहिये ।।८७।।

।। ऋषिरुवाच ।।

नाटकं पर्वतश्रेष्ठं गच्छतं नरसत्तमौ ।
तत्र नित्यं महादेवौ रमतेऽपर्णया सह ।।८८।।

कपोतऋषि बोले– हे मनुष्यों में श्रेष्ठ ! तुम दोनों नाटक नाम के श्रेष्ठ पर्वत पर जाओ। वहाँ महादेव जी पार्वती के साथ नित्य भ्रमण करते रहते हैं ।।८८।।

सन्ध्याचले तत्र मुनिराराधयति शङ्करम् ।
वशिष्ठो ब्रह्मणः पुत्रस्तं युवामनुगच्छतम् ।।८९।।

वहीं सन्ध्याचल नामक पर्वत पर ब्रह्मा जी के पुत्र, वशिष्ठमुनि भगवान् शंकर की आराधना कर रहे हैं। तुम दोनों उन्हीं का अनुगमन करो ।।८९।।

स च मन्त्रं सतन्त्रं च हराराधनकर्मणि ।
ज्ञापयिष्यति वां पृष्टः किल वेतालभैरवौ ।।९०।।

हे वेताल और भैरव! मन्त्र तत्र के सहित भगवान् शंकर की आराधना कर्म सम्बन्धी तु दोनों द्वारा पूछी गई विधियाँ वे ही तुम दोनों को बताएँगे॥९०॥

तपसे गन्तुमिच्छामि नेदानीं कालयापना ।
युज्यते मम तस्मान्मां त्यजतं वीरसत्तमौ ।।९१।।

मैं इस समय तपस्या हेतु जाना चाहता हूँ, इसलिए मेरा इस समय, समय व्यतीत करना उचित नहीं होगा। इसलिए हे वीरों में श्रेष्ठ ! तुम दोनों इस समय मुझे छोड़ दो॥९१॥

।। और्व उवाच ।।

एवमुक्त्वा मुनिश्रेष्ठः कपोतः प्रययौ वनम् ।
तौ तं मुनिं नमस्कृत्य जग्मतुर्भवनं निजम् ।।९२।।

और्व बोले– ऐसा कहकर मुनियों में श्रेष्ठ मुनि, कपोत मुनि, वन में चले गए। तब वे दोनों भी उन मुनि को प्रणाम करके अपने घर चले गए ॥९२॥

अथ तौ समयं कृत्वा दीक्षितौ तपसे तदा ।
पितरावप्यनुज्ञाप्य भ्रातॄनन्यांश्च बान्धवान् ।
प्रस्थानं कामरूपाय चक्रतुस्तौ महामती ।।९३।।

तब तपस्या के लिए दीक्षित होने का निश्चय करके, माता-पिता और अपने अन्य भाइयों तथा बन्धुओं से आज्ञा लेकर उन दोनों महान् बुद्धिमान् पुरुषों ने कामरूप के लिए प्रस्थान किया॥९३॥

तौ गच्छन्तौ परिज्ञाय शङ्करोऽपि सहोमया ।
देवान् सर्वानुवाचेदं सान्त्वयन्निव सेन्द्रकान् ।।९४।।

उन दोनों को जाता हुआ जानकर, पार्वती के सहित भगवान् शंकर ने इन्द्र के सहित सभी देवताओं को सान्त्वना देते हुए यह कहा– ॥९४॥

।। ईश्वर उवाच ।।

पुत्रौ मे तपसे यातः साम्प्रतं सुरसत्तमाः ।
ममाराधनचित्तौ तु तौ दयध्वं सुरेश्वराः ।।९५।।

भगवान् शंकर बोले– हे श्रेष्ठ देवताओं ! मेरे दोनों पुत्र, इस समय तपस्या के लिए जा रहे हैं। हे देवताओं के स्वामीगण ! मेरी आराधना में चित्त लगाये हुए उन दोनों पर आप सब दया करो॥९५॥

संस्कृत्य तपसा चैतौ पुत्रौ वेतालभैरवौ ।
गाणपत्ये नियोक्ष्यामि तौ संस्कुर्वन्तु निर्जराः ।
अनेनैव शरीरेण तौ गणेशत्वमाप्स्यतः ।।९६।।

इन दोनों वेताल और भैरव नामक पुत्रों को तपस्या द्वारा संस्कारित करके, मैं इन्हें गणों के स्वामी के पद पर नियुक्त करूंगा। हे देवगण ! आप सब इन्हें ऐसा संस्कारित कीजिए, जिससे वे दोनों इसी शरीर से गणों के स्वामीपद को प्राप्त करें॥९६॥

तपसा तु तयोः कायौ भावं त्यक्त्वा तु मानुषम् ।
यथाप्नुतः सुरोभावं विधास्यामि ह्यहं तथा ।।९७।।

तपस्या के कारण उन दोनों का शरीर मनुष्यभाव को छोड़ दे और उनमें जैसे देवभाव प्राप्त हो, मैं वैसा ही करूंगा ॥९७॥

।। और्व उवाच ।।

इत्युक्त्वा वामदेवोऽपि पार्वत्या सह पुत्रकौ ।
गच्छन्तौ वियता स्नेहात् पश्चादनुययौ शिवः ।।९८।।

और्व मुनि बोले– ऐसा कहकर पार्वती के सहित वामदेव शिव भी प्रेमवश, आकाशमार्ग से एकान्त को जाते हुए उन दोनों पुत्रों के पीछे गए ॥९८॥

शक्राद्यास्त्रिदशाः सर्वे दिक्पालाश्च तथापरे ।
सर्वे हरं चानुजग्मुरनुगच्छन्तमात्मजौ ।।९९।।

इन्द्र आदि सभी देवता तथा दूसरे दिग्पालों ने भी उस समय अपने पुत्रों के पीछे जाते हुए भगवान् शंकर का अनुगमन किया ॥९९॥

अथ तौ तु नदीं प्राप्य गङ्गातुल्यां दृषद्वतीम् ।।१००।।
आदाय तापसं भावं कृष्णाजिनधरौ तदा ।
तपस्विनौ तु देवेन त्र्यम्बकेणाथ पालितौ ।।१०१।।

इसके बाद भगवान् शिव के द्वारा पाले गए, वे दोनों तपस्वी, तपस्वी भाव को ग्रहण किए हुए, कृष्णमृगचर्म धारण किये हुए, गंगा के समान श्रेष्ठ, दृषद्वती नाम की नदी के तट पर पहुँचे ॥१००-१०१॥

देवैः सह तदायातौ कामरूपाह्वयाश्रमम् ।
आसाद्य कामरूपं तु करतोयानदीजले ।।१०२।।

तब वे दोनों देवताओं के सहित कामरूप नामक आश्रम में पहुँचे। वे कामरूप की करतोया नदी के तट पर पहुँच गए ॥१०२॥

उपस्पृश्य ततस्तौ तु नन्दिकुण्डं नृपोत्तम ।
तत्र स्नात्वाप्युपस्पृश्य नदीं गत्वा जटोद्भवाम् ।।१०३।।

हे राजाओं में श्रेष्ठ ! वहाँ वे दोनों जल का स्पर्श कर, नन्दीकुण्ड को गए और वहाँ भी स्नान और आचमन करके, जटा से उत्पन्न नदी पर पहुँचे ॥१०३॥

उपस्पृश्य च तौ तत्र नन्दिनं तपसाधृतम् ।
प्रणम्य जल्पिशं देवं जग्मतुर्नाटकाचलम् ।।१०४।।

वहाँ भी उन दोनों ने आचमन किया और तपस्या में लगे हुए नन्दी और जल्पिश नामक देवताओं को प्रणाम किया और नाटकाचल नामक पर्वत पर पहुँच गए ॥१०४॥

नाटकाचलमासाद्य प्रणम्य वृषभध्वजम् ।
आराधनोपदेशाय कपोतक-वचःस्मरन् ॥१०५॥

कपोतऋषि के वचनों का स्मरण करते हुए, भगवान् शिव की आराधना के उपदेश के लिए उन दोनों ने नाटकाचल पर्वतपर पहुँच कर, भगवान् शिव को प्रणाम किया॥१०५॥

जग्मतुर्दक्षिणां काष्ठां यत्र सन्ध्याचलः स्थितः ।
कान्ता नाम नदी तत्र वशिष्ठेनावतारिता ।
तस्यास्तीरे महाशैलः स्निग्धच्छायलतातरुः ॥१०६॥

उसके बाद दक्षिणदिशा में जहाँ पर सन्ध्याचल स्थित है, वहाँ वे दोनों गए, जहाँ वशिष्ठ जी ने कान्ता नाम की नदी को प्रकट किया था, उसके किनारे कोमल लता एवं वृक्षों की छाया से सुशोभित एक महान् पर्वत था॥१०६॥

सन्ध्यां वशिष्ठः कृतवांस्तत्र यस्माद् विधेः सुतः ।
अतः सन्ध्याचलं नाम तस्य गायन्ति देवताः ॥१०७॥

वहाँ ब्रह्मा जी के पुत्र वशिष्ठ जी ने अपना सन्ध्याकर्म सम्पन्न किया था। इसीलिए देवतालोग उस पर्वत को सन्ध्याचल नाम से पुकारते हैं॥१०७॥

तत्रासाद्य वशिष्ठं तु साक्षादिव हुताशनम् ।
आराधयन्तं गिरिशं ध्यानसंयुक्तमानसम् ॥१०८॥
तपःश्रिया दीप्यमानं द्वितीयमिव भास्करम् ।
प्रणम्य पुरतस्तस्य तदा वेतालभैरवौ ॥१०९॥
प्राञ्जली तस्थतुर्भूप विनयानतकन्धरौ ।
इदं चाप्यूचतुस्तौ तु प्रणमन्तौ विधेः सुतम् ॥११०॥

हे राजन्! वहाँ ध्यान में मन लगाकर गिरीश (शिव) की आराधना करते हुए, साक्षात् अग्नि के समान देदीप्यमान, अपनी तपस्या की शोभा से दूसरे सूर्य के समान प्रकाशित, वशिष्ठ मुनि को प्राप्त कर, उस समय वेताल और भैरव उनके सामने हाथजोड़े हुए, नम्रतापूर्वक अपने कंधे झुकाए हुए, उन्हें प्रणाम करते हुए उन ब्रह्मा के पुत्र से यह बोले–॥१०८-११०॥

॥ वेताल भैरवावूचतुः ॥

तारावत्यां समुत्पन्नौ चन्द्रशेखरभूभृतः ।
क्षेत्रे भर्गस्य तनयावावां जानीहि मानुषौ ॥१११॥
आराधयितुमिच्छावो हरं कार्यस्य सिद्धये ।
वाञ्छितस्य यदि त्वं नावनुगृह्णासि सुव्रत ॥११२॥

वेताल और भैरव बोले– हम दोनों को राजा चन्द्रशेखर की पत्नी तारावती से उत्पन्न, मनुष्यरूप में शिव का पुत्र जानिये। हे सुन्दरव्रत वाले! यदि आप हम दोनों पर कृपा करें तो हम दोनों अपने इच्छितकार्य की सिद्धि के लिए शिव की आराधना करने की इच्छा करते हैं।।१११-११२।।

।। और्व उवाच ।।

तयोस्तद् वचनं श्रुत्वा वशिष्ठो मुनिसत्तमः ।।११३।।
उवाचेति युवां ज्ञातौ मया सत्यं हरात्मजौ ।
हरस्याराधनं कार्यं युवयोर्नरसत्तमौ ।।११४।।

और्व बोले– उन दोनों के उपर्युक्त वचनों को सुनकर मुनियों में श्रेष्ठ वशिष्ठ ने यह कहा— मैंने यह जान लिया है कि तुम दोनों सच ही भगवान शिव के पुत्र हो, हे नरों में श्रेष्ठ ! शिव की आराधना करना तुम दोनों का कार्य है।।११३-११४।।

तत्रास्ति मम कृत्यं किं तद्भाषतमनिन्दितौ ।
वृषध्वजाराधनाय युवयोस्तु प्रयोजनम् ।
विद्यते तन्निमित्तं यद् यत् सिद्धमिति चिन्त्यताम् ।।११५।।

हे ! निन्दा न किये जाने वाले पुरुषों ! उसमें मेरा क्या कर्तव्य है, यह बताओ । भगवान् शिव की उपासना करना तुम दोनों का उद्देश्य है, उस निमित्त जो-जो उपयुक्त हो, उस पर विचार करो ।।११५।।

।। वेतालभैरवावूचतुः ।।

येन मन्त्रेण नचिरात् सम्यगाराधितो हरः ।
प्रसादमेष्यत्यवनौ तन्नो वद महामुने ।।११६।।

वेताल व भैरव बोले– हे महामुनि ! जिस मन्त्र के द्वारा भली-भाँति आराधना करने पर भगवान् शंकर शीघ्र ही प्रसन्न होकर धरती पर आ जायें, उस मंत्र को हम दोनों को बताइये ।।११६।।

यथा चाराधयिष्यावस्तन्त्रं यद् यादृशः क्रमः ।
तत्सर्वं मुनिशार्दूल वक्तुमर्हसि चोत्तरम् ।।११७।।

हे मुनियों में सिंह के समान श्रेष्ठ! जिस प्रकार हम दोनों आराधना करें, उस तन्त्र को और जो-जो क्रम होगा, वह सब कुछ उत्तररूप में बताइये ।।११७।।

यथा त्वदुपदेशेन प्राप्स्यावो नचिराद् हरम् ।
यथा वाचां मुनिश्रेष्ठ ह्यनुशाधि न तौ त्वयि ।।११८।।

हे मुनिश्रेष्ठ ! जिस प्रकार हम दोनों आपके उपदेश से शीघ्र ही भगवान् शिव को प्राप्त कर सकें वैसे ही वाणी से आप द्वारा हम दोनों को अनुशासित किया जाना चाहिए।।११८।।

।। वशिष्ठ उवाच ।।

प्रसन्न एव भवतोर्वृषकेतुः सहोमया ।
नचिरात् स्वयमेवात्र प्रसादं च समेष्यति ।।११९।।

वशिष्ठ मुनि बोले– तुम दोनों पर, पार्वती के सहित भगवान् शिव प्रसन्न ही हैं, शीघ्र ही वे स्वयं कृपा करके यहाँ पधारेंगे।।११९।।

सर्वैर्देवगणैः सार्धं सभार्यो वृषभध्वजः ।
आकाशमार्गेणायातः पालयन् स्वसुतौ गृहात् ।।१२०।।
किन्तु मानुषदेहो वामधिवास्य तपोव्रतैः ।
स्वयन्नेष्यति कैलासं गाणपत्ये नियोज्य वाम् ।।१२१।।

भगवान् शंकर अपनी पत्नी तथा सभी देवगणों के सहित आकाशमार्ग से घर से ही अपने पुत्रों, किन्तु मनुष्य शरीर धारण किये हुए, तुम दोनों का पालन करते हुए तुम, दोनों को तपस्या में लगाकर, स्वयं कैलाश ले जायेंगे और गणों का स्वामी बनायेंगे।।१२०-१२१।।

अहं चाप्युपदेक्ष्यामि यथा भर्गं युवां द्रुतम् ।
प्राप्स्यथः पार्वतीपुत्रावेकाग्रं शृणुतं तु तत् ।।१२२।।

मैं भी तुम दोनों को वह उपदेश दूंगा, जिससे भगवान् शिव तुम दोनों को शीघ्र ही प्राप्त हों। हे पार्वती के पुत्रों ! तुम दोनों एकाग्रचित से उसे सुनो।।१२२।।

चिरात् प्रसीदति ध्यानान्नचिराद् ध्यानपूजनात् ।
तस्माद् ध्यानं पूजनं च कथयाम्यद्य तत्त्वतः ।।१२३।।

वे ध्यान से देर से प्रसन्न होते हैं और ध्यान तथा पूजन दोनों से शीघ्र ही प्रसन्न होते हैं । इसलिए तुम दोनों से भगवान् शिव के ध्यान और पूजन को आज मैं संक्षेप में कह रहा हूँ।।१२३।।

तेजोमयः सदा शुद्धो ज्ञानामृतविवर्धितः ।
जगन्मयश्चिदानन्दः शौरिब्रह्मस्वरूपधृक् ।।१२४।।
महादेवो महामूर्तिर्महायोगयुतः सदा ।
जगन्ति तस्य रूपाणि तानि को गदितुं क्षमः ।।१२५।।

महादेव शिव तेजस्वरूप हैं, वे सदैव शुद्धचित्त, ज्ञानरूपी अमृत से पोषित हैं । वे जगत्स्वरूप अभीष्ट हो चैतन्य तथा आनन्दरूप हैं। वे ब्रह्मा, विष्णु के रूप को धारण करने वाले हैं। वे देवों में महान् देव, महान् स्वरूप वाले और सदैव महान् योग में लगे रहने वाले है । संसार में उनके रूपों का वर्णन करने में कौन समर्थ है? अर्थात् कोई भी समर्थ नहीं है।।१२४-१२५।।

किन्तु यैरिह रूपैस्तु विचरत्येष शङ्करः ।
तेषां यन्मे ज्ञानगम्यं तत्रेष्टं निगदामि वाम् ।।१२६।।

किन्तु जिन रूपों में वे शंकर, यहाँ घूमा करते हैं, उनमें भी जिनको मैं अपने ज्ञान द्वारा जान चुका हूँ, उस अभीष्टरूप के बारे में, तुम दोनों से कह रहा हूँ॥१२६॥

प्रथमं शृणुतं मन्त्रं ततोऽनुध्यानगोचरम् ।
ततः क्रमं तु पूजायाः क्रमाद् वृत्तं नरर्षभौ ॥१२७॥

हे नरों में श्रेष्ठ ! पहले उनके मन्त्र को, तत्पश्चात् ध्यान को, तब उनके पूजाक्रम को और अन्त में उनके व्यवहार के विषय में तुम दोनों सुनो॥१२७॥

॥ शिवमन्त्रनिर्देश ॥

समस्तानां स्वराणां तु दीर्घाः शेषाः सबिन्दुकाः ।
ऋलृशून्याः सार्धचन्द्रा उपान्तेनाभिसंहिताः ॥१२८॥
एभिः पञ्चाक्षरैर्मन्त्रं पञ्चवक्त्रस्य कीर्तितम् ।
क्रमात् सम्मदसन्दोह-नादगौरव-संज्ञकाः ॥१२९॥
प्रासादस्तु भवेच्छेषः पञ्चमन्त्राः प्रकीर्तिताः ।
एकैकेन तथैकैकं वक्त्रं देवं प्रपूजयेत् ॥१३०॥

ऋ और लृ को छोड़कर, शेष स्वरों में, किनारे के स्वरों से रहित, समस्त दीर्घस्वर, बिन्दु और अर्द्धचन्द्र से युक्त होकर आँ, ईं, ऊँ, ऐं, औं इन पाँच अक्षरों से पंचवक्त्रशिव के क्रमशः पाँच-मन्त्र कहे गये हैं, जो क्रमशः सम्मद, सन्दोह, नाद, गौरव और अंतिम प्रासाद नाम के हैं। इन एक-एक मन्त्रों से भगवान् शिव के एक-एक मुख का पूजन होता है॥१२८-१३०॥

एकं समुदितं कृत्वा पञ्चभिर्वा प्रपूजयेत् ।
प्रसादेनाथ वा पञ्चवक्त्रं देवं प्रपूजयेत् ॥१३१॥

अच्छी प्रकार से बोले हुए एक मंत्र से या पाँचोंमंत्रो से या केवल प्रासादमंत्र से पंचवक्त्रदेवता, शिव के पाँचों मुखों का पूजन करना चाहिए॥१३१॥

सम्मदादिषु मन्त्रेषु प्रासादस्तु प्रशस्यते ।
शम्भोः प्रसादनेनैष यस्माद् वृत्तस्तु मन्त्रकः ॥१३२॥
तेन प्रासादसंज्ञोऽयं कथ्यते मुनिसत्तमैः ।
तस्मात् सर्वेषु मन्त्रेषु प्रासादः प्रीतिदः परः ॥१३३॥

सम्मद आदि पाँच मंत्रों में प्रासाद को ही श्रेष्ठ कहा गया हैं। शिव को प्रसन्न करने में इस मंत्र का विशेष व्यवहार किया जाता है। इसी कारण से श्रेष्ठ- मुनियों द्वारा इसे प्रासाद नाम से पुकारा जाता है, इसीलिए सभी मन्त्रों में प्रासाद ही प्रसन्नता प्रदान करने वाला सर्वश्रेष्ठमन्त्र है॥१३२-१३३॥

आमोदकारकः शम्भोर्मन्त्रः सम्मद उच्यते ।
मनःप्रसूरणाच्चापि सन्दोहः परिकीर्तितः ॥१३४॥

शिव को आमोद (हर्षित) करने वाला मन्त्र, सम्मद कहा जाता है तथा मन को प्रकाशित करने वाले मन्त्र को सन्दोह कहते हैं ॥१३४॥

आकर्षको भवेन्नादो गुरुत्वाद् गौरवाह्वयः ।
एतद्व्यस्तं समस्तं च मन्त्रं शम्भोः प्रकीर्तितम् ।।१३५।।
पञ्चाक्षरं तु यन्मन्त्रं पञ्चवक्त्रस्य कीर्तितम् ।
युवां तेनैव मन्त्रेण आराधयतमीश्वरम् ।।१३६।।

आकर्षण करने वाला मन्त्र, नाद और गुरुता के कारण महत्वपूर्ण मन्त्र, गौरव कहा जाता है। ये सभी मन्त्र एक साथ हों या अलग-अलग हों, शिव के ही मन्त्र कहे गये हैं। इस प्रकार जो शिव का पंचाक्षरमन्त्र कहा गया है या जो शिव का पंचाक्षरमन्त्र (नमः शिवाय) है, तुम दोनों उसी के द्वारा भगवान् शिव की आराधना करो॥१३५-१३६॥

।। शिव का ध्यान ।।

ध्यानं वक्ष्यामि शृणुतं सम्यग् वेतालभैरवौ ।
पञ्चवक्त्रं महाकायं जटाजूटविभूषितम् ।।१३७।।
चारुचन्द्रकलायुक्तं मूर्ध्नि बालौघभूषितम् ।
बाहुभिर्दशभिर्युक्तं व्याघ्रचर्माम्बराम्बरम् ।।१३८।।
कालकूटधरं कण्ठे नागहारोपशोभितम् ।
किरीटबन्धनं बाहुभूषणं च भुजङ्गमान् ।।१३९।।
बिभ्रतं सर्वगात्रेषु ज्योत्स्नार्षितसुरोचिषम् ।
भूतिसंलिप्तसर्वाङ्गमेकैकत्र त्रिभिस्त्रिभिः ।।१४०।।
नेत्रैस्तु पञ्चदशभिर्ज्योर्तिष्मद्भिर्विराजितम् ।
वृषभोपरि संस्थं तु गजकृत्तिपरिच्छदम् ।।१४१।।

हे वेताल-भैरव ! मैं अब शिव का ध्यान बताता हूँ, उसे तुम दोनों ध्यान से सुनो। वे पाँचमुँह वाले हैं, उनका विशाल शरीर है तथा वे जटा-जूट से सुशोभित हैं। वे मस्तक पर सुन्दर चन्द्रमा की कला से युक्त, बालों के समूह से सुशोभित हैं, उनकी दस भुजाएँ हैं तथा वे बाघ के चमड़े का वस्त्र धारण किये हैं। वे अपने कंठ में काल-कूट विष धारण किये हैं तथा नाग उनके हार के रूप में सुशोभित हो रहे हैं। उन्होंने सर्पों का ही मुकुट और भुजाओं में आभूषण धारण कर रखा है । उन्होंने अपने सम्पूर्ण शरीर में, सभी अंगों में एक-एक स्थान पर चन्द्रमा की चाँदनी से युक्त सुन्दर रूप से प्रकाशित तीन-तीन विभूतियाँ लगा रखी हैं। अपने पन्द्रह नेत्रों से अग्नि के समान प्रकाशित और विराजमान हो, हाथी की खाल से ढँके हुए, वे स्वयं बैल पर स्थित हैं॥१३७-१४१॥

सद्योजातं वामदेवं अघोरं च ततः परम् ।
तत्पुरुषं तथेशानं पञ्चवक्त्रं प्रकीर्तितम् ।।१४२।।

सद्योजातं भवेच्छुक्लं शुद्धस्फटिकसंनिभम् ।
पीतवर्णं तथा सौम्यं वामदेवं मनोहरम् ।।१४३।।
नीलवर्णमघोरं तु दंष्ट्राभीतिविवर्धनम् ।
रक्तं तत्पुरुषं देवं दिव्यमूर्तिं मनोहरम् ।
श्यामलं च तथेशानं सर्वदेव शिवात्मकम् ।।१४४।।

भगवान् शिव के सद्योजात, वामदेव, अघोर तत्पश्चात् तत्पुरुष और ईशान् ये पाँचमुख कहे गये हैं। सद्योजात, शुद्धस्फटिक के समान आभा वाला, श्वेतवर्ण का होता है तथा वामदेव, सुन्दर एवं सौम्य, पीतवर्ण का होता है। अघोर, नीले रंग का, बड़े दाँतो से भय बढ़ाने वाला होता है । तत्पुरुष, दिव्यरूप, सुन्दर, रक्तवर्ण का देवरूप है और ईशान, सदैव ही कल्याण करने वाला, श्यामलवर्ण का है।।१४२-१४४।।

चिन्तयेत् पश्चिमे त्वाद्यं द्वितीयं तु तथोत्तरे ।
अघोरं दक्षिणे देवं पूर्वे तत्पुरुषं तथा ।।१४५।।
ईशानं मध्यतो ज्ञेयं चिन्तयेद् भक्तितत्परः ।।१४६।।

पहले पश्चिमदिशा में सद्योजात का, उत्तरदिशा में दूसरे वामदेव का, दक्षिणदिशा में अघोर का तथा पूर्व में तत्पुरुष का एवं मध्यभाग में ईशान का स्थान जानना चाहिए और भक्तिपूर्वक चिन्तन करना चाहिये ।।१४५-१४६।।

शक्तित्रिशूलखट्वाङ्गवरदाभयदं शिवम् ।
दक्षिणेष्वथ हस्तेषु वामेष्वपि ततः शुभम् ।।१४७।।
अक्षसूत्रं बीजपूरं भुजङ्गं डमरूत्पलम् ।
अष्टैश्वर्यसमायुक्तं ध्यायेत् तु हृद्गतं शिवम् ।।१४८।।

वे अपने दाहिनी ओर के हाथों में कल्याणकारी शक्ति, त्रिशूल, खट्वाङ्ग, वर और अभय मुद्राएँ तथा बायीं ओर के हाथों में शुभ करने वाली रुद्राक्षमाला, बीजपूर, सर्प, डमरू एवं कमल धारण किये हुए हैं । इस प्रकार के वेश तथा आठ प्रकार के ऐश्वर्यो से युक्त, भक्तों के हृदय में स्थित, भगवान् शिव का ध्यान करना चाहिए।।१४७-१४८।।

एवं विचिन्तयेद् ध्याने महादेवं जगत्पतिम् ।
चिन्तयित्वा द्वारपालान् गणेशादीन् प्रपूजयेत् ।।१४९।।

ध्यान करते समय जगत के स्वामी महादेव के विषय में इस प्रकार सोचना (चिन्तन करना) चाहिए । ऐसा चिन्तन करके द्वारपालों का तथा गणेश आदि देवताओं का पूजन करना चाहिए ।।१४९।।

विशुद्धिं पञ्चभूतानां चिन्तयित्वा ततो मुहुः ।
अष्टमूर्तीन् ततः पश्चात् पूजयेदष्टनामभिः ।।१५०।।

तब पंचभूतों की विशुद्धि के विषय में चिन्तन करके भगवान् शिव की अष्टमूर्तियों का उनके आठ नामों से पूजन करना चाहिए।।१५०।।

आसनानि च तस्याथ पूजयेत् सकलानि तु ।
भावादीन्यष्टपुष्पाणि हृदैव विनियोजयेत् ।।१५१।।

आसन आदि समस्त उपकरणों और भाव आदि आठ पुष्पों को हृदय में ही विनियोजित कर उनका पूजन करना चाहिए।।१५१।।

नाराचमुद्रया तस्य ताडनं परिकीर्तितम् ।
विसर्जनं धेनुमुद्रां दर्शयित्वा विधानतः ।।१५२।।

नाराचमुद्रा से उसका ताडन बताया गया है। तब धेनुमुद्रा दिखाकर उनका विधिपूर्वक विसर्जन करना चाहिए।।१५२।।

निर्माल्यधारणं कुर्यात् सदा चण्डेश्वरं धिया ।
प्रत्येकं पञ्चभिर्मन्त्रैरङ्गादीनि प्रमार्जयेत् ।
सम्मदादिभिरेतस्य पूर्वोक्तैर्नरसत्तमौ ।।१५३।।

हे नरसत्तमों ! विसर्जन करके सदैव चण्डेश्वर की बुद्धि से निर्माल्य को धारण करना चाहिए। सम्मदादि पहले कहे गये प्रत्येक मन्त्रों का प्रयोग करके अपने अंगो का विशेषरूप से मार्जन करना चाहिए।।१५३।।

बालां ज्येष्ठां तथा रौद्रीं कालीं च तदनन्तरम् ।
कलविकरिणीं देवीं बलप्रमथिनीं तथा ।।१५४।।
दमनीं सर्वभूतानां मनोन्मथिनीं तथैव च ।
अष्टौ ताः पूजयेद् देवीः क्रमाच्छम्भोश्च प्रीतये ।।१५५।।

बाला, ज्येष्ठा, रौद्री, काली, कलविकरिणी, बलप्रमथनी, सर्वभूतदमनी, मनोन्मथनी इन आठ देवियों का शिव की प्रसन्नता के लिए क्रमशः पूजन करना चाहिए।।१५४-१५५।।

एवं शिवं पूजयित्वा ध्यानतत्परमानसः ।।१५६।।
जपेन्मालां समादाय मन्त्रं ध्यात्वा तथा गुरुम् ।
एकं पञ्चाक्षरं मन्त्रमेकं प्रासादमेव वा ।
तत्सक्तमनसौ जप्त्वा शीघ्रं सिद्धिमवाप्स्यथ ।।१५७।।

इस प्रकार से ध्यानतत्पर-मन से शिव का पूजन करके, गुरु का ध्यान करते हुए माला लेकर मन्त्र का जप करे। मन्त्र की दृष्टि से एक मन्त्र, पंचाक्षरमंत्र या केवल एक प्रासादमन्त्र का ही, उनमें मन लगाकर जप करने से तुम दोनों, शीघ्र ही सिद्धि को प्राप्त करोगे।।१५६-१५७।।

इति वां कथितं मन्त्रं ध्यानपूजाक्रमं तथा ।
गच्छतं नाटकं शैलं तत्राराधयतं हरम् ।।१५८।।

इस प्रकार मैंने तुम दोनों से भगवान शिव का मन्त्र, ध्यान एवं पूजा का क्रम कहा है। अब तुम दोनों नाटकपर्वत पर जाओ और वहीं जाकर भगवान् शिव की आराधना करो॥१५८॥

।। वेताल भैरवावूचतुः ।।

पञ्चाक्षरस्तु मन्त्रोऽयं धृतस्त्वत्सम्मते मुने ।
अनेनैव हरं देवं पूजयिष्यावहे मुदा ।।१५९।।

वेताल और भैरव बोले– हे मुनि ! आपकी सम्मति से हम दोनों ने इस पंचाक्षरमन्त्र को धारण कर लिया है । इसी के द्वारा हम दोनों प्रसन्नतापूर्वक भगवान् शंकर की पूजा करेंगे ॥१५९॥

।। और्व उवाच ।।

इत्युक्त्वा तन्नमस्कृत्य तदा वेतालभैरवौ ।
जग्मुतुर्नाटकं शैलं वशिष्ठानुमते नृप ।।१६०।।

और्व बोले– हे राजा ! ऐसा कहकर, उन वशिष्ठ मुनि को नमस्कार कर, उन्हीं की अनुमति से वे दोनों वेताल और भैरव, नाटकपर्वत पर चले गये॥१६०॥

तत्रास्ति सरसी रम्या सुसम्पूर्णमनोहरा ।
सर्वदा स्वच्छसलिला प्रफुल्लकमलोत्पला ।।१६१।।

वहाँ सुन्दर, रमणीक, भली-भाँति भरा हुआ, सदा स्वच्छजल तथा खिले हुए लाल एवं नीले कमलों से युक्त एक सरोवर था॥१६१॥

तस्यास्तीरे तु विपुलः सुमनोज्ञो हराश्रमः ।
सर्वदा दानवैर्देवैः किन्नरैः प्रमथैस्तथा ।।१६२।।
रक्ष्यते नृपशार्दूल नृत्यवादनतत्परैः ।
यस्मान्नटति तत्रेशो नित्यं कौतुकतत्परः ।।१६३।।

उसके तट पर एक विशाल, मन को अच्छा लगने वाला, भगवान् शंकर का सुन्दर स्थान है। जहाँ सदैव देवता-दानव, किन्नर, प्रमथ आदि जो नाचने-बजाने में लगे रहते हैं, ऐसे गणों से रक्षित हो, भगवान् शिव, कौतुकपूर्वक नित्य नृत्य किया करते हैं॥१६२-१६३॥

तस्मान्नाटकनाम्नासौ शैलराजः प्रगीयते ।
छत्राकारं तु तं शैलं मनोज्ञं शङ्करप्रियम् ।।१६४।।

इसीलिए इस श्रेष्ठपर्वत को नाटक नाम से पुकारा जाता है । यह सुन्दर पर्वत, छाते के आकार का बना हुआ है जो भगवान् शिव को बहुत प्रिय है॥१६४॥

आसाद्य यत्र सरसी तत्र गत्वा तु तौ तदा ।
न चैवापश्यतां तत्र हराश्रममनुत्तमम् ।।१६५।।

गन्तुं चैवाश्रमस्थानं तौ नैवाशकतां नृप ।
ततो हरं प्रणम्याशु तस्यैव सरसस्तटे ।।१६६।।
निर्माय स्थण्डिलं चारु वशिष्ठोक्तक्रमेण तु ।
हरमाराद्धुमारेभे वेतालो भैरवोऽपि च ।।१६७।।

जब उस सरोवर के तट पर पहुंच कर उन दोनों ने भगवान् शंकर के उस श्रेष्ठ स्थान को नहीं देखा तो उस निवासस्थान पर जाने में असमर्थ हो, उस सरोवर के तट पर ही भगवान शिव को प्रणाम कर, शीघ्रतापूर्वक एक सुन्दर वेदी बनाकर वेताल और भैरव ने वशिष्ठ मुनि द्वारा बताये हुए क्रम से भगवान् शिव की आराधना आरम्भ की।।१६५-१६७।।

आराधयन्तौ भूतेशं तौ तदा शङ्करात्मजौ ।
दृष्ट्वा हरो देवगणैः सार्धं तस्मिंस्तु पर्वते ।
अधित्यकायां न्यवसत् स्वाश्रमेऽपर्णया सह ।।१६८।।

उस समय वेताल और भैरव नामक उन दोनों शिवपुत्रों को अपनी (भूतनाथ शिव की) आराधना करते हुए देखकर, भगवान् शिव, पार्वती तथा देवगणों के सहित, उस पर्वत की घाटी में स्थित, अपने आश्रम में रहने लगे।।१६८।।

अधोभागे सरस्तीरे तपस्यन्तौ हरात्मजौ ।
स्थितौ दृष्ट्वा देवगणैः सहितः शङ्करः स्थितः ।।१६९।।
नृत्यमर्दलशब्दो यो हरस्य सततं भवेत् ।
शृणुतस्तौ तदा शब्दं गन्तुं द्रष्टुं न लभ्यते ।।१७०।।

उस आश्रम के निचले भाग में सरोवर के किनारे स्थित हो, तपस्या करते हुए, देवगणों के सहित शंकर को स्थित जानकर और उनके नृत्य से निरंतर उत्पन्न मृदुल शब्दों को सुनते हुए, शिव के वे दोनों पुत्र, शब्द का अनुगमन करते हुए भी वहाँ जाकर उन्हें देख नहीं सकते थे ।।१६९-१७०।।

हरेणाधिष्ठितः शैलः सर्वदेवगणैः सह ।
राजते स्म तदा भूप सुधर्मा वासवी यथा ।।१७१।।

हे राजन् ! सभी देवताओं के समूह के सहित भगवान् शिव द्वारा निवास किया जाता, वह पर्वत, उस समय इन्द्र की सुधर्मासभा के समान सुशोभित हो रहा था।।१७१।।

ध्यायतोस्तु तदा तत्र भगवान् वृषभध्वजः ।
नचिरादेव तस्याभूद् ध्यानमार्गेषु निश्चलः ।।१७२।।

तब शीघ्र ही भगवान् शिव के ध्यान में रत, वे दोनों ध्यानमार्ग में, निश्चल रूप (भाव) से स्थित हो गये ।।१७२।।

तौ पूजयन्तौ गच्छन्तौ स्थितौ वा चन्द्रशेखरम् ।
नैव तत्यजतुश्चित्तैः कदाचिदपि भूमिप ।।१७३।।

हे राजन् ! वे दोनों पूजा करते हुए, चलते हुए या खड़े रहते हुए, कभी भी अपने चित्त से भगवान् शंकर को नहीं हटाते थे।।१७३।।

पञ्चाक्षरेण मन्त्रेण पूजयन्तौ वृषध्वजम् ।
व्यतिचक्रमतुस्तौ तु सहस्रं परिवत्सरान् ।।१७४।।

इस प्रकार पंचाक्षरमंत्र से भगवान् शिव की पूजा करते हुए उन दोनों के एक हजार वर्ष बीत गये।।१७४।।

निराहारौ यताहारौ हरसंसक्तमानसौ ।
तपसा निन्यतुर्वर्षान् सहस्रं चैकवर्षवत् ।।१७५।।

बिना आहार लिए या संयमित भोजन लेकर भगवान् शिव में अपना मन लगाये हुए, तपस्या करते हुए उन दोनों ने एक हजार वर्ष, एक वर्ष की भाँति व्यतीत कर दिया।।१७५।।

गते वर्षसहस्रे तु स्वयमेव वृषध्वजः ।
प्रसन्नस्तु तयोर्भूत्वा प्रत्यक्षत्वमुपागतः ।।१७६।।

इस प्रकार एक हजार वर्ष व्यतीत हो जाने पर, भगवान् शंकर प्रसंग- वश, उन दोनों के सम्मुख स्वयं प्रत्यक्ष हो, उपस्थित हुए।।१७६।।

तं तु प्रत्यक्षतो दृष्ट्वा तदा वेतालभैरवौ ।
वृषध्वजं तुष्टुवतुर्ध्यानगम्यं पुरःस्थितम् ।।१७७।।
हररूपं यथाध्यातं हृद्गतं तेजसोज्ज्वलम् ।
तथा दृष्ट्वा ततस्ताभ्यां वशिष्ठस्यानुमानतः ।।१७८।।

उन भगवान् शिव को उस समय प्रत्यक्ष उपस्थित देखकर, वशिष्ठ जी के द्वारा बताये हुए, अपने हृदय में स्थित तेज से पूर्ण, ध्यान किये जाते हुए, शिव के स्वरूप के अनुसार अनुमान करके, अपने सामने उपस्थित शिव की, उन वेताल और भैरव ने स्तुति करना प्रारम्भ किया।।१७७-१७८।।

।। वेतालभैरवावूचतुः ।।

पञ्चवक्त्रं महाकायं सर्वज्ञानमयं परम् ।
संसारसागरत्राणं प्रणमावो वृषध्वजम् ।।१७९।।

वेताल और भैरव बोले– हम दोनों पाँचमुँह वाले, विशालशरीर वाले, समस्तज्ञान से युक्त, सर्वश्रेष्ठ, संसारसागर से पार करने वाले, भगवान् वृषध्वज, शिव को प्रणाम करते हैं।।१७९।।

त्वं परः परमात्मा च परेशः पुरुषोत्तमः ।
त्वं कूटस्थो जगद्व्यापी प्रधानः परमेश्वरः ।।१८०।।

हे शिव ! आप श्रेष्ठ हैं, परमात्मा हैं और श्रेष्ठों के भी स्वामी अर्थात् सर्वश्रेष्ठ हैं। आप ही सबके अन्तर में गुप्तरूप से स्थित रहने वाले, समस्त संसार में व्याप्त, पुरुषोत्तम हैं, आप ही सांख्य की दृष्टि से प्रधान एवं वेदान्त की दृष्टि से परमेश्वर भी हैं।।१८०।।

रूपात्मा त्वं महातत्त्वं तत्त्वज्ञानालयः प्रभुः ।
साङ्ख्ययोगालयः शुद्धो गुणत्रयविभागवित् ।।१८१।।

आप आत्मरूप हो, महान्तत्व हो, तत्त्वज्ञान के घर भी आप ही हैं, आप सत्तासम्पन्न हैं, आप सांख्य और योग के निवास, शुद्धरूप तथा तीनों गुणों के विभाग को जानने वाले हैं।।१८१।।

त्वं नित्यस्त्वमनित्यश्च जगत्कर्त्ता लयः स्मृतः ।
एकोऽनेकस्वरूपश्च शान्तचेष्टो जगन्मयः ।।१८२।।

आप नित्य हैं और आप ही अनित्य भी हैं, आप संसार के करने वाले और इसके अंतिमआश्रय भी कहे गये हैं । आप एक और अनेक रूपों वाले हैं, आप शान्त हैं और क्रियाशील भी हैं, यह सम्पूर्ण जगत् आपका स्वरूप हैं।।१८२।।

निर्विकारो निराधारो नित्यानन्दः सनातनः ।
त्वं विष्णुस्त्वं महेन्द्रस्त्वं ब्रह्मा त्वं जगतां पतिः ।।१८३।।

आप विष्णु हैं, आप ही ब्रह्मा हैं, आपही महेन्द्र हैं तथा आप ही जगत के स्वामी हैं। आप सभी प्रकार के विकारों से रहित, निराधार तथा नित्य आनन्द युक्त सनातन तत्त्व हैं।।१८३।।

यो रूपरूपेश्वररत्नमालः
सम्भूतिभूतो निरवग्रहश्च ।
कांक्ष्यावतीर्णावगतप्रमाथी
योगेश्वरो ज्ञानगतिस्त्वगम्यः ।।१८४।।

जो रूपवान् और रूपवानों में भी श्रेष्ठ, रत्नों के समूह, जो स्वयं अच्छी प्रकार के वैभव से उत्पन्न हैं, आप मुक्तरूप हैं, जो आकांक्षा से उत्पन्न दशा को भी पीड़ित करने वाले हैं, योग के ईश्वर हैं, जो स्वयं ज्ञानगति हैं और अगम्य हैं, वह आप ही हैं।।१८४।।

प्रमेयरूपात्मधराधराभो
भोगीन्द्रबद्धामृतभोगतन्त्रः

सूक्ष्माक्षरस्तत्त्वविदप्रमाथी
त्वं देवदेवः शरणं सुराणाम् ।।१८५।।

आप प्रमेयरूप हैं, आप आत्मतत्त्व के धारण करने वाले, श्रेष्ठ पर्वत के समान दृढ़ हैं। आप सर्पों के आभूषण से बद्ध और अमृत के भोग करने वाले हैं, आप देवता के भी देवता और देवताओं को भी शरण देने वाले हैं।।१८५।।

विकल्पमानापरिहीनदेहः
शुद्धान्तधामानुगतैकविद्यः ।
वर्धिष्णुरुग्रः पुरुषः परात्मा
त्वमिन्द्रियौघस्य विचारबुद्धिः ।।१८६।।

आप विकल्प और मान से रहित शरीर वाले हैं। आपका अन्तः करण शुद्ध है तथा आप अनुगामियों के एकमात्र आश्रय हैं। आप विकासशील हैं, उग्र हैं, सांख्य के पुरुष तथा वेदान्त के परमात्मा हैं। आप इन्द्रियसमूह में उसके नियंता, विचारशीलबुद्धि हैं।।१८६।।

त्वं नाथनाथ प्रभवः परेषां
गतिर्मुनीनां परयोगिगम्यः ।
त्वं भूधरो भागधरो ह्यनन्तो
विश्वात्मनस्ते बहवः प्रपञ्चाः ।।१८७।।

आप स्वामियों के भी स्वामी, श्रेष्ठतम लोगों को भी उत्पन्न करने वाले, मुनियों की गति तथा श्रेष्ठ योगियों के भी प्राप्तव्य हैं। आप पृथ्वी को धारण करने वाले और भाग्य को भी धारण करने वाले हैं। क्योंकि आपका कोई अन्त नहीं है। आप विश्वात्मा हैं और आपके बहुत से प्रपंच (कार्य) हैं।।१८७।।

ज्ञानामृतस्यन्दकपूर्णचन्द्रो
मोहान्धकारस्य परः प्रदीपः ।
भक्तात्मजानां परमः पिता त्वं
कामे च पञ्चाननरूपधारी ।।१८८।।

आप ज्ञानरूपी अमृत के रिसाव से भरे हुए पूर्णचन्द्रमा हैं तथा मोहरूपीअन्धकार को दूर करने के लिए आप श्रेष्ठ प्रदीप हैं, आप भक्तरूपी पुत्रों के श्रेष्ठ पिता हैं और काम के विनाश के लिए आप सिंह के समान हैं।।१८८।।

शास्ताखिलानां प्रथमो विवस्वां-
स्तनूनपात् त्वं तनुषे गुणौघान् ।
त्वं ब्रह्मरूपेण करोषि सृष्टिं
विष्णुस्वरूपैः सततं स्थितिं च ।।१८९।।

आप सभी पर शासन करने वाले सबमें प्रथम हैं, आप ही सूर्य हैं, आप ही अग्नि हैं, आप गुणसमूहों का विस्तार करते हैं, आप ब्रह्मा के रूप में सृष्टि करते हैं, तथा विष्णु के रूप में निरन्तर जगत की स्थिति बनाये रखते हैं।।१८९।।

त्वं रुद्ररूपी कुरुषे तथान्तं
त्वत्तो न चान्यज्जगतीह वस्तु ।
त्वं रात्रिनाथो दिवसेश्वरश्च
त्वमग्निरापः पवनो धरित्री ।।१९०।।

आप रूद्ररूप से सृष्टि का अन्त भी करते हैं, आपके अतिरिक्त संसार में कोई अन्य वस्तु नहीं है। रात्रि के स्वामी चन्द्रमा तथा दिन के स्वामी सूर्य, आप ही हैं। आप ही अग्नि, जल, वायु और पृथ्वी भी हैं।।१९०।।

नभस्तथा त्वं क्रतुतन्त्रहोता
त्वमष्टमूर्तिर्भवतो न चान्यत् ।
अनन्तमूर्तिस्त्विह मुख्यभावा-
न्निगद्यते चाष्टमयी त्रिमूर्तिः ।।१९१।।

आप आकाश हैं, आप ही यज्ञ हैं, आप होता हैं, इस प्रकार से आप अष्टमूर्ति हैं, आपसे अतिरिक्त कुछ भी नहीं हैं। आप तो अनन्त रूपों वाले हैं किन्तु मुख्यभागों को ध्यान में रख कर ही आपको अष्टमूर्ति या त्रिमूर्ति के नाम से पुकारा जाता है।।१९१।।

अनन्तमूर्ते कथमन्यथा ते
संख्यास्ति रूपस्य यदष्टमूर्तिः ।
त्वं त्र्यम्बकस्त्वं त्रिपुरान्तकश्च
त्वं शम्भुरीशः शमनो विधाता ।।१९२।।

अन्यथा जब आप अनन्तमूर्ति हैं तो आप के रूपों की आठ के रूप में कैसे गिनती की जाती है ? आप तीन नेत्रों वाले हैं। आप त्रिपुर का वध करने वाले हैं, आप ही शिव, ईश्वर, यम और विधाता, ब्रह्मा हैं।।१९२।।

सहस्रबाहुश्च हिरण्यबाहुः
सहस्रमूर्तिस्त्विह पञ्चवक्त्रः ।
प्रभूतनेत्रस्तु षडर्धनेत्रः
प्रभूतबाहुर्दशबाहुरीशः ।।१९३।।
प्रभूतभोगी मितभोगयुक्तो
भोग्यानुसारो निरवग्रहश्च ।।१९४।।

आप हजार भुजाओं वाले हैं, आप हिरण्यमयी भुजाओं वाले हैं, आप हजार रूपों वाले हैं, आप पाँचमुँह वाले हैं, आप बहुत अधिक नेत्रों वाले हैं, आप तीन नेत्रों वाले हैं, आप बहुत सी भुजाओं वाले हैं, तो दस भुजाओं वाले ईश्वर भी आप

ही हैं। बहुत से भोगों को भोगने वाले तथा सीमित भोग करने वाले आप ही हैं। आप भोग्यानुसार हैं, बन्धन से मुक्त दोनों हैं॥१९३-१९४॥

नित्यानित्यस्वरूपाय नित्यधामस्वरूपिणे ।
परतत्त्वस्वरूपाय नमस्तुभ्यं शिवात्मने ॥१९५॥

नित्य और अनित्य रूप वाले, प्राणीमात्र के नित्यधामरूपी श्रेष्ठ तत्त्वस्वरूप, शिवरूप आपको नमस्कार है॥१९५॥

नान्तं लिङ्गस्य यस्याप्तं विष्णुना ब्रह्मणा तव ।
तस्यावां किं विधास्याव: स्तुतिवाक्यं वृषध्वज ॥१९६॥

हे वृषध्वज ! जिस आपके लिंग का अन्त, ब्रह्मा व विष्णु नहीं पा सके, उस आपकी स्तुति के लिए हम दोनों कहाँ तक चेष्टा कर सकते हैं?॥१९६॥

स्वरूपं यस्य जानन्ति न देवा नापि दानवा: ।
बालावावां कथन्तु त्वां स्तोष्याव: परमेश्वर ॥१९७॥

हे परमेश्वर ! जिसके स्वरूप को न देवता जानते हैं, न दानव, उस आप परमेश्वर की, हम दोनों बालबुद्धि वाले कैसे स्तुति कर सकते हैं? ॥१९७॥

भक्तिमात्रेण देवेश तवावां वृषभध्वज ।
कुर्व: प्रणामं गौरीश भूयस्तुभ्यं नमो नम: ॥१९८॥

हे वृषभध्वज, हे देवताओं के स्वामी, हे गौरीपति ! हम दोनों तो भक्ति- मात्र से ही आपको प्रणाम करते हैं। आपको बार-बार नमस्कार है ॥१९८॥

॥ और्व उवाच ॥

इति स्तुतो महादेवो वेतालेन महात्मना ।
भैरवेणापि राजेन्द्र ! प्रसन्न: प्राह तौ तदा ॥१९९॥

और्व बोले– हे राजेन्द्र ! इस प्रकार से महात्मा वेताल और भैरव द्वारा स्तुति किये जाने पर, प्रसन्न होकर महादेव ने उन दोनों से उस समय कहा—॥१९९॥

॥ भगवानुवाच ॥

तुष्टोऽस्मि युवयो: पुत्रौ वृणुतं वाञ्छितं वरम् ।
दास्यामि युवयोरिष्टं प्रसन्नोऽहं तपोव्रतै: ॥२००॥

भगवान शिव बोले– हे पुत्रों ! मैं तुम दोनों से संतुष्ट हूँ। तुम दोनों अपना इच्छित वरदान मांग लो। मैं तुम्हारी तपस्या और व्रत से प्रसन्न होकर तुम दोनों को अभीष्ट वरदान दूंगा ॥२००॥

स्तुतिभिस्तु दमैश्चापि तथैकान्तानुचिन्तनै: ।
मुहुर्मुहु: सुप्रसन्न इष्टं दास्यामि वां सुतौ ॥२०१॥

हे पुत्रों ! मैं तुम दोनों के इन्द्रियदमन तथा एकान्त में बारम्बार चिन्तन किये जाने एवं स्तुतियों से प्रसन्न होकर तुम दोनों को इच्छित वर दूंगा ॥२०१॥

।। वेतालभैरवावूचतुः ।।

तुष्टोऽसि यदि सत्यं नौ सत्यमावां सुतौ यदि ।
वृषध्वज तवेवेह तदेष्टं देहि नौ वरम् ।।२०२।।

वेताल और भैरव बोले– हे वृषध्वज ! यदि आप सचमुच में हमसे संतुष्ट हैं और हम दोनों यदि वास्तव मे आपके पुत्र हैं तो इसे जानकर आप हमें इच्छित वरदान दीजिए ।।२०२।।

सुतभावेन पितरं भवन्तं जगतां पतिम् ।
नित्यं यथावगच्छावस्तथा देहि वरं तु नौ ।।२०३।।

संसार के स्वामी, आपकी, पिता के रूप में, पुत्र की भावना से जिस प्रकार से हम दोनों नित्य अनुभव करें, ऐसा आप हमें वरदान देंवे।।२०३।।

न राज्यमभिकांक्षावो न धनं नान्यदेव वा ।
त्वद्भक्त्या सेवनं कर्तुं तवेच्छावो वृषध्वज ।।२०४।।

हे वृषध्वज ! हम न तो राज्य चाहते हैं न धन चाहते हैं, न किसी अन्य देवता की उपासना ही करना चाहते हैं।।२०४।।

त्वत्पादपङ्कजद्वन्द्वे नित्यं मधुकरात्मताम् ।
त्वयि प्रसन्ने नेत्राणां युगले प्राप्नुतां सदा ।।२०५।।

हम दोनों तो आपकी भक्ति करते हुए केवल आपको ही पाना चाहते हैं। हम दोनों तो आपके दोनों चरणकमलों में नित्य अपने को भँवरे की तरह लगाये रखना चाहते हैं तथा सदैव आपके प्रसन्न मुख में अपने दोनों नेत्रों की प्रसन्नता प्राप्त करना चाहते हैं ।।२०५।।

इतोऽन्यथा त्वच्चिन्ताभिस्त्वद्ध्यानैस्त्वत्प्रपूजनैः ।
कल्पकोटिसहस्राणि यान्तु सम्यक्तयावयोः ।।२०६।।

अन्यथा हम दोनों के आपके चिन्तन, ध्यान और पूजन में, एक हजार वर्ष कौन कहे, हजार करोड़ कल्प भी बीत जाये तो वह उचित ही होगा।।२०६।।

।। और्व उवाच ।।

ततस्तद् वचनं श्रुत्वा महादेवो हसन्निव ।
सर्वैर्देवगणैः सार्धं देवत्वमकरोत्तयोः ।।२०७।।

और्व बोले– तब उन दोनों के वचनों को सुनकर हँसते हुए भगवान् शंकर ने सभी देवताओं के साथ उन्हें देवत्व प्रदान किया ।।२०७।।

देवेन्द्रसम्मतेनैव सुधामानीय नाकतः ।
वेतालभैरवौ तान्तु पाययामास शङ्करः ।।२०८।।

देवराज इन्द्र की सम्मति से, स्वर्ग से अमृत लाकर भगवान् शंकर ने उसे उन दोनों वेताल और भैरव को पिलाया।।२०८।।

पीतेऽमृते ततस्तौ तु मर्त्यतां नरसत्तमौ ।
अमर्त्यतां परित्यज्य प्रापतुः शिवशक्तितः ।।२०९।।

वो दोनों श्रेष्ठपुरुष, अमृत पीने के बाद, शिव की शक्ति से मर्त्यता (मरणधर्मिता) को छोड़कर अमरता को प्राप्त कर लिये ॥२०९॥

तस्मिन्काले स्वपन्तौ तु दिव्यज्ञानबलान्वितौ ।
दिव्यरूपोपसम्पन्नौ बभूवतुररिन्दमौ ।।२१०।।
अभिन्नेनैव देहेन देवत्वं गतयोस्तयोः ।
प्राह शम्भुस्तदा तौ तु सुतौ परमहर्षितौ ।।२११।।

उस समय वे दोनों शत्रुओं का दमन करने वाले, सोते ही सोते, दिव्य ज्ञान एवं बल से युक्त हो गये। उन्होंने दिव्यरूप प्राप्त कर लिया। वे अपने शरीर के अभिन्न रहते हुए देवत्व को प्राप्त हो गये तब भगवान् शंकर ने अपने परमप्रसन्न हुए, उन दोनों पुत्रों से यह कहा— ॥२१०-२११॥

।। भगवानुवाच ।।

अहं तुष्टस्तु युवयोः पार्वतीं दयितां मम ।
मद्दत्तं काममिच्छन्तावाराधयतमीश्वरीम् ।।२१२।।

भगवान् बोले– मैं तुम दोनों से प्रसन्न हूँ। ये पार्वती मेरी पत्नी हैं। मेरे द्वारा दिये हुए कामना से भगवती की आराधना करो॥२१२॥

तामृते तु न शक्नोमि दातुमिष्टं सनातनम् ।
सेवितुं च सुतौ नित्यं शरणं व्रजतं शिवाम् ।।२१३।।
अचिराद् येन भावेन प्रीतिं देवी गमिष्यति ।
अत्र वा तत्र वा गत्वा तेन भावेन चार्च्यताम् ।।२१४।।

।। इति श्रीकालिकापुराणे वेताल-भैरवचरितकथननाम. एकपञ्चाशोऽध्यायः ।।५१।।

मैं उसके बिना कभी कुछ करने या देने में समर्थ नहीं हूँ, हे पुत्रों ! तुम दोनों को उसी शिवा की शरण में जाकर नित्य सेवा करनी चाहिये। जिस भाव से देवी प्रसन्न हों, उसी भाव से तुम दोनों यहाँ या वहाँ, कहीं भी जाकर उनकी पूजा करो॥२१३-२१४॥

।। श्रीकालिकापुराण में वेताल-भैरवचरितकथननामक एकावनवाँ अध्याय सम्पूर्ण हुआ।।५१।।



द्विपञ्चाशोऽध्यायः

महामायाकल्पे मण्डल-विधानवर्णनम्

।। और्व उवाच ।।

एवं वदति भूतेशे तदा वेतालभैरवौ ।
प्राहतुर्व्योमकेशं तौ हर्षोत्फुल्लविलोचनौ ।।१।।

और्व बोले- इस प्रकार से जब भूतेश शिव, बोल रहे थे, उस समय उन दोनों वेताल और भैरव ने, जिनके नेत्र प्रसन्नता से खिल रहे थे, व्योमकेश, भगवान शिव से कहा—।।१।।

।। वेतालभैरवावूचतुः ।।

पार्वत्या न हि जानीवो ध्यानं मन्त्रं विधिं तथा ।
कथमाराधयिष्यावो भगवन् सम्यगुच्यताम् ।।२।।

वेताल और भैरव बोले- हे भगवन्! हम दोनों पार्वती के ध्यान, मंत्र और उनकी पूजाविधि को नहीं जानते। हम दोनों कैसे उनकी आराधना करें? यह आप हमें भली-भाँती बताइए।।२।।

।। श्रीभगवानुवाच ।।

महामायाविधिं मन्त्रं कल्पं च भवतोः सुतौ ।
उपदेक्ष्यामि तत्त्वेन येन सर्वं भविष्यति ।।३।।

श्रीभगवान् (शिव) बोले- हे पुत्रों! मैं तुम दोनों को संक्षेपरूप से महामाया की पूजाविधि, मंत्र और कल्प का उपदेश करूँगा, जिससे सब कुछ ज्ञात हो जाएगा।।३।।

।। और्व उवाच ।।

इत्युक्त्वा स महामायाध्यानं मन्त्रं विधिं तथा ।
कथयामास गिरिशस्तयोः सम्यङ् नृपोत्तम ।।४।।
यदष्टादशभिः पश्चात्पटलैश्च स भैरवः ।
स निर्णयविधिं कल्पं निबबन्ध शिवामृते ।।५।।

और्व बोले- हे राजाओं में श्रेष्ठ! ऐसा कह कर उन भगवान् शंकर ने महामाया के ध्यान, मंत्र और उनकी पूजाविधि को उन दोनों से भलीभाँति कहा— जिसका वर्णन भैरव ने १८ पटलों (अध्यायों) में पार्वती द्वारा पूछे

जाने पर, निर्णयविधि नामक कल्प (महामायाकल्प) के नाम से बाद में निबन्ध के रूप में लिखा।।४-५।।

।। सगर उवाच ।।

कीदृङ् मन्त्रं पुरा शम्भुरवोचदुभयोस्तयोः ।
येनाराध्य महामायां तौ गणेशत्वमापतुः ।।६।।
सकल्पं सरहस्यं च साङ्गं तच्छ्रोतुमुत्सहे ।
दशाष्टपटलैर्यत् तु निबबन्ध सभैरवः ।।७।।

सगर बोले– भगवान शंकर ने प्राचीन काल में उन दोनो से किस प्रकार का मंत्र कहा था जिससे महामाया की आराधना करके उन दोनों ने गणों के स्वामित्व को प्राप्त किया था ? मैं कल्प, रहस्य और अंगो के सहित उसे सुनना चाहता हूँ, जिसको भैरव ने बाद में अट्ठारह पटलों में लिखा।।६-७।।

।। और्व उवाच ।।

बहुत्वाद् वदितुं तस्य चिरेणैव तु शक्यते ।
तस्मात् सद्यः समुद्धृत्य यन्महादेवभाषितम् ।
संक्षेपात् कथये तत्त्वं तच्छृणुष्व नृपोत्तम ।।८।।

और्व बोले– हे राजाओ में श्रेष्ठ ! उसे विस्तार से बताने में बहुत समय लगेगा। इसलिए महादेव ने जो कुछ कहा था, उसका उद्धरण देते हुए, मैं शीघ्र ही संक्षेप में कहता हूँ। उस तत्त्व को आप सुनो ।।८।।

पृच्छन्तौ पार्वतीमन्त्रं तदा वेतालभैरवौ ।
जगाद स महादेवः श्रृणुतं मन्त्रकल्पकौ ।।९।।

वेताल और भैरव द्वारा पूछे जाने पर उन महादेव ने उस समय, पार्वती के जिस मंत्र को कहा था, उसे सुनो।।९।।

।। वैष्णवीमन्त्रविधान ।।

।। श्रीभगवानुवाच ।।

श्रृणु मन्त्रं प्रवक्ष्यामि गुह्याद् गुह्यतमं परम् ।
अष्टाक्षरं तु वैष्णव्या महामायामहोत्सवम् ।।१०।।

श्रीभगवान बोले– मैं महामाया के महान उत्सव संबंधी, गोपनीय से भी गोपनीय, श्रेष्ठ, वैष्णवी के अष्टाक्षरमंत्र को कहूँगा। तुम दोनों ध्यान से सुनो।।१०।।

अस्य वैष्णवीमन्त्रस्य नारदर्षिः शम्भुर्देवो ।
अनुष्टुप्छन्दः सर्वार्थ साधनैव विनियोगः ।।११।।

इस श्रीवैष्णवीमंत्र के ऋषि नारद, देवता शम्भु, छन्द अनुष्टुप् हैं। इसका विनियोग सभी कार्यो की सिद्धि में किया जाता है।।११।।

हान्तान्तपूर्वो मान्तश्च नान्तो णान्तस्तथैव च ।
कैकादशाष्टादिषष्ठः खान्तो विष्णुपुरःसरः ।।१२।।
एभिरष्टाक्षरैर्मन्त्रं शोणपत्रसमप्रभम् ।
ॐकारं पूर्वतः कृत्वा जप्यं सर्वैस्तु साधकैः ।।१३।।

हान्तान्त पूर्व का वर्ण "श" तथा "म" के अन्त का वर्ण "य" एवं न के अन्त में आने वाला वर्ण "प" तथा "ण" के पश्चात् आनेवाला वर्ण "त", "क" से ग्यारहवाँ वर्ण "ट" आदि व्यंजन "क" से छठा वर्ण "च", ख जिसके अन्त में है वह वर्ण "क", विष्णु (अ) को आगे किये हुए, उल्टे क्रम में, अ क च ट त प य स इनको ॐ कार के सहित लिखने से **ॐ अं कं चं टं वं पं यं थं,** यह आठ अक्षरों वाला, सभी प्रकार के साधकों द्वारा जपने योग्य लालकमलपत्र के समान मंत्र है।।१२-१३।।

महामन्त्रमिदं गुह्यं वैष्णवीमन्त्रसंज्ञकम् ।
मन्त्रं कलेवरगतं तस्मादङ्गं प्रकीर्तितम् ।।१४।।

वैष्णवीमन्त्र नाम का यह (उपर्युक्त) मन्त्र, अत्यन्तगुप्त, महामन्त्र है। मन्त्र, शरीर रूप में होता है इसलिए उसके अंगों का वर्णन आगे किया जाता है ।।१४।।

महादेवस्योर्ध्वमुखं बीजमेतत् प्रकीर्तितम् ।
ॐकाराक्षरबीजं च यकारः शक्तिरुच्यते ।।१५।।

महादेव का ऊर्ध्व मुख, ऊँकारअक्षर, इसका बीज कहा गया है तथा यकार को इसकी शक्ति कहा गया है।।१५।।

।। पूजाविधिवर्णन ।।

सबीजं कथितं मन्त्रं कल्पं च शृणु भैरव ।
तीर्थे नद्यां देवखाते गर्तप्रस्रवणादिके ।।१६।।
परकीयेतरे तोये स्नानं पूर्वं समाचरेत् ।
आचान्तः शुचितां प्राप्तः कृतासनपरिग्रहः ।।१७।।

हे भैरव ! बीज के सहित मैंने मन्त्र को कहा है। अब कल्प (पूजापद्धति) को सुनो— **वैष्णवीपूजाकल्प—**पहले तीर्थस्थान में, नदी में, देवकुण्डों में, गहरे गड्ढों या झरने आदि में, दूसरों से सम्बन्धित न होकर जल में स्नान करना चाहिए तत्पश्चात् आचमन आदि से पवित्रता को प्राप्त कर, आसन-ग्रहण करे।।१६-१७।।

उत्तराभिमुखो भूत्वा स्थण्डिलं मार्जयेत् ततः ।
करेणानेन मन्त्रेण यूं सः क्षित्या इति स्वयम् ।।१८।।

तब उत्तर की ओर मुँह करके अपने हाथ से **यूं सः क्षित्या** इस मन्त्र से पृथ्वी पर वेदी का स्वयं मार्जन करे।।१८।।

ॐ ह्रीं सः इति मन्त्रेण आशापूरणकेन च ।
तोयैरभ्युक्षयेत् स्थानं भूतानामपसारणे ।।१९।।

ॐ ह्रीं सः इस आशापूरणमन्त्र से पूजास्थान पर जल छिड़के और वहाँ स्थित भूतों को दूर भगाये (भूतापसारण करे) ।।१९।।

ततः सव्येन हस्तेन गृहीत्वा स्थण्डिलं शुचिः ।
मन्त्रं लिखेत् सुवर्णेन याज्ञिकेन कुशेन वा ।।२०।।

तब पवित्र हो, दाहिने हाथ से पकड़ कर सोने की शलाका से या यज्ञ में प्रयोग की जाने वाली कुशा से वेदी पर मन्त्र लिखे ।।२०।।

ॐ वैष्णव्यै नम इति मन्त्रराजमथापि वा ।
ततस्त्रिमण्डलं कुर्यात् तेनैव समरेखया ।।२१।।

इस क्रम में **ॐ वैष्णव्यै नमः** या मन्त्रराज (वैष्णवीमन्त्र) लिखना चाहिए । तब उसी कुशा आदि से, समान रेखा पर तीन मण्डल बनाये ।।२१।।

नित्यासु न हि पूजासु रजोभिर्मण्डलं लिखेत् ।
पुरश्चरणकार्येषु तत्काम्येषु प्रयोजयेत् ।।२२।।

नित्यपूजा में रजकणों से मण्डल बनाने की आवश्यकता नहीं हैं किन्तु पुरश्चरण कार्यों में और कामनापरक कार्यों में मण्डलविधान अवश्य करना चाहिए।।२२।।

रेखामुदीच्यां प्रथमं पश्चिमे तदनन्तरम् ।
दक्षिणे तु ततः पश्चात् पूर्वभागे तु शेषतः ।।२३।।

मण्डल बनाते समय, पहली रेखा उत्तरदिशा में तब पश्चिम में तत्पश्चात् दक्षिण में तथा अन्त में पूर्व की दिशा में बनाना चाहिए ।।२३।।

वर्णानां च सहद्वारैरेवमेव क्रमो भवेत् ।
ॐ ह्रीं श्रीं स इति मन्त्रेण मण्डलं पूजयेत् ततः ।।२४।।

द्वारों के सहित, अक्षरों का यही क्रम होना चाहिए । तब **ॐ ह्रीं श्रीं सः** इस मन्त्र से मण्डल का पूजन करना चाहिए।।२४।।

हस्तेन मण्डलं कृत्वा कुर्याद् दिग्बन्धनं ततः ।
आशबन्धनमन्त्रेण पूर्वोक्तेन यथाक्रमम् ।
फडन्तेनात्मनाप्यत्र करेणैव निबन्धयेत् ।।२५।।

तब पहले बताये हुए क्रम में हाथ से मण्डल बनाकर, दिग्बंधनमन्त्र से दिशाओं का बन्धन करे। तत्पश्चात् फट् जिसके अन्त में हो उस मन्त्र से अपने को भी हाथ से ही सुरक्षित करे।।२५।।

यवानां मण्डलैरेकमङ्गुलं चाष्टभिर्भवेत् ।।२६।।
अदीर्घयोजितैर्हस्तैश्चतुर्विंशतिरङ्गुलैः ।
तत्प्रमाणेन हस्तेन हस्तैकं तस्य मण्डलम् ।।२७।।

आठ जौ के समूह के नाप का एक अंगुल क्षेत्र होता है और साधारण, बहुत लम्बे नहीं, हाथ का मान चौबीस अंगुल होता है। इस नाप के हाथ से एक हाथ का मण्डल बनाना चाहिए।।२६-२७।।

पद्मं वितस्तिमात्रं स्यात् कर्णिकारं तदर्धकम् ।
दलान्यन्योन्यसक्तानि ह्यायतानि नियोजयेत् ।।२८।।

उसमें एक वित्तेभर नाप का कमल और उसके आधे की, कर्णिका बनाये। कमल के पत्ते बड़े और आपस में मिले हुए बनाये ।।२८।।

न न्यूनाधिकभागानि सबहिर्वेष्टितानि च ।
मध्यभागे न्यसेद् द्वारान्न न्यूने नाधिके तथा ।
सुबद्धं मण्डलं तच्च रक्तवर्णं विचिन्तयेत् ।।२९।।

बाहर के घेरे कम या अधिक नहीं होने चाहिए। उनके ठीक मध्यभाग में द्वार बनाना चाहिए। जो न कम हो और न अधिक, इस प्रकार सुन्दर, बँधा हुआ, लाल रंग का मण्डल बनाना चाहिए ।।२९।।

इतोऽन्यथा मण्डलमुग्रमस्याः
करोति यो लक्षणभागहीनम् ।
फलं न चाप्नोति न काममिष्टं
तस्मादिदं मण्डलमत्र लेख्यम् ।।३०।।

।। इति श्रीकालिकापुराणे महामायाकल्पे मण्डलविधानवर्णननाम द्विपञ्चाशत्तमोऽध्यायः।।५२।।

जो देवी के पूर्ववर्णित, प्रभावशालीमण्डल को इससे भिन्न या उपर्युक्त लक्षणों से हीन बनाता है। उसकी न अभीष्ट कामना ही पूरी होती हैं और न ही उसे उचित फल ही प्राप्त होता है। इसलिए यहाँ पर मण्डल बनाने का विधान बताया गया हैं ।।३०।।

।। श्रीकालिकापुराण में महामायाकल्प का मण्डलविधानवर्णननामक बावनवाँ अध्याय सम्पूर्ण हुआ ।।५२।।



त्रिपञ्चाशोऽध्यायः

महामायाकल्पे ध्यानन्यासवर्णनम्

।। श्रीभगवानुवाच ।।

ततो लमिति मन्त्रेण अर्घपात्रस्य मण्डलम् ।
चतुष्कोणं विधायाशु द्वारपद्मविवर्जितम् ।।१।।

श्रीभगवान बोले– तब **लं** इस मन्त्र से अर्घपात्र रखने के लिए द्वार और कमल से रहित, चौकोरमण्डल बनाना चाहिए ।।१।।

ॐ, ह्रीं श्रीमितिमन्त्रेण अर्घपात्रं तु मण्डले ।
विन्यसेत् प्रथमं तत्र पूजयित्वा समिध्यति ।।२।।

उस मण्डल पर, पहले **ॐ ह्रीं श्रीं** इस मन्त्र से अर्घपात्र को स्थापित करे। तत्पश्चात् वहीं पूजा करके साधक, सफलता को प्राप्त करता है ।।२।।

ॐ ह्रीं ह्रौमितिमन्त्रेण गन्धपुष्पे तथा जलम् ।
अर्घपात्रे क्षिपेत् तत्र मण्डलं विन्यसेत् ततः ।।३।।

ॐ ह्रीं ह्रौं इस मन्त्र से उस अर्घपात्र में गन्ध, पुष्प और जल डाले तब मण्डल बनाये।।३।।

पूर्ववन्मण्डलं कृत्वा अर्घपात्रे ततो जलैः ।
त्रिभागैः पूरयेत् पात्रं पुष्पं तत्र विनिःक्षिपेत् ।।४।।

पहले की भाँति ही मण्डल बनाकर अर्घपात्र में तीनभाग जल भरे और उस पात्र में पुष्प छोड़े।।४।।

ततो ह्रीमिति मन्त्रेण आसनं पूजयेत् स्वकम् ।
ततः क्षौमितिमन्त्रेण आत्मानं पूजयेद् बुधः ।
गन्धैः पुष्पैः शिरोदेशे ततः पूजा समाचरेत् ।।५।।

विद्वान् साधक तब **ह्रीं** इस मन्त्र से अपने आसन का पूजन करे और तत्पश्चात् **क्षौं** इस मन्त्र से अपना पूजन करने के लिए गन्ध, पुष्प से अपने मस्तक पर पूजन करे उसके बाद पूजन आरम्भ करे।।५।।

ॐ ह्रीं स इति मन्त्रेण पुष्पं हस्ततलस्थितम् ।।६।।
संमृज्य सव्यहस्तेन घ्रात्वा वामकरेण तु ।
ऐशान्यां निक्षिपेदेतत् पूर्वमन्त्रेण कोविदः ।।७।।

ॐ ह्रीं सः इस मन्त्र से पुष्प को हाथ में रखकर, हाथ से मसल कर, बाएं हाथ से सूंघ कर, पहले बताये मन्त्र द्वारा बाएँ हाथ से ही विद्वान्साधक को उसे ईशानकोण में फेंक देना चाहिए।।६-७।।

रक्तं पुष्पं गृहीत्वा तु कराभ्यां पाणिकच्छपम् ।
बद्ध्वा कुर्यात् ततः पश्चाद् दहनप्लवनादिकम् ।।८।।

तब लालपुष्प हाथों में लेकर पाणिकच्छपमुद्रा में बांध कर दहन-प्लवन आदि क्रियाएं सम्पन्न करनी चाहिए।।८।।

।। पाणिकच्छपमुद्रा ।।

वामहस्तस्य तर्जन्यां दक्षिणस्य कनिष्ठिकाम् ।
तथा दक्षिणतर्जन्यां वामाङ्गुष्ठं नियोजयेत् ।।९।।
उन्नतं दक्षिणाङ्गुष्ठं वामस्य मध्यमादिकाः ।
अङ्गुलीर्योजयेत् पृष्ठे दक्षिणस्य करस्य च ।।१०।।
वामस्य पितृतीर्थेन मध्यमानामिके तथा ।
अधोमुखे तु ते कुर्याद् दक्षिणस्य करस्य च ।।११।।
कूर्मपृष्ठसमं पृष्ठं कुर्याद् दक्षिणहस्ततः ।
एवं बद्धः सर्वसिद्धिं ददाति पाणिकच्छपः ।।१२।।

बाएंहाथ की तर्जनी अंगुली पर दाहिनेहाथ की कनिष्ठिका तथा दाहिने हाथ की तर्जनी अंगुली पर, बाएं हाथ के अंगूठे को लगाये। दाहिनेअंगूठे को उठाये हुए बायेंहाथ की मध्यमा आदि अंगुलियों को दाहिनेहाथ के पिछले भाग (हिस्से) में लगाये तब दाहिनेहाथ की मध्यमा और अनामिका अंगुलियों को नीचे किये हुए बायेंहाथ के पितृतीर्थ (तर्जनी और अंगूठा के बीचस्थान) में लगाये तत्पश्चात् दाहिनेहाथ को कछुवा के पीठ के समान बनाये। इस प्रकार से हाथ द्वारा सुन्दर ढंग से बनाया हुआ यह पाणिकच्छप मुद्रा (कूर्ममुद्रा), सब सिद्धियों को देती है।।९-१२।।

।। भूतशुद्धि ।।

कुर्यात् तद्हृदयासन्नं निमील्य नयनद्वयम् ।
समं कायशिरोग्रीवं कृत्वा स्थिरमना बुधः ।
ध्यानं समारभेद् देव्या दाहप्लवनपूर्वकम् ।।१३।।

उपरोक्त पाणिकच्छप को अपने हृदय के निकट लाकर, अपने दोनों नेत्रों को बन्द करके, शिर और गले को समान रेखा में लाकर, विद्वान् (साधक) को स्थिर मन से दाह और प्लवन आदि क्रियाओं को करने के पश्चात् देवी का ध्यान प्रारम्भ करना चाहिए।।१३।।

अग्निं वायौ विनिक्षिप्य वायुं तोये जलं हृदि ।
हृदयं निश्चले दत्त्वा आकाशे निक्षिपेत्स्वनम् ।।१४।।
ॐ हूँ फडिति मन्त्रेण भित्त्वा रन्ध्रं तु मस्तके ।
शब्देन सहितं जीवमाकाशे स्थापयेत् ततः ।।१५।।

पहले अग्नितत्व को वायु में डालकर, वायु को जल में और जल को हृदय में तथा हृदय को निश्चल आकाशतत्व में विक्षेपित करे। **ॐ हूँ फट्** इस मन्त्र से गूंजते हुए ब्रह्मरन्ध्र को मस्तक में तथा शब्द के सहित जीव को आकाश में स्थापित करे ॥१४-१५॥

वाय्वग्नियमशक्राणां बीजेन वरुणस्य च ।
परास्थानपराश्चैतैः सार्धचन्द्रैः सबिन्दुकैः ।।१६।।
शोषं दाहं तथोच्छादं पीयूषसेवनं परम् ।
यथाक्रमेण कर्तव्यं चिंतामात्रं विशुद्धये ।।१७।।

तब वायु, अग्नि, यम, शक्र (इन्द्र) और वरुण के बीज मन्त्रों य, र, म, ल और व, को चन्द्रबिन्दुओं सहित, क्रमशः एक दूसरे के आगे रखते हुए, साधक को अपनी शुद्धि के लिए क्रमशः शोषण, दहन, उत्सादन तथा पीयूषसेवन (अमृतीकरण) की श्रेष्ठ क्रियाओं को चिन्तनमात्र से ही पूर्ण करना चाहिए॥१६-१७॥

ततस्तु देवीबीजेन अणुं जाम्बूनदाकृतिम् ।।१८।।
तत्रासाद्य द्विधा कुर्यात् ऊँम् ह्रीं श्रीमिति मन्त्रकाः ।
तदूर्ध्वभागेषु हृद्लोकं स्वर्गां च खं तथा ।।१९।।
निष्पाद्य शेषभागेन भुवं पातालवारिणि ।
चिन्तयेत्तत्र सर्वाणि सप्तद्वीपां च मेदिनीम् ।।२०।।

तब देवी के बीजमन्त्र **ल** से जाम्बूनद (सोने की) अणुमात्रआकृति को पाकर **ॐ ह्रीं श्रीं** मन्त्रों से उसे दो भाग करे। उपरीभाग में हृदयलोक, स्वर्ग और आकाश का निष्पादन करे तथा शेष निचलेभाग में भुवःलोक, पाताललोक तथा सात द्वीपों से युक्त, जल में स्थित, सम्पूर्ण पृथ्वी का चिन्तन करे॥१८-२०॥

तत्तेषु सागरांस्तांस्तु स्वर्णद्वीपं विचिन्तयेत् ।
तन्मध्ये रत्नपर्यकं रत्नमण्डपसंस्थितम् ।।२१।।
आकाशगङ्गातोयोघैः सदैव सेवितं शुभम् ।
तत्पर्यके रक्तपद्मं प्रसन्नं सर्वदा शिवम् ।।२२।।
चिन्तयेत् स्वर्णमानांकं सप्तपातालानालकम् ।
आब्रह्मभुवनस्पर्शि सुवर्णाचलकर्णिकम् ।
तत्रस्थितां महामायां ध्यायेदेकाग्रमानसः ।।२३।।

तब उन समुद्रों पर स्थित, पृथ्वी पर, स्वर्णद्वीप की कल्पना करे और उस स्वर्णद्वीप के मध्यभाग में सोने के बने हुए पलंग से सुशोभित, रत्नों से बने रत्नमण्डप का ध्यान करे, तदनन्तर उस स्वर्णपलंग पर स्थित, लालकमल पर, आकाशगंगा के जल से निरन्तर सेवा किये जाते हुए, शुभ करने वाले, सर्वदा प्रसन्न रहने वाले, शिव का चिन्तन करे। वह कमल ऐसा होना चाहिए कि उसकी सुनहली पंखुड़ियां, आकाश और उसकी नाल, सातों पाताल तक गई हुई हो तथा ब्रह्मलोक तक व्याप्त सोने के पर्वत के समान उसकी कर्णिका हो। उस पर स्थित महामाया का एकाग्रमन से ध्यान करे॥२१-२३॥

।। देवी का ध्यान (स्वरूप) ।।

शोणपद्मप्रतीकाशां मुक्तमूर्धजलम्बिनीं ।।२४।।
चलत्काञ्चनामारुह्य कुण्डलोज्ज्वलशालिनीम् ।
सुवर्णरत्नसम्पन्न - किरीटद्वयधारिणीम् ।।२५।।

वे महामाया देवी, लालकमल के समान आभा वाली, लम्बे-लम्बे खुले केशों वाली, चंचल सोने के बने हुए कुण्डलों से चमकती हुयी उज्ज्वलकान्ति से सुशोभित, सोने और रत्नों से सम्पन्न दो कुण्डलों को धारण करने वाली हैं॥२४-२५॥

शुक्लकृष्णारुणैर्नेत्रैस्त्रिभिश्चारुविभूषिताम् ।
सन्ध्याचन्द्रसमप्रख्य - कपोलां लोललोचनाम् ।।२६।।
विपक्वदाडिमीबीजदन्तान् सुभ्रूयुगोज्ज्वलाम् ।
बन्धूकदन्तवसनां शिरीषप्रभनासिकाम् ।।२७।।
कम्बुग्रीवां विशालाक्षीं सूर्यकोटिसमप्रभाम् ।
चतुर्भुजां विवसनां पीनोन्नतपयोधराम् ।।२८।।

वे श्वेत, काले और लाल तीन रंगों वाले, सुन्दर नेत्रों से सुशोभित हैं। उनके कपोल (गाल) सन्ध्याकालीन चन्द्रमा के समान हैं तथा उनके नेत्र, चंचल हैं। उनके दाँत पके हुए अनार के बीज के समान तथा भौहें सुन्दर प्रभापूर्ण मिली हुई हैं तथा उनके दन्तवसन (ओठ), बन्धूकपुष्प के समान लाल हैं और उनकी नासिका शिरीष-पुष्प के समान आभावाली है। उनकी चार भुजाएं हैं तथा वे बिना वस्त्र की हैं और उनके स्तन उठे हुए एवं विशाल हैं॥२६-२८॥

दक्षिणोर्ध्वेन निस्त्रिंशत्परेण सिद्धसूत्रकम् ।
बिभ्रतीं वामहस्ताभ्यामभीतिवरदायिनीम् ।।२९।।
निम्ननाभिक्रमायातां क्षीणमध्यां मनोहराम् ।
आनमन्नागपाशोरूं गुप्तगुल्फां सुपार्ष्णिकाम् ।।३०।।

वे अपने दाहिने उपरी हाथ में कृपाण, दूसरे में सिद्ध-सूत्र (पाश) और अपनी बायीं ओर के हाथों में अभय और वरद मुद्रा धारण किये हुए हैं। उनका नाभिचक्र गहरा और विशाल है। शरीर का मध्यभाग पतला और सुन्दर है। जिससे हाथी के सूड़ के समान लटकती हुयी जांघें तथा छिपी हुयी घुट्ठी (टखना) तथा सुन्दर एड़ियों वाले उनके पैर हैं॥२९-३०॥

बद्धपर्यङ्कसङ्कल्पां निवारासनराजिताम्।
गात्रेण रत्नसंस्तम्भं सम्यगालम्ब्य संस्थिताम्॥३१॥

वे नीवार के आसन पर, पर्यङ्कमुद्रा में आसन लगाकर, रत्नों से बने स्तम्भ का अपने शरीर से भली-भाँति आलम्बन कर स्थित हैं॥३१॥

किमिच्छसीति वचनं व्याहरन्तीं मुहुर्मुहुः।
पञ्चाननं पुरःसंस्थं निरीक्षन्तीं सुवाहनम्॥३२॥

वे बार-बार क्या चाहते हो ऐसा वचन बोल रही हैं तथा सामने स्थित अपने सुन्दरवाहन, सिंह को देख रही हैं॥३२॥

मुक्तावली स्वर्णरत्नकेयूरकङ्कणादिभिः।
सर्वैरलङ्कारगणैरुज्ज्वलां सस्मिताननाम्॥३३॥

वे मोतियों की माला, सोने तथा रत्नों के बने बाजूबन्द, कंकण आदि सभी आभूषणों से सुशोभित और मुस्कुराते हुए मुखवाली हैं॥३३॥

सूर्यकोटिप्रतीकाशां सर्वलक्षणसंयुताम्।
नवयौवनसम्पन्नां तथा सर्वाङ्गसुन्दरीम्॥३४॥

वे करोड़ों सूर्य के समान प्रभावाली, सभी लक्षणों से युक्त, युवावस्था से सम्पन्न तथा सभी अंगो से सुन्दरी हैं॥३४॥

ईदृशीमम्बिकां ध्यात्वा नमः फडिति मस्तके।
स्वकीये प्रथमं दद्यात् सोऽहमेव विचिन्त्य च॥३५॥

इस प्रकार से अम्बिका देवी का ध्यान करते हुए मैं उन्हीं का रूप हूँ ऐसा विचार कर, सर्वप्रथम **नमः फट्** इस मन्त्र से अपने मस्तक पर न्यास करे॥३५॥

अङ्गन्यासकरन्यासौ ततः कुर्यात् क्रमेण च।
एभिर्मन्त्रैः स्वरैः सह सृमिसूमक्रमान्वितैः॥३६॥
ओम् क्षौम् चैते सप्रणवां रक्तवर्णां मनोहराम्।
अङ्गुष्ठादिकनिष्ठान्तमन्त्रसंवेष्टनं फट्॥३७॥
प्रान्तेन कुर्याद् विन्यासं पूर्वं करतलद्वये।
हृच्छिरःशिखाकवचनेत्रेषु क्रमतो न्यसेत्॥३८॥

तब क्रमशः सृमिसूम दीर्घ स्वरों के साथ **ओम् क्षौं** प्रणवसहित लालरंग के, मन को अच्छे लगनेवाले मन्त्रों से, अंगन्यास और करन्यास करे। अंगुष्ठा से कनिष्ठा तक न्यास करते हुये **फट्** इस मन्त्र से हाथ को लपेट कर करतलद्वय पर न्यास करे, तत्पश्चात् हृदय, सिर, शिखा, कवच और नेत्रों में क्रमशः न्यास करे॥३६-३८॥

ततस्तु मूलमन्त्रस्य वक्त्रे पृष्ठे तथोदरे ।
बाह्वोर्गुह्ये पादयोश्च जङ्घयोर्जघने क्रमात् ।
विन्यसेदक्षराण्यष्टौ ओंकारं च तथा स्मरन् ॥३९॥

तत्पश्चात् मुख, पीठ, पेट, बाहु, गुह्य, पैरों, जंघों और टखनों में क्रमशः महामाया के मूलमन्त्र के आठ अक्षरों का, ओंकारपूर्वक स्मरण करते हुए न्यास करे॥३९॥

एभिः प्रकारैरतिशुद्धदेहः पूजां सदैवार्हति नान्यथा हि ।
शरीरशुद्धिं मनसो निवेशं भूतप्रसारं कुरुते नृणांतत् ॥४०॥

॥ इति श्रीकालिकापुराणे महामायाकल्पे ध्यानन्यासवर्णने त्रिपञ्चाशोऽध्यायः ॥५३॥

इस प्रकार से अत्यंत शुद्धशरीर से की हुयी पूजा, सदैव सार्थक होती है, अन्यथा नहीं, क्योंकि शरीरशुद्धि और मन से ध्यान और भूत-शुद्धि मनुष्य के मनो-निवेश में सहायक होती हैं॥४०॥

॥श्रीकालिकापुराण में महामायाकल्प का ध्यानन्यासवर्णनसम्बन्धी तिरपनवाँ अध्याय सम्पूर्ण हुआ॥५३॥



चतुःपञ्चाशोऽध्यायः

महामायाकल्पे पूजाविधिवर्णनम्

।। श्रीभगवानुवाच ।।

ततोऽर्घपात्रे तन्मंत्रमष्टधाकृत्य संजपेत् ।
तेन तोयानि पुष्पाणि स्वं मण्डलमथासनम् ।।१।।
आशोधयेत् ततः पश्चात् पूजोपकरणं समम् ।
ॐ ऐं ह्रीं ह्रौमिति मन्त्रेण शब्दप्रांशुविवर्जितम् ।।२।।

श्रीभगवान् (शिव) बोले– तब अर्घपात्र पर उस मन्त्र (मूल-मन्त्र) का आठ बार जप करे और उससे अर्घपात्र के जल और पुष्पों को, अपने मण्डल और आसन पर छिड़क कर, पूजा उपकरणों को भी साथ ही साथ **ॐ ऐं ह्रीं ह्रौं** मन्त्रों से, बिना किसी ध्वनि के पवित्र करे।।१-२।।

द्वारपालं ततो देव्या आसनानि च पूजयेत् ।
नन्दिभृङ्गिमहाकालगणेशाः द्वारपालकाः ।
उत्तरादिक्रमात् पूज्या आसनानि च मध्यतः ।।३।।
आधारशक्तिप्रभृतिः होमाद्यन्तान् प्रपूजयेत् ।
प्रसिद्धान् सर्वतन्त्रेषु पूजाकल्पेषु भैरव ।।४।।

हे भैरव ! तब देवी के द्वारपालों का और आसनों का पूजन करे। देवी के नन्दि, भृङ्गि, महाकाल और गणेश ये चार द्वारपाल हैं जिनका क्रमशः उत्तर दिशा से पूजन करना चाहिए तथा मध्य में आसन पर आधारशक्ति से होमादिपर्यन्त, सभी तन्त्रों की पूजा विधियों में प्रसिद्ध देवियों का पूजन करे।।३-४।।

दशदिक्पालसहितान् धर्माधर्मादिकांस्तथा ।
मण्डलाग्न्यादिकोणेषु पूजयेत् पार्श्वदेशतः ।।५।।
सूर्याग्निसोममरुतां मण्डलानि च पञ्चकम् ।
रजस्तथा तमः सत्त्वं योगपीठं गुरोः पदम् ।
सारादीन् भद्रपीठान्तान् साङ्गोपाङ्गान् प्रपूजयेत् ।।६।।

मण्डल के पार्श्वभाग में अग्नि आदि कोणों में दस दिग्पालों के सहित, धर्म-अधर्म आदि का पूजन करे और मण्डल पर सूर्य, अग्नि, सोम और वायु देवता के

पद्ममय स्थान, मण्डल बनाये। रजस, तमस् और सत्वगुण, योगपीठ, गुरुचरण और सार (शारदा) से लेकर भद्रपीठ तक सांगो-पांग पूजन करे॥५-६॥

ब्रह्माण्डं स्वर्णडिम्भं च ब्रह्मविष्णुमहेश्वरान्।
ससागरान् सप्तद्वीपान् स्वर्णद्वीपं समण्डपम्॥७॥
रत्नपद्मं सपर्यङ्कं रत्नस्तम्भं तथैव च।
पञ्चाननं मण्डलस्य मध्येऽवश्यं प्रपूजयेत्॥८॥

ब्रह्माण्ड, हिरण्यगर्भ, ब्रह्मा-विष्णु और शिव, सातों द्वीप और समुद्रों के सहितमण्डप से सुशोभित, एक स्वर्णिमद्वीप की भावना करे। जो रत्नों के बने हुए स्तम्भ तथा पलंग और कमल से युक्त हो। उपर्युक्त मण्डल के बीच में इन सबके साथ पंचानन शिव का पूजन करे॥७-८॥

ह्रीं मन्त्रेण ततः कूर्मपृष्ठं पाण्योर्निबध्य च।
ध्यायेच्च पूर्ववद् देवीमासाद्यासनमुत्तमम्॥९॥
हृन्मध्ये चिन्तयेत् स्वर्णद्वीपं पर्यङ्कसंभृतम्।
पश्यन्निव ततो देवीमेकाग्रमनसा स्मरेत्॥१०॥

तब ह्रीं मन्त्र से, दोनों हाथों से, कूर्मपृष्ठ (कूर्ममुद्रा) बनाकर, पूर्ववर्ती पूजित, उत्तमआसन पर बैठकर, हृदय के स्वर्णद्वीप पर, उत्तमपर्यङ्क पर उपस्थित, देवी को एकाग्रमन से देखता हुआ, उनका स्मरण एवं ध्यान करे॥९-१०॥

प्रत्यक्षीकृत्य हृदये मानसैरुपचारकैः।
षोडशानां प्रकारैस्तु हृदिस्थां पूजयेच्छिवाम्॥११॥

उपर्युक्त रीति से हृदय में देवी का प्रत्यक्षीकरण करके, मानसउपचारों से अथवा षोडशोपचारों से हृदय में स्थित, उस देवी का पूजन करे॥११॥

ततस्तु वायुबीजेन दक्षिणे च पुटेन च॥१२॥
नासिकया विनिःसार्य क्रीं मन्त्रेण च भैरव।
स्थापयेत् पद्ममध्ये तु तद्धस्तं न वियोजयेत्॥१३॥

हे भैरव! तब वायु बीज (**वं**) से, दाहिनीनाक से **क्रीं** मन्त्र का उच्चारण करते हुए वायु निकाले। तब ध्यानरूप में देवी की हृदयकमल पर स्थापना करे। इस पूजन में कूर्ममुद्रा में बँधेहाथ को अलग न करे॥१२-१३॥

कृते वियोगे हस्तस्य पुष्पात् तस्माच्च भैरव।
गन्धर्वैः पूज्यते देवी पूजकैर्नाप्यते फलम्॥१४॥

हे भैरव! हाथ को अलग कर पूजन करने से जो पुष्पादि अर्पण किया जाता है, उसका फल गन्धर्व ही ले लेते हैं। पूजा करने वाले साधक को उसका फल नहीं मिलता॥१४॥

आवाहनं ततः कुर्याद् गायत्र्या शिरसा सह।

महामायायै विद्महे ते चण्डिकायै धीमहि ।
एतदुक्त्वा ततः पश्चाद् धियो यो नः प्रचोदयात् ।।१५।।

तब मस्तक झुकाकर निम्नलिखित गायत्रीमन्त्र **"महामायायै विद्महे ते चण्डिकायै धीमहि धियो योनः प्रचोदयात्"** कहकर देवी का आवाहन करे ॥१५॥

स्नानीयं देवि ते तुभ्यं ॐ ह्रीं श्रीं नम इत्यतः ।
स्नानीयं च ततो देव्यै दद्याल्लक्षणलक्षितम् ।।१६।।

तब **"स्नानीयं देवि ते तुभ्यं ॐ ह्रीं श्रीं नमः"** कहकर देवी को स्नान हेतु लक्षणों से युक्तजल समर्पित करे ॥१६॥

ततस्तु मूलमन्त्रेण गन्धपुष्पं सदीपकम् ।
धूपादिकं प्रदद्यात् तु मोदकं पायसं तथा ।।१७।।
सितां गुडं दधि-क्षीरं सर्पिर्नानाविधैः फलैः ।।१८।।
रक्तपुष्पं पुष्पमालां सुवर्णरजतादिकम् ।
नैवेद्यमुत्तमं देव्याः लाङ्गलं मोदकं सिताम् ।।१९।।
शाण्डिल्यकरकाम्राख्य-कूष्माण्डानां फलानि च ।
हरीतकीफलं चापि नागरङ्गकामलकम् ।।२०।।
बालप्रियं च यद्द्रव्यं कसेरुकबिसादिकम् ।
तोयं च नारिकेलस्य देव्यै देयं प्रयत्नतः ।।२१।।

तब मूलमन्त्र से गन्ध, पुष्प और धूप-दीप आदि सहित, मोदक (लड्डु) और खीर, देवी को प्रदान करे। साथ में अनेक प्रकार के फल, गुड़, मिश्री, दूध-दही, घी, लालपुष्प, फूल तथा सोने-चाँदी की बनी हुई मालायें, तथा लाङ्गल (भोज्य विशेष), मोदक, मिश्री, शाण्डिल्य (बेल), करक (अनार), आम, कूष्मांड (कोहड़ा), लौकी, हर्रे, नारङ्गी, बच्चों को प्रिय, कसेरू, कमलनाल आदि तथा नारियल का जल, देवी को प्रयत्नपूर्वक समर्पित करे॥१७-२१॥

रक्तं कौशेयवस्त्रं च देयं नीलं कदापि न ।।२२।।

इस पूजन में देवी को सदैव लालरेशमीवस्त्र देना चाहिये॥२२॥

देव्याः प्रियाणि पुष्पाणि बकुलं केशरं तथा ।
माध्यं कह्लारवज्राणि करवीरकुरुण्टकान् ।
अर्कपुष्पं शाल्मलकं दूर्वाङ्कुरं सुकोमलम् ।।२३।।
कुशमञ्जरिका दर्भा बन्धूककमले तथा ।
मालूरपत्रं पुष्पं च त्रिसन्ध्यारक्तपर्णके ।।२४।।

कभी भी नीले या कालेवस्त्र नहीं चढ़ाना चाहिये। देवी को बकुल, केशर, कल्हार, चमेली, वज्र (तिलपुष्प), कनैल, कुरुण्टक, मदार, शाल्मलक (सेमल),

कोमलदूब, कुशमञ्जरी, मुलायमकुश, बन्धूक, कमल, बिल्व के तीनपर्णक दलों वाले पत्र तथा रक्तपुष्प प्रिय हैं॥२३-२४॥

सुमनांसि प्रियाण्येतान्यम्बिकायाश्च भैरव ।
बन्धूकं बकुलं माध्यं बिल्वपत्राणि सन्ध्यकम् ।।२५।।
उत्तमं सर्वपुष्पेषु द्रव्ये पायसमोदकौ ।
माल्यं बन्धूकपुष्पस्य शिवायै बकुलस्य वा ।।२६।।

हे भैरव ! अम्बिका को (उपर्युक्त) सभी पुष्प, प्रिय हैं। उन सभी पुष्पों में बन्धूक (गुड़हल), बकुल और चमेली के पुष्प तथा तीन दलों वाले बिल्वपत्र विशेष उत्तम हैं। नैवेद्यद्रव्यों में खीर तथा मोदक (कसार) उत्तम हैं, एवं बकुल या बन्धूकपुष्प की माला, देवी का उत्तम माल्य है॥२५-२६॥

करवीरस्य माध्यस्य सहस्राणां ददाति यः ।
स कामान् प्राप्य चाभीष्टान् मम लोके प्रमोदते ।।२७।।

जो एक हजार कनैल या चमेली के पुष्प देवी को प्रदान करता है वह अपनी सभी अभीष्ट कामनाओं को प्राप्त कर, मेरे लोक में आनन्द को प्राप्त करता है॥२७॥

चन्दनं शीतलं चैव कालीयकसमन्वितम् ।
अनुलेपनमुख्यं तु देव्यै दद्यात् प्रयत्नतः ।।२८।।

देवी को प्रयत्नपूर्वक कालीयक से युक्त शीतलचंदन का अनुलेपन, मुख्यरूप से प्रदान करना चाहिए॥२८॥

कर्पूरं कुङ्कुमं कूर्चं मृगनाभिं सुगन्धिकम् ।
कालीयकं सुगन्धेषु देव्याः प्रीतिकरं परम् ।।२९।।

सुगन्धों में कपूर, कुमकुम, कूर्च और सुगन्धित कस्तूरी, कालीयक आदि देवी के लिए अत्यधिक प्रसन्नता देने वाले अनुलेपन हैं॥२९॥

यक्षधूपः प्रतीवाहः पिण्डधूपः सगोलकः ।
अगुरुः सिन्धुवारश्च धूपाः प्रीतिकरा मताः ।।३०।।

देवी को यक्षधूप, प्रतिवाह, पिण्डधूप, गोलक, अगर और सिन्धुवार नामक धूप, अत्यन्त प्रसन्नता देने वाले बताये गये हैं॥३०॥

अङ्गरागेषु सिन्दूरं देव्याः प्रीतिकरं परम् ।।३१।।

अङ्गरागों में, अंग के सजाने वाले पदार्थों में सिन्दूर देवी को अत्यधिक शोभा देने वाला पदार्थ है ॥३१॥

सुगन्धिशालिजं चान्नं मधुमांससमन्वितम् ।
अपूपं पायसं क्षीरमन्नं देव्याः प्रशस्यते ।।३२।।

देवी के लिए मधु एवं मान्स से युक्त चावल, पूआ, खीर तथा दूध में पके अन्न, विशेष उत्तमनैवेद्य बताये गये हैं ॥३२॥

रत्नोदकं सकर्पूरं पिण्डीतककुमारकौ ।

रोचनं पुष्पकं देव्याः स्नानीयं परिकीर्तितम् ।।३३।।

घृतप्रदीपो दीपेषु प्रशस्तः परिकीर्तितः ।।३४।।

रत्नों से शुद्ध किया गया जल, कपूर, कंचन और तगर से युक्त गोरोचन तथा पुष्प से युक्त जल देवी को देने के लिए स्नानयोग्य उत्तम जल कहा गया है। सभी प्रकार के दीपों में, घी का दीप, श्रेष्ठ कहा गया है।।३३-३४।।

पुष्पाञ्जलित्रयं दद्याद् मूलमन्त्रेण शोभनम् ।

दत्त्वोपचारानखिलान्मध्ये चैताः प्रपूजयेत् ।।३५।।

मूलमंत्र के द्वारा सुन्दरढंग से तीन पुष्पाञ्जलि अर्पित करे। इस प्रकार से भगवती का पूजन करे।।३५।।

कामेश्वरीं गुप्तदुर्गां विन्ध्यकन्दरवासिनीम् ।

कोटेश्वरीं दीर्घिकाख्यां प्रकटीं भुवनेश्वरीम् ।।३६।।

आकाशगङ्गां कामाख्यां यदा दिक्करवासिनीम् ।

मातङ्गीं ललितां दुर्गां भैरवीं सिद्धिदां तथा ।।३७।।

बलप्रमथिनीं चण्डीं चण्डोग्रां चण्डनायिकाम् ।

उग्रां भीमां शिवां शान्तां जयन्तीं कालिकां तथा ।।३८।।

मङ्गलां भद्रकालीं च शिवां धात्रीं कपालिनीम् ।

स्वाहां स्वधामपर्णां च पञ्चपुष्करिणीं तथा ।।३९।।

दमनीं सर्वभूतानां मनःप्रोत्साहकारिणीम् ।

दमनीं सर्वभूतानां चतुःषष्टिं च योगिनीः ।।४०।।

उपर्युक्त सभी उपचारों को प्रदान कर, मध्य में इनका पूजन करना चाहिए। कामेश्वरी, गुप्तदुर्गा, विन्ध्यकंदरवासिनी, कोटेश्वरी, दीर्घिका, प्रकटी, भुवनेश्वरी, आकाशगंगा, कामाख्या, दिक्करवासिनी, मातंगी, ललिता, दुर्गा, भैरवी, सिद्धिदा, बलप्रमथिनी, चण्डी, चण्डोग्रा, चण्डनायिका, उग्रा, भीमा, शिवा, शान्ता, जयन्ती, कालिका, मंगला, भद्रकाली, शिवा, धात्री, कपालिनी, स्वाहा, स्वधा, अपर्णा, पञ्चपुष्करिणी, दमनी, सभी प्राणियों के मन को प्रोत्साहित करने वाली, सभी प्राणियों का दमन करने वाली तथा चौसठ योगिनियाँ मण्डल के मध्यभाग में पूजी जानी चाहिये।।३६-४०।।

एताः सम्पूज्य मध्ये तु मन्त्रेणाङ्गानि पूजयेत् ।

हृच्छिरस्तु शिखावर्मनेत्रबाहुपदानि च ।।४१।।

इन सबको मण्डल के मध्य में पूजा करके मूलमंत्र से हृदय, सिर, शिखा, कवच, नेत्र, बाहु, पैर आदि अङ्गों का पूजन करे।।४१।।

मूलमन्त्राद्यक्षरैस्तु त्रिभिराद्यङ्गपूजनम् ।

एकैकं वर्द्धयेत् पश्चान्मन्त्राण्यंगौघपूजने ।।४२।।

इस क्रम में मूलमन्त्र के प्रारम्भ में तीन-तीन अक्षरों से प्रथमअंग हृदय का पूजन करना चाहिये शेष अंगों का एक-एक बढ़ाते हुए पूजन करे ॥४१॥

सिद्धसूत्रं च खड्गं च खड्गमन्त्रेण पूजयेत् ।।४३।।

खड्गपूजन के लिये प्रयोग किये जाने वाले मंत्रों से ही साधक, सिद्ध-सूत्र (पाश) तथा खड्ग का पूजन करे॥४३॥

ततोऽष्टपत्रमध्ये तु पूजयेदष्टयोगिनीः ।।४४।।
शैलपुत्रीं चण्डघण्टां स्कन्दमातरमेव च ।
कालरात्रिं च पूर्वादिचतुर्दिक्षु प्रपूजयेत् ।।४५।।
चण्डिकामथ कूष्माण्डीं तथा कात्यायनीं शुभाम् ।
महागौरीं चाग्निकोणे नैर्ऋत्यादिषु पूजयेत् ।।४६।।

तत्पश्चात् पूर्व आदि क्रम से अष्टदलकमल में शैलपुत्री, चन्डघण्टा, स्कन्दमाता, कालरात्री इन चार देवियों का पूर्व, दक्षिण, पश्चिम, उत्तर आदि दिशाओं में पूजन करे। चण्डिका, कूष्माण्डा, कात्यायनी, महागौरी, इनका अग्निकोण, वायव्यकोण, नैर्ऋत्यकोण, ईशानकोण आदि उपदिशाओं में क्रम से पूजन कर, आठयोगिनियों का पूजन करे॥४४-४६॥

महामायां क्षमस्वेति मूलमन्त्रेण चाष्टधा ।
पूजयेत् पद्ममध्ये तु बलिदानं ततः परम् ।।४७।।

तत्पश्चात् आठबार मूलमन्त्र का प्रयोग कर **'महामाया क्षमस्व'** कहते हुए कमल के मध्य में महामाया का पूजन करे। अन्त में उत्तम बलिदान करे ॥४५॥

एवं यदा कल्पविधानमानैः
सम्पूज्यते भैरव कामदेवी ।
तदा स्वयं मण्डलमेत्य देयं
गृह्णाति कामं च ददाति सम्यक् ।।४८।।

॥इति श्रीकालिकापुराणे महामायाकल्पे पूजाविधिवर्णननाम चतुःपञ्चाशोऽध्यायः॥५४॥

हे भैरव ! इस प्रकार के कल्पविधान (पूजापद्धति) द्वारा कामदेवी का जब पूजन किया जाता है। तब देवी स्वयं उस मण्डल में उपस्थित हो, निवेदित पदार्थों को ग्रहण करती हैं तथा साधक की कामनाओं को भली-भांति प्रदान करती है॥४८॥

॥श्रीकालिकापुराण में महामायाकल्प का पूजाविधिवर्णननामक चौवनवाँ अध्याय सम्पूर्ण हुआ॥५४॥



पञ्चपञ्चाशोऽध्यायः

महामायाकल्पे बलि-विधानम्

।। श्रीभगवानुवाच ।।

बलिदानं ततः पश्चात् कुर्याद् देव्याः प्रमोदकम् ।
मोदकैर्गजवक्त्रं च हविषा तोषयेद्रविम् ।।१।।

श्रीभगवान् बोले– पूर्ववर्णितविधि से पूजन के पश्चात् देवी को आनन्द देने वाला, बलिदान-कर्म करना चाहिये । तब मोदक से गजानन गणेश को तथा हविष्य से सूर्यभगवान् को सन्तुष्ट करना चाहिये।।१।।

तौर्यत्रिकैश्च नियमैः शङ्करं तोषयद्धरिम् ।
चण्डिकां बलिदानेन तोषयेत् साधकः सदा ।।२।।

साधक को सदैव संगीत, नृत्य तथा वाद्ययन्त्रों से शिव को एवं आचारगत नियमों से विष्णु और बलिदान से चण्डिका को प्रसन्न करना चाहिये ।।२।।

पक्षिणः कच्छपाः ग्राहाश्छागलाश्च वराहकाः ।
महिषो गोधिकाशोषा तथा नवविधा मृगाः ।।३।।
चामरः कृष्णसारश्च शशः पञ्चाननस्तथा ।
मत्स्याः स्वगात्ररुधिरैश्चाष्टधा बलयो महाः ।।४।।

पक्षी, कछुये, ग्राह, बकरे, सूअर, भैंसे, गोह, शोष (संभवतः सूँईस), चामर, कृष्णसारमृग, खरगोश, सिंह आदि नौ प्रकार के पशु, मछलियाँ एवं साधक द्वारा अपने ही शरीर से निकाला गया रक्त, ये आठ प्रकार की महा बलियाँ बताई गई हैं।।३-४।।

अभावे च तथैवैषां कदाचिद्धयहस्तिनौ ।
छागलाः शरभाश्चैव नरश्चैव यथाक्रमात् ।
बलिर्महाबलिरिति बलयः परिकीर्तिताः ।।५।।

इनके अभाव में कभी (विशेष अवसरों) घोड़ा पर, हाथी, बकरे, शरभ तथा मनुष्य की बलि को भी क्रमशः बलि या महाबलि के नाम से पुकारा जाता है । उपर्युक्त समस्त प्राणियों का बलिदान, बलि, कहा जाता है ।।५।।

स्नापयित्वा बलिं तत्र पुष्पचन्दनधूपकैः ।
पूजयेत् साधको देवीं बलिमन्त्रैर्मुहुर्मुहुः ।।६।।

उपस्थित बलिपशु को स्नान कराकर, साधक देवी का पुष्प, चन्दन, धूप तथा बलिमन्त्रों से बार-बार पूजन करे ।।६।।

उत्तराभिमुखो भूत्वा बलिं पूर्वमुखं तथा ।
निरीक्ष्य साधकः पश्चादिमं मन्त्रमुदीरयेत् ।।७।।

तब स्वयं उत्तर की ओर मुँहकर तथा बलिपशु का मुँह पूर्व की ओर करके साधक, बलिपशु को देखते हुए इस मन्त्र को बोले— ।।७।।

बलिमन्त्र

पशुस्त्वं बलिरूपेण मम भाग्यादुपस्थितः ।
प्रणमामि ततः सर्वरूपिणं बलिरूपिणम् ।।८।।
चण्डिका प्रीतिदानेन दातुरापद्विनाशनः ।
वैष्णवीबलिरूपाय बले तुभ्यं नमो नमः ।।९।।
यज्ञार्थे पशवः सृष्टाः स्वयमेव स्वयम्भुवा ।
अतस्त्वां घातयाम्यद्य तस्माद् यज्ञे वधोऽवधः ।।१०।।

हे पशु ! आप मेरे भाग्य से आज बलिरूप में उपस्थित हुए हो अतः मैं आपको प्रणाम करता हूँ। आप सबरूपों वाले, बलिरूप में उपस्थित का, चण्डिका को भेंट करना, दाता की आपत्ति का विनाश करने वाला है। ऐसे वैष्णवी महामाया के बलिस्वरूप, बलिपशु! आपको बारम्बार प्रणाम है। स्वयं ब्रह्मा ने यज्ञ- हेतु पशुओं की सृष्टि की है इसी लिए मैं आज तुम्हारा वध कर रहा हूँ। इसलिए यज्ञ में किया हुआ वध भी वध नहीं होता ।।८-१०।।

ॐ ऐं ह्रीं श्रीं इतिमन्त्रेण तं बलिं कामरूपिणम् ।
चिन्तयित्वा न्यसेत् पुष्पं मूर्ध्नि तस्य च भैरव ।।११।।

हे भैरव ! उस कामरूपधारी बलिपशु का चिन्तन करते हुए उसके मस्तक पर **ॐ ऐं ह्रीं श्रीं** इस मन्त्र से पुष्प चढ़ाये ।।११।।

ततो देवीं समुद्दिश्य काममुद्दिश्य चात्मनः ।
अभिषिच्य बलिं पश्चात् करवालं प्रपूजयेत् ।।१२।।

तब देवी को लक्ष्य कर तथा अपनी कामना का ध्यान कर, बलिपशु का अभिषेक कर, करवाल (खड्ग) का पूजन करे ।।१२।।

करवालपूजनमन्त्र

रसना त्वं चण्डिकायाः सुरलोकप्रसाधक ।
ऐं ह्रीं श्रीमिति मन्त्रेण ध्यात्वा खड्गं प्रपूजयेत् ।।१३।।

रसना–श्रीमिति–मन्तार्थ–हे खड्ग ! तुम चण्डिका की जिह्वा हो, तुम देवलोकउपलब्ध कराने वाले हो। ऐसा ध्यान कर, **ऐं ह्रीं श्रीं** मन्त्र से खड्ग का पूजन करे।।१३।।

कृष्णं पिनाकपाणिं च कालरात्रिस्वरूपिणम् ।
उग्रं रक्तास्यनयनं रक्तमाल्यानुलेपनम् ।।१४।।

रक्ताम्बरधरं चैकं पाशहस्तं कुटुम्बिनम् ।
पीयमानं च रुधिरं भुञ्जानं क्रव्यसंहतिम् ।।१५।।
असिर्विशसनः खड्गस्तीक्ष्णधारो दुरासदः ।
श्रीगर्वो विजयश्चैव धर्मपाल नमोऽस्तु ते ।।१६।।

कृष्णं....................नमोस्तुते कहकर खड्ग की स्तुति करे।

मन्त्रार्थ–हे श्यामवर्ण! हाथ में पिनाक धारण करने वाले, कालरात्रीस्वरूप वाले, उग्र, जिसके मुख और नेत्र दोनों ही लाल हैं, जो लाल रंग की माला और चन्दन तथा वस्त्रधारण किये हुए, हाथ में पाश लिए हुए, अपने परिजनों के मध्य, मांसादि का भोजन और रुधिर (रक्त) का पान कर रहे हैं, ऐसे हे असि, हे कटार, हे खड्ग, हे तीक्ष्णधार वाले, हे दुष्टों का भक्षण करने वाले, हे ऐश्वर्य, प्रतिष्ठा और विजय के प्रतीक, हे धर्म का पालन करने वाले खड्ग! तुम्हें नमस्कार है॥१४-१६॥

पूजयित्वा ततः खड्गं ॐ आं ह्रीं फडितिमन्त्रकैः ।
गृहीत्वा विमलं खड्गं छेदयेद् बलिमुत्तमम् ।।१७।।

तब उपर्युक्तरीति से खड्ग का पूजन कर, **ॐ आँ ह्रीं फट्** मन्त्र से निर्मल खड्ग को ग्रहण कर, बलिपशु का छेदन करे॥१७॥

ततो बलीनां रुधिरं तोयसैन्धवसत्फलैः ।
मधुभिर्गन्धिपुष्पैश्च अधिवास्य प्रयत्नतः ।।१८।।
ॐ ऐं ह्रीं श्रीं कौशिकीति रुधिरं दापयामि ते ।
स्थाने नियोजयेद्रक्तं शिरश्च सप्रदीपकम् ।।१९।।

तब बलिपशु के रक्त को जल, नमक, सुन्दरफल, मधु, गंध-पुष्प आदि से प्रयत्नपूर्वक युक्त कर, **दापयामिते ॐ ऐं ह्रीं श्रीं कौशिकी** मैं तुम्हें यह रक्त प्रदान करता हूँ, ऐसा कह कर, साधक-रक्त को उचितपात्र में तथा सिर को दीपक के सहित उपयुक्त स्थान पर रखे॥१८-१९॥

एवं दत्त्वा बलिं पूर्णं फलं प्राप्नोति साधकः ।
हीनं स्याद्धीनतामूलं निष्फलं स्याद् विपर्ययात् ।।२०।।

इस प्रकार उपर्युक्त रीति से बलि देकर, साधक, पूर्णफल को प्राप्त करता है, इसमें न्यूनता करने पर न्यूनफल तथा उलटा करने पर, उसकी पूजा निष्फल होती है ॥२०॥

बलिदाने तु दुर्गाया अन्यत्रापि विधिः सदा ।
अयमेव प्रयोक्तव्यः सद्भिर्वेतालभैरवौ ।।२१।।

हे वेताल और भैरव! दुर्गा के लिए बलिदान की यह विधि बतायी गयी है किन्तु सज्जनों को (उत्तम साधकों को) अन्यत्र भी सदैव, इसी विधि का प्रयोग करना चाहिए ॥२१॥

जपं समारभेत् पश्चात् पूर्ववद्ध्यानमास्थितः ।
हस्तेन स्त्रजमादाय चिन्तयेन्मनसा शिवाम् ।।२२।।
चिन्तयित्वा गुरुं मूर्ध्नि यथा वर्णादिकं भवेत् ।
मन्त्रं च कण्ठतो ध्यात्वा सितवर्णं हिरण्मयम् ।।२३।।
महामायां च हृदये आत्मानं गुरुपादयोः ।।२४।।

उपर्युक्त रीति से बलिदान करके पहले की भाँति ध्यान करते हुए साधक हाथ में माला लेकर मन से शिवा (देवी) का चिन्तन करता हुआ तथा गुरु का मस्तक में एवं वर्णों के अनुसार, श्वेत और सुनहले रंग के मन्त्रों का गले में ध्यान करते हुए, महामाया को हृदय में और अपने को गुरुदेव के चरणों में लगाकर जप आरम्भ करे॥२२-२४॥

आचक्षेत् ततः पश्चाद् गुरोर्मन्त्रस्य चात्मनः ।
देव्याश्चाप्येकतां ध्यात्वा सुषुम्नावर्त्मना ततः ।।२५।।
तत्त्वस्वरूपमेकं तु षट्चक्रं प्रति लम्बयेत् ।
षट्चक्रेऽपि महामायां क्षणं ध्यात्वा प्रयत्नतः ।।२६।।
लम्बयेन्मूलमन्त्रेण आदिषोडशचक्रकम् ।
आदिषोडशचक्रस्थां साधकानन्दकारिणीम् ।
चिन्तयन् साधको देवीं जपकर्म समारभेत् ।।२७।।

जप आरम्भ करते समय, गुरु की, मन्त्र की, अपनी तथा देवी की एकता का ध्यान करता हुआ साधक, तत्त्वस्वरूप सुषुम्नामार्ग को षट्चक्रों की ओर प्रेरित करे। षट्चक्र में भी महामाया का प्रयत्नपूर्वक, क्षणभर ध्यान करके मूलमंत्र के सहारे उसे आदि षोडशचक्र की ओर ले जाये। तब आदि षोडशचक्र में स्थित, साधक की कामनापूर्तिरूपी, आनन्द देने वाली देवी का चिन्तन करते हुए, साधक अपने जपकार्य को प्रारम्भ करे॥२५-२७॥

भ्रुवोरुपरि नाडीनां त्रयाणां प्रान्त उच्यते ।।२८।।
तत्प्रान्तं त्रिपथस्थानं षट्कोणं चतुरङ्गुलम् ।
रक्तवर्णं तु योगज्ञैराज्ञाचक्रमितीर्यते ।।२९।।

मनुष्य शरीर की ईडा-पिंगला-सुषम्ना नामक तीनों नाड़ियो का अन्तिम छोर भौंहों के उपर बताया गया है। वह स्थान चारअंगुल विस्तार का बना हुआ षट्कोण आकृति का एक तिराहा है, जो लालरंग का है तथा जिसे योग को जानने वाले **आज्ञाचक्र** कहते हैं॥२८-२९॥

कण्ठे त्रयाणां नाडीनां वेष्टनं विद्यते नृणाम् ।
सुषुम्नेडापिङ्गलानां षट्कोणं तच्च्षडङ्गुलम् ।
तत् षट्चक्रमिति प्रोक्तं शुक्लं कण्ठस्य मध्यगम् ।।३०।।

मनुष्य के कण्ठ में सुषम्ना, ईडा और पिंगला नामक तीनों नाड़ियों की कुण्डली सी बनती है जो षट्कोणआकृति और छः अंगुल विस्तार की होती है। कण्ठ के मध्य में स्थित इस षट्कोण को **षट्चक्र** कहा गया है तथा इसका रंग श्वेत होता है ॥३०॥

त्रयाणामथ नाडीनां हृदये चैकता भवेत् ॥३१॥
तत्स्थानं षोडशारं स्यात् सप्ताङ्गुलप्रमाणतः ।
तत्प्रयुक्तं तु योगज्ञैरादिषोडशचक्रकम् ॥३२॥

इन तीनों नाड़ियों की एकता, हृदय में होती है जहाँ पर सोलह दलों का, सातअंगुलप्रमाण का एक चक्र है, जिसे योग के जानने वाले **आदिषोडशचक्र** के रूप में व्यवहार करते हैं॥३१-३२॥

ध्यानानामथ मन्त्राणां चिन्तनस्य जपस्य च ।
यस्मादाद्यं तु हृदयं तस्मादादीति गद्यते ॥३३॥

ध्यान का, मन्त्र के चिन्तन का तथा जप का आदि स्थान हृदय है। इसी लिए उसे आदि स्थान तथा वहाँ स्थित, षोडशचक्र को आदिषोडशचक्र कहते हैं॥३३॥

जपादौ पूजयेन्मालां तोयैरभ्युक्ष्य यत्नतः ।
निधाय मण्डलस्यान्तः सव्यहस्तगतां च वा ॥३४॥
ॐ माले माले महामाये सर्वशक्तिस्वरूपिणि ।
चतुर्वर्गस्त्वयि न्यस्तस्तस्मान्मे सिद्धिदा भव ॥३५॥

जप के आरम्भ में साधक, प्रयत्नपूर्वक, जपमाला को मण्डल के भीतर स्थापितकर या अपने दाहिने हाथ में ग्रहणकर, जल से उसका अभिषेचन कर, पूजन करे। उस समय वह, **ॐ माले–भव।** मन्त्र का प्रयोग करे।

मन्त्रार्थ– 'हे माले ! तुम स्वयं महामाया हो, तुम सभी शक्तियों की रूप हो, धर्म, अर्थ, काम, मोक्ष के चारो पुरुषार्थ, तुम्हारे में ही न्यस्त हैं। इसलिए तुम मुझ (साधक) को सिद्धि प्रदान करो'॥३४-३५॥

पूजयित्वा ततो मालां गृह्णीयाद् दक्षिणे करे ।
मध्यमायाः मध्यभागे वर्जयित्वाथ तर्जनीम् ॥३६॥
अनामिकाकनिष्ठाभ्यां युतायानम्रभागतः ।
स्थापयित्वा तत्र मालामङ्गुष्ठाग्रेण तद्गतम् ॥३७॥
प्रत्येकं बीजमादाय जप्यादर्धेन भैरव ।
प्रतिवारं पठेन्मन्त्रं शनैरोष्ठं च चालयेत् ॥३८॥

हे भैरव ! उपर्युक्तरीति से माला का पूजन करने के पश्चात् माले को दाहिनेहाथ की मध्यमाअंगुली के मध्यभाग में ग्रहण करे। उस समय तर्जनी अलग हो, अनामिका एवं कनिष्ठा मिली हुई हो। किन्तु कनिष्ठा कुछ झुकी हो, ऐसी मुद्रा में माला को धारण कर, प्रत्येक दाने के आगे के भाग का

अगूँठे के अगलेभाग से स्पर्श कर, प्रत्येक बार ओठ में धीरे-धीरे मन्त्र पढ़ता हुआ, आगे की ओर चलाये (बढ़ाये)।।३६-३८।।

मालाबीजं तु जप्तव्यं स्पृशेन्नहि परस्परम् ।
पूर्वजापप्रयुक्तेन नैवाङ्गुष्ठेन भैरव ।।३९।।

हे भैरव ! जप करते समय, स्पर्श किये जाने वाले आगे-पीछे के दानों (मनकों) से स्पर्श नहीं होना चाहिये । पूजा और जप में प्रयुक्त अंगूठे से अन्य दाने का स्पर्श नहीं करना चाहिये।।३९।।

पूर्वबीजं जपन् यस्तु परबीजं च संस्पृशेत् ।
अङ्गुष्ठेन भवेत् तस्य निष्फलस्तस्य तज्जपः ।।४०।।

जो साधक पहले मनके पर जप करता हुआ अंगूठे से अगले मनके का स्पर्श करता है, उसका सम्पूर्णजप, निष्फल हो जात है।।४०।।

मालां स्वहृदयासन्ने धृत्वा दक्षिणपाणिना ।
देवीं विचिन्तयन् जप्यं कुर्याद् वामेन न स्पृशेत् ।।४१।।

जप के समय माला को दाहिने हाथ से अपने हृदय के पास धारण करना चाहिये तथा देवी का चिन्तन करते हुए जप करना चाहिये । उस समय माले का, बाएँहाथ से स्पर्श नहीं करना चाहिये ।।४१।।

स्फटिकेन्द्राक्षरुद्राक्षैः पुत्रञ्जीवसमुद्भवैः ।
सुवर्णमणिभिः सम्यक् प्रवालैरथवाब्जजैः ।।४२।।

माला, स्फटिक, इन्द्राक्ष, रुद्राक्ष, पुत्रजीवा के बीज, सोने की मनियों, मूँगे या कमल के बीजों से भली-भाँति बनाई जानी चाहिये।।४२।।

अक्षमाला तु कर्तव्या देवीप्रीतिकरी परा ।
जपेदुपांशु सततं कुशग्रन्थ्याथ पाणिना ।।४३।।

देवी को प्रसन्नता प्रदान करने वाली माला, अक्षमाला या कुश की ग्रंथियों से बनाई गई माला होती है । जिसे हाथ में लेकर निरन्तर उपांशु (मौन) जप करना चाहिये।।४३।।

मालाबीजेषु सर्वेषु रुद्राक्षो मत्प्रियाप्रियः ।
रुद्रप्रीतिकरी यस्मात् तेन रुद्राक्ष रोचनी ।।४४।।

सभी मनकों की मालाओं में रुद्राक्ष की माला मेरी प्रिया (देवी) को विशेष प्रिय है । रुद्र को विशेष प्रीतिकारक होने के कारण ही उसे सुन्दर, रुद्राक्ष नाम दिया गया है।।४४।।

प्रवालैरथवा कुर्यादष्टाविंशतिबीजकैः ।
पञ्चपञ्चाशता वापि न न्यूनैरधिकैश्च वा ।।४५।।

रुद्राक्ष या मूँगे के २८ मनकों या ५५ मनकों की माला बनानी चाहिये । इससे कम या अधिक मनकों की माला नहीं बनानी चाहिये।।४५।।

रुद्राक्षैर्यदि जप्येत इन्द्राक्षैः स्फटिकैस्तथा ।
नान्यं मध्ये प्रयोक्तव्यं पुत्रञ्जीवादिकं च यत् ।।४६।।

जब साधक रुद्राक्ष, इन्द्राक्ष या स्फटिक की माला से जप करे तो उस माला के मनकों में पुत्रजीवादि अन्य मनकों का प्रयोग न करे।।४६।।

यद्यन्यत् तु प्रयुज्येत मालायां जपकर्मणि ।
तस्य कामं च मोक्षं च ददाति न प्रियंकरी ।।४७।।

क्योंकि जो साधक, जपकर्म की माला के एक प्रकार के मनकों में दूसरे मनकों का प्रयोग करता है, भक्तों का प्रिय करने वाली देवी, उसको काम (कामनाओं की पूर्ति) और मोक्ष नहीं प्रदान करती हैं।।४७।।

मिश्रीभावं ततो याति चाण्डालैः पापकर्मभिः ।
जन्मान्तरे जायते स वेदवेदाङ्गपारगः ।।४८।।

वेद और वेदाङ्गों का ज्ञाता होकर भी वह साधक, अगले जन्म में चाण्डाल के मिश्रभाव (मिले जुले भाव) को अपने पापकर्मों के कारण प्राप्त करता है ।।४८।।

एको मेरुस्तत्र देयः सर्वेभ्यः स्थूलसम्भवः ।
आद्यं स्थूलं ततस्तस्माद् न्यूनं न्यूनतरं तथा ।
विन्यसेत् क्रमतस्तस्मात् सर्पाकारा हि सा मतः ।।४९।।

उस माला में सभी मनकों से बड़ा एक मेरु बनाना चाहिये । पहला मनका बड़ा तथा उसके बाद वाले मनके क्रमशः छोटे रखने चाहिये । इस प्रकार बनी हुई माला सर्पाकारमाला होती है।।४९।।

ब्रह्मग्रन्थियुतं कुर्यात् प्रतिबीजं यथास्थितम् ।
अथवा ग्रन्थिरहितं दृढरज्जुसमन्वितम् ।।५०।।

इस माला के प्रत्येक मनके को उपर्युक्त रीति से स्थित होने पर ब्रह्मग्रन्थि से उसे युक्त करना चाहिये । अथवा वह ग्रन्थि से रहित सुदृढ़धागे से युक्त होनी चाहिये ।।५०।।

द्विरावृत्याथ मध्येन चार्धवृत्यान्तदेशतः ।
ग्रन्थिः प्रदक्षिणावर्तः स ब्रह्मग्रन्थिसंज्ञकः ।।५१।।
आत्मना योजयेन्मालां नामन्त्रो योजयेन्नरः ।।५२।।

धागे को मध्य से तीन आवृत्ति और अन्तिम छोर से आधी आवृत्ति देकर, प्रदक्षिणाक्रम से माले में जो गाँठ लगाई जाती है, उसे ब्रह्मग्रन्थि कहते हैं। साधक को अपनी माला में इसे स्वयं लगानी चाहिये । अमन्त्र (दीक्षारहित) मनुष्य को इस कार्य में नहीं लगाना चाहिये।।५१-५२।।

दृढं सूत्रं नियुञ्जीत जपे त्रुट्यति नो यथा ।
तथा हस्तान्न च्यवेत जपतः स्रक् तमाचरेत् ।
हस्तच्युतायां विघ्नं स्याच्छिन्नायां मरणं भवेत् ।।५३।।

माला में दृढ़धागे का प्रयोग करना चाहिए। जिससे जप करते समय वह टूटे नहीं। माला का इस भाँति उपयोग करनी चाहिए कि वह जप करते समय हाथ से छूट कर न गिरे, क्योंकि जप करते समय माला के हाथ से छूटने से कार्य में विघ्न तथा टूट जाने से मरण होता है॥५३॥

एवं यः कुरुते मालां जपं च जपकोविदः।
स प्राप्नोतीप्सितं कामं हीने स्यात् तु विपर्ययः ॥५४॥

इस प्रकार उपर्युक्तरीति से जो जप का जानने वाला, माला का प्रयोग करते हुए, जप करता है। वह साधक अपनी इच्छित कामनाओं को प्राप्त कर लेता है। इसमें हीनता होने पर, विपरीत फल प्राप्त होता है॥५४॥

अन्यत्रापि जपेन्मालां जप्यं देवमनोहरम्।
तादृशः साधकः कुर्यान्नान्यथा तु कदाचन ॥५५॥

साधक को अन्यत्र भी उसी प्रकार की माला से इष्टदेव को प्रसन्न करने वाला जप करना चाहिए। इससे विपरीत कभी भी नहीं करना चाहिए॥५५॥

यथाशक्ति जपं कुर्यात् सङ्ख्ययैव प्रयत्नतः।
असङ्ख्यातं च यज्जप्तं तस्य तन्निष्फलं भवेत् ॥५६॥

साधक को प्रयत्न-पूर्वक, मन्त्रों की गणना करते हुए सामर्थ्य के अनुसार जप करना चाहिए। क्योंकि विना गणना किये जो जप किया जाता है, वह निष्फल हो जाता है॥५६॥

जप्त्वा मालां शिरोदेशे प्रांशुस्थानेऽथ वा न्यसेत्।
स्तुतिपाठं ततः कुर्यादिष्टं कामं निवेद्य च ॥५७॥

जप करके, माला को सिर पर या किसी ऊँचे स्थान पर साधक द्वारा रखा जाना चाहिए तत्पश्चात् स्तुतियों का पाठ करके अपनी अभीष्ट कामना को इष्ट के प्रति निवेदित करना चाहिए॥५७॥

स्तुतिश्चापि महामन्त्रं साधनं सर्वकर्मणाम्।
वक्ष्ये युवां महाभागौ सर्वसिद्धिप्रदायकम् ॥५८॥
सर्वमङ्गलमङ्गल्ये शिवे सर्वार्थसाधिके।
शरण्ये त्र्यम्बके गौरि नारायणि नमोऽस्तु ते ॥५९॥

हे महानुभावों ! स्तुति भी सभी कामों को सफल करने वाला महामन्त्र है। अब मैं **"सर्व मंगल ----- नमोऽस्तुते"** मन्त्र वाली स्तुति, जो सब प्रकार की सिद्धि देने वाली है, तुम दोनों से कहता हूँ। **स्तुत्यर्थ**—हे सब प्रकार का मंगल करने वाली, हे कल्याण करने वाली, हे सब प्रकार के कार्यों को सिद्ध करने वाली, तीननेत्रों वाली, हे शरण में आये हुए भक्तों की रक्षा करने वाली, हे गौरी ! हे नारायणी ! आपको नमस्कार है॥५८-५९॥

सप्तधावर्तनं कृत्वा स्तुतिमेनां च साधकः।
पञ्चप्रणामान् कृत्वाथ ऐं ह्रीं श्रीमितिमन्त्रकैः ॥६०॥

अन्येषां पुरतश्चैव अधिकं वा यथेच्छया ।
योनिमुद्रां ततः पश्चाद् दर्शयित्वा विसर्जयेत् ।।६१।।

इस प्रकार से ऊपर कही गयी स्तुति का सात बार आवृति करके साधक, **ऐं ह्रीं श्रीं** इन मन्त्रों से पांच बार प्रणाम करे । साधक चाहे तो अन्य देवताओं के सामने भी इससे अधिक बार प्रणाम कर सकता है, प्रणाम के पश्चात् साधक योनिमुद्रा का प्रदर्शन करते हुए देवी का विसर्जन करे ।।६०-६१।।

।। योनिमुद्रावर्णन ।।

द्वौ पाणी प्रसृतीकृत्य कृत्वा चोत्तानमञ्जलिम् ।।६२।।
अङ्गुष्ठाग्रद्वयं न्यस्य कनिष्ठाग्रद्वयोस्ततः ।
अनामिकायां वामस्य तत्कनिष्ठां पुरो न्यसेत् ।।६३।।
दक्षिणस्यानामिकायां कनिष्ठां दक्षिणस्य च ।
अनामिकायाः पृष्ठे तु मध्यमे द्वे निवेशयेत् ।।६४।।
द्वे तर्जन्यौ कनिष्ठाग्रे तदग्रेणैव योजयेत् ।
योनिमुद्रा समाख्याता देव्याः प्रीतिकरी मता ।।६५।।

दोनों हाथों को फैलाकर, अंजली को ऊपर की ओर करके, दोनों अंगूठे की अगलीअंगुलियों (तर्जनी) को एक दूसरे पर रखकर, तत्पश्चात् कनिष्ठा के बाद की अंगुलियों (अनामिका) को रखे । बायींअनामिका के पहले बायींकनिष्ठिका तथा दक्षिणअनामिका के पहले दाहिनीकनिष्ठका स्थापित करे । तदनन्तर अनामिकाओं के ऊपर दोनों मध्यमाओं को रखे । कनिष्ठिका तर्जनियों के नीचे रहे और अंगूठे सबसे आगे । इस प्रकार से बनी मुद्रा, योनिमुद्रा कही जाती है जो देवी को अत्यन्त प्रसन्नता देने वाली बतायी गई हैं।।६२-६५।।

त्रिवारं दर्शयेत् तां तु मूलमन्त्रेण साधकः ।
तां मुद्रां शिरसि न्यस्य मण्डलं विन्यसेत् ततः ।।६६।।
ऐशान्यामग्रहस्तेन द्वारपद्मविवर्जितम् ।
तत्र नत्वा रक्तचण्डां ह्रीं श्रीं मन्त्रेण साधकः ।।६७।।
रक्तचण्डायै नम इति निर्माल्यं तत्र निक्षिपेत् ।
उदके तरुमूले वा निर्माल्यं तत्र संत्यजेत् ।।६८।।

साधक उस योनिमुद्रा को मूलमन्त्र के साथ तीन बार देवी को प्रदर्शित करे । तब उस मुद्रा को अपने सिर पर रख कर मण्डल का निर्माण करे । ईशान कोण में अपनी अंगुली द्वारा द्वार और पद्म से रहित मण्डल का निर्माण करना चाहिए । वहाँ साधक **ह्रीं श्रीं** मन्त्र से रक्तचण्डा को प्रणाम करके **रक्त-ण्डायै नमः** इस मन्त्र से निर्माल्य चढ़ाये हुए पुष्पादि को उस मण्डल में रखे या जल में अन्यथा वृक्ष के जड़ में डाल दे।।६६-६८।।

एवं यः पूजयेद् देवीं विधानेन शिवां नरः ।
सोऽचिरेण लभेत्कामान् सर्वानेव मनोगतान् ।।६९।।

इस प्रकार से जो मनुष्य विधिपूर्वक देवी का पूजन करता है, सो शीघ्र ही अपनी मनोभिलषित सभी कामनाओं को प्राप्त कर लेता है।।६९।।

अर्धलक्षजपं जप्त्वा प्रथमं चैव साधकः ।
पुरश्चरेद् विशेषेण नानानैवेद्यवेदनैः ।।७०।।

साधक पहले पचासहजार मन्त्रों का जप करे तदनन्तर अनेक प्रकार के नैवेद्यों को निवेदन कर, पुरश्चरण सम्पन्न करे ।।७०।।

कुण्डं मण्डलवत् कृत्वा चाष्टम्यां समुपोषितः ।
नवम्यां शुक्लपक्षस्य रजोभिः पञ्चभिर्नरः ।
पूर्ववन्मण्डलं कृत्वा गुरुपित्रोश्च सन्निधौ ।।७१।।

साधक, शुक्लपक्ष की अष्टमी को उपवास करे और मण्डल की भाँति ही एक कुण्ड बनाये और तत्पश्चात् पांचप्रकार के रंग द्वारा मण्डल बनाये । यह कार्य साधक को अपने पिता और गुरु की सन्निधि में करना चाहिये ।।७१।।

अनेनैव विधानेन पूजयित्वा तु चण्डिकाम् ।।७२।।
सहितैर्बिल्वपत्रैश्च अष्टोत्तरशतत्रयम् ।
तिलैर्होमं चरेत् तस्यां सहस्त्रत्रितयं जपेत् ।।७३।।

इसी विधि से चण्डिका का पूजन करके, ३००० मन्त्रों का जप करे और अन्त में ३०८ आहुति, बेलपत्र, तिल, घी आदि से दे ।।७२-७३।।

नैवेद्यं गन्धपुष्पे च वस्त्रं दद्याच्च यत्प्रियम् ।
पूर्वोक्तं चान्यदप्यस्यै प्रदद्यात् पायसं तथा ।।७४।।

साधक को चाहिए कि वह नैवेद्य, गंध-पुष्प और वस्त्र जो भी देवी को प्रिय हो अर्पित करे और पहले बताई गयी वस्तुएँ तथा खीर भी देवी को निवेदित करे ।।७४।।

पूजावसाने देयं स्यात् तज्जातीयं बलित्रयम् ।
सिन्दूरं स्वर्णरत्नानि यद्यत् स्त्रीणां विभूषणम् ।।७५।।
निवेदयेद् यथाशक्ति पुष्पमाल्यं च भूरिशः ।
महासत्तुं सशाल्यन्नं गव्यव्यञ्जनसंयुतम् ।।७६।।
देव्यै नवम्यां सम्पूर्णं बलिं दद्याद् घृतादिभिः ।
दक्षिणां गुरवे दद्यात् सुवर्णं गां तथा तिलम् ।।७७।।

पूजा के अन्त में पूजा से सम्बंधित, तीन बलिदान भी देने चाहिये । नवमी के दिन सिन्दूर, स्वर्ण और रत्न तथा स्त्रियों के सभी प्रकार के आभूषण, सामर्थ्य

के अनुसार देवी को दिया जाना चाहिए। पर्याप्त पुष्पमाला, महासत्तू (चावल, घी आदि से युक्त चूर्ण) की बलि प्रदान करे और अन्त में सोना, गौ, तिल की दक्षिणा गुरु को अर्पित करे ॥७५-७७॥

अभिशप्तमपुत्रं च सावद्यं कितवं तथा ।
क्रियाहीनमकल्पज्ञं वामनं गुरुनिन्दकम् ।
सदा मत्सरसंयुक्तं गुरुं मन्त्रेषु वर्जयेत् ॥७८॥
गुरुर्मन्त्रस्य मूलं स्यान्मूलशुद्धौ तदुन्नतम् ।
सफलं जायते यस्मान्मन्त्रं यत्नात्परीक्षयेत् ॥७९॥

गुरु मन्त्र का मूल होता है यदि गुरु शुद्ध होगा तो उसके द्वारा बताया गया मन्त्र भी सफल होगा। इसीलिए दीक्षा से पूर्व ही मन्त्र की और मन्त्र देने वाले गुरु की यत्नपूर्वक परीक्षा लेनी चाहिए इसीलिए उस मूल अर्थात् उस गुरु की शुद्धि के सन्दर्भ में कहा जाता है—

जिसे शाप मिला हो, जो पुत्रहीन हो, दोषी हो, पापयुक्त हो, जुआड़ी हो, क्रिया रहित हो, धार्मिक विधानों को न जानने वाला हो, बौना हो, अपने गुरु की निन्दा करने वाला हो तथा सदैव ईर्ष्यायुक्त रहे ऐसे गुरु को मन्त्रग्रहण की दृष्टि से त्याग देना चाहिये॥७८-७९॥

शाठ्यात् क्रोधात्तु मोहाद्वा नासन्मत्या गुरोर्मुखात् ।
कल्पेषु दृष्ट्वा वा मन्त्रं गृह्णीयाच्छद्मनाऽथवा ॥८०॥

दुष्टता से, क्रोध से, मोह से या गुरु की बिना सम्मति से धोखे से, गुरु के मुख से या पद्धतियों को देखकर मन्त्रग्रहण नहीं करना चाहिये॥८०॥

स मन्त्रस्तेयपापेन तामिस्रे नरके नरः ।
मन्वन्तरत्रयं स्थित्वा पापयोनिषु जायते ॥८१॥

वह मन्त्र चुराया हुआ माना जाता है और इस पाप के कारण वह मनुष्य, तीन मन्वतरों तक नर्क में निवास कर, पाप योनियों में जन्म लेता है॥८१॥

शठे क्रूरे च मूर्खे च छद्मकारिण्यभक्तिके ।
मन्त्रं न दूषिते दद्यात् सुबीजं विपिने यथा ॥८२॥

जिस प्रकार उत्तमबीज जगंल में नहीं बोना चाहिये उसी प्रकार मन्त्र भी दुष्ट, क्रूर, भक्तिहीन, मूर्ख, धोखेबाज और पापी व्यक्ति को नहीं देना चाहिये ॥८२॥

लक्षेण साधयेत् कामं पुरश्चरणपूर्वकम् ।
पापक्षयो भवेद् यस्मात् पुरश्चरणकर्मणा ॥८३॥

एक लाख मन्त्र के जप द्वारा साधक अपनी कामनाओं की पूर्ति के लिए पुरश्चरण करे। इससे पाप का नाश होता है॥८३॥

लक्षद्वयेन मन्त्रस्य जपेन नरसत्तमौ ।
त्रिसन्ध्यासु प्रतिदिनं बीजसङ्घातकेन च ।।८४।।
कविर्वाग्मी पण्डितश्च यशस्वी च प्रजायते ।।८५।।

हे नरों में श्रेष्ठ दोनों प्रतिदिन प्रातः, मध्याह्न एवं सायं काल तीनों सन्ध्याओं समय बीज मन्त्रों के समूह, मन्त्र का दो लाख संख्या में जप करने से मनुष्य, कवि, वक्ता, पंडित तथा यशस्वी होता है।।८५।।

साधकः साधकश्रेष्ठ ! पूजास्थानं ततः शृणु ।
यत्र यत्र नरः पूजां निर्जने कुरुते च यः ।
तस्यादत्ते स्वयं देवी पत्रं पुष्पं फलं जलम् ।।८६।।

हे साधकों में श्रेष्ठ ! साधक के लिए उत्तम पूजा स्थान अब सुनो— जहाँ-जहाँ निर्जन में साधक, फल, पत्र, पुष्प, जल से जो भी पूजा करता है, देवी स्वयं वह ग्रहण करती हैं । पूजा में शिला या वेदी जो निर्जनस्थान में बनी हो, उत्तम बताई गयी है ।।८६।।

शिला प्रशस्ता पूजायां स्थण्डिलं निर्जनं तथा ।
जपश्चोपांशु सर्वेषामुत्तमः परिकीर्तितः ।।८७।।
अशुचिर्न महामायां पूजयेत् तु कदाचन ।
अवश्यं तु स्मरेन्मन्त्रं योऽतिभक्तियुतो नरः ।।८८।।

सभी जपों में उपांशु (मौन) जप उत्तम कहा गया है । अपवित्र अवस्था में कभी भी महामाया का पूजन नहीं करना चाहिये अत्यधिकभक्ति से युक्त मनुष्य को अवश्य मन्त्रस्मरण करना हो उसे।।८७-८८।।

दन्तरक्ते समुत्पन्ने स्मरणं च न विद्यते ।
सर्वेषामेव मन्त्राणां स्मरणान्नरकं व्रजेत् ।।८९।।

यदि दाँत से खून बहता हो तो स्मरण नहीं करना चाहिए, ऐसी दशा में सभी मन्त्रों का जप करने वाला नर्क में जाता है।।८९।।

जानूर्ध्वे क्षतजे जाते नित्यं कर्म न चाचरेत् ।
नैमित्तिकं च तदधः स्रवद्रक्तो न चाचरेत् ।।९०।।
सूतके च समुत्पन्ने क्षुरकर्मणि मैथुने ।
धूमोद्गारे तथा वान्ते नित्यकर्माणि संत्यजेत् ।।९१।।

घुटने के उपर यदि कोई चोट लगी हो तो भी कोई नित्यकर्म नहीं करना चाहिए और जब घुटने के नीचे से खून बह रहा हो उस समय कोई नैमित्तिक (प्रयोजन) वाला कर्म नहीं करना चाहिए।।९१।।

द्रव्ये भुक्ते त्वजीर्णे च न वै भुक्त्वा च किञ्चन ।
कर्म कुर्यान्नरो नित्यं सूतके मृतके तथा ।।९२।।
पत्रं पुष्पं च ताम्बूलं भेषजत्वेन कल्पितम् ।।९३।।

सूतक (जनन अशौच) में, क्षौरकर्म में, मैथुन की अवस्था में, डकार आने एवं कै होने पर नित्य कर्मों का त्याग करना चाहिये। जब खाया हुआ पदार्थ पचा न हो या जन्म या मरण का अशौच हो, उस समय या कुछ खाते हुए, नित्यकर्म नहीं करना चाहिये किन्तु पत्ते, फूल, ताम्बूल औषधि के रूप में बताये गये हैं।।९२-९३।।

कणादिपिप्पल्यन्तं च फलं भुक्त्वा न चाचरेत् ।
जलस्यापि नरश्रेष्ठ भोजनाद् भेषजादृते ।
नित्यक्रिया निवर्तेत सह नैमित्तिकैः सदा ।।९४।।

हे नरश्रेष्ठ ! पिप्पली आदि दाने और फल जो औषधि के रूप में प्रयुक्त होते हों उनके अतिरिक्त भोजन के निमित्त अपेक्षित जल भी ग्रहण करके नित्य एवं नैमित्तिककार्यों को नहीं करना चाहिए।।९४।।

जलौकां गूढपादं च कृमिगण्डूपदादिकम् ।
कामाद्धस्तेन संस्पृश्य नित्यकर्माणि संत्यजेत् ।।९५।।

जोंक, सर्प, कीड़े, केचुवें आदि का कामनावश, हाथ से स्पर्श करके भी नित्यकर्म नहीं करना चाहिए ।।९५।।

विशेषतः शिवापूजां प्रमीतपितृको नरः ।
यावद् वत्सरपर्यन्तं मनसापि न चाचरेत् ।।९६।।

विशेषकर देवी की पूजा, यदि किसी के माता-पिता मर गये हों तो उसे मन से भी वर्षपर्यन्त नहीं करनी चाहिये।।९६।।

महागुरुनिपाते तु काम्यं किञ्चिन्न चाचरेत् ।
आर्त्विज्यं ब्रह्मयज्ञं च श्राद्धं देवयजं च यत् ।।९७।।

महागुरु के मृत्यु के बाद कोई काम्यकर्म, ऋत्विककर्म, ब्रह्मयज्ञ, देवयज्ञ या श्राद्ध आदि कर्म भी नहीं करना चाहिए।।९७।।

गुरुमाक्षिप्य विप्रं च प्रहृत्यैव च पाणिना ।
न कुर्यान्नित्यकर्माणि रेतःपाते च भैरव ।।९८।।

हे भैरव ! अपने गुरु पर लांछन लगाकर या किसी ब्राह्मण पर हाथ से प्रहार कर या वीर्यपात हो जाने के बाद भी नित्यकर्म नहीं करना चाहिये ।।९८।।

आसनं चार्घ्यपात्रं च भग्नमासादयेन्न तु ।
ऊषरे कृमिसंयुक्ते स्थाने मृष्टेऽपि नार्चयेत् ।।९९।।

आसन या अर्घ्यपात्र के टूट जाने पर भी नित्यकर्म नहीं करना चाहिए। ऊसर, कीड़ों से युक्तस्थान, यदि साफ (स्वच्छ) भी किया गया हो तो, वहाँ पूजन नहीं करना चाहिए॥९९॥

नीचैरासनमासाद्य शुचिः प्रयतमानसः।
अर्चयेच्चण्डिकां देवीं देवमन्यं च भैरव ॥१००॥

हे भैरव ! पवित्र होकर विनम्रमन से, नीचे (समतल) आसन को प्राप्त कर, चण्डिकादेवी और अन्य देवताओं का पूजन करना चाहिए॥१००॥

दिग्विभागे तु कौबेरीदिक्छिवा प्रीतिदायिनी।
तस्मात् तन्मुखआसीनः पूजयेच्चण्डिकां सदा ॥१०१॥

सभी दिशाओं में उत्तर दिशा, शिवा को प्रसन्नता देने वाली है, इसलिए सदैव उसी मुंह बैठकर पूजन करना चाहिए ॥१०१॥

पुष्पं च कृमिसंमिश्रं विशीर्णं भग्नमृद्गते।
सकेशं मूषिकोद्धूतं यत्नेन परिवर्जयेत् ॥१०२॥

कीड़े लगे, टूटे, पुराने पड़े, मिट्टी में मिले, केश लगे, चूहों द्वारा कुतरे, पुष्प, प्रयत्नपूर्वक पूजा में त्याग देने चाहिये॥१०२॥

याचितं परकीयं च तथा पर्युषितं च यत्।
अन्त्यसृष्टं पदस्पृष्टं यत्नेन परिवर्जयेत् ॥१०३॥

दूसरों से माँगी गई, परायी, बासी, अन्त्यजों द्वारा धुली एवं रची या पैरों से कुचली वस्तुओं का पूजा में प्रयत्नपूर्वक परित्याग कर देना चाहिये ॥१०३॥

इदं शिवायाः परमं मनोहरं
करोति योऽनेन तदीयपूजनम्।
स वाञ्छितार्थं समवाप्य चण्डिका-
गृहं प्रयाता नचिरेण भैरव ॥१०४॥

॥ इति श्रीकालिकापुराणे महामायाकल्पे बलि-विधाननाम पञ्चपञ्चाशोऽध्यायः ॥५५॥

हे भैरव ! इस प्रकार से जो शिवा के परममनोहर, उत्तम, पूजन को करता है, वह शीघ्र ही अपने वाञ्छितफल को प्राप्त कर चण्डिका के धाम को जाता है॥१०४॥

॥श्रीकालिकापुराण के महामायाकल्प का बलि-विधान नामक
पचपनवाँ अध्याय सम्पूर्ण हुआ॥५५॥



षट्पञ्चाशोऽध्यायः

महामायाकल्पे कवचवर्णनम्

॥ श्रीभगवानुवाच ॥

अस्य मन्त्रस्य कवचं शृणु वेताल भैरव ।
वैष्णवीतन्त्रसंज्ञस्य वैष्णव्याश्च विशेषतः ॥१॥

श्रीभगवान् बोले - हे वेताल और भैरव ! तुम दोनों इस मन्त्र के वैष्णवी सम्बन्धी, वैष्णवीतन्त्र नामक कवच को विशेषरूप से सुनो ॥१॥

तत्र मन्त्राद्यक्षरं तु वासुदेवस्वरूपधृक् ।
वर्णो द्वितीयो ब्रह्मैव तृतीयश्चन्द्रशेखरः ॥२॥
चतुर्थो गजवक्त्रश्च पञ्चमस्तु दिवाकरः ।
शक्तिः स्वयं पकारश्च महामाया जगन्मयी ।
यकारस्तु महालक्ष्मीः शेषवर्णः सरस्वती ॥३॥

इसमें मन्त्र का पहला अक्षर (अ) विष्णुस्वरूपधारी, द्वितीयवर्ण (क) ब्रह्मा तथा तृतीयवर्ण (च) चन्द्रशेखरशिवस्वरूप बताया गया है। चतुर्थ (ट) गणेशस्वरूप, पंचम (त) सूर्यरूप है। इसमें पकार स्वयं जगन्मयी, महामाया, शक्ति का रूप, यकार महालक्ष्मीस्वरूप तथा शेष वर्ण (स) सरस्वती का स्वरूप है॥२-३॥

योगिनीपूर्ववर्णस्य शैलपुत्री प्रकीर्तिता ॥४॥
द्वितीयस्य तु वर्णस्य चण्डिका योगिनी मता ।
चन्द्रघण्टा तृतीयस्य कूष्माण्डा तत्परस्य च ॥५॥
स्कन्दमाता तकारस्य पस्य कात्यायनी स्वयम् ।
कालरात्रिः सप्तमस्य महादेवीति संस्थिता ॥६॥

यहाँ प्रथमवर्ण की शैलपुत्री, द्वितीयवर्ण की चण्डिका, तृतीयवर्ण की चन्द्रघण्टा, उसके पश्चात् चतुर्थवर्ण की कूष्माण्डा, तकार की स्कन्दमाता, पवर्ण की स्वयम् कात्यायनी, सप्तम यकार की कालरात्री तथा अन्तिम सकार की महादेवी क्रमशः योगिनियाँ बताई गई हैं ॥४-६॥

प्रथमं वर्णकवचं योगिनीकवचं तथा ।
देवौघकवचं पश्चाद् देवीदिक्कवचं तथा ।।७।।
ततस्तु पार्श्वकवचं द्वितीयान्ताव्ययस्य च ।
कवचं तु ततः पश्चात् षड्वर्णं कवचं तथा ।
अभेद्यकवचं चेति सर्वत्राणपरायणम् ।।८।।

वैष्णवीतन्त्र में पहला **वर्णकवच** तत्पश्चात् **योगिनीकवच** तब **देवौघकवच, देवीदिक्कवच** तदनन्तर द्वितीयान्त अव्यय कवच, **पार्श्वकवच,** षडवर्णकवच और अन्तिम सभी जगह रक्षा करने में निरत **अभेद्यकवच,** इस प्रकार से आठ कवच बताये गये हैं।।७-८।।

इमानि कवचान्यष्टौ यो जानाति नरोत्तमः ।
सोऽहमेव महादेवी देवीरूपश्च शक्तिमान् ।।९।।

जो उत्तमपुरुष उपर्युक्त आठकवचों को जानता है, वह महादेवी (महामाया देवी) की शक्ति से युक्त, स्वयं मैं ही हूँ अर्थात् वह मेरा ही स्वरूप हो जाता है।।९।।

।। वर्णकवच ।।

अस्य वर्णकवचस्य नारदर्षिरनुष्टुप्छन्दः ।
कात्यायनीदेवता सर्वार्थसाधने विनियोगः ।।१०।।

इस वर्णकवच का नारदऋषि, अनुष्टुप्छन्द, कात्यायनीदेवता, सभी अर्थों की साधना में विनियोग बताया गया है ।।१०।।

अः पातु पूर्वकाष्ठायामाग्नेय्यां पातु कः सदा ।
पातु चो यमकाष्ठायां टो नैर्ऋत्यां च सर्वदा ।।११।।
मां पातु तोऽसौ पाश्चात्ये शक्तिर्वायव्यदिग्गता ।
यः पातु मां चोत्तरस्यामैशान्यां सस्तथावतु ।।१२।।

अकार पूर्वदिशा में, ककार आग्नेय (अग्निकोण) में सदैव रक्षा करे, चकार यमदिशा (दक्षिण) में, टकार सर्वदा नैर्ऋत्यदिशा में मेरी रक्षा करे। तकार पश्चिम में, शक्ति (प) वर्ण वायव्यदिशा में, यकार उत्तर तथा सकार ईशानकोण में मेरी रक्षा करे।।११-१२।।

मूर्ध्नि रक्षतु मां सोऽसौ बाहौ मां दक्षिणे तु कः ।
मां वामबाहौ चः पातु हृदि टो मां सदावतु ।।१३।।
तः पातु कण्ठदेशे मां कट्योः शक्तिस्तथावतु ।
यः पातु दक्षिणे पादे षो मां वामपदे तथा ।।१४।।

अ वर्ण मेरी मूर्धा की, क मेरी दाहिनीभुजा, च बाईंभुजा तथा ट सदैव मेरे हृदय की रक्षा करे। त कण्ठदेश में, शक्ति (प) कटि में, य दक्षिणपैर में तथा ष बाएँ पैर में मेरी रक्षा करे।।१३-१४।।

।। योगिनीकवच ।।

शैलपुत्री तु पूर्वस्यामाग्नेय्यां पातु चण्डिका ।
चन्द्रघण्टा पातु याम्यां यमभीतिविवर्धिनी ।।१५।।
नैर्ऋत्ये त्वथ कूष्माण्डा पातु मां जगतां प्रसूः ।
स्कन्दमाता पश्चिमायां मां रक्षतु सदैव हि ।।१६।।

शैलपुत्री पूर्वदिशा में, चण्डिका अग्निकोण में, यम के भी भय को बढ़ाने वाली चन्द्रघण्टा दक्षिण में, संसार को उत्पन्न करने वाली कूष्माण्डा देवी नैर्ऋत्य तथा स्कन्दमाता सदैव पश्चिम दिशा में मेरी रक्षा करें ।।१५-१६।।

कात्यायनी मां वायव्ये पातु लोकेश्वरी सदा ।।१७।।
कालरात्री तु कौबेर्यां सदा रक्षतु मां स्वयम् ।
महागौरी तथैशान्यां सततं पातु पावनी ।।१८।।

लोकों की स्वामिनी कात्यायनी वायव्यकोण में, कालरात्री स्वयं कुबेर की उत्तरदिशा में, सदैव मेरी रक्षा करें तथा पवित्रमहागौरी निरन्तर ईशानकोण में मेरी रक्षा करें।।१७-१८।।

।। देवौध कवच ।।

नेत्रयोर्वासुदेवो मां पातु नित्यं सनातनः ।
ब्रह्मा मां पातु वदने पद्मयोनिरयोनिजः ।।१९।।
नासाभागे रक्षतु मां सर्वदा चन्द्रशेखरः ।
गजवक्त्रः स्तनयुग्मे पातु नित्यं हरात्मजः ।
वामदक्षिणपाण्योर्मां नित्यं पातु दिवाकरः ।।२०।।
महामाया स्वयं नाभौ मां पातु परमेश्वरी ।
महालक्ष्मीः पातु गुह्ये जानुनोश्च सरस्वती ।।२१।।

सनातन वासुदेव (विष्णु) मेरे दोनों नेत्रों की नित्य रक्षा करें । बिना मातृयोनि के, कमल से ही उत्पन्न, ब्रह्मा मेरे मुख की तथा चन्द्रशेखर (शिव) सदैव मेरी नासिका की रक्षा करें । शिव के पुत्र, गणेश नित्य मेरे दोनों स्तनों की एवं दिवाकर (सूर्य), मेरे बाएँ और दाहिने हाथों की रक्षा करें । परमेश्वरी महामाया स्वयं मेरे नाभि की, महालक्ष्मी गुह्यभाग की तथा सरस्वती मेरे घुटनों की रक्षा करें।।१९-२१।।

।। देवीदिक्कवच ।।

महामाया पूर्वभागे नित्यं रक्षतु मां शुभा ।
अग्निज्वाला तथाग्नेय्यां पायान्नित्यं वरासिनी ।।२२।।

शुभस्वरूपा, महामाया, पूर्वभाग में, श्रेष्ठआसनवाली, अग्निज्वाला, अग्निकोण में नित्य मेरी रक्षा करें।।२२।।

रुद्राणी पातु मां याम्यां नैर्ऋत्यां चण्डनायिका ।
उग्रचण्डा पश्चिमायां पातु नित्यं महेश्वरी ।।२३।।
प्रचण्डा पातु वायव्ये कौबेर्यां घोररूपिणी ।
ईश्वरी च तथैशान्यां पातु नित्यं सनातनी ।।२४।।

रूद्राणी दक्षिणदिशा में, चण्डनायिका नैर्ऋत्यकोण में, महेश्वरी उग्रचण्डा पश्चिम दिशा में नित्य मेरी रक्षा करें। प्रचण्डा वायव्यकोण में तथा घोररूपिणी उत्तर दिशा में तथा ईशानकोण में सनातनी ईश्वरी देवी नित्य मेरी रक्षा करें। महामाया मेरे ऊपरी भाग में, परमेश्वरी निचले भाग में, उग्रा अगले भाग में एवं वैष्णवी पृष्ठभाग में मेरी रक्षा करें।।२३-२४।।

ऊर्ध्वं पातु महामाया पात्वधः परमेश्वरी ।
अग्रतः पातु मामुग्रा पृष्ठतो वैष्णवी तथा ।।२५।।
ब्रह्माणी दक्षिणे पार्श्वे नित्यं रक्षतु शोभना ।
माहेश्वरी वामपार्श्वे नित्यं पायाद् वृषध्वजा ।।२६।।

सुन्दरी ब्रह्माणी मेरे दाहिनेभाग और वृषध्वजधारिणी माहेश्वरी देवी मेरे वामभाग में नित्य रक्षा करें ।।२५-२६।।

कौमारी पर्वते पातु वाराही सलिले च माम् ।।२७।।
नारसिंही दंष्ट्रिभये पातु मां विपिनेषु च ।
ऐन्द्री मां पातु चाकाशे तथा सर्वजले स्थले ।।२८।।

कौमारी देवी पर्वत पर, वाराही जल में मेरी रक्षा करें। नारसिंही, भयानक-दांतवाले जन्तुओं से जंगलों में तथा ऐन्द्री, आकाश एवं जल-थल में सर्वत्र मेरी रक्षा करें ।।२७-२८।।

सेतु सर्वाङ्गुलीः पातु देवादिः पातु कर्णयोः ।
देवान्तश्चिबुके पातु पार्श्वयोः शक्तिपञ्चमः ।।२९।।
हा पातु मां तथैवोर्वोर्माया रक्षतु जङ्घयोः ।
सर्वेन्द्रियाणि यः पातु रोमकूपेषु सर्वदा ।।३०।।

सेतु (ॐ) मेरी सभी अंगुलियों की तथा देव्यै मेरे कानों की तथा उसके पश्चात् आनेवाला पद नमः मेरे चिबुक (ठुड्डी) की तथा शक्ति (पकार) से पाँचवां वर्ण म मेरे पार्श्वभाग की हा वर्ण मेरे उरु की और माया मेरी जांघों की रक्षा करें। यै वर्ण मेरी सभी इन्द्रियों तथा रोमकूपों की सर्वदा रक्षा करें।।२९-३०।।

त्वचि मां वै सदा पातु मां शम्भुः पातु सर्वदा ।
नखदन्तकरोष्ठादौ राँ मां पातु सदैव हि ।।३१।।

वै सदा मेरे त्वचा की तथा शम्भु **(ष)** सदैव मेरे नख, दाँत, हाथ और ओठों की रक्षा करे। रॉ **(ण)** वर्ण सदैव मेरी रक्षा करे।।३१।।

देवादिः पातु मां वस्तौ देवान्तः स्तनकक्षयोः ।
एतदादौ तु यः सेतुर्बाह्ये मां पातु देहतः ।।३२।।

देव शब्द जिसके आदि में लगता है वह **व्यै** मेरे वसतीक्षेत्र की तथा देवान्त **(नमः)** शब्द मेरे स्तन और कोखों की तथा इन सबके आरम्भ में आने वाला सेतु (ॐकार) बाहर से मेरे सम्पूर्णशरीर की रक्षा करे।।३२।।

।। अभेद्य कवच ।।

आज्ञाचक्रे सुषुम्णायां षट्चक्रे हृदि सन्धिषु ।
आदिषोडशचक्रे च ललाटाकाश एव च ।
वैष्णवीतन्त्रमन्त्रो मां नित्यं रक्षंश्च तिष्ठतु ।।३३।।

वैष्णवीतन्त्रमन्त्र नित्य मेरे आज्ञाचक्र, सुषुम्ना, षट्चक्र, हृदय, सन्धि, आदिषोडशचक्र, ललाट तथा आकाश (ब्रह्मरन्ध्र) में, मेरी रक्षा करते हुए स्थित रहें।।३३।।

कर्णनाडीषु सर्वासु पार्श्वकक्षशिखासु च ।
रुधिरस्नायुमज्जासु मस्तिष्केषु च पर्वसु ।।३४।।
द्वितीयाष्टाक्षरो मन्त्रः कवचं पातु सर्वतः ।।३५।।

इसी प्रकार दूसरा अष्टाक्षर मन्त्र (ॐ महामायायै नमः) का जो कवच है वह सभी कर्णनाड़ियों, पार्श्वकक्ष, शिखाओं, रक्त, स्नायु, मज्जा, मस्तिष्क और शरीर के पर्वों में सब ओर से मेरी रक्षा करे ।।३४-३५।।

रेतो वायौ नाभिरन्ध्रे पृष्ठसन्धिषु सर्वतः ।
षडक्षरस्तृतीयोऽयं मन्त्रो मां पातु सर्वदा ।।३६।।

मेरे वीर्य, वायु, नाभिरन्ध्र, तथा पीठ की जोड़ों में सदा और सब ओर से षडक्षर (ॐ वैष्णव्यै नमः) मन्त्र रक्षा करे ।।३६।।

नासारन्ध्रे महामाया कण्ठरन्ध्रे तु वैष्णवी ।
सर्वसन्धिषु मां पातु दुर्गा दुर्गार्तिहारिणी ।।३७।।

नाक के छिद्रों में महामाया, कण्ठ के छिद्रों में वैष्णवी तथा सभी जोड़ो में भीषण दुःखों का दूर करने वाली, दुर्गा मेरी रक्षा करें ।।३७।।

श्रोत्रयोर्हूं फडित्येवं नित्यं रक्षतु कालिका ।
नेत्रबीजत्रयं नेत्रे सदा तिष्ठतु रक्षितुम् ।।३८।।

हूँ फट् कालिका नित्य मेरे कानों में रक्षा करें तथा नेत्रबीजत्रय रक्षाहेतु सदैव मेरे नेत्रों में स्थित हो।।३८।।

ॐ ऐं ह्रीं ह्रौं नासिकायां रक्षन्ती चास्तु चण्डिका ।
ॐ ह्रीं हूं मां सदा तारा जिह्वामूले तु तिष्ठतु ।।३९।।

ॐ ऐं ह्रीं ह्रौं चण्डिका मेरी नाक में स्थित हो रक्षा करती रहें तथा **ॐ ह्रीं हूँ तारा** सदैव मेरे जिह्वामूल में स्थित रहें ।।३९।।

हृदि तिष्ठतु मे सेतुर्ज्ञानं रक्षितुमुत्तमम् ।
ॐ क्षौं फट् च महामाया पातु मां सर्वतः सदा ।।४०।।

सेतु (ॐ) उत्तम ज्ञान की रक्षा हेतु मेरे हृदय में स्थित रहे। **ॐ क्षौं फट् महामाया** सदैव सब ओर से मेरी रक्षा करें ।।४०।।

युँ सः प्राणान् कौशिकी मां प्राणान् रक्षतु रक्षिका ।
ह्रीं हूं सौं भर्गदयिता देहशून्येषु पातु माम् ।।४१।।

प्राणों की रक्षा करने वाली **ॐ युँ सः कौशिकी** मेरे प्राणों की रक्षा करें तथा शरीर से रहित स्थितियों में **ॐ ह्रीं हूँ सौं भर्गदयिता** मेरी रक्षा करें ।।४१।।

नमः सदा शैलपुत्री सर्वान् रोगान् प्रमृज्यताम् ।
ह्रीं सः स्फें क्षः फडस्त्राय सिंहव्याघ्रभयाद्रणात् ।।४२।।
शिवदूती पातु नित्यं ह्रीं सर्वास्त्रेषु तिष्ठतु ।
ॐ ह्रां ह्रीं सश्चण्डघण्टा कर्णच्छिद्रेषु पातु माम् ।।४३।।

ॐ नमः शैलपुत्री सदैव सभी रोगों से मुझे स्वच्छ करें। तथा **ॐ ह्रीं सः स्फें क्षः अस्त्राय फट्** शिवदूती मेरे सभी अस्त्रों में स्थित हो सिंह-व्याघ्र के भय और युद्ध से मेरी रक्षा करें। **ॐ ह्रां ह्रीं सः चण्डघण्टा** कान के छिद्रों में मेरी रक्षा करें ।।४२-४३।।

क्रीं सः कामेश्वरी कामानभितिष्ठतु रक्षतु ।
ॐ आं हूं फडुग्रचण्डा रिपून् विघ्नान् विमर्दताम् ।।४४।।

ॐ क्रीं सः कामेश्वरी देवी मेरी कामनाओं में सब ओर स्थित हो रक्षा करें। **ॐ आं हूँ फट् उग्रचण्डा** शत्रुओं एवं विघ्नों को नष्ट करें ।।४४।।

ॐ अं शूलात् पातु नित्यं वैष्णवी जगदीश्वरी ।
कं ब्रह्माणी पातु चक्रात् चं रुद्राणी तु शक्तितः ।।४५।।

ॐ अं वैष्णवी जगदीश्वरी शूल से, **ॐ कं ब्रह्माणी** चक्र से, **ॐ चं रुद्राणी** शक्ति से नित्य मेरी रक्षा करें ।।४५।।

टं कौमारी पातु वज्रात् तं वाराही तु काण्डतः ।
पं पातु नारसिंही क्रव्यादेभ्यस्तथास्त्रतः ।।४६।।

ॐ टं कौमारी वज्र से, **ॐ तं वाराही काण्ड (बाण)** से **ॐ पं नारसिंही** राक्षसों तथा अस्त्रों (के भय) से रक्षा करें ।।४६।।

शस्त्रास्त्रेभ्यः समस्तेभ्यो यन्त्रेभ्योऽनिष्टमन्त्रतः ।
चण्डिका मां सदा पातु यं सं देव्यै नमोनमः ।
विश्वासघातकेभ्यो मामैन्द्री रक्षतु मन्मनः ।।४७।।

यं सं चण्डिका देव्यै नमो नमः सभी प्रकार के शस्त्रास्त्रों, यन्त्रों और अनिष्टकारीमन्त्रों से सर्वदा मेरी रक्षा करे। एवं विश्वासघात करने वालों से ऐन्द्री मेरे मन की रक्षा करें ।।४७।।

ॐ नमो महामायायै ॐ वैष्णव्यै नमो नमः ।
रक्ष मां सर्वभूतेभ्यः सर्वत्रपरमेश्वरि ।।४८।।

हे परमेश्वरी **ॐ नमो महामायायै** एवं **ॐ वैष्णव्यै नमोनमः** सर्वत्र सभीप्राणियों से मेरी रक्षा करें ।।४८।।

आधारे वायुमार्गे हृदि कमलदले चन्द्रवत्स्मेरसूर्ये,
वंस्तौ वह्नौ समिद्धे विशतु वरदया मन्त्रमष्टाक्षरन्तत् ।
यद्ब्रह्मा मूर्ध्नि धत्ते हरिरवति गले चन्द्रचूडोहृदिस्थं,
तं मां पातु प्रधानं निखिलमतिशयं पद्मगर्भाभबीजम् ।।४९।।

श्रीवैष्णवी का जो वरदायक अष्टाक्षरमन्त्र है, वह वायुमार्ग से मेरे आधारचक्र में तथा चन्द्रमा के समान सुखद कमलदल से युक्त हृदय में, सूर्य के समान सहस्रार में प्रवेश करे। वह अग्नि से युक्त हमारे वसतीक्षेत्र में भी प्रवेश करे। वह पद्मगर्भ की आभा के समान, प्रधान, पूर्ण और श्रेष्ठ जो बीजमन्त्र है, जिसे ब्रह्मा मस्तक पर धारण करते हैं, विष्णु जिसकी गले में रक्षा करते हैं तथा जो चन्द्रचूड शिव के हृदय में स्थित है, वह मेरी रक्षा करे ।।४९।।

आद्याः शेषाः स्वरौघैर्नमयवलवरैरस्वरेणापि युक्तैः
सानुस्वाराविसर्गैर्हरिहरविदितं यत्सहस्रं च साष्टम् ।
मन्त्राणां सेतुबन्धं निवसति सततं वैष्णवीतन्त्रमन्त्रे
तन्मां पायात्पवित्रं परमपरमजं भूतलव्योमभागे ।।५०।।

वैष्णवीतन्त्र-मन्त्र में सभी वर्णों के वर्गों के पहले और अन्तिम व्यञ्जन नमयवलर से युक्त स्वर सहित या बिना स्वर के अनुस्वार एवं विसर्गों के सहित निरन्तर निवास करने वाले एक हजार आठ मन्त्रों का जो सेतुबन्ध ॐ कार है। जिसे विष्णु एवं शिव भी पूर्णतः नहीं जान पाते, वह परम और अपरम, अज, पवित्रतत्त्व, पृथ्वी तथा आकाश में मेरी रक्षा करे।।५०।।

अङ्गान्यष्टौ तथाष्टौ वसव इह तथैवाष्टमूर्तिर्दलानि
प्रोक्तान्यष्टौ तथाष्टौ मधुमतिरचिताः सिद्धयोऽष्टौ तथैव ।
अष्टावष्टाष्टसङ्ख्या जगति रतिकलाः क्षिप्रकाष्ठांगयोगा
मय्यष्टावक्षराणि क्षरतु न हि गणो यद्धृतोयस्त्वभूषाम् ।।५१।।

आपके अष्टाक्षरमन्त्र के आठोंअक्षर, योग के आठअङ्ग (यम, नियम, आसन, प्राणायाम, प्रत्याहार, ध्यान, धारणा, समाधि) किंवा आयुर्वेद के आठअङ्ग (द्रव्याभिधान, गदनिश्चय, काय, सौच्य, शल्यकर्म, भूतनिग्रह, बालवैद्य, रसायन) का ज्ञान, आठवसु (धर, ध्रुव, सोम, विष्णु, अनिल, अनल, प्रत्यूष, प्रभास, अथवा द्रोण, प्राण ध्रुव, अर्क, अग्नि, दोष, वसु, विभावसु), शिव की आठमूर्तियों (क्षिति, जल, तेज, वायु, आकाश, यजमान, अर्क, चन्द्र, अथवा सर्व, भव, रूद्र, उग्र, भीम, पशुपति, ईशान, महादेव,) से युक्त, अष्टदल, आठ मधुमती विद्यायें, आठ सिद्धियाँ (अणिमा, महिमा, लघिमा, गरिमा प्राप्ति, प्राकाम्य, ईशित्व, वशित्व,) जगत्प्रसिद्ध चौंसठ रतिकलायें तथा आठ दिशाओं के समूहों को मुझे प्रदान करें जिनके धारण करने से मेरी शोभा नष्ट न हो।।५१।।

।। फलश्रुति ।।

इति यत्कवचं प्रोक्तं धर्मकामार्थसाधनम् ।
इदं रहस्यं परममिदं सर्वार्थसाधकम् ।।५२।।

इस प्रकार का जो धर्म, अर्थ और काम के श्रेष्ठ साधनरूप में यह कवच कहा गया। वह कवच अत्यन्तगुप्त, श्रेष्ठ तथा सभी प्रयोजनों को सिद्ध करने वाला है ।।५२।।

यः सकृच्छृणुयादेतत् कवचं मयकोदितम् ।
स सर्वाल्लभते कामान् परत्र शिवरूपताम् ।।५३।।

जो मेरे द्वारा कहे गये, इस कवच को एक बार सुनता है, वह इस लोक में सभी कामनाओं को तथा परलोक में शिव की स्वरूपता को प्राप्त कर लेता है ।।५३।।

सकृद् यस्तु पठेदेतत् कवचं मया चोदितम् ।
स सर्वयज्ञस्य फलं लभते नात्र संशयः ।।५४।।

मेरे द्वारा कहे इस कवच को, जो एक बार भी पढ़ता है, वह सभी यज्ञों के करने का फल प्राप्त कर लेता है, इसमें कोई संशय नहीं है ।।५४।।

संग्रामेषु जयेच्छत्रुं मातङ्गानिव केशरी ।
दहेत् तृणं यथा वह्नि तथा शत्रुं दहेत् सदा ।।५५।।

सदैव वह, युद्धों में उसी प्रकार शत्रुओं को जीत लेता है, जिस प्रकार सिंह हाथियों को जीतता है तथा जिस प्रकार से अग्नि, तृण (घास) को जला देती है, वह शत्रुओं को उसी प्रकार जला (नष्ट) कर देता है।।५५।।

नास्त्राणि तस्य शस्त्राणि शरीरे प्रविशन्ति वै ।
न तस्य जायते व्याधिर्न च दुःखं कदाचन ।।५६।।

उसके शरीर में कोई अस्त्र या शस्त्र प्रवेश नहीं करते तथा कभी भी उसे किसी प्रकार का रोग या दु:ख नहीं होता ॥५६॥

गुटिकाञ्जन-पाताल-पादलेपरसाञ्जनम् ।
उच्चाटनाद्यास्ता: सर्वा: प्रसीदन्ति च सिद्धय: ॥५७॥

उसे गुटिका, अंजन, पाताल, पादलेप, रसांजन, उच्चाटन आदि सभी सिद्धियाँ प्रसन्न (प्राप्त) हो जाती है ॥५७॥

वायोरिव गतिस्तस्य भवेदन्यैरवारिता ।
दीर्घायु: कामभोगी च धनवानभिजायते ॥५८॥

उसकी गति उस वायु की भाँति हो जाती है जिसे दूसरे रोक नहीं सकते। वह दीर्घायु, काम का भोग करने वाला और धनवान् हो जाता है ॥५८॥

अष्टम्यां संयतो भूत्वा नवम्यां विधिवच्छिवाम् ।
पूजयित्वा विधानेन विचिन्त्य मनसा शिवाम् ।
यो न्यसेत् कवचं देहे तस्य 'पुण्यफलं' शृणु ॥५९॥

जो साधक शुक्लपक्ष की अष्टमी को संयत होकर नवमी को शिवा का विधिवत् पूजन करता है, तथा विधान के अनुसार उनका मानसिक स्मरण करते हुए इस कवच को अपने देह में धारण करता है, उसका पुण्यफल सुनो—॥५९॥

जितव्याधि: शतायुश्च रूपवान् गुणवान् सदा ।
धनरत्नौघसम्पूर्णो विद्यावान् स च जायते ॥६०॥

वह सदा व्याधियों को जीत लेता है, वह सौ वर्ष की आयुवाला, रूपवान्, गुणवान्, धन और रत्नों के समूह से पूर्ण और विद्यावान् होता है ॥६०॥

नाग्निर्दहति तत्कायं नाप: संक्लेदयन्ति च ।
न शोषयति तं वायु: क्रव्यात् तं न हिनस्ति च ॥६१॥

उसके शरीर को न अग्नि जला पाती है और न जल भिगो सकता है। उसे न तो वायु सुखा सकती है और न हिंसकपशु ही मार सकते हैं ॥६१॥

शस्त्राणि नैनं छिन्दन्ति न तापयति भास्कर: ।
न तस्य जायते विघ्नो नास्ति तस्य च संज्वर: ॥६२॥

उसे न शस्त्र काटते हैं और न सूर्य ही ताप पहुँचाता है। न तो उसे कोई विघ्न ही होता है और न उसे कोई महान् ज्वर ही होता है ॥६२॥

वेतालाश्च' पिशाचाश्च राक्षसा गणनायका: ।
सर्वे तस्य वशं यान्ति भूतग्रामाश्चतुर्विधा: ॥६३॥

सभी वेताल, पिशाच, राक्षस, गणनायक तथा अण्डज, पिण्डज, स्वेदज, जरायुज नामक चारों प्रकार के प्राणिसमूह, उसके वश में हो जाते हैं ॥६३॥

नित्यं पठति यो भक्त्या कवचं हरनिर्मितम् ।
सोऽहमेव महादेवो महामाया च मातृका ।।६४।।

जो शिवद्वारानिर्मित इस कवच को भक्तिपूर्वक पढ़ता है वह मुझ, महादेव महामाया और मातृकाओं का स्वरूप हो जाता है ।।६४।।

धर्मार्थकाममोक्षाश्च तस्य नित्यं करे स्थिताः ।
अन्यस्य वरदः सोऽर्थैर्नित्यं भवति पण्डितः ।।६५।।

धर्म, अर्थ काम और मोक्ष नामक चारों पुरुषार्थ, नित्य, उसके हस्तगत रहते हैं तथा वह दूसरों के लिए नित्य सम्पत्ति एवं ज्ञान की दृष्टि से वरदायक और पण्डित हो जाता है ।।६५।।

कवित्वं सत्यवादित्वं सततं तस्य जायते ।
वदेच्छ्लोकसहस्राणि भवेच्छ्रुतिधरस्तथा ।।६६।।

उसको कवित्वशक्ति तथा सत्य बोलने का सामर्थ्य, निरन्तर उत्पन्न हो जाता है । वह हजारों श्लोक बोलने लगता है तथा सुनकर ज्ञान को धारण करने में समर्थ हो जाता है ।।६६।।

लिखितं यस्य गेहे तु कवचं भैरव स्थितम् ।
न तस्य दुर्गतिः क्वापि जायते तस्य दूषणम् ।।६७।।
ग्रहाश्च सर्वे तुष्यन्ति वशं गच्छन्ति भूमिपाः ।
यद्राज्ये कवचज्ञोऽस्ति जायन्ते तत्र नेतयः ।।६८।।

हे भैरव ! जिसके घर में यह कवच लिखितरूप से स्थित रहता है । न तो उसकी कहीं दुर्गति होती है और न उसमें कोई दोष ही होता है । सम्पूर्ण-ग्रह उससे सन्तुष्ट हो जाते हैं तथा राजालोग उसके वशीभूत हो जाते हैं । जिस राज्य में इस कवच का जानने वाला रहता है । वहाँ किसी प्रकार की प्राकृतिक आपदा नहीं होती ।।६७-६८।।

सेतुर्देवः शक्तिबीजं पञ्चमोहाय ते नमः ।
वायुर्बलेन चैतायै द्वितीयाष्टाक्षरं त्विदम् ।।६९।।

सेतु (ॐ), देव नमः शक्ति-बीज (प) से पाँचवाँ वर्ण म, हा और य के साथ नमः के योग से वायु (य) एवं बल से अनुसरण किया जाता हुआ यह द्वितीय अष्टाक्षर मन्त्र **ॐ नमः महामायायै** बनता है।।६९।।

सेतुर्देवोऽथ वैष्णव्यै षडक्षरमिदं स्मृतम् ।।७०।।

सेतु (ॐ), देव (नमः) और वैष्णव्यै के योग से **ॐ नमः वैष्णव्यै नमः** यह षडाक्षरमन्त्र बनता है ।।७०।।

एतद् द्वयं तु जिह्वाग्रे सततं यस्य वर्तते ।
तस्य देवी महामाया काये तिष्ठति वै सदा ।।७१।।

ये उपर्युक्त दोनोंमन्त्र, जिस साधक के जिह्वा के अग्रभाग में निरन्तर रहते हैं, देवी महामाया सदैव उसके शरीर में निवास करती हैं ।।७१।।

मन्त्राणां प्रणवः सेतुस्तत्सेतुः प्रणवः स्मृतः ।
क्षरत्यनोङ्कृतः पूर्वं परस्ताच्च विशीर्यते ।।७२।।

प्रणव (ॐ) मन्त्रों का सेतु है । वह उनके लिए पुल एवं बाँध का कार्य करता है । यदि मन्त्र के पूर्व ॐ न लगाया जाय तो वह बह जाता है और यदि अन्त में न लगाया जाय तो वह नष्ट हो जाता है ।।७२।।

नमस्कारो महामन्त्रो देव इत्युच्यते सुरैः ।
द्विजातीनामयं मन्त्रः शूद्राणां सर्वकर्मणि ।।७३।।

देवताओं द्वारा नमस्कार को, महामन्त्र, देव कहा जाता है । यह सभी कर्मों में द्विजवर्णों तथा शूद्रों, सभी द्वारा प्रयोग किया जाने वाला विशेष मन्त्र है ।।७३।।

अकारं चाप्युकारं च मकारं च प्रजापतिः ।
वेदत्रयात्समुद्धृत्य प्रणवं निर्ममे पुरा ।।७४।।

प्रजापति ब्रह्मा ने, प्राचीन काल में अकार, उकार और मकार को ऋग्, यजु साम तीनों वेदों से लेकर प्रणव, **ॐकार** का निर्माण किया ।।७४।।

स उदात्तो द्विजातीनां राज्ञां स्यादनुदात्तकः ।
प्रचितश्चोरुजातानां मनसापि तथा स्मरेत् ।।७५।।

वह ब्राह्मणों द्वारा उदात्त, क्षत्रियों द्वारा अनुदात्त, तथा उरु से उत्पन्न वैश्यों द्वारा प्रचित (स्वरित) क्रम से उच्चारण किया जाना चाहिये । यदि मानसिकरूप से भी स्मरण करना हो तो भी उसे इसी रूप में स्मरण करे ।।७५।।

चतुर्दशस्वरो योऽसौ शेष औकारसंज्ञकः ।
स चानुस्वारचन्द्राभ्यां शूद्राणां सेतुरुच्यते ।।७६।।

चौदहवाँ स्वर औ, जो स्वरों में अन्तिम स्वर है, वही अनुस्वार तथा चन्द्राकार के सहित (औं) शूद्रों के लिए सेतु (प्रणव) कहा जाता है ।।७६।।

निःसेतु च यथा तोयं क्षणान्निम्नं प्रसर्पति ।
मन्त्रस्तथैव निःसेतुः क्षणात् क्षरति यज्वनाम् ।।७७।।

बिना बाँध का जल जैसे क्षणभर में नीचे बह जाता है । यज्ञकर्ताओं का बिना सेतु के प्रयुक्तमन्त्र भी क्षणभर में प्रभावहीन हो जाता है ।।७७।।

तस्मात् सर्वत्र मन्त्रेषु चतुर्वर्णाद्विजातयः ।
पार्श्वयोः सेतुमादाय जपकर्मसमारभेत् ।।७८।।

अतः चारों वर्णों वालों, विशेषतः द्विजातियों को, सभी मन्त्रों में अगल-बगल सेतु का सहयोग ले, जप-कर्म आरम्भ करना चाहिये ।।७८।।

शूद्राणामादिसेतुर्वा द्विःसेतुर्वा यथेच्छतः ।
द्विःसेतवः समाख्याताः सर्वदैव द्विजातयः ।।७९।।

द्विजातियों को सर्वदा ही दो सेतुओं का प्रयोग करने वाला कहा गया है। शूद्र केवल आदि सेतु का प्रयोग करे या आदि-अन्त दोनों ही सेतुओं का प्रयोग इच्छानुसार करे ।।७१।।

।। और्व उवाच ।।

एतत् ते सर्वमाख्यातं कवचं त्र्यम्बकोदितम् ।
अभेद्यं कवचं तत् तु कवचाष्टकमुत्तमम् ।।८०।।

और्व बोले– त्र्यम्बकशिव द्वारा कहा गया समस्त कवच मैंने तुम से कह दिया, जो आठ कवचों से युक्त एक उत्तम और अभेद्य कवच है ।।८०।।

महामायामन्त्रकल्पं कवचं मन्त्रसंयुतम् ।
षडक्षरसमायुक्तं त्रिषुलोकेषुदुर्लभम् ।।८१।।

मन्त्रों से युक्त यह महामायामन्त्रकल्प सम्बन्धी कवच जो षडक्षर से युक्त है, तीनों लोको में दुर्लभ है ।।८१।।

एतत् त्वं नृपशार्दूल नित्यभक्तियुतःपठन् ।
जपन् मन्त्रं च वैष्णव्याः सर्वसिद्धिमवाप्स्यसि ।।८२।।

।। इति श्रीकालिकापुराणे महामायाकल्पे कवचवर्णननाम षट्पञ्चाशोऽध्यायः ।।५६।।

हे राजाओं में सिंह के समान श्रेष्ठ ! तुम भक्ति से युक्त हो, इस कवच को नित्य पढ़ते हुए तथा वैष्णवी के मन्त्र को जपते हुये, सभी सिद्धियों को प्राप्त करोगे ।।८२।।

।। श्रीकालिकापुराण के महामायाकल्प का कवचवर्णन नामक छप्पनवाँ अध्याय सम्पूर्ण हुआ ।।५६।।



सप्तपञ्चाशोऽध्यायः

महामायाकल्पे महामाया-पूजाविधानम्

।। मार्कण्डेय उवाच ।।

श्रुत्वेमं सगरो राजा संवादं भैरवेण वै ।
वेतालेनापि भर्गस्य पुनरौर्व्वमपृच्छत ।।१।।

मार्कण्डेय बोले— राजा सगर ने भगवान शिव के भैरव एवं वेताल के साथ हुए, इस (पूर्ववर्णित) संवाद को सुनकर और्वमुनि से पुनः (आगे) पूछा ।।१।।

।। सगर उवाच ।।

मन्त्रं कलेवरगतं साङ्गं प्रोक्तं त्वया द्विज ।
अङ्गमन्त्राणि मे देव्याः कथ्यन्तां भो द्विजोत्तम ।।२।।

सगर बोले–हे द्विज ! आपके द्वारा महामाया के शरीर में स्थित (मुख्य) मन्त्र, अपने अंगो सहित बताया गया। हे द्विजों में श्रेष्ठ ! अब देवी के अङ्गभूतमन्त्रों को मुझसे कहिये।।२।।

तथा मन्त्राणि सर्वाणि पूजास्थानानि सर्वशः ।
तथैवोत्तरमन्त्राणि कवचानि पृथक् पृथक् ।।३।।

साथ ही (देवी सम्बन्धी) सभी मन्त्रों एवं पूजास्थानों के विषय में तथा इनके उत्तर (अतिरिक्त) मन्त्रों और कवचों को भी अलग-अलग बताइये ।।३।।

कामाख्यायाश्च माहात्म्यं सरहस्यं समन्त्रकम् ।
यथा शशंस भगवान् महादेव उमापतिः ।
वेतालभैरवाभ्यां तत् समाचक्ष्व सविस्तरात् ।।४।।

भगवती उमा के स्वामी, भगवान् महादेव शिव ने वेताल और भैरव से रहस्य तथा मन्त्रों से युक्त कामाख्या देवी का जो माहात्म्य सुनाया था। वही आप मुझसे विस्तारपूर्वक कहिए ।।४।।

शृण्वतो न हि मे तृप्तिर्जायते महदद्भुतम् ।
भवता कथ्यमानं हि परं कौतूहलं मम ।।५।।

आपके द्वारा कहे जाते हुए इन महान् अद्भुत वृत्तान्तों को सुनकर मुझे तृप्ति नहीं हो रही है। क्योंकि इस सम्बन्ध में मेरे मन में महान् कौतूहल है ।।५।।

।। और्व उवाच ।।

श्रृणु त्वं राजशार्दूल यत्पुत्राभ्यामुमापतिः ।
उवाच महदाख्यानं तन्मे निगदतोऽधुना ।।६।।

और्व बोले– हे राजाओं में सिंह के समान श्रेष्ठ ! पूर्व में उमापति शिव ने जो महान् आख्यान अपने पुत्रों से कहा था, उसे अब आप मेरे द्वारा कहा जाता हुआ सुनिये ।।६।।

एतद्रहस्यं परमं पवित्रं पापनाशनम् ।।७।।
परं स्वस्त्ययनं पुंसां गर्भे पुंसवनं स्मृतम् ।
कल्याणकारकं भद्रं चतुर्वर्गफलप्रदम् ।।८।।

यह श्रेष्ठ आख्यान, रहस्यमय, पवित्र, पापनाशक, पुरुषों के लिए अत्यन्त कल्याणकारी, गर्भ में पुंसवनकारक, मंगलमय, चारों पुरुषार्थों को देने वाला तथा हितकारक है।।७-८।।

शठाय चलचित्ताय नास्तिकायाजितात्मने ।
देवद्विजगुरूणां च मिथ्यानिर्बन्धकारिणे ।।९।।
न पापायाभिशप्ताय खञ्जकाणादिरोगिणे ।
न कथ्यं न च वा देयं श्रद्धाविरहिताय च ।।१०।।

इसे दुष्ट, चञ्चलचित्त, नास्तिक, जिसने अपने आप को न जीत लिया हो, जो देवता-ब्राह्मण और गुरु के प्रति झूठा आरोप लगाने वाला हो, पापी, अभिशप्त-लूले, काने आदि रोगों से ग्रस्त तथा श्रद्धारहितपुरुष से इसका कथन नहीं करना चाहिए और न उसे देना ही चाहिये ।।९-१०।।

महामायामन्त्रकल्पं प्रोक्त्वा ताभ्यामुमापतिः ।
वेतालभैरवाभ्यां तु पुनरेवाभ्यभाषत ।।११।।

महामायामन्त्र-कल्प सुनाने के पश्चात् उमापति भगवान् शिव ने उन दोनों वेताल और भैरव से पुनः आगे कहा ।।११।।

।। भगवानुवाच ।।

अङ्गमन्त्रं प्रवक्ष्यामि प्रोक्तवाँस्तन्त्रमुत्तमम् ।
तदेव प्रथमं विद्धि सर्वपूजासु सङ्गतम् ।।१२।।

श्रीभगवान् बोले– मैंने तुम दोनों से उत्तम (मुख्य) तन्त्र कह दिया है । अब मैं उनके अङ्गभूतमंन्त्रों को कहता हूँ। तुम दोनों सभी प्रकार की पूजाओं के उपयुक्त, उसको पहले जानो ।।१२।।

आचान्तः शुचितां प्राप्तः सुस्नातो देवपूजने ।
पूजावेद्या बहिःस्थित्वा चतुर्हस्तान्तरे धिया ।।१३।।

गृहे वा द्वारदेशस्थः प्रणम्य शिरसा गुरुम् ।
प्रणमेदिष्टदेवं स्वं दिक्पालानपि चेतसा ।।१४।

साधक, देवपूजन के क्रम में, भली-भाँति स्नान करके, पवित्रीकरण, आचमन आदि से शुचिता को प्राप्त कर, बुद्धिपूर्वक घर में या देवालय के द्वार-देश पर, पूजावेदी से कम से कम चारहाथ की दूरी रखते हुए, गुरु एवं अपने इष्टदेव को सिर झुकाकर प्रणाम करे तथा मानसिकरूप से सभी दिग्पालों को भी प्रणाम करे।।१३-१४।।

यत् पूर्वमर्जितं पापं तद्दिनेऽन्यदिनेऽपि वा ।
प्रायश्चित्तैर्नापमुक्तं तच्च पापं स्मरेद्धिया ।
तत्पापस्यापनोदाय मन्त्रद्वयमुदीरयेत् ।।१५।।

जो पाप किया गया हो और प्रायश्चितों से दूर न किया जा सका हो, उसी दिन या किसी अन्य दिन पूजा के पूर्व, उस पाप का बुद्धिपूर्वक स्मरण करे तथा उसे दूर करने के लिए अधोलिखित दो मन्त्रों **देवि....साक्षिणः।** को बोले ।।१५।।

देवि त्वत् प्राकृतं चित्तं पापाक्रान्तमभून्मम ।
तन्निःसारय चित्तान्मे पापं हूं फट् च ते नमः ।।१६।।
सूर्यः सोमो यमः कालो महाभूतानि पञ्च वै ।
एते शुभाशुभस्यैव कर्मणो नव साक्षिणः ।।१७।।

मन्त्रार्थ— हे देवि ! सूर्य, चन्द्रमा, यमराज, काल, आकाश, वायु, अग्नि, जल और पृथिवी नामक पञ्चमहाभूत ये नव, प्राणीमात्र के शुभ और अशुभ कर्मों के साक्षी हैं। मेरा चित्त जो स्वाभाविकरूप से तुम्हारे में संयुक्त है किन्तु वह पाप से आक्रान्त हो गया है। आप उस पाप को मेरे चित्त से निकालें। इसीलिए **हूँ फट्** कहता हुआ, मैं आपको नमस्कार करता हूँ ।।१६-१७।।

ततः पुनर्हूंफडिति पार्श्वमूर्ध्वमधस्तथा ।
आत्मानं क्रोधदृष्ट्याथ निरीक्ष्य सुमना भवेत् ।।१८।।

साधक तब पुनः **हूँ फट्** कहते हुए अपने को अगल-बगल, ऊपर-नीचे क्रोधपूर्णदृष्टि से देखता हुआ स्वस्थचित्त हो ।।१८।।

एवं कृते प्रथमतः पापोत्सारणकर्मणि ।
यत् स्याद् दृढतरं पापं तद् दूरे चावतिष्ठते ।।१९।।
अतीते पूजने स्थानं स्वं प्रयाति पुनश्च यत् ।
यत् स्यादल्पतरं पापं तन्नाशमुपगच्छति ।।२०।।

ऐसा करने से पाप-उत्सारणकर्म में सर्वप्रथम जो बलवान् पाप होता है, वह दूर ही रहता है तथा पूजन-सम्पन्न हो जाने पर वह अपने स्थान पर पुनः आ जाता है। किन्तु जो अल्पपाप होता है। वह नष्ट हो जाता है ।।१९-२०।।

ॐ अः फडितिमन्त्रेण पूजावेदीं ततो विशेत् ।
पूजने त्यक्तपापस्य काममिष्टं क्षणाद् भवेत् ।।२१।।

पूजन में पापमुक्त साधक क्षणभर में ही अपनी कामनाओं को प्राप्त हो जाता है। इसलिए पाप-उत्सारण के पश्चात् **ॐ अः फट्** मन्त्र बोलता हुआ, वह पूजास्थल में प्रवेश करे ॥२१॥

नाराचमुद्रया दृष्ट्वा समया सम्प्रलोकयेत् ।
पुष्पनैवेद्यगन्धादि ह्रीं हूँ फडिति मन्त्रवैः ।।२२।।

तब नाराचमुद्रा से, **ह्रीं हूँ फट्** मन्त्र से पुष्प, गन्ध, नैवेद्य आदि उपचारों का भलीभाँति अवलोकन करे ॥२२॥

यदात्मनानवज्ञातं सम्यक् पुष्पादिदूषणम् ।
अस्पृश्यस्पर्शनं वापि यदन्यायार्जितं च वा ।।२३।।
तथा निर्माल्यसंसृष्टं कीटाद्यारोहणं च यत् ।
तत्सर्वं नाशमायाति नैवेद्याद्यवलोकनात् ।।२४।।

पुष्पादि के जिन दोषों को साधक अपने आप नहीं जानता, जैसे उनका न चुनने योग्यजनों द्वारा चुना जाना, अन्याय से अर्जित किया जाना, देवता से उतारे गये पदार्थों से मिला होना, कीड़े-मकोड़े का उस पर चढ़ना, आदि वे सब दोष नैवैद्यादि के उपर्युक्तरीति से अवलोकन से नष्ट हो जाते हैं ॥२३-२४॥

ततो रमितिमन्त्रेण शिखां दीपस्य संस्पृशेत् ।
स तस्य सुभगो दीपो भवेत् स्पर्शनमात्रतः ।।२५।।

तब **'रं'** मन्त्र से दीपक की लौ को स्पर्श करे। उस साधक का दीपक इस प्रकार के स्पर्श-मात्र से सुन्दर हो जाता है ॥२५॥

पतङ्गकीटकेशादि - दाहात् क्रव्यादसंहतः ।
वसामज्जास्थिसम्पूतिर्यज्ञादावुपयोजनम् ।।२६।।
अज्ञातरूपं तत्सर्वं दोषं स्पर्शाद् विनाशयेत् ।।२७।।

इस प्रकार के स्पर्श से, पतङ्ग, कीट, केश आदि के जलाने से, हिंसक जन्तुओं के स्पर्श से, यज्ञ में (बलिदान) में वसा, मज्जा, अस्थि के दुर्गन्ध से, अनजाने में दीपक में जो दोष उत्पन्न हो जाते हैं, उन सभी का शमन हो जाता है॥२६-२७॥

नारसिंहेन मन्त्रेण देवतीर्थेन संस्पृशेत् ।
पानीयं घटमध्यस्थं वीक्षन्नभ्युक्ष्य याजकः ।।२८।।

नृसिंह का मन्त्र पढ़ते हुए याजक, घट में स्थित जल को देखकर और अपने पर छिड़कते हुए, देवतीर्थ, अंगुलियों के अग्रभाग से, उसका स्पर्श करे ॥२८॥

वामेन पाणिना धृत्वा वामपार्श्वे स्थितं तदा ।
पात्रमाधारमन्त्रेण संस्कुर्वन् संस्पृशेज्जलम् ।।२९।।

उस समय अपने बायें भाग में रखे पात्र को बायें हाथ में लेकर, आधारमन्त्र से उसका संस्कार करता हुआ, जल का स्पर्श करे ।।२९।।

यज्ञदानादपेयादि संसृष्टिरिह सङ्गता ।
यदन्यद् दूषणं पात्रे तोये वाज्ञानतो भवेत् ।।३०।।
जलाशयं शवस्पर्शाज्जलं स्नानाच्च सङ्गतम् ।
दूषणानि विनश्यन्ति तानि वै देवपूजने ।।३१।।

यज्ञदानादि के संयोग से जल में न पीने योग्य हो जाने जैसे, दोष आ जाते हैं या अन्य भी पात्र या जल में स्थितदोष, जाने-अनजाने हो जाते हैं । शवस्पर्श, स्नान आदि के कारण, जलाशय और जल में जो दोष उत्पन्न हो जाते हैं । वे सभी देवपूजन में उपर्युक्तक्रिया से नष्ट हो जाते हैं ।।३०-३१।।

।। नारसिंहमन्त्र ।।

प्रजापतिसुतो हान्तप्रान्तः स्वरसमन्वितः ।
चन्द्रार्धबिन्दुसहितो मन्त्रोऽयं नारसिंहकः ।।३२।।

प्रजापति के पुत्र अग्नि के बीज मन्त्र (र) के साथ अन्तिम स्वर औं तथा ह के बाद आने वाला व्यजन क्ष, जो अर्धचन्द्र तथा बिन्दु से युक्त हो, नारसिंहमन्त्र **(क्ष्रौं)** बनता है ।।३२।।

।। आधारमन्त्र ।।

स्वसंज्ञाद्यक्षरं बिन्दुचन्द्रार्धपरियोजितम् ।
आधारमन्त्रं जानीयात् साधकः कार्यसिद्धये ।।३३।।

साधक को कार्यसिद्धि प्रदान करने वाला आधारमन्त्र, आदि स्वर अक्षर (अ), बिन्दु और अर्धचन्द्र से युक्त होकर बना **(अँ)** जानना चाहिये ।।३३।।

ततः आधारमन्त्रेण पाणिभ्यामासनं स्वकम् ।
आदाय विनिधायाशु पुनः संस्पृश्य पाणिना ।
आत्ममन्त्रेणोपविशेत् तदा तस्मिन् वरासने ।।३४।।

साधक तब (पूर्वोक्त जल-दीप आदि की शुद्धि के पश्चात्) आधारमन्त्र पढ़ता हुआ अपने आसन को अपने हाथ में लेकर, उसे बिछा कर, शीघ्र पुनः हाथ से स्पर्श करके **आत्ममन्त्र** का उच्चारण करता हुआ, उस समय, उस श्रेष्ठ आसन पर बैठे ।।३४।।

दुःशिल्पिरचितत्वादि यद्वान्यासनदूषणम् ।
अज्ञातं विलयं याति उपवेशात् समन्त्रकात् ।।३५।।

अनुचित शिल्पी द्वारा बनाये जाने सम्बन्धी या अन्य भी आसन सम्बन्धी न जाने-जानेवाले दोष, मन्त्रोच्चारपूर्वक आसन पर बैठने से, नष्ट हो जाते हैं ॥३५॥

आत्ममन्त्र

आहूय स्वाक्षरं पूर्वं सोमसामिसमन्वितम् ॥३६॥
सबिन्दुकं विजानीयादात्ममन्त्रं तु साधकः ।

साधक को पहले स्वाक्षर आ का अर्धचन्द्र और बिन्दुसहित उच्चारण कर **(आँ)** को **आत्ममन्त्र** जानना चाहिये ॥३६॥

॥ मातृकान्यास ॥

ततस्तु मातृकान्यासं नादबिन्दुसमन्वितम् ।
कुर्यात् तु मातृकामन्त्रैः स्वशरीरे विचक्षणः ॥३७॥

तब बुद्धिमान् साधक, नाद और बिन्दु से युक्त मातृकामन्त्रों द्वारा अपने शरीर में **मातृकान्यास** करे ॥३७॥

कल्पेषु च यदज्ञातं मन्त्रोच्चारणकर्मणि ।
यद् दुष्टं वा तथा स्पृष्टं मात्राभ्रष्टादिदूषणम् ॥३८॥
तन्न्यस्ता मातृकामन्त्रा नाशयन्ति सदैव हि ॥३९॥

मन्त्रोच्चारणकर्म की पद्धतियों में भी न दर्शाये जाने वाले दोष, दुष्टपदार्थों के स्पर्श तथा मात्रादिगत मन्त्रदोषों को शरीर में न्यस्त मातृकामन्त्र, सदैव नष्ट कर देते हैं॥३८-३९॥

व्यञ्जनानि च सर्वाणि तथा विष्ण्वादयः स्वराः ।
सर्वे ते मातृकामन्त्राश्चन्द्रबिन्दुविभूषणाः ॥४०॥

सभी व्यंजन तथा विष्णु (अ) आदि सभी स्वर, वे सभी वर्ण, चन्द्र और बिन्दु से सुशोभित हो, मातृकामन्त्र बनते हैं ॥४०॥

सर्वं युगान्तवन्द्येषु न्यस्तेषु न्यूनपूरणम् ।
मन्त्रे कल्पे च कुर्वन्ति विन्यस्ता मातृकाः स्वयम् ॥४१॥

शरीर के अङ्गों पर आगन्तुवअ (सदैव वंदित) इन सबके न्यस्त किये जाने से स्वयं मातृकाएँ, मन्त्र एवं पद्धति की कमी की पूर्ति कर देती हैं॥४१॥

एकमात्रो भवेद्ध्रस्वो द्विमात्रो दीर्घ उच्यते ।
प्लुतस्त्रिमात्रो विज्ञेयो वर्णा एते व्यवस्थिताः ॥४२॥

एकमात्रा वाले स्वर को ह्रस्व, दोमात्राओं वाले स्वर को दीर्घ तथा तीन मात्राओं वाले स्वरवर्णों प्लुत जानना चाहिये। इसी क्रम से स्वरवर्ण व्यवस्थित किये गये हैं ॥४२॥

सर्वेषामेव वर्णानां मात्रादेव्यस्तु मातृकाः ।
शिवदूतीप्रभृतयस्तन्न्यासास्तत्तनुस्थिताः ॥४३॥

सभी वर्णों की शिवदूति आदि मात्रादेवियाँ, मातृकाएँ होती हैं। उन मातृकाओं के न्यास का अर्थ, अपने शरीर में उनसे सम्बद्ध देवियों को स्थापित करना है।।४३।।

पूरयन्ति च तान् न्यूनांश्चतुर्वर्गं तथाचिरात् ।
ददत्येव सदा रक्षां कुर्वन्ति सुरपूजने ।।४४।।

देवपूजन में ये उनकी कमियों को दूर करती हैं। ये साधक की सदैव रक्षा करती हैं तथा अर्थ-धर्म आदि चारों पुरुषार्थों को उसे शीघ्र प्रदान करती हैं ।।४४।।

चतुर्वर्गप्रदश्चायं सर्वकामफलप्रदः ।
सर्वदामातृकान्यासस्तुष्टिपुष्टिप्रदायकः ।।४५।।

यह मातृकान्यास, सदैव सभी कामनाओं का फलप्रदान करने वाला, चारों पुरुषार्थप्रदानकर्ता तथा तुष्टि और पुष्टि प्रदान करने वाला है ।।४५।।

यः कुर्याद् मातृकान्यासं विनापि सुरपूजनात् ।
तस्माद् बिभेति सततं भूतग्रामश्चतुर्विधः ।।४६।।

बिना देवपूजन किये भी जो साधक, नित्य मातृकान्यास करता है। उससे चारों प्रकार के प्राणि या भूतसमूह, निरन्तर भय खाते हैं ।।४६।।

तं द्रष्टुमपि देवाश्च स्पृहयन्ति महौजसम् ।
स सर्वं च वशं कुर्याद् न च याति पराभवम् ।।४७।।

उस महान ओजस्वीपुरुष के दर्शन की देवगण भी लालसा करते हैं। वह सबको अपने अधीन कर लेता है तथा कभी भी पराभव को प्राप्त नहीं होता ।।४७।।

।। करशोधन ।।

कुसुमं विष्णुमन्त्रेण अङ्गुल्यग्रेण साधकः ।
विमर्दनार्थं गृह्णीयात् करशोधनकर्मणि ।।४८।।

करशोधनकर्म में, सर्वप्रथम साधक को विष्णुमन्त्र का उच्चारण करते हुए अंगुलियों के अग्रभाग से, पुष्प कौ मसलने के लिए ग्रहण करना चाहिये ।।४८।।

।। वैष्णवमन्त्र ।।

उपान्तः सामि चन्द्रेण रंजितः शून्यसंयुतः ।
रुद्रान्तोपरिसंसृष्टो मन्त्रोऽयं वैष्णवो मतः ।।४९।।

शून्य (विन्दु) से युक्त अर्धचन्द्र से सुशोभित उपान्त रुद्रान्त के ऊपर संसृष्ट हो जो मन्त्र बनता है वह विष्णु का मन्त्र कहा गया है।।४९।।

प्रासादेन तु मन्त्रेण अङ्गुल्यग्रेण साधकः ।
गृहीत्वा च ततः कुर्यात् कराभ्यां पुष्पमर्दनम् ।।५०।।
निर्मथेत् कामबीजेन जिघ्रेद् ब्राह्मेण तत् पुनः ।
प्रासादेन परित्यागो दिश्यैशान्यां विशेषतः ।।५१।।

साधक को चाहिये कि वह **प्रासादमन्त्र** का उच्चारण करता हुआ अंगुली के अग्रभाग से पुष्पग्रहण कर, दोनों हाथों से उसका मर्दन करे। ऐसा करते समय वह काम-बीज का उच्चारण करते हुए उसे मथे (रगड़े), ब्रह्मबीज से सूँघे तथा विशेषकर ईशानकोण में प्रासादबीज से उसका परित्याग कर दे ॥५०-५१॥

एवं कृते तु करयोर्विशुद्धिरतुला भवेत्।
जलौकागूढपादादिस्पर्शाच्छुद्धिर्विशोधनात् ॥५२॥
दुर्गन्ध्युच्छिष्टसंस्पर्शाद् दूषणं करयोस्तु यत्।
अज्ञातरूपं तत्सर्वं नाशयेत् सुविधानतः ॥५३॥

ऐसा करने से दोनों हाथों की, जोंक, सर्पादि के स्पर्शदोष को दूर करने वाली अतुलनीय शुद्धि हो जाती है। अनजाने में दुर्गन्धि और जूठे आदि के स्पर्श से हाथों में जो दोष, उत्पन्न होते हैं। उनका भी इस विधान से नाश हो जाता है॥५२-५३॥

अङ्गुल्यग्राणि शुद्धानि पुष्पाणां ग्रहणाद् भवेत्।
तलद्वयं मर्दनात् तु विशुद्धमभिजायते ॥५४॥
निर्मन्थनात् पाणिपृष्ठं घ्राणान्नासाग्रमुत्तमम्।
तीर्थानि च समायान्ति नासिकायां करं प्रति।
तस्माद् यत्नेन कार्याणि कर्माण्येतानि भैरव ॥५५॥

हे भैरव! इस विधि में पुष्पों के ग्रहण से, अङ्गुलियों के अग्रभाग, उनके मर्दन से दोनों हथेलियाँ, मन्थन से हाथों के पिछले भाग, सूंघने से नासिका का अगलाभाग, शुद्ध हो जाता है तथा नाक और हाथों में आकर तीर्थ, वश जाते हैं। इस लिए करशोधन सम्बन्धी इन कर्मों को प्रयत्नपूर्वक करना चाहिये ॥५४-५५॥

॥ प्रासादमन्त्र ॥

प्रान्तादिर्वासुदेवेन वर्णेनापि च संहितः।
शम्भुचूडाबिन्दुयुक्तः प्रासादश्च स उच्यते ॥५६॥

अन्तिम से पहला वर्ण ह जो वासुदेव औ के साथ हो और शम्भू चूड (अर्धचन्द्र) और बिन्दु से युक्त होकर प्रासाद बीज **हौं** कहा जाता है ॥५६॥

कामबीजं तु विज्ञेयं वासुदेवेन्दुबिन्दुभिः।
व्यञ्जनं चाद्यदन्तं च प्रान्तदन्त्या तु पूर्वकम् ॥५७॥

आदि व्यञ्जन क, अन्तिम दन्त्य से पहले वाले दन्त **ल**, चन्द्र और बिन्दु सहित वासुदेव से युक्त होकर कामबीज **क्लीं** जानना चाहिये ॥५७॥

॥ ब्रह्मबीज ॥

आद्यदन्त्यद्वयं पश्चाद् व्यञ्जनं प्रणवोत्तरम्।
ब्रह्मबीजमिदं प्रोक्तं सर्वपापप्रणाशनम् ॥५८॥

प्रणव के पश्चात् प्रारम्भ के दो दन्त्यों को सभी पापों को नाश करने वाला **ब्रह्मबीज** कहा गया हैं ॥५८॥

प्रणवं दीर्घमुच्चार्य प्रथमं मुखशुद्धये ।
वासुदेवस्य बीजेन प्राणायामं समाचरेत् ॥५९॥

सर्वप्रथम मुखशुद्धि के लिए दीर्घप्रणव का उच्चारण करना चाहिए। तब वासुदेवबीज **क्लीं** से प्राणायाम करे॥५९॥

यस्य देवस्य यद्रूपं तथा भूषणवाहनम् ।
तदेव पूजने तस्य चिन्तयेत् पूरकादिभिः ॥६०॥

जिस देवता का जैसा रूप, आभूषण और वाहन होता है। उसके पूजन के समय, प्राणायाम की पूरकादि अवस्थाओं में उसी का ध्यान करना चाहिये ॥६०॥

॥ वासुदेवबीज ॥

वैष्णवीतन्त्रमन्त्रस्य कण्ठाद्यं यत्पुरःसरम् ।
तद् बीजं वासुदेवस्य पूर्णचन्द्रनिभं सदा ॥६१॥

वैष्णवीतन्त्र-मन्त्र का जो पहला कण्ठवर्ण है। वह जिसके पहले स्थित हो वह वर्ण जो सदा पूर्णचन्द्र के समान है। वासुदेव का बीज बताया जाता है॥६१॥

गङ्गावतारबीजेन प्रथमं धेनुमुद्रया ।
अमृतीकरणं कुर्यादर्घपात्राहिते जले ॥६२॥

तब पहले अर्घपात्र में रखे हुए जल में, गंगावतारबीज का उच्चारण करते हुए धेनुमुद्राद्वारा साधक, अमृतीकरण करे ॥६२॥

शशिखण्डयुतः कण्ठ्यः पञ्चमीबलबीजकः ।
गङ्गावतारमन्त्रोऽयं सर्वपापप्रणाशकः ॥६३॥
मात्राद्वययुतो बिष्णुर्बलबीजमुदाहृतम् ॥६४॥

बलबीज और चन्द्रखण्ड से युक्त पाँचवाँ कण्ठ्यवर्ण घ, **गंगावतार मन्त्र** कहा गया है जो सभी पापों का नाश करने वाला है। दो मात्राओं से युक्त अर्थात् दीर्घ विष्णु इ को **बलबीज ई** कहा गया है ॥६३-६४॥

अमृतीकरणे वृत्ते तोयं यद् दीयतेऽमृतम् ।
भूत्वा प्रयाति देवस्य प्रीतये सुरपूजने ॥६५॥

देवपूजन में अमृतीकरण करके जो जल दिया जाता है। वह अमृत होकर देवता की प्रसन्नता को पहुँचता है ॥६५॥

गङ्गापि स्वयमायाति पूजापात्रजलं प्रति ।
अमृतीकरणं कुर्याद् धर्मकामार्थसिद्धये ॥६६॥

इस क्रिया से पूजा-पात्र में गङ्गा नदी की शक्ति भी स्वयं आ जाती है अतः धर्म-अर्थ-काम की सिद्धि के लिए अमृतीकरण की क्रिया करनी चाहिये ॥६६॥

स्वस्तिकं गोमुखं पद्ममर्धस्वस्तिकमेव च ।
पर्यङ्कमासनं शस्तम् अभीष्टसुरपूजने ।।६७।।

देवपूजनकर्म में स्वस्तिक, गोमुख, पद्म, अर्धस्वस्तिक, पर्यङ्क नामक आसन अभीष्ट (प्रशस्त) बताये गये हैं ।।६७।।

पादयन्त्रमिदं , प्रोक्तं सर्वमन्त्रोत्तमोत्तमम् ।
तद् गृह्णीयाद् वराहस्य बीजेन प्रथमं बुधः ।।६८।।

यह (आसन) पादयन्त्र कहा जाता है । जो सभी मन्त्रों (के साधन) में उत्तम तथा मन्त्रसाधन का आधार है । बुध (विद्वान् साधक) को पहले, वराहबीज से पूजा करके इसे ग्रहण करना चाहिये ।।६८।।

।। वराहबीज ।।

मायादिरग्निबीजस्य चतुर्थः समव्याप्तिकः ।
षष्ठस्वरोपरिचरो वाराहं बीजमुच्यते ।।६९।।

माया क्ष के पहले का वर्ण ह, अग्निनी बीज रे से चौथ वर्ण स्, छठे स्वर ऊ से युक्त हो वाराह बीज हलं कलाता है।।६९।।

वाराहबीजसंशुद्धं मन्त्रपादद्वये कृतम् ।
पश्यन्नभीष्टदेवं तु पाददोषं न पश्यति ।।७०।।

दोनों पैरों को वाराहबीज से शुद्ध किया हुआ साधक, अपने इष्टदेव का दर्शन करते समय, पैर देखने के दोष को प्राप्त नहीं करता हैं ।।७०।।

न युक्तमन्यथा पाददर्शनं सुरपूजने ।
मन्त्रेण लभतेऽभीष्टांस्तस्मान्मन्त्रपरो भवेत् ।।७१।।

अन्यथा देव पूजनकर्म में पैर का देखना उचित नहीं है । मन्त्र के प्रयोग के बाद वह उपासना करने से अभीष्टसिद्धि को प्राप्त करता है । इसीलिए साधक को मन्त्र- परायण होना चाहिये ।।७१।।

पाणिकच्छपिकां कुर्यात् कूर्ममन्त्रेण साधकः ।
तत्र संस्कृतपुष्पेण पूजयेदात्मनो वपुः ।
पूजिते तेन पुष्पेण देवत्वं स्वस्य जायते ।।७२।।

तब साधक, कूर्ममन्त्र के उच्चारणपूर्वक पाणिकच्छप (कूर्म मुद्रा) बनाये और शुद्ध किये गये पुष्प से अपने शरीर का पूजन करे । उस शुद्ध किये पुष्प से पूजा किये जाने से साधक में स्वयं ही देवत्व उत्पन्न हो जाता है ।।७२।।

।। कूर्मबीज ।।

द्वितीयं वैष्णवीतन्त्रं बीजं बिन्द्विन्दुसंयुतम् ।
षष्ठस्वरोपरिचरं कूर्मबीजं प्रकीर्तितम् ।।७३।।

वैष्णवीतन्त्र का द्वितीय बीजमन्त्र 'क' चन्द्र और बिन्दु से युक्त तथा छठे स्वर ऊ के ऊपर स्थित होने पर कूँ यह कूर्मबीज कहा गया है ।।७३।।

दहनप्लवनस्यादौ रन्ध्रस्य दशमस्य तु ।
भेदनं साधकः कुर्यान्मन्त्रेण प्रणवेन तु ।।७४।।

प्रारम्भ में दहन, प्लवन आदि करने के पश्चात् ॐ कार का उच्चारण करते हुए साधक को दसवें द्वार (ब्रह्मरन्ध्र), का भेदन करना चाहिये ।।७४।।

बीजेन वासुदेवस्य आकाशे विनिधापयेत् ।
प्राणेन सहितं बीजं तत्पूर्वं प्रतिपादितम् ।।७५।।

पहले बताये गये वासुदेवबीज को प्राणवायु के साथ आकाश (ब्रह्मरन्ध्र) में स्थापित करे।।७५।।

अज्ञाता प्रयतानां तु मण्डलस्थानमार्जनात् ।
द्रव्याणां विप्रकारः स्यात् संसर्गाणां तथैव च ।।७६।।

मण्डलस्थान के मार्जन से अज्ञातरूप से किये गये । पूजोपचारों के दोषों तथा संसर्गगत दोषों का शमन हो जाता है ।।७६।।

मधुकैटभयोर्मेदःसङ्घातैर्दृढतां गता ।
मेदिनी सर्वदाशुद्धा सुरपूजासु सर्वतः ।।७७।।

यह पृथिवी मधुकैटभ नामक दैत्यों के मेदे से दृढ़ की गई है, इसीलिए यह देवपूजा हेतु सर्वथा, सदा अशुद्ध है ।।७७।।

अद्यापि सर्वे त्रिदशा न स्पृशन्ति पदा क्षितिम् ।
न च स्वीयतनुच्छायां योजयन्ति च भूतले ।।७८।।

इसीलिए आज भी देवता न तो अपने पैरों से पृथिवी का स्पर्श करते हैं और न पृथिवी से अपने शरीर की छाया को ही लगने देते हैं ।।७८।।

तस्य दोषस्य मोक्षार्थं मन्त्रराजं लिखेत् क्षितौ ।।७९।।
प्रोक्षणाद् वीक्षणाद् वापि शुद्धा भवति मेदिनी ।
वीक्षणं धर्मबीजेन स्थण्डिलस्य समाचरेत् ।।८०।।

उस दोष से मुक्ति के लिए पृथिवी पर मन्त्रराज लिखना चाहिये । प्रोक्षण (जल के छिड़काव), वीक्षण (विशेष दृष्टि से देखने) से भी पृथिवी शुद्ध हो जाती है। इसमें स्थण्डिल (वेदी) का वीक्षणकार्य धर्मबीज का उच्चारण करते हुए करना चाहिये।।७९-८०।।

।। धर्मबीज ।।

दान्तो बलेन संयुक्तश्चूडाबिन्दुसमन्वितः ।
धर्मबीजमिति प्रोक्तं धर्मकामार्थसाधनम् ।।८१।।

बलबीज और चन्द्रबिन्दु से युक्त दान्त (ध), धर्म, अर्थ एवं काम का साधन करने वाला **धर्मबीज** कहा गया है ॥८१॥

।। पात्रप्रतिपत्ति ।।

आदानं धारणं चैव तथा संस्थानपूजने ।
पूरणं सलिलेनैव निःक्षेपो गन्धपुष्पयोः ।।८२।।
मण्डलस्याथ विन्यासः पुनः पुष्पस्य संश्रयः ।
अमृतीकरणं पात्रप्रतिपत्तिरियं नरः ।।८३।।

पात्र को उठाना, उसे धारण करना, स्थापन के स्थान पर पूजनपूर्वक रखना, जल से भरना उसमें गन्ध और पुष्प छोड़ना, उसमें सूर्य, चन्द्र और अग्नि मण्डलों से तत्वों का न्यास करना, पुष्प से ढकना तथा अमृतीकरण, साधक द्वारा की जाने वाली पात्रस्थापन की ये नौ क्रियाएँ हैं ॥८२-८३॥

अनिरुद्धेन चादाय अस्त्रमन्त्रेण धारणम् ।
पात्रे तु मण्डलन्यासं वाग्बीजाग्रेण योजयेत् ।।८४।।

अनिरुद्धबीज से पात्र को लेना तथा **अस्त्रमन्त्र** से उसे धारण कर पात्र पर मण्डलन्यास करने के लिए प्रथम वाग्बीज का प्रयोग करना चाहिये ॥८४॥

अनिरुद्धं भवेद्बीजमाद्यं बिन्दुद्वयोत्तरम् ।
फडन्तेनानिरुद्धं तु अस्त्रमन्त्रं प्रकीर्तितम् ।।८५।।

पहला बीज **अ** दो बिन्दु से अनुसरण किया जाता हुआ **अः** नामक **अनिरुद्धमन्त्र** के बाद फट् शब्द लगा दिया जाता है तो यह **अः फट्** मन्त्र नामक **अस्त्रमन्त्र** कहा जाता है॥८५॥

शम्भुराद्यबलः प्रान्तः सम्पूर्णा सहिता इमे ।
परतः परतः पूर्वं समाप्त्यन्ताः सबिन्दुकाः ।
तृतीयं वाग्भवं बीजं सकलं निष्कलाह्वयम् ।।८६।।
स्वरश्चतुर्थः सकलः संसृष्टौ बिन्दुनेन्दुना ।।८७।।

शम्भू ह के पहले और बल व के पश्चात् आने वाला वर्ण **स,** प्रान्त स्वर औ तथा समाप्ति विसर्ग और विन्दु से युक्त सकल-निष्कल नामक तृतीय वाग्भव बीज सौं कहा जाता है॥८६॥

वर्गाद्यादिर्द्वितीयं तु वाग्भवं बीजमुच्यते ।
कामराजाह्वयं चैतद् धर्मकामार्थसाधनम् ।।८८।।

ल के सहित और द्वितीय वर्ग का पला अक्षर क, चन्द्र बिन्दु और ल सहित चौथे स्वर इसे युक्त हो क्लीं नामक द्वितीय वाग्भव बीज कहा जाता है। यही कामराजबीज भी कहा जाता है जो धर्म, अर्थ और काम का साधनभूत है॥८७-८८॥

मनोभवस्य बीजं तु कुण्डलीशक्तिसंयुतम् ।
वासुदेवेन सम्पृक्तमाद्यं वाग्भवमुच्यते ।
इदं सारस्वतं नाम यदाद्यं वाग्भवं स्मृतम् ।।८९।।

कुण्डलीशक्तियुक्त वासुदेव बीज **बीज** प्रथम वाग्भव कहा जाता है। यह जो प्रथम वाग्भवबीज है वह सारस्वत बीज कहा जाता है।।८९।।

एकैकं कामबीजादि त्रिभिस्तु त्रिपुरामहः ।।९०।।

ये तीनों जब अलग-अलग होते हैं। तो सारस्वत, काम एवं शक्तिबीज आदि नामों से पुकारे जाते और जब एकत्रितरूप में होते हैं तो महान् त्रिपुराबीज कहे जाते हैं ।।९०।।

आद्यं तृतीयं सामीन्दुबिन्दुभ्यः समलङ्कृतम् ।
मदनस्य तु मन्त्रोऽयं कामभोगफलप्रदः ।।९१।।

पहला वर्ण अ एवं तृतीय वर्ण इ संयुक्त रूप से अर्धचन्द्र से सुशोभित हो काम देव का मन्त्र बनता है जो सभी प्रकार का कामनाओं के भोग का फल प्रदान करता है ।।९१।।

औदेतोरूपविन्यस्तं यन्त्रं भास्करसन्निभम् ।
तद् वक्ष्ये कुण्डलीशक्तिमभेदात् तु निगद्यते ।।९२।।

अब औ एवं रूप वाले सूर्य के समान तेजस्वी मन्त्र को कहता हूँ जो कुण्डलीशक्ति की समता के कारण कुण्डलीशक्ति कहा जाता है ।।९२।।

भूतापसारणं कुर्यान्मन्त्रेणानेन याजकः ।
यस्मिन् कृते स्थानभूता दूरं यान्ति सुरार्चने ।।९३।।

याजक (पूजा करने वाला साधक) इस मन्त्र से भूतापसारण करे, जिसके करने से, उस स्थान पर स्थित भूत, देव-पूजन में दूर हट जाते हैं ।।९३।।

स्थितेषु तत्र भूतेषु नैवेद्यमण्डलं तथा ।
विलुम्पन्ति सदा लुब्धा न गृह्णन्ति च देवताः ।।९४।।

अन्यथा वहाँ स्थित भूत, लोभी हो, वहाँ स्थापित, सभी नैवद्यादि को लूट लेते हैं। तब उसे देवता ग्रहण नहीं करते।।९४।।

तस्माद् यत्नेन कर्तव्यं भूतानामपसारणम् ।
अस्त्रमन्त्रेण सहितं तस्य मन्त्रमिदं स्मृतम् ।।९५।।

अतः भूतों का अपसारण (इन्हें भगाने का कार्य) साधक द्वारा प्रयत्नतः किया जाना चाहिये। उसका अस्त्र-मन्त्र सहित यह उपर्युक्त.......करोम्महम् मन्त्र कहा गया है ।।९५।।

अपसर्पन्तु ते भूता ये भूताः भूमिपालकाः ।
भूतानामविरोधेन पूजाकर्म करोम्यहम् ।।९६।।

मन्त्रार्थ—इस पृथ्वी के रक्षक (स्वामी) जो भूत हैं वे यहाँ से चले जायँ। मैं उन भूतों के विरोध से रहित हो यहाँ देवपूजन करता हूँ ॥९६॥

अनेन स्थण्डिलाद् भूतानपसार्याथ साधकः ।
ततो दिग्बन्धनं कृत्वा दिग्भ्यस्तानपसारयेत् ।।९७।।

साधक इस उपर्युक्तमन्त्र से स्थण्डिल वेदिका से भूतों को हटाने के पश्चात् दिग्बंधन करके दिशाओं से उन्हें हटाये ॥९७॥

विष्णुबीजं फडन्तं तु मन्त्रं दिग्बन्धने स्थितम् ।
करेण छोटिकापूर्वं वेष्टनं बन्धनं दिशः ।।९८।।

फट् अन्त में मिलने से विष्णुबीज अं ही दिग्बन्धनहेतु मन्त्र हो जाता है। चुटकी बजाते हुये दिशाओं का घेरना, दिग्बन्धन करता है ॥९८॥

आत्मनः पूजनेनाथ कर्मारम्भाधिकारिता ।
पूजितं चासनं योगपीठस्य सदृशं भवेत् ।।९९।।

अपने पूजन से कर्म (पूजनकर्म) के आरम्भ के अधिकार का सामर्थ्य आ जाता है तथा पूजा किया हुआ आसन, योगपीठ के समान हो जाता है ॥९९॥

स्वभावतः सदा शुद्धं पञ्चभूतात्मकं वपुः ।
मलपूतिसमायुक्तं श्लेष्मविण्मूत्रपिच्छिलम् ।।१००।।
रेतोनिष्ठीबलालाभिः स्रवद्भिरपरिष्कृतम् ।
बीजभूतानि चैतस्य महाभूतानि पञ्च वै ।।१०१।।

यह पञ्चभूतात्मकशरीर जो स्वाभाविकरूप से सदैव शुद्ध होता है किन्तु दुर्गन्धयुक्त मल, कफ, विष्ठा, तथा मूत्र से लसलसा, चूते हुए लार, वीर्य तथा थूक से अशुद्ध हो जाता है। पृथ्वी, जल, अग्नि, वायु, आकाश, ये पाँच महाभूत ही इसके मुख्यबीज (आधार तत्त्व) हैं ॥१००-१०१॥

तेषां तु सर्वभूतानां बीजानां देहसङ्गिनाम् ।
वायुतेजःपृथिव्यम्भोवियतां शुद्धये क्रमात् ।।१०२।।
शोषणं दहनं भस्मप्रोत्सादोऽमृतवर्षणम् ।
आप्लावनं च कर्तब्यं चिन्तामात्रविशुद्धये ।।१०३।।

देह में स्थित उन सभी भूतों, वायु, अग्नि, पृथ्वी, जल, और आकाश की शुद्धि के लिए उनके बीजों का शोषण, दहन, भस्मप्रोत्सादन, अमृतवर्षण और वायुआप्लावन जैसी क्रियायें क्रमशः चिन्तनमात्र से करनी चाहिये ॥१०२-१०३॥

अण्डस्य चिन्तनाद् भेदात्तन्मध्ये देवचिन्तनात् ।
स्वकीयस्येष्टदेवस्य चिन्ता सर्वात्मना भवेत् ।।१०४।।

ब्रह्माण्ड का चिन्तन करने से उसका भेदन हो जाता है। उसके मध्य में अपने इष्टदेवता का चिन्तन करने से अपने इष्टदेवता का सम्पूर्ण रूप से चिन्तन हो जाता है ॥१०४॥

सोऽहमित्यस्य सततं चिन्तनाद् देवरूपता ।
आत्मनो जायते सम्यक् संस्कृतिः पुष्पदानतः ॥१०५॥

सोऽहं इस मन्त्र के भाव वह मैं ही हूँ, इसके निरन्तर चिन्तन से साधक में अपने आप ही देवरूपता आ जाती है तथा पुष्पप्रदान करने से उसका सम्यक् संस्कार हो जाता है ॥१०५॥

अहं देवोऽथ नैवेद्यं पुष्पगन्धादिकं च यत् ।
पूजोपकरणार्थं च देवत्वमिह जायते ॥१०६॥

मैं देवता हूँ इस भाव के आते ही साधक द्वारा प्रस्तुत नैवेद्य, पुष्प, चन्दन आदि जो भी पूजा के उपचार हैं। उनमें देवत्व उत्पन्न हो जाता है ॥१०६॥

देवाधारो ह्यहं देवो देवं देवाय योजयेत् ।
सर्वेषां देवतादृष्ट्या जायते शुद्धतापि च ॥१०७॥

क्योंकि मैं देव का आधार स्वयं देव हूँ। देवता को देवता के लिए समर्पित करना चाहिये। सब में देवताओं की सृष्टि (भावना) से स्वयमेव शुद्धता उत्पन्न हो जाती है ॥१०७॥

मनोजीवात्मनोः शुद्धिः प्राणायामेन जायते ।
अन्तर्गतं यच्च मलं तच्च शुद्धं प्रजायते ॥१०८॥

मन, जीव और आत्मा की शुद्धि प्राणायाम से हो जाती है, अन्तर्गत (छिपा हुआ) जो मल (दोष) होता है वह भी शुद्ध हो जाता है ॥१०८॥

गृहे चेत् पूजयेद् देवं तदा तस्य विलोकनम् ।
कुर्यादादित्यबीजेन चतुःपार्श्वेष्वपि क्रमात् ॥१०९॥

यदि साधक, घर में (देवालय में), इष्टदेव का पूजन, अवलोकन करे तो उसे **आदित्यबीज** से क्रमशः चारों दिशाओं में अवलोकन करना चाहिये॥१०९॥

हान्तः समाप्तिसहितो वह्निबीजेन संहितः ।
उपान्तः सचतुर्थस्तु स तथा सकलोऽग्रतः ॥११०॥
आदित्यबीजं कथितं सर्वरोगविनाशनम् ।
धर्मार्थकाममोक्षाणां कारणं तोषदायकम् ॥१११॥

अग्नि बीज एवं समाप्ति हान्त, चतुर्थ स्वर सहित उपान्त एवं सभी आगे-आगे स्थित हो सभी रोगों का विनाश करने वाला, धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष का कारण तथा साधकों को सन्तोष देने वाला **आदित्यबीज** कहा गया है ॥११०-१११॥

अशुद्धपक्षिसंयोग - पक्षिविष्ठाप्रसेचने ।
मूषिकाणां तथा स्पर्शः कृमिकीटादिसङ्गमः ।
एवमादीनि नश्यन्ति लोकनाद् गृहदूषणम् ।।११२।।

अशुद्धपक्षियों के संयोग, पक्षियों के विष्ठादि के बिखराव, चूहियों के स्पर्श और कीड़े-मकोड़े आदि के संग आदि से उत्पन्न गृहसम्बन्धी दोष, उपर्युक्त रीति से देखनेमात्र से ही नष्ट हो जाते हैं ॥११२॥

ततस्तु योगपीठस्य ध्यानं प्रथमतश्चरेत् ।।११३।।
ध्यानमात्रं योगपीठं प्रविशत्येव मण्डलम् ।
योगपीठे स्मृते सर्वं योगपीठमयं समम् ।।११४।।

तब सर्वप्रथम योगपीठ का ध्यान करे। योगपीठ का ध्यान कर मण्डल में प्रवेश करे। योगपीठ के स्मरणमात्र से ही सब कुछ योगपीठ के समान हो जाता है॥११३-११४॥

न योगपीठादधिकं विद्यते परमासनम् ।
यस्य ध्यानाज्जगद् व्याप्तं सचराचरमानुषम् ।।११५।।

योगपीठ से अधिक श्रेष्ठ कोई अन्य आसन नहीं है, जिसके ध्यान से ही यह चलायमान और निश्चल तथा मनुष्यों से युक्त, सम्पूर्ण जगत् व्याप्त है॥११५॥

तच्चिन्तनस्य माहात्म्यं को वा वक्तुं समुत्सहेत् ।
चिन्तामात्रेण मानुष्यं पश्य शोकविनाशनम् ।
धारणाद् योगपीठं तु चतुर्वर्गफलप्रदम् ।।११६।।

उसके चिन्तन के माहात्म्य के वर्णन का कौन साहस कर सकता है ? अर्थात् कोई नहीं कर सकता क्योंकि वह चिन्तनमात्र से ही मनुष्य के दिखाई देने वाले शोकों का नाश करने वाला है । उसकी धारणा (ध्यानस्थिति) तो अर्थ-धर्म-काम-मोक्ष चारों पुरुषार्थों को देने वाली है ॥११६॥

।। योगपीठ का ध्यान ।।

शुद्धस्फटिकसंकाशं चतुष्कोणं चतुर्वृतिम् ।
आधारशक्त्याविहितं प्रग्रहं सूर्यसन्निभम् ।।११७।।
आग्नेयादिषु कोणेषु चतुर्षु क्रमतः स्थितम् ।
धर्मो ज्ञानं तथैश्वर्यं वैराग्यं क्रमतः सदा ।।११८।।
पूर्वादिदिक्षु चैतानि स्थितानि क्रमतो यथा ।
अधर्मश्च तथाज्ञानमनैश्वर्यं ततः परम् ।।११९।।
अवैराग्यं परं तस्माद्धारणार्थं व्यवस्थितम् ।।१२०।।

वह शुद्धस्फटिक के सदृश आभावाला तथा चारकोण और चार-दिशाओंवाला है। उसकी सूर्य के समान आभा है, वह आधारशक्ति से सम्पन्न, नियन्त्रण करने वाला है। उसके आग्नेय आदि चारों कोणों में क्रमशः धर्म, ज्ञान, ऐश्वर्य और वैराग्य, पूर्व-आदि दिशाओं में अधर्म, अज्ञान, अनैश्वर्य एवं अवैराग्य धारणा के क्रम में व्यवस्थित रहते हैं ॥११७-१२०॥

तस्योपरि जलौघस्तु तस्मिन् ब्रह्माण्डमास्थितम्।
ब्रह्माण्डाभ्यन्तरे तोयं कूर्मस्तस्योपरि स्थितः ॥१२१॥

उसके ऊपर जलराशि में ब्रह्माण्ड स्थित है। उस ब्रह्माण्ड में स्थित जल में कूर्म (कच्छप), जल के ऊपर स्थित रहता है ॥१२१॥

कूर्मोपरि तथानन्तः पृथ्वी तस्योपरि स्थिता।
अनन्तगात्रसंयुक्तं नालं पातालगोचरम् ॥१२२॥

उस कूर्म पर अनन्त (शेषनाग) तथा उन पर पृथ्वी स्थित रहती है। अनन्त के शरीर से ही मिला हुआ एक कमलनाल, पाताल तक चला गया है ॥१२२॥

पृथ्वीमध्ये स्थितं पद्मं दिक्पत्रं गिरिकेशरम्।
तस्याष्टदिक्षु दिक्पालाः स्वर्गो मध्ये व्यवस्थितः ॥१२३॥

पृथ्वी के मध्य में एक ऐसा कमल है, दिशायें जिसका दल (पंखुड़िया) तथा पर्वत जिसके केशर हैं। उसकी आठो दिशाओं में दिग्पाल, स्वर्ग के मध्य में विशेषरूप से स्थित हैं ॥१२३॥

कर्णिकायां ब्रह्मलोको महर्लोकादयो ह्यधः।
स्वर्गे ज्योतींषि देवाश्च चतुर्वेदास्तदन्तरे ॥१२४॥

उसकी कर्णिका में ब्रह्मलोक, उसके नीचे महःलोक आदि स्थित हैं। स्वर्ग में नक्षत्र, देवता और चारों-वेद स्थित हैं ॥१२४॥

सत्त्वं रजस्तम इति गुणाः प्रकृतिसम्भवाः।
सदा स्थिताः पद्ममध्ये परं तत्त्वं तथैव च ॥१२५॥
आत्मतत्त्वं तत्र संस्थमूर्ध्वच्छदनमूर्धतः।
अधोऽधश्छदनं तत्र केशराग्रे स्थितं पुनः ॥१२६॥

उस कमल के मध्य में सत्व, रज, तम आदि प्रकृति से उत्पन्न गुण सदैव स्थित रहते हैं तथा परमतत्त्व एवं आत्मतत्त्व स्थित रहते हैं। उस कमल का ऊपरीदलसमूह, ब्रह्माण्ड का ऊपरी आवरण है तथा केशर के आगे स्थित, निचला-दलसमूह उसका निचलाभाग है॥१२५-१२६॥

सूर्याग्निचन्द्रमरुतां मण्डलानि क्रमात् ततः।
शवासनं योगपीठे सुखासनमतः परे ॥१२७॥

आराध्यासनमस्माच्च ततश्च विमलासनम् ।
मध्ये विचिन्तयेत् सर्वं जगद्वैसचराचरम् ।।१२८।।

जिसमें क्रमशः सूर्य, अग्नि, चन्द्रमा और वायु के मण्डल, स्थित हैं। उस योगपीठ पर शवासन, फिर सुखासन, आराध्यासन तत्पश्चात् विमलासन और उसके मध्य में सचराचर जगत् का चिन्तन करे॥१२७-१२८॥

ब्रह्मविष्णुशिवांश्चैव भागत्रयविनिश्चितान् ।
आत्मानं चिन्तयेत् तत्र पूजने समुपस्थितम् ।।१२९।।

जब साधक पूजन हेतु उपस्थित हो तो ब्रह्मा, विष्णु एवं शिव के तीन भागों में अपने आप का व्यवस्थितरूप में चिन्तन करे ॥१२९॥

मण्डलं योगपीठं तु पद्मं पद्मं तु चिन्तयेत् ।
शवादीन्यासनानीह चत्वार्यपि विचिन्तयेत् ।।१३०।।

साधक को चाहिये की मण्डल में योगपीठ तथा उस पर निर्मित पद्म में योगपीठ के ध्यान में वर्णित पद्म का चिन्तन करे, साथ ही शवादि पूर्वोक्त चार आसनों का भी ध्यान करे॥१३०॥

योगपीठं पृथग्ध्यात्वा मण्डलेन सहैकताम् ।
पुनर्ध्यात्वा ततः पश्चात् पूजयेदासनं ततः ।।१३१।।

पहले योगपीठ का स्वतंत्ररूप से ध्यान, तत्पश्चात् मण्डल से उसकी एकता का ध्यान करके पुनः वह अपने आसन का पूजन करे ॥१३१॥

ध्यानेन योगपीठस्य यथा यद्दीयते जलम् ।
नैवेद्यपुष्पधूपादि तत् स्वयं चोपतिष्ठते ।।१३२।।

इस प्रकार से योगपीठ के ध्यानपूर्वक जल, नैवेद्य, गन्धपुष्पादि जो भी पूजोपचार प्रदान किये जाते हैं। वे स्वयं ही योगपीठ की पूजा में प्रस्तुत हो जाते हैं ॥१३२॥

सर्वे देवाः सगन्धर्वाः सचराचरगुह्यकाः ।
चिन्तिताः पूजिताश्च स्युर्योगपीठस्य पूजने ।।१३३।।

योगपीठ के पूजन से चराचर जगत्, गन्धर्व और गुह्यकों के सहित स्मरण किये जाने वाले सभी देवता, पूजित हो जाते हैं॥१३३॥

अभीष्टदेवतापूजां विना यस्य विचिन्तनात् ।
लभते वै चतुर्वर्गं तुष्टिः पुष्टिश्च जायते ।।१३४।।

अभीष्टदेवता की पूजा के बिना ही उसके चिन्तनमात्र (ध्यानमात्र) से ही अर्थ-धर्म-काम-मोक्ष चारों पुरुषार्थ तथा तुष्टि एवं पुष्टि की प्राप्ति हो जाती है ॥१३४॥

आवाहनानन्तरतः पाणिभ्यामवतारयेत् ।
प्रागुत्तानौ करौ कृत्वा ऊर्ध्वमुत्क्षिप्य सान्तरौ ।।१३५।।
निरन्तरावधः कुर्यान्नामयन् पूजकस्तथा ।
हेरम्बस्य तु बीजेन तस्मादवतरेति च ।।१३६।।

आवाहन के पश्चात् अपने दोनों हाथों को पहले ऊपर की ओर करके बाद में दोनों हाथों में परस्पर दूरी रखते हुए ऊपर को उठाकर तथा पुनः मिलाये हुए नीचे की ओर झुकाता हुआ, पूजक **हेरम्बबीज** से देवता का अवतरण करे ।।१३५-१३६।।

आम्रेडितेन चाभीष्टदेवानां लम्बनाय वै ।
नासिकावायुनिःसाराद्वियत्स्था देवता भवेत् ।
एवं कृते मण्डले तु स्थितिस्तस्य प्रजायते ।।१३७।।

पुनः उसी का उच्चारण करते हुए अभीष्टदेवता के आग्रह के लिए नासिका से वायु को निकालकर आकाश में ही देवता की भावना करे । ऐसा करने से उस (अभीष्ट) देवता की मण्डल में स्थिति बनती है ।।१३७।।

।। हेरम्बबीज ।।

स्वान्तः शुद्धांशुबिन्दुभ्यां हेरम्बं बीजमुच्यते ।
नाशनं विघ्नबीजानां धर्मकामार्थसाधनम् ।।१३८।।

स्वान्त (अ) वर्ण, चन्द्र तथा बिन्दु से युक्त हो **अँ** यह हेरम्बबीज बनता है जो विघ्नों के बीज (मूल), का नाश करने वाला तथा धर्म, काम, अर्थ जैसे पुरुषार्थों को सिद्ध करने वाला हैं।।१३८।।

गन्धपुष्पे तथा धूपदीपौ नैवेद्यमेव च ।।१३९।।
यदन्यद् दीयते वस्त्रमलङ्कारादिकं च यत् ।
तेषां दैवतमुच्चार्य कृत्वा प्रोक्षणपूजने ।।१४०।।
उत्सृज्य मूलमन्त्रेण प्रतिनाम्ना निवेदयेत् ।
वरुणस्य तु बीजेन तेषां प्रोक्षणमाचरेत् ।।१४१।।

पूजन में गन्ध, पुष्प, धूप-दीप नैवेद्य वस्त्राभूषणादि जो भी देवताओं को समर्पित किये जायें, उन्हें प्रोक्षणपूर्वक उनके नाम से देवता का उच्चारण करते हुए और मूलमन्त्र से उनको छोड़ते हुये, अभीष्टदेवता के प्रति निवेदन करे । इस हेतु **वरुणबीज** से उन पूजोपचारों का प्रोक्षण करना चाहिये ।।१३९-१४१।।

।। वरुणबीज ।।

इष्टेन मूलमन्त्रेण तथोत्सर्गनिवेदने ।
लपरश्चन्द्रबिन्दुभ्यां बीजं वारुणमुच्यते ।।१४२।।

इष्टदेवता के मूलमन्त्र से पूजोपचारों का त्याग और निवेदन करने के लिए चन्द्रबिन्दु युक्त ल के पश्चात् आने वाला वर्ण व, वरुणबीज वँ कहा जाता है ।।१४२।।

विलोकनं पूजनं च तथादानं पृथक् पृथक् ।
जपकर्मणि मालायाः प्रतिपत्तिरिदं त्रयम् ।।१४३।।

जपकर्म में, माला की प्रतिष्ठा में, माला को देखना, उसका पूजन तथा जपहेतु उसको लेना ये तीन कार्य बताये गये हैं ।।१४३।।

इष्टमन्त्रेण मालायाः प्रोक्षणं परिकीर्तितम् ।
बीजं गाणपतं पूर्वमुच्चार्यं तदनन्तरम् ।।१४४।।
अविघ्नं कुरु माले त्वं गृह्णीयादित्यनेन च ।
जपान्ते शिरसि न्यासो मालायाः परिकीर्तितः ।।१४५।।

इष्टमन्त्र से माला का प्रोक्षण कहा जाता है । पहले गणपति बीज **गं** का उच्चारण कर **अविघ्नं कुरु माले त्वं.....** से मालाग्रहण तथा जप के अन्त में शिर पर उसको धारण करना बताया है।।१४४-१४५।।

स्रजमादाय पाणिभ्यां श्रीबीजेन तथार्चयेत् ।
अन्त्यदन्त्यान्तमात्राभ्यां चादिवर्गतृतीयकौ ।।१४६।।
परतः परतः पूर्वं श्रीबीजं बिन्दुनेन्दुना ।
मालाया अवतारस्तु शिरसः क्रियते यदा ।।१४७।।
तां समादाय पाणिभ्यां कुर्यात् सारस्वतेन वै ।
श्रीबीजानामाद्यमाद्यं बिन्दुचन्द्रार्धसंयुतम् ।।१४८।।
एतच्चतुष्टयं बीजं सारस्वतमुदीरितम् ।

तब माला को दोनों हाथों में लेकर **श्रीबीज** से पूजन करे। अन्तिम दन्त्य वर्ण श अन्तिम मात्रा विसर्ग (र) प्रथम वर्ग अवर्ग के तृतीय अक्षर ई से एक के बाद एक आकार चन्द्र और बिन्दु से युक्त हो श्रीबीज **श्रीं** बनता है। माला का शिर से अवतरण किया जाता है। तो उसे **सारस्वतबीज** से हाथ में लेकर श्रीबीज के पहले अक्षर स एवं र को पहले चन्द्र और बिन्दु से युक्त करे इन चारों का समन्वय ही सारस्वत बीज स्रँ कहा जाता है।।१४६-१४८।।

पौराणिकैर्वैदिकैश्च मूलमन्त्रेण चैव हि ।
प्रदक्षिणां प्रणामं च कुर्याद्धर्मार्थसाधकम् ।।१४९।।

धर्म, और अर्थ की साधक प्रदक्षिणा, प्रणाम आदि क्रियाएँ, वैदिक, पौराणिकमन्त्रों तथा मूलमन्त्रों से की जानी चाहिये ।।१४९।।

भूमिं वीक्ष्य तथाभ्युक्ष्य क्षितिबीजेन पूर्वतः ।
स्पृशंस्तां शिरसा भूमिं प्रणमेदिष्टदेवताः ।।१५०।।

भूमि को देखकर तथा पहले की भाँति उस पर क्षितिबीज से अभ्युक्षण कर, शिर से भूमि का स्पर्श करता हुआ इष्टदेवता को प्रणाम करे ।।१५०।।

।। क्षितिबीज ।।

समाप्तिहीनं वाराहं बीजं बिन्द्विन्दुसंयुतम् ।
क्षितिबीजं विजानीयाच्चतुर्वर्गप्रदायकम् ।।१५१।।

विसर्ग से रहित वाराहबीज भू को चन्द्र और बिन्दु से युक्त, चारों पुरुषार्थों को प्रदान करने वाला क्षितिबीज भूँ जानना चाहिये ।।१५१।।

दर्पणं व्यजनं घण्टां चामरं प्रोक्षयेत् पुनः ।
नैवेद्यालोकमन्त्रेण पूर्वप्रोक्तेन भैरव ।।१५२।।

हे भैरव ! दर्पण, पंखे, घण्टा, चामर एवं नैवेद्य आदि का प्रोक्षण, पूर्वोक्त नैवेद्यालोकमन्त्र से करे ।।१५२।।

।। नैवेद्यालोकमन्त्र ।।

नामाक्षराणि चाद्यानि चैतेषां बिन्दुनेन्दुना ।
तस्मै नम इति प्रान्ते ग्रहणे मन्त्र उच्यते ।।१५३।।
निवेदनमथैतेषामिष्टमन्त्रेण चाचरेत् ।।१५४।।

उनके नाम के अक्षरों में पहला अक्षरचन्द्र और बिन्दु से युक्त हो तथा नाम के अन्त में चतुर्थी विभक्ति और नम: लगाने पर वह स्वयं मन्त्र कहा जाता हैं । इनका निवेदन इष्टमन्त्र से करना चाहिये ।।१५३-१५४।।

वाग्भवस्य द्वितीयेन कामबीजेन भैरव ।
मुद्राया बन्धनं कार्यं मूलमन्त्रेण दर्शनम् ।
परित्यागं तु मुद्रायास्ताराबीजेन चाचरेत् ।।१५५।।

हे भैरव ! द्वितीय वाग्बीज, कामबीज से मुद्रा का बन्धन तथा मूलमन्त्र से उसका प्रदर्शन करना चाहिये और उसका परित्याग ताराबीज से करना चाहिये।।१५५।।

।। ताराबीज ।।

प्रान्तादिश्चन्द्रबिन्दुभ्यां षष्ठस्वरसमन्वितः ।
ताराबीजमिति प्रोक्तं धर्मकामार्थसाधनम् ।।१५६।।

छठे स्वर ऊ तथा चन्द्र-बिन्दु से युक्त प्रान्तादिवर्ण, धर्म, अर्थ और काम का साधन करने वाला ताराबीज कहा जाता है ।।१५६।।

मुदं ददाति यस्मात् सा मुद्रा तेन प्रकीर्तिता ।
दर्शितायां तु मुद्रायां भवेत् पूजासमापनम् ।।१५७।।
कामं मोक्षं तथा धर्ममर्थमोदयुता स्वयम् ।
ददाति साधकायाशु देवता गन्तुमुत्सुका ।।१५८।।

वह प्रसन्नता देती है इसीलिए उसे मुद्रा कहते हैं । मुद्रा के दिखाये जाने से पूजा का समापन हो जाता है । जाने को उत्सुक देवता, इसे देखकर स्वयं प्रसन्नता- पूर्वक शीघ्रतापूर्वक साधक को धर्म, अर्थ, काम, मोक्ष प्रदान करते हैं ।।१५७-१५८।।

मुद्रान्ते तु महामन्त्रान् षडिमान् समुदीरयेत् ।।१५९।।
यद् दत्तं भक्तिमात्रेण पत्रं पुष्पं फलं जलम् ।
आवेदितं च नैवेद्यं तद्गृहाणानुकम्पया ।।१६०।।
आवाहनं न जानामि न जानामि विसर्जनम् ।
पूजाभावं न जानामि त्वं गतिः परमेश्वरि ।।१६१।।
कर्मणा मनसा वाचा त्वत्तो नान्यं गतिर्मम ।
अन्तश्चरेण भूतानां त्वं गतिः परमेश्वरि ।।१६२।।
मातर्योनिसहस्रेषु येषु येषु व्रजाम्यहम् ।
तेषु तेष्वच्युता भक्तिरच्युतेऽस्तु सदा त्वयि ।।१६३।।
देवी दात्री च भोक्त्री च देवी सर्वमिदं जगत् ।
देवी जयति सर्वत्र या देवी सोऽहमेव च ।।१६४।।
यदक्षरपरिभ्रष्टं मात्राहीनं च यद् भवेत् ।
तत्सर्वं क्षम्यतां देवि कस्य न स्खलितं मनः ।।१६५।।

मुद्राप्रदर्शन के अन्त में **यद् दत्तं.....मनः** पर्यन्त छः महामन्त्रों को कहे– जिनका अर्थ होता है– हे देवि ! मेरे द्वारा भक्तिमात्र से जो कुछ पत्र, पुष्प, जल, फल, नैवेद्य आदि आपको निवेदित किया गया है, उसे आप अनुकम्पापूर्वक ग्रहण करें । हे परमेश्वरि ! मैं न तो आवाहन जानता हूँ और न विसर्जन। मैं पूजा के भावों को भी नहीं जानता । मैं तो केवल इतना ही जानता हूँ कि आप ही मेरी गति हैं । हे परमेश्वरी ! मनसा-वाचा-कर्मणा, आपके अतिरिक्त मेरी कोई अन्य गति नहीं है । सभी प्राणियों के अन्तः में संचरण करने के कारण आप ही मेरी गति हो ।

हे माता ! हे अच्युते ! मैं कर्मवशात् जिन-जिन हजारों योनियों में जाऊँ, उन-उन में सदैव आप में ही मेरी अविचलभक्ति हो ।।

देवी ही समस्त जगत् हैं, वे ही देने वाली हैं तथा भोगने वाली भी वे हीं हैं। सर्वत्र देवी की ही जय होती है । जो देवी हैं, वही मैं हूँ ।।

हे देवि ! जो अक्षर, परिभ्रष्ट हो गये हों, मात्रारहित हुये हों । उन सब दोषों को क्षमा करें क्योंकि किसका मन स्खलित नहीं हो जाता?।।१५९-१६५।।

मन्त्रेषु पठितेष्वेषु स्वयमेव प्रसीदति ।
दातुं देवी चतुर्वर्गं न चिरादेव भैरव ।।१६६।।

हे भैरव ! उपर्युक्तमन्त्रों के पढ़े जाने पर देवी स्वयं धर्म, अर्थ, काम, मोक्ष, चारों पुरुषार्थों को प्रदान करने के लिए, शीघ्र ही प्रसन्न हो जाती हैं ।।१६६।।

ऐशान्यां मण्डलं कुर्याद् द्वारपद्मविवर्जितम् ।
विसर्जनार्थं निर्माल्यधारिण्याः पूजनाय वै ।।१६७।।

तत्पश्चात् विसर्जन एवं-निर्माल्यधारिणी के पूजन के लिए ईशानकोण में द्वार और पद्म से रहित, मण्डल, बनाना चाहिये ।।१६७।।

पाद्यादिभिः पूजयित्वा ध्यात्वा निर्माल्यधारिणीम् ।
निःक्षिप्य तस्मिन् निर्माल्यं मन्त्रेण तु विसर्जयेत् ।।१६८।।

निर्माल्यधारिणी का ध्यान तथा पाद्यादि से उसका पूजन कर, अधोलिखित मन्त्रोच्चारपूर्वक उस मण्डल में निःक्षेप कर गच्छ....पदम् से विसर्जन मन्त्र विसर्जन करे।।१६८।।

गच्छ गच्छ परं स्थानं स्वस्थानं परमेश्वरि ।
यत्र ब्रह्मादयो देवा न विदुः परमं पदम् ।।१६९।।

मन्त्रार्थ—हे परमेश्वरि ! अब आप अपने उस श्रेष्ठस्थान पर जाओ, जिस परमपद को ब्रह्मा आदि देवता भी नहीं जानते ।।१६९।।

विसृज्य मन्त्रेणानेन ततः पूरकवायुना ।
ध्यायंस्तु मन्त्रेणानेन नत्वा तां स्थापयेद्धृदि ।।१७०।।

इस मन्त्र से विसर्जन कर पूरकवायु द्वारा ध्यान करते हुए, तिष्ठ..मे हृदि इस मन्त्र से उन्हें नमस्कार कर हृदय में स्थापित करे ।।१७०।।

हृदिस्थापनमन्त्र

तिष्ठ देवि परे स्थाने स्वस्थाने परमेश्वरि ।
यत्र ब्रह्मादयः सर्वे सुरास्तिष्ठन्ति मे हृदि ।।१७१।।

मन्त्रार्थ— हे परमेश्वरि ! हे देवि ! आप अपने श्रेष्ठस्थान, मेरे हृदय में, स्थित होइये, जहाँ ब्रह्मा आदि सभी देवता स्थित रहते हैं ।।१७१।।

तत एकजटाबीजैरिष्टदेवीं धिया स्मरन् ।
निर्माल्यं मूर्ध्नि गृह्णीयाद् धर्मकामार्थसाधनम् ।।१७२।।

तब एकजटाबीज से इष्टदेवी का बुद्धि से स्मरण करता हुआ, धर्म, अर्थ, काम के साधनभूत निर्माल्य को मस्तक पर धारण करे ।।१७२।।

मण्डलप्रतिपत्तिं तु ततः कुर्याद् विभूतये ।
सर्वाङ्गुलीनामग्रौघैः पद्ममष्टदलान्वितम् ।
निर्मन्थेत् क्षितिबीजेन मण्डलं चापि भैरव ।।१७३।।

हे भैरव! तब ऐश्वर्यप्राप्तिहेतु मण्डल की प्रतिपत्ति करे । इस हेतु साधक अपनी सभी अंगुलियों के अग्रभाग के समूह से मन्थन कर अष्टदल से युक्त कमलमण्डल का क्षितिमन्त्र से उद्वासन करे ।।१७३।।

ततस्तु मूलमन्त्रेण सर्ववश्येन वा पुनः ।
अनामिकानामग्रेण ललाटमपि संस्पृशेत् ।।१७४।।

तत्पश्चात् मूलमन्त्र या सर्ववश्यमन्त्र से, अनामिकाओं के अग्रभाग से, अपने ललाट का भी स्पर्श करे ।।१७४।।

।। एकजटाबीज ।।

समाप्तिसहितः प्रान्तस्ताराबीजं ततः परम् ।।१७५।।
स्मरबीजं विसर्गेण परतः परतः परम् ।
भवेदेकजटाबीजं धर्मकामार्थसाधनम् ।।१७६।।

समाप्ति (विसर्ग) के सहित प्रान्त, तब ताराबीज, स्मरबीज आगे-आगे लगाने से धर्म, काम, अर्थ का साधक, एकजटाबीज बनता है।।१७५-१७६।।

ततो भास्करबीजेन सहितेनात्मना पुनः ।
मन्त्रेण भास्करायार्घमच्छिद्रार्थं निवेदयेत् ।।१७७।।

तब साधक धर्मानुष्ठानगतदोष को दूर करने के लिए अपने मन्त्र के सहित भास्करबीज से भगवान्भास्कर को अर्घ प्रदान करे ।।१७७।।

।। सूर्यार्घ्यदानमन्त्र ।।

नमो विवस्वते ब्रह्मन् भास्वते विष्णुतेजसे ।
जगत्सवित्रे शुचये सवित्रे कर्मदायिने ।।१७८।।

नमो...कर्मदायिने! मन्त्रार्थ—हे विवस्वत, हे ब्रह्मण, हे प्रकाशमान्, हे विष्णु के तेज़ से युक्त, हे जगत् के उत्पन्न करने वाले, हे पवित्ररूप, हे सविता, हे कर्म को देने (फलप्रद बनाने वाले) आपको नमस्कार है।।१७८।।

ततः कृताञ्जलिर्भूत्वा पठित्वा मन्त्रमीरितम् ।
एकाग्रमनसा वाग्भिरच्छिद्रमवधारयेत् ।।१७९।।

तब अञ्जलि बनाकर अग्रिम-यज्ञच्छिद्रं....प्रसादतः मन्त्र कहता हुआ एकाग्रमन और वाणी से दोषमुक्ति की अवधारणा करे।।१७९।।

।। अछिद्रमन्त्र ।।

यज्ञच्छिद्रं तपश्छिद्रं यच्छिद्रं पूजने मम ।
सर्वं तदच्छिद्रमस्तु भास्करस्य प्रसादतः ।।१८०।।

मन्त्रार्थ—यज्ञ का दोष, तप का दोष या अन्य भी जो दोष, मेरे पूजन में रह गये हों, सभी भगवान्भास्कर की कृपा से दूर हों तथा मेरा कर्म, दोषरहित हो जाय।।१८०।।

ततस्तु पुष्पनैवेद्य-तोयपात्रादिकं च यत् ।
देवीबीजेन तत्सर्वं पुनरेव विलोकयेत् ।।१८१।।

तब पुष्प, नैवेद्य, जलपात्रादि जो भी हों, उन सबका पुनः देवीबीज से अवलोकन करे ।।१८१।।

हस्तेन चक्षुषा वापि यत्र-यत्र कृतः पुरा ।
मन्त्रन्यासस्तत्रतत्र विसृष्टिरमुना भवेत् ।।१८२।।

ऐसा करने से हाथ से या नेत्र से पहले जहाँ-जहाँ मन्त्र-न्यास किया है, उपर्युक्त क्रिया से वहाँ-वहाँ विसर्जन हो जाता है ॥१८२॥

।। दुर्गाबीज ।।

प्रान्तादिपञ्चमो वह्निबीजषष्ठस्वराहितः ।
तथोपान्तं वाग्भवाद्यं दुर्गाबीजं प्रचक्षते ।।१८३।।

प्रान्तादिपञ्चमवर्ण, वह्निबीज र एवं षष्ठस्वर ऊ से युक्त उपान्त वाग्भवबीज जिसके आदि में हो वह दुर्गाबीज कहा जाता है॥१८३॥

स्थण्डिले ज्वलदग्नौ च तोये सूर्यमरीचिषु ।
प्रतिमासु च शुद्धासु शालग्रामशिलासु च ।
शिवलिङ्गे शिलायां तु पूजा कार्या विभूतये ।।१८४।।

साधक को ऐश्वर्यप्राप्ति हेतु वेदी पर, जलती हुई अग्नि में, शुद्ध जल में, सूर्य की किरणों में, प्रतिमाओं में शिवलिङ्ग में या शिला पर पूजनकर्म करना चाहिये॥१८४॥

सर्वत्र मण्डलन्यासं कुर्यादेकाग्रमानसः ।
योगपीठस्य बीजेन स्थण्डिलादिषु साधकः ।।१८५।।

साधक, स्थण्डिल (वेदिका) आदि सब जगह, योगपीठ के बीज से एकाग्रमन से मण्डलन्यास करे ॥१८५॥

वासुदेवस्य रुद्रस्य ब्रह्मणो मिहिरस्य च ।
कुर्यात् सर्वत्र पूजासु प्रतिपत्तिमिमां बुधः ।।१८६।।

विद्वान् (साधक), वासुदेव, रुद्र, ब्रह्मा, सूर्य सबकी पूजाओं में भी इसी प्रकार प्रतिपत्ति करे ॥१८६॥

एवं यः पूजयेद् विष्णुममीभिः प्रतिपत्तिभिः ।
चतुर्वर्गप्रदस्तस्य न चिराज्जायते हरिः ।।१८७।।

इस पद्धति से जो भगवान् विष्णु का पूजन करता है। हरि शीघ्र ही प्रसन्न हो उसे चतुवर्ग (अर्थ, धर्म, काम, मोक्ष) प्रदान करते हैं ॥१८७॥

शिवो वा मिहिरो वापि येऽन्ये लम्बोदरादयः ।
प्रसीदन्ति सुराः सर्वे पूजायाः विधिनामुना ।।१८८।।

शिव, सूर्य या गणेश आदि जो अन्य देवता हैं। इस विधि से पूजा किये जाने से वे सभी प्रसन्न होते हैं ॥१८८॥

विशेषतो महादेवी महामाया जगन्मयी ।
प्रतिपत्तिमिमां नित्यं स्पृहयत्येव पूजने ।।१८९।।

विशेषरूप से महादेवी, महामाया, जगत्स्वरूपिणी, भगवती इस विधि से पूजन की नित्यइच्छा करती हैं ॥१८९॥

एवं यः कुरुते पूजां सम्यक् स फलभाग्भवेत् ।
एतैर्विहीना या पूजा ततोऽल्पाल्पं फलं भवेत् ।।१९०।।

इस प्रकार से पूजन करते हैं, वे ही भलीभाँति पूर्णफलप्राप्ति के अधिकारी होते हैं। इस पद्धति से रहित जो पूजा होती है, वह अल्पफल देने वाली है ॥१९०॥

अङ्गहीनस्तु पुरुषो न सम्यग्याज्ञिको यथा ।
अङ्गहीना तथा पूजा न सम्यक् फलभाग्भवेत् ।।१९१।।

जिस प्रकार एक अंगहीनपुरुष, अच्छा याज्ञिक नहीं हो सकता, उसी प्रकार अंगो से हीनपूजा भी, पूर्णफल देने वाली नहीं होती ॥१९१॥

इदं रहस्यं परममिदं स्वस्त्ययनं परम् ।
मन्त्रवेदमयं शुद्धं सर्वपापप्रणाशनम् ।।१९२।।

यह परमरहस्यमय तथा कल्याणकारक, मन्त्रज्ञान से युक्त सभी पापों को नष्ट करने वाला शुद्ध रहस्य है॥१९२॥

यः श्रावयेद् ब्राह्मणसन्निधाने
श्राद्धेषु यज्ञे सुरपूजनेषु ।
सम्यक् फलं तस्य लभेत् स कर्मणो
विनापि पूजां तदनन्तमश्नुते ।।१९३।।

॥ इति श्रीकालिकापुराणे महामायाकल्पे महामायापूजाविधाननाम सप्तपञ्चाशोऽध्यायः ॥५७॥

जो श्राद्ध में, देवपूजन में, यज्ञ में, ब्राह्मणों के सम्मुख इसे सुनाता है, वह उन कार्यों का सम्यक्फल प्राप्त करता है तथा बिना पूजा के भी उसे अनन्त-फल प्राप्त होता है ॥१९३॥

॥ श्रीकालिकापुराण में महामायाकल्प का महामायापूजाविधान नामक सत्तावनवाँ अध्याय सम्पूर्ण हुआ ॥५७॥



अष्टपञ्चाशोऽध्यायः
कामाख्यापूजाविधिः

।। श्रीभगवानुवाच ।।

देव्यास्तन्त्रं विशेषेण शृणुतं साम्प्रतं युवाम् ।
येन चाराधिता देवी नचिराद्वरदा भवेत् ।।१।।

श्रीभगवान् बोले– तुम दोनों इस समय विशेषरूप से देवी के तन्त्र को सुनो, जिससे पूजे जाने पर देवी, शीघ्र ही वरदायिनी हो जाती हैं ।।१।।

पूर्वतन्त्राद्विशेषेण तथा वै तन्त्रमुत्तरम् ।
विशेषेण च सामान्यात् कथितं भवतो पुरा ।।२।।

पूर्वतन्त्र की अपेक्षा उत्तरतन्त्र विशेष महत्वपूर्ण है। जिसे मैंने सामान्य से विशेषरूप से तुम दोनों से पहले ही कह दिया है ।।२।।

पुनर्देव्या विशेषेण पूजायां भक्तिकर्मणि ।
यानि तन्त्राणि शेषाणि तानि वक्ष्याम्यहं पुनः ।।३।।

अब पुनः (कामाख्या) देवी के पूजन के विशेषभक्तिकर्म में जिन तन्त्रों का वर्णन शेष रहा है, उन्हें मैं पुनः (आगे) तुम दोनों से कहूँगा ।।३।।

यः कुर्यात् तु महामायाभक्तिमेकाग्रमानसः ।
अङ्गिना वाङ्गिमन्त्रेण तेन कार्यमिदं शुभम् ।।४।।

जो महामाया की भक्ति एकाग्र-मन से करता है उसे अङ्गो से या अङ्गिमन्त्रों से इस शुभ कार्य को करना चाहिये ।।४।।

फलं पुष्पं च ताम्बूलमन्नपानादिकं च यत् ।
अदत्त्वा तु महादेव्यै न भोक्तव्यं कदाचन ।।५।।

फल, पुष्प, ताम्बूल, अन्न, पेयपदार्थ आदि जो भी उपभोगयोग्य पदार्थ हैं, उन्हें महादेवी को निवेदित किये बिना स्वयं कभी नहीं भोगना चाहिये ।।५।।

पथि वा पर्वताग्रे वा सभायामपि साधकः ।
यथा तथा निवेद्यैव स्वमर्थमुपकल्पयेत् ।।६।।

साधक को चाहे, वह मार्ग में, पर्वत-शिखर पर या सभा में जहाँ कहीं हो, देवी को ज्यों का त्यों निवेदित करके ही अपने उद्देश्य हेतु उपयोग में लाना चाहिये।।६।।

दृष्ट्वैव मदिराभाण्डं रक्तवर्णास्तथा स्त्रियः ।
सिंहं शवं रक्तपद्मं व्याघ्रवारणसङ्गमम् ।
गुरुं राजानमथवा महामायां ततो नमेत् ।।७।।

साधक मदिरापात्र, रक्तवर्ण की स्त्रियों (ऋतुमती स्त्रियों), सिंह, शव, लालकमल, शेर, हाथी, गुरु अथवा राजा को देखकर उन्हें महामायारूप में नमस्कार करे।।७।।

पतिव्रतायां भार्यायां सदैव ऋतुसङ्गमः ।
क्रियते चण्डिकां ध्यात्वा तदा कार्यो विभूतये ।।८।।

उसे ऐश्वर्यप्राप्तिहेतु ऋतुकाल आने पर चण्डिका का ध्यान करते हुए अपनी पतिव्रता पत्नी के साथ सङ्गमन करना चाहिये ।।८।।

शान्तिकं पौष्टिकं वापि तथेष्टापूर्त्तकर्मणी ।
यदा कुर्यात् तदा नत्वा देवीं यात्रां समाचरेत् ।।९।।

जब साधक, शान्ति (कल्याण), पुष्टि (वैभव) या इष्टापूर्तकर्म करें । तो उसे देवी को नमस्कार कर अपनी कर्मयात्रा करनी चाहिये ।।९।।

तौर्य्यत्रिकं यदा पश्येत् केवलं गीतमेव वा ।
तच्च देव्यै निवेद्यैव कर्तव्यं स्वोपयोजनम् ।।१०।।

जब कभी वह नृत्य, गान और वाद्य की एकता या केवल गीतात्मक-कार्यक्रम देखे तो उसे सर्वप्रथम देवी को ही निवेदित कर अपने कार्य में लाना चाहिये ।।१०।।

यदेव भूषणं वासो मलयोद्भवमेव वा ।
स्वकाये परियुञ्जीत तत्र मन्त्रं धिया न्यसेत् ।।११।।

जो भी आभूषण, वस्त्र या चन्दन आदि वह, स्वयं के शरीर पर धारण करे । वहाँ बुद्धि में मन्त्रसहित धारण करे ।।११।।

व्यायामे च विधाने च सभायां वा जले स्थले ।
यत्र यत्र स्वयं गच्छेत् तत्र देवीं सदा स्मरेत् ।।१२।।

व्यायाम के या कार्यविधान के समय, सभा में, जल या स्थल में जहाँ-जहाँ वह साधक जाय, सदैव देवी का वहीं स्मरण करे ।।१२।।

यद् यत् कर्म तु पूजाङ्गं तत्तन्मन्त्रेण चाचरेत् ।
मन्त्रहीनं पूजनाङ्गं कर्म यत् तत्तु निष्फलम् ।।१३।।

वह जो भी पूजा के अङ्गभूतकर्म करे, उसे तत्सम्बन्धीमन्त्र से ही करना चाहिये अन्यथा पूजनसम्बन्धी मन्त्ररहित जो कर्म किया जाता है । वह निष्फल हो जाता है।।१३।।

यस्मिन् कर्मणि योद्दिष्टो मन्त्रपूजासु भैरव ।
नैवेद्यालोकमन्त्रेण तत् तत् कर्मसमाचरेत् ।।१४।।

हे भैरव ! पूजन सम्बन्धी जिस कर्म के लिए जो मन्त्र बताये गये हैं, उनमें उन्हीं का प्रयोग करे अन्यथा नैवेद्यालोकमन्त्र से उन कर्मों का सम्भार करे ॥१४॥

देव्यास्तु मण्डलन्यासमिष्टमन्त्रेण चाचरेत् ।
पूजान्ते मण्डलं लिप्त्वा तिलकं तेन कारयेत् ॥१५॥
सर्ववश्येन मन्त्रेण धर्मकामार्थदायिना ॥१६॥

देवीपूजाहेतु इष्टमन्त्र से मण्डल करे, पूजा के अन्त में मण्डल को लीपकर (मिटाकर) उसी से तिलक करे । ऐसा धर्म-अर्थ-काम प्रदान करने वाले सर्ववश्य-मन्त्र से करना चाहिये॥१५-१६॥

बलिदाने बलिं छित्वा खड्गस्थै रुधिरैः स्वकैः ।
सर्ववश्येनमन्त्रेण ललाटे तिलकं न्यसेत् ॥१७॥

बलिदानकर्म में बलिपशु को काटकर अपने खड्ग में लगे हुए रक्त से साधक को सर्ववश्यमन्त्र पढ़ते हुए अपने ललाट पर तिलक लगाना चाहिये ॥१७॥

जगद्वशे भवेत् तस्य चतुर्थः कस्य वह्निना ।
षष्ठस्वरेण संयुक्तः कलाबिन्दुसमन्वितः ॥१८॥
अथोपान्तस्थकारान्तः सपरोऽपि तथा पुनः ।
द्विर्मोहीति हकारास्य तुर्यो द्विस्वरसंयुतः ॥१९॥
तृतीयवर्ग - प्रान्तेन तृतीयस्वरसंज्ञिना ।
पूरितान्तो द्विधा वर्णस्तथा वादिचतुर्थकः ॥२०॥
स्वरो द्वितीयश्च तथा क्षोभशब्दः पुरःसरः ।
पुरेति सहितः सोऽपि मित्रं शत्रुश्च राक्षसः ।
दक्षप्रजा तथा राजा सर्वशास्त्र इति श्रुतः ॥२१॥

कला-बिन्दु समन्वित षष्ठ स्वर तथा वह्नियुक्त क वर्ग का चौथा वर्ण, उपान्तस्थ थकारान्त, सपर (ह) पुनः द्विर्मोहि हकारास्य और द्विस्वरयुक्त तुर्य (ध) तृतीय स्वर संज्ञी तृतीय वर्ग च वर्ग के प्रान्त पूरितान्त वादि चतुर्थक द्विधा वर्ण के आगे क्षोभ शब्द के प्रयोग से सर्ववश्य मन्त्र बनता है। जिसके प्रयोगपूर्वक पूर्वोक्त प्रयोगों के करने से साधक, पुर, मित्र, यक्ष, राक्षस, राजा, प्रजा, सभी शास्त्रों (ज्ञानराशि) के सहित सम्पूर्ण जगत् को अपने वश में कर लेता है। ऐसा सुना है॥१८-२१॥

विनापि पूजनं कुर्याद् यो रहस्तिलकं नरः ।
मन्त्रेणानेन सततं सर्वं तस्य वशे भवेत् ॥२२॥

बिना पूजन के भी जो मनुष्य (साधक) गुप्त रुप से इस मन्त्र से तिलक करता है सब कुछ निरन्तर उसके वश में हो जाता है ॥२२॥

राजा वा राजपुत्रो वा स्त्रियो वा यक्षराक्षसाः ।
सर्वे तस्य वशं यान्ति भूतग्रामाश्चतुर्विधाः ॥२३॥

राजा हो, राजकुमार हो, स्त्री हो या यक्ष या राक्षस, चारों प्रकार के प्राणी-समूह, सभी उसके वशीभूत हो जाते हैं ॥२३॥

प्रवासे पथि वा दुर्गे स्थानाप्राप्तौ जलेऽपि वा ।
कारागारे निबद्धो वा प्रायोवेशगतोऽपि वा ॥२४॥
कुर्यात् तत्र महामायापूजां वै मानसीं बुधः ॥२५॥

प्रवास में, मार्ग में, दुर्गम स्थान में, स्थान अप्राप्ति की अवस्था में, जल में, कारागार में, बन्धन में या प्रायोपवेशन (मरणनिमित्तिकउपवास) की अवस्था में भी विद्वान् साधक को महामाया, कामाख्या की मानसी पूजा करनी चाहिये ॥२४-२५॥

मनोभये समुत्पन्ने सिंहव्याघ्रसमाकुले ।
परचक्रागमे वापि कुर्यान्मानसपूजनम् ॥२६॥

मन में भय उत्पन्न हो जाने पर, सिंहों और बाघों से घिर जाने पर या शत्रुओं के चक्र में फँस जाने पर भी मानसपूजन करना चाहिये ॥२६॥

मनसा हृदयस्थान्तर्ध्यात्वा योगाख्यपीठकम् ।
तत्रैव पृथिवीमध्ये पूजां तत्र समाचरेत् ॥२७॥

मन में हृदय (आकाश) के अन्तर्गत, योगपीठ का ध्यान कर वहीं पृथ्वी (बीजस्थान) के मध्य में उस पूजन को करना चाहिये ॥२७॥

मैत्रं प्रसाधनं स्नानं दन्तधावनकर्म वै ।
अन्यच्च सर्वं मनसा कृत्वा कुर्याच्च पूजनम् ॥२८॥

मलोत्सर्ग, अलंकरण, स्नान, दन्तधावन आदि सभी कर्म, उस समय मानसिकरूप से करके महामाया का पूजन करना चाहिये ॥२८॥

पश्चात् पुष्पादिभिः पूजा बहिर्देशे विधीयते ।
तथा हृद्यपि कर्तव्या सर्वाश्च प्रतिपत्तयः ॥२९॥

मानसपूजन के पश्चात् पुष्पादि से बाहरी पूजा करनी चाहिये तथा हृदय में समस्त अनुष्ठान करने चाहिये ॥२९॥

अष्टम्यां सततं देवीयाजकः स्यात् सदा व्रती ।
नवम्यां तु तथा पूजा कर्तव्या निजशोणितैः ॥३०॥

देवी उपासक को निरन्तर अष्टमी के दिन व्रतपूर्वक रहकर नवमी के दिन अपने रक्त से पूजन करना चाहिये ॥३०॥

लिङ्गस्थां पूजयेद् देवीं पुस्तकस्थां तथैव च ।
स्थण्डिलस्थां महामायां पादुकाप्रतिमासु च ।
चित्रे च त्रिशिखे खड्गं जलस्थां वापि पूजयेत् ॥३१॥
पञ्चाशदङ्गुलं खड्गं त्रिशिखं च त्रिशूलकम् ।
शिलायां पर्वतस्याग्रे तथा पर्वतगह्वरे ॥३२॥
देवीं सम्पूजयेन्नित्यं भक्तिश्रद्धासमन्वितः ॥३३॥

साधक को महामाया देवी का पूजन, लिङ्ग में स्थित, पुस्तक में स्थित, वेदिका में स्थितरूप में या पादुकाओं, प्रतिमाओं, चित्र में, त्रिशिख (त्रिशूल) में, खड्ग में या जल में स्थितरूप में करना चाहिये। पूजा हेतु उपयोग में आनेवाला खड्ग, पचास अंगुल या एक हाथ लम्बा तथा त्रिशिख, त्रिशूल होता है। साधक शिला पर, पर्वत के शिखर पर, पर्वत की गुफा में जहाँ कहीं भी हो वहीं श्रद्धा और भक्ति से युक्त होकर उसे नित्य देवी का पूजन करना चाहियें ॥३१-३३॥

वाराणस्यां सदा पूजा सम्पूर्णफलदायिनी।
ततस्तद्द्विगुणा प्रोक्ता पुरुषोत्तमसन्निधौ ॥३४॥

वाराणसी में की गई महामाया की पूजा सदैव सम्पूर्णफल देने वाली होती है। उससे दूना फल देनेवाली पूजा, पुरुषोत्तम के समीप जगन्नाथपुरी में कही गई है॥३४॥

ततोऽपि द्विगुणा प्रोक्ता द्वारावत्यां विशेषतः।
सर्वक्षेत्रेषु तीर्थेषु पूजा द्वारावतीसमा ॥३५॥

उससे भी दूना फल देनेवाली पूजा, विशेषरूप से द्वारिकापुरी में की गई, बताई गयी है। सभी क्षेत्रों और तीर्थों में की गई पूजा, द्वारिका की पूजा के समान ही फल देने वाली होती है॥३५॥

विन्ध्ये शतगुणा प्रोक्ता गङ्गायामपि तत्समा।
आर्यावर्ते मध्यदेशे ब्रह्मावर्ते तथैव च ॥३६॥

विन्ध्यक्षेत्र की पूजा द्वारिका की पूजा से सौगुना फल देने वाली कही गई है। गङ्गातट पर की गई पूजा, उसी के समान फल देने वाली होती है। आर्यावर्त, मध्यदेश तथा ब्रह्मावर्तक्षेत्र की पूजा भी उसी के समान फल देने वाली होती है ॥३६॥

विन्ध्यवत् फलदा पूजा प्रयागे पुष्करे तथा।
ततश्चतुर्गुणा प्रोक्ता करतोया नदीजले ॥३७॥

प्रयाग तथा पुष्कर में की गई पूजा, विन्ध्याचल के समान ही फल देने वाली होती है। उससे चारगुनाफलदायिनी पूजा करतोयानदी के जल में की गई होती है॥३७॥

तस्माच्चतुर्गुणफला नन्दिकुण्डे च भैरव।
ततश्चतुर्गुणा प्रोक्ता जल्पिषेश्वरसन्निधौ ॥३८॥

हे भैरव ! इससे चारगुना फल देने वाली पूजा नन्दिकुण्ड पर उससे भी चार-गुना फल देने वाली पूजा, जल्पिषेश्वर के निकट की गई होती है ॥३८॥

तत्र सिद्धेश्वरीयोनौ ततोऽपि द्विगुणा स्मृता ।
ततश्चतुर्गुणा प्रोक्ता लौहित्यनदपाथसि ।
तत्समा कामरूपे तु सर्वत्रैव जले स्थले ।।३९।।

वहाँ सिद्धेश्वरी के योनिमण्डल पर की गई पूजा, उससे भी दूना फल देने वाली कही गई है। उससे चार गुना फल देने वाली पूजा, लौहित्यनद (ब्रह्मपुत्र) के जल में की गई पूजा बतायी गई हैं। कामरूप के किसी भी जल-स्थल में की गई पूजा, उसी के समान फल देने वाली होती है ॥३९॥

सर्वश्रेष्ठो यथा विष्णुर्लक्ष्मीः सर्वोत्तमा यथा ।।४०।।
देवीपूजा तथा शस्ता कामरूपे सुरालये ।
देवीक्षेत्रं कामरूपं विद्यतेऽनान्य तत्समम् ।।४१।।

विष्णु जिस प्रकार सबसे श्रेष्ठ हैं तथा लक्ष्मी जिस प्रकार सबसे उत्तम हैं उसी प्रकार सभी देवपीठों की अपेक्षा कामरूप की पूजा, श्रेष्ठ है। कामरूप के समान श्रेष्ठ अन्य कोई देवी का क्षेत्र नहीं है॥४०-४१॥

अन्यत्र विरला देवी कामरूपे गृहे गृहे ।
ततः शतगुणा प्रोक्ता नीलकूटस्य मस्तके ।।४२।।

अन्य स्थानों में जो देवी दुर्लभ हैं, वे ही कामरूप के घर-घर में सुलभ हैं। उस लौहित्यनद के जल से भी सौ गुना फल देने वाली पूजा, नीलकूटपर्वत के शिखर पर की गई बताई गई है ॥४२॥

ततोऽपि द्विगुणा प्रोक्ता हैरुके शिवलिङ्गके ।
ततोऽपि द्विगुणा प्रोक्ता शैलपुत्र्यादियोनिषु ।
ततः शतगुणा प्रोक्ता कामाख्यायोनिमण्डले ।।४३।।

उससे भी दूना फलदायिनी पूजा हेरुक शिवलिङ्ग पर की गई होती है, उससे भी दूना फल देने वाली शैलपुत्री आदि योनियों पर की गई पूजा होती है उससे सौ गुना फल कामाख्यायोनिमण्डल पर बताया गया है॥४३॥

कामाख्यां महामायापूजां यः कृतवान् सकृत् ।।४४।।
स चेह लभते कामान् परत्र शिवरूपताम् ।
न तस्य सदृशोऽन्योऽस्ति कृत्यं तस्य न विद्यते ।।४५।।

जिसने एक बार भी कामाख्या में महामाया का पूजन कर लिया, वह इस लोक में अपने सभी कामनाओं की पूर्णता तथा परलोक में शिव के स्वरूप को प्राप्त करता है। उसके समान कोई दूसरा नहीं होता और न उसके लिए कुछ करने को ही शेष रहता है ॥४४-४५॥

वाञ्छितार्थमवाप्येह चिरायुरभिजायते ।
वायोरिव गतिस्तस्य भवेदन्यैरबाधिता ।
संग्रामे शास्त्रवादे वा दुर्जयः स च जायते ।।४६।।

कामाख्या में पूजन करने वाला साधक, इस लोक में अपने वाञ्छितप्रयोजन को प्राप्त कर चिरायु होता है। उसकी गति अन्यों द्वारा न रोके जानेयोग्य तथा वायु के समान तीव्र होती है। युद्ध और शास्त्रार्थ में वह दुर्जय हो जाता है।।४६।।

वैष्णवीतन्त्रमन्त्रेण कामाख्यायोनिमण्डले ।
सकृत् तु पूजनं कृत्वा फलं शतगुणं लभेत् ।।४७।।

वैष्णवीतन्त्र के अन्तर्गत वर्णितमन्त्रों से कामाख्या के योनिमण्डल में एक बार भी पूजन करने से उस पूजा का सौगुना फल प्राप्त होता है ।।४७।।

मूलमूर्तिर्महामाया योगनिद्रा जगन्मयी ।
तस्यास्तु वैष्णवीतन्त्रं मन्त्रं प्राक् प्रतिपादितम् ।।४८।।

महामाया जगत् की मूलमूर्तिस्वरूप (परा प्रकृति) हैं। वही योगनिद्रा हैं तथा वे जगत्मयी भी हैं। पहले वैष्णवीतन्त्र में उसी के मन्त्र बताये गये हैं ।।४८।।

अन्या या मूर्तयः प्रोक्ताः शैलपुत्र्यादयोऽपराः ।
तस्या एव विभागास्तास्तच्छरीरविनिर्गताः ।।४९।।

उसकी अन्य जो दूसरी शैलपुत्री आदि मूर्तियाँ बताई गई हैं वे उसी के शरीर से निकली हुई हैं तथा उसी का विभाग हैं ।।४९।।

निःसरन्ति यथा नित्यं सूर्यबिम्बान्मरीचयः ।
देव्यास्तथोग्रचण्डाद्या महामायाशरीरतः ।।५०।।

जिस प्रकार सूर्य के बिम्ब से किरणें, नित्य निकलती हैं, उसी प्रकार महामाया के शरीर से उग्रचण्डा आदि देवियाँ प्रकट होती हैं ।।५०।।

तासामेवाङ्गरूपाणि वक्तव्यानि मया तव ।
एकैव तु महामाया कार्यार्थं भिन्नतां गता ।।५१।।

उन्हीं अङ्गरूपों के विषय में मैं तुमदोनों से कहूँगा। एक ही महामाया कार्य के निमित्तभिन्नता को प्राप्त करती हैं ।।५१।।

कामाख्या तु महामाया मूलमूर्तिः प्रगीयते ।
पीठैर्भिन्नाह्वया सा तु महामाया प्रगीयते ।।५२।।

कामाख्या ही अपने मूलरूप में महामाया के नाम से पुकारी जाती हैं। स्थानों की भिन्नता के कारण ही उन्हें भिन्न-भिन्न नामों से पुकारा जाता है ।।५२।।

एक एव यथा विष्णुर्नित्यत्वाद् हि सनातनः ।
जनानामर्दनात् सोऽपि जनार्दन इति श्रुतः ।।५३।।

तथैव सा महामाया कामार्थं सङ्गता गिरौ ।
कामाख्येति सदा देवैर्गद्यते सततं नरैः ।।५४।।

जिस प्रकार विष्णु ही अकेले, नित्य होने से सनातन हैं, जनों (दुर्जनों) को पीड़ा पहुँचाने के कारण जनार्दन हैं, ऐसा ख्यात है । उसी प्रकार महामाया भी काम के लिए उस नीलकूट पर प्राप्त होने के कारण, निरन्तर देवताओं और मनुष्यों द्वारा कामाख्या नाम से पुकारी जाती हैं ।।५३-५४।।

यथा हि पुरुषः कोऽपिच्छत्री च्छत्रग्रहाद् भवेत् ।
स्नापकः स्नानकाले वै कामाख्यापि तथाह्वया ।।५५।।

जैसे कोई पुरुष जब छत्रधारण करता है तो उसे छत्री तथा जब वह स्नान कराता है तो उसे स्नापक कहा जाता है, उसी प्रकार महामाया ही कार्यवश कामाख्या भी कही जाती हैं ।।५५।।

महामायाशरीरं तु कामार्थं समुपस्थितम् ।
लोहितैः कुंकुमैः पीतं कामार्थमुपयोजितैः ।।५६।।
खड्गं त्यक्त्वा कामकाले सा गृह्णाति स्रजं स्वयम् ।
यदा तु त्यक्तकामा सा तदा स्यादसिधारिणी ।।५७।।

महामाया का शरीर ही जब काम-हेतु होता है तो वह लालकुंकुमों से पीत-वर्णवाली हो जाती हैं । वे कामोपभोग के अवसर पर खड्ग को त्याग कर स्वयं पुष्पमाला धारण कर लेती हैं तथा जब वे काम से विरत हो जाती हैं तो फिर तलवार-धारण करने वाली हो जाती हैं ।।५६-५७।।

कामकाले शिवप्रेते न्यस्तलोहितपङ्कजे ।
रमते त्यक्तकामा तु सितप्रेतोपरि स्थिता ।।५८।।

कामोपभोग के काल में वे, लालकमल पर विराजमान, शिवरूपी प्रेत पर स्थित हो रमण करती हैं तो काम से विरत होने पर श्वेतप्रेतासन पर स्थित रहती हैं ।।५८।।

तथैवेतस्ततो गत्या सिंहस्था कामदा भवेत् ।
कदाचित् सा सितप्रेते कदाचिद्रक्तपङ्कजे ।।५९।।
कदाचित् केशरीपृष्ठे रमते कामरूपिणी ।
यदा लोहितपद्मस्था तथाग्रे केशरी चरः ।।६०।।

उसी प्रकार भक्तों की कामना पूर्ति करने वाली होकर वे सिंह पर सवार हो, इधर-ऊधर गमन करती हैं । कभी वे श्वेतप्रेतासन पर स्थित रहती हैं तो कभी लालकमल पर । वे कभी इच्छानुसार रूपधारण कर सिंह के पीठ पर आरूढ़ हो

विचरण करती हैं। जब वे लालकमल पर विराजमान् रहती हैं, उस समय सिंह उनके आगे सेवक के रूप में खड़ा रहता है ॥५९-६०॥

यदा प्रेतगता देवी तदाग्रेऽन्यं निरीक्षते ।
महामायास्वरूपेण यदा सा वरदा भवेत् ॥६१॥
पूजाकाले तदा प्रेतपद्मसिंहोपरि स्थिता ।
रक्तपद्मे यदा ध्यायेत् तदाग्रे चिन्तयेद्धरिम् ॥६२॥

जब वे प्रेत पर स्थित रहती हैं। तो वे आगे की ओर अन्यों को देखती हैं। महामायास्वरूप में जब वे वरदायिनी होती हैं, उस समय पूजा करते समय उनके प्रेत, पद्म एवं सिंह पर सवाररूप का चिन्तन करना चाहिये और जब रक्तकमल पर भगवती का ध्यान करना हो, उस समय सामने स्थित सिंह का ध्यान करना चाहिये ॥६१-६२॥

यदा ध्यायेद्धरौ चान्यद्वयमग्रे विचिन्तयेत् ।
त्रिषु ध्यातेषु युगपत् प्रेतपद्महरौ क्रमात् ॥६३॥
स्थितेषु कामदा देवी तेषु ध्यायेत कामदाम् ।
एकैकस्मिन्नपि तथा यथावच्चिन्तयेच्छिवाम् ॥६४॥

जब साधक आगे सिंहारूढ़ देवी का ध्यान करे तो उसे अन्य, प्रेत और पद्म का आगे की ओर ध्यान करना चाहिये। इन सिंह, पद्म और प्रेत तीनों का एक साथ ध्यान करे। तो उसे क्रमशः प्रेत, पद्म और सिंह पर स्थित कामदा (कामाख्या) देवी का ध्यान करना चाहिये। या एक-एक पर भी अलग-अलग स्थित उस देवी का निरन्तर चिन्तन करे ॥६३-६४॥

एका समस्ता जगतं प्रकृतिः सा यतस्ततः ।
विष्णुब्रह्मशिवैर्देवैर्ध्रियते सा जगन्मयी ॥६५॥

वे जगत्स्वरूपिणी, अकेले ही समस्त जगत को उत्पन्न करने वाली है, इसीलिए वह विष्णु, ब्रह्मा और शिव द्वारा धारण की जाती हैं ॥६५॥

सितप्रेतो महादेवो ब्रह्मालोहितपङ्कजम् ।
हरिर्हरिस्तु विज्ञेयो वाहनानि महौजसः ॥६६॥

उनके आसन में जो श्वेतप्रेत है, वह स्वयं महादेव, लालकमल, ब्रह्मा तथा वाहन के रूप में महान्ओजस्वी, भगवान् विष्णु स्वयं सिंहरूप हैं ॥६६॥

स्वमूर्त्या वाहनत्वं तु तेषां यस्मान्न युज्यते ।
तस्मान्मूर्त्यन्तरं कृत्वा वाहनत्वं गतास्त्रयः ॥६७॥

अपने मूल स्वरूप में उनका देवी का वाहन होना उपयुक्त नहीं लगता, इसीलिए वे तीनों देवता, अन्य स्वरूप धारण कर, देवी के वाहनरूप को प्राप्त किये हैं॥६७॥

यस्मिन् यस्मिन् महामाया प्रीणाति सततं शिवा ।
तेन तेनैव रूपेण आसनान्यभवंस्त्रयः ॥६८॥

जिस-जिस रूप में शिवा, महामाया प्रसन्न होती हैं । उसी रूप में तीनों आसन रूप में उपस्थित होते हैं॥६८॥

सिंहोपरि स्थितं पद्मं रक्तं तस्योर्ध्वगः शिवः ।
तस्योपरि महामाया वरदाऽभयदायिनी ॥६९॥

सिंह पर लालकमल स्थित है तथा उस कमल के ऊपर शिव एवं उनके ऊपर वर और अभय प्रदान करने वाली महामाया, (वर और अभय मुद्रा सहित) विराजमान हैं॥६९॥

एवं रूपेण यो ध्यात्वा पूजयेत् सततं शिवाम् ।
ब्रह्मविष्णुशिवास्तेन पूजिताः स्युरसंशयम् ॥७०॥

इस रूप में जो सदैव निरन्तर महामाया का ध्यान करके पूजन करता है । उसके द्वारा ब्रह्मा, विष्णु और महेश भी पूजित हो जाते हैं । इसमें कोई संशय नहीं है॥७०॥

एवं सदा महामाया कामाख्या चैकरूपिणी ।
ध्यानतो रूपतो भिन्ना तस्मात्तां तत्र पूजयेत् ॥७१॥

इस प्रकार महामाया और कामाख्या दोनों ही सदैव एक रूप होते हुये भी ध्यान और रूप से भिन्न-भिन्न हैं। अतः उन महामाया का ही कामरूप में पूजन करना चाहिये॥७१॥

एवं विशेषतन्त्राणि दुर्गायाः कथितानि वाम् ।
अङ्गमन्त्राणि तस्यास्तु श्रूयतां नरसत्तमौ ॥७२॥

॥ इति श्रीकालिकापुराणे कामाख्यापूजाविधिर्नाम अष्टपञ्चाशोऽध्यायः ॥५८॥

हे नरों में श्रेष्ठ ! इस प्रकार मैंने तुम दोनों से दुर्गा की विशेष पूजाविधि का वर्णन किया है । अब तुम दोनों उनके अङ्गमन्त्रों को भी सुनो ॥७२॥

॥ श्रीकालिकापुराण में कामाख्यापूजाविधिनामक अट्ठावनवाँ अध्याय सम्पूर्ण हुआ ॥५८॥



एकोनषष्टितमोऽध्यायः

पवित्रारोपणम्

।। श्रीभगवानुवाच ।।

अङ्गमन्त्राण्यहं वक्ष्ये चण्डिकाया विशेषतः ।
यैः समाराधिता देवी चतुर्वर्गप्रदा भवेत् ।।१।।

श्रीभगवान् बोले– अब मैं उन अङ्गभूतमन्त्रों को जो चण्डिका देवी से विशेष करके सम्बद्ध हैं, कहूँगा। जिनके द्वारा भलीभाँति आराधना किये जाने पर देवी, अर्थ, धर्म, काम, मोक्ष, चारों पुरुषार्थों को देने वाली हो जाती हैं ।।१।।

तालव्यान्तो युतः तुर्यस्वरबिन्द्विन्दुवह्निभिः ।
तथोपान्तः स्वरस्त्वेते बाह्यं वाग्भवमेव च ।।२।।
नेत्रबीजं चण्डिकायास्त्रयमेतत् प्रकीर्तितम् ।
वामललाटदाक्षिण्यनेत्रेषु त्रितयं क्रमात् ।।३।।

अन्तिम तालव्य श, चतुर्थ स्वर (ई), बिन्दु-इन्दु (चन्द्रबिन्दु) तथा वह्नि र से युक्त हो (श्रीं), उसके पहले उसी प्रकार इन्हीं स्वरादि के साथ उपान्त ह (ह्रीं) और इनके पहले वाग्भव बीज ऐं आकर **ऐं ह्रीं श्रीं** ये चण्डिका के नेत्र-बीज कहे गये हैं। जो क्रमशः वामनेत्र, ललाटस्थितनेत्र तथा दक्षिणनेत्र के सूचक हैं।।२-३।।

धर्मार्थकाममोक्षाणां सर्वदा कारणं परम् ।
मन्त्रमेतन्महागुह्यं दुर्गाबीजमिति स्मृतम् ।।४।।

यह धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष का सदैव सर्वश्रेष्ठ कारणमन्त्र, अत्यन्त गुप्त है तथा दुर्गाबीज नाम से जाना जाता है।।४।।

यदा कात्यायनमुनेराश्रमेषु दिवौकसाम् ।
तेजोभिर्धृतकायाभूद् देवी देवौघसंस्तुता ।।५।।
तदा नेत्रत्रयाद् देव्या मूलमूर्तिर्विनिःसृता ।
तेजोमयी जगद्धात्री महिषासुरघातिनी ।।६।।

जब कात्यायनमुनि के आश्रम में देवसमूह द्वारा स्तुति किये जाने पर देवी महामाया ने देवताओं के तेज से शरीर धारण किया, तब देवी के तीनों नेत्रों से देवी

की तेजोमयी, शक्तिस्वरूपिणी मूलमूर्ति, प्रकट हुई, जो जगत् का पालन एवं महिषासुर का घात (वध) करने वाली थी ।।५-६।।

तेजोभिः सर्वदेवानां सा धृत्वा वपुरुत्तमम् ।
अस्त्राण्यनेकान्यादाय देवैर्दत्तानि भागशः ।।७।।
सगणं सानुबन्धं च सामात्यबलवाहनम् ।
ब्रह्माद्यैः संस्तुता देवी जघान महिषासुरम् ।।८।।

सभी देवताओं के तेज से उत्तमशरीर और देवताओं द्वारा अलग-अलग दिये गये अनेक अस्त्रों को धारण करके, ब्रह्मादि देवताओं द्वारा स्तुति की जाती हुई, उस देवी ने अपने गणों, सेवकों, सहयोगियों, मन्त्रियों, सेना तथा वाहन सहित, महिषासुर का वध कर दिया।।७-८।।

हते तु महिषे देवी पूजिता त्रिदशैस्ततः ।
अनेनैव तु मन्त्रेण लोके ख्यातिं च सा गता ।।९।।

महिषासुर के मारे जाने पर देवताओं ने उनकी पूजा, इसी मन्त्र से की एवं वे संसार में प्रसिद्धि को प्राप्त हुईं।।९।।

ततः प्रभृति सा मूर्तिः सर्वैः सर्वत्र पूज्यते ।
मूलमूर्तिः सुगुप्ताभूत् स्वमूर्त्या ख्यातिमागता ।।१०।।

तभी से सभी के द्वारा, सर्वत्र, उसी मूर्ति की पूजा की जाती है। जब महिषमर्दिनीरूप से महामाया प्रसिद्ध हो गईं तो उनकी मूल, तेजोमयीमूर्ति, गुप्त हो गई।।१०।।

देवानां वरदानेन ब्रह्माद्यैरुपयोजनात् ।
यन्मूर्तिः पूज्यते सर्वैस्तां मूर्तिं शृणु भैरव ।।११।।

हे भैरव ! देवताओं के वरदान से तथा ब्रह्मा आदि की रूपयोजना के फलस्वरूप जो मूर्ति सबके द्वारा पूजी जाती है। उसके विषय में सुनो।।११।।

।। महिषमर्दिनी का रूपवर्णन ।।

जटाजूटसमायुक्ता अर्द्धेन्दुकृतशेखराम् ।
लोचनत्रयसंयुक्तां पूर्णेन्दुसदृशाननाम् ।।१२।।

वे देवी जटा-जूट धारण किये हुए हैं तथा उनके मस्तक पर अर्धचन्द्र, विराजमान हैं। वे तीन नेत्रों से युक्त हैं। उनका मुख, पूर्णचन्द्रमा के समान प्रसन्न है।।१२।।

तप्तकाञ्चनवर्णाभां सुप्रतिष्ठांसुलोचनाम् ।
नवयौवनसम्पन्नां सर्वाभरणभूषिताम् ।।१३।।

वे तपे हुए सोने के रङ्ग की आभावाली, सुन्दर ढंग से प्रतिष्ठित, सुन्दरनेत्रों-वाली, नयीयुवावस्था से युक्त, सभी प्रकार के आभूषणों से सुशोभित हैं ।।१३।।

सुचारुदशनां तीक्ष्णां पीनोन्नतपयोधराम् ।
त्रिभङ्गस्थानसंस्थानां महिषासुरमर्दिनीम् ।।१४।।

वे सुन्दर किन्तु तेजदाँतों, पुष्ट और उठे हुए स्तनों से सुशोभित हैं। वे महिषासुर का मर्दन करने वाली देवी, तीन स्थानों (पैर, कटि, ग्रीवा) से झुकी हुई, स्थित हैं।।१४।।

मृणालायतसंस्पर्शदशबाहुसमन्विताम् ।
त्रिशूलं दक्षिणे देयं खड्गं चक्रक्रमादधः ।।१५।।
तीक्ष्णबाणं तथा शक्तिं बाहुसङ्घेषु सङ्गताम् ।
खेटकं पूर्णचापं च पाशं चाङ्कुशमूर्धतः ।।१६।।
घण्टां च परशुं चापि वामेऽधः प्रतियोजयेत् ।
अधस्तान्महिषं तद्वद्विशिरस्कं प्रदर्शयेत् ।।१७।।

उन्होंने कमलनाल के समान कोमलस्पर्शवाली, अपनी दश विशालभुजाओं में क्रमशः दक्षिणओर नीचे के क्रम में त्रिशूल, खड्ग, चक्र, तेजबाण, शक्तिधारण कर रखा है। बायीं ओर ऊपर से नीचे की ओर क्रमशः खेटक (ढाल), तनाहुआ धनुष, पाश, अङ्कुश, घण्टा और परशु भी धारण किया है। उन देवी के निचलेभाग में शिरविहीन महिषासुर को दिखाना चाहिये।।१५-१७।।

शिरच्छेदोद्भवं तद्वद्दानवं खड्गपाणिनम् ।
हृदि शूलेन निर्भिन्नं निर्यदन्त्रविभूषितम् ।।१८।।
रक्तरक्तीकृताङ्गं च रक्तविस्फुरितेक्षणम् ।
वेष्टितं नागपाशेन भ्रुकुटीकुटिलाननम् ।।१९।।
सपाशवामहस्तेन धृतकेशं च दुर्गया ।
वमद्रुधिरवक्त्रं च देव्याः सिंहं प्रदर्शयेत् ।।२०।।
देव्यास्तु दक्षिणं पादं समं सिंहोपरि स्थितम् ।
किञ्चिदूर्ध्वं तथा वाममङ्गुष्ठं महिषोपरि ।।२१।।

उसे, महिष के शिरकटे हुए शरीर से उत्पन्न, हाथ में खड्ग लिए हुए एक दानव की भाँति दिखाना चाहिये जिसका हृदय, देवी के त्रिशूल से बिंधा हो और जो बाहर आती हुई आन्तों से युक्त हो। जिसका शरीर अपने ही शरीर से निकले हुए रक्त से लाल हो तथा जिसके लाल-लाल नेत्र फैले हुए हों, जिसकी भौंहे तथा मुख टेढ़े हों और जो नागपाश से बँधा हुआ हो। भगवती दुर्गा द्वारा अपने पाशयुक्त वामहस्त से जिसके केश पकड़े गये हों। जो खून उगल रहा हो, ऐसा महिषासुर

एवं देवी का वाहन भी दिखाना चाहिये। उस समय देवी का दाहिनापैर, सिंह पर स्थिररुप से स्थित हो तथा कुछ उठा हुआ उनका बायाँ अँगूठा महिष पर हो॥१८-२१॥

उग्रचण्डा प्रचण्डा च चण्डोग्रा चण्डनायिका ।
चण्डा चण्डवती चैव चामुण्डा चण्डिका तथा ।।२२।।
आभिः शक्तिभिरष्टाभिः सततं परिवेष्टिताम् ।
चिन्तयेत् सततं देवीं धर्मकामार्थमोक्षदाम् ।।२३।।

जो उग्रचण्डा, प्रचण्डा, चण्डोग्रा, चण्डनायिका, चण्डा, चण्डवती, चामुण्डा और चण्डिका नाम वाली इन आठों शक्तियों से निरन्तर घिरी हुई हों। इस (१२-२३ श्लोकों तक वर्णित) रूप में धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष दायिनी देवी का चिन्तन (ध्यान) करना चाहिये ॥२२-२३॥

एतस्याश्चाङ्गमन्त्रं तु दुर्गातन्त्रमिति श्रुतम् ।
शृणुष्वैकमना भूत्वा धर्मकामार्थसाधनम् ।।२४।।

अब इसके धर्म-अर्थ-काम-साधक अङ्गमन्त्रों को एकाग्रचित्त हो सुनो। जिन्हें दुर्गातन्त्र के नाम से जाना जाता है॥२४॥

।। दुर्गामन्त्र ।।

वह्निभार्या स्वरैः तुर्यै ढान्तः प्रान्तोऽग्निरेव च ।
दुर्गेद्विरिति सोङ्कारं दुर्गामन्त्रमिति श्रुतम् ।।२५।।

ॐकार सहित दो बार दुर्गे शब्द, चतुर्थ स्वर ई सहित ढान्त (ढ) के बाद आने वाले व्यंजन (ण) और प्रान्त (अन्तिम) व्यञ्जन (क्ष) तथा इनके पहले अग्निबीज र से बने रक्षिणी एवं अन्त में स्वाहा शब्द के योग से बना **ॐ दुर्गे दुर्गे रक्षिणी स्वाहा** मन्त्र बनता है जो जयदुर्गामन्त्र के रूप में प्रसिद्ध है॥२५॥

रवौ मकरराशिस्थे या भवेत् सितपञ्चमी ।
तस्यामनेन मन्त्रेण सम्पूज्य विधिवच्छिवाम् ।।२६।।
शुक्लाष्टम्यां पुनर्देवीं पूजयित्वा यथाविधि ।
नवम्यां बलिदानानि प्रभूतानि समाचरेत् ।
सन्ध्यायां च बलिं कुर्यान्निजगात्रासृगुक्षितम् ।।२७।।

सूर्य के मक राशि में स्थित होने पर (माघ मास में) जब शुक्लपक्ष की पञ्चमी तिथि (बसन्तपञ्चमी) हो, उस दिन इस मन्त्र से विधिवत् शिवा देवी का पूजन करे तथा शुक्लपक्ष की अष्टमी तिथि को पुनः देवी का विधिपूर्वक पूजन करे। नवमी को अधिकमात्रा में बलिदान आदि का आचरण करे एवं सन्ध्या के समय अपने शरीर से निकाले गये रक्त से उन्हें बलि प्रदान करे॥२६-२७॥

एवं कृते तु कल्याणैर्युक्तो नित्यं प्रमोदते ।।२८।।
पुत्रपौत्रसमृद्धस्तु धनधान्यसमृद्धिभिः ।
दीर्घायुः सर्वसुभगो लोकऽस्मिन् स च जायते ।।२९।।

ऐसा करने से साधक, नित्य कल्याण से युक्त हो पुत्र, पौत्र से सम्पन्न और धन-धान्य से समृद्ध हो, आनन्दप्राप्त करता है। वह इस लोक में सब प्रकार से सुन्दर एवं दीर्घायु होता है।।२८-२९।।

सिताष्टम्यां तु चैत्रस्य पुष्पैस्तत्कालसम्भवैः ।
अशोकैरपि यः कुर्यान्मन्त्रेणानेन पूजनम् ।
न तस्य जायते शोको रोगो वाप्यथ दुर्गतिः ।।३०।।

चैत्र के शुक्लपक्ष की अष्टमी के दिन जो साधक, उस समय उपलब्ध-पुष्पों और अशोक के पुष्पों से उपर्युक्तमन्त्र के साथ देवी का पूजन करता है, उसे न तो कोई रोग या शोक होता है और न तो किसी प्रकार की उसकी दुर्गति ही होती है।।३०।।

ज्यैष्ठे तु शुक्लपक्षस्य अष्टम्यां समुपोषितः ।
नवम्यां सतिलैरन्नैर्यावकैरथ मोदकैः ।।३१।।
क्षीरैराज्यैस्तथा क्षौद्रैः शर्कराभिःसपिष्टकैः ।
नानापशूनां रुधिरैःमांसैरपि च पूजयेत् ।।३२।।

ज्येष्ठ के शुक्लपक्ष की अष्टमी को साधक, व्रत रख कर नवमी के दिन तिल, यावक (जौ से बने भोज्य पदार्थ), अन्न से तथा मोदकों, दूध, घी, मधु, चीनी तथा आटे से एवं अनेक प्रकार से बलि के उपयुक्त पशुओं के रक्त और माँस से भी देवी का पूजन करे।।३१-३२।।

ततो दशम्यां शुक्लायामद्भिस्तु तिलमिश्रितैः ।
दुर्गातन्त्रेण मन्त्रेण दातव्यमञ्जलित्रयम् ।।३३।।

तत्पश्चात् ज्येष्ठशुक्ल-दशमी (गङ्गादशहरा) को तिल मिले हुये जल से दुर्गातन्त्र में वर्णित, मन्त्रों को पढ़कर तीन अञ्जलि जल प्रदान करे ।।३३।।

एवं कृते दशम्यां तु यत्पापं दशजन्मभिः ।
कृतं तत्प्रलयं याति दीर्घायुरपि जायते ।।३४।।

दशमी को ऐसा करने से दशजन्मों के किये हुए भी जो पाप होते हैं, वे तत्काल प्रलय (नाश) को प्राप्त होते हैं तथा साधक दीर्घायु होता है ।।३४।।

आषाढे शुक्लपक्षस्य याष्टमी श्रावणस्य च ।
पवित्रारोपणं कुर्याद् देवीप्रीतिकरं परम् ।।३५।।

हे भैरव! आषाढ़ और श्रावणमास के शुक्लपक्ष की जो अष्टमी तिथि होती है। उस दिन देवी को अत्यधिक प्रसन्न करने वाला पवित्रारोपण (सूत्रधारण) कर्म करे॥३५॥

दुर्गातन्त्रेण मन्त्रेण दुर्गाबीजेन भैरव ।
वैष्णवीतन्त्रमन्त्रेण पवित्रारोपणं चरेत् ॥३६॥
विशेषाच्छ्रावणं प्राप्य देव्याः कुर्यात् पवित्रकम् ॥३७॥

हे भैरव! दुर्गातन्त्र में उल्लिखित मन्त्र, दुर्गाबीज, वैष्णवीतन्त्र के मन्त्र से यह पवित्रारोपणकर्म करना चाहिये। विशेषरूप से श्रावणमास के शुक्लपक्ष की अष्टमी-तिथि आने पर देवी के निमित्त पवित्रारोपणकर्म करना चाहिये॥३५-३७॥

सर्वेषामेव देवानां पवित्रारोपणं चरेत् ।
आषाढे श्रावणे वापि संवत्सरफलप्रदम् ॥३८॥

आषाढ़ या श्रावण के महीने में सभी देवताओं के लिए पवित्रारोपणकर्म, वर्षभर तक फलदायक होता है॥३८॥

प्रतिपद्धनदस्योक्ता पवित्रारोपणे तिथिः ।
द्वितीया तु श्रियो देव्यास्तिथीनामुत्तमा स्मृता ॥३९॥
तृतीया भवभाविन्याश्चतुर्थी तत्सुतस्य च ।
पञ्चमी सोमराजस्य षष्ठी प्रोक्ता गुहस्य च ॥४०॥
सप्तमी भास्करस्योक्ता दुर्गायाश्च तथाष्टमी ।
मातृणां नवमी प्रोक्ता वासुकेर्दशमी मता ॥४१॥
एकादशी ऋषीणां च द्वादशी चक्रपाणिनः ।
त्रयोदशी त्वनङ्गस्य मम चैव चतुर्दशी ।
ब्रह्मणो दिक्पतीनां च पौर्णमासी तिथिर्मता ॥४२॥

प्रतिपद् तिथि धनद (कुबेर) हेतु पवित्रारोपण की तिथि तथा तिथियों में उत्तम द्वितीया तिथि लक्ष्मी, तृतीया भव-भाविनी (जगत् को उत्पन्न करने वाली) जगदम्बा पार्वती की, चतुर्थी उनके पुत्र गणेश, पञ्चमी सोमराज (चन्द्रमा), षष्ठी गुह (कार्तिकेय), सप्तमी सूर्य, अष्टमी दुर्गा, नवमी मातृकाओं, दशमी वासुकी, एकादशी ऋषियों, द्वादशी विष्णु, त्रयोदशी अनङ्ग (कामदेव), चतुर्दशी ब्रह्मा, तथा पूर्णिमा दिकपालों के लिए पवित्रारोपण की उत्तम तिथियाँ कही गई हैं॥३९-४२॥

पवित्रारोपणं यो वै देवानां न समाचरेत् ।
तस्य सांवत्सरीपूजाफलं हरति केशवः ॥४३॥
तस्माद् यलेन कर्तव्यं पवित्रारोपणं परम् ।
कृते बहुफलप्राप्तिस्तत्पूजा सफला भवेत् ॥४४॥

जो साधक देवताओं का पवित्रारोपण नहीं करता है उसके द्वारा वर्षभर की गई पूजा के फल को भगवान् विष्णु हर लेते हैं। अत: साधक को इस श्रेष्ठ पवित्रारोपणकर्म को यत्नपूर्वक करना चाहिये। इसके करने से साधक को बहुत फल प्राप्त होता है तथा उसकी पूजा सफल होती है ।।४३-४४।।

पवित्रं येन सूत्रेण यथा कार्यं विजानता ।
तच्छ्रुणुष्व प्रमाणं तु वचनान्मम भैरव ।।४५।।

हे भैरव ! यह पवित्रा किस प्रकार के सूत्र से, किस प्रमाण में और किस विधि से ज्ञानपूर्वक बनानी चाहिये। उसे तुम मेरे वचनों से सुनो ।।४५।।

प्रथमं दर्भसूत्रं च पद्मसूत्रं ततः परम् ।
ततः क्षौमं सुपुण्यं स्यात् कार्पासिकमतः परम् ।।४६।।
पट्टसूत्रं तथान्येन पवित्राणि न कारयेत् ।।४७।।

सर्व प्रथम कुश के तन्तु, उसके बाद पद्मतन्तु (कमलनाल के रेशे), उसके बाद क्षौम (सन के बने) तन्तु, तब रूई के बने और अन्त में रेशम के तन्तुओं से निर्मित ही पवित्रा बनाये। इस हेतु अन्य किसी तन्तु का उपयोग न करे ।।४६-४७।।

विचित्राणि पवित्राणि कर्तव्यानि तु यत्नतः ।
गन्धमाल्यैः सुरभिभिः रचितानि यथोदितम् ।।४८।।

इस हेतु विविधप्रकार की ऊपर बतायी, पवित्रों को प्रयत्नपूर्वक, गन्ध, माला, सुगन्धि आदि से युक्त करना चाहिये।।४८।।

कन्या च कर्तयेत् सूत्रं प्रमदा च पतिव्रता ।
विधवा साधुशीला वा दुःखशीला न कर्तयेत् ।।४९।।

इस निमित्त कन्या, पतिव्रतास्त्री या साधु-आचरणवालीविधवास्त्री सूत काते। किसी दुराचारिणी को न कातने दे।।४९।।

यत्सूचिभिन्नं दग्धं च भस्मधूमाभिगुण्ठितम् ।
तद्वर्जनीयं यत्नेन सूत्रमस्मिन् पवित्रके ।।५०।।

इस पवित्रानिर्माणकर्म में जो तन्तु सूई से बिंधा हुआ, जला हुआ, भस्म, धुएँ आदि में लिपटा हुआ हो, उसे प्रयत्नपूर्वक हटा देना चाहिये ।।५०।।

उपर्युक्तं चाखुजग्धं मद्यरक्तादिदूषितम् ।
मलिनं नीलरक्तं च प्रयत्नेन विवर्जयेत् ।।५१।।
सूत्रैः पवित्रं कुर्वीत कनिष्ठोत्तममध्यमम् ।
कनिष्ठं यत् पवित्रं तु सप्तविंशतितन्तुभिः ।।५२।।

ऊपर वर्णित, चूहे द्वारा कुतरेगये, मद्य-रक्त आदि से दूषित, मैले (काले), लाल आदि रङ्गों के तन्तुओं का इस कार्य हेतु प्रयत्नपूर्वक निषेध करना चाहिये। उचितसूत्रों से कनिष्ठ, मध्यम, उत्तम तीन प्रकार की पवित्रा बनानी चाहिये। सत्ताईस तन्तुओं से बनने वाली जो पवित्रा है वह कनिष्ठ होती है । यह मर्त्यलोक में यश-कीर्ति, सुख-सौभाग्य बढ़ाने वाली होती है।।५२।।

मर्त्यलोके यशः कीर्तिः सुखसौभाग्यवर्धनम् ।
चतुःपञ्चाशता प्रोक्तं तन्तूनां मध्यमं परम् ।
दिव्यभोगावहं पुण्यं स्वर्गमोक्षप्रदायकम् ।।५३।।

चौवन तन्तुओं से बनी पवित्रा श्रेष्ठ होते हुए भी मध्यम श्रेणी की है । यह दिव्य भोगप्रदायक, पवित्र, स्वर्ग और मोक्षप्रदान करने वाली है ।।५३।।

उत्तमं चैव तन्तूनामष्टोत्तरशतेन वै ।
तद्दत्वा तु महादेव्यै शिवसायुज्यमाप्नुयात् ।।५४।।

उत्तमपवित्रा, एक सौ आठ तन्तुओं से बनी होती है । उसे महादेवी को अर्पण कर साधक, शिवसायुज्य प्राप्त कर लेता है।।५४।।

उत्तमं वासुदेवाय दद्याद् यदि पवित्रकम् ।
तदा याति हरेर्लोकं साधको नात्र संशयः ।।५५।।

यदि कोई साधक उत्तम पवित्रा, वासुदेव को अर्पित करता है, तो वह विष्णु-लोक को प्राप्त करता है । इसमें कोई संशय नहीं है ।।५५।।

अष्टोत्तरसहस्रं तु रत्नमालेति गीयते ।
पवित्रं तु महादेव्या भुक्तिमुक्तिप्रदायकम् ।।५६।।

एकहजारआठ तन्तुओं से बनी पवित्रा को रत्नमाला कहते हैं । देवी को अर्पित किये जाने पर वह, भोग और मोक्ष दोनों ही प्रदान करने वाली होती है ।।५६।।

रत्नमाल्यां तु या यच्छेन्महादेव्यै पवित्रकम् ।
कल्पकोटिसहस्राणि स्वर्गे स्थित्वा शिवो भवेत् ।।५७।।

रत्नमाला नामक पवित्रा को जो महादेवी को प्रदान करता है । वह स्वर्ग में करोड़ोंसहस्र- कल्पों तक स्थित हो, शिवस्वरूप हो जाता है ।।५७।।

एतत् तु नागहाराख्यं शङ्करस्य पवित्रकम् ।
अष्टोत्तरसहस्रेण तन्तुना सुमनोहरम् ।।५८।।
यः प्रयच्छति मह्यं तु स यावांस्तन्तुसंचयः ।
तावत्कल्पसहस्राणि मम लोके प्रमोदते ।।५९।।

यहीएकहजारआठ तन्तुओं से बनी सुन्दर पवित्रा, जब मुझ, शङ्कर को समर्पित की जाती है। तो नागहार नामक हो जाती है। जो इसे मुझे प्रदान करता है। इस पवित्रा में जितने तन्तुओं का समूह होता है, उतने हजार कल्पों तक वह मेरे लोक में आनन्द प्राप्त करता है ।।५८-५९।।

अष्टोत्तरसहस्त्रेण वनमाला हरेः स्मृता ।
तन्तूनां तस्य दानेन विष्णुसायुज्यमाप्नुयात् ।।६०।।

यही एकहजारआठ तन्तुओं की पवित्रा, विष्णु के लिए वनमाला कही गई है। उसके दान से साधक विष्णु के सायुज्य को प्राप्त करता है।।६०।।

यत् कनिष्ठं पवित्रं तु नाभिमात्रं भवेत् तु तत् ।
द्वादशग्रन्थिसंयुक्तमात्ममानेन योजयेत् ।।६१।।

जो कनिष्ठपवित्रा होती है वह नाभिमात्र तक की होती है और अपने मान से उसे बारह गाँठों का बनाना चाहिये।।६१।।

ऊरुप्रमाणं मध्यं स्याद् ग्रन्थीनां तत्र योजयेत् ।
चतुर्विंशतिमप्यस्य मानमात्मन एव च ।।६२।।

मध्यमपवित्रा जंघे तक होनी चाहिये और अपने अनुपात से उसमें चौबीस गाँठे होती हैं।।६२।।

पवित्रमुत्तमं प्रोक्तं जानुमात्रं च भैरव ।
षट्त्रिंशत्तन्तुग्रन्थीनां योजयेदात्ममानतः ।।६३।।

हे भैरव ! उत्तमपवित्रा, घुटने तक की कही गई है जो साधक को अपने मान से छत्तीस गाँठों की बनानी चाहिये ।।६३।।

शतमष्टोत्तरं कार्यं ग्रन्थीनां सुविधानतः ।
नागहाराह्वयं तद्वदन्येषु च विधानतः ।।६४।।

जिस विधान से अन्य पवित्रा में गाँठे बनाई जायँ। उसी प्रकार से नागहार नामक पवित्रा में भी सुविधानुसार एकसौआठ गाँठे बनानी चाहिये ।।६४।।

पवित्रं क्रियते येन सूत्रेण ग्रन्थयः पुनः ।
तदन्यवर्णसूत्रेण कर्तव्या लक्षणान्विता ।।६५।।

पवित्रा जिस वर्ण के सूत्र से बनाई गई हो, उससे भिन्न वर्ण के सूत्र से उसकी सुन्दरग्रंथियाँ बनानी चाहिये ।।६५।।

ग्रन्थिं तु सप्तभिः कुर्याद् वेष्टनैस्तु कनिष्ठके ।
द्विगुणैर्मध्यमे कुर्यात्त्रिगुणैरुत्तमे तथा ।।६६।।
अधिवास्य पवित्राणि पूर्वस्मिन् दिवसे ततः ।।६७।।

कनिष्ठपवित्रा में सात आवृत्तियों की गाँठे बनानी चाहिये। उससे दुगुनी चौदह आवृत्तियों की मध्यम में तथा तीन गुनी, इक्कीस आवृत्तियों की उत्तम में, गाँठे बनानी चाहिये तत्पश्चात् पहले दिन पवित्राओं का अधिवासन करे॥६६-६७॥

मन्त्रन्यासं पवित्रे तु कुर्यात् तत्रापरेऽहनि ।
दुर्गाबीजेन मन्त्रेण मन्त्रन्यासं द्विजश्चरेत् ॥६८॥

अगले दिन उनमें द्विजसाधक को दुर्गाबीजमन्त्र से मन्त्रन्यास करना चाहिये ॥६७-६८॥

वैष्णवीतन्त्रमन्त्रेण कुर्युरन्ये च भैरव ।
प्रतिग्रन्थि स्वयं कुर्यान्मन्त्रन्यासं विचक्षणः ॥६९॥

हे भैरव ! अन्य साधक वैष्णवीतन्त्र में वर्णित मन्त्र से न्यास करें। बुद्धिमान् साधक को स्वयं प्रत्येक ग्रन्थियों में मन्त्रन्यास करना चाहिये ॥६९॥

अङ्गुष्ठाग्रेण जपनं मालायामिह भैरव ।
यावन्तो ग्रन्थयश्चात्र तावन्त्येव च सन्न्यसेत् ॥७०॥

हे भैरव! अँगूठे के अगलेभाग को ग्रन्थियों पर रखकर साधक को माला से मन्त्र-जप करना चाहिये। पवित्रा में जितनी गाँठे हों, उतनी ही संख्या में जपपूर्वक मन्त्रन्यास करे ॥७०॥

मन्त्राणि तस्य तेन स्यादेवाङ्गोपनियोजनम् ।
दुर्गातन्त्रेण मन्त्रेण तत्त्वन्यासं तु कारयेत् ॥७१॥

इस प्रकार से मन्त्रों का उसके अङ्गो से समायोजन हो जाता है। तत्पश्चात् दुर्गातन्त्र के मन्त्रों से साधक तत्त्वन्यास करे ॥७१॥

एकत्र न्यस्य सकलं यज्ञपात्रे पवित्रकम् ।
तस्मिन् निधाय गन्धादि पुष्पाणि च सुशोभनम् ॥७२॥
तत्त्वन्यासं ततः कुर्यादङ्गुल्यग्रेण भैरव ।
विष्णोस्तु मूलमन्त्रेण तत्त्वन्यासं तु कारयेत् ॥७३॥

हे भैरव ! सभी पवित्राओं को एक ही स्थान पर यज्ञपात्र में रखकर, उसमें सुन्दरगन्ध, पुष्प आदि चढ़ाकर अंगुलि के अगलेभाग से तत्त्वन्यास करना चाहिये। तत्त्वन्यास, विष्णु के मूलमन्त्र से करे॥७२-७३॥

इदं विष्णुरिति प्रोक्तं मन्त्रन्यासं द्विजस्य हि ।
शूद्राणां मन्त्रविन्यासे मन्त्रो वै द्वादशाक्षरः ॥७४॥

इदं विष्णु–यह वैदिक मन्त्र, द्विज-वर्णों के मन्त्रन्यास के लिए है तथा शूद्रों के मन्त्रन्यास हेतु द्वादशाक्षरमन्त्र **(ॐ नमो भगवते वासुदेवाय)** बताया गया है ॥७४॥

प्रासादेन तु मन्त्रेण तत्त्वन्यासो मम स्मृतः ।
अनेन मन्त्रन्यासं च दानं चानेन कारयेत् ।।७५।।

प्रासादमन्त्र से मेरा तत्त्वन्यास बताया गया है । इसी से मन्त्र-न्यास और दान, दोनों ही करना चाहिये ।।७५।।

कुंकुमोशीरकर्पूरैश्चन्दनादिविलेपनैः ।
पवित्राणि विलिप्याथ तत्त्वन्यासं तु योजयेत् ।।७६।।

साधक कुङ्कुम, खश, कपूर और चन्दन के लेपन से पवित्राओं का लेपन (अर्चन) कर तत्त्वन्यास करे ।।७६।।

सम्पूज्य मण्डले देवीं विधिवत् प्रयतो नरः ।
वैष्णवीतन्त्रमन्त्रेण दुर्गातन्त्रेण भैरव ।
दुर्गाबीजेन दद्यात् तु देव्या मूर्ध्नि पवित्रकम् ।।७७।।

हे भैरव ! साधक मनुष्य को मण्डल में वैष्णवीतन्त्र या दुर्गातन्त्र के मन्त्र से विनम्रता से विधिपूर्वक देवी का पूजन करना चाहिये तथा दुर्गामन्त्र से देवी के मस्तक पर उस पूजितपवित्रा को चढ़ाना चाहिए ।।७७।।

यस्य देवस्य यः प्रोक्तस्तस्य तेनैव मण्डलम् ।।७८।।
यस्य यस्य तु यो मन्त्रो यथा ध्यानादिपूजनम् ।
तत् तत् तेनैव मन्त्रेण पूजयित्वा प्रयत्नतः ।
तस्यैव बीजमन्त्राभ्यां मूर्ध्नि दद्यात् पवित्रकम् ।।७९।।

जिस देवता का जिस प्रकार का मण्डल कहा गया है, उसी प्रकार के मण्डल से जो-जो मन्त्र ध्यान-पूजन आदि के बताये गये हैं, उन्हीं के अनुसार उनका पूजन प्रयत्नपूर्वक करना चाहिये और उन्हीं के बीजमन्त्रों से देवता के मस्तक पर पवित्रारोपण भी करना चाहिये ।।७८-७९।।

पवित्रं मम यो दद्याद् देवेभ्यश्च पवित्रकम् ।
सर्वेषामेव देवानां सम्पूर्णार्थश्च भैरव ।।८०।।
अग्निर्ब्रह्मा भवानी च गजवक्त्रो महोरगः ।
स्कन्दो भानुर्मातृगणो दिक्पालाश्च नवग्रहाः ।।८१।।
एतान् घटेषु प्रत्येकं पूजयित्वा यथाविधि ।
पवित्रं मूर्ध्नि चैकैकं दद्यादेवेभ्यः समाहितः ।।८२।।

हे भैरव ! इस प्रकार जो मुझे या देवताओं को पवित्रारोपण करता है । उसकी सभी देवों की साधना का मनोरथ, पूर्ण हो जाता है । अग्नि, ब्रह्मा, भवानी, गणेश, नाग, स्कन्द, सूर्य, मातृगण, दिक्पाल, नवग्रह इनमें से प्रत्येक का अलग-अलग

घटों पर विधिपूर्वक पूजन कर, एक-एक पवित्रा को, एक-एक देवता के मस्तक पर चढ़ाये।।८०-८२।।

पञ्चगव्यचरुं कृत्वा देव्यै दत्त्वाहुतित्रयम् ।
तेनैव विष्णवे दत्त्वा शम्भवे च यथाविधि ।।८३।।
आज्यैरष्टोत्तरशतं तिलैराज्यैस्तथैव च ।
अष्टोत्तरशतं दद्यान्महादेव्यै च साधकः ।।८४।।

साधक पञ्चगव्य में चरु बनाकर देवी को तीन आहुतियाँ प्रदान करे। उसी से विष्णु एवं शिव को भी विधिपूर्वक आहुति देवे। तत्पश्चात् साधक केवल घी से एक सौ आठ आहुतियाँ तथा तिल एवं घी दोनों से १०८ आहुतियाँ महादेवी को प्रदान करे।।८३-८४।।

एवमेव विधानेन विष्ण्वादीनां च साधकः ।
पवित्रारोपणं कुर्याद् धर्मकामार्थसिद्धये ।।८५।।

धर्म, काम और अर्थ की सिद्धि के लिए साधक को इसी प्रकार विष्णु आदि देवताओं के लिए भी पवित्रारोपण करना चाहिये।।८५।।

नैवेद्यैर्विविधैःपेयैःवटपिष्टकमोदकैः ।
कूष्माण्डैर्नारिकेलैश्च खर्ज्जुरैः पनसैस्तथा ।।८६।।
आम्रदाडिमकर्कारुद्राक्षादिविविधैः फलैः ।
भक्ष्यभोज्यादिभिः सर्वैर्मत्स्यैर्मांसैस्तथौदनैः ।।८७।।
गन्धैः पुष्पैस्तथा धूपैर्दीपैश्च सुमनोहरैः ।
वासोभिर्भूषणैश्चैव भवानीसाधको यजेत् ।।८८।।

देवीसाधक को पेयपदार्थ, वट (बड़ा), पिष्ट (चूर्ण) और मोदक आदि अनेक प्रकार के नैवेद्य, कूष्माण्ड, नारीयल, खजूर, कटहल, आम, अनार, कर्कारु (कुम्हड़ा), अंगूर आदि विविध फलों, भक्ष्य, भोज्य आदि, सभी प्रकार की मछलियों, मांसों एवं ओदन (भात) से तथा सब प्रकार के धूपदीप, वस्त्राभूषण आदि से पूजन करना चाहिये।।८६-८८।।

नटनर्तकसङ्घैश्च वेश्याभिश्चैव भैरव ।
नृत्यगीतैः समुदितो जागरं कारयेन्निशि ।।८९।।
भोजयेद् ब्राह्मणांश्चापि ज्ञातीनपि द्विजातिभिः ।।९०।।

हे भैरव ! उक्त पवित्रारोपण के अवसर पर नट-नर्तकों के समूह तथा वेश्या आदि द्वारा प्रसन्नतापूर्वक, रात्रिपर्यन्त, नृत्यगीत आदि के माध्यम से जागरण कराये। ब्राह्मणों, जाति-भाइयों एवं द्विजातियों को भी भोजन कराये।।८९-९०।।

पवित्रारोपणे वृत्ते दक्षिणामुपदापयेत् ।
हिरण्यं गां तिलघृतं वासो वा शाकमेव वा ।।९१।।

पवित्रारोपण का कार्य सम्पन्न हो जाने पर दक्षिणादान करे। इस निमित्त साधक, स्वर्ण, गौ, तिल, घृत, वस्त्र, शाक जो कुछ हो सके, श्रद्धापूर्वक प्रदान करे॥९१॥

इमं मन्त्रं ततः पश्चात् साधकः समुदीरयेत् ।
मणिविद्रुममालाभिर्मन्दारकुसुमादिभिः ।
इयं सांवत्सरी पूजा तवास्तु परमेश्वरि ।।९२।।

मन्त्रार्थ–हे परमेश्वरि ! तब साधक **मणि......परमेश्वरि** इस मंत्र को पढ़े– मणि, मूँगा आदि रत्नों तथा मन्दार आदि फूलों की इन मालाओं से की गई, यह पवित्रारोपण की वार्षिकपूजा, आपको स्वीकार हो॥९२॥

ततो विसर्जयेद् देवीं पूजाभिः प्रतिपत्तिभिः ।।९३।।
एवं कृते पवित्राणां दाने देव्या यथाविधि ।
संवत्सरस्य या पूजा सम्पूर्णा वत्सराद् भवेत् ।।९४।।

तब पूजा आदि कर्मकाण्डों से देवी का विसर्जन करे। इस प्रकार विधिपूर्वक देवी के निमित्त, पवित्रा-दान करने पर, संवत्सर की वार्षिकी पूजा, वर्षभर के लिए परिपूर्ण हो जाती है॥९३-९४॥

कल्पकोटिशतं यावद् देवीगेहे वसेन्नरः ।
तत्रापि सुखसौभाग्यसमृद्धिरतुला भवेत् ।।९५।।

॥ इति श्रीकालिकापुराणे पवित्रारोपणोनाम एकोनषष्टितमोऽध्यायः ॥५९॥

ऐसा करने वाला सौकरोड़कल्पों तक देवी के धाम में निवास करता है। तथा वहाँ भी उसे अतुलनीयसुख और समृद्धि की प्राप्ति होती हैं ॥९५॥

॥ श्रीकालिकापुराण में पवित्रारोपण नामक उन्सठवाँ अध्याय सम्पूर्ण हुआ ॥५९॥



षष्टितमोऽध्यायः

महिषासुरोपाख्यानम्

।। श्रीभगवानुवाच ।।

दुर्गातन्त्रेण मन्त्रेण कुर्याद् दुर्गामहोत्सवम् ।
महानवम्यां शरदि बलिदानं नृपादयः ।।१।।

श्रीभगवान् बोले– राजा आदि को शरदऋतु में महानवमी के दिन दुर्गातन्त्र के मन्त्रों से बलिदानपूर्वक, दुर्गामहोत्सव करना चाहिये ।।१।।

आश्विनस्य तु शुक्लस्य भवेद् या अष्टमी तिथिः ।
महाष्टमीति सा प्रोक्ता देव्याः प्रीतिकरी परा ।।२।।

आश्विनमास के शुक्लपक्ष की जो अष्टमीतिथि होती है, उसे महाष्टमी कहते हैं। वह देवी को अत्यधिक प्रसन्नतादायक होती है।।२।।

ततोऽनु नवमी या स्यात् सा महानवमी स्मृता ।
सा तिथिः सर्वलोकानां पूजनीया शिवप्रिया ।।३।।

उसके पश्चात् जो नवमीतिथि होती है । उसे महानवमी कहा जाता है । उस तिथि में सभी लोगों द्वारा, शिवप्रिया, महामाया देवी का पूजन किया जाना चाहिये ।।३।।

अनयोर्वत्स पूजायां विशेषं शृणु भैरव ।
सम्पूज्य मण्डले देवीं विधिवत् प्रयतो नरः ।।४।।
वैष्णवीतन्त्रमन्त्रेण दुर्गातन्त्रेण भैरव ।
मूर्तिभेदे यथा देवी पूजां गृह्णाति भूतये ।।५।।

हे वत्स भैरव ! इन महाष्टमी और महानवमी की पूजा के विषय में, विशेष सुनो। इसमें मण्डल बनाकर साधक को ऐश्वर्यप्राप्ति के लिए वैष्णवीतन्त्र या दुर्गातन्त्र के मन्त्रों से विनम्रभाव से विधिपूर्वक देवी की पूजा करनी चाहिये। साथ ही मूर्तिभेद से देवी किस प्रकार की पूजा स्वीकार करती हैं। उसे भी सुनो।।४-५।।

।। दशभुजादुर्गापूजन ।।

कन्यासंस्थे रवौ वत्स शुक्लामारभ्य नन्दिकाम् ।
अयाचिताशी नक्ताशी एकाशी त्वथ चापदः ।।६।।

हे वत्स ! सूर्य के कन्याराशि में होने पर आश्विनमास के शुक्लपक्ष की नन्दिका (प्रतिपद) तिथि से बिना मांगे जो कुछ मिल जाय, उसी का भोजन कर, रात्रि में भोजन कर या एक ही समय भोजन कर अथवा जलमात्र-ग्रहण कर, साधक साधना करे ॥६॥

प्रातःस्नायी जितद्वन्द्वस्त्रिकालं शिवपूजकः ।
जपहोमसमायुक्तो भोजयेच्च कुमारिकाः ॥७॥

वह सुखदुःखादि द्वन्द्वों को जीतकर, प्रातःकाल स्नान कर, तीनों काल शिव की या शिवा की पूजा करता हुआ जप-होम कर्मों में तत्पर रहे तथा कुमारियों को भोजन कराये॥७॥

बोधयेद् बिल्वशाखासु षष्ठ्यां देवीफलेषु च ।
सप्तम्यां विल्वशाखां तामाहृत्य प्रतिपूजयेत् ॥८॥

षष्ठीतिथि को वह बिल्ववृक्षशाखाओं तथा देवीफल (नारीयल) श्रीफल पर देवी का बोधन करे। सप्तमी के दिन उस बेल की टहनी को लाकर उन पर, देवी का पूजन करे ॥८॥

पुनः पूजां तथाष्टम्यां विशेषेण समाचरेत् ।
जागरं च स्वयं कुर्याद् बलिदानं महानिशि ॥९॥

तत्पश्चात् अष्टमीतिथि को विशेषरूप से पूजन करे। उस दिन रात्रिजागरण करे तथा महानिशा में स्वयं बलिदान करे ॥९॥

प्रभूतबलिदानं तु नवम्यां विधिवच्चरेत् ।
ध्यायेद् दशभुजां देवीं दुर्गातन्त्रेण पूजयेत् ॥१०॥

वह नवमीतिथि को भी विधिपूर्वक अधिकमात्रा में बलिप्रदान करे, उस अवसर पर दशभुजाओंवाली, महिषमर्दिनी देवी का ध्यान करे तथा दुर्गातन्त्र से उनका विधिवत पूजन करे॥१०॥

विसर्जनं दशम्यां तु कुर्याद् वै साधकोत्तमः ।
कृत्वा विसर्जनं तस्यां तिथौ नक्तं समाचरेत् ॥११॥

उत्तमसाधक को चाहिये कि वह दशमी को विसर्जन करे तथा विसर्जन के पश्चात् उस तिथि को रात्रि में ही भोजन करे ॥११॥

॥ षोडशभुजापूजन ॥

यदा तु षोडशभुजां महामायां प्रपूजयेत् ।
दुर्गातन्त्रेण मन्त्रेण विशेषं तत्र वै शृणु ॥१२॥

जब सोलहभुजाओं वाली महामाया का दुर्गातन्त्र के मन्त्रों से पूजन करना हो तो उसकी विशेषविधि मुझसे सुनो ॥१२॥

कन्यायां कृष्णपक्षस्य एकादश्यामुपोषितः ।
द्वादश्यामेकभक्तं तु नक्तं कुर्यात् परेऽहनि ।।१३।।

साधक, कन्याराशि (आश्विनमास) के कृष्णपक्ष की एकादशी तिथि को उपवास रखकर, द्वादशी को एक समय तथा दूसरे दिन त्रयोदशी को नक्तव्रत (रात्रिभोजन) करे।।१३।।

चतुर्दश्यां महामायां बोधयित्वा विधानतः ।
गीतवादित्रनिर्घोषैर्नानानैवेद्यवेदनैः ।।१४।।

चतुर्दशी को नाना प्रकार के गायन, वादन, जयघोष तथा नैवेद्यादि निवेदन कर विधिपूर्वक देवी का बोधन करे।।१४।।

अयाचितं बुधः कुर्यादुपवासं परेऽहनि ।
एवमेव व्रतं कुर्याद् यावद्वै नवमी भवेत् ।।१५।।

अगले दिन अमावस्या को वह अयाचित (विना माँगे) मिले भोजन तथा उसके अगले दिन शुक्लपक्षकी प्रतिपद् से नवमीपर्यन्त इसी प्रकार उपवासादि तप करे।।१५।।

ज्येष्ठायां च समभ्यार्च्य मूलेन प्रतिपूजयेत् ।
उत्तरेणार्चनं कृत्वा श्रवणान्ते विसर्जयेत् ।।१६।।

साधक को चाहिये कि वह ज्येष्ठानक्षत्र में देवी की अर्चना करे तथा मूलनक्षत्र में पुनः पूजन करके, उत्तराषाढ़नक्षत्र में अर्चन करने के पश्चात् देवी का श्रवण के अन्त में विसर्जन करे।।१६।।

।। अष्टादशभुजापूजन ।।

यदा त्वष्टादशभुजां महामायां प्रपूजयेत् ।
दुर्गातन्त्रेण मन्त्रेण तत्रापि शृणु भैरव ।।१७।।

हे भैरव ! जब अठारहभुजाओंवाली महामाया का पूजन, दुर्गातन्त्र के मन्त्रों से करना हो तो उसकी भी विधि, मुझसे सुनो।।१७।।

कन्यायां कृष्णपक्षस्य पूजयित्वार्द्रभे दिवा ।
नवम्यां बोधयेद् देवीं गीतवादित्रनिस्वनैः ।।१८।।

कन्याराशि में सूर्य के स्थित होने पर (आश्विन मास में), कृष्णपक्ष की नवमीतिथि (मातृनवमी) को आर्द्रानक्षत्र होने पर पूजनपूर्वक गायन-वादन द्वारा देवी का बोधन करे ।।१८।।

शुक्लपक्षे चतुर्थ्यां तु देवीकेशविमोचनम् ।
प्रातरेव तु पञ्चम्यां स्नापयेत् तु शुभैर्जलैः ।।१९।।

शुक्लपक्ष की चतुर्थीतिथि को देवी का केशविमोचन करे तथा पञ्चमी तिथि को प्रातः काल ही शुभ (पवित्र) जल से देवी को स्नान कराये।।१९।।

सप्तम्यां पत्रिकापूजा अष्टम्यां चाप्युपोषणम् ।
पूजाजागरणं चैव नवम्यां विधिवद्बलिः ।।२०।।

सप्तमी को पत्रिकापूजा तथा अष्टमी को उपवासपूर्वक पूजा एवं जागरण करे और नवमी को विधिपूर्वक बलिप्रदान करे।।२०।।

सम्प्रेषणं दशम्यां तु क्रीडाकौतुकमङ्गलैः ।
नीराजनं दशम्यां तु बलवृद्धिकरं महत् ।।२१।।

नाना प्रकार के क्रीड़ा-कौतुक, मङ्गलगीत, वाद्यों से दशमी तिथि को देवी की विदाई करे। दशमी को देवी की आरती करना अत्यधिकबलवृद्धि करने वाला है।।२१।।

।। वैष्णवीपूजन ।।

यदा वै वैष्णवीं देवीं महामायां जगन्मयीम् ।
पूजयेत् तत्र च तदा विशेषं शृणु भैरव ।।२२।।

जब वैष्णवी देवी, जगत्मयी महामाया का पूजन करना हो तो हे भैरव ! उसके विषय में मुझसे सुनो ।।२२।।

कन्यासंस्थे रवौ पूजा या शुक्ला तिथिरष्टमी ।
तस्यां रात्रौ पूजितव्या महाविभवविस्तरैः ।।२३।।

जब सूर्य, कन्याराशि में स्थित हो (आश्विनमास हो) और शुक्लपक्ष की अष्टमीतिथि हो तो उस रात्रि में, अत्यन्त वैभव-विस्तार के अनुसार देवी का पूजन करना चाहिये।।२३।।

नवम्यां बलिदानं तु कर्तव्यं वै यथाविधि ।
जपं होमं च विधिवत् कुर्यात् तत्र विभूतये ।
सम्पूजयेन्महादेवीमष्टपुष्पिकया नरः ।।२४।।

नवमीतिथि को विधिवत् बलिदान करना चाहिये। उस समय ऐश्वर्यप्राप्ति के लिए विधिपूर्वक जप-होम भी करना चाहिये। तथा साधक मनुष्य, आठ पुष्पों की पुष्पाञ्जलि अर्पण कर महादेवी का भलीभाँति पूजन करे।।२४।।

रामस्यानुग्रहार्थाय रावणस्य वधाय च ।
रात्रावेव महादेवी ब्रह्मणा बोधिता पुरा ।।२५।।

प्राचीन काल में ब्रह्मा ने राम पर कृपा करने और रावण के वध के निमित्त रात्रि में ही महादेवी का बोधन (जागरण) किया था।।२५।।

ततस्तु त्यक्तनिद्रा सा नन्दायामाश्विने सिते ।
जगाम नगरीं लङ्कां यत्रासीद्राघवः पुरा ।।२६।।

तब वे देवी आश्विनमास के शुक्ल पक्ष की नन्दातिथि (प्रतिपद्) को निद्रा छोड़कर, लङ्कापुरी में गईं जहाँ राघव (रामचन्द्र) पहले से ही थे ।।२६।।

तत्र गत्वा महादेवी तदा तौ रामरावणौ ।
युद्धं नियोजयामास स्वयमन्तर्हिताम्बिका ।।२७।।

तब वहाँ जाकर महादेवी, अम्बिका ने स्वयं अन्तर्हित रहते हुए ही उन दोनों राम-रावण को युद्ध में नियोजित किया ।।२७।।

रक्षसां वानराणां च जग्ध्वा सा मांसशोणिते ।
रामरावणयोर्युद्धं सप्ताहं सा न्ययोजयत् ।।२८।।

उन्होंने राक्षसों एवं वानरों के मांस और शोणित के भोजन तथा रामरावण के युद्ध का सप्ताहपर्यन्त आयोजन किया ।।२८।।

व्यतीते सप्तमे रात्रौ नवम्यां रावणं ततः ।
रामेण घातयामास महामाया जगन्मयी ।।२९।।

तब सात रातें बीत जाने पर नवमीतिथि को जगत्स्वरूपा, उस महामाया ने, राम के माध्यम से, रावण को मार दिया ।।२९।।

यावत्तयोः स्वयं देवी युद्धकेलिमुदैक्षत ।
तावत् तु सप्तरात्राणि सैव देवैः सुपूजिता ।।३०।।

जब तक देवी स्वयं उन दोनों की युद्ध-क्रीड़ा को देखती रहीं तब तक, सात- रात्रितक वे ही देवताओं द्वारा भी सुन्दरढंग से पूजी जाती रहीं।।३०।।

निहते रावणे वीरे नवम्यां सकलैः सुरैः ।
विशेषपूजां दुर्गायाश्चक्रे लोकपितामहः ।।३१।।
ततः सम्प्रेषिता देवी दशम्यां शार्वरोत्सवैः ।।३२।।

नवमी को वीररावण के मारे जाने पर, लोकपितामह ब्रह्मा ने समस्त देवताओं के सहित दुर्गादेवी की विशेषपूजा की। तत्पश्चात् दशमीतिथि को देवी प्रसन्नतापूर्वक उन देवों द्वारा शार्वरोत्सव के द्वारा विदा की गईं।।३१-३२।।

शक्रोऽपि देवसेनाया नीराजनमथाकरोत् ।
शक्त्यर्थं सुरसैन्यानां देवराज्यस्य वृद्धये ।।३३।।

देवराजइन्द्र ने भी देवसेना का नीराजन, अपनी देवसेना की शक्ति तथा देवताओं के राज्य की वृद्धि हेतु किया।।३३।।

रामरावणबाणेन युद्धं चावेक्ष्य भीतिदम् ।
तृतीयायां तु लङ्कायाः पूर्वोत्तरदिशि स्थितम् ।।३४।।
स्वातीनक्षत्रयुक्तायां भीतं सुरबलं महत् ।
शान्त्यर्थं वरयामास देवेन्द्रो वचनाद् हरेः ।।३५।।

स्वातीनक्षत्रयुक्त तृतीया को राम-रावण के बाणों से किये जाते उस भयप्रद-युद्ध को देखकर देवताओं की विशाल सेना भयभीत हो तथा स्तब्ध हो गई। उय

समय वह लङ्का के पूर्वोत्तरभाग में स्थित हो गई थी। उसी की शान्ति हेतु देवराजइन्द्र ने भगवानविष्णु के वचनानुसार उसे रोक दिया था॥३४-३५॥

ततस्तु श्रवणेनाथ दशम्यां चण्डिकां शुभाम्।
विसृज्य चक्रे शान्त्यर्थं बलनीराजनं हरिः॥३६॥

तब श्रवणनक्षत्र में कल्याणकारिणी चण्डिकादेवी का दशमी को विसर्जन करने के पश्चात् हरि (इन्द्र) ने शान्ति हेतु अपनी सेना का नीराजन किया॥३६॥

नीराजितबलः शक्रस्तत्र रामं च राघवम्।
सम्प्राप्य प्रययौ स्वर्गं सह देवैः शचीपतिः॥३७॥

वहाँ अपनी सेना का नीराजन (एक प्रकार की पूजा विशेष) हो जाने के पश्चात् रघुवंश में उत्पन्न राम को पाकर, देवीशची के पति, देवराजइन्द्र, देवताओं के सहित स्वर्ग को चले गये॥३७॥

इतिवृत्तं पुराकल्पे मनोः स्वायम्भुवेऽन्तरे।
प्रादुर्भूता दशभुजा देवी देवहिताय वै।
नृणां त्रेतायुगस्यादौ जगतां हितकाम्यया॥३८॥

यह सब पहले कल्प में स्वायम्भुवमन्वन्तर में त्रेतायुग के आरम्भ में हुआ था। उस समय मनुष्यों और देवताओं के कल्याण के लिए सम्पूर्ण जगत् के हित की कामना से दशभुजादुर्गा देवी प्रकट हुई थीं॥३८॥

पुराकल्पे यथावृत्तं प्रतिकल्पं तथा तथा।
प्रवर्तते स्वयं देवी दैत्यानां नाशनाय वै॥३९॥

पहले कल्प में जैसा हुआ था वैसे ही प्रत्येक कल्प में देवी, दैत्यों के नाश के लिए प्रवृत्त होती हैं॥३९॥

प्रतिकल्पं भवेद्रामो रावणश्चापि राक्षसः।
तथैव जायते युद्धं तथा त्रिदशसङ्गमः॥४०॥

प्रत्येक कल्प में राम तथा राक्षसराज रावण और राक्षसों एवं देवसमूह का युद्ध हो तो भी उसी भाँति होता है॥४०॥

एवं रामसहस्राणि रावणानां सहस्रशः॥४१॥
भवितव्यानि भूतानि तथा देवी प्रवर्तते।
पूजयन्ति सुराः सर्वे बलं नीराजयन्त्यपि॥४२॥

इस प्रकार हजारों राम और हजारों रावण हुये हैं और होंगे तथा देवी उन्हें युद्ध में प्रवृत्त करती हैं। सभी देवगण भी उस समय उनका पूजन एवं सेना का नीराजन करते हैं॥४१-४२॥

तथैव च नराः सर्वे कुर्युः पूजां यथाविधि।
बलनीराजनं राजा कुर्याद् बलविवृद्धये॥४३॥

उसी प्रकार सभी मनुष्यों को विधिपूर्वक देवी का पूजन करना चाहिये। राजाओं को अपना बल बढ़ाने के लिए अपनी सेना का नीराजन भी करना चाहिये ॥४३॥

दिव्यालङ्कारयुक्ताभिः र्ललनाभिः प्रवर्तनम्।
कर्तव्यं नृत्यगीतानि क्रीडाकौतुकमङ्गलैः ॥४४॥

दिव्य-आभूषणों से युक्त, मादकसुन्दरियों के नृत्य, गायन, क्रीड़ा-कौतुक आदि माङ्गलिककार्यों का प्रवर्तन करे ॥४४॥

मोदकैः पिष्टकैः पेयैर्भक्ष्यभोज्यैरनेकशः।
कूष्माण्डैर्नारिकेलैश्च खर्जूरैः पनसैस्तथा ॥४५॥
द्राक्षामलकशाण्डिल्यैः प्लीहैश्च करुणैस्तथा।
कशेरुक्रमुकैर्मूलैः सजम्बूतिन्दुकादिभिः ॥४६॥
गव्यैर्गुडैस्तथा मांसैर्मद्यैर्मधुभिरेव च।
बालप्रियैश्च नैवेद्यैर्लाजाक्षतफलादिभिः ॥४७॥
इक्षुदण्डैः सिताभिश्च लवलीनागरङ्गकैः।
अजाभिर्महिषैर्मेषैरात्मशोणितसञ्चयैः ॥४८॥
पक्ष्यादिबलिजातीयैस्तथा नानाविधैर्मृगैः।
पूजयेच्च जगद्धात्रीं मांसशोणितकर्दमैः ॥४९॥

साधक को अनेक प्रकार के मोदक, चूर्ण, पीनेयोग्य और भोजनयोग्य नैवेद्यों, कूष्माण्ड, नारीयल, खजूर, कटहल, अङ्गूर, आँवला, शाण्डिल्य (बेल), प्लीहा (केशर), करुण (चमेली), कशेरू, क्रमुक (सुपारी), मूल (मूली), जामुन, तिन्दुक, आदि फलों, गव्य (गोदुग्ध, दही, घी आदि), गुड़, मांस, मद्य, मधु, बच्चों के प्रिय नैवेद्य, लाजा (लावा), अक्षत, फल, ईख, मिश्री, लवली (लता विशेष), नारङ्गी, बकरियों, भैंसों, भेड़ों और अपने रक्तसञ्चय, बलिंयोग्य पक्षियों तथा अनेक प्रकार के पशुओं के रक्त और मांस के कीचड़ से जगत् को धारण करने वाली, महामाया का पूजन करना चाहिये ॥४५-४९॥

रात्रौ स्कन्दविशाखस्य कृत्वा पिष्टकपुत्रिकाम्।
पूजयेच्छत्रुनाशाय दुर्गायाः प्रीतये तथा।
होमं च सतिलैराज्यैर्मांसैरपि तथा चरेत् ॥५०॥

वह रात्री में स्कन्द, विशाख की आटे की पुतली बनाकर, उनका दुर्गा देवी की प्रसन्नता तथा शत्रु के नाश के लिए पूजन करे। साथ ही तिल, घी, एवं मांस से होम भी करे ॥५०॥

उग्रचण्डादिकाः पूज्यास्तथाष्टौ योगिनीः शुभाः ॥५१॥
योगिन्यश्च चतुःषष्टिस्तथा वै कोटियोगिनीः।
नवदुर्गास्तथा पूज्या देव्याः सन्निहिताः शुभाः ॥५२॥

उस समय उग्रचण्डा आदि शुभदायिनी ८ योगिनियों, चौंसठ योगिनियों किंवा करोड़ों योगिनियों का और मङ्गलमयी नवदुर्गाओं का जो सदैव देवी के साथ ही रहती हैं, पूजन करना चाहिये ।।५२।।

जयन्त्यादिर्ग्रन्थिपुष्पैस्ता देव्या मूर्तयो यतः ।
देव्यः सर्वाणि चास्त्राणि भूषणानि तथैव च ।।५३।।
अङ्गप्रत्यङ्गयुक्तानि वाहनं सिंहमेव च ।
महिषासुरमर्दिन्याः पूजयेद् भूतये सदा ।।५४।।

यतः (चूँकि) जयन्ती आदि देवियाँ, देवी का ही स्वरूप हैं अतः साधक को ऐश्वर्यप्राप्तिहेतु, अङ्ग-प्रत्यङ्गों से युक्त, सभी देवियों तथा वाहन, सिंह के सहित महिषमर्दिनी का सदैव पूजन करना चाहिये ।।५३-५४।।

पुराकल्पे महादेवी मनोः स्वायम्भुवेऽन्तरे ।
नृणां कृतयुगस्यादौ सर्वदेवैः स्तुता सदा ।।५५।।
महिषासुरनाशाय जगतां हितकाम्यया ।
योगनिद्रा महामाया जगद्धात्री जगन्मयी ।।५६।।
भुजैः षोडशभिर्युक्ता भद्रकालीति विश्रुता ।
क्षीरोदस्योत्तरे तीरे बिभ्रती विपुलां तनुम् ।।५७।।

महादेवी, महामाया, योगनिद्रा, जगत् को धारण करने वाली, जगत्मयी पहले कल्प के, स्वायम्भुवमनु के मन्वन्तर में, सत्ययुग के आरम्भ में, महिषासुर के नाश के लिए तथा मनुष्यों एवं संसार के कल्याण के लिए सभी देवताओं द्वारा सदैव स्तुत हुईं। उस समय वे सोलह भुजाओं से युक्त हो तथा विशालशरीर को धारण कर क्षीर-सागर के उत्तरी तटपर, भद्रकाली नाम से प्रसिद्ध हुईं।।५५-५७।।

।। षोडशभुजाध्यान ।।

अतसीपुष्पवर्णाभा ज्वलत्काञ्चनकुण्डला ।
जटाजूटसखण्डेन्दुमुकुटत्रयभूषिता ।।५८।।

वे तीसी के पुष्प के समान रंग की आभावाली थीं। उनके कुण्डल जलते हुए (तपे हुए), सोने के बने थे। वे जटाजूट, अर्धचन्द्र एवं स्वर्णमुकुट तीनों से सुशोभित थीं।

नागहारेण सहिता स्वर्णहारविभूषिता ।
शूलं चक्रं च खड्गं च शङ्खं बाणं तथैव च ।।५९।।
शक्तिं वज्रं च दण्डं च नित्यं दक्षिणबाहुभिः ।
बिभ्रती सततं देवी विकाशिदशनोज्ज्वला ।।६०।।

खेटकं चर्मचापं च पाशं चाङ्कुशमेव च ।
घण्टां पर्शुं च मुसलं बिभ्रती वामपाणिभिः ।।६१।।

वे नाग की माला के साथ ही सोने की माला से भी विशेषरूप से सुशोभित थीं। वे देवी नित्य अपनी दाहिनी भुजाओं में शूल, चक्र, खड्ग, शङ्ख, बाण, शक्ति, वज्र तथा दण्ड एवं बाईं भुजाओं में खेटक, चर्म (ढाल), धनुष, पाश, अङ्कुश, घण्टा, परशु और मुसल धारण किये हुए थीं। उनके उज्ज्वल दाँत, खिले हुए (मुस्कान भरे) थे॥५९-६१॥

सिंहस्था नयनै रक्तवर्णैस्त्रिभिरतिज्वला ।
शूलेन महिषं भित्त्वा तिष्ठन्ती परमेश्वरी ।
वामपदेन चाक्रम्य तत्र देवी जगन्मयी ।।६२।।

वे सिंह पर सवार थीं, अपने लाल रंग के तीनों नेत्रों से वे अत्यन्त प्रकाशित हो रही थीं। जगत्स्वरूपादेवी, महामाया (भद्रकाली), परमेश्वरी, ऐसे रूप में शूल से महिषासुर को भेदकर तथा अपने बाएँ पैर से उसे आक्रान्त कर वहाँ स्थित थीं॥६२॥

तां दृष्ट्वा सकला देवाः प्रणम्य परमेश्वरीम् ।
नोचुः किञ्चन तं दृष्ट्वा निहतं महिषासुरम् ।।६३।।

उन्हें देखकर सभी देवताओं ने उन परमेश्वरी को प्रणाम किया। वे महिषासुर को मारा गया देखकर सहसा कुछ भी न बोल सके॥६३॥

ततः प्रोवाच देवांस्तान् ब्रह्मादीन् परमेश्वरी ।
स्मितप्रभिन्नवदना विकाशिवदनोज्ज्वला ।।६४।।

मुस्कान से खुले और प्रसन्न तथा उज्ज्वलमुखवाली, परमेश्वरी महामाया तब उन ब्रह्मा आदि देवताओं से बोलीं—॥६४॥

।। देव्युवाच ।।

गच्छन्तु भोः सुरगणा जम्बुद्वीपान्तरं प्रति ।
हिमवत्-पर्वतासन्ने वरं कात्यायनाश्रमम् ।।६५।।
तत्रैव भवतां साध्यं भविष्यति न संशयः ।।६६।।

श्रीदेवी बोलीं– हे देवगण! आप जम्बूद्वीप में, हिमालयपर्वत के निकट कात्यायनमुनि के आश्रम पर जायें। वहीं आपका प्रयोजन, सिद्ध होगा। इसमें कोई संशय नहीं है॥६५-६६॥

।। श्रीभगवानुवाच ।।

इत्युक्त्वा सा महादेवी तत्रैवान्तरधीयत ।
देवा अपि तदा जग्मुः कात्यायनमुनेः पुरम् ।।६७।।

श्रीभगवान् बोले– ऐसा कह कर वह महादेवी वहाँ ही अन्तर्ध्यान हो गईं। तदनन्तर देवता भी कात्यायनमुनि के निवासस्थान को गये ॥६७॥

आश्रमं प्रति ते गत्वा विस्मयाविष्टमानसाः ।
निहतो महिषो देव्या दिष्टोऽस्माभिर्यदर्थतः ॥६८॥
स्तुता चैषा महादेवी जगद्धात्री जगन्मयी ।
किमर्थमाह सा देवी गन्तुं कात्यायनाश्रमम् ॥६९॥
किमन्यद् वाञ्छितं कार्यमस्माकं वा भविष्यति ।
इति ब्रुवन्तस्ते सर्वे गच्छन्ति स्म परस्परम् ।
हिमवत्-पर्वतासन्नं मुनि-कात्यायनाश्रमम् ॥७०॥

उस हिमालयपर्वत के समीप स्थित, कात्यायनमुनि के आश्रम पर जाते हुए आश्चर्यचकित होकर वे सभी आपस में इस प्रकार से कह रहे थे– हम सब के भाग्य से देवी द्वारा यह महिषासुर मारा गया। जिसके लिए हम लोगों ने इस जगत्मयी, जगत् का पालन करने वाली, महादेवी की स्तुति की थी। अब किस निमित्त उन्होंने हमें कात्यायन मुनि के आश्रम पर जाने को कहा है ? वहाँ पर हम लोगों का कौन सा अन्य इच्छितकार्य सम्पन्न होगा ॥६८-७०॥

ततः सेन्द्राः सदिक्पाला ब्रह्मविष्णुशिवास्तथा ।
निषेदुः सुचिरं प्रीता दुर्गादर्शनलालसाः ॥७१॥

तब वहाँ जाकर इन्द्रादि अन्य दिक्पालों के सहित, ब्रह्मा-विष्णु तथा शिव अत्यधिक प्रसन्नता एवं भगवती दुर्गा के दर्शन की लालसा से वहीं बैठ गये॥७१॥

ततो रुद्रगणाः सर्वे महिषासुरचेष्टितम् ।
आगत्य कथयामासुर्देवलोकपराभवम् ॥७२॥

तब रुद्र के सभी गणों ने महिषासुर के कार्यों तथा लोक के पराजय का वृत्तान्त वहाँ आकर कहा ॥७२॥

ततस्तत्र महाकोपं ब्रह्मविष्णुशिवादयः ॥७३॥
चक्रुः कोऽन्योऽस्ति महिषो हतो देव्या स दानवः ।
पुनर्येनेह क्रियते जगद्विध्वंसनं भृशम् ॥७४॥

तब वहाँ उपस्थित ब्रह्मा, विष्णु और शिव आदि इन देवताओं ने महान् क्रोध किया कि जब वह दानव महिषासुर देवी के द्वारा पहले ही मार दिया गया है, तब यह अन्य कौन महिषासुर उत्पन्न हो गया जिसने इस प्रकार जगत् का विध्वंश कर दिया है ॥७३-७४॥

इति प्रकुप्यतां तेषां शरीरेभ्यः पृथक्-पृथक् ।
निश्चक्रमुश्च तेजांसि शक्तिरूपाणि तत्क्षणात् ॥७५॥

जब वे इस प्रकार क्रोध कर रहे थे तभी उनके शरीरों से, शक्ति के रूप में अलग-अलग तेज निकले ।।७५।।

तत्तेजोभिर्धृतवपुर्देवी कात्यायनेन वै ।
सन्धुक्षिता पूजिता च तेन कात्यायनी स्मृता ।।७६।।

उस तेजराशि से शरीर धारण की हुई देवी, कात्यायनमुनि द्वारा पूजी गईं। इसी से वे कात्यायनी नाम से स्मरण की जाती हैं।।७६।।

ततस्तेनैव मन्त्रेण दशबाहुयुतेन वै ।
पश्चाज्जघान महिषं जगद्धात्री जगन्मयी ।।७७।।

तब जगत्रूपा, जगत् का पालन करने वाली, दशभुजाओं से युक्त उस महादेवी ने उसी रूप में पश्चात्वर्ती महिषासुर का भी वध किया ।।७७।।

यदा स्तुता महादेवी बोधिता चाश्विनस्य च ।
चतुर्दशी कृष्णपक्षे प्रादुर्भूता जगन्मयी ।।७८।।
देवानां तेजसां मूर्तिः शुक्लपक्षे सुशोभने ।
सप्तम्यां साऽकरोद् देवी अष्टम्यां तैरलंकृता ।।७९।।
नवम्यामुपहारैस्तु पूजिता महिषासुरम् ।
निजघान दशम्यां तु विसृष्टान्तर्हिता शिवा ।।८०।।

जब स्तुति किये जाने और ब्रह्मादि द्वारा जागृत किये जाने पर, जगन्मयी देवी आश्विन के कृष्णपक्ष की चतुर्दशीतिथि को उत्पन्न हुईं तो उन्होंने शुक्लपक्ष की सप्तमीतिथि को देवताओं के तेज से मूर्तरूपधारण किया तथा अष्टमी को उन्हीं के द्वारा किये गये अलङ्कारों से विभूषित एवम् नवमी को उन्हीं के उपहारों से पूजित हो, महिषासुर का वध किया। तत्पश्चात् वह शिवा, दशमी को विसर्जित किये जाने पर अन्तर्धान हो गईं ।।७८-८०।।

।। मार्कण्डेय उवाच ।।

श्रुत्वेमां सगरो राजा देव्याः सङ्गतिमुत्तमाम् ।
संशयालुश्च तद्रूपे पुनरौर्व्वमपृच्छत् ।।८१।।

मार्कण्डेय बोले– जब राजा सगर ने देवी के इस उत्तमरूप को सुना तो उस रूप के प्रति संशय (उत्सुकता) वश, और्वमुनि से पुनः पूछा ।।८१।।

।। सगर उवाच ।।

यदि पश्चान्महादेवी जघान महिषासुरम् ।
कथं पूर्वं भद्रकाली-रूपाभून्महिषासुरम् ।।८२।।
तथाहि दर्शनं तस्या पादाक्रान्तश्चकार च ।
हृदि शूलेन निर्भिन्नं ददृशुः सकलाः सुराः ।
एवं तु संशयं छिन्धि मुनिश्रेष्ठ ममाधुना ।।८३।।

सगर बोले– यदि महादेवी ने बाद में महिषासुर का वध किया तो पहले अपने भद्रकालीरूप में जिस महिषासुर को पैरों से कुचलकर, त्रिशूल से उसके हृदय को भिन्न किये हुए रूप में देवी ने दर्शन दिया था। जिसे सभी देवताओं ने देखा भी था। वह क्या था? यह अन्तर कैसे हुआ। हे मुनियों में श्रेष्ठ ! आप मेरे इस संशय का समाधान कीजिये॥८२-८३॥

॥ और्व उवाच ॥

शृणु त्वं नृपशार्दूल भद्रकाली यथा पुरा ।
प्रादुर्भूता महामाया महिषेण सहैव तु ॥८४॥

*और्व बोले–*हे राजाओं में सिंह के समान श्रेष्ठ ! जिस कारण से प्राचीनकाल में महिषासुर के सहित ही भद्रकाली उत्पन्न हुई थीं। उसे सुनो—॥८४॥

महिषासुर एवासौ निद्रायां निशि पर्वते ।
स्वप्नं प्रददृशे वीरो दारुणं घोरदर्शनम् ॥८५॥
महामाया भद्रकाली छित्त्वा खड्गेन मे शिरः ।
पपौ तस्य च रक्तानि व्यादितास्यातिभीषणा ॥८६॥

एक समय जब वह पर्वत पर रात्रि में निद्रामग्न था, वीर महिषासुर ने एक भयानकदिखाईदेनेवाला, कष्टकर, स्वप्न देखा। उसने देखा, महामायाभद्रकाली ने खड्ग से मेरे (उसके) सिर को काट कर रक्त को पी लिया था और वे भयानकमुख खोले हुए थीं ॥८५-८६॥

ततः प्रातर्भययुतः स दैत्यो महिषासुरः ।
तामेव पूजयामास सुचिरं सानुगस्तदा ॥८७॥

तत्पश्चात् प्रातः काल भयभीत हो, उस दैत्य, महिषासुर ने अपने अनुयायियोंसहित, चिरकाल तक, उस समय, उसी देवी, भद्रकाली, का पूजन किया ॥८७॥

आराधिता तदा देवी महिषेणासुरेण वै ।
प्रादुर्भूता भद्रकाली भुजैः षोडशभिर्युता ॥८८॥

तब उस महिषासुर द्वारा आराधना किये जाने पर देवी भद्रकाली, सोलह भुजाओं से युक्त हो प्रकट हुईं ॥८८॥

ततः प्रणम्य महिषो महामायां जगन्मयीम् ।
उवाचेदं वचो नम्रमूर्तिर्भक्तियुतोऽसुरः ॥८९॥

तब उस जगत्मयी महामाया को प्रणामकर, नम्रतापूर्वक, भक्तियुक्त हो महिषासुर ने ये वचन कहे ॥८९॥

॥ महिष-उवाच ॥

देवि खड्गेन सञ्छिद्य शोणितानि शिरो मम ।
त्वया भुक्तानि दृष्टानि मया स्वप्नेन निश्चितम् ॥९०॥

अवश्यं तु त्वया कार्यं मया ज्ञातं प्रमाणतः ।
एतद्रुधिरपानं मे तत्रैकं देहि मे वरम् ।।९१।।

महिषासुर बोला– हे देवि मैंने स्वप्न में निश्चितरूप से देखा है कि आपके द्वारा खड्ग से काटकर मेरा सिर और रक्त, भक्षण कर लिया गया है । अवश्य ही आप द्वारा यह मेरे रुधिरपान का कार्य सम्पन्न होगा, यह लक्षणों से मुझे ज्ञात हो गया है । अत: मुझे एक वरदान दीजिये॥९०-९१॥

वध्यस्तवाहं नात्रास्ति संशयः परमेश्वरि ।
ममापि तत्र नो दुःखं नियतिः केन लंघ्यते ।।९२।।

हे परमेश्वरि ! मैं आपके द्वारा मारा जाने वाला हूँ । इसमें न कोई संशय है और न मुझे कोई दु:ख ही है । नियति को कौन टाल सकता है (कोई नहीं टाल सकता)॥९२॥

किन्तु त्वयैव सहितः शम्भुराराधितः पुरा ।
मम पित्रा मदर्थेन जातः पश्चादहं ततः ।।९३।।

किन्तु प्राचीनकाल में मेरे पिता ने, मेरे लिए ही, आपके सहित भगवान शिव की आराधना की थी, जिसके फलस्वरूप मैं उत्पन्न हुआ था ॥९३॥

मयाप्याराधितः शम्भुः प्राप्ताश्चेष्टास्तथाविधाः ।
मन्वन्तरत्रयं यावदासुरं राज्यमुत्तमम् ।
अकण्टकं मया भुक्तमनुतापो न विद्यते ।।९४।।
कात्यायनेन मुनिना शप्तोऽहं शिष्यकारणात् ।
सीमन्तिनी विनाशं ते करिष्यति न संशयः ।।९५।।

मेरे द्वारा भी शिव की आराधना की गई, जिससे इस प्रकार की प्रवृत्तियाँ तथा तीन मन्वन्तर की कालावधि का निर्विघ्न (शत्रुरहित), असुरों का उत्तम राज्य, मेरे द्वारा भोगा गया । अत: अब कोई दु:ख नहीं है किन्तु अपने शिष्य के कारण कात्यायनमुनि द्वारा मुझे शाप दिया गया कि सुन्दरी ही तुम्हारा विनाश करेगी। इसमें कोई संशय नहीं है॥९४-९५॥

पुरा मुनिं तपस्यन्तं रौद्राश्वं नाम सत्तमम् ।
मुनेः कात्यायनाख्यस्य शिष्यं हिमवदन्तिके ।।९६।।
दिव्यस्त्रीरूपमतुलं कृत्वाहं कौतुकात् तदा ।
मया सम्मोहितो विप्रोऽत्यजत् सद्यस्तदा तपः ।।९७।।

प्राचीनकाल में कात्यायन नामक मुनि के शिष्य, श्रेष्ठमुनि रौद्राश्व, जब हिमालयपर्वत पर तपस्या कर रहे थे तब कौतुकवश मेरे द्वारा अतुलनीया, दिव्य-स्त्री का रूप धारणकर उन्हें सम्मोहित किया गया । उस समय उस मुनि ने शीघ्र ही अपनी तपस्या छोड़ दी ॥९६-९७॥

नदूरात् संस्थितेनाहं मुनिना कात्यसूनुना ।
ज्ञात्वा मायां तदा शप्तः शिष्यार्थे क्रोधवह्निना ।।९८।।

तब समीप में ही स्थित कात्यमुनि के पुत्र, मुनिवर कात्यायन द्वारा मेरी माया को जानकर, शिष्य के निमित्त क्रोधाग्निवश, मुझे शाप दिया गया था ।।९८।।

यस्मात् त्वया मे शिष्योऽयं मोहितस्तपसश्च्युतः ।
कृतस्त्वया स्त्रीरूपेण तत् त्वां स्त्री निहनिष्यति ।।९९।।

मेरा यह शिष्य, तुम्हारे द्वारा स्त्रीरूप से मोहित कर तपस्या से वञ्चित किया गया है। अतः स्त्री ही तुम्हारा वध करेगी ।।९९।।

इति मां शप्तवान् पूर्वं मुनिः कात्यायनः स्वयम् ।
तस्य शापस्य कालोऽयमागत्य समुपस्थितः ।।१००।।

ऐसा पहले ही स्वयं कात्यायनमुनि ने मुझे शाप दिया था। उस शाप की पूर्णता का समय भी अब उपस्थित हो गया है ।।१००।।

देवेन्द्रत्वं मया प्राप्तं भुक्तं त्रिभुवनं समम् ।
किञ्चिन्न शोच्यं मेऽत्रास्ति वाञ्छनीयं हि यन्मया ।।१०१।।
तस्मात् त्वां वै प्रपन्नोऽहं प्रार्थ्यं शेषं हि यन्मम ।
यद् देहि देवि दुर्गे त्वं भूयस्तुभ्यं नमो नमः ।।१०२।।

मुझे देवेन्द्रपद भी प्राप्त हुआ तथा मैंने एक साथ तीनों लोकों का भोग भी किया। अब मुझे कुछ भी सोचने को नहीं है, जो मुझे अपेक्षित हो। अतः हे देवी दुर्गे ! मैं आपकी शरण में हूँ। अब जो मेरा वाञ्छित शेष रह गया है, उसे ही आप प्रदान करें। मैं बारम्बार आपको नमस्कार करता हूँ ।।१०१-१०२।।

।। देव्युवाच ।।

प्रार्थनीयो वरो यस्ते तं वृणुष्व महासुर ।
दास्यामि ते वरं प्रार्थ्यं संशयो नात्र विद्यते ।।१०३।।

देवी बोली– हे महान् असुर ! जो भी तुम्हारा प्रार्थनीय (वाञ्छित) हो उसे मांग लो। मैं तुम्हारा अभीष्ट, अवश्य प्रदान करूँगी। इसमें कोई संशय नहीं है ।।१०३।।

।। महिष उवाच ।।

यज्ञभागमहं भोक्तुमिच्छामि त्वत्-प्रसादतः ।
यथा मखेषु सर्वेषु पूज्योऽहं स्यां तथा कुरु ।।१०४।।

महिषासुर बोला– मैं आपकी कृपा से यज्ञ में अपना यज्ञभाग भोग करना चाहता हूँ, जैसे सभी यज्ञों में मैं पूजा जा सकूँ, वैसा ही आप कीजिये ।।१०४।।

त्वत्-पादसेवां न त्यक्ष्ये यावत्सूर्यः प्रवर्तते ।
एवं वरद्वयं देहि यदि देयो वरो मम ।।१०५।।

जब तक सूर्य एवं चन्द्रमा हैं। तब तक मैं आपके चरणों की सेवा का त्याग नहीं करूँ। यदि आप मुझे वर देना चाहती हैं, तो यही दो वर मुझे दीजिये ।।१०५।।

।। देव्युवाच ।।

यज्ञभागाः सुरेभ्यस्तु कल्पिता वै पृथक् पृथक् ।
भागो न विद्यते चान्यो यं दास्यामि तवाधुना ।।१०६।।

देवी बोलीं– यज्ञ-भाग तो देवताओं द्वारा पहले ही अलग-अलग निर्धारित कर लिये गये हैं। अब कोई ऐसा भाग, शेष नहीं है जो मैं तुम्हें दूँ ।।१०६।।

किन्तु त्वयि मया युद्धे निहते महिषासुर ।
नैव त्यक्ष्यसि मत्पादं सततं नात्र संशयः ।।१०७।।

किन्तु हे महिषासुर ! युद्ध में मेरे द्वारा तुम्हें मारे जाने पर, तुम निरन्तर मेरे पैरों को नहीं छोड़ोगे ।।१०७।।

मम प्रवर्तते पूजा यत्र-यत्र च तत्र ते ।
पूज्यश्चिन्त्यश्च तत्रैव कायोऽयं तव दानव ।।१०८।।

हे दानव ! जहाँ-जहाँ मेरी पूजा होगी वहाँ-वहाँ तुम्हारा यह शरीर पूजित होगा तथा इसका भी चिन्तन (ध्यान) किया जायेगा ।।१०८।।

इति श्रुत्वा वचस्तस्याः प्रत्यूषे महिषासुरः ।
वरं प्राप्येह मुदितः प्रसन्नवदनस्तदा ।।१०९।।

प्रातःकाल के समय में महिषासुर, उन देवी के इस प्रकार के वचनों को सुनकर तथा इस प्रकार का वरदान प्राप्त कर, प्रसन्नमुख हो बोला ।।१०९।।

उग्रचण्डे भद्रकालि दुर्गे देवि नमोऽस्तु ते ।
प्रभूता मूर्तया देवि भवत्या सकलात्मिकाः ।।११०।।
काभिस्ते मूर्तिभिः पूज्यो यज्ञेऽहं परमेश्वरि ।
तत् समाचक्ष्व यदि मे भवत्येह कृपा कृता ।।१११।।

हे देवि उग्रचण्डे, हे भद्रकाली, हे दुर्गे ! आपको नमस्कार है। हे सब की आत्मरूप देवी ! आपकी अनेक मूर्तियाँ हैं। हे परमेश्वरि ! आपकी किन-किन मूर्तियों के साथ यज्ञों में मेरी पूजा होगी? यदि मेरे पर आपकी कृपा हो, तो आप इसे बतायें।।११०-१११।।

।। देव्युवाच ।।

यानि नामानि प्रोक्तानि त्वयेह महिषासुर ।
तासु मूर्तिषु संस्पृष्टः पूज्यो लोके भविष्यसि ।।११२।।

देवी बोलीं– हे महिषासुर ! तुमने इस समय जिन-जिन नामों को कहा है। उन्हीं मूर्तियों से युक्त होकर तुम संसार में पूजे जाओगे ॥११२॥

उग्रचण्डेति या मूर्तिर्भद्रकाली ह्यहं पुनः ।
यया मूर्त्या त्वां हनिष्ये सा दुर्गेति प्रकीर्तिता ॥११३॥

जो उग्रचण्डा नामक मूर्ति है, वही मैं भद्रकाली भी हूँ तथा जिस रूप से तुम्हारा वध करूँगी, मेरी वही मूर्ति, दुर्गा के नाम से भी पुकारी जाती है ॥११३॥

एतासु मूर्तिषु सदा पादलग्नो नृणां भवान् ।
पूज्यो भविष्यति स्वर्गे देवानामपि रक्षसाम् ॥११४॥

इन सभी मूर्तियों के चरणों में संलग्न तुम, सदैव मनुष्यों द्वारा, स्वर्ग में देवताओं द्वारा और राक्षसों द्वारा भी पूजे जाओगे ॥११४॥

आदिसृष्टावुग्रचण्डामूर्त्या त्वं निहतः पुरा ।
द्वितीयसृष्टौ तु भवान् भद्रकाल्या मया हतः ॥११५॥

प्रथमसृष्टिकाल में तुम मेरे उग्रचण्डारूप के द्वारा प्राचीनकाल में मारे गये, दूसरेसृष्टिकाल में तुम भद्रकालीरूप से मारे गये हो ॥११५॥

दुर्गारूपेणाधुना त्वां हनिष्यामि सहानुगम् ।
किन्तु पूर्वं न गृहीतस्त्वं मया पादयोस्तले ॥११६॥
अधुना प्रार्थितवरो गृहीतः पूर्वकामयोः ।
ग्रहीतव्यश्च पश्चात् त्वं यज्ञभागोपभुक्तये ॥११७॥

अब मैं अपने दुर्गारूप से, अनुयायियों सहित तुम्हें मारूँगी किन्तु तुमने इसके पहले कभी मेरे चरणों में आश्रय नहीं ग्रहण किया था। अब तुमने प्रार्थना कर मुझसे वर मांग लिया है। तुम बाद में मुझसे यज्ञभागप्राप्ति के लिए वर प्राप्त कर लोगे ॥११६-११७॥

॥ और्वउवाच ॥

इत्युक्त्वा सा महामाया उग्रचण्डाह्वयां तनुम् ।
दर्शयामास च तदा महिषायासुराय वै ॥११८॥
या मूर्तिः षोडशभुजा भद्रकालीति विश्रुता ।
तथैव मूर्तिं बाहुभ्यामपराभ्यां तु बिभ्रती ॥११९॥
दक्षिणाधो गदां वामपाणिना पानपात्रकम् ।
सुरापूर्णं च शिरसा मुण्डमालां बिलेशयम् ॥१२०॥
भिन्नाञ्जनचयप्रख्या प्रचण्डा सिंहवाहिनी ।
रक्तनेत्रा महाकाया युक्ताऽष्टादशबाहुभिः ॥१२१॥

और्व बोले– तब इस प्रकार से कह कर महामाया ने अपनी उग्रचण्डा नामक मूर्ति का महिषासुर को दर्शन कराया जो सोलहभुजाओंवाली भद्रकालीरूप

में प्रसिद्ध है, वही मूर्ति अपनी दाहिनी भुजाओं में गदा, बायें में पानपात्र (कपाल चषक) तथा मस्तक पर बिल में निवास करने वाले नाग की माला तथा गले में मुण्डमाला धारण की हुई थी। उसका रंग, कालेअञ्जन के चट्टान के समान था। वह प्रचण्ड (उग्र) तथा सिंह पर सवार थी। उसके नेत्र लाल थे, उसका शरीर विशाल था और वह अठारह भुजाओं से युक्त थी ॥११८-१२१॥

उग्रचण्डा भद्रकाली देव्या मूर्तिद्वयं तथा ।
महिषः प्रणनामाशु दृष्ट्वा विस्मयमागतः ॥१२२॥

उन उग्रचण्डा और भद्रकाली नामक देवी के दोनों रूपों को देखकर महिषासुर ने आश्चर्य चकित हो, उन्हें शीघ्रतापूर्वक प्रणाम किया ॥१२२॥

ततो यथा पदाक्रम्य निहतो महिषासुरः ।
तथैव जगृहे पादतले देवीद्वयं तु तम् ॥१२३॥

तत्पश्चात् जिस रूप में देवी ने अपने चरणों से दबाकर उस महिषासुर का अपने दुर्गारूप से वध किया, वैसे ही उन दोनों देवियों ने भी उसे अपने चरणों में स्वीकार कर लिया ॥१२३॥

हृदि शूलेन निर्भिन्नं माहिषं विशिरस्ककम् ।
गृहीतकेशं देव्या तु निर्यदन्त्रविभूषितम् ॥१२४॥
वमद्रक्तं महाकायं दृष्ट्वा पूर्वतनुं स्वकम् ।
भयं प्राप्यासुरः सोऽथ शुशोच च मुमोह च ॥१२५॥

सिर-विहीन तथा त्रिशूल से हृदय बिंधा हुआ, आँते निकली हुईं, देवी द्वारा केश पकड़े हुए, रक्तवमन करते, अपने पूर्ववर्ती विशाल भैंसे के रूप को देखकर वह दैत्य भयभीत हो, चिन्तित और मोहग्रस्त भी हो गया था ॥१२४-१२५॥

ततस्तु क्षणमात्मानं संस्तभ्य स तु दानवः ।
प्रणम्य वचनं देवीमिदमाह स गद्गदम् ॥१२६॥

तब क्षणभर में अपने को संभाल कर, उस दानव ने देवी को प्रणाम कर गदगद (भावविभोर) वाणी से, ये वचन कहे— ॥१२६॥

॥ महिष उवाच ॥

यदि देवि प्रसन्नासि यज्ञभागाश्च कल्पिताः ।
तदा ममान्यदा नाश एवमेतद् भवेन्न हि ॥१२७॥

महिष (असुर) बोला– हे देवि ! यदि आप मुझ पर प्रसन्न हैं और आपने मुझे यज्ञभाग भी निर्धारित कर दिया है, तो ऐसा वरदान दें कि पुनः मेरा अन्यत्र नाश न हो ॥१२७॥

यथाहं न सुरैः सार्धं करिष्ये वैरमद्भुतम् ।
तथा मां कुरु भो देवि न जन्म प्रलभे यथा ।।१२८।।

जिससे मैं देवताओं के साथ अद्भुत (पूर्ववत्) वैर न करूँ, वैसी ही आप मेरे जन्म और मरण की व्यवस्था कीजिये ।।१२८।।

।। देव्युवाच ।।

आराधिताऽहं भवता वरो दत्तो मया तव ।
वध्यश्च त्वं ममैवेह नात्र कार्या विचारणा ।।१२९।।
यत् त्वया प्रार्थितं चापि सर्वैः सुरगणैः सह ।
विरोधो मे सदा माभूदिति चापि भविष्यति ।।१३०।।

देवी बोलीं– मैं तुम्हारे द्वारा आराधित हुई हूँ। मेरे द्वारा तुम्हें वर दिया गया है। अत: इसी जन्म में तुम मेरे द्वारा मारे जाओगे। इस सम्बन्ध में तुम्हें इस पर विचार करने की आवश्यकता नहीं है। जैसा तुमने प्रार्थना की कि सभी देवगणों के साथ तुम्हारा सदैव वैर न रहे, वह भी होगा ।।१२९-१३०।।

मत्पादतलसंस्पर्शाच्छरीरं तव दानव ।
यज्ञभागोपभोगाय विशीर्णं न भविष्यति ।।१३१।।

हे दानव ! मेरे चरणों के स्पर्श के कारण यज्ञभाग के उपभोग के लिए तुम्हारा यह शरीर कभी नष्ट नहीं होगा ।।१३१।।

तव जीवात्मभिः प्राणाः सर्व एव महासुर ।
हरस्य पादसंयोगाच्चिरं स्थास्यति केवलम् ।।१३२।।

हे महान् असुर ! तुम्हारा जीव, आत्मा, प्राण सभी केवल शिव के चरणों के संसर्ग को प्राप्त कर स्थायीरूप से रहेंगे ।।१३२।।

कल्पकोटिसहस्राणि त्रिंशत् त्वं महिषासुर ।
शतानि चाष्टावन्यानि जन्म ते न भविष्यति ।।१३३।।

हे महिषासुर ! तीस हजार आठ सौ करोड़ कल्पों तक तुम्हारा पुनर्जन्म नहीं होगा ।।१३३।।

।। और्व उवाच ।।

इति देवी वरं दत्त्वा महिषायासुराय वै ।
प्रणता तेन शिरसा तत्रैवान्तरधीयत ।।१३४।।

और्व बोले– महिषासुर को उपर्युक्त वर देकर, उसके द्वारा मस्तक झुका कर प्रणाम किये जाने के पश्चात् देवी वहीं अन्तर्ध्यान हो गईं ।।१३४।।

महिषोऽपि निजस्थानं ययौ सम्मोहितः पुनः ।
मायया चासुरं भावं आदाय नृप पूर्ववत् ।।१३५।।

हे राजन् ! महिषासुर भी अपने स्थान को चला गया और मायावश पुनः पहले की भाँति आसुरी भावों को प्राप्त हुआ ।।१३५।।

।। सगर उवाच ।।

अनेके निहता दैत्या मायया लोकभूतये ।
न ते पुनः प्रगृहीतास्तेभ्यो दत्त्वा वराञ्शुभान् ।।१३६।।
केन वा कारणेनायं प्रगृहीतो वराः कथम् ।
दत्तास्तस्मै समाचक्ष्व मम सम्यग् द्विजोत्तम ।।१३७।।

सगर बोले– हे द्विजों में श्रेष्ठ ! लोक के कल्याण हेतु, महामाया द्वारा अनेक दैत्य मारे गये हैं, किन्तु न तो उन्हें उत्तम वर ही मिला और न देवी ने ही उन्हें अपनाया, तब किस कारण से इस महिषासुर को देवी द्वारा ग्रहण किया गया तथा उसे वर भी दिया गया ? इसे आप भली-भाँति मुझे बताइये।।१३६-१३७।।

।। और्व उवाच ।।

आराधितो महादेवो रम्भेण सुरवैरिणा ।
चिरेण स तु सुप्रीतस्तपसा तस्य शङ्करः ।।१३८।।
अथ तुष्टा महादेवः प्रत्यक्षं रम्भमूचिवान् ।
प्रीतोऽस्मि ते वरं रम्भ वरयस्व यथेप्सितम् ।।१३९।।

और्व बोले– जब देवताओं के शत्रु रम्भ द्वारा दीर्घकाल तक महादेव की आराधना की गई तब उसकी तपस्या से भगवान शङ्कर प्रसन्न हुए और सन्तुष्ट होकर उन्होंने प्रत्यक्षरूप में रम्भ से कहा— हे रम्भ ! मैं तुमसे प्रसन्न हूँ। अब तुम अपना इच्छितवर, मुझ से माँग लो ।।१३८-१३९।।

एवमुक्तः प्रत्युवाच रम्भस्तं चन्द्रशेखरम् ।
अपुत्रोऽहं महादेव यदि ते मय्यनुग्रहः ।
मम जन्मत्रये पुत्रो भवान् भवतु शङ्कर ।।१४०।।
अवध्यः सर्वभूतानां जेता च त्रिदिवौकसाम् ।
चिरायुश्च यशस्वी च लक्ष्मीवान् स च शङ्कर ।।१४१।।

ऐसा कहे जाने पर चन्द्रशेखर को उत्तर देते हुए **रम्भ ने कहा–** हे महादेव ! हे भगवान् शङ्कर ! मैं पुत्रहीन हूँ। यदि आप की मुझपर कृपा हो तो मेरे तीन जन्मों में आप मेरे पुत्र हों तथा मेरा वह पुत्र देवताओं को जीतने वाला, दीर्घायु, यशस्वी, लक्ष्मीवान होवे।।१४०-१४१।।

एवमुक्तस्तु दैत्येन प्रत्युवाच वृषध्वजः ।।१४२।।
भवत्वेतद्वाञ्छितं ते भविष्यामि सुतस्तव ।
इत्युक्त्वा स महादेवस्तत्रैवान्तरधीयत ।।१४३।।

उस दैत्य द्वारा ऐसा कहे जाने पर वृषभध्वज शिव ने कहा— तुम्हारा इच्छित, ऐसा ही हो, मैं तुम्हारा पुत्र होऊँगा। ऐसा कहकर वे महादेव, वहीं अन्तर्ध्यान हो गये॥१४२-१४३॥

रम्भोऽपि यातः स्वस्थानं हर्षोत्फुल्लविलोचनः ।
पथि गच्छन् स रम्भोऽथ ददर्श महिषीं शुभाम् ।
त्रिहायणीं चित्रवर्णां सुन्दरीमृतुशालिनीम् ॥१४४॥

जब वह रम्भ हर्ष से प्रफुल्लनेत्र होकर, अपने निवासस्थान को जा रहा था तो मार्ग में उसने तीनवर्ष की एक उत्तम चितकबरी, सुन्दरी, ऋतुमती, भैंस को देखा॥१४४॥

स तां दृष्ट्वाथ महिषीं रम्भः कामेन मोहितः ॥१४५॥
दोर्भ्यां गृहीत्वा च तदा चकार सुरतोत्सवम् ।
तयोः प्रवृत्ते सुरते तदा सा तस्य तेजसा ॥१४६॥
दधार महिषी गर्भं तदाऽभून्महिषासुरः ।
तस्यां स्वांशेन गिरिशस्तत्पुत्रत्वमवाप्तवान् ॥१४७॥

उस भैंस को देखकर रम्भ, काम मोहित हो गया तथा दोनों भुजाओं से उसे पकड़कर उसने सुरतोत्सव (मैथुन) किया। उन दोनों के सुरत में प्रवृत्त होने के कारण उस समय रम्भ के तेज से महिषी ने गर्भ धारण किया और उसी में अपने अंश से भगवान शिव, महिषासुर के रूप में, उसके पुत्रत्व को प्राप्त किये॥१४५-१४७॥

ववृधे स तदा राम्भिः शुक्लपक्षशशांकवत् ।
तं च कात्यायनमुनिः शप्तवान्महिषासुरम् ।
दुर्नयं वीक्ष्य शिष्यार्थे शिष्यानुग्रहकारकः ॥१४८॥

तब वह रम्भ-पुत्र, महिषासुर, शुक्लपक्ष के चन्द्रमा की भाँति बढ़ने लगा और कात्यायनमुनि ने अपने शिष्य पर अनुग्रह कर अपने शिष्य के प्रति उसकी दुर्नीति को देखकर, उसे शाप दिया॥१४८॥

कात्यायनेन शप्तं तं विज्ञाय महिषासुरम् ।
प्राह प्रणामपूर्वं तु चण्डिकां चन्द्रशेखरः ॥१४९॥

कात्यायनमुनि से महिषासुर को शापित जानकर, प्रणाम करते हुए भगवान् शिव ने चण्डिका से कहा—॥१४९॥

॥ ईश्वर उवाच ॥

देवी कात्यायनेनायं शप्तोऽद्य महिषासुरः ।
योषिद्विनाशकर्त्रीति भवितेति जगन्मये ।
निःसंशयमृषेर्वाक्यं भविष्यति न संशयः ॥१५०॥

ईश्वर (शिव) बोले– हे देवि! हे जगन्मयि! आज इस महिषासुर को कात्यायनमुनि ने शाप दे दिया है कि स्त्री तुम्हारा विनाश करने वाली होगी, ऋषि का कथन निश्चितरूप से पूर्ण होगा, इसमें कोई संशय नहीं है ॥१५०॥

मदीयो माहिषः कायो देवि कार्यस्त्वया त्वयि ।
हन्तव्यः सततं योगयुक्तः पूर्वे परेऽपि च ॥१५१॥

हे देवि ! मेरा यह महिषशरीर भी तुम्हारे द्वारा बनाया गया है। यह निरन्तर योगयुक्तशरीर पहले की भाँति आगे भी तुम्हारे ही द्वारा मारा जाना चाहिये ॥१५१॥

हरिर्हरिस्वरूपेण न त्वां वोढुं क्षमोऽधुना ।
ममायं माहिषः कायस्तव वोढा भविष्यति ॥१५२॥

भगवान विष्णु, सिंह रूप में तुम्हें ढोने में अब समर्थ नहीं हैं इसलिए अब यह मेरा महिषरूपशरीर ही तुम्हें ढोने वाला होगा ॥१५२॥

इति पूर्वं महादेवं देवीं प्रार्थितवान् पुरा ।
तेन देवी महादेवं जग्राह महिषासुरम् ॥१५३॥

ऐसा पहले ही महादेव ने देवी से वर मांग लिया था। इसी से देवी ने महिषासुररूपीमहादेव को ग्रहण किया ॥१५३॥

त्रिषु जन्मसु पुत्रोऽभूद्रम्भस्य भगवान् हरः ।
सृष्टित्रये स रम्भोऽपि रम्भ एव व्यजायत ॥१५४॥
आसुरं तादृशं तेपे तपः परमदारुणम् ।
तथैवाराधितः शम्भुः पुत्रार्थे प्रददौ वरम् ॥१५५॥
तथैव महिषीं भेजे प्रथमं सुरताय सः ।
तस्यां तथाऽभवद्वीरो दानवो महिषासुरः ॥१५६॥
तथैव शेपे भगवान् मुनिः कात्यायनस्तु तम् ॥१५७॥

तीन जन्मों तक भगवान् शिव, रम्भ के पुत्र हुए। अपनी तीन सृष्टि (जन्म) तक वह रम्भ भी रम्भ ही हुआ और उस असुर ने उसी प्रकार कठोर तप किया। भगवान् शिव ने भी उसकी आराधना से तुष्ट हो पुत्र के निमित्त वर दिया, पूर्ववत् उसने सुरति के लिए भैंस का सम्पर्क किया और उससे वीरदानव, महिषासुर उत्पन्न हुआ। उसी प्रकार उसे भगवान् कात्यायनमुनि ने शाप दिया ॥१५४-१५७॥

इति प्रवृत्ते पूर्वेऽस्मिन् परस्मिन् स तु जन्मनि ।
महिषः पूजयित्वाऽथ देवीं वरमयाचत ॥१५८॥
तृतीये जन्मनि वरं प्राप्य कल्पानशेषतः ।
नेह मे जन्म भवितेत्येवं वरमयाचत ॥१५९॥

ऐसा पहले ही की भाँति आगामी जन्मों में भी होने से, महिष ने देवी की पूजा कर वर प्राप्त किया तथा तीसरे जन्म में वर पाकर, उसने यह वर मांगा कि अब सम्पूर्ण कल्पों में उसका पुनर्जन्म न हो ॥१५८-१५९॥

तेन देवीपादतले तिष्ठत्येषोऽसुरोऽधुना ।
नोत्पत्तिरपि तस्याथ संवर्तान्तादभून्नृप ॥१६०॥

हे राजन् ! इसी से यह असुर आज भी देवी के चरणों में स्थित है । तथा संसार के प्रलयपर्यन्त, इसका अन्त भी नहीं होगा ॥१६०॥

एवं देवीप्रसादेन महादेवांशसम्भवः ।
परामवाप सततं प्रतिपत्तिं महासुरः ॥१६१॥

इस प्रकार महादेवशिव के अंश से उत्पन्न महिषासुर ने देवी की कृपा से निरन्तर श्रेष्ठशरणागति को प्राप्त किया ॥१६१॥

इति ते कथितं राजन् यथा स महिषासुरः ।
देवीपादतलं प्राप्य यथा सोऽद्यापि मोदते ।
प्रस्तुतं श्रृणु भो राजान् कथयामि नृपोत्तम ॥१६२॥

हे राजाओं में उत्तम राजा ! जिस प्रकार से महिषासुर, देवी के चरणों में स्थानप्राप्त कर आज भी आनन्दित हो रहा है । वह मैं ने तुमसे कहा । अब आगे जो कहता हूँ उसे सुनो ॥१६२॥

॥ मार्कण्डेय उवाच ॥

इति वः कथितं राजा सगरः सहितो यथा ।
और्व्वेण चक्रे संवादं देवीमहिषयोजने ॥१६३॥
पुनर्यदाह भूयोऽपि सगराय महात्मने ।
तच्छृण्वन्तु मुनिश्रेष्ठा गुह्याद् गुह्यतरं परम् ॥१६४॥

॥ इति श्रीकालिकापुराणे महिषासुरोपाख्यानोनाम षष्टितमोऽध्यायः ॥६०॥

मार्कण्डेय बोले– इस प्रकार राजा सगर ने और्व मुनि से देवी और महिषासुर के सम्बन्ध में जो संवाद किया था । वह तुम दोनों से कह दिया । हे मुनियों में श्रेष्ठ मुनिजन! पुनः महात्मासगर से उन्होंने जो आगे कहा उस अत्यन्तगुप्त से गुप्त प्रकरण को अब आप सुनें ॥१६३-१६४॥

॥ श्रीकालिकापुराण में महिषासुरोपाख्यान नामक साठवाँ अध्याय सम्पूर्ण हुआ ॥६०॥



एकषष्टितमोऽध्यायः

कामाख्यामाहात्म्यम् (१)

।। और्व उवाच ।।

यथाह भगवान् देवो भैरवाय महात्मने ।
वेतालाय नृपश्रेष्ठ तथा त्वं प्रस्तुतं शृणु ।।१।।

और्व बोले– हे राजाओं में श्रेष्ठ ! भगवान शिव ने महात्मा वेताल और भैरव से जो कहा था, उसे अब तुम आगे सुनो ।।१।।

।। श्रीभगवानुवाच ।।

उग्रचण्डा च या मूर्तिरष्टादशभुजाऽभवत् ।
सा नवम्यां पुरा कृष्णपक्षे कन्यां गते रवौ ।
प्रादुर्भूता महामाया योगिनीकोटिभिः सह ।।२।।

श्रीभगवान बोले– प्राचीनकाल में कन्याराशि में सूर्य के आने पर (आश्विनमास के) कृष्णपक्ष की नवमीतिथि को उग्रचण्डा देवी के अट्ठारह भुजाओं वाले रूप में, महामाया करोड़ों योगिनियों के साथ उत्पन्न हुई थीं ।।२।।

आषाढस्य तु पूर्णायां सत्रं द्वादशवार्षिकम् ।
दक्षः कर्तुं समारेभे वृताः सर्वे दिवौकसः ।।३।।

सभी देवताओं का वरण कर दक्षप्रजापति ने आषाढ़ की पूर्णिमा से बारह वर्षों तक चलने वाला यज्ञ, प्रारम्भ किया ।।३।।

ततोऽहं न वृतस्तेन दक्षेण सुमहात्मना ।
कपालीति सती चापि तज्जायेति च नो वृता ।।४।।

उसमें उस महात्मादक्ष ने कपाली मानकर न तो मुझे आमन्त्रित किया और न उस कपाली की (मेरी) पत्नी होने कारण सती को ही आमन्त्रित किया ।।४।।

ततो रोषसमायुक्ता प्राणांस्तत्याज सा सती ।
त्यक्तदेहा सती चापि चण्डमूर्तिस्तदाऽभवत् ।।५।।

तब क्रोध से युक्त हो, अपने प्राणों को छोड़, वह देवी सती ही अपना शरीर छोड़कर, उग्रचण्डा के प्रचण्डरूप में उत्पन्न हुई थीं ।।५।।

ततः प्रवृत्ते यज्ञेऽपि तस्मिन् द्वादशवार्षिके ।
नवम्यां कृष्णपक्षे तु कन्यायां चण्डमूर्तिधृक् ।।६।।
योगनिद्रा महामाया योगिनीकोटिभिः सह ।
सतीरूपं परित्यज्य यज्ञभङ्गमथाकरोत् ।।७।।
शङ्करस्य गणैः सर्वैः सहिता शङ्करेण च ।
स्वयं बभञ्ज सा देवी महासत्रं महात्मनः ।।८।।

कन्या के सूर्य रहने पर ही आश्विनमास के कृष्णपक्ष की नवमी को योगनिद्रा महामाया ने, अपने सतीरूप को छोड़कर करोड़ों योगिनियों के साथ, चण्डरूप धारण कर, उस समय हो रहे, उस बारहवर्षीय दक्ष के यज्ञ को भङ्ग कर दिया। स्वयं उस देवी ने शङ्कर और उनके गणों के सहयोग से महात्मादक्ष के महान्यज्ञ को नष्ट कर दिया॥६-८॥

ततो देव्या महाक्रोधे व्यतीते त्रिदिवौकसः ।
पूजयांचक्रुरतुलां देवीं पूर्वोदितेन वै ।।९।।

तब देवी के महानक्रोध के समाप्त हो जाने पर, देवताओं ने पूर्ववर्णित विधि के अनुसार उनकी अतुलनीय पूजा की ॥९॥

पूर्वोदितविधानेन पूजामस्या दिवौकसः ।।१०।।
कृत्वैव परमामापुर्निर्वृत्तिं दुःखहानये ।।१०।।
एवमन्यैरपि सदा कार्यं देव्याः प्रपूजनम् ।
विभूतिमतुलां प्राप्तुं चतुर्वर्गप्रदायिकाम् ।।११।।

अपने दुःख की हानि हेतु, पूर्वोक्तविधान से इस प्रकार का उनका पूजन कर, देवताओं ने परम सन्तोष को प्राप्त किया। ऐसे अन्य भक्तों द्वारा भी अतुल ऐश्वर्य की प्राप्तिहेतु, चतुवर्ग प्रदान करने वाली देवी का सदैव पूजन किया जाना चाहिये॥१०-११॥

यो मोहादथवाऽऽलस्याद् देवीं दुर्गां महोत्सवे ।
न पूजयति दम्भाद् वा द्वेषाद्वाऽप्यथ भैरव ।।१२।।
क्रुद्धा भगवती तस्य कामानिष्टान्निहन्ति वै ।
परत्र च महामाया-बलिर्भूत्वा प्रजायते ।।१३।।

हे भैरव ! जो साधक मोह, आलस्य, अहंकार या द्वेषवश, शारदीयमहोत्सव में देवी दुर्गा का पूजन नहीं करता, उससे भगवती क्रुद्ध हो, उसकी समस्त इष्ट-कामनाओं को नष्ट कर देती हैं तथा अगले जन्म में वह महामाया का बलि (भोजन) होकर जन्म लेता है ॥१२-१३॥

अष्टम्यां रुधिरैश्चैव महामांसैः सुगन्धिभिः ।
पूजयेद्बहुजातीयैर्बलिभिर्भोजनैः शिवाम् ।।१४।।

सिन्दूरैः पट्टवासोभिर्नानाविधविलेपनैः ।
पुष्पैरनेकजातीयैः फलैर्बहुविधैरपि ।।१५।।

अष्टमी को रक्त, महामांस, सुगन्धियों, अनेक प्रकार की बलि, भोजन, सिन्दूर, रेशमीवस्त्र, विविधप्रकार के चन्दनों और अनेकप्रकार के फल और पुष्पों से शिवा का पूजन करना चाहिये ।।१४-१५।।

उपवासं महाष्टम्यां पुत्रवान् न समाचरेत् ।
यथा तथैव पूतात्मा व्रती देवीं प्रपूजयेत् ।।१६।।
पूजयित्वा महाष्टम्यां नवम्यां बलिभिस्तथा ।।१७।।

पुत्रवान् साधक को महाष्टमी को व्रत नहीं रखना चाहिये । जैसे भी हो, पवित्र हो, व्रतपूर्वक (नियम से) अष्टमी को तथा नवमी को बलि आदि से देवी का पूजन करे ।।१७।।

विसर्जयेद् दशम्यां तु श्रवणे शार्वरोत्सवैः ।
अन्त्यपादो दिवाभागे श्रवणस्य यदा भवेत् ।।१८।।

तब दशमीतिथि को श्रवणनक्षत्र में दिन के अन्तिमभाग में सायंकाल शार्वरोत्सवपूर्वक देवी का विसर्जन करे।।१८।।

तदा सम्प्रेषणं देव्या दशम्यां कारयेद् बुधः ।
सुवासिनी – कुमारीभिर्वेश्याभिर्नर्तकैस्तथा ।।१९।।
शङ्खतूर्यनिनादैश्च मृदङ्गैः पटहैस्तथा ।
ध्वजैर्वस्त्रैर्बहुविधैर्लाजपुष्पप्रकीर्णकैः ।।२०।।
धूलिकर्दमविक्षेपैः क्रीडाकौतुकमङ्गलैः ।
भगलिङ्गाभिधानैश्च भगलिङ्गप्रगीतकैः ।
भगलिङ्गादिशब्दैश्च क्रीडयेयुरलं जनाः ।।२१।।

तब विद्वान्, दशमी को देवी का विसर्जन, समारोह पूर्वक करे । जिसमें सुवासिनी (सुहागिन) स्त्रियाँ, कुमारीकन्याएँ, वेश्याएँ तथा नर्तक, नृत्य-गान करें । शङ्ख, तूर्य (तुरही), मृदङ्ग और नगाड़े बजाये जाते हो । विविधप्रकार के ध्वज, वस्त्र, लावा और फल बिखरे हों, धूल, कीचड़ फेंकते हुए भगलिङ्गोच्चारसम्बन्धी गीतों सहित भगलिङ्गक्रीड़ा-कौतुक के साथ माङ्गलिकगीत गाये जा रहे हों । उस उत्सव में लोगों को भगलिङ्गादि शब्दों के उच्चारणपूर्वक क्रीड़ा करनी चाहिये ।।१९-२१।।

परैर्नाक्षिप्यते यस्तु यः परान्नाक्षिपेद् यदि ।
क्रुद्धा भगवती तस्य शापं दद्यात् सुदारुणम् ।।२२।।

यदि उस उत्सव में जो साधक दूसरों को आक्षेप नहीं करता, जिसे दूसरे आक्षेप नहीं करते, उससे भगवती, क्रुद्ध हो जाती हैं और उसे भयानक शाप देती हैं ।।२२।।

आदिपादो निशाभागे श्रवणस्य यदा भवेत् ।
तदा देव्याः समुत्थानं नवम्यां न पुनर्दिवा ।।२३।।

यदि नवमी के रात्रि में श्रवणनक्षत्र का प्रथम चरण हो तो देवी का नवमी के दिन में समुत्थान नहीं करना चाहिये ॥२३॥

अन्त्यपादो निशाभागे श्रवणस्य यदा भवेत् ।
तदा देव्याः समुत्थानं नवम्यां दिनभागतः ।।२४।।

यदि नवमी की रात्रि में श्रवणनक्षत्र का अन्तिम चरण पड़े तो नवमी को दिन में ही देवी का समुत्थान करना चाहिये ॥२४॥

विसर्जनमनेनैव मन्त्रेण वत्स भैरव ।
कर्तव्यमम्भसि स्थाप्य विसृज्य च विभूतये ।।२५।।

हे वत्स भैरव ! ऐश्वर्यप्राप्तिहेतु जल में प्रतिमा को स्थापित और विसर्जित कर नीचे लिखे मन्त्र **उत्तिष्ठ देवि--मम्** से देवी का विसर्जन करना चाहिये ॥२५॥

उत्तिष्ठ देवि चण्डेशे शुभां पूजां प्रगृह्य च ।
कुरुष्व मम कल्याणमष्टभिः शक्तिभिः सह ।।२६।।
गच्छ गच्छ परं स्थानं स्वस्थानं देवि चण्डिके ।।२७।।
यत् पूजितं मया देवि परिपूर्णं तदस्तु मे ।
व्रज त्वं स्रोतसि जले तिष्ठ गेहे च भूतये ।।२८।।
निमज्ज्याम्भसि सन्त्यज्य पत्रिकावजिते जले ।
पुत्रायुर्धनवृद्ध्यर्थं स्थापितासि जले मया ।।२९।।

मन्त्रार्थ– हे देवि ! हे चण्डेश्वरी । उठो और मेरी इस उत्तम पूजा को स्वीकार करो तथा अपनी आठों शक्तियों के सहित, हे चण्डिका देवि ! आप अपने श्रेष्ठस्थान को जाओ । हे देवि ! आप मेरे द्वारा जो पूजी गई हैं, वह पूर्णता को प्राप्त हो । आप जल में पधारो तथा मेरे कल्याणहेतु, सूक्ष्मरूप से मेरे घर में निवास करो । जल में, आपका विसर्जन कर, पत्रिका आदि को भी जल में स्थापित कर, पुत्र, आयु और धन की अभिवृद्धि के लिए जल में आप मेरे द्वारा स्थापित की गई हैं ॥२६-२९॥

इत्यनेन तु मन्त्रेण देवीं संस्थापयेज्जले ।
सर्वलोक - हितार्थाय सर्वलोकविभूतये ।।३०।।

साधक को चाहिये कि इस प्रकार के ऊपर बताये मन्त्र से समस्त लोकों के कल्याण एवं ऐश्वर्य के लिए देवी को जल में स्थापित करे ॥३०॥

दुर्गातन्त्रेण मन्त्रेण पूजितव्ये उभे अपि ।
भद्रकालीमुग्रचण्डां महामायां महोत्सवे ।।३१।।

महोत्सव में महामाया की ही प्रतिमूर्ति उग्रचण्डा और भद्रकाली नामक दोनों ही देवियों का दुर्गातन्त्र के मन्त्रों से पूजन करना चाहिये ॥३१॥

नेत्रबीजं तु सर्वासां पूजने परिकीर्तितम् ।
योगिनीनां तु सर्वासां मूलमूर्तेस्तथैव च ।।३२।।

सभी के पूजनहेतु नेत्रबीज बताया गया है । मूल देवियों की ही भाँति सभी योगिनियों का पूजन करना चाहिये ।।३२।।

मन्त्रं तथोग्रचण्डायाः पृथक् त्वं शृणु भैरव ।
आद्यद्वयं नेत्रबीजं मन्त्रस्योपान्तमन्तरे ।
वह्निनाऽन्तःस्वरेणेन्दुबिन्दुभ्यां तन्त्रमौग्रकम् ।।३३।।

हे भैरव ! अब तुम उग्रचण्डा के मन्त्र को अलग से सुनो । नेत्रबीज के पहले दो मन्त्रों के बीच चन्द्रबिन्दु और अग्नि (र) जुड़ा अन्त से पहला वर्ण ह है, जो अन्तिमस्वर के साथ होने पर उग्रचण्डा का मन्त्र **ऐं ह्रीं ह्रौं** बनता है ।।३३।।

नेत्रबीजं द्वितीयं तु द्विधावर्तितमुच्यते ।
भद्रकाल्यास्तु मन्त्रोऽयं धर्मकामार्थसिद्धये ।।३४।।

द्वितीय नेत्रबीज ह्रीं दो बार आवृत्त होकर धर्म, काम, अर्थ की सिद्धि हेतु **ह्रीं ह्रीं** यह भद्रकाली का मन्त्र हो जाता है ।।३४।।

यदा तु वैष्णवी देवी महामाया जगन्मयी ।
पूज्यते वैष्णवीदेवीतन्त्रोक्ता अष्टयोगिनी ।।३५।।
ताः प्रोक्ताः शैलपुत्र्याश्च पूर्वकल्पे च भैरव ।
उग्रचण्डादयश्चाष्टौ दुर्गातन्त्रस्य कीर्तिताः ।।३६।।

हे भैरव ! जब वैष्णवी देवी, जगन्मयी महामाया, वैष्णवीतन्त्र में बताई गई विधि से पूजी जाती हैं, उस समय के लिए पहले दी, विधिवर्णित शैलपुत्री आदि आठ योगिनियाँ तथा दुर्गातन्त्र में उग्रचण्डा आदि आठ योगिनियाँ बताई गई हैं ।।३५-३६।।

भद्रकाल्यास्तु मन्त्रेण भद्रकालीं प्रपूजयेत् ।
पूजयेद्भूतिवृद्ध्यर्थम् एता एवाष्टयोगिनीः ।।३७।।
जयन्तीं मङ्गलाकालीं भद्रकालीं कपालिनीम् ।
दुर्गां क्षमां शिवां धात्रीं दलेष्वष्टसु पूजयेत् ।।३८।।

भद्रकाली के मन्त्र से भद्रकाली का पूजन करना चाहिये । ऐश्वर्य वृद्धि-हेतु साधक को जयन्ती, मङ्गलाकाली, भद्रकाली, कपालिनी, दुर्गा, क्षमा, शिवा, और धात्री नाम की आठ योगिनियों का अष्टदलकमल के आठदलों में पूजन करना चाहिये ।।३७-३८।।

यदोग्रचण्डातन्त्रेण सा देवी तत्र पूज्यते ।
योगिन्यस्तत्र पूज्याः स्युरष्टावन्याश्च भैरव ।।३९।।
कौशिकी शिवदूती च उमा हैमवतीश्वरी ।
शाकम्भरी च दुर्गा च सप्तमी च महोदरी ।।४०।।

हे भैरव ! यदि देवी का पूजन उग्रचण्डातन्त्र से करना हो तो कौशिकी, शिवदूती, उमा, हैमवती, ईश्वरी, शाकम्भरी, दुर्गा और महोदरी इन आठ योगिनियों का वहाँ पूजन करना चाहिये ।।३९-४०।।

उमायाः सौम्यमूर्तेस्तु मन्त्रं त्वं शृणु भैरव ।
पादिः समाप्तिसहितः फडन्तो नान्त एव च ।।४१।।
एकाक्षरस्त्र्यक्षरश्च उमामन्त्रइति स्मृतः ।।४२।।

हे भैरव ! अब तुम देवी उमा की सौम्यमूर्ति के मन्त्र को सुनो— समाप्ति (विसर्ग) के सहित पवर्ण के पहले का वर्णन, यह एकाक्षर तथा न के अन्त में जो प है उसके साथ यह फः फट् के सहित उमा का त्र्यक्षरमन्त्र बनता है।।४१-४२।।

।। उमाध्यान ।।

सुवर्णसदृशीं गौरीं भुजद्वयसमन्विताम् ।
नीलारविन्दं वामेन पाणिना बिभ्रतीं सदा ।।४३।।
शुक्लं तु चामरं धृत्वा भर्गस्याङ्गेऽथ दक्षिणे ।
विन्यस्य दक्षिणं हस्तं तिष्ठन्तीं परिचिन्तयेत् ।।४४।।

दो भुजाओं से युक्त, सोने के समान गौरवर्णवाली, बायें हाथ में नीलाकमल धारण की हुईं तथा एक श्वेतचामरयुक्त अपना दाहिना हाथ शिव के दाहिने अङ्ग पर रखी हुई, उमा का ध्यान करे ।।४३-४४।।

विनापि शम्भुं रुद्राणीं भक्तस्तु परिचिन्तयेत् ।
द्विभुजां स्वर्णगौराङ्गीं पद्मचामरधारिणीम् ।
व्याघ्रचर्मस्थिते पद्मे पद्मासनगता सदा ।।४५।।

यदि भक्त चाहे तो वह विना शिव के भी रुद्राणी का ध्यान कर सकता है । ऐसा करते समय उसे पद्म और चामर धारण की हुई, स्वर्ण के समान गोरे अङ्गों वाली, व्याघ्रचर्म में स्थित, पद्म पर, पद्मासन में सदैव विराजिता, गौरी का ध्यान करना चाहिये ।।४५।।

एतस्याः पूजने प्रोक्ता अष्टौ वेतालभैरव ।
योगिन्यो नायिकाश्चापिपृथक्त्वेनव्यवस्थिताः ।।४६।।
जया च विजया चैव मातङ्गी ललिता तथा ।
नारायण्यथ सावित्री स्वधा स्वाहा तथाऽष्टमी ।।४७।।

हे वेताल और भैरव ! इनके पूजन हेतु भी जया, विजया, मातङ्गी, ललिता, नारायणी, सावित्री, स्वधा और आठवीं स्वाहा ये आठ योगिनी नायिकाएँ अलग से बताई गईं हैं ।।४६।।

पूर्वं शुम्भो निशुम्भश्च दानवौ भ्रातरावुभौ ।
बभूवतुर्महासत्त्वौ महाकायौ महाबलौ ।।४८।।
अन्धकस्य सुतौ द्वौ तौ दन्तिनाविव दुर्मदौ ।।४९।।

प्राचीनकाल में शुम्भ-निशुम्भ नामक दो महा बलवान्, दानवभाई हुये । वे दोनों ही अत्यधिकशक्ति और विशालशरीर वाले थे । अन्धक नामक असुर के पुत्र वे दोनों थे तथा वे हाथियों के समान मदान्ध थे ।।४८-४९।।

मया विनिहिते तस्मिन्नन्धकाख्ये महाबले ।
ससैन्यवाहनौ तौ तु पातालतलमाश्रितौ ।।५०।।

मेरे द्वारा महाबली अन्धक नामक असुर के मारे जाने पर, वे दोनों अपनी सेना एवं वाहनों के सहित पाताललोक में चले गये थे ।।५०।।

ततस्तप्त्वा तपस्तीव्रं ब्रह्माणन्तौ महासुरौ ।
सम्यक् तदाऽतोषयतां स सुप्रीतो वरं ददौ ।।५१।।

तब ब्रह्मा के समीप उन दोनों ने तीव्रतपस्या करके उन्हें भलीभाँति प्रसन्न कर लिया, उस समय ब्रह्मा ने उन दोनों को वरदान दिया।।५१।।

तौ ब्रह्मवरदृप्तौ तु समासाद्य जगत्त्रयम् ।
इन्द्रत्वमकरोच्छुम्भश्चन्द्रत्वं च निशुम्भकः ।।५२।।
सर्वेषामेव देवानां यज्ञभागानुपाहरत् ।
स्वयं शुम्भो निशुम्भश्च दिक्पालत्वं च तौ गतौ ।।५३।।

ब्रह्मा से वर प्राप्त कर, उन दोनों ने तीनों लोकों पर अधिकार कर लिया। शुम्भ ने इन्द्रत्व तथा निशुम्भ ने चन्द्रत्व प्राप्त कर लिया और सभी देवताओं के यज्ञभाग को भी छीन लिया । स्वयं शुम्भ और निशुम्भ ने दिक्पालों के अधिकार भी ले लिए ।।५२-५३।।

सर्वे सुरगणाः सेन्द्रास्ततो गत्वा हिमाचलम् ।
गङ्गावतारनिकटे महामायां प्रतुष्टुवुः ।।५४।।

तब सभी देवगण अपने राजा इन्द्र के सहित हिमालय पर गये एवं वहाँ गङ्गावतार के निकट पहुँच कर उन्होंने महामाया की स्तुति की ।।५४।।

अनकेशः स्तुता देवी तदा सर्वामरोत्करैः ।
मातङ्गवनितामूर्तिर्भूत्वा देवानपृच्छत ।।५५।।

तब देवी ने सभी देवताओं द्वारा अनेक प्रकार से स्तुति किये जाने पर मातङ्गऋषि की पत्नी (मातङ्गी) होकर सभी देवताओं से पूछा- ।।५५।।

युष्माभिरमरैरत्र स्तूयते का च भामिनी ।
किमर्थमागता यूयं मातङ्गस्याश्रमं प्रति ।।५६।।

आप देवों द्वारा यह किस स्त्री की स्तुति की जा रही है ? आप सब मातङ्ग-ऋषि के आश्रम पर किस हेतु पधारे हैं ? ।।५६।।

एवं ब्रुवन्त्या मातंग्यास्तस्यास्तु कायकोषतः ।
समुद्भूताऽब्रवीद् देवी मां स्तुवन्ति सुरा इति ।।५७।।

मातङ्गऋषि की पत्नी जब इस प्रकार का कह रहीं थीं। तभी उनके शरीर की कोषिका से एक देवी यह कहती हुई प्रकट हुईं कि ये देवता मेरी स्तुति कर रहे हैं ॥५७॥

शुम्भो निशुम्भो ह्यसुरौ बाधैते सकलान् सुरान् ।
तस्मात् तयोर्वधायाहं स्तूयैतैः सकलैः सुरैः ॥५८॥

क्योंकि शुम्भ और निशुम्भ नामक दो असुर, इन सभी देवताओं को कष्ट पहुँचा रहे हैं। अतः उनके वध के लिए मैं इन देवताओं द्वारा स्तुत हो रही हूँ ॥५८॥

विनिःसृतायां देव्यां तु मातंग्याः कायकोषतः ।
भिन्नाञ्जननिभा कृष्णा साऽभूद् गौरी क्षणादपि ।
कालिकाख्याऽभवत् सापि हिमाचलकृताश्रया ॥५९॥
तामुग्रतारामृषयो वदन्तीह मनीषिणः ।
उग्रादपि भयात्त्राति यस्माद् भक्तान् सदाम्बिका ॥६०॥

देवी मातङ्गी के शरीर की कोषिका से निकलते ही गौरी, क्षणभर में कालिका नाम से, अञ्जन के समान काली हो गईं तथा उन्होंने भी वहीं हिमाचल में अपना स्थान बना लिया। मनीषीगण एवं ऋषिजन उन्हें ही उग्रतारा कहते हैं। वे अम्बिका भी सदैव भक्तों की उग्रभयों से रक्षा करती हैं इसीलिए उनका नाम उग्रतारा है ॥५९-६०॥

एतस्याः प्रथमं बीजं कथितं त्रयमेव च ।
एषैवैकजटाख्या तु यस्मात्तस्माज्जटैकिका ॥६१॥
शृणुतं चिन्तनं चास्याः सम्यग्वेतालभैरवौ ।
यथा ध्यात्वा महादेवीं भक्तः प्राप्नोत्यभीप्सितम् ॥६२॥

इसका प्रथम बीज (ऐं) तथा तीनों ही बीज पहले ही बताये गये हैं। ये एक ही जटा-धारण करती हैं। इसीलिए ये एकजटा भी हैं। हे वेताल और भैरव ! अब तुम दोनों, उनके ध्यान को भली भाँति सुनो, जिससे महादेवी का ध्यान करके भक्त शीघ्र ही अपने अभीष्ट को प्राप्त कर लेता है ॥६१-६२॥

॥ उग्रताराध्यान ॥

चतुर्भुजां कृष्णवर्णां मुण्डमालाविभूषिताम् ॥६३॥
खड्गं दक्षिणपाणिभ्यां बिभ्रतीं चामरं त्वधः ।
कर्त्रीं च खर्परं चैव क्रमाद्वामेन बिभ्रतीम् ॥६४॥

वे चार भुजाओं से युक्त, कृष्णवर्ण की तथा मुण्डों की माला से विभूषित हैं। उन्होंने अपने दाहिने दोनों हाथों में ऊपर खड्ग और नीचे चामर तथा क्रम से बाईं ओर कैंची और खप्पर धारण कर रखा है ॥६३-६४॥

द्यां लिखन्तीं जटामेकां बिभ्रतीं शिरसा स्वयम् ।
मुण्डमालाधरां शीर्षे ग्रीवायामपि सर्वदा ।।६५।।

वे एकजटाधारण किये हुए, अपने मस्तक से आकाश को लिख रही (छू रही) हैं। उन्होंने अपने मस्तक और गले में सदैव मुण्डमाला धारण की है ।।६५।।

वक्षसा नागहारं तु बिभ्रतीं रक्तलोचनाम् ।
कृष्णवस्त्रधरां कट्यां व्याघ्राजिन-समन्विताम् ।।६६।।

वे वक्षस्थल पर नागहारधारण किये हैं। उनके नेत्र लाल हैं। वे ऊपर काले-वस्त्र तथा कटि में व्याघ्रचर्म से युक्त हैं ।।६६।।

वामपादं शवहृदि संस्थाप्य दक्षिणं पदम् ।
विन्यस्य सिंहपृष्ठे तु लेलिहाना शवं स्वयम् ।।६७।।
साट्टहासा महाघोरा रावयुक्तातिभीषणा ।
चिन्त्योग्रतारा सततं भक्तिमद्भिः सुखेप्सुभिः ।।६८।।

वे अपना बायां पैर शव के हृदय पर तथा दाहिना पैर, सिंह की पीठ पर रखकर स्वयं शव को चाट रही हैं। महान् भयानकस्वर तथा अत्यन्त घोर-अट्टहास करती हुई इस रूप की तारा देवी का निरन्तर भक्तियुक्त होकर सुख चाहने वाले साधक को चिन्तन करना चाहिये।।६७-६८।।

एतस्याः सम्प्रवक्ष्यामि या अष्टौ योगिनीः स्मृताः ।
महाकाल्यथरुद्राणी उग्रा भीमा तथैव च ।।६९।।
घोरा च भ्रामरी चैव महारात्रिश्च सप्तमी ।
भैरवी चाष्टमी प्रोक्ता योगिनीस्ताः प्रपूजयेत् ।।७०।।

अब मैं इनकी बताई आठ योगिनियों के विषय में कहूँगा। वे महाकाली, रुद्राणी, उग्रा, भीमा, घोरा, भ्रामरी, सातवीं महारात्रि और आठवीं भैरवी, योगिनियाँ कही गई हैं, उनका पूजन करना चाहिये ।।६९-७०।।

या कायकोषान्निःसृता कालिकायास्तु भैरव ।
सा कौशिकीति विख्याता चारुरूपा मनोहरा ।।७१।।

हे भैरव! जो देवी कालिका के शरीर की कोशिका से निकलीं थीं । वे सुन्दररूपवाली, मनोहर देवी, कौशिकी नाम से प्रसिद्ध हुईं ।।७१।।

निःसृता हृदयाद् देव्या रसनाग्रेण चण्डिका ।
नैतस्याः सदृशी मूर्त्या चारुरूपेण विद्यते ।
त्रिषु लोकेषु कान्त्या वा नास्यास्तुल्या भविष्यति ।।७२।।

चण्डिका देवी, देवी उग्रतारा के हृदय से ऊपर आकर जिह्वा के अगलेभाग से प्रकट हुईं। तीनों लोकों में उनके समान रूप में सुन्दर न कोई मूर्ति है और न कान्ति में उनके समान दूसरी कोई होगी।।७२।।

योगनिद्रा महामाया या मूलप्रकृतिर्मता ।
तस्याः प्राणस्वरूपेयं देवी या कौशिकी स्मृता ।।७३।।

जो देवी, महामाया, योगनिद्रा या मूलप्रकृति कही गई हैं, यह जो देवी कौशिकी हैं, उनका प्राणस्वरूप बताई गई हैं ।।७३।।

नेत्रबीजं तथैतस्या बीजं तु परिकीर्तितम् ।
मन्त्रमस्याः प्रवक्ष्यामि मूर्तिरूपं च भैरव ।।७४।।

हे भैरव ! नेत्र बीज ही उसका भी बीज बताया गया है । इस मूर्ति के अनुरूप इसके मन्त्र को कह रहा हूँ ।।७४।।

।। कौशिकीमन्त्र ।।

समाप्तिनान्त्यदन्त्यस्तु षड्वर्गादि-सबिन्दुभिः ।
षष्ठस्वरेण संस्पृष्टो बिन्दुना समलंकृतः ।।७५।।
कौशिकीमन्त्रतन्त्रोऽयं सर्वकामार्थदायकः ।।७६।।

बिन्दुयुक्त छओं वर्गों के आदि अक्षरों और बिन्दु से अलंकृत छठे स्वर ऊ तथा समाप्तिविसर्गयुक्तअन्तिमदन्त्यअक्षर स के मेल से **सूँ अं कं चं टं तं पं** नामक, सभी कामनाओं को प्रदान करने वाला, यह कौशिकी मन्त्र-तन्त्र कहा गया है ।।७५-७६।।

तस्यास्तु सम्प्रवक्ष्यामि या मूर्तिरिह भैरव ।
शृणुष्वैकमना भूत्वा जगदाह्लादकारकम् ।।७७।।

हे भैरव ! अब मैं जगत् को प्रसन्नता देने वाले उसके रूप के विषय में कहूँगा । तुम एकाग्रचित्त होकर उसे सुनो ।।७७।।

।। कौशिकीध्यान ।।

धम्मिल्लसंयतकचां विधोश्चाधोमुखीं कलाम् ।
केशान्ते तिलकस्योर्ध्वे दधती सुमनोहरा ।।७८।।

वे जूड़े के रूप में अपने केशों को व्यवस्थित की हैं तथा तिलक के ऊपर, चन्द्रमा की सुन्दर, अधोमुखी कला, केश के अन्त में, ललाट पर, धारण की हुई हैं ।।७८।।

मणिकुण्डलसङ्घृष्टगण्डा मुकुटमण्डिता ।
सज्ज्योतिः कर्णपूराभ्यां कर्णमापूर्य सङ्गता ।।७९।।

उनके गण्डस्थल मणिमयकुण्डलों से बार-बार रगड़े जा रहे हैं । उनका मस्तक, मुकुट से सुशोभित है । उनके कर्णाभूषणों से फैली हुई ज्योति, कानों तक स्थित है ।।७९।।

सुवर्णमणिमाणिक्यनागहारविराजिता ।
सदा सुगन्धिभिः पद्मैरम्लानैरतिसुन्दरी ।।८०।।

मालां बिभर्ति ग्रीवायां रत्नकेयूरधारिणी ।
मृणालायतवृत्तैस्तु बाहुभिः कोमलैः शुभैः ।।८१।।

वे सुवर्ण और मणि-माणिक्य से बने हार तथा सर्पों के हार से सुशोभित हैं। वे सदैव सुगन्धित, खिले हुए कमलों की माला, गले में धारण की हैं । उन्होंने अपनी कमलनाल की तरह गोल, कोमल, उत्तमभुजाओं में रत्नजड़े हुए केयूर, धारण कर रखे हैं ।।८०-८१।।

राजन्ती कञ्चुकोपेत-पीनोन्नतपयोधरा ।
क्षीणमध्या पीतवस्त्रा त्रिवलीप्रख्यभूषिता ।।८२।।

वे कञ्चुक से ढके, अपने उठे हुए, पुष्ट, स्तनों से शोभायमान हो रही हैं । उनकी कटि, पतली और त्रिवलीयुक्त एवं पीतवस्त्र से सुशोभित है ।।८२।।

शूलं वज्रं च बाणं च खड्गं शक्तिं तथैव च ।
दक्षिणैः पाणिभिर्देवी गृहीत्वा तु विराजिता ।।८३।।
गदां घण्टां च चापं च चर्म शङ्खं तथैव च ।
ऊर्ध्वादिक्रमतो देवी दधती वामपाणिभिः ।।८४।।

वे अपनी दाहिनी, भुजाओं में शूल, वज्र, बाण, खड्ग और शक्तिधारण कर सुशोभित हैं, उन्होंने अपनी बाईं बाहों में ऊपर से नीचे की ओर क्रमशः गदा, घण्टा, धनुष, ढाल और शङ्ख लिया हुआ है।।८३-८४।।

सिंहस्योपरि तिष्ठन्ती व्याघ्रचर्मणि कौशिकी ।
बिभ्रती रूपमतुलं ससुरासुरमोहनम् ।।८५।।

वे कौशिकी देवी, व्याघ्रचर्मधारण की हुई तथा सिंह पर विराजमान हैं, उनका देवताओं एवं असुरों को मुग्ध करने वाला ऊपर वर्णित, यह अतुलनीयरूप है।।८५।।

एतस्याः शृणु वत्स त्वं याः पूज्या अष्टयोगिनीः ।
ताः पूजिताश्च कुर्वन्ति चतुर्वर्गं नृणां सदा ।।८६।।

हे वत्स ! इस देवी की पूजनेयोग्य जो आठ योगिनियाँ हैं और जो पूजे जाने पर मनुष्यों (साधकों) को सदैव चारों पुरुषार्थ प्रदान करती हैं, उनके विषय में सुनो ।।८६।।

ब्रह्माणी प्रथमा प्रोक्ता ततो माहेश्वरी मता ।
कौमारी चैव वाराही वैष्णवी पञ्चमी तथा ।।८७।।
नारसिंही तथैवैन्द्री शिवदूती तथाऽष्टमी ।
एताः पूज्या महाभागा योगिन्यः कामदायिका: ।।८८।।

उनमें सर्वप्रथम ब्रह्माणी तब माहेश्वरी, कौमारी, वाराही, पाँचवी वैष्णवी तब नारसिंही, ऐन्द्री तथा आठवीं शिवदूती, ये महाभागयोगिनियाँ पूजनेयोग्य और भक्तों की कामनाओं को पूरा करने वाली हैं ॥८७-८८॥

देव्या ललाटनिष्क्रान्ता या कालीति च विश्रुता ।
तस्या मन्त्रं प्रवक्ष्यामि कामदं शृणु भैरव ॥८९॥

हे भैरव ! जो देवी, देवी के ललाट से उत्पन्न हुईं तथा काली नाम से विख्यात हैं । मैं उनके कामनापूरकमन्त्र के विषय में कहूँगा । तुम उसे सुनो ॥८९॥

॥ कालीमन्त्र ॥

समाप्तिसहितो दन्त्यः प्रान्तस्तस्मात् पुरःसरः ।
षष्ठस्वराग्निबिन्द्विन्दुसहितः सादिरेव च ।
कालीमन्त्रमिति प्रोक्तं धर्मकामार्थदायकम् ॥९०॥

छठें स्वर ऊ, अग्नि (र), चन्द्र-बिन्दु से युक्त समाप्ति सहित अन्तिम से पहला दन्त्य ल उसके पहले स के पहले का वर्ण व मिलकर धर्म, अर्थ, काम को देने वाला कालीमन्त्र व्लूँः कहा गया है॥९०॥

एतन्मूर्तिं प्रवक्ष्यामि वत्सैकाग्रमनाः शृणु ॥९१॥

अब मैं इसके ध्यान के विषय में तुमसे कहूँगा । हे वत्स ! एकाग्रमन हो अब तुम इसे सुनो ॥९१॥

॥ कालीध्यान ॥

नीलोत्पलदलश्यामा चतुर्बाहुसमन्विता ।
खट्वाङ्गं चन्द्रहासं च बिभ्रती दक्षिणे करे ॥९२॥
वामे चर्म च पाशं च ऊर्ध्वाधोभागतः पुनः ।
दधतीं मुण्डमालां च व्याघ्रचर्मधरा वराम् ॥९३॥

वे नीलेकमल की पँखुड़ियों के समान श्यामवर्ण की तथा चार भुजाओं से युक्त हैं । वे अपने दाहिने हाथों में खटवाङ्ग और चन्द्रहास तथा बाईं ओर हाथों में ढाल और पाश, ऊपर से नीचे की ओर धारण की हैं । वे श्रेष्ठदेवी गले में मुण्डमाला पहने और शरीर पर व्याघ्रचर्मधारिणी, श्रेष्ठनारीरूपा हैं ॥९२-९३॥

कृशाङ्गी दीर्घद्रंष्ट्रा च अतिदीर्घातिभीषणा ।
लोलजिह्वा निम्नरक्त-नयना नादभैरवा ॥९४॥
कबन्धवाहनासीना विस्तार-श्रवणानता ।
एषा ताराह्वया देवी चामुण्डेति च गीयते ॥९५॥

वे दुर्बलशरीर, लम्बेदाँत, अत्यन्तलम्बी और भयानक किन्तु चञ्चल, जीभ, गहरे किन्तु लाल रंग के नेत्र, भयानकस्वर तथा बड़ेकान एवं मुख से युक्त कबन्ध

(शिर विहीन शव) पर विराजमान हैं। इन देवी चामुण्डा को तारा, इस नाम से पुकारा जाता है ॥९४-९५॥

एतस्या योगिनीश्चाष्टौ पूजयेच्चिन्तयेद् यदि ।
त्रिपुरा भीषणा चण्डी कर्त्री हर्त्री विधायिनी ।
कराला शूलिनी चेति अष्टौ ताः परिकीर्तिताः ।।९६।।

इसकी आठ योगिनियाँ हैं, जिनका पूजन एवं ध्यान करना चाहिये। वे त्रिपुरा, भीषणा, चण्डी, कर्त्री, हर्त्री, विधायिनी, कराला, और शूलिनी ये आठ बताई गई हैं॥९६॥

एषाऽतिकामदा देवी जाड्यहानिकरी सदा ।
एतस्याः सदृशी काचित् कामदा न हि विद्यते ।।९७।।

यह अत्यन्त कामनाओं को पूरी करने वाली, सदैव जड़ता या मूर्खता को दूर करने वाली है। इसके समान कामनाओं को पूर्ण करने वाली अन्य कोई शक्ति नहीं है॥९७॥

कौशिक्या हृदयाद् देवी निःसृता ध्यायतो हरेः ।
शिवदूतीति सा ख्याता या देवशतैर्वृता ।।९८।।

जब हरिध्यान कर रहे थे। उस समय कौशिकी देवी के हृदय से सौ देवताओं से घिरी हुई, शिवदूती नामक देवी प्रकट हुईं ॥९८॥

मन्त्रमस्याः प्रवक्ष्यामि धर्मकामार्थदायकम् ।
यच्छ्रुत्वा साधको याति दुर्लभं शिवमन्दिरम् ।।९९।।
यामाराध्य महादेवीं शिवदूतीं शिवात्मिकाम् ।
नचिराल्लभते कामान् नरः सर्वजयी भवेत् ।।१००।।

अब मैं इसके धर्म, अर्थ, काम प्रदान करने वाले मन्त्र के विषय में कहूँगा जिसे सुनकर साधक, दुर्लभ, शिवलोक को जाता है तथा जिस शिवरूपा, महादेवी शिवदूती की आराधना करके साधक, शीघ्र ही अपनी कामनाओं को प्राप्त कर लेता है और वह सर्वत्रविजयी हो जाता है ॥९९-१००॥

।। शिवदूतीमन्त्र ।।

अन्तः समाप्तिसहितो बिन्द्विन्दुभ्यां दशावरः ।
स्वरेणोपान्तदन्त्येन संस्पृष्टोऽन्तेन पूर्वशः ।।१०१।।
स एव बिन्दुयुगलपूर्वस्थोपान्तपावकः ।
षष्ठस्वरकलाशून्यैः सहितः प्रथमस्थितः ।।१०२।।
मन्त्रोऽयं शिवदूत्यास्तु शिवदूतीजयप्रदः ।।१०३।।

अन्तिम व्यञ्जन क्ष (क्षः) चन्द्र बिन्दु एव दशोत्तर ग्यारहवें स्वर ए सहित अन्तिम से विसर्ग सहित पहले दन्त्यस् पर्कोपश्चयात वर्तीवर्ण फ (स्फें) को बिन्दुओं विसर्ग के पहले स (सः); अन्तिम व्यञ्जन से पहला (ह), अग्नि (र), चन्द्रकलायुक्त छठे स्वर के सहित (हूँ) पहले-पहले स्थित हो हूँ सः स्फें क्षः यह शिवदूती का मन्त्र बनता है। यह शिवदूती जय प्रदान करनेवाली है॥१०१-१०३॥

।। शिवदूतीध्यान ।।

रूपमस्याः प्रवक्ष्यामि श्रृणु वत्सैकसम्मतः ।
चतुर्भुजं महाकायं सिन्दूरसदृशद्युतिं ।।१०४।।
रक्तदन्तं मुण्डमाला-जटाजूटार्धचन्द्रधृक् ।
नागकुण्डलहाराभ्यां शोभितं नखरोज्ज्वलम् ।।१०५।।
व्याघ्रचर्म-परीधानं दक्षिणे शूलखड्गधृक् ।
वामे पाशं तथा चर्म बिभ्रदूर्ध्वापरक्रमात् ।।१०६।।
स्थूलवक्त्रं च पीनोष्ठं तुङ्गमूर्तिं भयङ्करम् ।
निक्षिप्य दक्षिणं पादं सन्तिष्ठत् कुणपोपरि ।।१०७।।
वामपादं श्रृगालस्य पृष्ठे फेरुशतैर्वृतम् ।
ईदृशीं शिवदूत्यास्तु मूर्तिं ध्यायेद् विभूतये ।।१०८।।

हे बत्स—अब मैं उसके स्वरूप का वर्णन करता हूँ । उसे तुम एकाग्रचित्त हो सुनो— वे देवी चार भुजाओं वाली, विशालशरीर तथा सिन्दूर के समान शरीर की आभावाली, लालदाँतो से युक्त हो, मुण्डमाला, जटा-जूट एवं अर्धचन्द्र, धारण करने वाली हैं । वे नागों से बने कुण्डल और हार से सुशोभित हैं तथा उनके नाखून उज्ज्वल हैं । वे व्याघ्र- चर्म पहने तथा अपने दाहिने हाथों में शूल और खड्ग एवं बायें हाथों में पाश, ढाल, ऊपर से नीचे की ओर, धारण की हैं । उनका मुँह बड़ा, ओठ मोटे, शरीर ऊँचा, भयङ्कर है और वह अपना दाहिना पैर, कुणप (शव) पर रखे हुए स्थित हैं। वे सैकड़ों श्रृगालों से घिरी हुई हैं। उन्होंने अपना बायाँ पैर श्रृगाल की पीठ पर रखा है। ऐश्वर्यप्राप्ति हेतु, साधक को इस प्रकार की शिवदूती की मूर्ति का ध्यान करना चाहिये।।१०४-१०८।।

ध्यानमात्रादथैतस्याः नरः कल्याणमाप्नुयात् ।
पूजनादचिराद् देवी सर्वान् कामान् ददाति च ।।१०९।।

इसके ध्यानमात्र से ही साधक मनुष्य, कल्याण को प्राप्त कर लेता है और पूजन करने पर शीघ्र ही देवी साधक की समस्त कामनाओं को प्रदान करती हैं।।१०९।।

यः शिवाविरुतं श्रुत्वा शिवदूतीं शुभप्रदाम् ।
प्रणमेत् साधको भक्त्या तस्य कामाः करे स्थिताः ।।११०।।

जो साधक शिवा (सियारिन) की आवाज सुनकर उसे, शुभदायिनी शिवदूती को भक्तिपूर्वक प्रणाम करता है, उसकी समस्त कामनाएँ, उसे हस्तगत हो जाती हैं।।११०।।

यदा जघान जगतां रक्तबीजं हिताय वै ।
महादेवी महामाया तदास्याः कायतः सृताः ।।१११।।

दूतं प्रस्थापयामास शिवं शुम्भाय साम्बिका ।
तेन सा शिवदूतीति देवैः सर्वैः प्रगीयते ।।११२।।

जब महादेवी महामाया ने जगत् के कल्याण के लिए रक्तबीज का वध किया था । तब ये देवि उनके शरीर से उत्पन्न हुई थी । तथा उस अम्बिका ने शिव को अपना दूत बनाकर, शुम्भ नामक दैत्य के प्रति भेजा था, इसी से वह देवी, सभी के द्वारा शिवदूती के रूप में कही जाती हैं।।१११-११२।।

क्षेमकारी च शान्ता च वेदमाता महोदरी ।
कराला कामदा देवी भर्गास्या भगमालिनी ।।११३।।
भगोदरी भगारोहा भगजिह्वा भगा तथा ।
एता द्वादश योगिन्यः पूजने परिकीर्तिताः ।।११४।।

इसकी पूजा में क्षेमकारी, शान्ता, वेदमाता, महोदरी, कराला, कामदा, देवी भगास्या, भगमालिनी, भगोदरी, भगारोहा, भगजिह्वा और भगा नाम की ये बारहयोगिनियाँ बताई गई हैं ।।११३-११४।।

एता द्वादश योगिन्यः शिवदूत्याः सदैव हि ।
विचरन्ती स्वयं देवी यत्र तत्रैव गच्छति ।।११५।।

ये शिवदूती की बारह योगिनियाँ हैं। देवी, स्वयं जहाँ-जहाँ जाती हैं, वे सदैव वहीं जाती हैं ।।११५।।

योगिन्यो ह्यथ सख्यः स्युर्यथान्यासां तथापुनः ।
चण्डिकायास्तु योगिन्यः सख्योऽत्र च प्रकीर्तिताः ।।११६।।

जैसे योगिनियाँ अन्य देवियों की सखियाँ होती हैं, उसी प्रकार चण्डिका की ये योगिनियाँ उनकी सखियाँ हीं हैं ।।११६।।

इति ते त्वङ्गमन्त्राणि कथितानि समासतः ।
कामाख्यायाश्च माहात्म्यं कल्पमात्रं वदामि वाम् ।।११७।।

।। इति श्रीकालिकापुराणे कामाख्यामाहात्म्यनाम एकषष्टितमोऽध्यायः ।।६१।।

इस प्रकार मैंने संक्षेप में देवी के अङ्गमन्त्रों को तुमसे कहा । अब मैं तुम दोनों से कामाख्या का माहात्म्य और पूजा-पद्धति कहता हूँ ।।११७।।

।। श्रीकालिकापुराण में कामाख्यामाहात्म्य नामक एकसठवाँ अध्याय सम्पूर्ण हुआ ।।६१।।



द्विषष्टितमोऽध्यायः

कामाख्यामाहात्म्यम् (२)

।। भगवानुवाच ।।

कामार्थमागता यस्मान्मया सार्धं महागिरौ ।
कामाख्या प्रोच्यते देवी नीलकूटे रहोगता ।।१।।

श्रीभगवान् बोले– वे देवी महामाया, महान् नीलकूट पर्वत पर एकान्त में मेरे साथ कामहेतु पधारीं थीं इसीलिए उन्हें कामाख्या कहा जाता है ।।१।।

कामदा कामिनी कामा कान्ता कामाङ्गदायिनी ।
कामाङ्गनाशिनी यस्मात् कामाख्या तेन चोच्यते ।।२।।

वे काम प्रदान करने, कामयुक्त स्त्री कामिनी, कामरूपा, कान्ता (प्रिया), कामाङ्ग को प्रदान करने तथा कामाङ्ग को नष्ट करने वाली भी हैं। इसीलिए वे कामाख्या कही जाती हैं ।।२।।

एतस्याः शृणु माहात्म्यं कामाख्यायाः विशेषतः ।
या सा प्रकृतिरूपेण जगत्सर्वं नियोजयेत् ।।३।।

अब इसके, विशेषकर कामाख्यादेवी के माहात्म्य को सुनो, जो सम्पूर्ण संसार को प्रकृतिरूप से अपने-अपने कर्मों में नियोजित करती हैं ।।३।।

मधुकैटभनाशाय महामायाविमोहितः ।
यदा संयुयुधे विष्णुस्तदैषामोहयद्धरिम् ।।४।।

महामाया से विमोहित हो जब भगवान् विष्णु, मधु-कैटभ के नाश के लिए उन दोनों से युद्ध कर रहे थे, उस समय इन्हीं ने हरि को मोहित कर दिया था ।।४।।

दैनन्दिने तु प्रलये प्रसुप्ते गरुड़ध्वजे ।
तस्याः श्रवणविड्जातावसुरौ मधुकैटभौ ।।५।।

ब्रह्मा के मान से दैनन्दिन प्रलय के समय, जब गरुड़ध्वज, भगवान् विष्णु भली-भाँति सो गये थे। उस समय उनके कान के मल से मधु और कैटभ नाम के दो असुर उत्पन्न हुए ।।५।।

कूर्मपृष्ठे स्थिता देवी विशीर्णेवाभवज्जलैः ।
तां विशीर्णां योगनिद्रा महामाया व्यलोकयत् ।।६।।

कूर्मपृष्ठपरस्थित पृथ्वी देवी उस समय जल के कारण सिकुड़ गई थीं। (डूब गई) थीं। तब उस संकटग्रस्त पृथ्वी को योगनिद्रा महामाया ने देखा।।६।।

तां वै दृढतरां पृथ्वीं कर्तुं प्रति तदेश्वरी ।
उपायं चिन्तयामास कथं पृथ्वी भवेद्दृढा ।।७।।

उस पृथ्वी को अधिक दृढ़ करने हेतु उस देवी ने उपाय का विचार करना प्रारम्भ किया कि कैसे यह पृथ्वी अधिक दृढ़ हो।।७।।

इदानीमाज्यवत् पृथ्वी प्रवृत्ता कोमला जलैः ।
सृष्टिकाले जनान् सोढुं कथं शक्ता भविष्यति ।।८।।

इस समय पृथ्वी कोमल हो, जल पर घी की भाँति स्थित है। वह सृष्टि के समय, प्रजा के भार को वहन करने में कैसे समर्थ होगी?।।८।।

इति संचिन्त्य सा माया जगतां सृष्टिरूपिणी ।
उपगम्य तदा विष्णुमाससाद सुनिद्रितम् ।।९।।

ऐसा सोचकर वे संसारसृष्टिरूपा माया तब, भलीभाँति सोये हुए भगवान् विष्णु के समीप पहुँच गईं ।।९।।

तं तु सुप्तं समासाद्य जगन्नाथं जगत्पतिम् ।
वामहस्तकनिष्ठाग्रं तस्य कर्णे न्यवेशयत् ।।१०।।

उन जगत् के स्वामी, जगन्नाथ, विष्णु को सोता हुआ पाकर, बायेंहाथ की कनिष्ठाअंगुली के नख के अगलेभाग का उन्होंने, उन (विष्णु) के कान में प्रवेश कराया ।।१०।।

निवेश्य नखराग्रेण प्रोद्धृत्य श्रावणं मलम् ।
चूर्णीचकार सा देवी योगनिद्रा जगत्प्रसूः ।
तत्कर्णमलचूर्णिभ्यो मधुर्नामासुरोऽभवत् ।।११।।

उन जगत् जननी, योगनिद्रा देवी ने अपने नाखून के अग्रभाग को उनके कान में प्रवेश कराकर उनके कान के मैल को निकाला और उसे चूर्ण कर दिया। उस कान के मैल के चूरे से मधु नामक असुर उत्पन्न हुआ ।।११।।

ततो दक्षिणहस्तस्य कनिष्ठाग्रं तु दक्षिणे ।
कर्णे न्यवेशयद् देवी तस्मादप्युद्धृतं मलम् ।।१२।।
तच्चापि क्षोदयामास करशाखाद्वयेन तु ।
ततोऽभूत् कैटभो नाम बलवान् सोऽसुरो महान् ।।१३।।

तब देवी ने अपने दाहिनेहाथ की कनिष्ठिका के अगलेभाग का विष्णु के दाहिनेकान में प्रवेश कराया और उससे भी मल (खोंट) निकाला। उसको भी उन्होंने अपनी दो अंगुलियों से मसला तो वह कैटभ नामक महान् बलवान् असुर हो गया ।।१२-१३।।

उत्पन्नः स च पानार्थं यस्मान्मृगितवान्मधु ।
ततस्तस्य महादेवी मधुनामाकरोत्तदा ।।१४।।

उत्पन्नः कीटवद्भाति महामायाकरे यतः ।
ततोऽस्य कैटभं नाम महामाया तदाकरोत् ।।१५।।

जिसने उत्पन्न होते ही पहले पीने के लिए मधु की याचना की, इसीलिए देवी ने उसका नाम मधु किया। जो उत्पन्न होते ही, महामाया के हाथ पर कीड़े की भाँति दिखाई दे रहा था, महामाया ने उसका कैटभ नामकरण किया ।।१४-१५।।

तावुवाच महामाया युध्यतां हरिणा सह ।
युवां नो श्रद्धयेवात्र भवन्तौ निहनिष्यति ।।१६।।
युवां यदा प्रभाषेथे आवां विष्णो वधान भो ।
तदैवायं युवां हन्ता नान्यथा हरिरप्यथं ।।१७।।

तब (नामकरण के पश्चात्) देवी ने उन दोनों से कहा कि तुम दोनों विष्णु के साथ युद्ध करो। जब तक तुम दोनों उन पर श्रद्धा नहीं करोगे। वे तुम्हें मार नहीं सकते। जब तुम दोनों भगवान्-विष्णु से कहोगे कि हे विष्णु ! तुम हमारा वध करो। तभी हरि तुम दोनों को मारेंगे अन्यथा नहीं ।।१६-१७।।

महामायामोहितौ तौ विष्णुगात्रं तदा गतौ ।
भ्रममाणौ ददृशतुर्नाभिपद्मोत्थितं विधिम् ।।१८।।
तमूचतुस्तौ धातारं हनिष्यावोऽद्य त्वामिह ।
तं जागरय वैकुण्ठं यदि जीवितुमिच्छसि ।।१९।।

तब महामाया से विमोहित हो वे दोनों विष्णु के शरीर के समीप गये। वहाँ घूमते हुए, उन दोनों ने विष्णु के नाभि से निकले हुए कमल पर विराजमान, ब्रह्मा को देखा। तब उन दोनों भाइयों ने ब्रह्मा से कहा कि तुम यदि जीना चाहते हो तो इस विष्णु को जगाओ, अन्यथा आज हम दोनों, तुम्हें ही मार डालेंगे ।।१७-१८।।

ततो ब्रह्मा महामायां योगिनिद्रां जगत्प्रसूम् ।
प्रसादयामास तदा स्तुतिभिर्बहुभिर्भयात् ।।२०।।

तब ब्रह्मा ने भयभीत हो, बहुत सी स्तुतियों द्वारा, जगत् को उत्पन्न करने-वाली, महामाया, योगनिन्द्रा को प्रसन्न किया ।।२०।।

चिरं स्तुताथ सा देवी ब्रह्मणा जगदात्मना ।
प्रसन्ना तरसा व्यग्रमुवाच च यथाविधि ।।२१।।

जब जगत्-आत्मा ब्रह्मा ने बहुत समय तक उस देवी की विधिपूर्वक स्तुति की तो वे झट से प्रसन्न हो गईं। उस समय घबराये हुये ब्रह्मा ने उन से उन्होंने पूछा।।२१।।

किमर्थं संस्तुता चाहं किं करिष्याम्यहं तव ।
तद् वद त्वं महाभाग करिष्याम्यहमद्य ते ।।२२।।

तुम्हारे द्वारा किस उद्देश्य से मेरी स्तुति की गई है ? मैं तुम्हारे लिए क्या करूँ ? हे महाभाग ! तुम उसे बताओ। मैं आज तुम्हारे लिए, वह अवश्य करूँगी ।।२२।।

ततस्तेन महामाया प्रोक्ता धात्रा महात्मना ।।२३।।
प्रबोधय जगन्नाथं यावत्तौ मां हनिष्यतः ।
सम्मोहय दुराधर्षावसुरौ मधुकैटभौ ।।२४।।

तब उन महान्आत्मा वाले ब्रह्मा द्वारा महामाया से कहा गया–जब तक ये दोनों मुझे मार न डालें, तब तक आप जगन्नाथ (विष्णु) को प्रबोधित (जागृत) कर दें । तथा मधु-कैटभ नामक, इन दोनों भयानक असुरों को आप मोहित करें ।।२३-२४।।

इत्युक्ता सा तदा देवी ब्रह्मणा जगदात्मना ।
बोधयामास वैकुण्ठं मोहयामास तौ तदा ।।२५।।

तब जगदात्मा ब्रह्मादेवता द्वारा ऐसा कहे जाने पर उन देवी ने वैकुण्ठ (विष्णु) को, जागृत किया तथा उन दोनों दैत्यों को मोहित किया ।।२५।।

ततः प्रबुद्धः कृष्णस्तु ददर्श भयशालिनम् ।
ब्रह्माणं तौ तदा घोरावसुरौ मधुकैटभौ ।।२६।।

तब उस समय उठकर कृष्ण (विष्णु) ने भयभीत ब्रह्मा को तथा उन दोनों भयानक असुरों को देखा ।।२६।।

ततस्ताभ्यां स युयुधे ह्यसुराभ्यां जनार्दनः ।
नाशकद्धारितुं वीरावसुरौ मधुकैटभौ ।।२७।।

तब वे जनार्दन (विष्णु) उन दोनों असुरों से युद्ध करने लगे किन्तु मधु-कैटभ नामक उन दोनों वीरों को मारने में वे समर्थ नहीं हुये ।।२७।।

अनन्तोऽपि फणाग्रेण तान्नोधर्तुं क्षमोऽभवत् ।
युध्यमानान् महावीरान् वैकुण्ठं मधुकैटभान् ।।२८।।

अनन्त (शेष नाग) भी अपने फन के अगले भाग से उन मधु-कैटभ नामक महान वीरों का उद्धार करते हुए, विष्णु को धारण करने में समर्थ नहीं हुए ।।२८।।

अथ ब्रह्मा शिलारूपां स्थितिशक्तिं तदाकरोत् ।
अर्धयोजनविस्तीर्णामर्धयोजनमायताम् ।।२९।।

तब ब्रह्मा ने आधेयोजन चौड़ी तथा आधेयोजन लम्बी एक वर्गाकार शिला के रूप में स्थितिशक्ति का निर्माण किया ।।२९।।

तस्यां शिलायां गोविन्दो युयुधे नृपसत्तम ।
सह ताभ्यां शिला सा तु प्रविवेश जलान्तरम् ।।३०।।

हे राजाओं में श्रेष्ठ ! जब उस शिला पर गोविन्द (विष्णु) ने उन दोनों असुरों के साथ युद्ध किया तो वह शिला भी जल में प्रवेश कर गई ।।३०।।

तस्यां तु शक्त्यां मग्नायां तोये स युयुधे हरिः ।
पञ्चवर्षसहस्राणि बाहुयुद्धैर्निरन्तरम् ।।३१।।

उस शक्तिरूपीशिला के जलमग्न हो जाने पर भी भगवान् विष्णु, जल में ही निरन्तर पाँच हजार वर्षों तक उनसे बाहुयुद्ध (कुश्ती) लड़ते रहे ।।३१।।

यदा वै नाशकद् हन्तुं तौ विष्णुर्जगतां पतिः ।
परां चिन्तां तदावाप विधातापि भयात् ततः ।।३२।।

जब वे जगत् के स्वामी, विष्णु उन दोनों को नहीं मार सके। तब उस समय ब्रह्मा भी भयवश अत्यन्त चिन्तित हो उठे ।।३२।।

ततस्तावेव तं विष्णुमूचतुर्बलदर्पितौ ।
पुनः पुनर्जगन्मातृ-महामाया-विमोहितौ ।।३३।।

तब उन दोनों ने जगन्माता, महामाया से विमोहित हो अपने बल के अहंकारवश, बारम्बार भगवान् विष्णु से कहा ।।३३।।

तुष्टौ स्वस्त्यस्यवन्नियुद्धेन वरं वरय माधव ।
तवेष्टं सम्प्रदास्यावः सत्यमेतद् ब्रुवोऽधुना ।।३४।।

हे माधव (विष्णु)! तुम्हारा कल्याण हो। हम दोनों तुम्हारे इस युद्ध से सन्तुष्ट हुये। जो भी तुम्हारा अभीष्ट हो। वर मांग लो। वह हम तुम्हें इस समय देगें। यह सत्य है ।।३४।।

तयोस्तद्वचनं श्रुत्वा माधवो जगतां पतिः ।
उवाच तौ युवां वध्यौ भवतां मे महाबलौ ।
इति देहि वरं मह्यं दातव्यं यदि विद्यते ।।३५।।

उन दोनों के उस वचन को सुनकर जगत् के स्वामी माधव (विष्णु) ने कहा तुम दोनों महाबली, मेरे द्वारा मारे जाओ। यदि कुछ वर देना चाहते हो तो मुझे यही वर दो ।।३५।।

।। तौ ऊचतुः ।।

तौ तदा प्राहतुर्नाशस्त्वत्तो नौ शोभनोऽधुना ।
तत्रावां जहि नो यत्र तोयं सम्प्रति विद्यते ।।३६।।

तब उन दोनों दैत्यों ने कहा—इस समय तुम्हारे द्वारा हम दोनों का नाश उचित ही होगा। अतः इस समय जहाँ जल न हो वहीं तुम हम दोनों का वध करो ।।३६।।

तयोस्तद्वचनं श्रुत्वा माधवो जगतां पतिः ।
ब्रह्माणं मां च शीघ्रेण प्राहेदं चात्मसंज्ञया ।३७।।

उन दोनों की बातें सुनकर जगत् के स्वामी भगवान् विष्णु, मुझ (शिव) से और ब्रह्मा से अपनी आत्मसंज्ञा द्वारा शीघ्रतापूर्वक बोले ।।३७।।

ब्रह्मशक्तिशिलां शीघ्रमुद्धृत्य ध्रियतां यतः ।
तत्र स्थित्वा महाघोरौ हनिष्यामि महाबलौ ।।३८।।

आप दोनों इस ब्रह्मशक्तिशिला को शीघ्र ही ऊपर उठा कर धारण करो। जिससे मैं उस पर स्थित हो इन दोनों अत्यन्त भयानक और बलशाली असुरों को मार सकूँ ।।३८।।

ततो ब्रह्मा ह्यहं चैव उद्दधार शिलां तु ताम् ।।३९।।
तस्यां मध्ये पूर्वभागे ह्यहं पर्वतरूपधृक् ।
ऊर्ध्वे स्थित्वा शिलां भित्त्वा प्रविवेश रसातलम् ।।४०।।
ऐशान्यामभवत् कूर्मः पर्वतश्चाग्रहीच्छिलाम् ।
वायव्यां च तथानन्तो नैऋत्यां च सुरेश्वरी ।।४१।।
महामाया जगद्धात्री शैलरूपप्रधारिणी ।
आग्नेय्यां च तथा विष्णुरेकरूपेण संस्थितः ।।४२।।
ब्रह्मशक्तिशिलां गृह्णन् भगवान् परमेश्वरः ।
मध्ये ब्रह्मा त्वहं चैव वाराहश्च तथापरः ।।४३।।

तब मैं और ब्रह्मा ने उस शिला को ऊपर उठाया। उस शिला के मध्यभाग पूर्वदिशा में मैं (शिव) पर्वतरूप में शिला पर स्थित हो उसे भेद कर रसातल तक पहुँच गया। ईशानकोण में कूर्म ने पर्वतरूप धारणकर उस शिला को पकड़ा तो वायव्यकोण में अनन्त (शेषनाग) और नैऋत्य कोण में देवताओं की स्वामिनी, जगत् का पालन करने वाली, महामाया ही पर्वतरूप में उपस्थित हुईं। अपने एक रूप से पर्वतरूप में स्वयं परमेश्वर भगवान् विष्णु ने अग्निकोण में स्थित हो, उस ब्रह्मशक्तिशिला को सँभाला। उस समय मध्य में मैं, ब्रह्मा और वाराह ने उसे रोका ॥३९-४३॥

ततो वाराहपृष्ठास्य चरमे जगतांपतिः ।
स्थित्वा शिलामवष्टभ्य ब्रह्मशक्तिमधोगताम् ।।४४।।
वामोरुजघने यत्नादारोप्य शिरसी तयोः ।
जगदाधारभूतः स सर्वयत्नेन संयुतः ।।४५।।
सर्वैर्बलैः समाक्रम्य चिछेद च पृथक् पृथक् ।
मधुकैटभयोः सम्यग् ग्रीवयोः पृथिवीमृते ।।४६।।

तब वाराह की पीठ के चरमभाग (शिखर पर) स्थित हो, जगत् के स्वामी, विष्णु ने नीचे जाती हुई ब्रह्मशिला को पकड़ा तथा उन दोनों दैत्यों के सिर को अपने बायें जंघे और टखने पर यत्नपूर्वक रखा। तब जगत् के आधारभूत उन विष्णु ने सब प्रकार के प्रयत्न और बलों से युक्त हो, वहाँ उन दोनों मधु और कैटभ के गले को अच्छी तरह से अलग-अलग काट डाला ॥४४-४६॥

तस्य चाक्रमत स्थेम्ना ब्रह्मशक्तिरधोगता ।
ध्रियमाणापि देवौघैर्यत्नादपि मुहुर्मुहुः ।।४७।।

उन विष्णु के शिला पर आरूढ़ हो जाने पर समस्त देवसमूह द्वारा बार-बार प्रयत्नपूर्वक धारण किये जाने पर भी ब्रह्मशक्तिशिला जल में नीचे चली गई ॥४७॥

ततस्तयोस्तु मृतयोः शरीरे जगतां पतिः ।
ब्रह्मशक्तिं समुद्धृत्य न्यधात् तस्यां प्रयत्नतः ।।४८।।

तब जगत् के स्वामी, विष्णु ने ब्रह्मशक्तिशिला को ऊपर लाकर, उन दोनों दैत्यों के मृत-शरीर को यत्नपूर्वक उस पर रखा ।।४८।।

उद्धृतायां पृथिव्यां तु तयोर्मेदोविलेपनैः ।
सुदृढामकरोत् पृथ्वीं क्लेदितां तोयराशिभिः ।।४९।।

जलराशि से भीगी हुई पृथिवी को ऊपर उठाकर, उन दोनों के मेदे के लेपन से भगवान विष्णु ने उसे सुदृढ़ किया ।।४९।।

मेदोविलेपनाद् यस्माद् गीयते मेदिनी च सा ।
अद्यापि पृथिवी देवी देवराक्षसमानुषैः ।।५०।।

उस मेदे से विलेपन (लिपे जाने) के कारण ही देवता, राक्षस और मनुष्यों द्वारा आज भी वह पृथिवीदेवी, मेदिनी नाम से पुकारी जाती हैं ।।५०।।

अथ काले बहुतिथे व्यतीते प्राणिसर्जने ।
अगृह्णां दक्षतनयां भार्यार्थेऽहं वधूं वराम् ।।५१।।

इस घटना के बहुत समय बीत जाने और सृष्टिप्रक्रियापूर्ण हो जाने पर मैंने दक्षप्रजापति की श्रेष्ठकन्या, सती को पत्नीहेतु, वधू के रूप में ग्रहण किया ।।५१।।

सा मेऽभूत् प्रेयसी भार्या प्रादाय समयं पितुः ।
अनिष्टकारी त्वं चेत् स्याः प्राणांस्त्यक्ष्ये तदा त्वहम् ।।५२।।

वह अपने पिता से यह वचन लेकर मेरी प्रियपत्नी बनी, कि जब तुम मेरे लिए कोई अनिष्ट करोगे। तो मैं अपना प्राण छोड़ दूँगी ।।५२।।

ततो यज्ञे समस्तांस्तु स च वव्रे चराचरम् ।
न मां नापि सतीं वव्रे तदानीष्टान्मृता तु सा ।।५३।।

तत्पश्चात् एक यज्ञ में दक्षप्रजापति ने समस्त चराचर जगत् को आमन्त्रित किया किन्तु उस समय न तो मुझे और न सती को ही आमन्त्रित किया। तब इस अनिष्ट के कारण वह सती, मर गई ।।५३।।

ततो मोहं समाक्रान्तस्तमादाय मृतामहम् ।
प्राप्तः पीठवरं तं तु भ्रममाण इतस्ततः ।।५४।।

तो मोहग्रस्त हो, मैं उस मरी हुई सती को लेकर इधर-उधर घूमता हुआ, इस श्रेष्ठपीठ (पूजा स्थान) पर पहुँचा ।।५४।।

तस्यास्त्वङ्गानि पर्यायात् पतितानि यतो यतः ।
तत् तत् पुण्यतमं जातं योगनिद्राप्रभावतः ।।५५।।

योगनिद्रा के प्रभाव से जहाँ-जहाँ उसके अङ्ग, क्रमशः गिरे थे, वे पवित्रतम (पीठ) स्थान हो गये ।।५५।।

तस्मिंस्तु कुब्जिकापीठे सत्यास्तद्योनिमण्डलम् ।
पतितं तत्र सा देवी महामाया व्यलीयत ।।५६।।

उसमें भी कुब्जिकापीठ, जहाँ सती का योनिमण्डल गिरा था। वहीं वह देवी, महामाया, लीन हो गईं ।।५६।।

लीनायां योगनिद्रायां मयि पर्वतरूपिणी ।
स नीलवर्णः शैलोऽभूत्पतिते योनिमण्डले ।।५७।।

योगनिद्रा के पर्वतरूप से मुझ में लीन हो जाने तथा वहाँ योनिमण्डल के गिरने से वह पर्वत, नीले रंग का हो गया ।।५७।।

स तु शैलो महातुङ्गः पातालतलमाविशत् ।
तस्या आक्रमणाद्गाढं ह्यन्तस्थं द्रुहिणो ह्यधात् ।।५८।।

उसके अत्यधिक गिरने से, वह अतिऊँचापर्वत, पाताल में चला गया। उस समय उसके अन्तर में स्थित ब्रह्मा ने, उसे धारण किया ।।५८।।

स तु पूर्वं ब्रह्मशक्तिशिलां धर्तुं चतुर्मुखः ।
शैलरूपोऽभवत् तेन शैलरूपेण मामधात् ।।५९।।

वे चतुर्मुख ब्रह्मा, पहले ही ब्रह्मशक्तिशिला को धारण करने के लिए पर्वत-रूप हो चुके थे। उसी पर्वतरूप से उन्होंने उस समय मुझे धारण किया।।५९।।

ब्रह्मापर्वतरूपी स मयि पर्वतरूपिणी ।
स शक्तोऽधोऽगमद् गाढमाक्रान्तो मायया विधेः ।।६०।।

वह पर्वतरूपधारी ब्रह्मा, पर्वतरूप में स्थित मेरे साथ, विधाता की माया के कारण, मुझसे जुड़े ही, भारी बोझ से नीचे चलते गये ।।६०।।

ततो वाराहः संसक्तो मयि मां स तु माधवः ।
शैलरूपः शैलरूपं धर्तुं समुपचक्रमे ।।६१।।

तब वराह जो पर्वतरूप में माधव ही थे, मुझे शैलरूप में धारण करने (रोकने) का यत्न किये।।६१।।

सोऽप्यधोऽयान्मया सार्धं तदा पर्वतरूपिणीम् ।
आक्रम्य देवीं पृथिवीं स्थितो भुवि निखानितः ।।६२।।

पृथ्वी को धारण करते, जब पर्वतरूपी वे भी नीचे जाने लगे तो उन्होंने पृथ्वी पर चढ़कर उसे गाड़ दिया ।।६२।।

शतं शतं योजनानां तुङ्गमासीद् गिरित्रयम् ।
तदाक्रान्तं महादेव्या सर्वमेव ह्यधोगतम् ।
क्रोशमात्रस्थितं तुङ्गशेषं तत्त्रितयस्य तु ।।६३।।

वे तीनों पर्वत सौ-सौ योजन ऊँचे थे। उस समय महादेवी से आक्रान्त सभी

नीचे चले गये और धरती के ऊपर ऊन तीनों की एक कोसमात्र ही ऊँचाई शेष रह गई ।।६३।।

एका समस्तजगतां प्रकृतिः सा यतस्ततः ।
ब्रह्मविष्णुशिवैर्देवैर्धृता सा जगतां प्रसूः ।।६४।।

वह अकेले ही समस्त जगत् की मूलप्रकृति है, इसी लिए जगत् को उत्पन्न करने वाली, वह पृथ्वीरूपिणी देवी, ब्रह्मा, विष्णु, शिव आदि द्वारा धारण की गई ।।६४।।

तत्र पूर्वो ब्रह्मशैलः श्वेत इत्युच्यते सुरैः ।
मद्रूपधारी शैलस्तु नील इत्युच्यते तथा ।।६५।।
स तु मध्यगतः पीठस्त्रिकोणोलूखलाकृतिः ।
विभ्राजमानः सततं मध्ये ब्रह्मवराहयोः ।।६६।।

प्रथम ब्रह्मशैल, देवताओं द्वारा श्वेतपर्वत कहा जाता है। मेरे द्वारा रूप धारण किया गया पर्वत, नीलपर्वत कहा जाता है। वह मध्यवर्तीत्रिकोण में, उलूखल के आकार में ब्रह्मपर्वत और वाराहपर्वत के मध्य में निरन्तर शोभायमान होता है।।६५-६६।।

वराहः शैलरूपो यः स चित्र इति कथ्यते ।
सर्वेषां संस्थितः पश्चाद् दीर्घः सर्वेभ्य एव तु ।।६७।।

जो पर्वतरूपधारी वाराह है व चितकबरे रंग का कहा गया है। यह सबके पश्चात स्थित है और सभी से लम्बा (ऊँचा) है ।।६७।।

ऐशान्यां योऽभवत् कूर्मः शैलरूपोमहाद्युतिः ।
मणिकर्णः स नाम्ना तु ख्यातो देवौघसेवितः ।।६८।।

ईशानकोण में जो अत्यन्त आभायुक्त, शैलरूपधारी, कूर्म स्थित है, वह मणिकर्ण नाम से प्रसिद्ध तथा देवसमूह से सेवित है ।।६८।।

योऽनन्तरूपः शैलस्तु वायव्यां समवस्थितः ।
मणिपर्वतसंज्ञोऽसौ पर्वतो माधवप्रियः ।।६९।।

जो अनन्त, शैलरूप में स्थित है। वह क्षेत्र के वायव्यकोण में समवस्थित है। उसका नाम मणिपर्वत है तथा वह पर्वत, माधव को प्रिय है ।।६९।।

महामाया गिरिर्यस्तु नैर्ऋत्यां समवस्थितः ।
स गन्धमादनो नाम्ना सर्वदा शङ्करप्रियः ।।७०।।

महामाया का जो पर्वतरूप है, वह क्षेत्र के नैर्ऋत्यकोण में भलीभाँति स्थित है। वह गन्धमादन नामवाला है तथा शङ्कर को सर्वदा प्रिय है।।७०।।

वराहपृष्ठच्चरमे यतश्छिन्नौ महासुरौ ।
हरिणा तत्र संयातः पाण्डुनाथ इति स्मृतः ।।७१।।

वाराहपृष्ठ के शिखर पर जहाँ भगवान् विष्णु द्वारा मधु-कैटभ नामक महान् असुरों का सिर काटा गया था। वह पाण्डुनाथ के नाम से स्मरण किया जाता है ।।७१।।

ब्रह्मशक्तिशिलायास्तु पूर्वभागे तु मध्यतः ।
यस्तु पर्वतरूपोऽहं स तु भस्मचलाह्वयः ।।७२।।

ब्रह्मशिला के मध्य से पूर्वभाग में, जो मैं पर्वतरूप में स्थित हूँ। वह भस्माचल नाम से पुकारा जाता है।।७२।।

एवं पुण्यतमे पीठे कुब्जिकापीठसंज्ञके ।
नीलकूटे मया सार्धं देवी रहसि संस्थिता ।।७३।।

इस प्रकार के कुब्जिकापीठनामक पवित्रतमपीठ, नीलकूट पर एकान्त में मेरे साथ देवी स्थित रहती हैं।।७३।।

सत्यास्तु पतितं तत्र विशीर्णं योनिमण्डलम् ।
शिलात्वमगमच्छैले कामाख्या तत्र संस्थिता ।।७४।।

सती का जलकरनष्टहुआयोनिमण्डल जहाँ गिरा था एवं शिलारूप को प्राप्त हुआ था। वहीं कामाख्या देवी स्थित रहती हैं ।।७४।।

संस्पृश्य तां शिलां मर्त्यो ह्यमरत्वमवाप्नुयात् ।
अमर्त्यो ब्रह्मसदनं तत्स्थो मोक्षमवाप्नुयात् ।।७५।।

उस शिला को भली-भाँति स्पर्श करके मरणधर्माप्राणी, अमरत्व, देवत्व प्राप्त कर लेता है। तथा अमर्त्य (देवता) ब्रह्मलोक को जाते हैं और वहाँ रहकर मोक्ष को प्राप्त करते हैं ।।७५।।

तस्याः शिलायाः माहात्म्यं यत्र कामेश्वरी स्थिता ।
अद्भुतं यस्य गुह्ये तु लोहं भस्म भवेद्गतम् ।।७६।।

जहाँ कामेश्वरी निवास करती हैं। उस शिला का अद्भुत माहात्म्य हैं। जिसके गुह्यभाग में लोहा भी भस्म (राख) हो जाता है ।

सा चापि प्रत्यहं तत्र पञ्चमूर्तिधराभवत् ।
मोहार्थं सर्वलोकानां ममापि प्रीतये शिवा ।।७७।।

वे शिवा (कामेश्वरी) भी, मेरी प्रसन्नता एवं सभी लोकों को मोहित करने के लिए प्रति-दिन पाँचरूपधारण करने वाली होती हैं।।७७।।

अहं पञ्चमुखेनाशु पञ्चभागे व्यवस्थितः ।
ईशानः पूर्वभागस्थः कामेश्वर्याः प्रधानतः ।।७८।।
ऐशान्यां वै तत्पुरुषो ह्यघोरस्तस्य सन्निधौ ।
सद्योजातोऽथ वायव्यां वामदेवस्तु सङ्गतः ।।७९।।

मैं भी अपने पाँचमुखों से उनके पाँचोभागों में व्यवस्थित हूँ। मैं पूर्व-भाग में जहाँ प्रधानदेवीकामेश्वरी स्थित हैं, वहाँ ईशान, ईशानकोण में तत्पुरुष और उसी के निकट अघोर, वायव्यकोण में सद्योजात तथा उसी से लगा हुए वामदेव के नाम से स्थित हूँ॥७८-७९॥

देव्याश्चापि नरश्रेष्ठ पञ्चरूपाणि भैरव।
शृणु वेताल गुह्यानि देवैरपि सदैव हि॥८०॥
कामाख्या त्रिपुरा चैव तथा कामेश्वरी शिवा।
शारदाथ महालोका कामरूपगुणैर्युता॥८१॥

हे मनुष्यों में श्रेष्ठ, वेताल और भैरव ! अब देवी के भी पाँच रूपों को तुम दोनों सुनो जो देवताओं के लिए भी सदैव गुप्त हैं, देवी के वे पाँचरूप, कामाख्या, त्रिपुरा, कामेश्वरी (शिवा), शारदा और महालोका हैं, जो इच्छानुसार रूप धारण करने के गुणों से युक्त हैं॥८०-८१॥

मयि लिङ्गत्वमापन्ने शिलायां योनिमण्डले।
सर्वे शिलात्वमगमच्छैलरूपाश्च निर्जराः॥८२॥

मेरे द्वारा लिङ्गरूपधारण करने तथा योनि-मण्डल द्वारा शिलारूपधारण करने पर, सभी देवता शिलारूप में आ गये और उन्होंने पर्वत का रूपधारण कर लिया॥८२॥

यथाहं निजरूपेण रेमे वै सह कामया।
शिलारूपप्रतिच्छन्नास्तथा सर्वास्तु देवताः॥८३॥
शिलारूपप्रतिच्छन्नाः शैले शैले व्यवस्थिताः।
रमन्ते च स्वरूपेण नित्यं रहसि सङ्गताः॥८४॥

जैसे मैं कामेश्वरी के साथ शिलारूप में गुप्त रहने के बाद भी अपने यथार्थ-रूप में रमण करता हूँ वैसे ही प्रत्येक पर्वतों पर स्थित और शिलारूप में अपने को छिपाये हुए सभी देवता भी, अपने-अपने स्वरूप के द्वारा एकान्त में मिलकर सम्पर्क करते हैं॥८३-८४॥

ब्रह्मा विष्णुर्हरश्चात्र दिक्पालाः सर्व एव ते।
अन्येऽप्यत्र स्थिता देवाः सानुकूलाः सदा मयि॥८५॥
उपासितुं तदा देवी कामाख्यां कामरूपिणीम्॥८६॥

ब्रह्मा, विष्णु, शिव एवं सभी दिक्पाल और भी अन्यदेवता, सदैव मेरे अनुकूल होकर कामरूपिणीकामाख्या देवी की उपासना के लिए वहाँ उपस्थित रहते हैं॥८५-८६॥

नीलशैलस्त्रिकोणस्तु मध्यनिम्नः सदाशिवः।
तन्मध्ये मण्डलं चारु त्रिंशच्छक्तिसमन्वितम्॥८७॥

नीलाचल, त्रिकोणात्मक है और मध्यम में गहरा है। वह शिव का ही स्वरूप है। उसके मध्य में तीस शक्तियों से युक्त एक सुन्दर मण्डल है ॥८७॥

गुहा मनोभवा तत्र मनोभवविनिर्मिता ।
योनिस्तस्यां शिलायां तु शिलारूपा मनोहरा ।
वितस्तिमात्रविस्तीर्णा एकविंशाङ्गुलीयुता ॥८८॥

वहाँ मनोभव (कामदेव) के द्वारा बनाई गई एक मनोभवगुहा है। जिसमें, शिला में, शिलारूप में एक मनोहर योनि है। जो एक विततस्ति (बीता १२ अङ्गुल) चौड़ी, इक्कीस अङ्गुल लम्बी है ॥८८॥

क्रमसूक्ष्मविनम्रा सा भस्मशैलानुगामिनी ।
महामाया जगद्धात्री मूलभूता सनातनी ॥८९॥
सिन्दूरकुङ्कुमारक्ता सर्वकामप्रदायिनी ।
तस्यां योनौ पञ्चरूपा नित्यं क्रीडति कामिनी ॥९०॥

यह क्रमशः सङ्कीर्ण और झुकती हुई (ढालुई होकर), भस्मशैल तक जाती है। यह सिन्दूर या कुङ्कुम के रंग की लाल है, यह सभी कामनाओं को पूरी करने वाली है। उस योनि पर महामाया, जगत् का पालन करने वाली, मूलभूता (मूल प्रकृति), सनातनी, निरन्तर विद्यमान रहने वाली, कामिनी (कामाख्या) देवी, अपने पाँचरूपों में स्थित हो, नित्य क्रीड़ा करती हैं ॥८९-९०॥

तत्राष्टौ योगिनीर्नित्या मूलभूताः सनातनी ।
पूर्वोक्ताः शैलपुत्र्याद्याः स्थिता देव्याः समन्ततः ॥९१॥

वहाँ पहले बताई गई शैलपुत्री आदि मूलभूत, सनातनरूप से स्थित आठ योगिनियाँ, देवी के चारों ओर, नित्य स्थित रहती हैं ॥९१॥

तासां तु पीठनामानि शृणु चैकत्र भैरव ।
गुप्तकामा च श्रीकामा तथान्या विन्ध्यवासिनी ॥९२॥
कोटीश्वरी वनस्था तु पाददुर्गा तथापरा ।
दीर्घेश्वरी क्रमादेव प्रकटा भुवनेश्वरी ॥९३॥

हे भैरव ! उन योगिनियों एवं पीठों के नाम एक साथ सुनो। वे गुप्तकामा, श्रीकामा, विन्ध्यवासिनी, कोटीश्वरी, वनस्था, पाददुर्गा, दीर्घेश्वरी और इसी क्रम में प्रकटा भुवनेश्वरी हैं ॥९२-९३॥

स्वयोगिन्यः पीठनाम्ना ख्याता अष्टौ च देवताः ।
सर्वतीर्थानि चैकत्र जलरूपाणि भैरव ॥९४॥
स्थितानि नाम्ना सौभाग्यसरस्यल्पापि पुण्यदा ।
विष्णुस्तु तीरे तस्यास्तु नाम्ना कमल इत्युत ॥९५॥

हे भैरव ! ये आठ देवता (देवियाँ), अपने-आप में योगिनियाँ ही हैं। जो पीठ- नामों से प्रसिद्ध हैं। यहाँ सभी तीर्थ, जल रूप में समन्वित हो, सौभाग्य-

सरसी के नाम से स्थित हैं जो छोटा होने पर भी अत्यन्त पुण्यदायिनी है। इस सरसी के तट पर भगवान् विष्णु, कमल नाम से स्थित रहते हैं॥९४-९५॥

कामुकाख्यस्तु बटुकः कामाख्याभ्यर्णसंस्थितः ।
लक्ष्मीः सरस्वती देव्यौ देव्याः सङ्गे व्यवस्थिते ॥९६॥
ललिताख्याभवल्लक्ष्मीर्मातङ्गी तु सरस्वती ।
गणाध्यक्षः पूर्वभागे तस्य शैलस्य संस्थितः ।
सिद्धः स नाम्ना विख्यातो द्वारे देव्याः प्रियः सुतः ॥९७॥

कामुक नामक बटुक, कामाख्या के निकट स्थित रहता है, लक्ष्मी और सरस्वती देवियाँ, महामाया देवी के साथ ही स्थित रहती हैं। लक्ष्मी, यहाँ ललिता नाम से तथा सरस्वती, मातङ्गी नाम से स्थित हैं। उस पर्वत के पूर्वभाग में द्वार पर देवी के प्रियपुत्र गणाध्यक्ष,सिद्ध नाम से भली-भाँति स्थित हैं ॥९६-९७॥

कल्पवृक्षः कल्पवल्ली तिन्तिडी चापराजिता ।
भूत्वा तस्मिन् महाशैले स्थितो देव्या धृतः प्रिये ॥९८॥

देवी के प्रियरूप धारण किया हुआ कल्पवृक्ष, उस महान् पर्वत पर इमली का वृक्ष तथा कल्पवल्ली, अपराजितालता होकर स्थित हैं ॥९८॥

वराहः पाण्डुनाथाख्यः स्थितस्तत्र हरिर्यतः ।
जघने शिरसी कृत्वा जघान मधुकैटभौ ॥९९॥

वाराह, वहाँ पाण्डुनाथ नाम से स्थित हैं। क्योंकि विष्णु ने वहाँ मधु-कैटभ नामक दैत्यों के सिर को अपने टखने पर रखकर, उन्हें मारा था ॥९९॥

तस्यासन्ने ब्रह्मकुण्डं ब्रह्मणानिर्मितं पुरा ।
ईशानाख्यः शिवो यत्र तत् सिद्धेश्वरसंज्ञकम् ।
शिलारूपं सिद्धकुण्डं मध्यस्थं विद्धि भैरव ॥१००॥

हे भैरव ! उसी के समीप प्राचीनकाल में ब्रह्मा द्वारा निर्मित ब्रह्मकुण्ड नामक एक सरोवर है। जहाँ ईशान नामक शिव, शिलारूपी हो सिद्धकुण्ड के मध्य-स्थित हैं। जिन्हें सिद्धेश्वर नाम से जाना जाता है॥१००॥

तस्यासन्ने गयाक्षेत्रं क्षेत्रं वाराणसी तथा ॥१०१॥
योनिमण्डलसंकाशं कुण्डं भूत्वा व्यवस्थितम् ॥१०२॥

उसी के निकट गया और वाराणसी क्षेत्र, योनिमण्डल के निकट कुण्डरूप में विशेषरूप से स्थित हैं ॥१०१-१०२॥

तत्रैवामृतकुण्डं तु सुधासङ्घप्रपूरितम् ।
मम प्रियार्थमिन्द्रेण स्थापितं सह निर्जरैः ॥१०३॥

वहीं देवताओं के सहित इन्द्रद्वारा मेरी प्रिया, कामाख्या के लिए सुधा (अमृत) समूह से भरा हुआ, अमृत-कुण्ड स्थापित है ॥१०३॥

वामदेवाह्वयं शीर्षं श्रीकामेश्वरसंज्ञकम् ।
कामकुण्डं महापुण्यं तस्यासन्ने व्यवस्थितम् ।।१०४।।

जो वामदेव नामक मेरा सिर है, वह श्रीकामेश्वर नाम से प्रसिद्ध है। उसके निकट ही अत्यन्तपवित्र कामकुण्ड व्यवस्थित है ॥१०४॥

केदारसंज्ञकं क्षेत्रं मध्यस्थं सिद्धकामयोः ।
दीर्घं चतुर्दशव्यामच्छायाच्छत्राह्वयं तु तत् ।।१०५।।

केदार नामक पवित्रक्षेत्र जो सिद्धकुण्ड और कामकुण्ड के मध्य में स्थित है। वह छायाछत्र नाम से प्रसिद्ध है तथा चौदह व्याम (परोसा) लम्बा है ॥१०५॥

तस्यासन्ने शैलपुत्री गुप्तकामाह्वया तु सा ।
गुप्तकुण्डस्य मध्यस्था कामेशग्रावणि सङ्गता ।।१०६।।
कामेश्वरशिलासक्ता कामाख्यासंज्ञिता सदा ।
पूर्वभागेन संसक्ता योनेस्तु परमार्गतः ।।१०७।।

उसके समीप शैलपुत्री, गुप्तकामा नाम से गुप्तकुण्ड के मध्य में, कामेश्वर-शिला से संलग्न हो स्थित है। जब यह कामेश्वरशिला से संयुक्त होती है तो सदा कामाख्या जानी जाती है। यह पूर्वभाग से संयुक्त हो योनि के अपर (पश्चिम) भाग की ओर तक स्थित है॥१०६-१०७॥

कामकामाख्ययोर्मध्ये कालरात्रिर्व्यवस्थिता ।
पीठे दीर्घेश्वरी नाम्ना सीमाभागे प्रचण्डिका ।।१०८।।

इस पीठ में कालरात्रि, काम और कामाख्या के मध्य, दीर्घेश्वरी नाम से व्यवस्थित है। यह चण्डिका का (कामरूपपीठ का) पश्चिमीसीमान्त-क्षेत्र है ॥१०८॥

कामाख्याप्रस्तरप्रान्ते कूष्माण्डी नाम योगिनी ।
पीठे कोटीश्वरी नाम्ना योनिरूपेण संस्थिता ।।१०९।।

कामाख्याशिला के सीमान्तपर कूष्माण्डी नामक योगिनी, कोटीश्वरी नामक पीठ पर योनिरूप से भलीभाँति स्थित है ॥१०९॥

यच्चाघोराह्वयं शीर्षं तत्कामायास्तु दक्षिणे ।
पीठे भैरवनामा तु गदिते परमार्थिभिः ।।११०।।

शिव का जो अघोरनामक सिर है, वह कामा (कामाख्या) के दक्षिणीपीठ पर स्थित है और परमार्थचाहनेवालों द्वारा भैरवनाम से पुकारा जाता है ॥११०॥

चामुण्डा भैरवी नाम्ना भैरवासन्नसंस्थिता ।
नायिका कामदा भक्तेश्चण्डमुण्डविनाशिनी ।।१११।।

भैरव के ही निकट, चण्ड-मुण्ड का विनाश करने वाली चामुण्डा, उनकी नायिका, भैरवी नाम से स्थित हैं। जो भक्तों की कामनाओं को पूरा करने वाली हैं ॥१११॥

कामभैरवयोर्मध्ये स्वयं देवी सुरापगा ।
हिताय सर्वजगतां देव्यास्तु प्रीतये सदा ।।११२।।

काम और भैरव के मध्य, समस्त जगत् के कल्याण तथा देवी की प्रसन्नता के लिए स्वयं देवनदीगङ्गा स्थित हैं।।११२।।

सद्योजाताह्वयं शीर्षं पीठे त्वाम्रातकेश्वरम् ।
भैरवाख्ये गह्वरे तु स्थितं देवर्षिसेवितम् ।।११३।।

इस पीठ में जहाँ सद्योजात नामक मेरा सिर स्थित है वहीं देवर्षियों से सेवित भैरव नामक गुहा में आम्रातकेश्वर नामक पीठ भी स्थित है ।।११३।।

विद्धि तत्रैव दुर्गाख्यां नायिकां योगरूपिणीम् ।
सिद्धकामेश्वरी नाम्ना ख्याता देवेषु नित्यशः ।।११४।।

वहीं योगरूपिणी दुर्गा नामक नायिका, जो देवताओं में सिद्धकामेश्वरी नाम से नित्यप्रसिद्ध हैं, की स्थिति जानो ।।११४।।

अजीर्णपत्रः सुच्छायो वृक्षस्तत्र सुसंस्थितः ।
आम्रातकः कल्पवृक्षः कल्पवल्लीसमन्वितः ।।११५।।

वहाँ अच्छी छायावाला, एक ऐसा आम्रातक नामक वृक्ष, कल्पवृक्ष और कल्पवल्ली से युक्त होकर स्थित है, जिसके पत्ते कभी जीर्ण नहीं होते, सदैव हरे-भरे रहते हैं ।।११५।।

पीठे तु सिद्धगङ्गाख्या स्वयं गङ्गा समुत्थिता ।
आम्रातकस्य निकटे मम प्रीतिविवृद्धये ।।११६।।

आम्रातक के निकट ही मेरी प्रसन्नता को बढ़ाने के लिए, स्वयं गङ्गा, सिद्धगङ्गा नामक पीठ से निकली हैं।।११६।।

पुष्कराख्यं तु तत्क्षेत्रं पीठे त्वाम्रातकाह्वयम् ।
ऐशान्यां तत्पुरुषाख्यं मम शीर्षं व्यवस्थितम् ।।११७।।
भुवनेश्वरनाम्ना तु पीठे ख्यातं च भैरव ।
गह्वरं भुवनेशस्य भुवनानन्दसंज्ञकम् ।।११८।।

हे भैरव ! पुष्कर नामक जो क्षेत्र, इस पीठ में स्थित है, वही आम्रातक नाम से जाना जाता है। मेरा तत्पुरुष नामक सिर इस पीठ के ईशानकोण में स्थित है जो भुवनेश्वर नाम से प्रसिद्ध है। वहीं भुवनेश की भुवनानन्द नाम की गुफा भी है ।।११७-११८।।

तस्यासन्ने तु सुरभिः शिलारूपेण संस्थिता ।
कामधेनुरिति ख्याता पीठे कामप्रदायिनी ।।११९।।

उसी के समीप सुरभि, इस पीठ में कामधेनु नाम से शिलारूप में, भली-भाँति स्थित है, जो भक्तों की कामनाएँ पूरी करती हैं ।।११९।।

योऽसौ शरभमूर्तिर्मे मध्यखण्डप्रचण्डकः ।
महाभैरवनामाभूत् कोटिलिङ्गाह्वयस्तु सः ।।१२०।।

जो मध्यभाग में मेरी शरभ नामक भयानकमूर्ति है। वह महाभैरव नाम से प्रसिद्ध हो, इस पीठ में कोटिलिङ्ग नाम से जानी जाती है ।।१२०।।

मूर्तिभिः पञ्चभिः पञ्चभागेषु समवस्थितः ।
अहं पश्चादतिप्रीत्या भैरवाख्यः स्थितो धरे ।।१२१।।

मैं इस क्षेत्र में भैरव नाम से पाँच-भागों में, अपने पाँच-रूपों से, अत्यधिक प्रसन्नतापूर्वक स्थित हूँ।।१२१।।

महागौरी तु या देवी योगिनी सिद्धरूपिणी ।
सा ब्रह्मपर्वते चास्ते शिलारूपेण चोर्ध्वतः ।।१२२।।

सिद्धरूपिणी योगिनी, जो महागौरी है, वह ब्रह्मपर्वत के ऊपरीभाग में शिला- रूप से विराजमान है ।।१२२।।

अतीव रूपसम्पन्ना नाम्ना सा भुवनेश्वरी ।
यत्र ब्रह्मा तु संसक्तो मयि पर्वतरूपिणि ।।१२३।।
कल्पवल्ली तु तत्रास्ते नाम्ना सा त्वपराजिता ।
कामधेनुरदूरस्था पूर्वभागे महेश्वरी ।।१२४।।

जहाँ ब्रह्मा पर्वतरूप से मिले हैं, उसी स्थान पर रूप से अत्यन्त सम्पन्न, भुवनेश्वरी नाम की देवी स्थित हैं। वहीं अपराजिता नाम से प्रसिद्ध कल्पवल्ली भी विराजमान है, वहाँ से कामधेनु भी दूर नहीं है तथा उसके पूर्वभाग में स्वयं महेश्वरी उपस्थित हैं।।१२३-१२४।।

श्रीकामाख्या योनिरूपा चण्डिका सा तु योगिनी ।
आग्नेय्यां विद्धि तां संस्थां सर्वकामप्रदां शुभाम् ।।१२५।।

श्री चण्डिका नाम की वह योगिनी, जो योनिरूप में स्थित कामाख्या ही हैं, उन सभी कामनाओं को पूर्ण करने वाली सुन्दरी को क्षेत्र के अग्निकोण में स्थित जानो ।।१२५।।

योगिनी चन्द्रघण्टाख्या पीठेऽभूद् विन्ध्यवासिनी ।
योगिनी स्कन्दमाता तत्पीठेऽभूद् वनवासिनी ।।१२६।।

इस पीठ में चण्डघण्टा नामवाली योगिनी, विन्ध्यवासिनी तथा स्कन्दमाता नाम की योगिनी, वनवासिनी हो गई हैं ।।१२६।।

कात्यायनी पीठनाम्ना पाददुर्गेति गद्यते ।
नैर्ऋत्यां नीलशैलस्य प्रान्ते सा संस्थिता शिवा ।।१२७।।

कात्यायनीपीठ नाम की देवी यहाँ पाददुर्गा कही जाती हैं और वे देवी नीलशैल के नैर्ऋत्यकोण में स्थित, अन्तिमछोर पर स्थित हैं।।१२७।।

योऽसौ नन्दी मम तनुः स तु पाषाणरूपधृक् ।
संस्थितः पश्चिमद्वारि हनुमान् पीठनामतः ।।१२८।।

यह जो नन्दी नाम का, मेरा ही शरीर, पत्थर के रूप में है। वह यहाँ पश्चिम-द्वार पर हनुमानपीठ नाम से प्रसिद्ध है।।१२८।।

।। और्वउवाच ।।

इति तस्य वचः श्रुत्वा शम्भोरमिततेजसः ।
भैरवस्तं तु पप्रच्छ वेतालोऽपि समुत्सुकः ।।१२९।।

और्वबोले– अमिततेजस्वी शिव के इस प्रकार के (उपर्युक्त) वचनों को सुनकर भैरव और वेताल ने विशेष उत्सुकतापूर्वक पूछा–।।१२९।।

।। वेतालभैरवावूचतुः ।।

श्रुतः पीठक्रमस्तात देव्याः पूजाक्रमस्तथा ।
श्रोतुमिच्छामि मूर्तीनां पञ्चानामपि शङ्कर ।।१३०।।
रूपाणि पञ्चमूर्तीनां मन्त्राणि च समन्ततः ।
तत्र मन्त्राणि तन्त्राणि वद नौ वृषभध्वज ।।१३१।।

वेताल और भैरव बोले– हे वृषभध्वज शिव ! हे तात ! हम दोनों ने आपके द्वारा बताये गये (पीठों) स्थानों के क्रम को तथा देवी कामाख्या के पूजन-विधान को सुना। हे शङ्कर ! अब देवी के पाँचरूपों तथा उनके पूजन के मन्त्रों को साथ-साथ सुनना चाहते हैं। इस सम्बन्ध में मन्त्र और तन्त्र (अर्थात् पूजा-विधि), हमदोनों को आप बताइये ।।१३०-१३१।।

।। ईश्वरउवाच ।।

शृणु वक्ष्यामि वेताल मन्त्रं तन्त्रं पृथक् पृथक् ।
कामाख्यापञ्चमूर्तीनां रूपं कल्पं च भैरव ।।१३२।।

ईश्वर (शिव) बोले– हे वेताल और हे भैरव ! कामाख्या देवी की उन पाँचों मूर्तियों के स्वरूप, पूजापद्धति एवं मन्त्र-तन्त्र के विषय में, मैं अलग-अलग कहूँगा। तुम दोनों उसे सुनो ।।१३२।।

कामस्थं काममध्यस्थं कामदेवपुटीकृतम् ।
कामेन कामयेत् काम कामं कामे नियोजयेत् ।।१३३।।

जो कामी (साधक), काम (सफलता की कामना) करे, उसे स्वयं कामना में स्थित हो कामरूपक्षेत्र के मध्य में स्थित, कामदेव से संयुक्त काम (कामेश्वर) को काम (कामाख्या) से नियोजित करें।

(उत्तर षट्क्रम् तथा नित्या षोडशिकार्णव ग्रन्थों में भी यह श्लोक, कुछ शब्दभेद से उद्धृत हैं। वहाँ कामस्थ (ह्रीं), काममध्यस्थ (क्लीं), कामदेव के स्थान पर कामोदर शब्द का अर्थ योनि, वाग्भव बीज (ऐं), पुटीकृत कामबिन्दु संज्ञक काम (ब्लूं) इन चारो काम मन्त्रों को पाँच काम (स्त्रीं) युक्त कर, ह्रीं क्लीं ऐं ब्लूंस्त्रीं इन

पाँच बीजों से युक्त, मन्त्र से कामाख्या की साधना में स्वयं को कामराज यन्त्र मानते हुये प्रवृत्त होना चाहिए, ऐसा संकेत दिया है। पंचमूर्त्ति कामाख्या की भाँति ही इस श्लोक में काम, मन्मथ, कन्दर्प, मकरध्वज, मोहन, आदि काम के पाँच रूपों के ह्रीं,, क्लीं, ऐ, ब्लूँ स्त्री इन पाँच बीजों का यहाँ निर्देश किया गया है)॥१३३॥

ज्येष्ठं तु व्यञ्जनं ब्रह्मन् परः शान्तं तदुच्यते ।
प्रथमं क्रमतः कुर्यात्तत्संसक्तं सुधामयम् ।।१३४।।

यह जो ब्रह्म-व्यञ्जन ॐ है। वह सर्वश्रेष्ठ है। उसे ही शान्त कहते हैं। इस अमृतमयवर्ण को क्रमशः सभी मन्त्रों के पूर्व में सम्मिलित करना चाहिये॥१३४॥

प्रजापतिस्तथा शक्रबीजं संस्थादिसंयुतम् ।
चन्द्रार्धसहितं बीजं कामाख्यायाः प्रचक्ष्यते ।।१३५।।

प्रजापति का बीजमन्त्र (क) तथा इन्द्रबीजमन्त्र (लृ) परस्पर संयुक्त होकर चन्द्रघण्टा के सदृश कामाख्या देवी का बीज (क्लृं) कहा जाता है ॥१३५॥

इदं धर्मप्रदं काममोक्षार्थानां प्रदायकम् ।
इदं रहस्यं परममन्यत्र तु सुदुर्लभम् ।।१३६।।
श्रोत्रेणोद्यम्य शृणुयाद् गुरुवक्त्रान्नरोत्तमः ।
स कामानखिलान् प्राप्य शिवलोके महीयते ।।१३७।।

यह धर्म, काम, मोक्ष और अर्थ को देनेवाला, अन्यत्रदुर्लभ, अत्यन्त रहस्यमय है। जो श्रेष्ठपुरुष उद्यमपूर्वक अपने गुरुमुख से इसे अपने कानों से सुनता है, वह समस्त कामनाओं को प्राप्त कर, शिवलोक को जाता है ॥१३६-१३७॥

श्रुतिसकलितसारं देवकण्ठौघहारं
सकलकलुषहारि श्रीधरानन्दकारि ।
सुनयशुभगगोभिर्भ्राजयेद्यद्यशोभि-
स्तदिह शिवसमस्तं विघ्नहन्त्रीङ्गितार्थम् ।।१३८।।

एकत्रित सभी वेदों के सारभूत, देवकण्ठ में भी हाररूप में स्थित, समस्त दोषों को दूर करने वाले श्रीधर, विष्णु को भी प्रसन्न करने वाले सुन्दर नीति, इन्द्रियाँ तथा यश से अपने साधक को युक्त करने वाला एवं विघ्नहन्त्री कामाख्या को इंगित करने वाला यह बीज, शिव का सर्वस्व है॥१३८॥

नयनकरभकारि ध्यानिनां चोपकारि
प्रणयिसुनयसंस्थं देवसत्याह्निकस्थम् ।
परमपदविशीर्णं सर्वदौर्भाग्यजीर्णं
शृणु शिवपदरूपं कामदेव्याः स्वरूपम् ।।१३९।।

आँखों को विकसित करने वाला, ध्यानियों का उपकार, प्रणयियों, प्रेमीजनों को नीतिरत करने वाला, देवों के दैनिककर्म का अङ्ग, परमपद को भी तुच्छ तथा सबप्रकार के दुर्भाग्यसूचक लक्षणों को जीर्ण करने वाले, शिवपदरूपी देवी कामाख्या के स्वरूप को सुनो ॥१३९॥

।। कामाख्याध्यान ।।

श्रवणगगनमात्रा चार्दितं यस्य नाम
प्रभवति बहुभूत्यै गीतिमार्गैकधाम ।
सुरगणगणनायां कुण्डली यस्य शक्ति-
स्तदिह परमरूपं चिन्तनीयं हताशैः ।।१४०।।

जिसका नाम, कानरूपी आकाश में पड़ते ही दुखों को दूर करता है और बहुत प्रकार के ऐश्वर्य को जन्म देता है। जो नीतिमार्ग का एकमात्र धाम है। देवताओं के समूह की गणना में जिसकी शक्ति, कुण्डली रूप से महत्त्वपूर्ण है। हताशजनों द्वारा कामाख्या देवी के इसी श्रेष्ठरूप का चिन्तन किया जाना चाहिये ॥१४०॥

रविशशियुतकर्णा कुंकुमापीतवर्णा
मणिकनकविचित्रा लोलकर्णा त्रिनेत्रा ।
अभयवरदहस्ता साक्षसूत्रप्रशस्ता
प्रणतसुरनरेशा सिद्धकामेश्वरी सा ।।१४१।।

उन देवी के कानों में सूर्य और चन्द्रमा, कुण्डल की भाँति स्थित हैं। वे कुंकुम की लालीयुक्त, पीतवर्ण (केशरिया रङ्ग) की हैं, वे मणि और सोने से सजी, चञ्चलकानोंवाली तथा तीननेत्रों से युक्त हैं। वे अभय और वरद मुद्रा में स्थित, और रुद्राक्षमाला से युक्त हाथों से सुशोभित हैं। उन सिद्धकामेश्वरी को देवता और राजागण नम्रतापूर्वक प्रणाम करते हैं ॥१४१॥

अरुणकमलसंस्था रक्तपद्मासनस्था
नवतरुणशरीरा मुक्तकेशी सुहारा ।
शवहृदि पृथुतुंगस्तन्ययुग्मा मनोज्ञा
शिशुरविसमवस्त्रा सर्वकामेश्वरी सा ।।१४२।।

वे सब कामनाओं को पूर्णकरनेवाली देवी, लालकमल के आसन पर लालपद्म पर ही पद्मासन में विराजमान हैं। वे नये तरुणशरीर वाली हैं। उनके केश खुले हैं। वे सुन्दर हार धारण की हुई, शव के हृदय पर विराजमान हैं। उनके दोनों स्तन, पुष्ट और ऊँचे हैं। वे सुन्दरी, बालरवि के समान अरुण (लाल) आभावाला वस्त्रधारण की हैं ॥१४२॥

विपुलविभवदात्री स्मेरवक्त्रा सुकेशी
ललितनखरदन्ता सामिचन्द्रावनम्रा ।
मनसिजदृषदिस्था योनिमुद्रालसन्ती
पवनगमनशक्ता संश्रुतस्थानभागा ।।१४३।।

कामदेव के दृषद् में स्थित, वे बहुत अधिक विभव देनेवाली, मुस्कुराते मुखवाली, सुन्दर केशवाली, सुन्दरनख और दाँतों तथा अर्धचन्द्र से युक्त, योनिमुद्रा से शोभायमान, पवन के समान गतिवाली, परमस्थान की अधिकारिणी हैं।।१४३।।

चिन्त्या चैवं विद्युदग्निप्रकाशा
धर्मार्थाद्यं साधकैर्वाञ्छितार्थैः ।
कल्प्यन्त त्रीण्यस्तदं सम्यगर्ध
वेताल त्वं भैरव श्रीप्रतिष्ठम् ।।१४४।।

विद्युत् तथा अग्नि के समान प्रकाश वाली वे देवी, धर्म-अर्थ आदि प्रयोजनों को चाहने वाले साधकों के द्वारा चिन्तनीय हैं । हे वेताल और हे भैरव! तुम दोनों श्रीप्रदायक, श्रेष्ठ, श्रेष्ठता देने वाली उस देवी के मन्त्र-तन्त्र और कल्प (पूजाविधान) तीनों के विषय में सुनो ।।१४४।।

तस्मिन्नर्धं मण्डलं यद्धि पश्चात्
कार्यं चैतच्चन्दनैः पुष्पयुक्तैः ।
पर्यायो यो लेखने पूर्वमुक्तो
देवीतन्त्रे सोऽत्र पूर्वं विधेयः ।।१४५।।

।। इति श्रीकालिकापुराणे कामाख्यामाहात्म्यनाम द्विषष्टितमोऽध्यायः ।।६२।।

उसकी पूजा में सर्वप्रथम चन्दन और पुष्पों से एक मण्डल बनाना चाहिये । इसकी विधि और लेखनक्रम पहले ही देवीतन्त्र में कहा गया है। उसी के अनुसार सर्वप्रथम साधक द्वारा मण्डल बनाना चाहिये ।।१४५।।

।। श्रीकालिकापुराण में कामाख्यामाहात्म्य नामक बासठवाँ अध्याय सम्पूर्ण हुआ ।।६२।।



त्रिषष्टितमोऽध्यायः
त्रिपुरापूजनविधिः

।। ईश्वर उवाच ।।

वैष्णवीतन्त्रमन्त्रस्य यथापूर्वं मयोदितम् ।
मण्डलं प्रतिपत्त्या तु पर्यायो मण्डलस्य यः ।।१।।
स एवं प्रथमं कार्यः शिलायां पुष्पचन्दनैः ।
पात्रादीनां प्रतिष्ठानं तथैवात्रापि योजयेत् ।।२।।

ईश्वर (शिव) बोले– मेरे द्वारा वैष्णवी-तन्त्र-मन्त्र के मण्डलप्रतिपत्ति-प्रसङ्ग में जिस मण्डल के निर्माण की विधि बताई गई है । पहले उसे ही शिलापर फूल एवं चन्दनों से बनाना चाहिये । तब पात्रादिका स्थापन भी उसी भाँति यहाँ भी करना चाहिये ।।१-२।।

वैष्णवीतन्त्रमन्त्रस्य प्रोक्ता याः प्रतिपत्तयः ।
अत्र ताः सकला योज्या आसनाद्यैश्च पूजनम् ।।३।।

जो आसनादिपूजन की विधियाँ, वैष्णवीतन्त्र में बताई गई हैं । उन्हीं सबका प्रयोग यहाँ भी आसनादि द्वारा पूजन में करना चाहिये।।३।।

तेभ्योऽन्यो यो विशेषोऽत्र तद् वक्ष्ये शृणु भैरव ।
प्रथमं भास्करायार्घ्यं प्रदद्याच्छ्वेतसर्षपैः ।
पुष्पचन्दनसंवीतैः सगणाय महात्मने ।।४।।

हे भैरव ! अन्य से विशेष जो यहाँ करने योग्य है, उसे मैं इस समय बताऊँगा । तुम उसे सुनो ! पहले श्वेत (पीली) सरसों और पुष्प-चन्दन आदि से गणों के सहित महात्मासूर्य को अर्घ्य प्रदान करे ।।४।।

आसनार्चनशेषे तु पीठोक्ताः सर्वदेवताः ।
पीठनाम्ना तु संयोज्या मण्डलस्य तु मध्यतः ।।५।।

आसन-पूजन के पश्चात् पीठों के सन्दर्भ में कथित देवताओं का उनके पीठ-नाम से संयोजित कर, मण्डल के मध्य में पूजन करे ।।५।।

ध्यानस्वरूपं भिन्नं तद् वैष्णव्या सह भैरव ।
कामायाः सर्वमन्यत् तु महामायास्तवोदितम् ।।६।।
योगिनीस्तु चतुःषष्टिं पूजयेच्च पृथक् पृथक् ।।७।।

हे भैरव ! यहाँ उस वैष्णवी के ध्यान से भिन्न कामाख्या का ध्यान है । अन्य सब कुछ वही है जो तुम दोनों से महामाया के सन्दर्भ में बताया गया है । तब पीठपूजन के पश्चात् चौसठ योगिनियों का अलग-अलग पूजन करे ।।६-७।।

गुहां मनोभवां चापि महोत्साहां तथा सखीम् ।
अनन्तरं पूजयेत् तु दिक्पालांश्च नवग्रहान् ।
रूपतस्तान् समुद्दिश्य पूजयेदिष्टसिद्धये ।।८।।

तब अपनी अभीष्टसिद्धि के लिए मनोभवगुहा तथा उसकी सखी महोत्साहा का पूजन करना चाहिये । तत्पश्चात् दिक्पाल एवं नवग्रहों का पूजन, उनके रूपों को लक्ष्य करके करे।।८।।

पूर्वद्वारे गणपतिं प्रथमं तु प्रपूजयेत् ।
नन्दिनं च हनूमन्तं पश्चिमद्वारि पूजयेत् ।।९।।
भृङ्गी चोत्तरतः पूज्यो महाकालस्तु दक्षिणे ।
एते मम द्वारपाला देव्या द्वारे प्रपूजयेत् ।।१०।।

सर्वप्रथम मण्डल के पूर्वद्वार पर गणेश, पश्चिमद्वार पर नन्दि एवं हनुमान का पूजन करे । भृङ्गी का उत्तरदिशा में तथा महाकाल का दक्षिणदिशा में पूजन किया जाना चाहिये । मेरे उपर्युक्त इन द्वारपालों का देवी के द्वारदेश में पूजन करना चाहिये ।।९-१०।।

पात्रामृतीकृतिविधौ कुर्याद्वै काममुद्रया ।
भूतापसारणं कुर्यात् पूर्वं तालत्रयेण तु ।।११।।

पात्रों के अमृतीकरण की विधि काममुद्रा से सम्पन्न करनी चाहिये । भूतापसारण का कार्य पहले तीनताल से करना चाहिये।।११।।

वामहस्ते दक्षिणेन पाणिना तालमाहरेत् ।
हूँ हूँ फडितिमन्त्रेण वेतालादींश्च सारयेत् ।।१२।।
सर्वमुत्तरतन्त्रोक्तं तन्त्रं कुर्यात् तु साधकः ।
अत्रोक्तेन स्वरूपेण प्राणायामं तथा चरेत् ।।१३।।

साधक **हूँ हूँ फट्** इस मन्त्र से बायें हाथ से दाहिने हाथ पर ताल देकर वेताल आदि को दूर हटाये । यह सब कार्य साधक को उत्तरतन्त्र में वर्णित पद्धति से करंना चाहिये तथा यहाँ वर्णितस्वरूप का ध्यान करते हुए प्राणायाम करना चाहिये ।।१२-१३।।

स्नापयेत् प्रथमं देवीं मूलमन्त्रेण पूजकः ।।१४।।
मधुक्षीराज्यदधिभिर्गोमूत्रैर्गोमयैस्तथा ।
रत्नोदकैः शर्कराभिर्गुडरत्नकुशोदकैः ।।१५।।

पूजाकरनेवाले को, मूलमन्त्र पढ़ते हुये, मधु, दूध, घी, दही, गोमूत्र, गोबर, रत्न (प्रक्षालित) जल, चीनी, गुड़रत्न और कुशमिश्रितजल से पहले देवी को स्नान कराना चाहिये ।।१४-१५।।

सितसर्षपमुद्गाभ्यां तिलक्षीरैस्तथा यवैः ।
रक्तचन्दनपुष्पैश्च दूर्वाभिः रोचनायुतैः ।
नवभिर्वितरेदर्घ्यं शिलायां योनिसन्निधौ ।।१६।।

साधक, योनि के निकट, शिला पर सफेद (पीला) सरसों, मूँग, तिल, दूध, यव, लालचन्दन, पुष्प, दूर्वा और गोरोचन इन नव पदार्थों से युक्त, अर्घ्य प्रदान करे।।१६।।

आसनं पाद्यमर्घ्यं च तत आचमनीयकम् ।।१७।।
मधुपर्कं स्नानजलं वस्त्रं चन्दनभूषणम् ।
पुष्पं धूपं च दीपं च नेत्राञ्जनमतःपरम् ।।१८।।
नैवेद्याचमनीये च प्रदक्षिणनमस्कृती ।
एते षोडा निर्दिष्टा उपचारास्तु पीठतः ।।१९।।

आसन, पाद्य, अर्घ, आचमनीय, मधुपर्क, स्नानीयजल, वस्त्र, चन्दन, आभूषण, पुष्प, धूप और दीप, तदनन्तर नेत्र में अञ्जन, नैवेद्य, प्रदक्षिणा, नमस्कार, पीठपूजन के निर्दिष्ट, सोलह उपचार हैं ।।१७-१९।।

आवाहयेन्महादेवीं गायत्र्या कामयोगया ।
तामेव विद्धि वेताल गुह्यं भैरवदैवतम् ।।२०।।

महादेवी का कामगायत्री से आवाहन करना चाहिये । हे वेताल और भैरव ! तुम दोनों उस गुह्यदेवीमन्त्र को जानो ।।२०।।

।। आवाहनमन्त्र ।।

कामाख्ये त्वमिहागच्छ यथावन्मम सन्निधौ ।
पूजाकर्मणि सान्निध्यमिह कल्पय कामिनि ।।२१।।

कामाख्ये–कामिनी यह आवाहन-मन्त्र है।

मन्त्रार्थ– हे कामाख्या देवी ! आप यथोचितरूप से यहाँ मेरे निकट आवें । हे कामिनी ! पूजाकर्म में, मेरे सान्निध्य में यहाँ उपस्थित हों।।२१।।

कामाख्यायै च विद्महे कामेश्वर्यै तु धीमहि ।
ततः कुर्यान्महादेवी ततश्चानु प्रचोदयात् ।।२२।।
एषा तु कामगायत्री पूजयेदनया शुभाम् ।

कामाख्यायै च विद्महे कामेश्वर्यैतु धीमहि महादेवी प्रचोदयात्। कामेश्वर्यै-प्रचोदयात्। हम कामाख्या को जानें कामेश्वरी का ध्यान करें। महादेवी हमें प्रेरित करें। यह कामगायत्री है। इसके द्वारा शुभदायिनी भगवती का पूजन करना चाहिये॥२२॥

पूजावसाने च बलीन्देव्याः प्रीत्यै निवेदयेत्॥२३॥
रुद्राक्षमालया जाप्यमादायैव समाचरेत्।
त्र्याक्षरैर्मूलमन्त्रस्य त्रिधावृत्तः प्रपूजयेत्॥२४॥

पूजासमाप्ति के बाद देवी की प्रसन्नता के लिए बलिप्रदान करे। जप का कार्य रुद्राक्षमाला लेकर ही करे। त्र्यक्षरीमूलमन्त्र की तीन बार आवृत्तिकर पूजनकार्य-सम्पन्न करे॥२३-२४॥

कामाख्यायाः षडङ्गानि आह्वानानन्तरे तथा।
वैष्णवीतन्त्रमन्त्रस्य कराङ्गन्यासयोश्च ये॥२५॥
स्वराः प्रोक्तास्तैः स्वरैस्तु सार्धचन्द्रैः सबिन्दुकैः।
मूलमन्त्राद्यक्षराभ्यां युगपत्तु नियोजितैः॥२६॥

आह्वान के पश्चात् कामाख्या के षडङ्गों में वैष्णवी-तन्त्र-मन्त्र के करन्यास और अङ्गन्यास के मन्त्रों में कहे गये स्वरों में अर्धचन्द्र और बिन्दु, सहित मूलमन्त्र के प्रारम्भ के दो मन्त्रों का संयुक्तरूप से प्रयोग करे॥२५-२६॥

कनिष्ठादिक्रमेणैव ह्यङ्गन्यासं समाचरेत्।
अङ्गन्यासकरन्यासौ कृत्वा पश्चात्तु साधकः॥२७॥
हृच्छिरस्तु शिखावर्मनेत्रास्योदरपृष्ठतः।
बाह्वोः पाण्योर्जङ्घयोश्च पादयोश्चापि विन्यसेत्॥२८॥

कनिष्ठा के क्रम से ही साधक, अङ्गन्यास आदि करे। तब अङ्गन्यास, करन्यास करने के पश्चात् हृदय, सिर, शिखा, कवच, नेत्र, उदर, पीठ, बाहुओं, हाथों, जंघों और पैरों में भी न्यास करे॥२७-२८॥

अभयं वरदं हस्तमक्षमालां च सूत्रकम्।
पूजयेच्छशिनं सूर्यं शिरश्चान्द्रकलां तथा॥२९॥
रक्तपद्मं शवं चैव लौहित्यं ब्रह्मपुत्रकम्।
मनोभवं शिलां तत्र शक्तिस्थां शवमध्यतः॥३०॥
देव्याः प्रपूजयेद्भक्तः करवालं च पार्श्वतः।

साधक देवी के हाथों में अभय और वरद मुद्रा, अक्षमाला, एवं सूत्रक (पाश) का, मस्तक पर सूर्य, चन्द्र और चन्द्रकला, लालकमल, शव और लौहित्य ब्रह्मपुत्र, मनोभवशिला, वहीं शव के मध्यविराजिता शक्तिदेवी व उनके बगल में करवाल (खड्ग) का भक्तिपूर्वक पूजन करे॥२९-३०॥

पीठाधिदेवतास्तत्र यजेत् कामेश्वरीं शुभाम् ।।३१।।
त्रिपुरां पूजयेन्मध्ये पीठप्रत्यधिदेवताम् ।
शारदां च महोत्साहां मध्य एव प्रपूजयेत् ।।३२।।

साधक पीठाधिदेवताओं का पूजन कर शुभदात्री कामेश्वरी देवी का पूजन करे। मध्य में पीठ की प्रत्यधिदेवता, त्रिपुरा, शारदा और महोत्साहा का भी पूजन करे ।।३१-३२।।

चण्डेश्वरी महादेवी देव्या निर्माल्यधारिणी ।
योनिमुद्रा समाख्याता कामाख्यायाः विसर्जने ।।३३।।

महादेवी चण्डेश्वरी देवी कामेश्वरी का निर्माल्यधारण करने वाली तथा योनिमुद्रा कामाख्या के विसर्जन हेतु, मुद्रा बताई गई है।।३३।।

इदं द्रव्यं तु सिन्दूरचन्दनागुरुकुंकुमैः ।
इति यो हि मया प्रोक्तो विशेषः परिपूजने ।।३४।।

देवी कामाख्या के पूजन में सिन्दूर, चन्दन, अगर, कुंकुम मेरे द्वारा कामाख्या के पूजन हेतु विशेषद्रव्य बताये गये हैं ।।३४।।

एभिर्विशेषैः सहितं वैष्णवीतन्त्रगोचरम् ।
सर्वं कल्पं समासाद्य कामाख्यां परिपूजयेत् ।।३५।।

(उपर्युक्त) इन विशेष निर्देशों के सहित वैष्णवीतन्त्र में दिखाये गये सभी कल्पों का समावेश कामाख्यापूजन में करना चाहिये ।।३५।।

अनेनैव विधानेन कामाख्यां यस्तु पूजयेत् ।
मनोभवगुहामध्ये स याति परमां गतिम् ।।३६।।

इसी विधि से जो साधक मनोभवगुहा में कामाख्या देवी का पूजन करता है, वह परम गति को प्राप्त करता है।।३६।।

ब्रह्माणी चण्डिका रौद्री गौरीन्द्राणी तथैव च ।
कौमारी वैष्णवी दुर्गा नारसिंही च कालिका ।।३७।।
चामुण्डा शिवदूती च वाराही कौशिकी तथा ।
माहेश्वरी शाङ्करी च जयन्ती सर्वमङ्गला ।।३८।।
काली कपालिनी मेधा शिवा शाकम्भरी तथा ।
भीमा शान्ता भ्रामरी च रुद्राणी चाम्बिका तथा ।।३९।।
क्षमा धात्री तथा स्वाहा स्वधापर्णा महोदरी ।
घोररूपा महाकाली भद्रकाली भयङ्करी ।।४०।।
क्षेमकरी चोग्रचण्डा चण्डोग्रा चण्डनायिका ।
चण्डा चण्डवती चण्डी महामोहा प्रियङ्करी ।।४१।।

बलविकरिणी देवी बलप्रमथिनी तथा ।
मदनोन्मथिनी देवी सर्वभूतस्यदमनी ।।४२।।
उमा तारा महानिद्रा विजया च जया तथा ।
पूर्वोक्ताः शैलपुत्र्याद्या योगिन्यष्टौ च याः क्रमात् ।।४३।।
ताभिरेभिश्च सहिताः चतुःषष्टिं च योगिनीः ।
पूजयेन्मण्डलस्यान्तः सर्वकामार्थसिद्धये ।।४४।।

साधक को अपनी समस्त कामनाओं की सिद्धि के लिए ब्रह्माणी[१], चण्डिका[२], रौद्री[३], गौरी[४], इन्द्राणी[५], कौमारी[६], वैष्णवी[७], दुर्गा[८], नारसिंही[९] कालिका[१०], चामुण्डा[११], शिवदुती[१२], वाराही[१३], कौशिकी[१४], माहेश्वरी[१५], शाङ्करी[१६], जयन्ती[१७], सर्वमङ्गला[१८], काली[१९], कपालिनी[२०], मेधा[२१], शिवा[२२], शाकम्भरी[२३], भीमा[२४], शान्ता[२५], भ्रामरी[२६], रुद्राणी[२७], अम्बिका[२८], क्षमा[२९], धात्री[३०], स्वाहा[३१], स्वधा[३२], अपर्णा[३३], महोदरी[३४], घोररूपा[३५], महाकाली[३६], भद्रकाली[३७], भयङ्करी[३८], क्षेमकरी[३९], उग्रचण्डा[४०], चण्डोग्रा[४१], चण्डनायिका[४२], चण्डा[४३], चण्डवती[४४], चण्डी[४५], महामोहा[४६], प्रियंकरी[४७], बलविकरिणी देवी[४८], बलप्रमथिनी[४९], मदनोन्मथिनी देवी[५०], सर्वभूतस्यदमनी[५१], उमा[५२], तारा[५३], महानिद्रा[५४], विजया[५५], जया[५६], तथा पहले बताई गई शैलपुत्री आदि क्रमशः आठयोगिनियाँ उनके सहित कुल चौंसठयोगिनियों का मण्डल में पूजन करना चाहिये ।।३७-४४।।

नानाविधं तु नैवेद्यं पानं पायसमेव च ।
मोदकापूपपिष्टादि देव्यै सम्यक् प्रदापयेत् ।।४५।।

अनेक प्रकार के नैवेद्य, पेयपदार्थ, खीर, मोदक (लड्डू), अपूप (पुआ), पिष्ट (चूर्ण) आदि देवी को भलीभाँति अर्पित करना चाहिये ।।४५।।

एवं तु पूजयेद् देवीं कामाख्यां वरदायिनीम् ।
भक्तियुक्तो नरो यस्तु स सर्वान् लभते प्रियान् ।।४६।।

जो मनुष्य (साधक) वर देने वाली कामाख्या देवी का इस प्रकार से भक्ति-युक्त होकर पूजन करता है। वह अपनी सभी प्रिय कामनाओं को प्राप्त कर लेता है ।।४६।।

महोत्साहा तु या देवी महामाया तु सा स्मृता ।
वैष्णवीतन्त्रमन्त्रेण सा पूज्या योनिमण्डले ।।४७।।

महोत्साहा नाम की देवी, जिसे महामाया नाम से स्मरण किया जाता है, का साधक, वैष्णवीतन्त्र के मन्त्रों से योनिमण्डल पर पूजन करे।।४७।।

तदेव मण्डलं चास्य ह्यङ्गन्यासं तथैव च ।
सा एव पूजापर्याये तद्ध्यानं सैव देवता ।।४८।।

वैसा ही मण्डल, वैसे ही अङ्गन्यास, पूजाविधान, ध्यान करे क्योंकि वे महामाया देवी वस्तुतः महोत्साहा ही हैं ॥४८॥

तन्त्रं तदेवमुक्तं तु तस्मान्नान्यं तु किञ्चन ।
मण्डलादिविसृष्ट्यर्थं महामायामहोत्सवे ॥४९॥

महामायामहोत्सव में मण्डलआदि बनाने के लिए जो पद्धति बताई गई हैं। उससे अन्य और कुछ विशेष नहीं है ॥४९॥

यत्प्रोक्तं तेन तां देवीं महोत्साहां तु मण्डले ।
स्नानपूर्वं पूजयेत्तु मध्वाज्यादिभिरासवैः ॥५०॥

वहाँ जो बताया गया है उसी से मण्डल पर देवी महोत्साहा का भी पहले स्नान पूर्वक मधु, घी आदि आसवों से पूजन करना चाहिये॥५०॥

श्रृणुतं त्रिपुरामूर्तेः कामाख्यायाः प्रपूजनम् ।
एतस्या मूलमन्त्रं तु पूर्वमुत्तरतन्त्रके ॥५१॥

तुम दोनों त्रिपुरा के रूप में कामाख्या के पूजनविधान को सुनो । इसका मूलमन्त्र उत्तरतन्त्र में पहले ही बताया गया है ॥५१॥

युवयोरिष्टयोः सम्यक् क्रमात् तत् प्रतिपादितम् ।
वाग्भवं कामबीजं तु डामरं चेति तत्त्रयम् ॥५२॥
सर्वधर्मार्थकामादिसाधकं कुण्डलीयुतम् ।
त्रीण्यस्मात् पुरतो दद्याद् दुर्गा ध्याता महेश्वरी ॥५३॥

तुम दोनों के इष्ट के सम्बन्ध में वहाँ सम्यक्रूप से प्रतिपादन किया गया है। वाग्भव ऐं, काम बीज क्लीं और डामर ये तीन ही कुण्डली से युक्त हो सभी धर्म-अर्थ और काम आदि का साधक होता है । इन तीनों का पहले उच्चारण कर महेश्वरीदुर्गा का ध्यान करना चाहिये ॥५२-५३॥

त्रिपुरेति ततः ख्याता कामाख्याकामरूपिणी ।
तस्यास्तु स्नपनं यादृक्कामाख्यायाः प्रकीर्तितम् ॥५४॥

इसीलिए कामरूपिणी कामाख्या, त्रिपुरा नाम से प्रसिद्ध हुईं। जैसा कामाख्या देवी की स्नान कराने की विधि बताई गई है। वैसा ही त्रिपुरा की भी समझनी चाहिये॥५४॥

तेनैव स्नपनं कुर्यान्मूलमन्त्रेण पूजकः ।
त्रिकोणं मण्डलं चास्यास्त्रिपुरं तु त्रिरेखकम् ॥५५॥

पूजनकरनेवालापुरुष उसी भाँति मूलमन्त्र से स्नपन करे तत्पश्चात् उसे त्रिपुरा हेतु तीन रेखाओं का त्रिकोणात्मकमण्डल बनाना चाहिये ॥५५॥

मन्त्रं तु अक्षरं ज्ञेयं तथा रूपं त्रयं पुनः ।
त्रिविधा कुण्डली शक्तिस्त्रिदेवानां च सृष्टये ।
सर्वं त्रयं त्रयं यस्मात् त्रिपुरा तेन सा स्मृता ।।५६।।

इसके मन्त्र के तीनों अक्षरों को उन्हीं का रूप जानना चाहिये। तीन प्रकार से कुण्डलीशक्ति, ब्रह्मा, विष्णु और शिव जैसे तीन देवताओं की सृष्टिहेतु कार्यरत हैं। इसके पूजन में सब कुछ तीन-तीन के क्रम में प्रयुक्त होता है। इसीलिए उसे त्रिपुरा कहते हैं॥५६॥

उदीच्याद्यथ पूर्वान्ता रेखाः कार्यास्तु मण्डले ।।५७।।
त्रिस्त्रिरेखास्तु कर्तव्याः ता एव पुष्पचन्दनैः ।
ऐशान्यामथ नैर्ऋत्यां मन्त्रं कृत्वा तु संलिखेत् ।।५८।।
नैर्ऋत्यां चैव वायव्यां ततो ह्यैशान्यगां पुनः ।
एवं त्रिकोणं विलिखेन्मण्डलस्यान्तरे पुनः ।।५९।।

मण्डल-निर्माण हेतु उत्तर से पूर्व की ओर जाने वाली रेखाएँ पुष्प और चन्दन से तीन रेखायें इसी प्रकार करनी चाहिये। ईशानकोण से नैर्ऋत्य, नैर्ऋत्य से वायव्य और वायव्य से ईशान की ओर इस प्रकार से मण्डल के अन्दर त्रिकोण का निर्माण करना चाहिये॥५७-५९॥

ऐशान्याद्यास्तु या रेखा सा तु शक्तिर्निगद्यते ।
नैर्ऋत्यां वायवीं याता ततो ह्यैशान्यगा तु या ।।६०।।
सा तु शम्भुः समाख्याता शक्त्या शम्भुं विभेदयेत् ।

ऐशान्य से जो रेखा प्रारम्भ होती है, उसे शक्ति कहते हैं। नैर्ऋत्य से वायव्य तथा पुनः ऐशान्य को जाने वाली रेखा शम्भु कही जाती है। शक्ति रेखा शम्भु को काटती है॥६०॥

शक्त्या विभिन्नं भूतेशं वेष्टयेत् कमलेन तु ।।६१।।
अष्टपत्रेण तां ध्यात्वा त्रिवर्णां प्राक् प्रपूजयेत् ।
त्रिभिस्त्रिभिस्तु रेखाभिः शक्तिं शम्भुं च वेष्टयेत् ।।६२।।

शक्ति से विभिन्न शिव को अष्टदलकमल से घेर देना चाहिये। उन महाशक्ति का ध्यान करते हुये पहले तीनअक्षरों वाली त्रिपुरा का पूजन करे। तीन-तीन रेखाओं से शम्भु और शक्ति दोनों को ही घेर दे॥६१-६२॥

स्थानस्याभ्युक्षणं सम्यक् मार्जनं लिखनं तथा ।
अस्त्रमन्त्रप्रयोगाणां भूतानामपसारणम् ।।६३।।
वैष्णवीतन्त्रमन्त्रोक्तं तथैवोत्तरतन्त्रके ।
यत् प्रोक्तं तत् तु सामान्यं प्राक् कुर्यात् साधको नरः ।।६४।।

स्थान का अभ्युक्षण, मार्जन, मन्त्रलेखन, अस्त्र-मन्त्र का प्रयोग, भूतों का अपसारण आदि कार्य, पहले बताये हुए वैष्णवीतन्त्र तथा उत्तरतन्त्र में जैसा बताया गया है, सामान्यतः वैसा ही पहले साधकपुरुष करे॥६३-६४॥

त्रिपुराया विशेषेण सहितं पूजनक्रमम् ।
एतत् त्रिकोणं देवानां त्रयाणां स्थानमिष्यते ॥६५॥
ऐशान्यां तु महादेवो नैर्ऋत्यां तु चतुर्भुजः ।
वायव्यां तु यथा ब्रह्मा षट्कोणेषु प्रकीर्तिताः ॥६६॥

अब त्रिपुरा के विशेष पूजन का क्रम इस प्रकार हैं— यह पूर्ववर्णितत्रिकोण, ब्रह्मा, विष्णु, महेश तीनों देवताओं का नियत स्थान है। ऐशान्य में शिव, नैर्ऋत्य में विष्णु तथा वायव्य में ब्रह्मा इसी प्रकार छः कोणों में तीनो देवताओं की स्थिति कही गई है॥६५-६६॥

दलं त्वेकपुरं प्रोक्तं केशरं चापरं पुरम् ।
पुरं शेषं त्रिकोणं तु त्रिकोणं मण्डलं स्मृतम् ॥६७॥
दलेषु केशरे चापि त्रिकोणे च त्रिधा त्रिधा ।
रेखास्तु विहिताः सम्यक् कुर्यात् तत्र पुनः पुनः ॥६८॥

इसमें दल को एकपुर, केशर को दूसरा तथा त्रिकोण को तीसरापुर समझना चाहिये। त्रिकोण ही मण्डल कहा गया है। दल, केशर, त्रिकोण रूपी तीनों पुरों में तीन-तीन रेखायें बताई गई हैं। जिन्हें बार-बार भलीभाँति बनाना चाहिये॥६७-६८॥

उत्तरं तद् भवेद् द्वारं तस्य वै धनुराकृतिः ।
पूर्वद्वारं तु षट्कोणं चतुष्कोणं तु दक्षिणे ॥६९॥
पश्चिमं तोरणाकारं यथा चान्यत्र मण्डले ।
ऐशान्यां पञ्चबाणांस्तु लिखेद् वह्नौ च तद्धनुः ॥७०॥
नैर्ऋत्यां पुस्तकं चापि वायव्यामक्षमालिकाम् ।
एवं कृत्वा मण्डलं तु धृत्वा वामेन पाणिना ॥७१॥

इस मण्डल के उत्तरीभाग में जो द्वार हो उसका आकार धनुष के आकार का, पूर्व का द्वार षट्कोण, दक्षिण का द्वार चतुष्कोण, पश्चिम का द्वार तोरणाकार होना चाहिये जैसा कि अन्यत्र बताया गया है। ईशानकोण में कामदेव, अग्निकोण में उनके धनुष, नैर्ऋत्यकोण में पुस्तक और वायव्य में अक्षमालिका बनाये॥६९-७१॥

वाग्वेश्मने नमः इति मण्डलं पूजयेत् ततः ।
पूजयित्वा ततो भूताम् कालिकात्रितयेन तु ॥७२॥
मूलमन्त्रेण पूर्वोक्तैर्मन्त्रैरपि समाचरेत् ।
नवभिश्छोटिकाभिस्तु त्रिधा कृत्वा तु वेष्टनम् ॥७३॥

तब **वाग्वेश्मने नमः** इस मन्त्र से मण्डलपूजन करके तीन कालिका (क्रीं क्रीं, क्रीं) या मूलमन्त्र अथवा पूर्वोक्ततन्त्रों में बताये गये मन्त्रों से पूजन करे। नव छोटिकाओं (चुटकियों) से तीन बार घेरा करे॥७२-७३॥

अभ्युक्षणं ततः कुर्याद् भूतानामपसारणम्।
प्रतिपत्तिस्तु पात्रस्य अर्घ्यार्थं नवधा पुनः॥७४॥

तब साधक अभ्युक्षण, भूतों का अपसारण एवं अर्घ्यहेतु नव प्रकार के पात्रों की स्थापना करे॥७४॥

पूर्ववत् साधकः कुर्याद् दहनं प्लवनं तथा।
अमृतीकरणं कुर्यात् प्रथमं धेनुमुद्रया।
योनिमुद्रां ततः कुर्यात् पात्रतोयं तु त्रिः स्पृशेत्॥७५॥

साधक, धेनुमुद्रा से दहन, प्लवन तथा अमृतीकरण करे। तत्पश्चात् योनिमुद्रा से पात्रस्थितजल का तीन बार स्पर्श करे॥७५॥

मार्तण्डभैरवायार्घ्यं दूर्वाभिः सिद्धसर्षपैः।
रक्तपुष्पैश्चन्दनैश्च सगणाय निवेदयेत्॥७६॥

तब मार्तण्डभैरव (सूर्य) को गणों के सहित, सिद्धसर्षप (पीली सरसों), लाल-चन्दन एवं पुष्प से युक्त अर्घ्य, निवेदन करे॥७६॥

पाणिकच्छपिकां कृत्वा चिन्तनं योनिमुद्रया।
आदौ मध्ये च कर्तव्यं क्रमाद् वेतालभैरव॥७७॥

हे वेताल और भैरव! क्रमशः पूजन के आदि, मध्य और अन्त में पाणिकच्छप (कूर्म) मुद्रा और योनिमुद्रा द्वारा तीन बार ध्यान करना चाहिये॥७७॥

अस्त्रमन्त्रेण पात्रस्य स्थापनार्थं तु मण्डलम्।
षट्कोण तु लिखेत्पूर्वं तन्मन्त्रस्थापनेऽपि च॥७८॥
ऐं आँ क्लीमिति मन्त्रेण त्रिधा पात्रे जलं क्षिपेत्।
त्रिधा गन्धं च पुष्पं च त्रिधा दूर्वाक्षतं पुनः॥७९॥

पात्र के स्थापन के लिए अस्त्रमन्त्र से षट्कोणमण्डल बनाये। उस मन्त्र की स्थापना के लिए **ऐं आँ क्लीं** इन मन्त्रों से तीन बार पात्र में जल, गन्ध, पुष्प, दूब, अक्षत आदि छोड़े॥७८-७९॥

ह्राँ ह्रीँ ह्रूँ ह्रैं ह्रौमिति च अङ्गुष्ठादि क्रमान्न्यसेत्।
ॐ ह्रः इत्यस्त्रमन्त्रेण पाणिपृष्ठतले तथा॥८०॥

ॐ ह्राँ, ह्रीं ह्रूँ ह्रै ह्रौं इन मन्त्रों से अङ्गुष्ठा से प्रारम्भ कर ॐ, ह्रः इस मन्त्र से पाणिपृष्ठतल (हाथ के पिछले भाग) में न्यास करना चाहिये॥८०॥

हृदयादिक्रमात् पश्चान्न्यासं कुर्यात् त्रिधा त्रिधा।
संयोज्य पाणयोः क्रमतश्चाङ्गुष्ठादि द्वयं द्वयम्॥८१॥

तब तीन-तीन अंगुलियों के स्पर्श से हृदयादि क्रम से अङ्गन्यास करे तथा दो-दो के स्पर्श से अंगुष्ठादिक्रम में करन्यास करे ॥८१॥

त्रिधा त्रिधा पृथक् कुर्याच्छेषाङ्गानि च विन्यसेत् ॥८२॥
कर्णरन्ध्रे तथा ब्रह्मद्वारं केशतलं तथा ।
नासिकारन्ध्रयुगलं जानुयुग्मं पदद्वयम् ॥८३॥

शेष अङ्गों का अलग तीन अंगुलियों से न्यास करना चाहिये । कान के छिद्र, ब्रह्मद्वार (सिर), केशतल (ललाट), नासिका के दोनों छिद्र, दोनों घुटने, दोनों पैर में भी न्यास करे ॥८२-८३॥

त्रिधा त्रिधा न्यसेदेभिः षड्भिर्मन्त्रैः पृथक् पृथक् ।
प्राणायामं ततः कुर्यात् पूरकैः स्तम्भकैस्तथा ।
रेचकेनापि त्रिपुरामूर्तिं देवीं विचिन्तयेत् ॥८४॥

तीन-तीन से अलग-अलग छः मन्त्रों से न्यास आदि करने के पश्चात् पूरक, स्तम्भक तथा रेचक प्राणायाम करते हुये, त्रिपुरारूपवाली देवी का चिन्तन करे॥८४॥

दहनप्लवनं कृत्वा आद्यां मूर्तिं विचिन्तयेत् ।
त्रिधावृत्याथ हृदये तां मूर्तिं शृणु भैरव ॥८५॥

दहन, प्लवन करने के पश्चात् आद्या के स्वरूप का चिन्तन, हृदय मध्य में तीनबार करे । अब हे भैरव ! तुम उस मूर्ति के विषय में सुनो ॥८५॥

॥ त्रिपुरा-ध्यान ॥

सिन्दूरपुञ्जसंकाशां त्रिनेत्रां तु चतुर्भुजाम् ॥८६॥
वामोर्ध्वे पुष्पकोदण्डं धृत्वाधः पुस्तकं तथा ।
दक्षिणोर्ध्वे पञ्चबाणानक्षमालां दधात्यधः ॥८७॥

वे देवी सिन्दूरराशि के समान आभावाली, तीन नेत्रों से युक्त, बाईओर के ऊपरीहाथ में पुष्पधनुष, निचलेहाथ में पुस्तक, दाहिनीओर के ऊपरीहाथ में पाँचबाण और निचले में अक्षमाला धारण की हुई, अपनी चार भुजाओं से सुशोभित हैं॥८६-८७॥

चतुर्णां कुणपानां तु पृष्ठेऽन्यं कुणपान्तरम् ।
निधाय तस्य पृष्ठे तु समपादेन संस्थिताम् ॥८८॥

वे चारशवों की पीठ पर स्थित, पाँचवेंशव की पीठ पर सम आसन से विराजमान हैं ॥८८॥

जटाजूटार्धचन्द्रेण समाबद्धशिरोधराम् ।
नग्नां त्रिवलिभेदेन चारुमध्यां मनोहराम् ॥८९॥

जिनका शिरोभाग जटा-जूट और अर्धचन्द्र से भली-भाँति बँधा है । जो नग्न-शरीर और त्रिवली के कारण सुन्दरमध्यभाग (कटिप्रदेश) वाली सुन्दरी हैं ॥८९॥

सर्वालङ्कारसम्पूर्णां सर्वाङ्गसुन्दरीं शुभाम् ।
स्रवद्द्रविणसन्दोहां सर्वलक्षणसंयुताम् ।।९०।।

वे सब प्रकार के अलङ्कारों से परिपूर्ण हैं, सभी अङ्गों से सुन्दरी, शुभलक्षणों से युक्त, झरते हुए धन की राशि हैं। वे सभी लक्षणों से युक्त हैं ।।९०।।

एनां तु प्रथमं ध्यात्वा त्रिधात्मानं तु चिन्तयेत् ।
तद्रूपं च ततः पश्चात् पुष्पं तद्वाग्भवेन तु ।।९१।।
स्वमस्तके पुनर्दद्यादङ्गन्यासं पुनस्तथा ।
मन्त्रद्वयं त्रिधा जप्त्वा वाग्भवाद्यं तु साधकः ।।९२।।

सर्वप्रथम इस त्रिपुरा का ध्यान करने के पश्चात्, तीनरूपों में अपना ध्यान उसी के रूप में करे। तत्पश्चात् वाग्भव **(ऐं)** बीज से अपने मस्तक पर पुष्प चढ़ाये और साधक अङ्गन्यास, वाग्भव से प्रारम्भ दो-दो मन्त्रों का तीनबार जप कर करे।।९१-९२।।

अर्घ्यपात्रस्य तोयेषु तैस्तोयैः सेचयेच्छिरः ।
पूजोपकरणं चापि त्रिरभ्युक्ष्य तथैव तु ।।९३।।

अर्घपात्र के जल में भी न्यास करे और उसी जल से साधक अपने सिर का सिञ्चन तथा पूजा के उपकरणों का तीनबार अभ्युक्षण करे ।।९३।।

कामपीठं ततो ध्यात्वा पूजयेत् क्रमतस्त्विमान् ।
गणेशं च गणाध्यक्षं गणनाथं तथैव च ।।९४।।
गणक्रीडं च पूर्वादिद्वारे मन्त्रेण पूजयेत् ।
हैरम्बबीजमेतेषां मन्त्रस्तु परिकीर्तितः ।।९५।।

तब कामपीठ का ध्यान करके, क्रमशः गणेश का पूर्व में, गणाध्यक्ष का दक्षिण में, गणनाथ का पश्चिम में तथा गणक्रीड का उत्तर में, द्वारदेश में पूजन करे। इन सब के पूजन के लिए हेरम्बबीज-मन्त्र बताया गया है।।९५।।

विद्याशान्तिनिवृत्तिश्च प्रतिष्ठा द्वारपालकाः ।
कलान्ताः पूजयेत् सम्यक् पूर्वादिक्रमतस्तथा ।।९६।।

विद्या, शान्ति, निवृत्ति और प्रतिष्ठा नामक द्वारपालों का नाम के अन्त में कला शब्द जोड़कर पूर्व आदि द्वारों पर भली-भाँति पूजन करे ।।९६।।

सिद्धपुत्रं ज्ञानपुत्रं तथा सहजपुत्रकम् ।
शेषं समयपुत्रं तु पूजयेद् बटुकानिमान् ।।९७।।

तब सिद्धपुत्र, ज्ञानपुत्र, सहजपुत्र अन्तिम समयपुत्र, इन बटुकों का भी क्रमशः पूजन करे ।।९७।।

प्रत्येकं तु श्रियं देवीं बटुकानां परे वरे ।
श्रीमित्यनेन मन्त्रेण पूर्वादौ पूजयेत् क्रमात् ।।९८।।

प्रत्येक बटुक के पहले श्री तथा पश्चात् में देवी लगाकर सब से पहले श्रीं-बीज के साथ पूर्व-आदि क्रम से बटुकों का पूजन करे ॥९८॥

सिद्धस्य सहजस्याथ ज्ञानस्य समयस्य च ।
कुमारीं पूजयेत् कोणे ऐशान्यादौ तु मण्डले ॥९९॥

मण्डल के ऐशान्य आदिकोणों में सिद्धा, सहजा, ज्ञाना, समया नामक बटुकों की कुमारियों का क्रमशः पूजन करे॥९९॥

गोरटं डामरं चैव लोहजङ्घं तथैव च ।
भूतनाथं क्षेत्रपालमीशानादौ प्रपूजयेत् ॥१००॥

गोरट, डामर, लोहजंघ, भूतनाथ, इन क्षेत्रपालों का मण्डल के ईशानादि कोणो में पूजन करे॥१००॥

मण्डलस्य च मध्ये तु पञ्चबाणान् प्रपूजयेत् ।
द्रावणं शोषणं चैव बन्धनं मोहनं तथा ।
आकर्षणं च मध्येन मन्त्रेणैव प्रपूजयेत् ॥१०१॥

मण्डल के मध्य में कामदेव के पञ्चबाण–द्रावण, शोषण, बन्धन, मोहन और आकर्षण का मध्यमन्त्र (क्लीं) से भलीभाँति पूजन करे ॥१०१॥

ततस्त्रिष्वथ कोणेषु पूजयेत् तु त्रियोगिनीः ॥१०२॥
भगं च भगजिह्वां च भगास्यामुत्तरादिकम् ।
क्रमात्तु पूज्यास्तिस्रोऽन्या अन्या मध्ये त्रिकोणके ॥१०३॥

तब तीनों कोणों में तीन योगिनियों, भग, भगजिह्वा और भगास्या का उत्तर आदि दिशाओं में पूजन करे । इसी प्रकार अन्य तीनयोगिनियों का त्रिकोण के मध्य में क्रमशः पूजन करे ॥१०२-१०३॥

भगमालिनीं तु प्रथमे द्वितीये तु भगोदरीम् ।
तृतीये भगारोहां तु योगिनीं कामरूपिणीम् ॥१०४॥

पहले में भगमालिनी, दूसरे में भगोदरी, तीसरे में भगारोहा नाम वाली कामरूपिणी योगिनियों का पूजन करे॥१०४॥

अनङ्गकुसुमां देवीं तथैवानङ्गमेखलाम् ।
अनङ्गमदनां चैव ह्यनङ्गमदनातुराम् ॥१०५॥
अनङ्गवेशां चानङ्गमालिनीं मदनातुराम् ।
दलकेशरमध्ये तु ह्यष्टमीं मदनांकुशाम् ॥१०६॥
शैलपुत्र्यादयश्चाष्टौ त्रिपुरापूजनक्रमे ।
एतन्नामभिरव्यग्रा बभूवुः कामयोगिनीः ॥१०७॥

अनङ्गकुसुमा, अनङ्गमेखला, अनङ्गमदना, अनङ्गमदनातुरा, अनङ्गवेशा, अनङ्गमालिनी, मदनातुरा और आठवीं मदनांकुशा तथा त्रिपुरापूजन क्रम में वर्णित शैलपुत्री आदि योगिनियों का अष्टदलकमल के आठ दलों में पूजन करना चाहिये। इन नामों से अव्यग्ररूप से कामयोगिनियाँ बताई गई हैं ॥१०५-१०७॥

वाग्भवेन तथा दुर्गां नेत्रबीजान्तकेन तु।
अङ्गन्यासं समन्त्रैस्तु षड्भिरष्टाविमान् पुनः ॥१०८॥
पूजयेत् क्षेत्रपालांस्तु मध्ये किञ्जल्कपत्रयोः।
हेतुकं त्रिपुरघ्नं च अग्निजिह्वं तथैव च ॥१०९॥
अग्निवेतालसंज्ञं च कालं चाथ करालकम्।
एकपादं भीमनाथमुत्तरादिक्रमेण तु।
एभिरेवष्टभिर्मन्त्रैः कामराजेन संयुतैः ॥११०॥

वाग्भव से अन्तिम नेत्रबीज ह्रीं से दुर्गा के छः मन्त्रों से अङ्गन्यास करे तत्पश्चात् कमल पत्रों के मध्य में हेतुक, त्रिपुरघ्न, अग्निजिह्व, अग्निवेताल, काल, करालक, एकपाद, भीमनाथ नामक आठ क्षेत्रपालों का कामराज (क्लीं) सहित इन आठ मन्त्रों से, उत्तर से प्रारम्भ कर क्रमशः पूजन करे ॥१०८-११०॥

नवैतानसिताङ्गादीन् नायकान् पूजयेत् क्रमात् ॥१११॥
मण्डलस्य चतुर्दिक्षु द्वौ द्वौ पूर्वादिषु क्रमात्।
पद्ममण्डलयोर्मध्ये शेषमेकं तु पूजयेत् ॥११२॥

मण्डल के पूर्व आदि चारों दिशाओं में असिताङ्गादि नौ नायकों में क्रमशः दो-दो का और अन्तिम एक का पद्म एवं मण्डल के मध्य में पूजन करे॥१११-११२॥

असिताङ्गो रुरुश्चण्डः क्रोधोन्मत्तौ भयङ्करः।
कपाली भीषणश्चैव संहारश्चेति वै नव ॥११३॥

असिताङ्ग, रुरु, चण्ड, क्रोध, उन्मत्त, भयंकर, कपाली, भीषण और संहार ये नौ भैरव कहे गये हैं ॥११३॥

ऐशान्यादिक्रमाद् द्वे द्वे नायिकां पूजयेन्नरः।
पद्ममण्डलयोर्मध्ये अग्नौ द्वे च प्रपूजयेत् ॥११४॥
ब्रह्माणीं भैरवीं चैव तथा माहेश्वरीमपि।
कौमारीं वैष्णवीं चैव नारसिंहीं तथैव च ॥११५॥
वाराहीं च तथेन्द्राणीं चामुण्डां चण्डिकां यथा।
आधारशक्तिप्रभृतीन् मण्डलस्य तु मध्यतः ॥११६॥

ऐशान्य आदि के क्रम से दो-दो नायिकाओं का साधक पूजन करे तथा पद्म और मण्डल के बीच अग्निकोण में दो अन्य का, इस प्रकार ब्रह्माणी, भैरवी,

माहेश्वरी, कौमारी, वैष्णवी, नारसिंही, वाराही, इन्द्राणी, चामुण्डा और चण्डिका इन दशों नायिकाओं का क्रमशः तथा आधारशक्ति आदि का मण्डल के मध्यभाग में पूजन करे॥११४-११६॥

वैष्णवी तन्त्रकल्पोक्तान् सर्वान् भैरव पूजयेत् ।
शिवस्य पञ्च याः प्रोक्ताः सद्योजातादयः पुरा ।।११७।।
मूर्तयस्ताः पद्ममध्ये पञ्चप्रेतत्वमागताः ।
ताः पञ्च पूजयेन्मध्ये रक्तपद्मं शवं तथा ।
सिहं च पूजयेत् तत्र जगदाधारसंज्ञितम् ।।११८।।

वैष्णवीतन्त्रकल्प में बताये गये सभी भैरवों का और सद्योजात आदि शिव की जो पाँच मूर्तियाँ बताई गई हैं, वेदी के मध्य में पञ्चप्रेतत्व को प्राप्त हैं, उनका पद्म के मध्य में पूजन करे। मण्डल के मध्य में ही रक्तकमल, शव, सिंह और जगदाधार नामक आसनों का, पूजन भी करे ॥११७-११८॥

जयन्तीं मङ्गलां कालीं भद्रकालीं कपालिनीम् ।
दुर्गां क्षमां शिवां धात्रीं स्वधां स्वाहां च पूजयेत् ।।११९।।

वहीं जयन्ती, मङ्गला, काली, भद्रकाली, कपालिनी, दुर्गा, क्षमा, शिवा, धात्री, स्वधा और स्वाहा का भी पूजन करे ॥११९॥

उग्रचण्डा प्रचण्डा च चण्डोग्रा चण्डनायिका ।।१२०।।
चण्डा चण्डवती चैव चण्डरूपातिचण्डिका ।
एताः सम्पूजयेन्मध्ये मण्डलस्य विशेषतः ।।१२१।।

मण्डल के मध्य में, विशेष करके उग्रचण्डा, प्रचण्डा, चण्डोग्रा, चण्डनायिका, चण्डा, चण्डवती, चण्डरूपा, अतिचण्डिका का पूजन करे॥१२०-१२१॥

आदित्यादीन् ग्रहान् सर्वान् रूपतो ह्यस्त्रसंयुतान् ।
क्रमात् प्रत्येकमुद्दिश्य पार्श्वे पार्श्वे प्रपूजयेत् ।।१२२।।

आदित्यादि सभी ग्रहों का उनके रूप और अस्त्रों के सहित क्रमशः एक-एक को लक्ष्य कर मण्डल के पार्श्वभाग में, पूजन करे ॥१२२॥

दिक्पालानां तु मन्त्रेण तथा सर्वांस्तु दिक्पतीन् ।
अस्त्रमन्त्रैस्तु तान् सर्वांस्तेषां मन्त्रैस्तु भैरव ।।१२३।।

हे भैरव ! दिक्पालों के मन्त्र से सभी दिग्पतियों का तथा नामित देवताओं का अस्त्रमन्त्रों एवं उनके नाममन्त्रों से पूजन करना चाहिये ॥१२३॥

नाथं कामेश्वरं तत्र एकवक्त्रं चतुर्भुजम् ।
भस्मश्वेतं मध्यहृदि रक्तपुष्पैस्तु कुङ्कुमैः ।।१२४।।

त्रिशूलं च पिनाकं च वामहस्तद्वये स्थितम् ।
उत्पलं बीजपूरं च दक्षिणद्वितये तथा ।।१२५।।
श्वेतपद्मोपरिस्थं च ध्यात्वा मध्ये प्रपूजयेत् ।
कामाख्यां मूर्तितो ध्यात्वा कामाख्यामपि पूजयेत् ।।१२६।।

वहीं मण्डल के मध्य में एक मुहँवाले, चार भुजाओं से युक्त, भस्म के समान श्वेतवर्ण के कामेश्वर, जो अपने बाईं ओर के दोनों हाथों में त्रिशूल और पिनाक धनुष, दक्षिण के दोनों हाथों में नीलकमल और बीजपूर धारणकर, श्वेतकमल पर स्थित हैं। इस प्रकार से उनका हृदय के मध्य में ध्यान कर, रक्तपुष्प और कुङ्कुम से पूजन करे। साथ ही कामाख्या मूर्ति का ध्यान कर, कामाख्या का भी पूजन करे ।।१२४-१२६।।

कामेश्वरीं तत्र देवीं पूजयेत् परमेश्वरीम् ।
वक्ष्यमाणेन रूपेण तत्र वेतालभैरवौ ।।१२७।।

हे वेताल और भैरव ! पहले बताये गये रूप के अनुसार वहीं परमेश्वरी कामेश्वरी का पूजन करे ।।१२७।।

करालं क्षेत्रपालं च कर्त्रिखर्परधारिणम् ।
पूजयेदीशमत्यर्थं दंष्ट्राभिन्नाधरं भयम् ।।१२८।।

क्षेत्रपाल कराल का जो कैंची और खप्पर धारण किये हुए हैं और दाँत से ओंठ काटते हुए, भयंकर किन्तु शिव के अत्यन्तप्रिय हैं, उनका पूजन करे ।।१२८।।

तिन्तिडीं कल्पवृक्षं च सुच्छायं रत्नभूषितम् ।
त्रिकूटं कृष्णवर्णं च नीलशैलं महाद्युतिम् ।।१२९।।
मनोभवां गुहां तत्र पञ्चव्यामायतां शुभाम् ।
रत्नमण्डलसंयुक्तां रक्तवर्णां सुवर्त्तुलाम् ।।१३०।।

सुखप्रद छाया वाले रत्नों से सुशोभित कल्पवृक्षरूपी तिन्तिडी का काले रंग के महान् द्युतिवाले त्रिकूट, नीलपर्वत, पाँच व्याम (परोसा) विस्तृत, रत्नमण्डल से संयुक्त, लाल रंग की सुन्दर, घुमावदार, मनोभवागुफा का भी वहीं पूजन करे ।।१२९-१३०।।

अपराजितां च वल्लीं च व्यामत्रयसुविस्तृताम् ।
आरक्तवर्णां सततं कुसुमैरुपशोभिताम् ।।१३१।।

तीनव्याम तक विस्तृत, लालरंग की, पुष्पों से निरन्तर सुशोभित, अपराजितावल्ली का भी वहीं पूजन करे ।।१३१।।

बटुकं कम्बलाख्यं तु स्वर्णगौरं गजासनम् ।
द्विभुजं दक्षिणे दण्डपाणिं वामे कपालकम् ।
बिभ्रतं पुरतो देव्याः पूज्यो विघ्नविपत्तये ।।१३२।।

विघ्नों पर विपत्ति हेतु, दाहिने हाथ में दण्ड और बायें हाथ में कपाल धारण किये हुए, दो भुजाओं वाले, हाथी पर विराजमान, सुनहलेगौरवर्ण के, देवी के आगे स्थित, कम्बल नामक बटुक का पूजन करना चाहिये।।१३२।।

भैरवः पाण्डुनाथश्च रक्तगौरश्चतुर्भुजः ।।१३३।।
गदां पद्मं च शक्तिं च चक्रं चापि करेषु च ।
बिभ्रद् देव्याः पुरोभागे पूज्योऽयं विष्णुरूपधृक् ।।१३४।।

लालगौरवर्णवाले, अपनी चारो भुजाओं में गदा, पद्म, शक्ति और चक्र धारण किये हुए, विष्णुरूपधारी, पाण्डुनाथ नामक भैरव का देवी के अगलेभाग में पूजन करना चाहिये।।१३३-१३४।।

श्मशानं हेरुकाख्यं च रक्तवर्णं भयङ्करम् ।
असिचर्मधरं रौद्रं भुञ्जानं मनुजामिषम् ।।१३५।।
तिसृभिर्मुण्डमालाभिर्गलद्रक्ताभिराजितम् ।
अग्निनिर्दग्धविगलद्दन्तप्रेतोपरिस्थितम् ।
पूजयेच्चिन्तनेनैव शस्त्रवाहनभूषणम् ।।१३६।।

तब जो लालरंग के, भय उत्पन्न करने वाले, खड्ग और ढालधारी, भयानक, मनुष्य का मांस भोजन करते, बहते हुए रक्त से युक्त तीन मुण्डमालाओं से सुशोभित, आग से जले और टूटे हुए दाँत वाले प्रेत पर स्थित हैं, ऐसे शस्त्र, वाहन और आभूषण से युक्त रूप में हेरुक नामक श्मशान, ध्यान करते हुये साधक का पूजन करे।।१३५-१३६।।

महोत्साहां योगिनीं तु महामायास्वरूपिणीम् ।
ध्यानतो रूपतस्तां तु देव्या अग्रे प्रपूजयेत् ।।१३७।।

महामाया के स्वरूपवाली महोत्साहा नाम की योगिनी का उसी (महामाया) के रूप में ही ध्यान करते हुए देवी के आगे पूजन करे।।१३७।।

पुरी चन्द्रवतीं देव्या नीलपर्वतपूर्वतः ।।१३८।।
योजनद्वयविस्तीर्णामर्धयोजनमायताम् ।
उच्चैरनेकप्रासाद सौधसद्मविभूषिताम् ।।१३९।।
मणिरत्नसुवर्णौघजातप्रासादविस्तृतम् ।
क्रीडासरोवरैः सद्भिः सञ्छन्नां विकचैः कचैः ।
संयुतां पूजयेत् तत्र देव्या अग्रे समन्त्रकम् ।।१४०।।

नीलपर्वत के पूर्व में दो योजन लम्बी और आधी योजन चौड़े अनेक ऊँचे मन्दिरों भवनों तथा आवासों से सुशोभित है। जिसमें मणिरत्न और सोने के समूह से बना हुआ एक विस्तृत महल है। जहाँ अच्छेजल और खिले हुए कमलों से युक्त

क्रीड़ासरोवरों से युक्त, देवी की चन्द्रवती नाम की ऐसी पुरी का, वहीं देवी के अग्रभाग में मन्त्र के सहित पूजन करे॥१३८-१४०॥

लौहित्यं रक्तगौराङ्गं नीलवस्त्रविभूषितम् ॥१४१॥
रत्नमालासमायुक्तं चतुर्बाहुसमन्वितम् ।
पुस्तकं श्वेतपद्मं च बिभ्रतं दक्षिणे करे ॥१४२॥
वामे शक्तिध्वजं चैव शिशुमारस्थितं शुभम् ।
पीठेश्वरानिमान् मध्ये मन्त्रैरेतैः प्रपूजयेत् ॥१४३॥

लाल गोराई के शरीर वाले, नीलवस्त्र धारण किये हुए, रत्नों की माला से युक्त, चार भुजाओं वाले, दाहिनी ओर के हाथों में पुस्तक और श्वेतकमल एवं बायीं ओर के हाथों में शक्ति और ध्वजा लिए हुए, शिशुमार पर स्थित, शुभ, लौहित्य (ब्रह्मपुत्र) का पूजन करे। इस प्रकार पीठ के इन स्वामियों का मण्डल के मध्य में, उनके मन्त्रों से पूजन करना चाहिये ॥१४१-१४३॥

नाथं कामेश्वरं देवं प्रासादेन प्रपूजयेत् ।
कामेश्वर्यास्तु मन्त्रेण यजेत् कामेश्वरीं शुभाम् ॥१४४॥

देव कामेश्वरनाथ का प्रासादमन्त्र से पूजन करे और कामेश्वरी के मंत्र से शुभफलदायिनी कामेश्वरी देवी का पूजन करे ॥१४४॥

द्वावुपान्तौ बलेनैव मदनान्ते च तत्क्रमात् ।
योजयेन्नादबिन्दुभ्यां मायाकरणमन्त्रकम् ॥१४५॥

क्रमशः बल (ब) और मदन (म) के अन्त में आने वाले वर्ण (भ) को उपान्त (ओ) स्वरों तथा नाद बिन्दु (चन्द्र बिन्दु) से युक्त कर लिखने से मायाकरणमन्त्र बनता है॥१४५॥

चण्डिकानेत्रबीजस्य यच्छेषमक्षरं तु तत् ।
कल्पं तिन्तिडिकावृक्षमन्त्रमेतत् प्रकीर्तितम् ॥१४६॥

चण्डिका नेत्रबीज का अन्तिम अक्षर जो है उसी के रूप में तिन्तिडिका वृक्ष का यह मन्त्र भी बताया गया है॥१४६॥

उग्राया मध्यबीजं तु नीलशैलस्य मन्त्रकम् ।
मनोभवस्य बीजं तु महादेवेन संहितम् ॥१४७॥

उग्रा का मध्यबीज ही नीलशैल का मन्त्र है तथा मनोभव का बीज महादेव के समान है॥१४७॥

आदिस्थेनेन्दुना बिन्दुयुक्तं वान्तेन योजितम् ।
मनोभवगुहायां तु मन्त्रमेतत् प्रकीर्तितम् ॥१४८॥

आदि में स्थित चन्द्र-बिन्दु युक्त व के पश्चात् आनेवाला वर्ण श, अकार से युक्त होने पर मनोभवगुहा का मन्त्र कहा गया है॥१४८॥

वैष्णवीतन्त्रमन्त्रस्य यच्छेषं बीजमस्वरम्।
तदधो वान्तसंश्लिष्टं चतुर्थस्वरसंयुतम्।
चन्द्रबिन्दुसमायुक्तं तन्मत्रञ्चापराजितम्।।१४९।।

वैष्णवीतन्त्रमन्त्र का जो अन्तिमवर्ण है वही स्वर रहित, रूप में नीचे की ओर वान्त श् से मिलकर चतुर्थ स्वर, दीर्घईकार युक्त एवं चन्द्र-बिन्दु से भलीभाँति युक्त हो अपराजिता का मन्त्र बनता है।।

हयग्रीवस्वरूपस्य विष्णोर्यद्बीजमुत्तमम्।
कम्बलस्य तु तन्मन्त्रं पूजनं परिकीर्तितम्।।१५०।।

हयग्रीवरूपधारी विष्णु का जो उत्तमबीजमन्त्र है वही पूजन हेतु कम्बल का मन्त्र कहा गया है।।१५०।।

केवलः सप्ररोहादिषष्ठस्वरसमन्वितः।
चन्द्रबिन्दुसमायुक्तं हयग्रीवस्य बीजकम्।।१५१।।

केवल (ॐ), प्ररोह के सहित आदि (क) षष्ठ स्वर ऊ और चन्द्र बिन्दु से युक्त होकर ॐ क्रूँ ऐसा हयग्रीव का बीजमन्त्र बनता है।।१५१।।

भैरवं पाण्डुनाथं च वनमालिस्वरूपिणम्।
वाराहेण तु बीजेन पूजयेत् तु विधानतः।।१५२।।

पाण्डुनाथ भैरव वनमाला धारण किये हुये हैं इन का वाराह के बीजमन्त्र से विधिपूर्वक पूजन करना चाहिये।।१५२।।

सपरौ द्वावनुस्वारविसर्गाभ्यां तु संयुतौ।
महाभैरवमन्त्रेण भैरवान्तेन पूजयेत्।।१५३।।

इसके पश्चात् आने वाला ह वर्ण क्रमशः अनुस्वार और विसर्ग से युक्त, भैरव ह के पश्चात् वर्ती वर्णयुक्त महाभैरवमन्त्र क्ष से पूजन करे।।१५३।।

महोत्साहां महामायां द्वितीयाष्टाक्षरेण तु।
देवीतन्त्रोदितेनैव पूजयेद् भूतिवृद्धये।।१५४।।

देवीतन्त्र में उद्धृत द्वितीय अष्टाक्षरमन्त्र से महोत्साहा-महामाया का साधक ऐश्वर्यवृद्धिहेतु पूजन करे।।१५४।।

आद्याक्षरं तु सामीन्दुबिन्दुभ्यां समलङ्कृतम्।
स्वनाम्नश्चन्द्रवत्यास्तु पूजामन्त्रं प्रकीर्तितम्।।१५५।।

आद्य अक्षर (ॐ) चन्द्रबिन्दु से भलीभाँति अलङ्कृत हो अपने नाम के सहित चन्द्रावती का पूजामन्त्र कहा गया है।।१५५।।

सर्वलक्षणसम्पूर्णं सर्वालङ्कारभूषितम्।।१५६।।
लौहित्यनंदराजस्य ब्रह्मपुत्रस्य भूतिदम्।
ब्रह्मबीजं तु मन्मन्त्रं वह्निभार्यान्तमिष्यते।।१५७।।

वह्निभार्या (स्वाहा) से पूर्ण होने वाला मेरा और ब्रह्मा का बीजमन्त्र ही सभी लक्षणों से सम्पूर्ण तथा सभी अलङ्कारों से सुशोभित, नदों के राजा, लौहित्य, ब्रह्मपुत्र का ऐश्वर्यदायीमन्त्र कहा जाता है॥१५६-१५७॥

द्वितीयं त्रिपुरारूपं तथैव तु तृतीयकम् ।
आवाहनार्थं देव्यास्तु चिन्तयेद् योनिमुद्रया ।।१५८।।

त्रिपुरा के द्वितीय एवं तृतीय रूप का देवी के आवाहनहेतु, योनिमुद्रा सहित ध्यान करना चाहिये ॥१५८॥

बन्धूकपुष्पसङ्काशां जटाजूटेन्दुमण्डिताम् ।
सर्वलक्षणसम्पूर्णां सर्वालङ्कारभूषिताम् ।।१५९।।

वे (द्वितीय त्रिपुरा) बन्धूक, (गुड़हल) के पुष्प के समान रङ्गवाली, जटाजूट तथा चन्द्रमा से सुशोभित हैं। वे सभी लक्षणों से भली-भाँति पूर्ण, सब प्रकार के आभूषणों से सुशोभित हैं॥१५९॥

उद्यद्रविप्रभां पद्मपर्यङ्केषु सुसंस्थिताम् ।
मुक्तारत्नावलीयुक्तां पीनोन्नतपयोधराम् ।।१६०।।
वलीविभङ्गचतुरामासवामोदमोदिताम् ।
नेत्राह्लादकरीं शुभ्रां क्षोभणीं जगतां तथा ।।१६१।।

उनके शरीर की कान्ति, उगते हुए सूर्य की प्रभा के समान है। वे कमल के पलंग पर सुव्यवस्थितरूप से स्थित हैं। उन्होंने मोती और रत्नों की माला धारण कर रखी है। उनके स्तन, उन्नत और पुष्ट हैं। वे चार वलियों में विभक्त है। वे आसव (मधु) पान के आनन्द में मग्न हैं। उनकी छवि, नेत्रों को आह्लादित करने वाली, शुभ्र तथा समस्तजगत को क्षुब्ध करने (प्रभावित करने) वाली है॥१६०-१६१॥

त्रिनेत्रां योनिमुद्रायामीषद्धाससमायुताम् ।
नवयौवनसम्पन्नां मृणालाभचतुर्भुजाम् ।।१६२।।

उनके तीन नेत्र हैं, वे योनिमुद्रा में थोड़ी मुसुकान से युक्त हो, स्थित हैं। वे नवयौवन से सम्पन्न, कमलनाल के समान आभावाली और चारभुजाओं से युक्त हैं॥१६३॥

वामोर्ध्वे पुस्तकं धत्ते अक्षमालां तु दक्षिणे ।
वामेनाभयदां देवीं दक्षिणाधः वरप्रदाम् ।।१६३।।

वे ऊपरी बायेंहाथ में पुस्तक तथा दाहिनेहाथ में रुद्राक्षमाला धारण की हैं। बाएँहाथ से अभय तथा निचले दाहिनेहाथ से वरप्रदान कर रही हैं॥१६३॥

स्रवद्रक्तौघसूर्याभां शिरोमालां तु बिभ्रतीम् ।
आपादलम्बिनीं कल्पद्रुममासाद्य संस्थिताम् ।।१६४।।

वे सूर्य के समान आभावाली, बहतेरक्त से युक्त पैर तक लम्बी मुण्डमाला धारण कर, कल्पद्रुम के निकट स्थित हैं॥१६४॥

कंदर्पोपवनान्तस्थां कामाह्लादकरीं शुभाम् ।
द्वितीयां त्रिपुरां ध्यायेदेवंरूपां मनोहराम् ।।१६५।।

उपर्युक्तरूप में कन्दर्प (काम) वन में, स्थित, काम को आह्लादित करने वाली, शुभदा, सुन्दर, उन द्वितीयत्रिपुरा का ध्यान करना चाहिये।।१६५।।

।। तृतीयत्रिपुराध्यान ।।

तृतीयां त्रिपुरारूपं शृणु वेतालभैरव ।
जपाकुसुमसङ्काशां मुक्तकेशीं शुभाननाम् ।।१६६।।
सदाशिवं हसन्तं तु प्रेतवद् विनिधाय वै ।
हृदये तस्य देवस्य ह्यर्द्धपद्मासनस्थिताम् ।।१६७।।

हे वेताल एवं भैरव ! अब तुम दोनों तृतीयत्रिपुरा के रूप के विषय में सुनो। वे अढ़उल के पुष्प के समान लालवर्ण की, खुलेकेशों और सुन्दरमुख वाली हैं। वे हसंते हुए सदाशिव को प्रेत की भाँति सुलाकर, उन देव के हृदय पर अर्धपद्मासनमुद्रा में स्थित हैं।।१६६-१६७।।

रक्तोत्पलैर्मिश्रितां तु मुण्डमालां पदानुगाम् ।
ग्रीवायां धारयन्तीं तु पीनोन्नतपयोधराम् ।।१६८।।

वे गले में, लम्बाई में पैरों का अनुगमन करती, लाल कमलों से युक्त मुण्डमाला धारण की हुई हैं। उनके स्तन उठे हुए और पुष्ट हैं।।१६८।।

चतुर्भुजां तथा नग्नां दक्षिणोर्ध्वऽक्षमालिनीम् ।
वरदां तदधो वामे जगन्मायां तथाभयाम् ।।१६९।।
अधस्तु पुस्तकं धत्ते त्रिनेत्रां हसिताननाम् ।
स्रवद्रुधिरभोगार्थां तथा सर्वाङ्गसुन्दरीम् ।
एवंविधं तृतीयं तु रूपं ध्यायेत् तु पूजकः ।।१७०।।

वे जगन्माया, नग्नशरीर तथा चारभुजाओंवाली हैं। उन्होंने ऊपरी दाहिनेहाथ में अक्षमाला, उसके नीचे वरदमुद्रा, बाँयी भुजाओं में अभय-मुद्रा एवं पुस्तकधारण किया है। वे तीन नेत्रोंवाली व हँसते हुए मुखवाली, टपकतेरक्तपान की लालसा वाली और सभी अङ्गों से सुन्दर हैं। साधक देवी के तृतीयरूप का इस प्रकार ध्यान करे।।१६९-१७०।।

आद्यं तु वाग्भवं रूपं द्वितीयं कामराजकम् ।
डामरं मोहनं चापि तृतीयं परिकीर्तितम् ।।१७१।।

पहलारूप वाग्भव ऐं, द्वितीय कामराज क्लीं तथा तृतीय डामर और मोहन कहा जाता है।।१७१।।

एकैकं तु त्रिरूपाणि प्राग्विचिन्त्यार्थसाधकः ।।१७२।।

मन्त्रत्रयेण प्रत्येकं हृदि षोडशकैस्तथा ।

पूजयेदुपचारैस्तु बहिर्यद्वत्तथैव च ।।१७३।।

एक-एक के तीन रूपों का पहले ही ध्यान करके, अर्थसिद्धिहेतु साधक को मन्त्रत्रय से, षोडशोपचारों से जैसे बाहर पूजा की जाती है, अपने हृदय में भी पूजन करना चाहिए ।।१७२-१७३।।

मन्त्रत्रयं तथैकत्र कृत्वाचमनमूर्तयः ।

कर्तव्या एकतस्तत्र मध्यरूपे निवेशयेत् ।।१७४।।

तीनों मन्त्रों और मूर्तियों को एक करके एक साथ उनका मध्यरूप में निवेश करना चाहिये ।।१७४।।

नासापुटेन निःसार्य दक्षिणेनाथ तां पुनः ।

अवतार्य कराभ्यां तु देवीमावाहयेत् त्रिधा ।।१७५।।

तत्पश्चात् उसे नाक के दाहिने छिद्र से निकाल कर हाथों से अवतरण करके देवी का तीनबार आवाहन करना चाहिये ।।१७५।।

गायत्रीत्रयमुच्चार्य स्नापयेत् प्रथमं तु ताम् ।

आवाहने तु मन्त्रोऽयं पठितव्यश्च साधकैः ।।१७६।।

साधक द्वारा तीन बार गायत्रीमन्त्र पढ़कर, सर्वप्रथम देवी को स्नान कराना चाहिये और देवी के आवाहन हेतु निम्नलिखितमन्त्र पढ़ना चाहिये ।।१७६।।

एहि देवि शुभावर्ते यज्ञेऽस्मिन् मम सन्निधौ ।

अव्युच्छिन्नां ततः शुभ्रां वाचं कण्ठस्य देहि मे ।।१७७।।

एह्येहि भगवत्यम्ब त्रिपुरे कामदायिनि ।

इमं भागबलिं गृह्य सान्निध्यमिह कल्पय ।।१७८।।

मन्त्र-एहि-कल्पय। मन्त्रार्थ– हे कामनाओं के पूर्ति करने वाली माता, त्रिपुरा देवी, हे सुन्दर अलकोंवाली देवी, यज्ञ में आप मेरे समीप पधारें तथा कभी न रुकने वाली सुन्दर वाणी, मेरे कण्ठ में, प्रदान करें। आप मेरे पास पधार कर अपने अंश की बली और नैवेद्य को ग्रहण करें।।१७७-१७८।।

नारायण्यै च विद्महे वाङ्मयायै च धीमहि ।

एवमुक्त्वा ततः पश्चात् तन्नो देवी प्रचोदयात् ।।१७९।।

नारायण्यै च विद्महे वाङ्मयायै च धीमहि तन्नो देवी प्रचोदयात् । मैं नारायणी को जानता हूँ, वाङ्मया का ध्यान करता हूँ। वे देवी हमें प्रेरित करें।।१७९।।

नारायण्यै विद्महे त्वां चण्डिकायै च धीमहि ।

शेषभागे प्रयुञ्जीत तन्नः कुब्जि प्रचोदयात् ।।१८०।।

नारायण्यै विद्महे चण्डिकायै धीमहि तन्नः कुब्जिप्रचोदयात्। मैं आप नारायणी को जानता हूँ, चण्डिका का ध्यान करता हूँ, वे कुब्जी हमें प्रेरित करें ॥१८०॥

महामायायै विद्महे त्वां सम्मोहिन्यै च धीमहि ।
पश्चादेवं प्रयुञ्जीत तन्नश्चण्डि प्रचोदयात् ॥१८१॥

महामायायै विद्महे सम्मोहिन्यै च धीमहि तन्नश्चण्डि प्रचोदयात्। मैं महामाया को जानता हूँ, सम्मोहिनी का ध्यान करता हूँ वे चण्डि हमें प्रेरित करें ॥१८१॥

एतास्तु त्रिपुरादेव्या गायत्र्यः परिकीर्तिताः ।
प्रत्येकं स्नापनं कुर्यात् त्रिपुराणां च तिसृभिः ॥१८२॥

ये तीनों त्रिपुरादेवी की गायत्रियाँ कहीं गई हैं। प्रत्येक से त्रिपुरा के एक-एक रूप को स्नान कराना चाहिये॥१८२॥

वाग्भवेन तु मन्त्रेण प्रथमं पूजयेच्छिवाम् ।
कामराजेन वै पश्चाड्डामरेणापि पूजयेत् ॥१८३॥

सर्वप्रथम शिवा का वाग्भवमन्त्र (ऐं) से तब कामराजमन्त्र (क्लीं) से तत्पश्चात् डामरमन्त्र से पूजन करे ॥१८३॥

पश्चादेनां त्रिभिर्मन्त्रैरेकत्रैव तु पूजयेत् ।
ततो मन्त्रेण वै दद्यादुपचारास्तु षोडश ॥१८४॥

अन्त में एक साथ तीनोंमन्त्रों से इनका पूजन करे तथा मन्त्रोच्चारण के सहित पूजन के सोलहों उपचार समर्पित करे ॥१८४॥

कामाख्यातन्त्रगदितान् सम्पूज्याङ्गाक्षरान् पुनः ।
अङ्गन्यासस्य यन्मन्त्रैर्देव्या अङ्गानि पूजयेत् ।
शेषं तु मूलमन्त्रेण चाष्टाङ्गानां प्रपूजनम् ॥१८५॥

कामाख्यातन्त्र में सम्बन्धित अङ्गों और अक्षरों के जो मन्त्र बताये गये हैं उनसे देवी के अङ्गों का पूजन करे। शेष आठअङ्गों का पूजन, मूलमन्त्र से करना चाहिये॥१८५॥

एकैकं प्रक्रमं पूज्य त्रिपुरायै नमस्ततः ।
नवधा पूजयेद् देवीं त्रिपुरां कामरूपिणीम् ॥१८६॥

एक-एक प्रक्रम की पूजा करते हुए, अन्त में **त्रिपुरायै नमः** कहना चाहिये। इस प्रकार कामरूपधारिणी, त्रिपुरा देवी के नौ प्रक्रमों, आवरणों का पूजन करना चाहिये॥१८६॥

उत्तरादिचतुष्पत्रे पद्मस्यैतान् प्रपूजयेत् ।
ब्रह्माणं माधवं शम्भुं भास्करं च तथैव च ॥१८७॥

कमलपत्र के उत्तर आदि दिशाओं स्थित चारों दलों में क्रमशः इन ब्रह्मा, माधव (विष्णु), शम्भु (शिव) और भास्कर (सूर्य) का पूजन करना चाहिये ॥१८७॥

ऐशान्यादिषु तेष्वेवं क्रमाद् देवीः प्रपूजयेत् ॥१८८॥
जयन्तीं प्रथमं पश्चाद् वायव्यामपराजिताम् ।
नैर्ऋत्यां विजयां चैव तथाग्नेय्यां जयाह्वयाम् ॥१८९॥

ऐशान्यादि उपदिशाओं में स्थित अष्टदलकमल के पत्रों में क्रमशः इन देवियों का पूजन करना चाहिये। सर्वप्रथम जयन्ती का ऐशान्य में, तब अपराजिता का वायव्य में, विजया का नैर्ऋत्य में और जया नाम की देवी का अग्निकोण में पूजन करना चाहिये ॥१८८-१८९॥

त्रिकोणे केशरस्यान्ते कामं प्रीतिं रतिं तथा ।
पूजयेत् पञ्चबाणांश्च पुष्पं चापं च पुस्तिकाम् ॥१९०॥
अक्षमालां पञ्चशरान् रत्नपर्यंकमेव च ।
प्रेतपद्मशिवं चैव सम्यक् तत्रैव पूजयेत् ॥१९१॥

त्रिकोण में केशर के अन्तर्गत काम, प्रीति, रति, पञ्चबाण, पुष्प-धनुष, पुस्तक, अक्षमाला, रत्नपर्यङ्क, प्रेत, कमल तथा शिव और पञ्चशवों का भी वहीं भली- भाँति पूजन करे ॥१९०-१९१॥

सम्पूज्य पूर्ववन्मालां स्फाटिकामेव भैरव ।
आदायाथोत्तरीयेण तामाच्छाद्य यत्नतः ॥१९२॥
पूर्वोद्धृतं जपेत् सम्यक् साधकस्त्रिपुरामनुम् ।
जप्त्वा स्तुतिं पठित्वा च प्रणम्य च मुहुर्मुहुः ॥१९३॥

हे भैरव ! साधक पहले ही की भाँति स्फटिक की माला की पूजा करे, उसे हाथ में लेकर उत्तरीय (दुपट्टे) से प्रयत्नपूर्वक ढककर पहले बताये गये, त्रिपुरा के मन्त्र का भली-भाँति जप करे तथा जप समाप्त कर स्तुति पढ़ने के पश्चात् बार-बार प्रणाम करे॥१९२-१९३॥

त्रिपुरायै बलिं दद्यात् सम्भवात् तत् त्रिजातिकम् ।
सफेनैस्तोयसंयुक्तैः शर्करामधुसैन्धवैः ॥१९४॥
अभ्युक्ष्य रुधिरं दद्यात् कामराजेन भैरव ।
छेदयेद् वाग्भवेनैव डामरैवितरेच्छिरः ॥१९५॥

हे भैरव ! तब साधक तीन जातियों में उत्पन्न पशु-बलि त्रिपुरा को प्रदान करे। शर्करा, मधु और नमक मिश्रित फेनसहित जल से छिड़काव कर बलि-पशु का रक्त, कामराजबीज (क्लीं) के उच्चारणपूर्वक देवी को अर्पित करे, ऐसा करते समय वाग्भवबीज से सिर काटे तथा डामर से उसे देवी को अर्पित करे ॥१९४-१९५॥

यत्र यत्र बलिं दद्यात् साधको देवतार्चने ।
वैष्णवीतन्त्रकल्पोक्तमादद्यात् पूजने बलिम् ।।१९६।।

साधक देव पूजन में जहाँ-जहाँ भी बलि प्रदान करे, वैष्णवीतन्त्रकल्प में वर्णित, बलि का ही पूजन में प्रयोग करे।।१९६।।

ततो देव्यै बलीन् दद्यादेतद्वर्णक्रमात् पुनः ।
गोक्षीरं ब्राह्मणो दद्याद् गव्यमाज्यं तु राजजः ।
वैश्यस्तु माक्षिकं दद्याच्छूद्रः पुष्पासवादिकम् ।।१९७।।

तब देवी को अपने (साधक के) वर्णक्रम के अनुसार ब्राह्मण गाय का दूध, राजा या क्षत्रिय गोदधि, गोघृत, वैश्य माक्षिक (मधु) तथा शूद्र पुष्प एवं आसव आदि की भेंट चढ़ावे।।१९६।।

घ्रात्वा पुष्पमथैशान्यां निर्माल्यं निक्षिपेद् बुधः ।
निर्माल्यधारिणी चास्या देवी त्रिपुरचण्डिका ।।१९८।।

अन्त में पुष्प को सूँघ कर विद्वान्साधक, निर्माल्य को ऐशान्यकोण में फेंक दे। इस देवी का निर्माल्यधारण करने वाली देवी त्रिपुरचण्डिका है ।।१९८।।

विसृज्यादौ योनिमुद्रां पद्ममुद्रां तथैव च ।।१९९।।
अर्धमुद्रां त्रिमुद्रां च प्रत्येकमपि दर्शयेत् ।
निर्माल्यमथ गृह्णीयात् कामराजाह्वयेन तु ।।२००।।

पहले विसर्जन कर देवी को योनिमुद्रा, पद्ममुद्रा तथा अर्धमुद्रा, ये तीन मुद्रायें एक-एक करके दिखाये, अन्त में कामराजमन्त्र से निर्माल्यग्रहण करे ।।१९९-२००।।

एवं यः पूजयेद् देवीं त्रिपुरां कामरूपिणीम् ।
स कामानखिलान् प्राप्य देवीलोकमवाप्नुयात् ।।२०१।।

।। इति श्रीकालिकापुराणे त्रिपुरापूजनविधिर्नाम त्रिषष्टितमोऽध्यायः ।।६३।।

इस प्रकार जो कामरूपिणीदेवी, त्रिपुरा का पूजन करता है, वह अपनी सभी कामनाओं को प्राप्त कर देवीलोक को प्राप्त करता है ।।२०१।।

।। श्रीकालिकापुराण में त्रिपुरापूजनविधि नामक तिरसठवाँ अध्याय सम्पूर्ण हुआ ।।६३।।



चतुःषष्टितमोऽध्यायः

कामाख्यापूजन-विधिः

।। मार्कण्डेय उवाच ।।

देव्याः कामेश्वरीं मूर्तिं शृणु वक्ष्यामि भैरव ।
यस्याश्चिन्तनमात्रेण साधको लभते प्रियान् ।।१।।

मार्कण्डेय बोले– हे भैरव ! देवी के कामेश्वरीरूप के विषय में जो कहता हूँ, उसे सुनो जिसके चिन्तनमात्र से ही साधक अपने प्रियपदार्थों को प्राप्त कर लेता है।।१।।

तन्त्रं तस्याः प्रथमतस्ततोऽनुध्यानगोचरम् ।
ततः पूजाक्रमं वक्ष्ये क्रमाद् वेतालभैरव ।।२।।

हे वेताल और भैरव ! मैं पहले उनके तन्त्र, तब ध्यान और तत्पश्चात् उनके पूजाक्रम को क्रमशः कहूँगा ।।२।।

प्रजापतिस्ततो बह्निरिन्द्रबीजं ततः परम् ।
चूडाचन्द्रार्धसहितं चतुर्थस्वरसंयुतम् ।
इदं कामेश्वरं बीजमन्त्रं सर्वार्थसाधनम् ।।३।।

प्रजापति (क्) बह्नि (र) इन्द्र (ल्), अर्धचन्द्र और बिन्दु सहित चतुर्थस्वर ई से युक्त हो, कामेश्वर का बीज मन्त्र क्लीं बनता है । जो सभी प्रयोजनों को सिद्ध करने वाला है ।।३।।

स्थानाभ्युक्षणयन्त्रादि पात्रन्यासादिकं यथा ।
भूतापसारणादींश्च वैष्णवीतन्त्रभाषितान् ।।४।।
तथोक्तानुत्तरे तन्त्रे गृह्णीयात् साधकोत्तमः ।
प्राणायामत्रयं कुर्याद् दहनं प्लवनं तथा ।।५।।

साधकों में उत्तम साधक, वैष्णवीतन्त्र तथा उत्तरतन्त्र में कही गयी विधि से स्थान का अभ्युक्षण और यन्त्र तथा पात्रादि का न्यास (स्थापन) व भूतों के अपसारण, हटाने की क्रिया सम्पन्न करे । वह तीन प्राणायाम एवं दहन और प्लवन की क्रियाएँ भी सम्पन्न करे ।।४-५।।

विशेषमण्डलं चास्याः शृणु वेतालभैरव ।।६।।
षट्कोणं मण्डलं कुर्याद्रक्तवर्णं तु चिन्तयेत् ।
विभेद्य शक्त्या शम्भुं तु त्रिपुरातन्त्रवद् बुधः ।।७।।

हे वेताल, हे भैरव ! अब इसके लिए विशेषमण्डल निर्माण की विधि सुनो ।

विद्वान् साधक को त्रिपुरातन्त्र की भाँति, लालरङ्ग के शम्भु को भेद कर बने शक्ति से षट्कोणमण्डल का चिन्तन करना चाहिये ।।६-७।।

ततः शक्तिं शम्भुनापि भेदयेत् क्रमतः सुधीः ।
ऐशान्यादिनैर्ऋतान्तां रेखां कृत्वाथ दक्षिणे ।।८।।
पश्चिमात् पूर्वगां रेखां पूर्वादपि तथोत्तराम् ।
उत्तरात् पश्चिमान्तां तु कृत्वा रेखास्तुयोजयेत् ।।९।।

तब बुद्धिमान् साधक को क्रमशः शम्भु द्वारा शक्ति का भी भेदन करना चाहिये । इस हेतु ऐशान्यकोण से प्रारम्भ कर दक्षिण में नैर्ऋत्यकोण तक रेखा खींचे । इसी प्रकार पश्चिम से पूर्व और पूर्व से उत्तर जाने वाली रेखायें तथा उत्तर से पश्चिम जाने वाले रेखाओं की योजना करे।।८-९।।

धनुस्तोरणसङ्काशं द्वारे चोत्तरपश्चिमे ।
दक्षिणं तु त्रिकोणं स्यात् षट्कोणं पूर्वमुच्यते ।।१०।।

धनुष और तोरण क्रमशः मण्डल के उत्तरी और पश्चिमी द्वार के समीप दक्षिण में त्रिकोण और पूर्व में षट्कोण बनाना चाहिये ।।१०।।

जालन्धरं लिखेत् पीठमुत्तरे पश्चिमे लिखेत् ।
ओड्रपीठं दक्षिणे तु कामरूपं तु पूर्वतः ।।११।।

पहले की ही भाँति उत्तर में जालन्धरपीठ, पश्चिम में ओड्र-पीठ, दक्षिण में कामरूपपीठ लिखे ।।११।।

देव्या द्वादशगुह्यानि यानि द्वादशभिः करैः ।
लिखेन्मण्डलकोणेषु तानि दिक्षु त्रयं त्रयम् ।
षड्भिः षड्भिस्तु रेखाभिः कर्तव्योः मण्डलक्रमः ।।१२।।

उन दिशाओं में मण्डल के कोणों में छः-छः रेखाओं से तीन-तीन के क्रम में देवी के बारह गुह्यमण्डलों का निर्माण करे ।।१२।।

अन्यदुत्तरतन्त्रोक्तं वैष्णवीतन्त्रभाषितम् ।
मण्डलस्य क्रमं सर्वं विद्धि वेतालभैरव ।।१३।।

हे वेताल और भैरव ! मण्डल सम्बन्धी अन्य जो कुछ है, उसे उत्तरतन्त्र या वैष्णवीतन्त्र में कहे अनुसार जानो ।।१३।।

ॐ क्लीं मण्डलतत्त्वाय नम इत्यत्र मण्डलम् ।
पूजयेत् प्रथमं ध्यात्वा मण्डलं योगपीठकम् ।।१४।।

ॐ क्लीं मण्डलतत्त्वाय नमः इस मन्त्र से मण्डल का योगपीठ के रूप में ध्यान करके सर्वप्रथम पूजन करे।।१४।।

पीठे शिलायां विलिखेन्मण्डलं योनिमण्डलम् ।
त्रिकोणं विलिखेत् पश्चाद् वेष्टयेत् कमलेन तु ।।१५।।

पीठ पर या शिला पर, योनिमण्डल के रूप में मण्डल का निर्माण करे, इसे त्रिकोणाकृति में बनाकर कमल से घेर दे ।।१५।।

रूपं तु चिन्तयेद् देव्याः कामेश्वर्या मनोहरम् ।।१६।।
प्रभिन्नाञ्जनसङ्काशां नीलस्निग्धशिरोरुहाम् ।
षड्वक्त्रां द्वादशभुजाष्टादशविलोचनाम् ।
प्रत्येकं षट्सु शीर्षेषु चन्द्रार्धकृतशेखराम् ।।१७।।

तत्पश्चात् कामेश्वरीदेवी के मनोहर रूप का ध्यान करे- वे देवी अञ्जन के टूटे शिखर के समान काली, शरीरकांति और कोमल-कालेकेशों से युक्त हैं। वे काली छः मुहँ, बारह हाथ एवं अठारह भुजाओं से युक्त हैं तथा अपने प्रत्येक छः सिरों पर अर्धचन्द्र धारण की हुई हैं ।।१६-१७।

मणिमाणिक्यमुक्तादिकृतमालामुरः स्थले ।
कण्ठे च बिभ्रतीं नित्यं सर्वालङ्कारमण्डिताम् ।।१८।।

उन्होंने मणि, माणिक्य, मोतियों से बनी हुई माला, अपने हृदय और कण्ठ में नित्य धारण किया है तथा वे सभी आभूषणों से सुशोभित हैं ।।१८।।

पुस्तकं सिद्धसूत्रं च पञ्चबाणं तु तं तथा ।
खड्गं शक्तिं च शूलं च बिभ्रतीं दक्षिणैः करैः ।।१९।।
अक्षमालां महापद्मं कोदण्डं चाभयं तथा ।
चर्मपश्चात् पिनाकं च बिभ्रतीं वामपाणिभिः ।।२०।।

उन्होंने अपने दाहिने हाथों में पुस्तक, सिद्धसूत्र, पञ्चबाण, खड्ग, शक्ति और शूल तथा बाएँहाथों में रुद्राक्ष की माला, महापद्म, धनुष, अभयमुद्रा, ढाल व पिनाक (दण्ड) धारण किया है ।।१९-२०।।

शुक्लं रक्तं च पीतं च हरितं कृष्णमेव च ।
विचित्रं क्रमतः शीर्षमैशान्यां पूर्वमेव च ।।२१।।
दक्षिणं पश्चिमं चैव तथैवोत्तरशीर्षकम् ।
मध्यं चेति महाभाग क्रमाच्छीर्षाणि वर्णतः ।।२२।।

हे महाभाग उनके श्वेत, लाल, पीले, हरे, काले और रंगबिरंगे मस्तक, रगों के अनुसार क्रमशः, ऐशान्य, पूर्व, दक्षिण, पश्चिम, उत्तर और मध्यभाग में हैं ।।२१-२२।।

शुक्लं माहेश्वरीवक्त्रं कामाख्यारक्तमुच्यते ।।२३।।
त्रिपुरा पीतसङ्काशा शारदा हरिता तथा ।
कृष्णं कामेश्वरीवक्त्रं चण्डायाश्चित्रमिष्यते ।।२४।।
धम्मिल्लसंयतकचं प्रतिशीर्षं प्रकीर्तितम् ।

इनमें श्वेत माहेश्वरीदेवी का, लाल कामाख्या, पीला त्रिपुरा, हरा शारदा, काला कामेश्वरी का और रंग-बिरंगा चण्डादेवी का मस्तक कहा जाता है। देवी के ये प्रत्येक सिर, व्यवस्थित, जूड़ाबद्धकेशों से सुशोभित, बताये गये हैं ।।२३-२४।।

सिंहोपरिसितप्रेतं तस्मिल्लोहितपङ्कजम् ।
कामेश्वरी स्थिता तत्र ईषत्प्रहसितानना ।।२५।।

विचित्रांशुकसंवीतां व्याघ्रचर्माम्बरां तथा ।
एवं कामेश्वरीं ध्यायेद् धर्मकामार्थसिद्धये ।।२६।।

सिंह के ऊपर श्वेतप्रेत तथा उसके ऊपर रक्तकमल पर विराजमान, थोड़ा हँसतेहुएमुखवाली विचित्र (रंग बिरंगें), रेशमीवस्त्र और व्याघ्र के चमड़े से बनेवस्त्र धारण की हुई, कामेश्वरीदेवी का धर्म, काम और अर्थ की सिद्धि के लिए ध्यान करे ॥२५-२६॥

पीठेऽन्यत्राथ वा देव्याः पूजायां कथ्यते क्रमः ।
पीठे विशेषो वक्तव्यः सामान्ये त्वन्यदिष्यते ।।२७।।

उपर्युक्त ध्यानपीठों पर पूजा का विशेषरूप वर्णित है। इसके अतिरिक्त पूजनहेतु आगे कहा जायेगा (पीठ) स्थानों में विशेष कहने के पश्चात् अब सामान्यक्रम कहा जाता है ॥२७॥

अङ्गुष्ठादिक्रमादेव संयोज्याथ युगं युगम् ।
मूलमन्त्रस्याक्षरेण दीर्घस्वरयुतेन च ।।२८।।
षड्भिराद्यैर्न्यसेत् पूर्वमङ्गुलीयकमेव च ।।२९।।

प्रारम्भ कर अंगुष्ठा से अंगुष्ठा को मिलाकर मूलमन्त्र के क्रमशः दो दो अक्षरों को, दीर्घस्वर से संयुक्त कर, पहली ऊँगली के क्रम से छः मन्त्रों से करन्यास करे चाहिये ॥२८-२९॥

हृच्छिरः शीर्षवर्मनेत्रास्त्राणि पुनस्तथा ।
न्यसेद् दक्षिणहस्तेन षड्भिर्मन्त्रैस्तथा क्रमात् ।।३०।।

तब हृदय, शिर, शिखा, कवच, नेत्र और अस्त्र का क्रमशः छः मन्त्रों से दाहिनेहाथ द्वारा अंगन्यास करे ॥३०॥

आस्यं बाहुयुगं कुक्षिं गुह्यं जानुयुगं तथा ।
पादयुग्मं क्रमात् तैस्तु षड्भिर्मन्त्रैर्न्यसेत् तथा ।।३१।।

इसी प्रकार मुँह, दोनों बाहों, कोख, गुह्य, दोनों घुटनों, दोनों पैरों में उन्हीं छः मन्त्रों द्वारा क्रमशः न्यास करे ॥३१॥

अष्टधा मूलमन्त्रं तु जप्त्वाथार्घाहिते जले ।
तेनोपकरणं देयं चाभ्युक्ष्य क्रममारभेत् ।।३२।।

तब अर्घ के निमित्त ग्रहण किये जल में मूलमन्त्र का आठ बार जप करके उसी से पूजा के उपकरणों का अभ्युक्षण (सिंचन) करे ॥३२॥

दैशिकः पूजयेद् देवी पीठेनादैशिकः क्वचित् ।
तस्यैव हि करस्पर्शाद् देवी नोद्विजते शिवा ।।३३।।

स्थानीय साधक पीठ पर उपर्युक्त रीति से अभ्युक्षण करे। यदि साधक स्थानीय न हो तो भी भगवती, उसके हाथ के स्पर्श से उद्विग्न नहीं होतीं ॥३३॥

यदि देशान्तराद् यत पीठं देशान्तरं प्रति ।
तद्दैशिकोपदेशेन तदा पूजां समारभेत् ।।३४।।

यदि बाहरीस्थान से पीठ (क्षेत्र विशेष) में साधक पूजन करने आया हो तब उसे स्थानीय साधक के उपदेशानुसार पूजन प्रारम्भ करना चाहिये ।।३४।।

यद्यन्यतः समायाता कामरूपादृते नरः ।
तद्देशजोपदेशेन सम्पूज्यफलमाप्नुयात् ।।३५।।

यदि साधकमनुष्य कामरूप के अतिरिक्त अन्य देश से आया हो तो उसे इस देश के उत्पन्न साधक के उपदेश से ही पूजा का फल, प्राप्त होगा ।।३५।।

यस्मिन् देशे तु यः पीठ ओड्रपाञ्चालकादिषु ।
तद्देशजोपदेशेन पूज्यः पीठे सुरो नरैः ।।३६।।

ओड्र, पाञ्चाल आदि जिस देश में जो पीठ स्थित हैं, उनमें साधकों द्वारा उसी देश में उत्पन्न आचार्यों के उपदेशों द्वारा देवपूजनकार्य किया जाना चाहिये ।।३६।।

इतोऽन्यथा पूजने न सम्यक् फलमवाप्नुयात् ।
महाविभवसम्पूर्णैर्विहितेनैव भैरव ।।३७।।

हे भैरव ! इससे अलगविधि से पूजन करने से भली-भाँति फल नहीं प्राप्त होता भले ही वह अत्यन्त वैभव और विधि से ही क्यों न किया जाय ।।३७।।

अनुक्तो यः क्रमश्चात्र वैष्णवीतन्त्रगोचरे ।
तथैवोत्तरतन्त्रेऽपि प्रोक्तो ग्राह्यस्तु साधकैः ।।३८।।

यहाँ पूजा का जो क्रम नहीं बताया गया है। उसे साधकों द्वारा वैष्णवीतन्त्र या उत्तरतन्त्र में कहे गये अंश से ग्रहण किया जाना चाहिये ।।३८।।

पूर्वद्वारि प्रथमतः कामतत्त्वं प्रपूजयेत् ।
दक्षिणे प्रीतितत्त्वं तु रतितत्त्वं च पश्चिमे ।
उत्तरे मोहनं तत्त्वं क्रमादेतानि पूजयेत् ।।३९।।

पहले पूर्वदिशा के द्वारपर कामतत्त्वका दक्षिण में प्रीतितत्त्व का, पश्चिम में रतितत्त्व का, उत्तर में मोहनतत्त्व का क्रमशः पूजन करे ।।३९।।

ऐशान्यां पूजयेद् देवं गणेशं द्वारपालकम् ।
अग्नौ तु चाग्निवेतालं नैर्ऋत्यां कालमेव च ।।४०।।
वायव्यां नन्दिनं चापि पूजयेत् क्रमतस्त्विमान् ।।४१।।

ऐशान्यदिशा में देवश्रेष्ठ गणेश का, अग्निकोण में अग्निवेताल का, नैर्ऋत्य में काल का, वायव्य में नन्दि का, इसी क्रम में, द्वार-पालों के रूप में पूजन करे ।।४०-४१।।

चतुष्कं पञ्चकं षट्कं चतुष्कं पञ्चकं चतुः ।
षट्कारं चैव यो वेद स योग्यः पीठपूजने ।।४२।।

(पीठ) चार, (बाण) पाँच, (भग/ऐश्वर्य) छः, चार, पाँच, चार, छः, इन तत्त्वविशेष के रहस्यों को जो साधक जानता है, वही पीठ पूजन का योग्य अधिकारी है ।।४२।।

।। पीठ चतुष्क ।।

ओड्राख्यं प्रथमं पीठं द्वितीयं जालशैलकम् ।
तृतीयं पूर्णपीठं तु कामरूपं चतुर्थकम् ।।४३।।

ओड्रपीठ, प्रथम, जालशैल (जालन्धरपीठ) द्वितीय, पूर्णगिरिपीठ तृतीय तथा कामरूपपीठ चतुर्थ देवी का पीठ है ।।४३।।

ओड्रपीठं पश्चिमे तु तथैवोड्रेश्वरीं शिवाम् ।
कात्यायनीं जगन्नाथमोड्रेशं च प्रपूजयेत् ।।४४।।

पश्चिम के ओड्रपीठ में (उड़ीसा में) कात्यायनी, ओड्रेश्वरी एवं शिवा नामक देवियों तथा जगन्नाथ का ओड्रेश्वर के रूप में भलीभाँति पूजन करना चाहिये ।।४४।।

उत्तरे पूजयेत् पीठं प्रशस्तं जालशैलकम् ।
जालेश्वरं महादेवं चण्डीं जालेश्वरीं तथा ।
दीर्घिकां चोग्रचण्डां च तत्रैव परिपूजयेत् ।।४५।।

उत्तर में जालशैल नामक प्रसिद्धपीठ का पूजन करे। वहीं जालेश्वर महादेव और चण्डी जालेश्वरी, दीर्घिका और उग्रचण्डा नामवाली देवियों का भी वहीं भलीभाँति पूजन करे।।४५।।

दक्षिणे पूर्णशैलं तु तथा पूर्णेश्वरीं शिवाम् ।
पूर्णनाथं महानाथं सरोजामथ चण्डिकाम् ।।४६।।
पूजयेद् दमनीं देवीं शान्तामपि तथा शिवाम् ।।४७।।

दक्षिण में पूर्णशैल पर देवी पूर्णेश्वरी और महादेव पूर्णनाथ, सरोजा (लक्ष्मी), चण्डिका, शान्तस्वभाववाली दमनी देवी का साधक वहीं पूजन करे ।।४६-४७।।

कामरूपं महापीठं तथा कामेश्वरीं शिवाम् ।
नीलं च पर्वतश्रेष्ठं नाथं कामेश्वरं तथा ।
पूजयेद् द्वारि पूर्वं तु क्रमादेतांस्तु भैरव ।।४८।।

हे भैरव ! कामरूपमहापीठ में कामेश्वरी देवी, पर्वतराजनीलाचल, कामेश्वरनाथ का क्रमशः पूर्वीद्वार पर पूजन करना चाहिये।।४८।।

ओड्रादीनां तु पीठानां क्षेत्रपालान् गुरुंस्तथा ।
अन्यांस्तु द्वारपालादीन् स्वे स्वे स्थाने प्रपूजयेत् ।।४९।।

अन्य ओड्र आदि पीठों के क्षेत्रपाल, गुरु, द्वारपाल आदि का अपने-अपने स्थानों पर पूजन करना चाहिये ।।४९।।

विशेषात् कामरूपस्य कामेश्वरीं प्रपूजयन् ।
तामेव नीलशैलस्थां शृणु वेतालभैरव ।।५०।।

हे वेताल और भैरव ! अब विशेषरूप से कामरूप के नीलशैल पर स्थित कामेश्वरी के पूजन की विधि कहता हूँ, उसे सुनो ।।५०।।

नाथः कामेश्वरो देवो देवी कामेश्वरी तथा ।

करालः क्षेत्रपालश्च चिञ्चावृक्षस्तथैव च ।।५१।।
त्रिकूटे नीलशैलस्तु गुहा चापि मनोभवा ।।५२।।

वहाँ स्वामी कामेश्वरदेव, देवी कामेश्वरी, क्षेत्रपाल कराल, चिञ्चावृक्ष (इमली का पेड़), त्रिकूट पर नीलशैल तथा मनोभव गुफा, विशेषरूप से विराजमान हैं ।।५१-५२।।

बटुकः कम्बलो नाम वल्ली चैवापराजिता ।
भैरवः पाण्डुनाथश्च श्मशानं हेरुकाह्वयम् ।।५३।।
योगिनी च महोत्साहा तथा चन्द्रवती पुरी ।
लौहित्यो नदराजश्च प्रान्ता दिक्करवासिनी ।।५४।।

वहाँ कम्बल नामक बटुक, अपराजितावल्ली, पाण्डुनाथ नामक भैरव हेरुक नामक श्मशान, महोत्साहानामवाली योगिनी, चन्द्रवती पुरी तथा दिक्करवासिनी के समीप, लौहित्य नामक नदों के राजा स्थित हैं ।।५३-५४।।

जल्पीशाख्यस्तु वायव्यां केदाराख्योऽथ राक्षसे ।
एतान् सम्पूजयेद् द्वारि तथा देव्यास्तु मण्डले ।।५५।।
द्वारपालो योगिनी च बटुकाद्या यथा तथा ।
कामरूपे पीठवरे ओड्रादिष्वथ तत् तथा ।।५६।।

जल्पीश नामक देवका वायव्यकोण में और केदार का राक्षस (नैर्ऋत्य)-कोण में, इन सब योगिनी, बटुक आदि का द्वार पर तथा देवी का मण्डल में कामरूप नामक, श्रेष्ठपीठ में एवं ओड्र आदि पीठों में भी इसी प्रकार पूजन करे।।५५-५६।।

।। बाणविचारपञ्चक ।।

मध्ये तु मण्डलस्याथ द्रावणं शोषणं तथा ।
बन्धनं मोहनं चैव तथैवाकर्षणाह्वयम् ।
मनोभवस्य बाणांस्तु पञ्चैतान् परिपूजयेत् ।।५७।।

मण्डल के मध्यभाग में द्रावण, शोषण, बन्धन, मोहन तथा आकर्षण नामक कामदेव के पाँच बाणों का भली-भाँति पूजन करना चाहिये ।।५७।।

षट्कोणाग्रेषूत्तरादौ भगादिषट्कमेवच ।
त्रिपुरातन्त्रमन्त्रोक्तं पूजयेत् क्रमतः सुधीः ।।५८।।

सुन्दरबुद्धि वाले साधक को त्रिपुरा-तन्त्र-मन्त्र में कहे अनुसार भग आदि छः का षट्कोण के अगलेभाग में उत्तर आदि दिशाओं में क्रमशः पूजन करना चाहिये ।।५८।।

गणाक्रीडादिकं तद्वत् तथा विद्याकलादिकान् ।।५९।।
बटुकान् सिद्धपुत्रादीन् सिद्धाद्याश्च कुमारिकाः ।
चतुश्चतुष्कमित्येतच्चतुष्कमिति चोच्यते ।।६०।।

उसी के अनुसार गणाक्रीड, विद्याकला, बटुक, सिद्धपुत्र और कुमारिकाओं का पूजन करे । सिद्ध, बटुक, सिद्धपुत्र और कुमारिका ये चार पूजनीय वर्ग हैं, इसी लिए इन्हें चतुष्क कहा जाता है ।।५९-६०।।

कामं रतिं च प्रीतिं च अनङ्गमेखलादिकम् ।
सप्त वै त्रिपुरघ्नाद्या असिताङ्गादयो नव ।।६१।।
माहेश्वर्यादिका देव्यो दशभिः पञ्चभिर्गणैः ।
द्वितीयं पञ्चकं प्रोक्तं पीठे कामफलप्रदम् ।।६२।।

काम, रति, प्रीति, अनङ्गमेखला आदि चार त्रिपुरघ्नादि सात, असिताङ्ग आदि नौ तथा माहेश्वरी आदि दश के, पाँचसमूहों को पीठपूजन में द्वितीयपंचक बताया गया है। जो कामनाओं के अनुरूप फलप्रदान करने वाला है॥६१-६२॥

आधारशक्तिमुख्या ये नित्यं तत्र प्रतिष्ठिताः ।
धर्माद्याश्च तथैवाष्टौ तथा सत्त्वादिका गुणाः ।
एकत्र ग्रहदिक्पालाश्चतुष्कमपरं स्मृतम् ।।६३।।

आधारशक्ति आदि जो नित्यरूप से वहाँ स्थित हैं। धर्मादि आठ, सत्वादिगुण, ग्रह-दिक्पाल इनके एकत्रितरूप को ही दूसराचतुष्क कहा गया है ।।६३।।

देव्यास्तथोग्रचण्डाद्या नायिकाः परिपूजयेत् ।
पूर्वोक्तदेशे मन्त्रेण भक्त्या वेतालभैरव ।।६४।।

हे वेताल और भैरव! पूर्वोक्तस्थान और मन्त्र से जैसा कि त्रिपुरा आदि तन्त्रों में बताया गया है, उग्रचण्डा आदि देवी की नायिकाओं, योगिनियों का भक्तिपूर्वक पूजन करना चाहिये ।।६४।।

आवाहनं षोडशोपचाराणां प्रतिपादनम् ।।६५।।
जपं च बलिदानं च अङ्गास्त्राणां प्रपूजनम् ।
मुद्रा पूर्वा विसृष्टिश्च षट्कमेतत् प्रकीर्तितम् ।।६६।।

आवाहन आदि षोडशोपचारों से पूजन, जप, बलिदान, अङ्ग और अस्त्रों का पूजन, मुद्रापूर्वकविसर्जन, इनका समूह, अन्तिमषट्क कहा गया है ।।६५-६६।।

एतानि सप्त जानाति प्रकारान् पूजकः सुधीः ।
स एवोड्रादिपीठानि सम्पूजयितुमर्हति ।।६७।।

इन सात (४ पीठ, ५ बाण, भगादि ६, बटुक, सिद्धपुत्र, सिद्धकुमारिका आदि४, काम, रति प्रीति, अनङ्ग मेखला त्रिपुरघ्नादि६, असिताङ्गादि नौ, भैरव तथा माहेश्वरी आदि १०, शक्तियों के समूह ५, धर्मादिसे दिकपाल् पर्यन्त४, आवाहन से विसर्जन तक ६) रहस्यों को जो साधक जानता है, वही सुन्दरबुद्धिवाला है तथा वही ओड्रादि पीठों की भलीभाँति पूजा भी कर सकता है ।।६७।।

योऽज्ञात्वा सम्यगेतानि कुरुते पीठपूजनम् ।
न सम्यक् फलमाप्नोति हीनायुरपि जायते ।।६८।।

जो उपर्युक्त रहस्यों को भलीभाँति न जानते हुए भी पीठपूजन (साधना की दृष्टि से) करता है। उसे उचितफल नहीं प्राप्त होता और वह हीनायु होता है ।।६८।।

त्रिपुरातन्त्रमन्त्रोक्तस्थानेष्वेतेषु भैरव ।
पूजयित्वा प्रथमतः पूजयेत् परमेश्वरीम् ।।६९।।

हे भैरव ! त्रिपुरातन्त्र के मन्त्रों में बताये गये स्थानों पर सर्वप्रथम इनका पूजन करने के पश्चात् परमेश्वरी का पूजन करना चाहिये ।।६९।।

कामेश्वरि इहागच्छ सम्मुखीभव चेश्वरि ।
चिन्तयित्वाथ मनसाऽभ्यर्च्य कामेश्वरीं हृदि ।।७०।।
मानसैर्गन्धपुष्पाद्यैस्ततो दक्षिणनासया ।
निःसार्य वायुं तत् पुष्पमारोप्य मण्डलान्तरे ।।७१।।
आवाहयेन्महादेवीं सर्वकामेश्वरेश्वरीम् ।

हे कामेश्वरी ! आप यहाँ आइये। हे ईश्वरी ! आप मेरे सम्मुख उपस्थित होइये, इस रूप में चिन्तन करता हुआ, कामेश्वरी का हृदय में ही मानसिकपूजन, गन्ध-पुष्पादि से करके, दाहिनी नाक से वायु निकाल, उसे पुष्प पर आरोपित कर, मण्डल में सभी कामेश्वरों की ईश्वरी (स्वामिनी) महादेवी का आवाहन करे।।७०-७१।।

।। आवाहनमन्त्र ।।

कामेश्वरि इहागच्छ सम्मुखीभव सन्निधौ ।।७२।।
कामेश्वरिं विद्महे त्वां कामाख्यायै च धीमहि ।
तन्नः कुब्जि महामाये ततः पश्चात् प्रचोदयात् ।।७३।।
एह्येहि भगवत्यम्ब लोकानुग्रहकारिणि ।
कामेशे कामरूपे त्वं कामकान्ते प्रसीद मे ।।७४।।

मन्त्र—कामेश्वरि—प्रसीदमे।

हे कामेश्वरि आप यहाँ आइये, सम्मुख एवं सान्निध्यप्रद! होइये, हे कामेश्वरी! मैं आपको जानता हूँ। मैं कामाख्या का ध्यान करता हूँ, हे कुब्जि! हे महामाये! आप मुझे प्रेरित करें। हे भगवति ! हे माता ! हे सभीलोकों पर अनुग्रहकरनेवाली, हे कामेश्वरी ! हे कामरूपधारण करने वाली ! हे काम की प्रिये! आप प्रसन्न हों आप यहाँ शीघ्र पधारें।।७२-७४।।

ततस्तु प्रथमं स्नानं जलं दत्त्वा तु पूजकः ।
मूलमन्त्रेण वितरेदुपचारांस्तु षोडश ।
पूजयेन्मध्यभागे तु षडङ्गानि ततोऽर्च्चयेत् ।।७५।।

तब पूजा करने वाला साधक, पहले स्नानहेतु मूलमन्त्र पढ़कर जल दे तब उसी से पूजा के सोलह उपचार समर्पित करे, तत्पश्चात् मण्डल के मध्यभाग में देवी के षडङ्गों का पूजन करे।।७५।।

अङ्गन्यासे तु ये मन्त्राः क्रमे पूर्वं तु भाषिताः ।
तैरेव मन्त्रैरङ्गानि देव्या अपि च पूजयेत् ।।७६।।

पहले अङ्गन्यास के क्रम में जो मन्त्र बताये गये हैं। उन्हीं मन्त्रों से देवी के भी अङ्गों का पूजन करे ।।७६।।

पूर्वाद्यष्टदलेष्वेता योगिनीः परिपूजयेत् ।।७७।।
यथाक्रमेण कामानां सिद्ध्यर्थं कामदायिकाः ।
गुप्तकामां तु श्रीकामां तथैव विन्ध्यवासिनीम् ।।७८।।
कोटेश्वरीं वनस्थां तु योगिनीं पादचण्डिकाम् ।
दीर्घेश्वरीं तु प्रकटां भुवनेशीं क्रमाद् यजेत् ।।७९।।

पूर्व आदि आठदलों में क्रमशः गुप्तकामा, श्रीकामा, विन्ध्यवासिनी, कोटेश्वरी, वनस्था, पादचण्डिका, योगिनीदीर्घेश्वरी एवं प्रकटाभुवनेश्वरी देवी नाम की कामप्रदायिनी योगिनियों का, साधक अपनी कामना की सिद्धि के लिए, भली-भाँति पूजन करे।।७७-७९।।

वैष्णवीतन्त्रमन्त्रस्य यान्यष्टावक्षराणि तु ।
तानि बिन्द्विन्दुयुक्तानि मन्त्रन्यासांश्च चक्षते ।।८०।।

वैष्णवी-तन्त्र-मन्त्र के जो आठअक्षर कहे गये हैं वे ही अर्धचन्द्र तथा बिन्दु से युक्त हो, इन योगिनियों के मन्त्र कहे गये हैं ।।८०।।

मन्त्रेभिः षण्णां कोणानां षडिमाः परिपूजयेत् ।
ऐशान्यादिक्रमेणैव कामाख्यां त्रिपुरां तथा ।।८१।।
शारदां च महोत्साहां प्रकटां भुवनेश्वरीम् ।
सिद्धकामेश्वरीं चापि देव्या रूपाणि भैरव ।।८२।।

हे भैरव ! इन मन्त्रों से षट्कोणों में भलीभाँति पूजन करे। ऐशान्य से प्रारम्भ कर कामाख्या, त्रिपुरा, शारदा, महोत्साहा, प्रकटाभुवनेश्वरी, सिद्धकामेश्वरी इन षट्योगिनियों का पूजन करे।।८१-८२।।

अष्टपुष्पिकया देवीं पुनः सम्पूज्य चाष्टधा ।
जप्त्वा स्तुत्वा बलिं दत्त्वा नत्वा मुद्रां प्रदर्श्य च ।।८३।।
देव्यास्तु सिद्धचण्ड्या वै निर्माल्यं प्रतिपाद्य च ।
विसृज्य मण्डलाद् देवीं स्थापयेद् योनिमण्डले ।।८४।।

अष्टपुष्पिका से आठरूपों में देवी का पुनः पूजन कर, जप, स्तुति, बलि देकर, नमस्कार और मुद्राप्रदर्शितकर, देवी को निर्माल्य प्रदानकर, मण्डल से विसर्जित कर, देवी को योनिमण्डल में स्थापित करे ।।८३-८४।।

एतत् कामेश्वरीतन्त्रं कथितं युवयोः सुतौ ।
शारदायाःमहातन्त्रं समन्त्रं शृणु भैरव ।।८५।।

।। इति श्रीकालिकापुराणे कामाख्यापूजनविधिर्नाम् चतुःषष्टितमोऽध्यायः ।।६४।।

हे भैरव ! हे दोनों पुत्रों ! यह कामेश्वरीतन्त्र तुम दोनों से कहा गया । अब मन्त्र सहित, देवी शारदा के तन्त्र (पूजा विधान) को सुनो ।।८५।।

।। श्री कालिकापुराण में कामाख्यापूजनविधिनामक चौसठवाँ अध्याय सम्पूर्ण हुआ ।।६४।।



पञ्चषष्टितमोऽध्यायः

शारदापूजनम्

।। श्रीभगवानुवाच ।।

शरत्काले पुरा यस्मान्नवम्यां बोधिता सुरैः ।
शारदा सा समाख्याता पीठे लोके च मानव ।।१।।

प्राचीनकाल में देवी शरतृऋतु में नवमी के दिन देवी-देवताओं द्वारा उद्बुद्ध की गईं, इसी लिए मनुष्यलोक में एवं सिद्धक्षेत्रों में वे शारदा नाम से प्रसिद्ध हुईं॥१॥

तस्यां तु नेत्रबीजाख्यं मन्त्रं प्राक् प्रतिपादितम् ।
दुर्गातन्त्रं च तन्मन्त्रमङ्गमन्त्रं पुरोदितम् ।
ताभ्यामेव तु मन्त्राभ्यां पूजयेत् तां जगन्मयीम् ।।२।।

उनका नेत्रबीज नामक मन्त्र पहले ही प्रतिपादित किया गया है । उनका दूसरा मन्त्र, दुर्गातन्त्र के मन्त्रों में अङ्गमन्त्रों के रूप में इससे पहले कहा जा चुका है। उन दोनों मन्त्रों से ही उस जगन्मयी का पूजन करना चाहिये॥२॥

तृतीयं पीठमन्त्रं तु शारदायाअनुत्तमम् ।
श्रृणुतं चैकमनसा चतुर्वर्गप्रदायकम् ।।३।।

अब शारदा के धर्म-अर्थ-काम-मोक्ष चारोंपुरुषार्थों को प्रदान करने वाले, तीसरे पीठमन्त्र को एकाग्रमन से सुनो॥३॥

चतुर्थस्वरसंयुक्तमुपान्तो वह्निना युतः ।
कामराजं तथा नान्तमुपान्तस्वरसंयुतम् ।।४।।
वह्निना चापि सन्दीप्तः सर्वबिन्द्विन्दुसंयुतः ।
हादिः समाप्तिसहित एतद्बीजं चतुर्थकम् ।।५।।
चतुर्भिरेभिः कथितो मन्त्रोक्तैश्च षडक्षरैः ।।६।।
अयं तृतीयो मन्त्रस्तु शारदायाः प्रकीर्तितः ।
अनेन पूजयेत् पीठे सर्वसिद्धिमवाप्नुयात् ।।७।।

चतुर्थस्वर (दीर्घ ईकार) युक्त उपान्तव्यञ्जन (ह) अग्नि (र्) से मिलकर ह्रीं कामराज (क्लीं), उपान्तस्वर से युक्त नान्त न के बाद आने वाला व्यञ्जन प,

वह्नि(र)द्वारा सन्दीप्त (व्यक्त) तथा सभी चन्द्रबिन्दु समन्वित होकर समाप्ति (विसर्ग) सहित पूर्ववर्ती वर्ण सः से बने चौथे बीज सः से मिलकर ह्रीं क्लीं प्रौँ सः यह चार अक्षरों वाला शारदा का तीसरा मन्त्र कहा गया है। इसमें यदि पीठ-पूजन किया जाय तब पूजा करने वाला साधक, सभी सिद्धियों को प्राप्त करता है।।४-७।।

रूपमस्याः पुरा प्रोक्तं सिंहस्थंदशबाहुभिः ।
तत्र पूजाक्रमं सम्यक् श्रृणुतं पुत्रकौ मम ।।८।।

हे मेरे दोनों पुत्रों ! दशभुजाओं से युक्त हो, सिंह पर सवार, इस देवी के रूप का पहले ही वर्णन किया गया है। अब उनकी पूजा-पद्धति को भलीभाँति मुझसे सुनो ।।८।।

चतुर्द्वारमण्डलं तु कुर्यात् तत्र विभूतये ।
महामायामण्डलं तु शारदायास्तु मण्डलम् ।।९।।

वहाँ विभूतिप्राप्तिहेतु चारद्वारों वाला महामाया का मण्डल बनाना चाहिए। वही शारदा का भी मण्डल होता है।।९।।

वैष्णवीतन्त्रकल्पोक्तैर्मन्त्रस्थानादिमार्जनम् ।
कृत्वा तु नेत्रबीजेन मण्डलं प्रस्तरे लिखेत् ।।१०।।

वैष्णवीतन्त्रकल्प में वर्णितमन्त्रों से स्थानादि का मार्जन करके प्रस्तरपर नेत्रबीज से मण्डल बनाये।।१०।।

योनावष्टदलं कृत्वा त्रिकोणं मध्यतो न्यसेत् ।
अयं विशेषः कथितो वैष्णवीमण्डलात्पुनः ।।११।।

योनिपीठ पर अष्टदल बनाकर मध्य में त्रिकोण बनाये। वैष्णवीमण्डल से यही विशेषबात इस सम्बन्ध में कही गई है ।।११।।

मण्डलोल्लेखनं चैव तथा भूतापसारणम् ।
पात्रस्य प्रतिपत्तिस्तु अमृतीकरणं तथा ।।१२।।
गन्धपुष्पाम्भसांक्षेप आत्मासनप्रपूजनम् ।
प्राणायामश्च त्रिविधो भूतिशुद्धिप्रवेशनम् ।।१३।।
दहनप्लवने चैव पाणिकच्छपिका तथा ।
योगपीठस्य च ध्यानं वैष्णवीतन्त्रभाषितम् ।।१४।।

इस सम्बन्ध में मण्डल रचना, भूतों का अपसारण, पात्रों की प्रतिपत्ति, (स्थापना), अमृतीकरण, गन्धपुष्पादिका जल में डालना, अपने आसन का पूजन तीन प्रकार के प्राणायाम, भूतशुद्धि, पूजागृह में प्रवेश, दहन, प्लवन पाणिकच्छपिकामुद्रा का प्रदर्शन, योगपीठ का ध्यान, यह सब वैष्णवीतन्त्र में ही बताया गया है।।१२-१४।।

तथैवोत्तरतन्त्रोक्तं कुर्याद् देव्याः प्रपूजनम् ।
अमृतीकरणं कुर्यात् सलिले धेनुमुद्रया ।।१५।।

तब उत्तरतन्त्र में वर्णितरीति से देवी का विशिष्टपूजन करे और धेनुमुद्रा से जल में अमृतीकरण करे।।१५।।

रूपं त्वेवं दशभुजं पूर्वोक्तं तु विचिन्तयेत् ।
अङ्गन्यासकरन्यासौ दुर्गातन्त्रेण भैरव ।।१६।।

हे भैरव ! पहले बताये हुए देवी के दशभुजारूप का ही ध्यान करे एवं दुर्गातन्त्र के अनुसार अङ्गन्यास और करन्यास सम्पन्न करे ।।१६।।

नवाक्षरेण वै कुर्यादङ्गुष्ठादि क्रमेण तु ।
हृदयादिक्रमात् पश्चाद् वक्त्रादावपि पूर्ववत् ।।१७।।

पहले की भाँति ही नवाक्षरमन्त्र से क्रमशः अङ्गुष्ठादिक्रम से करन्यास तत्पश्चात् हृदयादिक्रम से अङ्गन्यास एवं वक्त्रादि के क्रम से भी अङ्गन्यास करे ।।१७।।

एतदेवार्घपात्रे चाष्टधा मन्त्रं जपेत् सुधीः ।
तत् तोयैः सेचयेच्छीर्षं पुष्पगन्धादिकं तथा ।।१८।।

इसी भाँति सुधीसाधक, अर्घपात्र पर आठ प्रकार से मन्त्र-जप कर उस अभिमन्त्रितजल से अपने सिर और पुष्प-गन्ध आदि पूजनसामग्री का सिंचन करे ।।१८।।

एवं पूजाक्रमं तत्र कुर्याद् देव्यास्तु मण्डले ।
आदित्यं चण्डिकारूपं ध्यात्वा पूर्वं शिलातले ।।१९।।
तस्मै निवेदयेदर्घ्यं सिद्धार्थाक्षतपुष्पकैः ।
आधारशक्तिप्रभृतीन् क्लीं मन्त्रेण च साधकः ।।२०।।

साधक इस प्रकार के पूजनक्रम में देवी का मण्डल बनाकर पूर्व में स्थित, शिलातल पर, सूर्य का चण्डिकारूप में ध्यान करते हुए, उन्हें सरसो पुष्प अक्षत से अर्घ्य प्रदान करे। वह मण्डल पर आधारशक्ति आदि का पूजन भी क्लीं मन्त्र से करे ।।१९-२०।।

पूजयेत् प्रथमं मध्ये धर्मादीनपि पूर्ववत् ।
सत्त्वादीन् गुरुपादान्तान् पूर्वतन्त्रोदितान् बुधः ।।२१।।

सर्वप्रथममण्डल के मध्य में विद्वान्-साधक पहले के तन्त्रों में बताये विधान के अनुसार, धर्म आदि, सत्त्व आदि और गुरुपादान्त (गुरुमण्डल) आदिका पूजन करे।।२१।।

पूजयेन्मध्यपद्मे तु सुमेरुमपि मध्यतः ।
पूर्वभागे मण्डलस्य देव्याः शक्तीः प्रपूजयेत् ।।२२।।

मण्डल के मध्यवर्तीकमल के मध्य में पहले सुमेरु का पूजन करे और तब मण्डल के पूर्वभाग में देवी की शक्तियों का भली-भाँति पूजन करे ॥२२॥

नाथकामेश्वरादींस्तु लौहित्यान्तान् विशेषतः ।
सर्वान् वै पीठदेवांस्तु मण्डलस्योत्तरे यजेत् ॥२३॥

कामेश्वरनाथ से प्रारम्भ कर लौहित्यपर्यन्त सभी पीठदेवों का मण्डल के उत्तरीभाग में यजन (पूजन) करे ॥२३॥

मणिकर्णं चित्ररथं भस्मकूटं तथैव च ।
श्वेतं नीलं च चित्रं च वाराहं गन्धमादनम् ।
मणिकूटं नन्दनं च पश्चिमे पूजयेदिमान् ॥२४॥

मणिकर्ण, चित्ररथ, भस्मकूट, श्वेत, नील, चित्र, वाराह, गन्धमादन, मणिकूट, नन्दन का पश्चिमीभाग में पूजन करे ॥२४॥

जल्पीशमथ केदारं देवीं दिक्करवासिनीम् ॥२५॥
धात्रीं स्वधां तथा स्वाहां मानस्तोकापराजिते ।
दक्षिणे पूजयेद्देताश्चतुःषष्टिं च योगिनीः ॥२६॥
ग्रहांश्च दशदिक्पालान् पूर्वाद्युक्तक्रमेण तु ।
पूर्ववत् पूजयेद् धीमान् भैरवं भैरवीमपि ॥२७॥

जल्पीश, केदार, देवीदिक्करवासिनी, धात्री, स्वधा, स्वाहा, मानस्तोका, अपराजिता का दक्षिणभाग में पूजन करे। वह चौसठ योगिनियों, ग्रहों और दशोदिक्पालों का भी पूर्व आदि वर्णितक्रम से, पहले ही की भाँति पूजन करे तथा भैरव और भैरवी का भी पूजन करे॥२५-२७॥

ततः कच्छपिकां बद्ध्वा पुनरेव तु पूजकः ।
ध्यायेच्च पूर्ववद् देवीं हृदिस्थां मनसापि च ॥२८॥

तब कच्छपिका (कूर्म मुद्रा) को बाँधकर पूजक, पुनः पहले ही की भाँति अपने हृदय में स्थित देवी का, मन में ध्यान करे ॥२८॥

मानसैर्गन्धपुष्पाद्यैः पूजयित्वा हृदिस्थिताम् ।
नासापुटेन निःसार्य दक्षिणेनाथ मण्डले ।
पुष्पमारोप्य कामाख्यां शारदामाह्वयेन्मुहुः ॥२९॥

मानसिक गन्धपुष्पादि से हृदय में स्थित देवी का पूजन कर, दाहिने नासा-पुट से देवी को निकाल कर, मण्डल में रखे पुष्पपर कामाख्या, शारदा का आह्वान करे ॥२९॥

॥ आवाहनमन्त्र ॥

एह्येहि परमेशानि सान्निध्यमिह कल्पय ।
पूजाभागं गृहाणेमं मखं रक्ष नमोऽस्तुते ॥३०॥

दुर्गे दुर्गे इहागच्छ सर्वैः परिकरैः सह ।
पूजाभागं गृहाणेमं मखंरक्ष नमोऽस्तुते ।।३१।।

मन्त्रार्थ—हे परमेशानि! आप पधारिये-पधारिये। आप यहाँ सान्निध्य कीजिये। आप पूजा के भाग को ग्रहण कीजिये, इस यज्ञ की रक्षा कीजिए, आपको नमस्कार है।

दुर्गे ! हे दुर्गे ! आप अपने सभी अनुचरोंसहित, यहाँ आइये और अपना पूजा-भाग ग्रहण कीजिए, इस यज्ञ की रक्षा कीजिए, आपको नमस्कार है।।३०-३१।।

नारायण्यै विद्महे त्वां चण्डिकायै तु धीमहि ।
शेषभागे तु गायत्र्यास्तन्नश्चण्डि प्रचोदयात् ।।३२।।

नाराण्यै विद्महे त्वां चण्डिकायैतुधीमहि तन्नश्चण्डि प्रचोदयात

मन्त्रार्थ—मैं नारायणी को जानता हूँ, तुम चण्डिका का ध्यान करता हूँ तथा अन्त में वह चण्डि हमें प्रेरित करे।।३२।।

दत्त्वा स्नानमनेनैव दुर्गातन्त्रेण वै पुनः ।।३३।।
नेत्रबीजेन च तथा पीठमन्त्रेण चान्तरम् ।
चतुरक्षरेण शेषेण त्रिभिर्मन्त्रैः प्रपूजयेत् ।।३४।।

इस गायत्री से या दुर्गातन्त्र से स्नान अर्पित कर, नेत्रबीज से या पीठमन्त्र से, शेष चतुरक्षर से या शेष के तीन मन्त्रों से पूजन करे।।३३-३४।।

चतुरक्षरमन्त्रेण पाद्यादीनथ षोडश ।
वितरेदुपचारांस्तु पूर्वोक्तांस्तांस्तु भैरव ।।३५।।

हे भैरव ! देवी को पहले बताये हुए पाद्यादि षोडशोपचार चतुरक्षरमन्त्र से अर्पित करे।।३५।।

दुर्गातन्त्रेण मन्त्रेण देव्यङ्गानि प्रपूजयेत् ।
दुर्गेत्यनेन हृदयं पुनर्दुर्गेत्यनेन च ।।३६।।
शिखाकवचनेत्रांश्च पादपादांश्च पञ्चभिः ।
वादिपञ्चाक्षरैः शेषैः पूजयेत् क्रमतः सुधीः ।।३७।।

दुर्गातन्त्र के मन्त्रों से देवी के अङ्गों का पूजन करे । सुधीसाधक, दुर्गा इस मन्त्र से हृदय, शिखा, कवच, नेत्र, पैर आदि पाँच अङ्गों का एवं आदि पाँच अक्षरों सहित क्रमशः पूजन करे।।३६-३७।।

पूर्वाद्यष्टदलेष्वेताः पूजयेन्नाधिकक्रमात् ।
जयन्तीं पूर्वपत्रे तु आग्नेय्यादौ तु मङ्गलाम् ।।३८।।
कालीं च भद्रकालीं च तथा चैव कपालिनीम् ।
दुर्गां शिवां क्षमां चैव क्रमादेव तु नामतः ।।३९।।

अष्टदलकमल के पूर्व आदि आठ दिशाओं में स्थित दलों में क्रमशः जयन्ती

का पूर्वदिशा में स्थित दल में, मङ्गला का आग्नेयकोण के दल में इसी क्रम में काली, भद्रकाली, कपालिनी, दुर्गा, शिवा, क्षमा आदि का नामोच्चार करते हुए सम्बद्ध दिशाओं में पूजन करे।।३८-३९।।

केशरस्य तु मध्ये तु अष्टावेतास्तु नायिकाः ।
नेत्रबीजस्य मध्येन बीजेन षट्सु नायिकाः ।।४०।।
अमीषां च तथैवासौ षड्भिरेतान्तराहितैः ।
ह्वाँ ह्वाँ श्रीमित्युपान्तां तु प्रान्तामाद्यस्वरेण वै ।।४१।।
उग्रचण्डां प्रचण्डां च चण्डोग्रां चण्डनायिकाम् ।
चण्डां चण्डवतीं चैव चण्डरूपां च चण्डिकाम् ।।४२।।

केशर के मध्य में उग्रचण्डा, प्रचण्डा, चण्डोग्रा, चण्डनायिका, चण्डा, चण्डवती, चण्डरूपा तथा चण्डिका इन आठ नायिकाओं का पूजन करना चाहिए। इनका नेत्रबीज के मध्यबीज से पूजन करना चाहिए। नेत्रबीज के मध्यबीज, ह्वाँ, ह्वाँ श्रीं, ऐं, आद्य स्वरसहित उपान्त ह और प्रान्त क्ष के उच्चारण के सहित पूजन करे।।४०-४२।।

त्रिकोणकेशरान्तं तु कामं प्रीतिं रतिं तथा ।
पञ्चबाणान् पुष्पधनुः पूजयेत् काममन्त्रकैः ।।४३।।

त्रिकोणकेशर (अष्टदल के मध्यभाग) के अन्तर्गत काम, प्रीति, रति पञ्चबाणों एवं पुष्पधनुष का काम के मन्त्रों से पूजन करे।।४३।।

अष्टपुष्पिकया पश्चात् सम्पूज्य परमेश्वरीम् ।
देव्यास्तु करगृह्याणि शस्त्राण्यङ्गानि वाहनम् ।
पञ्चाननं केशरं च देव्यग्रे तु प्रपूजयेत् ।।४४।।

तत्पश्चात् अष्टपुष्पिका से परमेश्वरी का पूजन करके देवी के हाथों में ग्रहण किये शस्त्रों, देवी के अङ्गों, सिंह-वाहन और केशर का देवी के अगलेभाग में पूजन करे ।।४४।।

पीठदेवीं शारदां तु कामाख्यामधिदेवताम् ।।४५।।
त्रिपुराख्यां महादेवीं पीठमत्यधिदेवताम् ।
कामेश्वरीं महोत्साहां मध्य एव प्रपूजयेत् ।।४६।।

पीठ की अधिष्ठात्रीदेवी शारदा और अधिदेवता कामाख्या, पीठ की अत्यधि-देवता, महादेवी त्रिपुरा एवं कामेश्वरी तथा महोत्साहा देवियों का भी पीठ के मध्य में ही पूजन करे।।४५-४६।।

चतुरक्षरमन्त्रेण दद्यात् पुष्पाञ्जलित्रयम् ।
जप्त्वा स्तुत्वा बलिं दत्त्वा नमस्कृत्यावगुण्ठ्य च ।।४७।।

योनिमुद्रां प्रदर्श्याथ निर्माल्यं दिशि शूलिनः ।
चण्डेश्वर्यै नम इति निक्षिप्य च विसर्जयेत् ।।४८।।

चतुरक्षरमन्त्र से तीन पुष्पाञ्जलि देनी चाहिये तब जप, स्तुति, बलिप्रदान, नमस्कार, अवगुण्ठन, योनिमुद्राप्रदर्शन, शूली की दिशा (ईशानकोण) में, चण्डेश्वरी को **चण्डेश्वर्यै नमः** इस मन्त्र से, निर्माल्यप्रदान कर विसर्जित करे ।।४७-४८।।

ततस्तु भास्करायार्घ्यं दद्याच्छिद्रावधारणम् ।
देवीं च हृदये स्थाप्य स्थापयेद् योनिमण्डले ।।४९।।

तब पूजा के दोषों को दूर करने के लिए सूर्य को अर्घ्य प्रदान करे और देवी को पहले हृदय में स्थापित कर पुनः योनिमण्डल में स्थापित करे।।४९।।

एवं देवीं तु कामाख्यां योनिमुद्रां जगन्मयीम् ।
शारदाख्यां महादेवीं योगेन विधिना यजेत् ।
सर्वकामान् सुसम्प्राप्यशिवलोकमवाप्नुयात् ।।५०।।

इस प्रकार (ऊपरवर्णितरीति से) जगत्स्वरूपा, योनिमुद्रारूप, कामाख्या एवं जो स्वयं महादेवी शारदा हैं, उनका मनोयोगपूर्वक, विधि के सहित, यजन करे। ऐसा करने से साधक सभी कामनाओं को भली-भाँति प्राप्त कर, शिवलोक को पाता है।।५०।।

यदि पीठं विनान्यत्र पूजयेत् कामरूपिणीम् ।
नीलकूटे तदाप्येतत् सर्वमेव समाचरेत् ।।५१।।

यदि पीठ के बिना, अन्यस्थान पर कामरूपिणीदेवी कामाख्या का नीलकूट पर भी पूजन करे तो भी यही सब कुछ करना चाहिये ।।५१।।

यदान्यत्र यजेद् देवीं जले वा स्थण्डिलेऽपि वा ।
शिलादिषु च वह्नौ वा देवपीठे यथेच्छया ।।५२।।
यजेद् वा न यजेद् वापि पीठेऽवश्यं प्रपूजयेत् ।।५३।।

जब अन्यत्र, जल, वेदी, शिला, अग्नि, देवपीठ आदि में पूजन करना हो तो इच्छानुसार करे या न करे किन्तु पीठ में अवश्य करना चाहिये ।।५२-५३।।

एवं यः पञ्चभिर्मन्त्रैः पञ्चमूर्तिधरां शिवाम् ।
एकैकेनाथ वा तस्य स्वयं स्याद् वरदायिका ।।५४।।

इस प्रकार पाँच मन्त्रों से पाँचरूपधारण करने वाली देवी का जो साधक एक साथ या एक-एक मन्त्रों से एक-एक रुप में पूजन करता है, वह स्वयं उसको वरदान देने वाली होती हैं।।५४।।

विघ्ना न तस्य जायन्ते नाधयो व्याधयस्तथा ।
न तस्य सदृशोऽन्यः स्याद् धनधान्यसमृद्धिभिः ।।५५।।

उसे कोई विघ्न नहीं होते, न किसी प्रकार की शारीरिक या मानसिक व्याधियाँ ही होती हैं। उसके समान अन्य कोई धन-धान्य से समृद्ध नहीं होता ॥५५॥

गवां कोटिप्रदानात् तु यत्फलं जायते नृणाम् ।
तत्फलं समवाप्नोति कामाख्यां पूजयन्नरः ॥५६॥

करोड़ोंगोदान करने से मनुष्यों को जो फल प्राप्त होता है, साधक वही फल, कामाख्या के पूजन से प्राप्त कर लेता है ॥५६॥

दशपूर्वान् दशापरान् वंशानुद्धृत्य पापतः ।
सकृत् सम्पूजनेनैव ममलोकमवाप्नुयात् ॥५७॥

भली-भाँति एक बार ही पूजन करने मात्र से साधक, अपने से दश पहले तथा दश बाद की पीढ़ियों का पाप से उद्धार कर, मेरे लोक को प्राप्त करता है॥५७॥

द्विः सम्पूज्य महादेवीं कामाख्यां योनिमण्डले ।
शतं वंशान् समुद्धृत्य देवीलोकमवाप्नुयात् ॥५८॥

दो बार महादेवी कामाख्या का योनिमण्डल में पूजन कर साधक अपने सौ वंशों का उद्धार कर, देवीलोक को प्राप्त करता है॥५८॥

यस्त्रिवारं पूजयेत् तु विधिनानेन मानवः ।
नीलपर्वतमारुह्य कामाख्यां योनिमण्डले ॥५९॥
स सहस्रं तु वंशानामुद्धृत्य पापकोषतः ।
इहलोके सुखैश्वर्यचिरायुष्यमवाप्नुयात् ।
देहान्ते मद्गृहं प्राप्य गणानामधिपो भवेत् ॥६०॥

जो मनुष्य नीलपर्वत पहुँच कर योनिमण्डल में कामाख्या देवी का इस विधि से तीन बार पूजन करता है, वह पाप के कोष (समूह) से हजार वंशों (पीढ़ियों) का उद्धार कर, इस लोक में सुख, ऐश्वर्य, चिरायुष्य को प्राप्त करता है तथा देहान्त के पश्चात् मेरे धाम को प्राप्त कर, गणों का स्वामी होता है॥५९-६०॥

यस्यां कस्यामथाष्टम्यां नवम्यां वापि साधकः ।
पञ्चरूपां तु कामाख्यां पञ्चमन्त्रैः सतन्त्रकैः ॥६१॥
पूजयेद् वरदां देवीं मण्डलैश्च पृथक् पृथक् ।
ध्यात्वा तु पञ्चरूपाणि जप्त्वा मन्त्रांश्च पञ्च वै ॥६२॥

जिस किसी अष्टमी या नवमी को भी साधक पाँचरूपोंवाली, वरदा कामाख्या का, पाँचमन्त्रों और तन्त्रों से अलग-अलग मण्डलों द्वारा, पाँचरूपों के ध्यान और पाँचमन्त्रों के जपसहित पूजन करे ॥६१-६२॥

कल्पकोटिसहस्राणि मम लोके च मानवः ।
स्थित्वा देवीप्रसादेन परे निर्वाणमाप्नुयात् ।।६३।।

तो वह मनुष्य देवी की कृपा से हजारों करोड़, कल्पों तक मेरे लोक में स्थित होकर अन्त में निर्वाण को प्राप्त करता है।।६३।।

इह लोके वाञ्छितार्थं सुखं प्राप्य यशस्तथा ।
रिपूञ्जित्वा स धर्मात्मा मातङ्गानिव केसरी ।।६४।।
चिरायुः पुत्रपौत्रैश्च विभवैश्च समन्वितः ।
क्रीडयित्वा ह्यमरवद् युवतीभिश्च सादरात् ।।६५।।

वह इस लोक में इच्छित सुख, यश को प्राप्त कर, जिस प्रकार सिंह हाथियों को नष्ट कर देता है, उसी प्रकार अपने शत्रुओं को जीतकर उनका नाश कर, दीर्घायु और पुत्र-पौत्र, वैभव से युक्त होता है। वह देवताओं की भाँति युवतियों के साथ आदरपूर्वक, क्रीड़ा (विहार) करता है।।६४-६५।।

यक्षरक्षःपिशाचानां नेता भवति नित्यशः ।
सर्वान् कामानवाप्यैव द्विजराजसमो भवेत् ।।६६।।

इति श्रीकालिकापुराणे शारदापूजननाम पञ्चषष्टितमोऽध्यायः ।।६५।।

वह नित्य यक्ष-राक्षस पिशाचों का नेतृत्व करता तथा अपनी समस्त कामनाओं को प्राप्त कर, चन्द्रमा के समान यशस्वी होता है ।।६६।।

श्रीकालिकापुराण में शारदापूजननामक पैंसठवाँ अध्याय सम्पूर्ण हुआ ।।६५।।



षट्षष्टितमोऽध्यायः

मुद्राकथनम्

।। और्व उवाच ।।

एतत्तन्त्रं समस्तं तु श्रुत्वा वेतालभैरवौ ।
पप्रच्छतुस्त्र्यम्बकं च हर्षोत्फुल्लविलोचनौ ।।१।।

और्व बोले–इस समस्ततन्त्र को सुनकर प्रसन्नता से खिले हुए नेत्रोंवाले, वेताल और भैरव ने त्रयम्बक, शिव से विशेषरूप से पूछा।।१।।

।। वेतालभैरवावूचतुः ।।

कामाख्यायाः श्रुतं तन्त्रं साङ्गं युष्मत्प्रसादतः ।
नमस्कारं तथा मुद्रां बलिदानं तथैव च ।।२।।
तथैव मातृकान्यासं पूजायां चान्यतः क्रमम् ।
एतत् सर्वं समाचक्ष्व विस्तरेण जगत्प्रभो ।
शृण्वतो नहि नौ तृप्तिर्जायते मोदभूमिषु ।।३।।

वेतालभैरव बोले–हे जगत् के स्वामी ! आपकी कृपा से अङ्गादि के सहित कामाख्या के तन्त्र (पूजा-विधान) को हम दोनों ने सुना है। अब देवी के नमस्कार, मुद्रा, बलिदान, मातृकान्यास, और भी जो पूजाविधान हैं, उन सबको आप हमसे विस्तारपूर्वक कहिये क्योंकि आपके कथन को सुनकर हम दोनों के मोदभूमि (चित्त) को तृप्ति नहीं हो रही है।।२-३।।

।। श्रीभगवानुवाच ।।

वक्ष्यामि यदहं पृष्टो भवद्भ्यां पुत्रकोत्तमौ ।
शृणुतं नरशार्दूलावेकाग्रमनसाधुना ।।४।।

श्रीभगवान बोले–हे मनुष्यों में सिंह के समान श्रेष्ठ जनों ! हे मेरे उत्तम पुत्रों ! तुम दोनों ने जो मुझसे पूछा है, वह मैं अब कहूँगा, उसे ध्यानपूर्वक सुनो ।।४।।

।। नमस्कारवर्णन ।।

त्रिकोणमथ षट्कोणमर्धचन्द्रं प्रदक्षिणम् ।
दण्डमष्टाङ्गमुग्रं च सप्तधा नतिलक्षणम् ।।५।।

त्रिकोण, षट्कोण, अर्धचन्द्राकार, प्रदक्षिणा, वृत्ताकार, दण्ड (दण्ड के समान लम्बा), अष्टांग ये सात प्रकार के, प्रणाम के लक्षण बताये गये हैं।।५।।

।। त्रिकोणादि नमस्कार ।।

ऐशानी वाथ कौवेरी दिक् कामाख्याप्रपूजने ।
प्रशस्ता स्थण्डिलादौ च सर्वमूर्तेश्च सर्वतः ।।६।।
त्रिकोणादिव्यवस्था तु यदि पूर्वमुखो यजेत् ।
पश्चिमाच्चछाम्भवीं गत्वा व्यवस्थां निर्दिशेत् तदा ।।७।।

कामाख्यापूजन में देवी के सभी रूपों के लिए ऐशानी या कौबेरी (उत्तर दिशा) में वेदिका प्रशस्त कही गई है। यदि पूर्वमुख हो पूजन करना हो तो त्रिकोण नमस्कार की व्यवस्था हेतु पश्चिम से शाम्भवीदिशा (ईशान) में जाकर व्यवस्था का निर्देश करे।।६-७।।

यदोत्तरामुखः कुर्यात् साधको देवपूजनम् ।
तदा याम्यात् तु वायव्यां गत्वा कुर्यात् तु संस्थितिम् ।।८।।

जब साधक उत्तराभिमुख हो देवपूजन करे तो दक्षिण से वायव्यकोण में जाकर स्थिति करे।।८।।

दक्षिणाद् वायवीं गत्वा दिशं तस्माच्च शाम्भवीम् ।
ततोऽपि दक्षिणां गत्वा नमस्कारस्त्रिकोणवत् ।
त्रिकोणाख्यो नमस्कारस्त्रिपुराप्रीतिदायकः ।।९।।

दक्षिण से वायव्यकोण में जाकर वायव्यकोण से शाम्भवीदिशा, ईशानकोण में जाने के पश्चात् पुनः दक्षिण-दिशा में जाने पर त्रिकोण की तरह नमस्कार मुद्रा बनती है । यह त्रिकोणनामक नमस्कार, त्रिपुरा को बहुत अधिक प्रसन्नता देने वाला है ।।९।।

।। षट्कोणनमस्कार ।।

दक्षिणाद् वायवीं गत्वावायव्याच्छाम्भवीं ततः ।।१०।।
ततोऽपि दक्षिणां गत्वा तां त्यक्त्वाग्नौ प्रविश्य च ।
अग्नितो राक्षसीं गत्वा तत्पश्चादुत्तरां दिशम् ।।११।।
उत्तराच्च तथाग्नेयीं भ्रमणं द्वित्रिकोणवत् ।
षट्कोणोऽयं नमस्कारः प्रीतिदः शिवदुर्गयोः ।।१२।।

दक्षिण से वायव्यकोण में। वायव्यकोण से ईशानकोण, वहाँ से अग्निकोण में प्रवेश करने के पश्चात् दक्षिण जाकर अग्निकोण से प्रारम्भ कर राक्षसी दिशा (नैर्ऋत्यकोण) में जाकर फिर उत्तरदिशा एवं वहाँ से पुनः घूमकर आग्नेयदिशा में आने पर द्वित्रिकोण की भाँति भ्रमण हो जाता है । इस प्रकार का यह षट्कोण नमस्कार शिव और दुर्गा को प्रीतिप्रदान करने वाला है ।।१०-१२।।

।। अर्द्धचन्द्रनमस्कार ।।

दक्षिणाद् वायवीं गत्वा तस्मादावृत्य दक्षिणम् ।
गत्वा योऽसौ नमस्कारः सोऽर्धचन्द्रः प्रकीर्तितः ।।१३।।

दक्षिण से वायवीदिशा (वायव्यकोण) में जाकर तपश्चात् पुनः आवृत्ति कर दक्षिण में जाने से जो नमस्कार होता है। उसे अर्धचन्द्रनमस्कार कहते हैं ।।१३।।

।। प्रदक्षिणानमस्कार ।।

सकृत् प्रदक्षिणं कृत्वा वर्तुलाकृति साधकः ।
नमस्कारः कथ्यतेऽसौ प्रदक्षिण इति द्विजैः ।।१४।।

एक बार वृत्ताकार प्रदक्षिणा कर, साधक जो नमस्कार पूर्ण करता है, उसे द्विज-जातियों द्वारा प्रदक्षिणा कहा जाता है ।।१४।।

।। दण्डनमस्कार ।।

त्यक्त्वा स्वमासनस्थानं पश्चाद् दुर्गानमस्कृतिः ।
प्रदक्षिणं विना यातु निपत्य भुवि दण्डवत् ।
दण्ड इत्युच्यते देवैः सर्वदेवौघमोददः ।।१५।।

अपना आसनस्थान छोड़ने के पश्चात् पृथ्वी पर दण्ड की भाँति गिरकर बिना प्रदक्षिणा किये जो दुर्गा (देवी) को प्रणाम किया जाता है। उसे देवताओं द्वारा दण्ड कहा जाता है तथा वह सभी देवताओं के समूह को प्रसन्नताप्रदान करने वाला कहा जाता है।।१५।।

।। अष्टाङ्गनमस्कार ।।

पूर्ववद् दण्डवद् भूमौ निपत्य हृदयेन तु ।
चिबुकेन मुखेनाथ नासया हनुकेन च ।।१६।।
ब्रह्मरन्ध्रेण कर्णाभ्यां यद्भूमिस्पर्शनं क्रमात् ।
स चाष्टाङ्ग इति प्रोक्तो नमस्कारो मनीषिभिः ।।१७।।

पहले की भाँति दण्ड के समान पृथ्वी पर गिरकर, हृदय, ठुड्ढी, मुख, दाढ़ी, नाक, ब्रह्मरन्ध्र और दोनों कानों से क्रमशः जो भूमि का स्पर्श किया जाता है, उस नमस्कार को मनीषियों द्वारा अष्टाङ्गनमस्कार कहा गया है ।।१६-१७।।

।। उग्रनमस्कार ।।

प्रदक्षिणत्रयं कृत्वा साधको वर्तुलाकृतिः ।।१८।।
ब्रह्मरन्ध्रेण संस्पर्शः क्षितेर्यस्मान्नमस्कृतौ ।
स उग्र इति देवौघैरुच्यते विष्णुतुष्टिदः ।।१९।।

साधक जब वृत्ताकार तीन प्रदक्षिणायें करके, ब्रह्मरन्ध्र से पृथ्वी का स्पर्श कर नमस्कार करता है तो उसे देवसमूह द्वारा उग्रनमस्कार कहा जाता है और वह, विष्णु को सन्तोष प्रदान करने वाला है ।।१८-१९।।

नदानां सागरो यद्वद् द्विपदां ब्राह्मणो यथा ।
नदीनां जाह्नवी यादृग् देवानामपि चक्रधृक् ।
नमस्कारेषु सर्वेषु तथैवोग्रः प्रशस्यते ।।२०।।

जिस प्रकार नदों में सागर, द्विपदों (मनुष्यों) में ब्राह्मण, नदियों में गङ्गा, देवताओं में चक्र को धारण करने वाले भगवान विष्णु श्रेष्ठ हैं, उसी प्रकार सभी भाँति के नमस्कारों में उग्रनमस्कार प्रशंसनीय है ॥२०॥

त्रिकोणाद्यैर्नमस्कारैः कृतैरेव तु भक्तितः ।
चतुर्वर्गं लभेद् भक्तो नचिरादेव साधकः ।।२१।।

त्रिकोणादि नमस्कारों को भक्तिपूर्वक करके साधक भक्त, शीघ्र चतुर्वर्ग (अर्थ, धर्म, काम, मोक्ष) को प्राप्त कर लेता है ॥२१॥

नमस्कारो महायज्ञः प्रीतिदः सर्वतः सदा ।
सर्वेषामेव देवानामन्येषामपि भैरव ।।२२।।

हे भैरव ! नमस्कार एक महान यज्ञ है, जो सब प्रकार से सभी देवताओं को और अन्यों को भी प्रसन्नताप्रदान करने वाला है॥२२॥

योऽसावुग्रो नमस्कारः प्रीतिदः सततो हरेः ।
महामायाप्रीतिकरः स नमस्करणोत्तमः ।।२३।।

इनमें जो उग्र नामक नमस्कार है, वह सदैव भगवानविष्णु को निरन्तर प्रसन्नताप्रदान करने वाला है तथा वह महामाया को भी प्रसन्नता देने वाली नमस्कार की भी उत्तमप्रक्रिया है ॥२३॥

।। मुद्रावर्णनम् ।।

उक्तास्तत्र नमस्काराः शृणुतं परतो युवाम् ।
मुद्राणां परिसङ्ख्यानं स्वरूपं च यथाक्रमम् ।।२४।।
धेनुश्च सम्पुटश्चैव प्राञ्जलिर्बिल्वपद्मकौ ।
नाराचो मुण्डदण्डौ च योनिरर्धं तथैव च ।।२५।।
वन्दनी च महामुद्रा महायोनिस्तथैव च ।
भगश्च पुटकश्चैव निषङ्गोथाऽर्धचन्द्रकः ।।२६।।
अङ्गश्च द्विमुखं चैव शङ्खमुद्रा च मुष्टिकः ।
वज्रं चैव तथा रन्ध्रं षड्योनिर्विमलं तथा ।।२७।।
घटः शिखरिणीतुङ्गः पुण्ड्रोऽथ ह्यर्धपुण्ड्रकः ।
सम्मिलनी च कुण्डश्च चक्रं शूलं तथैव च ।।२८।।
सिंहवक्त्रं गोमुखं च प्रोन्नामोन्नमनं तथा ।
बिम्बं पाशुपतं शुद्धं त्यागोऽथोत्सारिणी तथा ।।२९।।

प्रसारिणी चोग्रमुद्रा कुण्डलीव्यूह एव च ।
त्रिमुखा चासिवल्ली च योगो भेदोऽथ मोहनम् ।।३०।।
बाणो धनुश्च तूणीरं मुद्रा एताश्च सत्तमाः ।
अष्टोत्तरशतं मुद्रा ब्रह्मणा याः प्रकीर्तिताः ।।३१।।
तासां तु पञ्चपञ्चाशदेता ग्राह्यास्तु पूजने ।।३२।।

मैंने नमस्कार के सम्बन्ध में कह दिया, अब तुम दोनों आगे क्रमशः मुद्राओं की संख्या एवं उनके स्वरूप सुनो—

१. धेनु, २.सम्पुट ३.प्राञ्जलि ४. बिल्व ५. पद्मक ६. नाराच ७. मुण्ड ८. दण्ड ९. योनि १०. अर्घ ११. वन्दनी १२. महामुद्रा १३. महायोनि १४. निषङ्ग १५. अर्धचन्द्रक १६.भग १७. पुटक १८.अङ्ग १९. द्विमुख २०. शङ्ख-मुद्रा २१. मुष्टिक २२. वज्र २३. रन्ध्र २४. षड्योनि २५. विमल २६. घट २७. शिखरिणी २८. तुङ्ग २९. पुण्ड्र ३०. अर्धपुण्ड्र ३१. सम्मिलिनी ३२. कुण्ड ३३. चक्र ३४. शूल ३५. सिंहवक्त्र ३६. गोमुख ३७. प्रोन्नाम ३८. उन्नमन ३९. बिम्ब ४०. पाशुपत ४१. शुद्ध ४२. त्याग ४३. उत्सारिणी ४४. प्रसारिणी ४५. उग्रमुद्रा ४६. कुण्डली ४७. व्यूह ४८. त्रिमुखा ४९. असिवल्ली ५०. योग ५१. भेद ५२. मोहन ५३. बाण ५४. धनुष ५५. तूणीर, ब्रह्मा जी द्वारा बताई हुई १०८ मुद्राओं में ये ५५ श्रेष्ठ मुद्रायें, पूजा में ग्रहण करने योग्य हैं ।।२४-३२।।

शेषास्तु यस्त्रिपञ्चाशन्मुद्रास्ताः समयेषु च ।
द्रव्यानयनसङ्केतनटनादिषु ताः स्मृताः ।।३३।।

शेष जो तिरपन मुद्रायें है वे द्रव्य लाने, संकेत, नाट्य आदि के समय से सम्बन्धित बताई गई हैं ।।३३।।

देवानां चिन्तने योगे ध्याने जप्ये विसर्जने ।
आद्यास्तु पञ्चपञ्चाशन्मुद्रा भैरव कीर्तिताः ।।३४।।

हे भैरव ! देवताओं के चिन्तन, योग, ध्यान, जप एवं विसर्जन कर्मों में पहले बताई हुई, पचपन मुद्राएँ ही कही गई हैं ।।३४।।

मुद्रां विना तु यज्जप्यं प्राणायामः सुरार्च्चनम् ।
योगो ध्यानासने चापि निष्फलानि च भैरव ।
प्रत्येकं लक्षणं तेषां शृणुतं तनयौ युवाम् ।।३५।।

हे भैरव ! मुद्रा के बिना जो भी जप, प्राणायाम, देव-पूजन, योग, ध्यान, आसन आदि किया जाता है, वह सब निष्फल हो जाता है । हे दोनों पुत्रों ! अब उनमें से एक-एक के लक्षण सुनो—।।३५।।

।। धेनुमुद्रा ।।

दक्षिणामध्यमाग्रेण सव्यहस्तस्य तर्जनीम् ।
योजयेत् सव्यमध्यां तु तर्जन्या दक्षिणेन वै ।।३६।।
तथा दक्षिणानामिकया वामहस्तकनिष्ठिकाम् ।
अनामिकां तु वामस्य दक्षिणस्य कनिष्ठया ।।३७।।
योजयेद् भक्तिमान् सम्यग् दक्षिणावर्तनेन तु ।
धेनुमुद्रा समाख्याता सर्वदेवस्य तुष्टिदा ।।३८।।

यदि भक्तिमान् साधक दाहिनेहाथ की मध्यमा के अग्रभाग से बायेंहाथ की तर्जनी और बायेंहाथ की मध्यमा से दाहिनेहाथ की तर्जनी एवं दाहिनेहाथ की अनामिका से बायेंहाथ की कनिष्ठिका व बायेंहाथ की अनामिका से दाहिनेहाथ की कनिष्ठिका दक्षिणावर्त से भलीभाँति मिलाये तो यह सभी देवताओं को सन्तोष देने वाली धेनुमुद्रा कही गई है।।३६-३८।।

।। सम्पुटमुद्रा ।।

संयोज्य द्वौ तलौ सर्वाण्यंगुल्यग्राणि हस्तयोः ।
संयोज्य पार्श्वतोऽङ्गुष्ठौ सम्पुटः प्रोच्यते सुरैः ।।३९।।
सर्वेषामथ देवानां सम्पुटः प्रीतिदायकः ।
ध्यानचिन्तनयोगादौ सम्पुटः शस्यते तदा ।।४०।।

दोनों हथेलियों और उनकी सभी अँगुलियों तथा दोनों अंगूठों को अगल-बगल मिलाने से बनने वाली मुद्रा, देवताओं द्वारा सम्पुटमुद्रा कही जाती है। यह सम्पुटमुद्रा, सभी देवताओं को प्रसन्नता देने वाली तथा ध्यान, चिन्तन, योग आदि के समय प्रशंसनीय है ।।३९-४०।।

।। प्राञ्जलिमुद्रा ।।

निकुब्जयुगलं पाण्योस्तं संयोज्यार्ध एव च ।
मध्यशून्यः पुटाकारः प्राञ्जलिः परिकीर्तितः ।।४१।।

सीधे दोनों हाथों को आधा मिलाकर, मध्य में खाली, दोनो के आकार की मुद्रा, **प्राञ्जलिमुद्रा** कही गई है ।।४१।।

।। बिल्वमुद्रा ।।

अङ्गुष्ठमन्तरं कृत्वा पाण्योर्मुष्टिं विधाय च ।
संयोज्य बिल्ववत्ते तु बिल्वमुद्रा प्रकीर्तिता ।।४२।।

अँगूठों को भीतरकर, दोनों हाथों से मुट्ठी बनाकर उसे बेल की तरह मिलाने से बनने वाली मुद्रा, **बिल्वमुद्रा** कही गई है ।।४२।।

।। पद्ममुद्रा ।।

मणिबन्धादाकरभं संयोज्य करयोर्द्वयोः ।
अङ्गुष्ठे चापि संयोज्य तथैव च कनिष्ठिके ।।४३।।

तिस्रस्तिस्रस्तयोः पाण्योरङ्गुलीर्विरलास्तथा ।
पद्ममुद्रा समाख्याता चतुर्वर्गफला नृणाम् ।।४४।।

दोनों हाथो के मणिबन्ध से हाथ के पीठभागपर्यन्त अँगूठों एवं कनिष्ठिका को मिलाकर, उनकी तीन-तीन अंगुलियों के फैलाने पर बनी मुद्रा, **पद्म-मुद्रा** कही गई है जो मनुष्यों को चारो वर्ग (अर्थ, धर्म, काम, मोक्ष) का फलप्रदान करने वाली है।।४३-४४।।

।। नाराचमुद्रा ।।

अङ्गुष्ठाग्रेण तर्जन्या संयोज्याथोर्ध्वरेखया ।
अन्याङ्गुलीस्तथानम्य नाराचः स्यात् प्रसार्य ते ।।४५।।
मम चैव शिवायाश्च प्रीतिदेयं प्रियङ्करी ।
नाराचमुद्रा सततं प्रीत्यै वेतालभैरव ।।४६।।

अङ्गुष्ठा के अग्रभाग से तर्जनी को उर्ध्वरेखा में मिलाने तथा अन्य अङ्गुलियों को झुकाकर फैलाने से मुझे और देवी को प्रसन्नताप्रदान करने वाली **नाराचमुद्रा** बनती है । हे वेताल और भैरव ! यह नाराचमुद्रा सदैव प्रसन्नता देने वाली है।।४५-४६।।

।। मुण्डमुद्रा ।।

अन्तराङ्गुष्ठमुष्टिं च कृत्वा वामकरस्य तु ।।४७।।
मध्यमाया दक्षिणस्य तथानम्य प्रयत्नतः ।
मध्यमेनाथ तर्जन्या अङ्गुष्ठाग्रं नियोज्य च ।।४८।।
दक्षिणं योजयेत् पाणिं वाममुष्टौ च साधकः ।
दर्शयेद् दक्षिणे भागे मुण्डमुद्रेयमिष्यते ।।४९।।

अँगूठे को भीतर कर बायेंहाथ की मुठ्ठी बाँधकर दाहिनेहाथ की मध्यमा, तर्जनी एवं अँगूठे के अग्रभाग को मिलाकर दक्षिणहाथ को बायें मुठ्ठी से मिलाकर दाहिनी ओर दिखाने से बनी मुद्रा, **मुण्डमुद्रा** कही जाती है ।।४७-४९।।

इयं तु गणनाथस्य प्रीतिदा मुद्रिकोत्तमा ।
सर्वेषामपि देवानां तुष्टिदा सर्वकर्मसु ।।५०।।

यह उत्तममुद्रा गणेश जी को प्रसन्नता देने वाली तथा सभी कर्मों में सभी देवताओं को सन्तोष देने वाली है ।।५०।।

।। दण्डमुद्रा ।।

अङ्गुष्ठमध्यमादींश्च सम्यगानम्य तर्जनीम् ।
प्रसार्य दण्डमुद्रेति दक्षिणस्य करस्य च ।।५१।।

दाहिनेहाथ के अंगूठे और मध्यमा को मिलाकर तर्जनी आदि को झुकाकर फैलाने से **दण्डमुद्रा** बनती है ।।५१।।

।। योनिमुद्रा ।।

सर्वाङ्गुलीस्तु संयोज्य करयोरुभयोरपि ।
संवेष्ट्य रज्जुवद् वेति पाण्योरपि कनिष्ठिके ।।५२।।

वामस्यानाममूले वै उदग्रं विनियोजयेत् ।
दक्षस्य मध्यमामूले तथाग्रं वाममेव च ।।५३।।
योजयेद् योजनात् पश्चादावर्त्य करशाखिकाः ।
योन्याकारं तु तन्मध्यं योनिमुद्रा प्रकीर्तिता ।।५४।।

दोनों हाथों की सभी अंगुलियों को परस्पर मिलाकर दोनों हाथों की कनिष्ठा अंगुलियों आपस में रस्सी की भाँति लपेटते हैं तथा दाहिनेहाथ के अंगूठे को बायें-हाथ की अनामिका के मूल में एवं बाएँहाथ के अंगूठे को दाहिनेहाथ की अनामिका के मूल में नियोजित करते हैं। दाहिनेहाथ की मध्यमा के मूल में बाएँहाथ की अगली तर्जनी, दायेंहाथ की मध्यमा के मूल में बायेंहाथ की तर्जनी से मिलाने के पश्चात् अंगुलियों को आगे की ओर उलटने पर, मध्य में योनि का आकार बनता है, इस प्रकार से निर्मित मुद्रा ही **योनिमुद्रा** कही गई है।।५२-४२।।

कामाख्यायाः पञ्चमूर्तेर्दुर्गाया अपि भैरव ।
प्रीतिदा योनिमुद्रेयं मम कामस्य चं प्रिया ।।५५।।

हे भैरव ! यह योनिमुद्रा, कामाख्या, त्रिपुरा, कामेश्वरी, शिवा और शारदा, इन पाँचमूर्तियों वाली पञ्चमूर्तिकामाख्या और दुर्गा को भी प्रिय है। यह मुझ कामेश्वर और कामदेव की भी प्रियमुद्रा है।।५५।।

।। अर्धयोनिमुद्रा ।।

संसक्ता अङ्गुलीः सर्वाः प्रसार्याङ्गुष्ठपर्वणा ।
अग्रेण च कनिष्ठाया अग्रेणापि च योजयेत् ।।५६।।
करस्य दक्षिणस्यैवमर्धयोनिः प्रकीर्तिता ।
महायोनिस्तु कथिता वैष्णवीतन्त्रणे वरे ।।५७।।

समस्त अंगुलियों को संसक्त (मिली हुई) अवस्था में ही फैलाकर दाहिने हाथ के अंगूठे के अगलेपर्व से कनिष्ठा के अगलेपर्व के मिलाने से बनने वाली मुद्रा, **अर्धयोनिमुद्रा** कही जाती है। श्रेष्ठ वैष्णवीतन्त्र में यही महायोनिमुद्रा कही गई है।।५६-५७।।

।। वन्दनीमुद्रा ।।

सम्पुटं प्राञ्जलिं वापि यदि शीर्षे प्रदर्शयेत् ।
वन्दनी या समाख्याता मुद्रा विष्णुप्रमोदिनी ।।५८।।

यदि पूर्वोक्त सम्पुट या प्राञ्जलिमुद्रा, सिर से (ललाट के ऊपर) स्पर्श कर दर्शायी जाय तो वही **वन्दनीमुद्रा** कही जाती है। यह भगवान् विष्णु को प्रमुदित करनेवाली है।।५८।।

।। महामुद्रा ।।

सैव चेच्छ्रूवणासक्ता महामुद्रा प्रकीर्तिता ।

दक्षिणाङ्गे तु सा सक्ता वैष्णवी परिकीर्तिता ।
महायोनिस्तु कथिता वैष्णवी तन्त्रगोचरे ।।५९।।

उसी मुद्रा को दाहिनेकान से स्पर्श कर प्रदर्शित करें तो यह **महामुद्रा** कही जाती है और दाहिनेअंग, ललाट और कर्ण के अग्रभाग से स्पर्श करने पर यही **वैष्णवीमुद्रा** कही गई है। यह भी वैष्णवीतन्त्र में महायोनि कही गई है।।५९।।

।। भगमुद्रा ।।

द्वयोस्तु मूलेऽङ्गुष्ठाग्रमङ्गुलीं च कनिष्ठयोः ।।६०।।
नियोज्य प्रसृतीकृत्य द्वौ पाणी योजयेत् पुनः ।
भगमुद्रा समाख्याता लक्ष्मीवाणीशिवप्रिया ।।६१।।

दोनों हाथों की कनिष्ठिकाओं को मूल के अंगूठे के अग्रभाग से सम्बद्ध कर, दोनों हाथों को मिलाकर, फैलाने से बनने वाली मुद्रा, लक्ष्मी, वाणी एवं शिव को प्रिय **भगमुद्रा** कही गई है।।६०-६१।।

।। पुटकमुद्रा ।।

सर्वाङ्गुलीनामग्रौघं दक्षिणस्य करस्य च ।
संयोज्यैकत्र पुरतो निर्देशः पुटकः स्मृतः ।।६२।।

दाहिने हाथ की सभी अंगुलियों के अग्रभाग, एकसाथ मिलाकर आगे दिखाने से बननेवालीमुद्रा पुटकमुद्रा कही गई है।।६२।।

।। निसङ्गमुद्रा ।।

कनिष्ठानामिकाङ्गुष्ठाङ्गुलीनां योजयेद् बुधः ।
अग्राण्येकत्र मध्यां तु तर्जनीं च प्रसार्य वै ।।६३।।
कुब्जीकृत्य करद्वन्द्वं पृथगग्रे निदर्शयेत् ।
निःसङ्गनाममुद्रेयं नरसिंहवाराहयोः ।।६४।।

दोनों कनिष्ठिका, अनामिका और अंगुष्ठा, अंगुलियों के अग्रभाग को मिलाने तथा तर्जनी और मध्यमाओं को आगे फैलाकर दोनों हाथों को कुछ झुका कर दिखलाने से यह मुद्रा पूरी हो जाती है। यह नरसिंह और वाराह अवतारों को प्रसन्न करने वाली **निःसङ्ग** नामक मुद्रा मानी जाती है।।६३-६४।।

।। अर्धचन्द्रमुद्रा ।।

कनिष्ठानामिकामध्यमाकुञ्चन् दक्षिणेन तु ।
करस्य तर्जन्यङ्गुष्ठे प्रसार्य क्रियते तु या ।
सा मुद्रा ह्यर्धचन्द्राख्या ग्रहाणां प्रीतिदायिनी ।।६५।।

केवल दाहिने हाथ की कनिष्ठिका, अनामिका और मध्यमा को बीच से टेढ़ी कर, बन्द की तरह सिकोड़ने। साथ ही अंगूठे और तर्जनी को पूरी तरह फैलाने से

बननेवाली मुद्रा, **अर्धचन्द्रमुद्रा** होती है। यह ग्रहों को प्रसन्नता देने वाली होती है॥६५॥

।। अङ्गमुद्रा ।।

ऊर्ध्वीकृत्य तथाङ्गुष्ठं करस्य दक्षिणस्य तु ।।६६।।
कृत्वा मध्यं तदङ्गुष्ठं वाममुष्टिं तथोर्ध्वतः ।
ऊर्ध्वाङ्गुष्ठां तथा कुर्यादङ्गमुद्रा प्रकीर्तिता ।।६७।।

दाहिनेहाथ के अंगुष्ठ को ऊपर खड़ा कर, बायेंहाथ की ऊर्ध्वांगुष्ठमुट्ठी, खड़े, बीच में बाँध कर जो मुद्रा बनती है उसे **अङ्गमुद्रा** कहते हैं॥६६-६७॥

।। अङ्गमुद्रा के आठ भेद ।।

एतस्या एव मुद्रायाः कनिष्ठादिवियोगतः ।
अष्टौ मुद्राः समाख्याता नाम तासां पृथक् शृणु ।।६८।।
द्विमुखं चैव मुष्टिं च वज्रमाबद्धमेव च ।
विमलश्च घटश्चैव तुङ्गः पुण्ड्रस्तथैव च ।।६९।।

अङ्गमुद्रा के ही द्विमुख, मुष्टि, वज्र, आबद्ध, विमल, घट, तुङ्ग तथा पुण्ड्र ये आठ भेद, कनिष्ठादि एक-एक अंगुलियों के वियोग से बनते हैं। दाहिनेहाथ के अंगूठे को बीच में रखकर जो रूप बनता है उसमें आठों अंगुलियाँ नीचे से ऊपर तक गोल रूप घिरी हुई हैं। इन आठों को क्रमशः बारी-बारी से घेरे से पृथक् किया जाय। ऊपर का बाँया अंगूठा खुला हो। खड़ा भी हो। इसका एक मुख और नीचे की कनिष्ठा को फैलाने से दूसरा मुख अर्थात् अग्रभाग खुल जावे तो उसे द्विमुख कहा गया है। एक-एक कर सभी को पृथक् करते जाने पर आठों भेद रूपायित होते जाते हैं। इन आठों की आठ रूप की मुद्रायें होती हैं॥६९॥

नवानां विष्णुमूर्तिनां सार्धमङ्गेन मुद्रिकाः ।
क्रमान्नव समाख्याता नायिकानां तथैव च ।।७०।।

अङ्ग मुद्राओं के सहित उपर्युक्त नौ मुद्रायें क्रमशः विष्णु की नौ मूर्तियों तथा उनकी नायिकाओं की प्रिय मुद्राएँ कही गई हैं॥७०॥

।। शङ्खमुद्रा ।।

संयोज्य करयोः पृष्ठे तथावर्त्य तु वै समम् ।
प्रसार्य तर्जनीयुग्मं संयुक्तं सर्वतः पुनः ।
अङ्गुष्ठो च तथासक्तौ शङ्खमुद्रा प्रकीर्तिता ।।७१।।

दोनों हाथों के पृष्ठ भाग को मिलाकर उसी अवस्था में उलटा कर दोनों हाथों की तर्जनियों को फैलाकर आगे मिलाने से तथा उस समय अंगूठे उनसे मिले हुये हों तो इस प्रकार की मुद्रा शङ्ख मुद्रा कही जाती है॥७१॥

।। योनिमुद्रा ।।

उत्तानमञ्जलिं कृत्वा अङ्गुष्ठे द्वे कनिष्ठयोः ।।७२।।
मूले निक्षिप्य तु करौ संयोज्याथ प्रदर्शयेत् ।
सा योनिरिति विख्याता मुद्रा देवौघतुष्टिदा ।।७३।।

अञ्जलि को उत्तान कर दोनों अंगूठों को दोनों कनिष्ठामूल में सटाने, सारी अंगुलियों को ऊपरी अग्रभाग से सटाने से योनिमुद्रा बनती है। यह देवताओं को उपचारद्रव्य अर्पित कर इसे दिखलावे, योनि नाम से प्रसिद्ध यह मुद्रा, समस्त देववर्ग को तुष्टि, प्रदान करती है।।७२-७३।।

।। शिखरिणी मुद्रा ।।

मुष्टिर्दक्षिणहस्तस्य यदोर्द्धवाङ्गुष्ठिका भवेत् ।
सा स्याच्छिखरिणीम्रुदा ब्राह्मीसूर्यप्रिया च सा ।।७४।।

दाहिनेहाथ की मुट्ठी जो अंगूठा ऊपर किये हुए होती है वह **शिखरिणीमुद्रा** होती है। वह ब्रह्मा और सूर्य को विशेष प्रिय है।।७४।।

।। सार्धधेनुमुद्रा ।।

अनामिके कनिष्ठे च संयोज्य वायुना पुनः ।
मध्यमा तर्जनीनां तु धेनुमुद्रेव बन्धनम् ।
सार्धधेनुरिति ख्याता चन्द्रप्रीतिविवर्धिनी ।।७५।।

अनामिका और कनिष्ठा को मिलाकर फैलाने, अंगूठे से तर्जनी और मध्यमा को धेनु मुद्रा की भाँति मिलाकर बाँधने से बनी, यह मुद्रा, सार्धधेनु कहलाती है। यह चन्द्रमा की प्रसन्नता बढ़ानेवाली है।।७५।।

।। सम्मिलनीमुद्रा ।।

करयोरङ्गुलीनां तु सर्वाग्राण्येकतः स्थिता ।
नियोज्य द्वे तले चैव तदधोऽपि नियोज्य च ।।७६।।
अग्रैरग्रैर्योजयेत् तु मुद्रा सम्मिलनी तु सा ।
भौमभूमिमुनीशानामियं प्रीतिविवर्धिनी ।।७७।।

दोनोंहाथों की अंगुलियों के अग्रभाग को एक साथ फैलाने, दो तलों पर हाथ के मिलाने। अंगुलिमूल पहला तल। मणि बन्ध (भीतरी) दूसरा तल। अब फैली अंगुलियों को क्रमशः मिलाने, जिसमें केवल अंगुलियों के अग्रभाग ही मिलें। थोड़ा टेढ़ा कर अंगुलियाँ मिलती हैं तो इससे बनी, यह सम्मिलनीमुद्रा, मंगल, पृथ्वी और सप्तर्षियों को बड़ी प्रिय है।।७६-७७।।

।। कुण्डमुद्रा ।।

सर्वाङ्गुलीस्तु संयोज्य दक्षिणस्य करस्य च ।
कियद्भागं तथानम्य तलं कुर्यात् तु कुण्डवत् ।।७८।।
समाख्याता कुण्डमुद्रा बुधवाणीशिवप्रिया ।।७९।।

दाहिनेहाथ की अञ्जलि की अंगुलियों को ऊपर उठाकर। कुछ इस तरह नियोजित करें कि, हथेली का कुण्ड बन जाय। यह **कुण्डमुद्रा** बुध, सरस्वती और शिव को अत्यन्त प्रिय है॥७९॥

।। चक्रमुद्रा ।।

सर्वाङ्गुलीनां मध्यं तु वामहस्तस्य चाङ्गुलीः ।
प्रसार्याङ्गुष्ठयुगलं संयोज्याग्रेण भैरव ।।८०।।
तदङ्गुष्ठद्वयं कार्यं सम्मुखं वितरेत् ततः ।
चक्रमुद्रा समाख्याता गुरुविष्णुशिवप्रिया ।।८१।।

बाँयेंहाथ की सारी अंगुलियों को प्रसरित कर, उन्हें दाहिने हाथ की फैली अंगुलियों के मध्य में फैली हुई ही मिलाने, दोनों अंगूठों को आगे की आगे अपने हृदय की ओर करने से बनी **चक्रमुद्रा,** गुरु, विष्णु और शिव को अत्यन्त प्रिय है॥८०-८१॥

।। शूलमुद्रा ।।

अङ्गुष्ठं मध्यमां चैव नामयित्वा करस्य तु ।
दक्षिणस्य परास्तिस्रो योजयेदग्रतः पुनः ।
शूलमुद्रा समाख्याता मम शुक्रग्रहप्रिया ।।८२।।

दाहिने हाथ के अंगूठे को और मध्यमा को अलग-अलग नीचे की ओर कर शेष तीनों को आगे कर मिलने से बनी मुद्रा, **शूलमुद्रा** कहलाती है। यह मुद्रा शिव और शुक्रग्रह को प्रीतिकर होती है॥८२॥

।। सिंहमुखी मुद्रा ।।

निकुब्जीकृत्य तु करौ वामाङ्गुलिगणस्य तु ।
अग्राणि योजयेन्मध्ये तलस्यासव्यहस्ततः ।।८३।।
अधः कृत्वा वामहस्तं मुद्रा सिंहमुखी स्मृता ।
इयं प्रीत्यै तु दुर्गायाः सूर्यपुत्रस्य चक्रिणः ।।८४।।

बाँयेंहाथ को कुछ नीचे कर, उसकी अंगुलियों के अग्रभाग को बायेंहाथ में मध्यहथेली में मोड़ कर सटाने, ऊपर दाहिनेहाथ की हथेली के मध्य के नीचे बायेंहाथ की इस मुद्रा को लगाने से बनी यह पूरी मुद्रा सिंहमुखी होती है। इसमें ऊपर दाहिने- हाथ की अंगुलियाँ आगे फैली हुई होती हैं। नीचे बायेहाथ की अंगुलि हथेली के मध्य में मिली होती हैं। यह दुर्गा, सूर्यपुत्र (शनि) और चक्री, कृष्ण को बहुत प्रिय है॥८३-८४॥

।। गोमुखी मुद्रा ।।

भगमुद्रा कर्णमूले गोमुखाख्या प्रकीर्तिता ।
मम विष्णोस्तथा राहोः सर्वदा प्रीतिदायिनी ।।८५।।

भगमुद्रा को कर्णमूल में समा कर प्रदर्शित करने से बनी मुद्रा, गोमुखीमुद्रा कही जाती है। यह शिव, विष्णु और राहु को सदैव प्रीति, प्रदानकरनेवाली मुद्रा है॥८५॥

॥ दश-मुद्रायें ॥

मुष्टिद्वयमथोत्तानं कृत्वा संयोज्य पार्श्वतः ।
दक्षिणस्य कनिष्ठादीन् प्रसार्य क्रमशः पुनः ॥८६॥
तथा वामकनिष्ठाभ्यामेकैकेन प्रसारयेत् ।
अष्टौ मुद्राः समाख्याता नामतः क्रमतः शृणु ॥८७॥
प्रोल्लासोन्नमनं चैव विम्बं पाशुपतं तथा ।
शुद्धं त्यागः सारणी च तथा चैव प्रसारणी ॥८८॥
आकुञ्चकरशाखास्तु दक्षिणा सा तु मुद्रिका ।
उग्रमुद्रा समाख्याता स्वहस्तस्य विपर्ययात् ॥८९॥
इन्द्रादिलोकपालानां दशमुद्राः प्रकीर्तिताः ।
सर्वेषामेव देवानां परमप्रीतिवर्धनाः ॥९०॥

१. प्रोल्लास, २. उन्नमन, ३. बिम्ब, ४. पाशुपत, ५. शुद्ध, ६. त्याग, ७. सारणी और ८. प्रसारणी। कर शाखाओं के आकुञ्चन से ९वीं दक्षिणा और हाथों के विपर्यय से उग्रनाम की दसवीं मुद्रा बनती है। ये दसों दिग्पालों की प्रीतिविवर्धनी मुद्रायें मानी जाती हैं। सर्वदेवप्रिय इन मुद्राओं के बनाने के पहले दोनों हाथों की मुट्ठी बाँध, उन्हें उत्तान कर सटाने अब दाहिने हाथ की एक-एक अंगुलि कनिष्ठाक्रम से फैलाते जाने से एक-एक मुद्रा बनती जाती है। फिर वामहस्त की अंगुलियों को भी कनिष्ठा क्रम से दो-दो अंगुलियाँ मिलाकर फैलावें। मुद्रायें बनती जाती है। उनके नाम उसीक्रम से जानना चाहिये॥८६-९०॥

॥ कुण्डलीमुद्रा ॥

अङ्गुष्ठाग्रं तु तर्जन्या अग्रे भागेन योजयेत् ।
आकुञ्च्यमध्यमाद्यास्तु दक्षहस्तस्य चाङ्गुलीः ॥९१॥
दर्शयेत् कुण्डलाकारं कुण्डलीशक्तितुष्टिदम् ।
सर्वेषामपि देवानां यथा तुष्टिकरं महत् ॥९२॥

दाहिने हाथ की तर्जनी से अंगूठे को मिलाने, शेष सभी अंगुलियों को आकुंचित करने से यह कुण्डली मुद्रा बनती है। यह यथानाम तथा गुणवाली हो, कुण्डली शक्ति को तुष्टि देने वाली है। तथा सर्वदेवप्रिया मानी जाती है॥९१-९२॥

॥ त्रिमुखामुद्रा ॥

अङ्गुष्ठतर्जनीमध्या अग्रभागे नियोज्य च ।
मध्यमां च कनिष्ठां च आकुञ्च्य दक्षिणे करे ॥९३॥

त्रिमुखाख्या समाख्याता विश्वदेवप्रिया सदा ।
केतोः प्रियेयं सततं मातृणामपि तुष्टिदा ।।९४।।

विश्वदेवप्रिया यह मुद्रा, दाहिने हाथ की अंगुष्ठ, तर्जनी और मध्यमा के अग्रभाग को अंगूठे के अग्रभाग से मिलाने। अनामिका और कनिष्ठा को आकुंचित कर हथेली में सटाने से बनती हैं। केतु एवं मातृशक्तियों को भी यह प्रिय है।।९३-९४।।

।। असिवल्लीमुद्रा ।।

तर्जन्यङ्गुष्ठयोरग्रभागौ संयोज्य चाङ्गुलीः ।
अन्या आकुञ्चयेत् तिस्रः साऽसिवल्ली प्रकीर्तिता ।।९५।।
पितृणामथ साध्यानां रुद्राणां विश्वकर्मणः ।
सर्वदा प्रीतिजननी साऽसिवल्ली प्रकीर्तिता ।।९६।।

तर्जनियों और अंगूठों के अग्रभाग को मिलाने, दोनों हाथों की अन्य तीनों अंगुलियों को आकुंचित करने से बनी मुद्रा, असिवल्लीमुद्रा कहलाती है। यह पितरों, साध्यों, रुद्रों और विश्वकर्मा को सर्वदा, प्रीतिप्रदान करनेवाली कही गयी है।।९५-९६।।

।। योगमुद्रा ।।

पादौ तलाभ्यां संयोज्य तदङ्गुष्ठद्वयं यतः ।
ऊर्ध्वं संयोजयेन्नाभौ तस्योपरि तथाञ्जलिः ।।९७।।
योगमुद्रा समाख्याता योगिनां तत्त्वदायिनी ।
सर्वेषामपि देवानां पूजने चिन्तने तथा ।।९८।।
योगमुद्रा समाख्याता तुष्टिपुष्टिकरी सदा ।।९९।।

दोनों पैरों के पादाधस्तल मिलाकर मिले हुए अंगूठों को ऊपर नाभि से सटाने, उन पर अपनी अञ्जलि रखने से योगमुद्रा बनती है। योगविद्या की तात्त्विकता की उपलब्धि इससे होती है। सभी देवताओं के पूजन और चिन्तन में इसका प्रयोग करना चाहिये। यह तुष्टि और पुष्टि प्रदान करती है।।९७-९९।।

।। प्राञ्जलिमुद्रा ।।

प्राञ्जलिर्नाम मुद्रा तु ऊर्ध्वाधो भावयोजिता ।
विभिद्य दर्शयेद्धस्तौ ऊर्ध्वाधः प्रसतीकृतौ ।
भेदमुद्रा समाख्याता मम विष्णोर्विधेः प्रिया ।।१००।।

भावनापूर्वक दोनों हाथों से अञ्जलि बनाने, मिलेहाथों की अंगुलियों की स्थिति में हथेली को थोड़ा गोल कर उसमें छेद बना देने। यह ऊपर नीचे देखने में उपयोगी होता है। एक तरह का हथेली को प्रसृत करने से यह प्राञ्जलिमुद्रा बन जाती है। इसे **भेदमुद्रा** भी कहते हैं। यह मुझे बड़ी प्रिय है। साथ ही ब्रह्मा और विष्णु को भी प्रीतिप्रदान करती है।।१००।।

।। सम्मोहनमुद्रा ।।

अङ्गुष्ठे द्वे तु निक्षिप्य करयोरुभयोरपि ।
अग्रेण योजयेत् पश्चात् कनिष्ठायुगलं ततः ।।१०१।।
उभयोर्हस्तयोश्चान्यास्तर्जन्याद्याश्च योजयेत् ।
अग्राग्रैस्तु पृथक्कृत्य दर्शयेत् तु कनिष्ठिकाम् ।।१०२।।
मुद्रा सम्मोहनं नाम कामदुर्गारमाप्रिया ।
सर्वेषामिह देवानां मोहनं प्रीतिदं स्मृतम् ।।१०३।।

दोनों हाथों के अंगूठों को एक दूसरे हाथों की पीठ पर लगा, नीचे कनिष्ठाओं को योजित कर, ऊपर की अंगुलियों को भी जोड़ने से जब ऊपर से पहले तर्जनियों को अलग कर कनिष्ठाओं को देखने। पुनः मध्यमा को पृथक् कर जुड़ी कनिष्ठाओं को देखने। पुनः अनामिका को अलग कर कनिष्ठाओं को देखने से यह प्रायोगिक मुद्रा **सम्मोहनमुद्रा** कहलाती है। यह काम, दुर्गा रमा और सभी देवताओं को प्रीतिप्रदान करती है।।१०१-१०३।।

।। बाणमुद्रा ।।

आनम्यासव्यहस्तस्य मध्यमानामिके तथा ।
तयोः पृष्ठे सुसंयोज्य अङ्गुष्ठाग्रं ततः परम् ।।१०४।।
कनिष्ठां तर्जनीं चैव अग्रेणायोजयेत् ततः ।
बाणमुद्रा समाख्याता सर्वदेवस्य तुष्टिदा ।।१०५।।

दाहिने हाथ की मध्यमा और अनामिका को आगे झुकाकर इन दोनों अंगुलियों में निकली हुई हड्डी से अंगूठे को सटाने से इसके बाद कनिष्ठा और तर्जनी के अग्रभागों को ऊपर से मिलाने पर **बाणमुद्रा** कही गई है जो समस्त देवों को संतुष्टिप्रद है।।१०४-१०५।।

।। धेनुमुद्रा ।।

सर्वाङ्गुलीस्तु सङ्कोच्य अङ्गुष्ठमथ तर्जनीम् ।
प्रसार्य करयोः पश्चादङ्गुष्ठाग्रं तु योजयेत् ।।१०६।।
अगुष्ठाग्रेण तर्जन्या अग्रेणापि च तर्जनीम् ।
यथाशक्ति प्रसार्यापि धेनुमुद्रा प्रकीर्तिता ।।१०७।।

यह मुद्रा कई तरह से बनायी जाती है। श्लोक १०६-१०७ के अनुसार अंगूठों और तर्जनी के अग्रभागों को फैलाकर मिलाना चाहिये। शेष मध्यमा, अनामिका और कनिष्ठा का आकुञ्चन करना चाहिये। इस तरह बनी मुद्रा **धेनुमुद्रा** कही जाती है।।१०६-१०७।।

।। तूणीरमुद्रा ।।

सर्वाङ्गुलीनामग्राणि ब्राह्मे तीर्थे नियोजयेत् ।
अनामिकायाः पृष्ठे तु अङ्गुष्ठाग्रं नियोज्य च ।।१०८।।

शून्यं तूणीरवत् कृत्वा तेषामन्तस्तु भैरव ।
तूणीरमुद्रा चाख्याता सर्वेषां प्रीतिवर्धिनी ।।१०९।।

हे भैरव ! सभी अंगुलियों के अग्रभाग को हथेली के ब्राह्मतीर्थ में लेना चाहिये। अंगूठे के अग्रभाग को अनामिका की पीठ पर चढ़ाना चाहिये। इस प्रकार नियोजित अंगुलियों के मध्य में गोलशून्य बनता है। इसी मुद्रा को इस शून्य के कारण **तूणीरमुद्रा** कहते हैं। यह सभी देवताओं की प्रीति का वर्धन करती है।।१०८-१०९।।

मुद्रासु संस्थिता पूजा सर्वेषु परिचिन्तनम् ।
मुद्रासु संस्थिता योगा मुद्रा मोदकरास्ततः ।।११०।।
यदा यदा पूजनेषु चिन्तने ध्यानकर्मणि ।
यज्ञादौ स्तवने वापि हस्तकृत्यं न विद्यते ।।१११।।
तदा मुद्रान्वितं कुर्यादिष्टापूर्ते करद्वयम् ।।११२।।

सारी पूजा का तत्त्व मुद्राओं में निहित है। सभी देवों की पूजा का परिचिन्तन मुद्राओं से सम्पन्न हो जाता है। मुद्राओं में सारे योग भी निहित हैं। मुद्रायें मोद का प्रसार करती हैं। पूजा में, चिन्तन की दशा में अथवा ध्यान की प्रक्रियाओं में, यज्ञ और प्रार्थनाओं में जिनमें हस्तक्रिया का अभाव रहता है। उन सभी में मुद्राओं का प्रयोग होना चाहिये। दोनों हाथ, इष्टापूर्त्त के इस व्यापार में लगने चाहिये।।११०-११२।।

यज्ञकृत्येषु चेच्छक्तो हस्तो मुद्रासु च क्षमः ।
तदा मुद्रां विधायैव तत्तत् कृत्यं समाचरेत् ।।११३।।
मुद्राविमुक्तहस्तं तु क्रियते कर्म दैविकम् ।
कृत्वा तन्निष्फलं यस्मात् तस्मान्मुद्रान्वितो भवेत् ।।११४।।

सौभाग्य से यज्ञक्रिया में मनुष्य को प्रवृत्त होने का अवसर मिले और हाथों में यदि शक्ति हो, बल हो, क्षमता हो तो मुद्रायें अवश्य करे। मुद्राक्रिया के विधान के बाद ही उस कर्त्तव्यकर्म का सम्पादन करना चाहिये। मुद्राविहीन देवकर्म, निष्फल होते हैं। अतः मुद्राओं का प्रयोग अनिवार्यतः आवश्यक है।।११३-११४।।

विसर्जने तु देवानां यस्य या परिकीर्तिता ।
मुद्रां तां पूजनादौ तु तस्य चैव प्रयोजयेत् ।।११५।।

बहुत-सी मुद्रायें देवों के विसर्जन में प्रयुक्त की जाती हैं। उनके पूजन के आदि में उनकी निर्धारित मुद्राओं का प्रयोग भी करना चाहिये।।११५।।

विसृज्योक्तामृते मुद्रां मुद्रायुक्तः समाचरेत् ।
पूजनादि समस्तं तु कर्मवृद्धौ विचक्षणः ।।११६।।

कर्मफल की वृद्धि के लिये मुद्रासिद्धविलक्षणपुरुष, विसर्जन में उक्त मुद्रा के अतिरिक्त भी उचितमुद्राओं का प्रयोग करे।।११६।।

अतो मुद्रा परं नाम मुद्रा पुण्यप्रदायिनी ।
देवानां मोददा मुद्रा तस्मात् तां यत्नतश्चरेत् ।।११७।।

यह मुद्रा संज्ञा, सर्वातिशायी संज्ञा है। मुद्रा पुण्यप्रदा मानी जाती है। मुद्रा, देवों के आमोद की हेतु हैं। अत: यत्नपूर्वक इनका प्रयोग करना है।।११७।।

अर्धयोनिर्महायोनिर्योनिर्ब्राह्मी च वैष्णवी ।
मुद्रा विसर्जने प्रोक्ता शिवात्रिपुरयोः सदा ।
दुर्गायाः सर्वरूपेषु मुद्रा एताः प्रकीर्तिताः ।।११८।।

अर्धयोनि, महायोनि, योनि, वैष्णवी और ब्राह्मी मुद्रायें विसर्जन में प्रयुक्त होती हैं। विशेषरूप से शिवा और त्रिपुरापूजा में इन्हें अवश्य प्रयोग करते हैं। दुर्गा के सभी रूपों में इनका प्रयोग करणीय है। **सम्पुटमुद्रा** भी विसर्जन में परिगणित है।।११८।।

योनि, सम्पुट और महायोनि मुद्रायें, व्यस्तभाव के अतिरिक्त भी, योजित की जा सकती हैं। जो मुख्य ५५ मुद्रायें पहले कही गयी हैं उनके अतिरिक्त शेष ५३ मुद्रायें पूर्णतया व्यस्तभाव में भी वामा अर्थात् गौरी, लक्ष्मी या सरस्वती के समान ही रहती हैं। ये सभी पूर्णतया मोद करने वाली होती हैं।

वर्जयित्वा व्यस्तभावादुक्तादन्यत्र योजयेत् ।
भवेद् यास्तु त्रिपञ्चाशदन्या मुद्राः समन्ततः ।
ता व्यस्तभावाद् वामाः स्युर्मुद्रा मोदकराः पराः ।।१२०।।

यहाँ व्यस्त और अव्यस्त भाव का अर्थ, मुद्राओं के रचना-क्रम और व्यतिक्रम से लेना चाहिये। क्रम तो उक्त है! व्यतिक्रम की स्थिति में भी ये मुद्रायें प्रयोक्ता द्वारा समझ कर प्रयोग में लायी जाती हैं। इस प्रकार ये सभी मुद्रायें पूजन में पूज्य को तुष्टि, प्रदान करती हैं।।१२०।।

एवं वां कथिता मुद्राः पूजने पूज्यतुष्टिदा ।
क्रमस्तु बलिदानस्य शृणु वेतालभैरव ।।१२१।।

इति श्रीकालिकापुराणे मुद्राकथने षट्षष्टितमोऽध्याय: ।।६६।।

हे वेताल और भैरव ! मुद्रा के कथन के अनन्तर अब आगे बलिदान के संदर्भ कही गई बातें सुनो।।१२१।।

जिस देवताओं के विसर्जन में जो मुद्राएँ कही गई है, उनके पूजनादि में उन्हीं मुद्रओं का ही प्रयोग करना चाहिये।।११२।।

।। श्रीकालिकापुराण का मुद्राकथन सम्बन्धी छाछठवाँ अध्याय सम्पूर्ण हुआ ।।६६।।



सप्तषष्टितमोऽध्यायः
बलिविधानम्

।। श्रीभगवानुवाच ।।

क्रमस्तु बलिदानस्य स्वरूपं रुधिरादितः ।
यथा स्यात् प्रीतये सम्यक् तद् वां वक्ष्यामि पुत्रकौ ।।१।।

श्रीभगवान् बोले–हे दोनो पुत्रों ! भगवती की प्रसन्नता के लिए बलिदान के क्रम और रक्त आदि का स्वरूप, जैसा होना चाहिए। उसे मैं तुम दोनों से भली-भाँति कहूँगा ॥१॥

वैष्णवीतन्त्रकल्पोक्तः क्रमः सर्वत्र सर्वदा ।
साधकैर्बलिदानस्य ग्राह्यः सर्वसुरस्य च ।।२।।

वैष्णवीतन्त्रकल्प में बताई सभी देवताओं के साधकों द्वारा बलिदान की पद्धति ही सभी जगह और सदा अपनाई जानी चाहिये ॥२॥

पक्षिणः कच्छपाः ग्राहाः मत्स्याः नवविधाः मृगाः ।
महिषो गोधिका गावश्छागो रुरुश्च शूकरः ।।३।।
खड्गश्च कृष्णसारश्च गोधिका शरभो हरिः ।
शार्दूलश्च नरश्चैव स्वगात्ररुधिरं तथा ।
चण्डिकाभैरवादीनां बलयः परिकीर्तिताः ।।४।।

पक्षीगण, कछुये, मगर, मत्स्य एवं नौ प्रकार के पशु, महिष, वृषभ, छाग, गोह, रुरु, सूअर, गैंडा, कृष्णसारमृग, शरभ, सिंह, शार्दूल, मनुष्य तथा साधक द्वारा अपने शरीर से निकाला रक्त, ये सब, देवी और भैरव को प्रदान करने हेतु बलियाँ बताई गई हैं।।३-४।।

बलिभिः साध्यते मुक्तिर्बलिभिः साध्यते दिवम् ।
बलिदानेन सततं जयेच्छत्रून्नृपान् नृपः ।।५।।

बलि से मुक्ति प्राप्त होती है। बलि से ही स्वर्ग भी प्राप्त होता हैं। राजा बलिदान द्वारा ही अपने शत्रुराजाओं को भी जीत ले।।५।।

मत्स्यानां कच्छपानां तु रुधिरैः सततं शिवा ।
मासैकं तृप्तिमाप्नोति ग्राहैर्मासांस्तु त्रीनथ ।।६।।

मृगाणां शोणितैर्देवी नराणामपि शोणितैः ।
अष्टौ मासानवाप्नोति तृप्तिं कल्याणदा च सा ।।७।।
गोधिकानां गोरुधिरैर्वाषिकीं तृप्तिमाप्नुयात् ।।८।।

शिवा (काली) निरंतर मत्स्यों और कछुओं के रक्त से एक मांस तक तृप्ति प्राप्त करती हैं तो मगर के मांस से तीन माह, मनुष्यों एवं पशुओं के मांस से वे कल्याणदायिनी देवी, आठ माह तक तृप्तिअनुभव करती हैं। गोह तथा बैलों के रक्त से वे एक वर्षपर्यन्त तृप्ति का अनुभव करती हैं।।६-८।।

कृष्णसारस्य रुधिरैः शूकरस्य च शोणितैः ।
प्राप्नोति सततं देवी तृप्तिं द्वादशवार्षिकीम् ।।९।।

कृष्णसारमृग और सूअर के रक्त से देवी, बारह वर्षों तक निरन्तर तृप्ति, प्राप्त करती हैं ।।९।।

अजाविकानां रुधिरैः पञ्चविंशतिवार्षिकीम् ।
महिषाणां च खड्गानां रुधिरैः शतवार्षिकीम् ।।१०।।

बकरी और भेड़ों के रक्त से पच्चीस वर्षों तक और भैंसे तथा गैण्डों के रक्त से सौ वर्षों तक तृप्ति, प्राप्त करती हैं ।।१०।।

तृप्तिमाप्नोति परमां शार्दूलरुधिरैस्तथा ।
सिंहस्य शरभस्याथ स्वगात्रस्य च शोणितैः ।।११।।
देवी तृप्तिमवाप्नोति सहस्रं परिवत्सरान् ।
मांसैरपि तथा प्रीतिं रुधिरैर्यस्य यावती ।।१२।।

देवी शार्दूलों के रक्त से परम-तृप्ति को प्राप्त करती हैं तथा वे सिंह, शरभ, साधक द्वारा अर्पित अपने शरीर के रक्त से एक हजार वर्षों तक तृप्ति प्राप्त करती हैं, जिसके रक्तअर्पण से देवी जितनी प्रसन्नता प्राप्त करती है। उतना ही उसके मांस से भी प्राप्त करती हैं।।११-१२।।

कृष्णसारं मृगं खड्गं तथा मत्स्यं च रोहितम् ।
वार्ध्रीणसयुगं चापि फलं तेषां पृथक् पृथक् ।।१३।।

कृष्णसारमृग, खड्ग (गैण्डा), रोहितमछली तथा वार्ध्रीणासयुगल के बलिदान के फल को अलग-अलग कहता हूँ।।१३।।

कृष्णसारस्य मांसेन तथा खड्गेन चण्डिका ।
वर्षाणां च शतान्येव तृप्तिमाप्नोति केवलम् ।।१४।।

कृष्णसारमृग और खड्ग (गैंडे) के मांस से चण्डिका मात्र सौ वर्षों तक तृप्ति का अनुभव करती हैं।।१४।।

रोहितस्य तु मत्स्यस्य मांसैर्वार्ध्रीणसस्य च ।
तृप्तिं प्राप्नोति वर्षाणां शतानि त्रीणि मत्प्रिया ।।१५।।

मेरी प्रिया (शिवा) रोहितमत्स्य या वार्ध्रीणस के मांस से तीन सौ वर्षों तक तृप्ति, प्राप्त करती हैं॥१५॥

तृप्नुवन्त्विन्द्रियक्षीणं श्वेतं वृद्धमजापतिम् ।
वार्ध्रीणसः प्रोच्यतेऽसौ हव्ये कव्ये च सत्कृतः ॥१६॥

जिसकी इन्द्रियाँ तृप्त हों एवं क्षीण न हुई हो अर्थात् जो समर्थ हो ऐसा बूढ़ा सफेद बकरा वार्ध्रीणस कहा जाता है किन्तु कोशग्रन्थों में यह शब्द गैंडे जैसे जानवर के लिए आया है। जो देव कार्य (हव्य) तथा पितृकार्य (कव्य) में सम्माननीय हैं॥१६॥

नीलग्रीवो रक्तशीर्षः कृष्णपादः सितच्छदः ।
वार्ध्रीणसः स्यात्पक्षी च मम विष्णोरपि प्रियः ॥१७॥

नीलेगले, लालसिर, कालेपैर, श्वेतकन्धेवाला, ऐसे शरीरवाला पक्षी विशेष, वार्ध्रीणस मुझे और विष्णु को भी प्रिय है ॥१७॥

नरेण बलिना देवी सहस्रं परिवत्सरान् ।
विधिदत्तेन चाप्नोति तृप्तिं लक्षं त्रिभिर्नरैः ॥१८॥

विधिपूर्वक प्रदान की गई मनुष्य की एक बलि से देवी एक हजार वर्ष तक तथा तीनमनुष्यों की बलि से लाखवर्ष तक तृप्ति पाती हैं॥१८॥

नारेणेवाथ मांसेन त्रिसहस्रं च वत्सरान् ।
तृप्तिमाप्नोति कामाख्या भैरवी मम रूपधृक् ॥१९॥

मेरे रूप द्वारा धारण की हुई, कामाख्या भैरवी, नर-मांस से तीन हजार वर्षों तक तृप्ति का अनुभव करती हैं ॥१९॥

मन्त्रपूतं शोणितं तु पीयूषं जायते सदा ।
मस्तकं चापि तस्यात्ति मांसं चापि तथा शिवा ॥२०॥

मन्त्रपाठ से पवित्र किया हुआ उसका रक्त, सदा अमृत हो जाता है। शिवा उसके मस्तक एवं मांस को भी खा जाती है ॥२०॥

तस्मात् तु पूजने दद्याद् बलेः शीर्ष च लोहितम् ।
भोज्ये होमे च मांसानि नियुञ्जीयाद् विचक्षणः ॥२१॥

अतः बुद्धिमान् साधक द्वारा पूजन में बलिपशु के रक्त और मस्तक दोनों अर्पित करना चाहिये तथा भोजन एवं हवन में मांस का उपयोग किया जाना चाहिये ॥२१॥

पूजासु नाममांसानि दद्याद् वै साधकः क्वचित् ।
ऋते तु लोहितं शीर्षममृतं तत्तु जायते ॥२२॥

पूजा में साधक को रक्त एवं शिर के अतिरिक्त कभी भी कच्चा-मांस नहीं चढ़ाना चाहिये क्योंकि शिर और रक्त तो स्वयं ही अमृतः तुल्य होता है ॥२२॥

कूष्माण्डमिक्षुदण्डं च मद्यमासवमेव च ।
एते बलिसमाः प्रोक्तास्तृप्तौ छागसमाः सदा ।।२३।।

कूष्माण्ड (भतुआ), इक्षुदण्ड, मद्य, आसव, ये सब बलि के समान कहे गये हैं तथा तृप्ति की दृष्टि से छाग के समान सदैव तृप्तिदायक हैं ॥२३॥

चन्द्रहासेन कर्त्र्या वा छेदनं मुख्यमिष्यते ।
दात्रासिधेनुक्रकचशङ्कुलाभिस्तु मध्यमम् ।।२४।।
क्षुरक्षुरप्रभल्लैश्च वाधमं परिकीर्तितम् ।
एभ्योऽन्यैः शक्तिबाणाद्यैर्बलिश्छेद्यः कदापि न ।
नात्ति देवी बलिं तत्तु दाता मृत्युमवाप्नुयात् ।।२५।।

चन्द्रहास, चाकू से बलि का छेदन (काटना) मुख्य (उत्तम) कहा गया है । दात्र (दाव), असिधेनु (चाकू विशेष), क्रकच (आरा), शङ्कुला (दुधारी तलवार) से छेदन करना मध्यम तथा क्षुर, क्षुरप्र और भाले से किया गया अधम कहा गया है । इनसे अतिरिक्त शक्ति, बाण आदि से कभी भी बलि पशु को नहीं काटना चाहिये । इस प्रकार से दी गई बलि का देवी भक्षण नहीं करती और देने वाला साधक भी मृत्यु को प्राप्त करता है ॥२४-२५॥

हस्तेन छेदयेद् यस्तु प्रोक्षितं साधकः पशुम् ।
पक्षिणं वा ब्रह्मवध्यामवाप्नोति सुदुःसहाम् ।।२६।।

जो साधक प्रोक्षण किये हुए बलिपशु या पक्षी को हाथ से काटता है, वह ब्रह्मवधजन्य दुःसह पाप का भागी होता है ॥२६॥

नामन्त्र्य खण्डं तु बलिं नियुञ्जीत विचक्षणः ।।२७।।

बुद्धिमान् साधक को बिना आमन्त्रण किये खड्ग का बलि में उपयोग नहीं करना चाहिये॥२७॥

खड्गस्यामन्त्रणे मन्त्रा यावन्तः कथिताः पुरा ।
महामायाबलौ ते वै योज्यास्तत्रोदिता बुधैः ।।२८।।

जो मन्त्र महामाया की बलि हेतु पहले बताये गये हैं, विद्वानोंद्वारा खड्ग के आमन्त्रणहेतु उनका ही प्रयोग किया जाना चाहिये ॥२८॥

तैः सार्धमेते मन्त्रास्तु योज्याः खड्गादिमन्त्रणे ।
पूजने शारदादीनां कामाख्यायाः विशेषतः ।।२९।।

उनके साथ शारदा और कामाख्या के पूजन में खड्ग आदि के अभिमन्त्रित करने में इन मन्त्रों को भी जोड़ लेना चाहिये ॥२९॥

द्विः कालीति ततो देव्या वज्रेश्वरिपदं ततः ।
ततोऽनु लौहदण्डायै नमः शेषे तु योजयेत् ।।३०।।

दो बार काली (काली-काली) कहकर वज्रेश्वरि शब्द तत्पश्चात् लौहदण्डायै और अन्त में नमः शब्द जोड़ने से, काली-काली वज्रेश्वरि लौहदण्डायै नमः बनता है, जिसका अर्थ होता है काली वज्रेश्वरी लौहदण्डा को नमस्कार है ।।३०।।

सम्पूज्यानेन मन्त्रेण खड्गमादाय पाणिना ।
कालरात्र्यास्तु मन्त्रेण तं खड्गमभिमन्त्रयेत् ।।३१।।

इस मन्त्र से पूजन कर खड्ग को हाथ में लेकर कालरात्रि के मन्त्र से खड्ग को अभिमन्त्रित करे ।।३१।।

नेत्रबीजस्य मध्यं तु द्विरावर्त्य प्रयोजयेत् ।
ततोऽनु कालिकालीति करालोष्ठी ततः परम् ।
हान्तादींश्च तृतीयेन स्वरेणैकादशेन वै ।।३२।।
योजिता नादबिन्दुभ्यां द्वौ तत् पश्चान्नियोजयेत् ।।३३।।

नेत्रबीज के मध्यबीज की दो आवृत्ति करके काली काली करालोष्ठी कहकर ह जिसके अन्त में है उस शवर्ण को तृतीय या एकादश स्वर एवं हान्तादि को चन्द्रबिन्दु सहित पहले दो बार जोड़े ।।३३।।

फेत्कारिणिपदं तस्मात् खादयच्छेदयेत्यतः ।
सर्वान् दुष्टानिति ततो द्विर्मारय लुलायकम् ।।३४।।
खड्गेन छिन्धि छिन्धीति ततः किलकिलेति वै ।
ततः चिकिचिकीत्येवं ततः पिबपिबेति च ।।३५।।
ततोऽनु रुधिरं चेति स्फ्रैं स्फ्रैंकिरि किरीति च ।
कालिकायै नम इति कालरात्र्यास्तु मन्त्रकम् ।।३६।।

तब फेत्कारिणि शब्द उसमें खादय, तत्पश्चात् छेदय और सर्वान् दुष्टान् पुनः दोबार मारय कह कर, लुलायकम् खड्गेन् छिन्धि छिन्धि तदनन्तर किल किल तब चिकिचिकि पिब पिब रुधिरं च स्फ्रैं स्फ्रैं किरिकिरी कालिकायै नमः यह ह्रीं ह्रीं श्रीं श्रीं श्रीं श्रीं श्रीं काली काली करालोष्ठी फेत्कारिणि खादय छेदय सर्वान् दुष्टान् मारय मारय लुलायकम् खड्गेन् छिन्धि छिन्धि किल किल चिकि चिकि पिब पिब रुधिरं च स्फ्रैं स्फ्रैं किरि किरि कालिकायै नमः कालरात्रि का मन्त्र कहा गया है ।।३४-३६।।

इत्यनेन तु मन्त्रेण करवालेऽभिमन्त्रिते ।
कालरात्री स्वयं तत्र प्रसीदत्यरिहानये ।।३७।।

इस उपर्युक्तमन्त्र से करवाल को अभिमन्त्रित करने से स्वयं कालरात्रि, शत्रुनाश हेतु प्रसन्न होती हैं ।।३७।।

बलेः पूर्वोदिता मन्त्रा नित्यं गुह्यास्तु साधकैः ।
अयं मन्त्रस्तु वक्तव्यस्तस्य हत्याविहानये ।।३८।।

बलि-प्रकरण में पूर्व बताये मन्त्र, साधकों द्वारा नित्य गुप्त रखे जाने चाहिये। उस बलिपशु के हत्या के दोष की हानि के लिए यह मन्त्र कहे॥३८॥

यज्ञार्थे पशवः सृष्टाः स्वयमेव स्वयम्भुवा ।
अतस्त्वां घातयिष्यामि तस्माद् यज्ञे वधोऽवधः ॥३९॥

मन्त्र—यज्ञार्थे........वधोऽवधः मन्त्रार्थ—स्वयं स्वयंभुव ब्रह्मा ने यज्ञ के निमित्त, पशुओं की सृष्टि की है इसीलिए मैं तुम्हें मारूँगा। यज्ञ में किये गये इस वधकार्य से वध का दोष नहीं हो॥३९॥

ततो दैवतमुद्दिश्य काममुद्दिश्य चात्मनः ।
छेदयेत् तेन खड्गेन बलिं पूर्वाननं तु तम् ॥४०॥

तब देवता को तथा अपनी कामना को ध्यान में रखकर उस अभिमन्त्रित षड्ग से पूर्व की ओर मुँह किये हुए, उस बलि-पशु को काट दे ॥४०॥

अथवोत्तरवक्त्रं स्वयं पूर्वमुखस्तथा ।
पूर्वोक्तान् सैन्धवादींस्तु वक्त्रेऽवश्यं नियोजयेत् ॥४१॥

अथवा स्वयं पूर्वमुँह हो उत्तरमुँह बलिपशु का वध करे तब पहले (अन्यतन्त्रों में) बताये सैन्धव (नमक) आदिका उसके मुँह में लेप अवश्य करे॥४१॥

सौवर्णं राजतं ताम्रं रैत्यं पत्रपुटं च वा ।
माहेयं कांस्यमथवा यज्ञकाष्ठमयं च वा ।
पात्रं रुधिरदानाय कर्त्तव्यं विभवावधि ॥४२॥

रुधिरदान हेतु साधक को सोने, चाँदी, ताँबा, रैत्य (रेत का), मिट्टी का, पत्ते के दोनें का, काँसे या यज्ञकाष्ठ का पात्र, सम्पत्ति के अनुसार बनाना चाहिये ॥४२॥

न लौहे वल्कले वापि वैत्रे राङ्गेऽथ सैसके ।
दद्याद्रक्तं बलीनां तु भूमौ स्रुचि स्रुवे तथा ॥४३॥

लोहा, वल्कल (वृक्ष की छाल), बेंत, राङ्गा या सीसा (काँच) के बने पात्रों, स्रुचि, स्रुवा या भूमि पर बलि-पशु का रक्त नहीं देना चाहिये ॥४३॥

न घटे भूतले वापि देयं क्षुद्रे न भाजने ।
रुधिराणि प्रदद्यात्तु भूतिकामो नरोत्तमः ॥४४॥

जो उत्तम राजा अपना ऐश्वर्य चाहता हो वह न घड़े में, न पृथ्वी पर और न किसी छोटे पात्र में ही रुधिर का समर्पण करे ॥४४॥

नरस्य तु सदा रक्तं माहेये तैजसेऽथवा ।
दद्यान्नरपतिस्तत्तु न पत्रादौ कदाचन ॥४५॥

राजा को मनुष्य के रक्त को सदैव मिट्टी या धातु के पात्र में देना चाहिये। पत्ते आदि के दोने में नहीं॥४५॥

हयमेधमृते दद्यान्न कदाचिद्धयं बलिम् ।
तथा दिक्पालमेधे तु गजं दद्यान्नराधिपः ।।४६।।

राजा को अश्वमेघ के अतिरिक्त कभी भी घोड़े की बलि नहीं देनी चाहिये और दिक्पालनामक यज्ञ में ही हाथी की बलि देनी चाहिये ।।४६।।

न कदाचित् तदा देव्यै प्रदद्याद्धयहस्तिनौ ।
हयाकर्षे चामरं तु बलिं दद्यान्नराधिपः ।।४७।।

राजा ऊपर बताये अवसर के अतिरिक्त कभी भी हाथी या घोड़े की बलि न दे। उसे घोड़े के बदले चामर की बलि देनी चाहिये ।।४७।।

सिंहं व्याघ्रं नरं चापि स्वगात्ररुधिरं तथा ।
न दद्यात् ब्राह्मणो मद्यं महादेव्यै कदाचन ।।४८।।

ब्राह्मण साधक को सिंह, बाघ, मनुष्य या अपने शरीर के रक्त अथवा मद्य (मदिरा) से कभी भी महादेवी के लिए बलि नहीं देनी चाहिये।।४८।।

सिंहं व्याघ्रन्नरं दत्वा ब्राह्मणो नरकं व्रजेत् ।
इहापि स्यात् स हीनायुः सुखसौभाग्यवर्जितः ।।४९।।

सिंह, बाघ, मनुष्य की बलि देकर ब्राह्मण नरक को जाता है तथा इस लोक में वह हीनआयुवाला और सुख-सौभाग्य से वर्जित होता है।।४९।।

स्वगात्ररुधिरं दद्याच्चात्मवध्यामवाप्नुयात् ।
मद्यं दत्त्वा ब्राह्मणस्तु ब्राह्मण्यादेव हीयते ।।५०।।

अपने शरीर से निकला हुआ रक्त देकर वह आत्महत्या के पाप का भागी होता है । मदिरा-दान से तो ब्राह्मण, ब्रह्मणत्व से ही हीन हो जाता है ।।५०।।

न कृष्णसारं वितरेद् बलिं तु क्षत्रियादिकः ।
ददतः कृष्णसारं तु ब्रह्महत्या भवेद् यतः ।।५१।।

कृष्णसारमृग के बलिदान से ब्रह्महत्या का पाप लगता है इसलिए क्षत्रिय आदि को कभी भी कृष्णसारमृग की बलि नहीं देनी चाहिये ।।५१।।

यत्र सिंहस्य व्याघ्रस्य नरस्य विहितो वधः ।
ब्रह्मणोक्ता तु बल्यादौ तत्रायं विहितः क्रमः ।।५२।।

जहाँ ब्राह्मण आदि द्वारा सिंह, बाघ या मनुष्य के वध का विधान कहा गया हो वहाँ बलि के पूर्व इस क्रम का आयोजन करना चाहिये ।।५२।।

कृत्वा घृतमयं व्याघ्रं नरं सिंहं च भैरव ।।५३।।
अथवा पूपविकृतं यवक्षोदमयं च वा ।
घातयेच्चन्द्रहासेन तेन मन्त्रेण संस्कृतम् ।।५४।।

हे भैरव ! घी, पूआ या जौ के आटे की बाघ, सिंह और मनुष्य की मूर्ति बनाकर, चन्द्रहास को मन्त्र से अभिमन्त्रित कर उससे उस मूर्ति का वध करना चाहिये।।५३-५४।।

प्रभूतबलिदाने तु द्वौ वा त्रीन् वाग्रतः कृतान् ।
पूजयेत् प्रमुखान् कृत्वा सर्वान् मन्त्रेण साधकः ।।५५।।

यदि बहुत अधिक बलिदान करना हो तो साधक दो या तीन को आगे कर उन्हें प्रमुखता दे, सभी का मन्त्र से पूजन करे ।।५५।।

सामान्यपूजा कथिता बलीनां पूर्वतो मया ।
विशेषो यत्र यत्रास्ति तन्मत्तः श्रृणु भैरव ।।५६।।

हे भैरव ! बली की सामान्यपूजा मैंने पहले ही कहा है। अब जहाँ-जहाँ जो विशेषपूजन करना है उसे मुझसे सुनो।।५६।।

महिषं प्रददेद् देव्यै भैरव्यै भैरवाय वा ।
अनेनैव तु मन्त्रेण तदा तं पूजयेद् बलिम् ।।५७।।

जब देवी, भैरवी या भैरवहेतु महिष (भैंसे) की बलि देनी हो तो इस **वाह—नमोस्तुते** मन्त्र से उस बलिपशु का पूजन करना चाहिये ।।५७।।

यथा वाहं भवान् द्वेष्टि यथा वहसि चण्डिकाम् ।
तथा मम रिपून् हिंस शुभं वह लुलायक ।।५८।।
यमस्य वाहनस्त्वं तु वररूपधराव्यय ।
आयुर्वित्तं यशो देहि कासराय नमोऽस्तु ते ।।५९।।

मन्त्रार्थ—हे लुलायक, महिष—जिस प्रकार आप वाह (घोड़े) से द्वेष करते हैं और जिस प्रकार आप चण्डिका को वहन करते हैं उसी प्रकार आप मेरे शत्रुओं का वध करें एवं मेरे लिये शुभ को वहन करें। हे अव्यय ! हे श्रेष्ठ धारण करने वाले । आप यमराज के वाहन हैं, आप हमें यश, आयु और वित्तप्रदान करें। हे कासर ! आपको नमस्कार है।।५८-५९।।

खड्गस्य तु यदा दानं क्रियते तन्त्रमन्त्रकम् ।
जलेनाभ्युक्ष्य कुर्वीत गुहाजातेति भाषयन् ।।६०।।

खड्ग का जब तन्त्र-मन्त्र पूर्वक दान करना हो तो गुहाजात कहते हुए सर्वप्रथम खड्ग का जल से अभ्युक्षण करना चाहिये।।६०।।

दैवे पैत्रे च शुभगः खड्गस्त्वं खड्गसन्निभः ।
छिन्धि विघ्नान् महाभाग गुहाजात नमोऽस्तु ते ।।६१।।

उस समय **दैवे.....नमोस्तुते** मन्त्र पढ़े। **मन्त्रार्थ**—हे खड्ग आप देवतासम्बन्धी, पितरोंसम्बन्धी कार्यों में खड्ग (गैण्डे) के समान शुभ को प्रदान करने वाले हैं। हे महाभाग ! आप विघ्नों को काट डालिये। हे गुहाजात ! आपको नमस्कार है।।६१।।

प्रदाने कृष्णसारस्य मन्त्रोऽयं परिकीर्तितः ।
कृष्णसार ब्रह्ममूर्ते ब्रह्मतेजोविवर्धन ।
चतुर्वेदमयं प्राज्ञ प्रज्ञां देहि यशो महत् ।।६२।।

कृष्णसार मृग की बलिप्रदान करने के लिए यह मन्त्र **कृष्णसार—महत्**

कहा गया है। **मन्त्रार्थ**—हे ब्रह्मरूप कृष्णसार ! हे ब्रह्मतेज बढ़ाने वाले ! हे चारोवेदों के स्वरूप, हे बुद्धिमान् ! आप मुझे विशेषबुद्धि तथा महान्यश प्रदान करें॥६२॥

तथा शरभपूजायां मन्त्रमेतत् प्रकीर्तितम् ॥६३॥
त्वमष्टपादो विभ्रष्टचन्द्रभागसमुद्भव ।
अष्टमूर्ते महाबाहो भैरवाख्य नमोऽस्तु ते ॥६४॥
यथा भैरवरूपेण वराहो निहतस्त्वया ।
तथा शरभरूपेण रिपून् विघ्नान् निषूदय ॥६५॥

तथा शरभ पूजा में यह मन्त्र बताया गया है—त्वमष्टपादो–निषूदय। हे आठ पैरों से युक्त, हे चन्द्रमा के टूटे अंश से उत्पन्न ! हे आठरूपोंवाले भैरव नामक महाबाहु। आपको नमस्कार है। आपके द्वारा जिस प्रकार भैरवरूप से वाराह का वध किया गया वैसे ही अपने शरभरूप से आप मेरे शत्रुओं एवं विघ्नों को नष्ट कीजिए॥६३-६५॥

हरिस्त्वं हररूपेण यथा वहसि चण्डिकाम् ।
तथा शुभानि मे नित्यं बहुविघ्नांश्च सूदय ॥६६॥
त्वं हरिः सिंहरूपेण जगत्प्रत्यूहरूपिणम् ।
जघान येन सत्येन हिरण्यकशिपुं हरन् ।
इत्येवं सिंहपूजायां क्रम उक्तो मयानघ ॥६७॥

हे अनघ (निष्पाप) ! सिंहपूजा में मेरे द्वारा यह क्रम (मन्त्रक्रम) **हरिस्त्वं-हरन्** कहा गया है। **मन्त्रार्थ**—हे हरि ! जिस प्रकार आप अपने शिवरूप में चण्डिका को वहन करते हैं उसी प्रकार मेरे लिए नित्य शुभों को वहन करें। आपने विष्णु होते हुए भी जिस सिंह के रूप से संसार के विघ्नस्वरूप हिरण्यकशिपु का हरण करते हुए अपने जिस सत्वबल से उसे मार डाला था। उसी से मेरे बहुत से विघ्नों को आप नष्ट कीजिए॥६६-६७॥

नरे स्वगात्ररुधिरे पर्यायं शृणु भैरव ॥६८॥
पीठे चेद् दीयते मर्त्यो बलि दद्यात् श्मशानके ।
श्मशानं हेरुकाख्यं तु तत्पूर्वं प्रतिपादितम् ॥६९॥

हे भैरव ! अब मनुष्य या अपने शरीर के रक्त से बलि की विधि सुनो। यदि कामरूपपीठ में मनुष्य की बलि देनी हो तो हेरुक नामक श्मशान में, जिसके विषय में पहले ही बताया गया है, बलि करना चाहिये॥६८-६९॥

कामाख्यानिलये शैले ओड्रादौ विद्धि तत् क्रमम् ।
मम रूपं श्मशानं तद् भैरवाख्यं च कथ्यते ॥७०॥

कामाख्या देवी के निवासस्थान, पर्वत पर, ओड्रपीठ के आदि में उसकी स्थिति समझो। यह श्मशान मेरा ही स्वरूप है तथा भैरव नाम से पुकारा जाता है॥७०॥

तत्राङ्गत्वं तपःसिद्धौ त्रिभागां तु भविष्यति ।
पूर्वाङ्गे भैरवाख्ये तु समुत्सृष्टिर्नरस्य तु ॥७१॥

दक्षिणाङ्गे शिरो दद्याद् भैरव्या मुण्डमालया ।
रुधिरं पश्चिमाङ्गे तु हेरुकाख्यै नियोजयेत् ।।७२।।
दत्त्वा सम्पूज्य तु नरं विसृज्यागमनक्रमे ।
पीठश्मशानेषु बलिं नेत्रेत्तु बलिदीपकम् ।।७३।।

वहाँ की गई सिद्धि तीन भागों में बँट जाती है, भैरव नामक पूर्व बलिभाग में मनुष्य को डाल कर दक्षिणीभाग में मुण्डमालाधारिणी भैरवी द्वारा शिर प्रदान करे। रुधिर को हेरुकाख्य के पश्चिमीभाग में अर्पित करे। आगमन के क्रम में उस मनुष्य का पूजन कर पीठ में, श्मशान में, बलि दे तथा नेत्र पर बलि-दीपक प्रज्ज्वलित करे।।७१-७३।।

अन्यत्रापि यतो यत्र दीयते यन्महाबलिः ।
तत्राप्यन्यत्र चोत्सृज्यच्छित्वान्यत्र शिरोऽमृतम् ।
नियोजयेत् साधकस्तु विसृज्य न विलोकयेत् ।।७४।।

अन्यस्थानों में भी जहाँ-जहाँ जो महाबलि दी जाती है वहाँ (अन्यस्थान पर) बलि का छेदन कर, साधक को अमृतरूप शिर को अन्यत्र रखना चाहिये। साधक एक बार बलि विसर्जित कर पुनः उसे न देखे।।७४।।

सुस्नातं मनुजं दीप्तं पूर्वाह्ननियताशनम् ।
मांसमैथुनभोग्येन हीनं स्रक्चन्दनोक्षितम् ।।७५।।
कृत्वोत्तरामुखं तं तु तदङ्गेष्वङ्गदेवताः ।
पूजयेत् तं तु नाम्ना तु दैवतेन च मानुषम् ।।७६।।

साधक भलीभाँति स्नान किये हुए, मनुष्य को, जो दीप्त हो, जो पूर्वाह्न में नियत भोजन कर लिया हो, मांस-मैथुन के भोग्य से हीन हो और चन्दन तथा माला धारण किये हो, उसे उत्तरमुँह खड़ा करके, अङ्ग देवताओं के नामोल्लेख पूर्वक, उस मनुष्य के अङ्गों में पूजन करे।।७५-७६।।

तद्ब्रह्मरन्ध्रे ब्रह्माणं तन्नासायां च मेदिनीम् ।।७७।।
कर्णयोस्तु तथाकाशं जिह्वायां सर्वतोमुखम् ।
ज्योतींषि नेत्रयोर्विष्णुं वदने परिपूजयेत् ।।७८।।

उसके ब्रह्मरन्ध्र में ब्रह्मा, नासिका में पृथ्वी, कानों में आकाश, जिह्वा में सर्वतोमुख शिव, नेत्रों में नक्षत्रों का, मुख में विष्णु का सब प्रकार से पूजन करे।।७७-७८।।

ललाटे पूजयेच्चन्द्रं शक्रं दक्षिणगण्डतः ।
वामगण्डे तथा वह्निं ग्रीवायां समवर्तिनम् ।।७९।।
केशाग्रे निर्ऋतिं मध्ये भ्रुवोपि प्रचेतसम् ।

नासामूले तु श्वसनं स्कन्धे चापि धनेश्वरम्।
हृदये सर्पराजं तु पूजयित्वा पठेदिदम् ।।८०।।

ललाट में चन्द्रमा, दक्षिणगण्डस्थल में इन्द्र, वामगण्डस्थल में अग्नि, गले में समवर्तिन (यम), केश के अगले भाग में निर्ऋति तथा भौहों के मध्य में प्रचेतस (वरुण), नासामूल में वायु, स्कन्ध में धनेश्वर (कुबेर), हृदय में सर्पराज (वासुकी) का पूजन कर, इन (निम्नलिखित) **नरवर्य-सति** मन्त्रों को पढ़े।।७९-८०।।

नरवर्य्य महाभाग सर्वदेवमयोत्तम।
रक्ष मां शरणापन्नं सपुत्रपशुबान्धवम् ।।८१।।
सराज्यं मां सहामात्यं चतुरङ्गसमन्वितम्।
महातपोभिर्ज्ञानैश्च यज्ञैर्यत् साध्यतेऽमृतम्।
रक्ष परित्यज्य प्राणान्मरणे नियते सति ।।८२।।
राक्षसाश्च पिशाचाश्च वेतालाद्याः सरीसृपाः।
तन्मे देहि महाभाग त्वं चापि प्राप्नुहि श्रियम् ।।८३।।
त्वत्कण्ठनालगलितैः शोणितैरङ्गसंयुतैः।
नृपाश्च रिपवश्चान्ये न मां ते घ्नन्तु त्वत्कृते ।।८४।।
आप्यायस्वात्मवन्मृत्वा मरणे नियते सति ।।८५।।

मन्त्रार्थ–हे मनुष्यों में श्रेष्ठ ! हे महाभाग ! हे सभी देवों के स्वरूप होने से उत्तम, मुझ शरण में आये हुए की पशु-पुत्र और बान्धवों के सहित आप रक्षा करें। मृत्यु सुनिश्चित है इसलिए अपने प्राणों का त्यागकर राज्य, अमात्य एवं चतुरङ्ग सहित मेरी रक्षा करें। महान् तपस्या, ज्ञान और यज्ञ के द्वारा जो अमरता प्राप्त होती है, हे महाभाग वह आप मुझे प्रदान करें तथा आप स्वयं शोभा को प्राप्त करें। आपके लिए राक्षस, पिशाच, वेताल, सरीसृपवर्ग, राजा या अन्य शत्रुगण मुझे न मारें। मृत्यु तो नियत है, अतः स्वयं मरकर अपने कण्ठ के नाल से बहे हुए रक्त तथा अङ्गों से आप हमारी वृद्धि करें।।८१-८५।।

एवं सम्पूज्य विधिवत् पूर्वतन्त्रैश्च पूजयेत्।
पूजितो मत्स्वरूपोऽयं दिक्पालाधिष्ठितो भवेत् ।।८६।।
अधिष्ठितस्तथान्यैश्च ब्रह्माद्यैः सकलैः सुरैः।
कृतपापोऽपि मनुजो निष्पाप्मा स तु जायते ।।८७।।

इस प्रकार विधिपूर्वक पूजन कर पूर्वतन्त्रों में वर्णित विधि से भी पूजन करे। उक्त रीति से पूजे जाने पर यह (पशुरुपीनर) मेरा (शिव का) स्वरूप हो, दिक्पाल पद पर अधिष्ठित होता है तथा वह ब्रह्मादि अन्य समस्त देवताओं द्वारा अधिष्ठित होता है। इससे वह मनुष्य पापी होते हुए भी निष्पाप हो जाता है।।८६-८७।।

तस्य निष्कलुषस्याशु पीयूषं शोणितं भवेत् ।
प्रीणाति च महादेवी जगन्माता जगन्मयी ।।८८।।

उस निष्कलुष का रक्त, शीघ्र ही अमृत हो जाता है तथा महादेवी जो जगत् की माता, जगत्स्वरूपा हैं, उनको प्रसन्न करता है।।८८।।

सोऽपि कायं परित्यज्य मानुषं नचिरान्मृतः ।
भवेद् गणानामधिपो मयापि बहुसत्कृतः ।।८९।।

वह (बलिपशुरुपीमनुष्य) भी मरकर शीघ्र ही मनुष्यशरीर को छोड़कर गणों का स्वामी हो जाता है मेरे द्वारा बहुत सम्मानित होता है।।८९।।

इतोऽन्यथा पापयुक्तं मलमूत्रवसायुतम् ।
तं बलिं न हि गृह्णाति कामाख्यान्यापि नामतः ।।९०।।

इससे अतिरिक्त स्थिति में पापयुक्त, वसा-मल मूत्रादि से युक्त, उस बलि को कामाख्या या अन्य देवियाँ नाम-मात्र को भी ग्रहण नही करतीं।।९०।।

अन्येषां महिषादीनां बलीनामथ पूजनात् ।
कायो मेध्यत्वमायाति रक्तं गृह्णाति वै शिवा ।।९१।।

अन्य महिष (भैंसा) आदि बलियों के पूजन से उनका शरीर, पवित्रता को प्राप्त करता है तथा उसके रक्त को शिवा ग्रहण कर लेती हैं।।९१।।

अन्येभ्योऽपि च देवेभ्यो यदा यत्तु प्रदीयते ।
तदर्चितं प्रदद्यात् तु पूजिताय सुराय वै ।।९२।।

अन्य देवताओं को भी जब जो दिया जाता है वह उसी पूजे गये देवता को दिया जाना चाहिये ।।९२।।

काणं पङ्गुं चातिवृद्धं रोगिणं च गलद्व्रणम् ।
क्लीबं हीनाङ्गमथवा वृद्धलिङ्गं कुलक्षणम् ।।९३।।
श्वित्रिणं चातिह्रस्वं च महापातकिनं तथा ।
अद्वादशकवर्षीयं शिशुसूतकसंयुतम् ।।९४।।
ऊर्ध्वं संवत्सराच्चापि महागुरुनिपातिनम् ।
बलिकर्मणि चैतांस्तु वर्जयेत् पूजितानपि ।।९५।।

काने, लूले, अत्यन्तवृद्ध, रोगी, रक्तबहतेघावोंवाले, नपुंसक, हीन-अंग या वृद्धलिङ्गवाले, बुरेलक्षणोंवाले, सफेददागवाले, बहुत छोटे, महापापी, बारहवर्ष से कम, सूतकयुक्त बच्चे, एक वर्ष से ऊपर के शिशु, महागुरु का वध करने वाले, पूजे गये पशुपक्षी, विशेष कर मनुष्यों का बलिकर्म में निषेध करना चाहिये।।९३-९५।।

पशूनां पक्षिणां वापि नराणां च विशेषतः ।
स्त्रियं न दद्यात् तु बलीन् दत्त्वा नरकमाप्नुयात् ।।९६।।

सङ्घातबलिदानेषु योषितं पशुपक्षिणः ।
बलिं दद्यान्मानुषीं तु त्यक्त्वा सङ्घातपूजितम् ।।९७।।

स्त्रियों की बलि न दे। स्त्रीबलि देने से साधक नरक को प्राप्त करता है। यदि सामूहिकबलिदान हो तो मनुष्य की स्त्रियों को छोड़कर पशुपक्षियों की सामूहिकरूप से पूजी गयी स्त्रियों की बलि दे॥९६-९७॥

न त्रिमासीयकान्यूनं पशुं दद्याच्छिवाबलिम् ।
न च त्रैपक्षिकान्यूनं प्रदद्याद् वै पतत्त्रिणाम् ।।९८।।

न तीन मास से कम अवस्था के पशु की बलि दे और न तो तीन-पक्ष (डेढ़ मास) से कम अवस्था के पक्षी की ही शिवा को बलि दे॥९८॥

काणव्यङ्गादिदुष्टं तु न पशुं पक्षिणं तथा ।
देव्यै दद्यात् यथा मर्त्यं तथैव पशुपक्षिणौ ।।९९।।
छिन्नलाङ्गूलकर्णादीन् भग्नदन्ताँस्तथैव च ।
भग्नशृङ्गादिकं वापि न दद्यात् तु कदाचन ।।१००।।
न ब्राह्मणं बलिं दद्याच्चाण्डालमपि पार्थिव ।
नोत्सृष्टं द्विजदेवेभ्यो भूपतेस्तनयं तथा ।।१०१।।

हे राजन ! दूषितअङ्गोवाले की, काने, अङ्गहीन मनुष्य की ही भाँति पशु-पक्षी की भी देवी के लिए बलि न दे और न कभी पूँछ, कान आदि कटे एवं दाँत टूटे हुए, सींग आदि टूटे प्राणियों, न ब्राह्मण या चाण्डाल की ही बलि दे एवं न तो देवता और ब्राह्मण के निमित्त छोड़े गये जीव या राजकुमार की ही बलि दे ॥९९-१०१॥

रणेन विजितं दद्यात्तनयं रिपुभूभृतः ।
स्वपुत्रं भ्रातरं वापि पितरं चाविरोधिनम् ।।१०२।।
विट्पतिं च न दद्यात्तु भागिनेयं च मातुलम् ।
अनुक्तान्नापि दद्यात् तु तथाज्ञातान् मृगद्विजान् ।।१०३।।

युद्ध में जीते हुये शत्रु या शत्रु-राजा के पुत्र की बलि दी जा सकती है किन्तु अपने पुत्र, भाई, पिता, अविरोधी (मित्र), विट्पति (भड़ुआ), भगिना या मामा की और अन्य भी न बताये स्वजनों तथा पशुओं व अज्ञात द्विजातियों (पक्षियों) की बलि नहीं करनी चाहिये ॥१०२-१०३॥

उक्तालाभे प्रदद्यात्तु गर्दभं चोष्ट्रमेव च ।
लाभेऽन्येषां न वितरेद् व्याघ्रमुष्ट्रं खरं तथा ।।१०४।।

साधक उपर्युक्त (बलि हेतु निर्धारित पशुओं) के न मिलने पर गदहा एवं ऊँट की भी बलि दे किन्तु अन्य पशुओं के सुलभ होने पर बाघ, ऊँट और गदहे की बलि न दे॥१०४॥

सम्पूज्य विधिवन्मर्त्यं पशुं पक्षिणमेव वा।
सञ्छिन्नं चापि मन्त्रेण मन्त्रेणैव निवेदयेत्।
नारं मर्त्यशिरोरक्तं देव्याः सम्यग् निवेदयेत्॥१०६॥

बलिहेतु उपस्थित मनुष्य, पशु या पक्षी की पहले विधिवत् पूजा करे तब मन्त्रोचारण पूर्वक काटे तथा उन्हें मन्त्रोच्चारण करते हुए देवी को निवेदित करे। इसमें मनुष्य के सिर का रक्त देवी को भली-भाँति अर्पित करे ॥१०५-१०६॥

छागं तु वामतो दद्यान्माहिषं वितरेत् पुरः।
पक्षिणं वामतो दद्यादग्रतो देहशोणितम्॥१०७॥

छाग की बाई ओर, भैंसे की सामने, पक्षियों की बाएँ तथा अपने शरीर से उत्पन्न रक्त की बलि, देवी को सामने से प्रदान करे ॥१०७॥

क्रव्यादानां पशूनां तु पक्षिणां तु शिरोऽसृजम्।
वामे निवेदयेत् पार्श्वे जलजानां च सर्वशः॥१०८॥

मांसाहारी पशुओं और पक्षियों के रक्तहीनसिर देवी के बाईं ओर तथा सभी जल से उत्पन्न जीवों के शिर को पार्श्व में निवेदित करे॥१०८॥

कृष्णसारस्य कूर्मस्य खड्गस्य शशकस्य च।
ग्राहाणामथ मत्स्यानामग्रे एव निवेदयेत्॥१०९॥

कृष्णसार मृग, कछुआ, गैंडा, खरगोश, ग्राह और मछलियों के देवी के अगले भाग में ही समर्पित करे॥१०९॥

सिंहस्य दक्षिणे दद्यात् खड्गिनोऽपि च दक्षिणे।
पृष्ठदेशे न दद्यात् तु शिरो वा रुधिरं बलेः॥११०॥

सिंह और गैंडे की दक्षिणीभाग में बलि दे। बलिपशु के शिर या रक्त की बलि, कभी भी पीछे की ओर न दे॥११०॥

नैवेद्यं दक्षिणे वामे पुरतो न तु पृष्ठतः।
दीपं दक्षिणतो दद्यात् पुरतो वा न वामतः॥१११॥

नैवेद्य देवता के दाहिने, बायें या सामने चढ़ाना चाहिये न कि पीछे की ओर, दीप, दाहिने या सामने देना चाहिये, बाईं ओर नहीं॥१११॥

वामतस्तु तथा धूपमग्रे वा न तु दक्षिणे।
निवेदयेत् पुरोभागे गन्धं पुष्पं च भूषणम्॥११२॥

धूप बाईं या आगे की ओर देना चाहिये दहिनी ओर नहीं, इसी प्रकार चन्दन, पुष्प और आभूषण सामने की ओर से निवेदित करे॥११२॥

मण्डले चेन्मध्यभागे वामदक्षादिपूर्ववत्।
मदिरां पृष्ठतो दद्यादन्यत् पानं तु वामतः॥११३॥

मण्डल में पूजन करना हो तो पहले की ही भाँति मध्यभाग में बायें या दक्षिण की ओर निवेदित करना चाहिये। यदि मदिरा अर्पित करनी हो तो पिछलेभाग में तथा अन्य पेयपदार्थ वामभाग में अर्पित करे॥११३॥

अवश्यं विहितं यत्र मद्यं तत्र द्विजः पुनः।
नारिकेलजलं कांस्ये ताम्रे वा विसृजेन्मधु ॥११४॥

जहाँ मद्य का प्रयोग आवश्यकरूप से विहित हो वहाँ ब्राह्मण, काँसे के पात्र में नारीयल का पानी या ताँबे के पात्र में मधु चढ़ावे॥११४॥

नापद्यपि द्विजो मद्यं कदाचिद् विसृजेदपि।
ऋते पुष्पासवादुक्ताद् गुञ्जनाद् वा विशेषतः ॥११५॥

आपत्तिकाल में भी ब्राह्मण को कभी भी पुष्पों के रस या विशेषकर मधु के अतिरिक्त मदिरा का समर्पण नहीं करना चाहिये॥११५॥

राजपुत्रस्तथामात्यः सचिवः सौप्तिकादयः।
दद्युर्नरबलिं भूप सम्पत्त्या विभवाय च ॥११६॥

हे राजा! राजा, राजकुमार, अमात्य, सचिव, सौप्तिक आदि सम्पत्ति और वैभव के लिए नरबलि प्रदान करें॥११६॥

नृपाननुमते मर्त्यं दत्त्वा पापमवाप्नुयात्।
उपप्लवे रणे वापि यथेच्छं वितरेन्नरम्।
यः कश्चिद्राजपुरुषो नान्यस्त्वपि कदाचन ॥११७॥

राजा की आज्ञा के बिना मनुष्य की बलि देने वाला साधक, पाप को प्राप्त करता है किन्तु मनुष्य विप्लव या युद्ध के समय इच्छानुसार कार्य करे। यदि वह कोई राज-पुरुष हो तो ऐसा करे, अन्य कभी न करे॥११७॥

बलिदानदिनात् पूर्वं दिवसे तु बलिं नरम्।
मानस्तोकेति मन्त्रेण देवीसूक्तेन येन च ॥११८॥
गन्धद्वारेत्यनेनापि खड्गशीर्षे निधाय च।
तस्मिन् खड्गे सुगन्धादि दत्त्वा तेनाधिवासयेत् ॥११९॥
गन्धादिकं तु खड्गस्थं गले तस्य प्रदापयेत्।
अम्बेऽम्बिकेति मन्त्रेण रौद्रेण भैरवस्य च ॥१२०॥

बलिदानकर्म में बलिदान के पहले दिन, बलिरूप मनुष्य को **मानस्तोके**-मन्त्र एवं **देवीसूक्त** से खड्ग को सिर पर रखकर उस खड्ग पर **गन्धद्वारा**-मन्त्र से सुन्दर गन्ध आदि देकर अधिवास करे। गन्धादिक को उसके गले पर स्थित, खड्ग पर **अम्बे-अम्बिके**-मन्त्र या **रौद्रमन्त्र** या **भैरव के मन्त्र** से चढ़ाये॥११८-१२०॥

एवं तु संस्कृते मर्त्यं देवी रक्षति तं बलिम् ।।१२१।।
न तस्य व्याधयश्चापि क्षुण्णताराजसी न च ।
न सूतकं दूषयेत्तज्ज्ञात्युत्पत्तिमृतादिकम् ।।१२२।।

इस प्रकार से संस्कारित उस मनुष्यरुपी बलि की देवी रक्षा करती हैं । उसे किसी प्रकार की छोटी या बड़ी व्याधियाँ नहीं होती और न तो उसे जाति, उत्पत्ति मृत्यु आदि सम्बन्धी कोई छूत ही लगती है ।।१२१-१२२।।

छिन्नं नरस्य शीर्षं तु पतितं यत्र यत्र च ।
यच्छुभं चाशुभं वापि पश्वादीनां च तच्छृणु ।।१२३।।

बलिप्रक्रिया में मनुष्य या पशु आदि का कटा हुआ सिर जहाँ-जहाँ गिरता है, उसका जो भी शुभ या अशुभ फल होता हैं, उसे सुनो ।।१२३।।

छिन्नं शिरस्तथैशान्यां नारं दिश्यथ राक्षसे ।
पतितं राज्यहानिं च विनाशं च विनिर्दिशेत् ।।१२४।।

मनुष्य का कटा हुआ सिर ईशान-कोण में गिरने पर राज्यहानि और राक्षस-दिशा (नैर्ऋत्यकोण) में गिरने पर विनाश की सूचना देता है।।१२४।।

पूर्वाग्नियाम्यवारुण्य - वायव्यादिगतं क्रमात् ।
श्रियं पुष्टिं भय लाभं पुत्रलाभं धनं तथा ।
क्रमाद् विनिर्दिशेन्नारं छिन्नशीर्षं तु भैरव ।।१२५।।

हे भैरव ! मनुष्य का कटा हुआ सिर, पूर्व, अग्निकोण, दक्षिण, पश्चिम, वायव्य आदि दिशाओं में गिरने पर क्रमशः श्री, पुष्टि, भयलाभ, पुत्रलाभ, धनप्राप्ति आदि सूचित करता है ।।१२५।।

उत्तरादिक्रमादेव महिषस्यापि मस्तकः ।
पतितो वायुकाष्ठान्ते सूचयेद् यच्छृणुष्व तत् ।।१२६।।
भाग्यहानिन्तथैश्वर्यं वित्तं रिपुजयं भयम् ।
राज्यलाभं श्रियं चापि क्रमाद् विद्धि तु भैरव ।।१२७।।

हे भैरव ! भैंसे का भी मस्तक, उत्तरदिशा से प्रारम्भ कर वायव्यकोण पर्यन्त गिरने पर जो सूचित करता है, उसे सुनो । उसे क्रमशः भाग्य, हानि, ऐश्वर्य, धन, शत्रु पर विजय, भय, राज्यलाभ और श्रीप्राप्ति का सूचक जानो।।१२६-१२७।।

पशूनां चैव सर्वेषां छागादीनामशेषतः ।
एवं फलं क्रमाद् विद्यादृते जलभवाण्डजौ ।।१२८।।

जल में उत्पन्न और अण्डे से उत्पन्न प्राणियों के अतिरिक्त छाग (बकरा) आदि समस्त पशुओं का भी फल इसी क्रम से जानना चाहिये।।१२८।।

जलजानां पक्षिणां तु याम्यनैर्ऋत्ययोर्भयम् ।
अन्यत्र तु श्रियं दद्यात् पतितं शातितं शिरः ।।१२९।।

जल से उत्पन्न जीवों तथा पक्षियों का गिरा हुआ या कटकर गिरा हुआ सिर, दक्षिण और नैर्ऋत्य दिशाओं में भय तथा अन्यत्र श्री प्रदान करता हैं।।१२९।।

यः स्यात् कटकटाशब्दो दन्तानां छिन्नमस्तके ।
नराणां पशुपक्ष्यादिग्राहादीनां च रोगदः ।।१३०।।

मनुष्यों, पशु, पक्षी, ग्राह आदि के मस्तक के कटने पर यदि उनके दाँतों के कट-कटाने का शब्द होवे तो यह रोग देने वाला होता है ।।१३०।।

लोतकं चक्षुषोर्जातं यदि स्रवति मस्तके ।
छिन्ने नरस्य राज्यस्य तदा हानिं विनिर्दिशेत् ।।१३१।।

यदि मनुष्य के मस्तक के कटने पर, उसके आँखों से लोतक (आँसू) बहे तो यह राज्य की हानि सूचित करता है।।१३१।।

महिषे मस्तके नेत्राद् यदि स्रवति लोतकम् ।
छिन्ने निवेदितं वैरिभूपमृत्युं तदादिशेत् ।।१३२।।

भैंसे का मस्तक कटने पर यदि उसके नेत्र से आँसू बहे तो उसे निवेदित करने से बैरिराजा की मृत्यु सूचित होती है।।१३२।।

अन्येषामथ पश्वादिबलीनां शिरसोऽर्दितात् ।
निर्गतं लोतकं धत्ते परां भीतिं गदं तथा ।।१३३।।

अन्य बलिपशुओं के कटे हुए सिर से निकलने वाला आँसू, अत्यन्तभय और रोग प्रदान करता है ।।१३३।।

हसतिच्छिन्नशीर्षं चेन्नारं स्यात् तु रिपुक्षयः ।
श्रीवृद्धिरायुषो वृद्धिः सदा दातुरसंशयः ।।१३४।।

यदि मनुष्य का कटा हुआ सिर हँसता है तो निसन्देह दाता के शत्रु का नाश, दाता की श्रीवृद्धि और आयुष्यवृद्धि होती है ।।१३४।।

यद् यद्वाक्यं निगदति तथा भवति चाचिरात् ।
हूङ्काराद्राज्यहानिः स्याच्छ्लेष्मस्रावाच्च पञ्चता ।।१३५।।

वह उस समय जो-जो वाक्य बोलता है, वह शीघ्र ही हो जाता है । वह यदि हुङ्कार करे तो राज्य हानि तथा मुँह से लार चुवाये तो साधक की पञ्चता (मृत्यु) होती है ।।१३५।।

देवानां यदि नामानि भाषते छिन्नमस्तकः ।
विभूतिमतुलां विद्यात् षणमासाभ्यन्तरे तदा ।।१३६।।

यदि कटा हुआ सिर, देवताओं के नाम का उच्चारण करे तो छः मास के अन्तर्गत ही साधक को अतुलविभूति की प्राप्ति होती है ।।१३६।।

रुधिरादानकाले तु शकृन्मूत्रे यदि स्रवेत् ।
कार्यं तदाधश्चोर्ध्वं वा दातुः स्यान्मरणं तदा ।।१३७।।

रक्त-ग्रहण के समय यदि बलिपशु को मल-मूत्र हो जाय या वह ऊपर नीचे करे तो दाता का उस समय मरण होता है ।।१३७।।

आक्षेपाद् वामपादस्य महारोगः प्रजायते ।
अन्यदाक्षेपचलनैः कल्याणमुपजायते ।।१३८।।

उसके द्वारा बायाँ पैर पटके जाने से महारोग उत्पन्न होता है अन्य (दाहिने) पैर के पटकने से कल्याण उत्पन्न होता है ।।१३८।।

माहिषस्य तु रक्तस्य मानुषस्य तु साधकः ।
अङ्गुष्ठानामिकाभ्यां तु किञ्चिदुद्धृत्य भूतले ।।१३९।।
महाकौशिकमन्त्रेण निक्षिपेद् बलिमुत्तमम् ।
देवेभ्यः पूतनादिभ्यो नैर्ऋत्यां दिशि पूर्वतः ।।१४०।।

साधक भैसें या मनुष्य के रक्त के कुछ अंश को अपनी-अनामिका और अगूँठे से (तत्व मुद्रा में) थोड़ा धरती पर छिड़क दे। तत्पश्चात् महाकौशिकमन्त्र से देवताओं और पूतना आदि के निमित्त पूर्व से नैऋत्यकोण पर्यन्त उत्तमबलि प्रदान करे।।१३९-१४०।।

महिषः पञ्चवर्षीयः पञ्चविंशतिवार्षिकः ।
बलिर्देयो नरो देव्यै तस्य रक्तं तु भूतये ।।१४१।।

ऐश्वर्यप्राप्ति हेतु साधक को देवी के लिए पाँच-वर्ष के भैंसे या पच्चीस-वर्ष के मनुष्य की बलि देनी चाहिये तथा उसका रक्त भी प्रदान करना चाहिये ।।१४१।।

नेत्रबीजत्रयं कामबीजं हन्ता प्रजापतिः ।
वह्निबीजं षट्स्वराभ्यां संपृक्तश्च तथा परः ।।१४२।।
स एवैतास्तथैतावदादिवर्गान्तिसंयुतः ।
षष्ठस्वरशिखाबिन्दुश्चन्द्रयुक्तस्तथापरः ।।१४३।।
द्विर्मासिकाबीजकान्तः कौशिकीत्यभिमन्त्रणम् ।
एष बलिः स्वाहेति मन्त्रोऽयं कौशिकी स्मृतः ।।१४४।।

नेत्रबीज त्रय, काम बीज, हन्ता, प्रजापति, वह्नि बीज एवं षष्ट स्वर युक्त पर, इसी प्रकार विसर्ग युक्त, छठे स्वर सहित शिखाविन्द और चन्द्र युक्त पर द्विर्मासिक कौशिकी एषबलिः स्वाहा यह कौशिक मन्त्र कहा गया है।।१४२-१४४।।

नृपो वैरिबलिं दद्यात् खड्गमामन्त्र्य पूर्वतः ।
महिषं चाथ छागं वा वैरिनाम्नाभिमन्त्र्य च ।।१४५।।
सूत्रेण वदने बद्धं त्रिधा तस्य तु मन्त्रवैः ।
छित्त्वा तस्योत्तमाङ्गं तु देव्यै दद्यात् प्रयत्नतः ।।१४६।।

राजा को पहले की भाँति खड्ग को आमन्त्रित कर, अपने शत्रु को अथवा शत्रु के नाम से अभिमन्त्रित कर भैंसे या बकरी की बलि देनी चाहिये। ऐसा करते समय पहले मन्त्रोच्चारपूर्वक सूत्र से उसके शरीर को तीन बार बाँधे तब उसके उत्तमअङ्ग (शिर) को यत्नपूर्वक देवी को प्रदान करना चाहिये ।।१४५-१४६।।

यदा यदा रिपोर्वृद्धिबलिदानं तदा परम् ।
दद्यात् तदा शिरश्छित्त्वा रिपोस्तस्य क्षयाय च ।।१४७।।

जब-जब शत्रु की वृद्धि हो तब-तब उस के नाश हेतु उस शत्रु के सिर को काटकर, श्रेष्ठ बलि देनी चाहिये ।।१४७।।

प्राणप्रतिष्ठां च रिपोः कुर्यात् तस्मिन् पशावथ ।
तस्मिन् क्षीणे रिपोः प्राणाः क्षीयन्ते विपदा युताः ।।१४८।।

उस बलिपशु में अपने शत्रु के प्राणों की प्रतिष्ठा करनी चाहिये। ऐसा करने के कारण उस पशु के नष्ट होने पर शत्रु के प्राण भी विपत्ति में पड़कर नष्ट हो जाते हैं ।।१४८।।

आदौ विरुद्धरूपिणि चण्डिके च ततः परम् ।।१४९।।
वैरिणन्त्वमुकं चेति याहीत्याम्रेडितं पुनः ।
वह्निभार्या ततः पश्चात् खड्गमन्त्रं प्रकीर्तितम् ।।१५०।।

पहले विरुद्धरूपिणी तब चण्डिके तत्पश्चात् वैरिणन्तु, अमुकं पुनः यह कहकर वह्निजाया (स्वाहा) कहने से बना मन्त्र **(विरुद्धरूपिणी चण्डिके अमुकं वैरिणम् याहि आम्रेडितं स्वाहा)** खड्गमन्त्र कहा गया है।।१४९-१५०।।

स्वयं स वैरी यो द्वेष्टि तमिमं पशुरूपिणम् ।
विनाशय महामारी स्फें स्फें खादय खादय ।।१५१।।
इत्यनेन तु मन्त्रेण बलेः शिरसि पुष्पकम् ।
दद्यात् ततस्तद्रुधिरं द्व्यक्षराभ्यां निवेदयेत् ।।१५२।।

तब वह **स्वयं सवैरि......खादय मन्त्रार्थ**—इस पशु के रूप में उपस्थित उस वैरी को जो मुझसे द्वेष करता है, हे महामारी स्फें स्फें आप खाइये। इस मन्त्र से बलि के सिर पर पुष्प चढ़ाये तब दो अक्षरों से उसका रक्त देवी को निवेदित करे।।१५१-१५२।।

महानवम्यां शरदि यद्येवं दीयते बलिः ।
तदा तदष्टाङ्गभवैर्मांसैर्होमं समाचरेत् ।।१५३।।
दुर्गातन्त्रेण मन्त्रेण प्रणीते दहने शुचौ ।
एवं दत्त्वा बलिं मर्त्यो रिपुक्षयमवाप्नुयात् ।।१५४।।

शरदऋतु (शारदोत्सव) में महानवमी के दिन जब इस प्रकार से बलि दी

जाती है तब आठ अङ्गों से उत्पन्न माँस से दुर्गातन्त्र के मन्त्रों से पवित्र, अग्नि में, विधिपूर्वक होम करे, इस प्रकार बलि देने से मनुष्य अपने शत्रुनाश को प्राप्त करता है ॥१५३-१५४॥

नाभेरधस्ताद्रुधिरं पृष्ठभागस्य च श्रिये ।
स्वगात्ररुधिरं दद्यान्न कदाचन साधकः ॥१५५॥

साधक कभी-भी अपने शरीर का, नाभि के निचले भाग या पृष्ठभाग से निकाला हुआ रक्त देवी को न दे॥१५५॥

नोष्ठस्य चिबुकस्यापि नेन्द्रियाणां च मानवः ।
कण्ठाधो नाभितश्चोर्ध्वं बाह्वोः पाणिमृते तथा ।
प्रदद्याद्रुधिरं घातं नातिकुर्याच्च साधकः ।

कण्ठ (गले) के नीचे तथा नाभि के ऊपर, बाहु और हाथों को छोड़कर ओठ, चिबुक और इन्द्रियों का रक्त, मनुष्य न दे और न तो साधक रक्त निकालने हेतु अधिक घात ही करे॥१५६॥

गण्डयोश्च ललाटकस्य भ्रुवोर्मध्यस्य शोणितम् ।
कर्णाग्रस्य च बाह्वोश्च गलयोरुदरस्य च ॥१५७॥
कण्ठाधो नाभितश्चोर्ध्वं हृद्भागस्य यतस्ततः ।
पार्श्वयोश्चापि रुधिरं दुर्गायै विनिवेदयेत् ॥१५८॥

साधक, दुर्गा देवी को गण्डस्थल, ललाट, भौंहो के बीच का, कानों के अगले भाग का, बाहु, गला, पेट, कण्ठ के नीचे तथा नाभि के ऊपर, हृदयभाग के इधर-उधर का, पार्श्व भाग का रक्त, निवेदित करे ॥१५७-१५८॥

न गुल्फतोऽसृक्प्रदद्यान्न जत्रोर्नापि वक्त्रतः ।
न च रोगबिलादङ्गान्नान्यघाताच्च भैरव ॥१५९॥

हे भैरव ! गुल्फ (घुट्ठी), दाढ़ी, मुँह, रोगग्रस्त या अन्य के किये घाव से रक्त निकाल कर भी न चढ़ावे ॥१५९॥

तदर्थे च कृताघातः सश्रद्धोऽक्षुब्धमानसः ।
श्रुते रक्तं प्रदद्यात्तु पद्मपुष्पस्य पत्रके ॥१६०॥
सौवर्णे राजते कांस्ये लौहे फाले च वा नरः ।
निधाय देव्यै दद्यात् तु तद्रक्तं मन्त्रपूर्वकम् ॥१६१॥

उस (स्वगात्र से निकले रक्त के बलिदान) के लिए आघात, श्रद्धापूर्वक एवं बिना विचलित मन करना चाहिये। घात से उत्पन्न रक्त को कमलपुष्प की पंखुड़ी, सोने, चाँदी, काँसा लोहे के पात्र या फाल में रखकर, उस रक्त को देवी को मन्त्रपूर्वक अर्पित करना चाहिये॥१६०-१६१॥

खननं क्षुरिकाखड्गशङ्कुलादि यदस्त्रकम् ।
घातेन बृहदस्त्रस्य महाफलमवाप्नुयात् ।।१६२।।
पद्मपुष्पस्य पत्रं तु यावद् गृह्णाति शोणितम् ।
तत्प्रमाणे चतुर्भागाधिकं रक्तं तु साधकः ।।१६३।।
न कदाचित् प्रदद्यातु नाङ्गच्छेदमथाचरेत् ।।१६४।।

क्षुरिका, खड्ग, शङ्कुल आदि जैसे अस्त्र से खना जाय, घात किया जाय। बड़े अस्त्र के घात से महान फल प्राप्त होता है। कमल की पंखुड़ी में जितनी मात्रा में रक्त आता है उसके चौथाई भाग से अधिक रक्तसाधक को कभी नहीं चढ़ाना चाहिये और न कभी अपना कोई अंग ही काटना चाहिये ।।१६२-१६४।।

यः स्वहृदयसञ्जातमांसं माषप्रमाणतः ।
तिलमुद्गप्रमाणाद् वा देव्यै दद्यात् तु भक्तितः ।
षण्मासाभ्यन्तरे तस्मात् काममिष्टमवाप्नुयात् ।।१६५।।

जो साधक अपने हृदय से उत्पन्न एक माष (उर्द), तिल या मूँग की मात्रा में मांस, देवी को भक्तिपूर्वक चढ़ाता है, वह उसके कारण छः महीने के भीतर ही अपनी इष्टकामना को प्राप्त कर लेता है ।।१६५।।

बाह्वोस्तु स्कन्धयोर्वापि यो दद्याद् दीपवर्तिकाम् ।
हृदये वा स्नेहपात्रं विना भक्त्या तु साधकः ।।१६६।।
क्षणमात्रेण तद्दीपप्रदानस्य फलं शृणु ।।१६७।।

जो साधक अपनी भुजाओं, कन्धों या हृदय पर बिना घी के पात्र के भक्तिपूर्वक, क्षणमात्र के लिए भी दीप-प्रदान करता है, उसका फल सुनो।।१६६-१६७।।

भुक्त्वा च विपुलान् भोगान् देवीगेहे यदृच्छया ।
कल्पत्रयं तु संस्थाय सार्वभौमो नृपो भवेत् ।।१६८।।

वह बहुत अधिक भोगों को प्राप्त कर, मृत्यु के बाद देवीलोक में तीन कल्पों तक निवास करता है तत्पश्चात् पुनः जन्म लेकर राजा होता है ।।१६८।।

महिषस्य शिरश्छिन्नं सप्रदीपं शिवापुरः ।
हस्ताभ्यां यः समादाय अहोरात्रं तु तिष्ठति ।।१६९।।
स चिरायुः पूतमूर्तिरिह भुक्त्वा मनोरमान् ।
भोगान्ते मद्गृहगो गणानामधिपो भवेत् ।।१७०।।

बलि के पश्चात् जलते हुए दीप के सहित, भैंसे के कटे सिर को हाथों में लेकर जो साधक देवी के मन्दिर में एक-दिन रात (२४ घण्टे) खड़ा रहता है, वह दीर्घायु और पवित्रात्मा होता है। वहाँ इस लोक के सुन्दर भोगों को भोगकर, अन्त में, मेरे धाम में जाकर, गणों का स्वामी होता है ।।१६९-१७०।।

नरस्य शीर्षमादाय साधको दक्षिणे करे।
वामेन रौधिरं पात्रं गृहीत्वा निशि जाग्रतः ।।१७१।।
यावद्रात्रं स्थितो मर्त्यो राजा भवति चेह वै।
मृते मम गृहं प्राप्य गणानामधिपो भवेत् ।।१७२।।

जो साधक, मनुष्य के कटे हुये सिर को दाहिनेहाथ में तथा उसके रक्त से भरापात्र बायेंहाथ में लेकर, रात भर जागता है एवं खड़ा रहता है। वह इस लोक में राजा होता है और मरने पर मेरे लोक में जाकर गणों का स्वामी होता है ।।१७१-१७२।।

क्षणमात्रं बलीनां यः शिरोरक्तं करद्वये।
गृहीत्वा चिन्तयेद् देवीं पुरस्तिष्ठति मानवः।
स कामानिह सम्प्राप्य देवीलोके महीयते ।।१७३।।

क्षणमात्र के लिए भी बलिपशु के कटे हुए सिर के रक्त को दोनों हाथों में लेकर जो मनुष्य देवी के सामने स्थित होकर, उनका ध्यान करता है, वह इस लोक में अपनी सभी कामनाओं को प्राप्त कर देवी लोक में जाता है।।१७३।।

महामाये जगन्नाथे सर्वकामप्रदायिनि।
ददामि देहरुधिरं प्रसीद वरदा भव ।।१७४।।

स्वरक्तदानमंत्र महामाये......भव, मन्त्रार्थ—हे महामाये ! हे जगत् की स्वामिनी ! हे सभी कामनाओं को प्रदान करने वाली! मैं आपको अपने शरीर का रक्त दे रहा हूँ, आप प्रसन्न हों तथा मेरे लिए वर देने वाली हों।।१७४।।

इत्युक्त्वा मूलमन्त्रेण नतिपूर्वं विचक्षणः।
स्वगात्ररुधिरं दद्याद् मानवः सिद्धसन्निभः ।।१७५।।

मूलमन्त्र सहित इसे कहकर सिद्धतुल्य, बुद्धिमान्साधक, मनुष्य, अपने शरीर से निकला हुआ रक्त, नम्रतापूर्वक देवी को अर्पित करे।।१७५।।

येनात्ममांसं सत्येन ददामीश्वरि भूतये।
निर्वाणं तेन सत्येन देहि हं हं नमो नमः ।।१७६।।
इत्यनेन तु मन्त्रेण स्वमांसं वितरेद् बुधः ।।१७७।।

''येनात्मक मांसं-नमः'' मन्त्रार्थ—हे ईश्वरी ! ऐश्वर्यप्राप्ति के लिए, जिस निष्ठा से मैं अपने शरीर का मांस, आपको प्रदान कर रहा हूँ, उसी सत्य से आप मुझे निर्वाण दीजिए। हं हं आपको बार-बार नमस्कार है। इस मन्त्र से विद्वान्साधक अपना मांस देवी को अर्पित करे ।।१७६-१७७।।

सौभाग्यं सुखसम्पन्नं प्रदीपं परमं रुचिः।
दीपयेन्मांसमिह तं दीपं ह्रौं ह्रौं नमो नमः।
इत्यनेन तु मन्त्रेण दीपं दद्याद् विचक्षणः ।।१७८।।

मन्त्रार्थ–"सौभाग्यमय सुख-सम्पन्न यह परम सुन्दर प्रदीप जो इस मांस को प्रकाशित कर रहा है ऐसे इस दीप को ह्रौं ह्रौं बार-बार नमस्कार है।" इस **सौभाग्यं-नमः** मन्त्र से बुद्धिमान् साधक दीपप्रदान करे॥१७८॥

महानवम्यां शरदि रात्रौ स्कन्दविशाखयोः ।
यवचूर्णमयं कृत्वा रिपुं मृन्मयमेव वा ॥१७९॥
शिरश्छित्त्वा बलिं दद्यात् कृत्वा तस्य तु मन्त्रतः ॥१८०॥

साधक शरदऋतु की महानवमी की रात्रि में शत्रु की, जव के आटे या मिट्टी की मूर्ति बनाकर, उसका सिर काट कर, उसकी बलि, मन्त्रोंसहित स्कन्द और विशाख को देवे ॥१७९-१८०॥

अनेनैव तु मन्त्रेण खड्गमामन्त्र्य यत्नतः ।
रक्तं किलिकिली घोर घोराधारविहिंसकः ॥१८१॥
ब्रह्मशिष्याम्बिकाशिष्यममुकं चारिसत्तमम् ।
मान्तो विसर्गसहितः स च बिन्दुयुतोऽपरः ॥१८२॥

यत्नपूर्वक **रक्तं-यःयं** इस मन्त्र से खड्ग का आमन्त्रण करे। **मन्त्रार्थ**–हे ब्रह्मा और आम्बिका के शिष्य ! हे भयानकरूप तथा भयानकधारवाले, विशेषरूप से हिंसा अर्थात् बलिदान करने वाले खड्ग ! तुम मेरे इस श्रेष्ठ शत्रुरक्त को किलि किलि तत्पश्चात् विसर्गयुक्त मान्त (य) तथा पुनः बिन्दुयुक्त वही वर्ण बोलकर, बलिपशु आदि का शिर काटकर, उसकी बलि करे॥१८१-१८२॥

शिरश्छित्त्वा बलिं दद्यात् कृत्वा तस्य तु मन्त्रतः ।
अनेनैवतुमन्त्रेणविन्दुना च समन्वितः ॥१८३॥
ब्रह्माग्निर्योगचन्द्रेण बिन्दुना च समन्वितः ।
फडन्तो बलिषु प्रोक्तः खड्गस्कन्दविशाखयोः ॥१८४॥

बिन्दुयुत इसी मंत्रसहित स्कन्द और विशाख के लिए बलि हेतु ब्रह्मा (क्ष) अग्नि (र्) तथा चन्द्र और बिन्दु से समन्वित (क्ष्रँ) अन्त में फट् युक्त मन्त्र बताया गया है।१८३-१८४॥

रक्तद्रव्यैः शोधयित्वा कृत्रिमं तं बलिं रिपुम् ।
कुचन्दनस्य तिलकं ललाटे विनिवेश्य च ॥१८५॥
रक्तमाल्याम्बरं कृत्वा रक्तवस्त्रधरं तथा ।
कण्ठे बद्ध्वा रक्तसूत्रैर्नाभौ शल्यं च कृत्रिमम् ॥१८६॥
दत्त्वोत्तरशिरःस्कन्धं कृत्वा खड्गेन छेदयेत् ।
शिरस्तस्य ततो दद्यात् स्कन्दमन्त्रेण मन्त्रितम् ॥१८७॥

उस बलिरूप कृत्रिमशत्रु का लालपदार्थों से शोधन करके उसके ललाट पर कुचन्दन (रक्तचन्दन), का चन्दन लगाये। तत्पश्चात् उसे लाल, माला और वस्त्र से युक्त लालवस्त्रधारी बनाये तथा उसके गले में लालधागों से बाँध कर एवं नाभि में

कृत्रिम शल्य से भेदन करे। तब कन्धेसहित, सिर को उत्तर की ओर करके उसे खड्ग से काट दे। तदनन्तर स्कन्दमन्त्र से अभिमन्त्रित कर उसके सिर को देवी को अर्पित करे॥१८५-१८७॥

चतुर्दशस्वराग्निभ्यां सम्पृक्तः स्यात् पुरःसकम् ।
परतः परतः पूर्वं चन्द्रबिन्दुसमन्वितम् ।
स्कन्दस्य मूलमन्त्रोऽयं तेन तस्मै बलिं सृजेत् ।।१८८।।

स जिसके पहले है वह वर्ण ह, क्रमशः अग्नि (र) तब चौदहवाँ स्वर औ, तत्पश्चात् चन्द्र और बिन्दु से संयुक्त होकर स्कन्द का मूलमन्त्र ह्रौं बनता है। इसी मन्त्र से उसे बलिप्रदान करें॥१८८॥

चतुर्दशस्वराग्निभ्यां तृतीयं तु च पूर्ववत् ।
प्रोक्तो विशाखमन्त्रोऽयं तेन तस्मै बलिं सृजेत् ।।१८९।।

से तीसरे पहला वर्ण व चौदहवें स्वर औ का तथा अग्नि से युक्त हो विशाख का मन्त्र **व्रौं** कहा गया है। इसलिये उसे उस मंत्र से बलि प्रदान करे॥१८९॥

।। स्कन्धविशाख-ध्यान ।।

कुटिलाक्षौ कृष्णपिङ्गवर्णौ रक्ताङ्गधारिणौ ।
त्रिशूलं करवालं च पाणिभ्यां दक्षिणे तथा ।।१९०।।
बिभ्रतौ नृकपालं च कर्त्रिकां चात्ति वामतः ।
त्रिनेत्रौ नरमुण्डानां मालामुरसि बिभ्रतौ ।।१९१।।
विकटौ दशनैर्भीमैर्गणेशौ द्वारपालकौ ।
ध्यानेन चिन्तयेद् देव्याः पुरतः संस्थितौ सदा ।।१९२।।

टेढ़ी आँखों वाले, काले और पीले वर्णोवाले, रक्तमयअङ्ग धारण करने वाले, अपने दाहिनेहाथों में त्रिशूल और करवाल (तलवार) एवं बाएँ हाथों में नरमुण्ड और कर्त्रिका (कैंची), हृदय पर नरमुण्डों की माला धारण किये, तीन नेत्रों से युक्त विकराल और देखने में भयानक हैं। इस रूप में देवी के सामने उपस्थित दोनों गणों के स्वामियों, द्वारपालों (स्कन्द और विशाख) का सदैव ध्यान करता हुआ चिन्तन करे॥१९०-१९२॥

चैत्रे मास्यसिते पक्षे चतुर्दश्यां विशेषतः ।।१९३।।
बलिभिर्महिषैश्छागैः मां च भैरवरूपिणम् ।
तोषयेन्मधुभिर्मांसैस्तेन तुष्याम्यहं सुतौ ।।१९४।।

हे पुत्रों ! चैत्रमास के कृष्णपक्ष की चतुर्दशीतिथि को भैरवरूपी मुझे, भैंसे, बकरे की बलि से मधु-मांस आदि से सन्तुष्ट करे। इससे मैं प्रसन्न होता हूँ॥१९३-१९४॥

चण्डिका बलिदाने तु बलिशीर्षं जलेन च ।
अभिषिच्य तु मन्त्रेण मूलेनैव निवेदयेत् ।।१९५।।

देवी के बलिदान में बलि-पशु के सिर को जल से सींच कर मूलमन्त्र से अर्पित करे ।।१९५।।

ईषत् प्राणं तु बहुधा चलितं पूर्वमर्चितम् ।
वीक्षेत् कायसमृद्धिं तु सिद्धभावं च साधकः ।।१९६।।

जिसमें थोड़ा-थोड़ा प्राण सञ्चार हो ऐसे पहले पूजे हुए बलिपशु की शरीर की शोभा (सिर) को साधक सिद्धभावप्राप्त करने के लिए देखे।।१९६।।

सितप्रेतो रथस्तेषां योगपीठस्य सन्निभः ।
ध्यायाम्यस्मिन् महामाये सिद्धिं बोधय ते नमः ।।१९७।।

सितप्रेतो.....नमः। मन्त्रार्थ–योगपीठ के समीप श्वेतप्रेत के रथ में विराजमान हे महामाया ! मैं आपका ध्यान करता हूँ। आप मेरी सिद्धि का बोध करायें, आपको नमस्कार है ।।१९७।।

अनेनामन्त्रितं शीर्षं न चिराद् यदि वेपते ।
तत्कार्यस्य तदा सिद्धिरसिद्धिस्तु विपर्ययात् ।।१९८।।

इस मन्त्र से अभिमन्त्रित सिर यदि देर तक न काँपे तो कार्य की सिद्धि जाने, शीघ्र इसके विपरीत असिद्धि समझे ।।१९८।।

एवं ददद् बलिं वीरो यथोक्तविधिनाऽमुना ।
बलिदानादेव चतुर्वर्गमाप्नोत्यसंशयम् ।।१९९।।

इस प्रकार वीरसाधक, इस बताई हुई विधि के अनुसार बलिदान करे तो इस बलिदान से ही चतुर्वर्ग की प्राप्ति होती है । इसमें कोई संशय नहीं है ।।१९९।।

एवं बलिप्रदानस्य क्रमो रूपं तथैव च ।
कथितो रुधिराध्याय उपचाराञ् शृणुष्व मे ।।२००।।

इति श्रीकालिकापुराणे बलिविधाननाम सप्तषष्टितमोऽध्यायः ।।६७।।

इस प्रकार रुधिराध्याय में बलिदान के रूप तथा क्रम को मैंने कहा अब तुम दोनों पूजाउपचारों के विषय में सुनो ।।२००।।

श्रीकालिकापुराण में बलिविधाननामक सड़सठवाँ अध्याय सम्पूर्ण हुआ।।६७।।



अष्टषष्टितमोऽध्यायः
आसनादिपूजोपचारवर्णनम्

।। श्रीभगवानुवाच ।।

उपचारान् प्रवक्ष्यामि शृणु षोडश भैरव ।
यैः सम्यक् तुष्यते देवी देवोऽप्यन्यो हि भक्तितः ।।१।।

श्रीभगवान् बोले– हे भैरव ! अब मैं पूजा के उन सोलहउपचारों के विषय में कहूँगा, जिनके भक्तिपूर्वक प्रयोग से देवी-देवता तथा अन्य भी भली-भाँति प्रसन्न हो जाते हैं। तुम उन्हें सुनो।।१।।

।। आसनवर्णन ।।

आसनं प्रथमं दद्यात् पौष्पं दारवमेव वा ।
वास्त्रं वा चार्मणं कौशं मण्डलस्योत्तरे सृजेत् ।।२।।

सर्व-प्रथम मण्डल के उत्तरीभाग में पुष्पमय, लकड़ी का, वस्त्र, चमड़े या कुश का बना आसन, पूज्यदेव को समर्पित करे।।२।।

यदैव दीयते पद्मे मण्डलस्य तदुत्सृजेत् ।
वाक् पुष्पतोयैः कुसुमं बिना यच्छादकं भवेत् ।
पद्मस्य तद्बहिर्देशे द्वारादौ विनिवेदयेत् ।।३।।

जो वाणी, पुष्प एवं जलप्रदान किये जायँ उन्हें मण्डल के पद्मपर उत्सर्जित करना चाहिये। पुष्प के बिना दिया जाने वाला ऐसा उपहार जो मण्डल को ढकने वाला हो, उसे पद्म के बाहर द्वारआदि स्थानों पर निवेदित करे।।३।।

अर्घ्यं पाद्यं चाचमनं स्नानीयं नेत्ररञ्जनम् ।
मधुपर्कं च गन्धं च पुष्पं पद्मे निवेदयेत् ।।४।।

मण्डलपूजन मे अर्घ्य, पाद्य, आचमनीय, स्नानीय, नेत्ररञ्जन (अञ्जन), मधुपर्क, गन्ध और पुष्प, पद्म पर निवेदित करे (चढ़ाये)।।४।।

प्रतिमासु च यद्योग्यं गात्रे दातुं च तत् तनौ ।
दद्याद् योग्यं तु पुरतो नैवेद्यं भोजनादिकम् ।।५।।

प्रतिमा पूजन करते समय जो शरीरपर अर्पण के योग्य हो, उसे यथोचित अङ्गों पर अर्पित करे। उचित नैवेद्य एवं भोजन आदि देव के सम्मुख निवेदित करे।।५।।

पौष्यासनं यद् विहितं यस्य तद् यदि गर्भकम् ।
निवेदयेत् तदा पद्मे विपुलं द्वारि चोत्सृजेत् ।।६।।

जो पुष्प का आसन कहा गया है यदि वह गर्भक (कली के आकार का) हो
तो उसे मण्डल (यन्त्र) के ऊपर और बड़ा हो तो द्वार पर अर्पित करे।।६।।

पौष्पं पुष्पौघरचितं कुशसूत्रादिसंयुतम् ।
अतिप्रीतिकरं देव्या ममाप्यन्यस्य भैरव ।।७।।

हे भैरव ! पुष्प से, पुष्पों के समूह से तथा कुश, सूत्र आदि से बना हुआ आसन, देवी को, मुझे तथा अन्य देवताओं को अत्यन्त प्रिय है ।।७।।

यज्ञकाष्ठसमुद्भूतमासनं मसृणं शुभम् ।
नोच्छ्रायं नातिविस्तीर्णमासनं विनियोजयेत् ।।८।।

यज्ञीयकाष्ठ से बना हुआ आसन, शुभ और कोमल हो, जो न बहुत ऊँचा और न अधिक विस्तृत हो, ऐसे आसन का उपयोग करे ।।८।।

अन्यद् दारुभवं चापि दद्यादासनमुत्तमम् ।।९।।
सकण्टकं क्षीरयुतं दारुसारविवर्जितम् ।
चैत्यश्मशानसम्भूतं वर्जयित्वा विभीतकम् ।।१०।।

काँटा युक्त, दूधवाले, गाँठयुक्त, चौरस्ते (चौराहे) या श्मशान में उत्पन्न काष्ठों तथा बहेड़े को छोड़, अन्य काष्ठों के बने उत्तम आसन ही देने चाहिये ।।९-१०।।

वल्कलं कोषजं शाणं वस्त्रमेतत् त्रयं मतम् ।
रोमजं कम्बलं चैतदनेन तु चतुष्टयम् ।
अनेन रचितं दद्यादासनं चेष्टभूतये ।।११।।

वल्कल, कोश (रेशम), शाण (सन) के बने तीन प्रकार के वस्त्र बताये गये हैं । इनमें रोम से या कम्बल से बना सम्मिलित होने पर चार प्रकार के वस्त्र हो जाते हैं । जिनके बने आसन, साधक द्वारा ऐश्वर्यप्राप्ति हेतु अपने इष्टदेव को अर्पित किया जाना चाहिये।।११।।

सिंहव्याघ्रतरक्षूणां छागस्य महिषस्य वा ।
गजानां तुरगाणां च कृष्णसारस्य चर्मणः ।।१२।।
सृमरस्याथ रामस्य मृगाणां नवभेदिनाम् ।
चर्मभिः सर्वदेवानामासनं प्रीतिदं श्रुतम् ।।१३।।

सिंह, बाघ, तरक्षु (लकड़बघा), बकरा, भैसा, हाथी, घोड़ा, कृष्णसार, सृमर, राम आदि नव प्रकार के मृगों के चमड़ों से बने आसन, सभी देवताओं को अत्यधिक प्रसन्नता देने वाले सुने जाते है ।।१२-१३।।

वस्त्रेषु कम्बलं शस्तमासनं देवतुष्टये ।
राङ्कवं चार्मणं श्रेष्ठं दारवं चन्दनोद्भवम् ।।१४।।

देवताओं की सन्तुष्टि हेतु वस्त्रों में कम्बल से बना, चमड़ों में राङ्कुमृग के चमड़े से बना, लकड़ी से बने आसनों में चन्दन से बना आसन, श्रेष्ठ होता है।।१४।।

यच्चासनं कुशमयं तदासनमनुत्तमम् ।
सर्वेषामपि देवानामृषीणां च यतात्मनाम् ।।१५।।
योगपीठस्य सदृशमासनं स्थानमुच्यते ।
आसनस्य प्रदानेन सौभाग्यं मुक्तिमाप्नुयात् ।।१६।।

जो आसन कुश का बना होता है, वह सर्वश्रेष्ठ आसन है। वह, सभी देवताओं, ऋषियों और नियतआत्मा वालों के लिए योग-पीठ के समान, श्रेष्ठ आसन और उत्तमस्थान कहा गया है । आसन प्रदान करने से साधक सौभाग्य एवं मुक्ति को प्राप्त करता है ।।१५-१६।।

शम्बरो रोहितो रामो न्यंकुरंकुः शशो रुरुः ।
एणश्च हरिणश्चेति मृगा नवविधा मताः ।।१७।।
हरिणश्चापि विज्ञेयो पञ्चभेदोऽत्र भैरव ।
ऋष्यः खड्गो रुरुश्चैव पृषतश्च मृगस्तथा ।।१८।।
एते बलिप्रदानेषु चर्मदानेषु कीर्तिताः ।।१९।।

शम्बर, रोहित, राम, न्युकु, रङ्कु, शश, रुरु, एण और हरिण ये नव प्रकार के मृग कहे गये हैं । हे भैरव ! यहाँ हरिणों के भी पाँच भेद बताये गये हैं— १. ऋष्य (बारहसिंघा), खड्ग (गैंडा), रुरु, पृषत (चीतल) और मृग, ये सब बलिप्रदान एवं आसनहेतु चर्मदान में उपयुक्त कहे गये हैं ।।१७-१९।।

सर्वेषां तैजसानां च आसनं श्रेष्ठमुच्यते ।
आयसं वर्जयित्वा तु कांस्यं सीसकमेव वा ।।२०।।

लोहा, काँसा और सीसा को छोड़ कर सभी धातुओं के आसन, श्रेष्ठ कहे गये हैं।।२०।।

शिलामयं मणिमयं तथा रत्नमयं मतम् ।
आसनं देवताभ्यस्तु भुक्त्यै समुत्सृजेत् ।।२१।।

शिलाओं, मणियों तथा रत्नों से बने आसन देवताओं के भोगहेतु समर्पित करे।।२१।।

अत्रैव साधकानां च आसनं शृणु भैरव ।
यत्रासीनः पूजयंस्तु सर्वसिद्धिमवाप्नुयात् ।।२२।।

हे भैरव ! अब साधकों के उन आसन के विषय में सुनो, जहाँ बैठ कर पूजन करता हुआ साधक, सब प्रकार की सिद्धियों को प्राप्त कर लेता है ।।२२।।

ऐन्थनं चार्मणं वास्त्रं तैजसं च चतुष्टयं।
आसनं साधकानां च सततं परिकीर्तितम्।
तत् सर्वमासनं शस्तं पूजाकर्मणि साधके ।।२३।।

लकड़ी, चमड़े, वस्त्र और धातुओं के बने चार प्रकार के आसन, साधकों के लिए सदैव उपयोगी बताये गये हैं। वे चारों प्रकार के ही आसन पूजाकर्म में साधकों के लिए सदैव श्रेष्ठ बताये गये हैं॥२३॥

न यथेष्टासनो भूयात् पूजाकर्मणि साधकः।
काष्ठादिकासनं कुर्यात् सितमेव सदा बुधः ।।२४।।

यदि पूजाहेतु साधक को उचित आसन न उपलब्ध हो तो विद्वान्, साधक काष्ठादि का सदैव श्वेत्आसन बनावे॥२४॥

चतुर्विंशत्यङ्गुलेन दीर्घं काष्ठासनं मतम् ।।२५।।
षोडशाङ्गुलविस्तीर्णमुच्छ्रायं चतुरङ्गुलम्।
षडङ्गुलं वा कुर्यात् तु नोच्छ्रितश्चात आचरेत्।
पूर्वोक्तं वर्जयेद् वर्ज्यमासनं पूजनेष्वपि ।।२६।।

वह काष्ठ (लकड़ी) का बना आसन, चौबीसअङ्गुल लम्बा, सोलहअङ्गुल चौड़ा या चारअङ्गुल ऊँचा बताया गया है, किन्तु छः अङ्गुल से ऊँचा न प्रयोग करे। पहले जिस प्रकार के आसनों का निषेध किया जा चुका है। उनका पूजनकर्म में भी निषेध करना चाहिये ॥२५-२६॥

वस्त्रं द्विहस्तान्नो दीर्घं सार्धहस्तान्न विस्तृतम्।
न त्र्यङ्गुलात् तथोच्छ्रायं पूजाकर्मणि संश्रयेत् ।।२७।।

पूजाकर्म में आसन हेतु दो हाथ से लम्बा, डेढ़हाथ से चौड़ा तथा तीनअङ्गुल से ऊँचा वस्त्र न प्रयोग करे ॥२७॥

यथेष्टं चार्मणं कुर्यात् पूर्वोक्तं सिद्धिदायकम्।
षडङ्गुलाधिकं कुर्यान्नोच्छ्रितं च कदाचन ।।२८।।

पूर्वोक्त वर्णित चमड़े का बना सिद्धिदायक आसन यथेष्ट लम्बा-चौड़ा प्रयोग किया जा सकता है किन्तु वह कभी भी छः अंगुल से ऊँचा नहीं होना चाहिये ॥२८॥

काम्बलं चार्मणं शैलं महामायाप्रपूजने ।।२९।।
प्रशस्तमासनं प्रोक्तं कामाख्यायास्तथैव च।
त्रिपुरायाश्च सततं विष्णोश्चापि कुशासनम् ।।३०।।

महामाया, कामाख्या, त्रिपुरा के पूजन के लिए कम्बल, चमड़ा, पत्थर के बने आसन तथा विष्णु के लिए कुशा से निर्मितआसन उत्तम बताये गये हैं॥२९-३०॥

बहुदीर्घं बहूच्छ्रायं तथैव बहुविस्तृतम् ।
दारुभूमिसमं प्रोक्तमश्मापि सर्वकर्मणि ।।३१।।

लकड़ी और पत्थर के बने बहुत लम्बे-चौड़े, ऊँचे आसन सभी कर्मों में भूमि के समान बताये गये हैं।।३१।।

पृथक् पृथक् कल्पयेत् तु बहिर्द्वारि तथासनम् ।
न पत्रमासनं कुर्यात् कदाचिदपि पूजने ।।३२।।
न प्राण्यङ्ग-समुद्भूतमस्थिजं द्विरदादृते ।
मातङ्गदन्तसञ्जातं कामिकेष्वासनं चरेत् ।
चार्मं पूर्वोदितं ग्राह्य तथा गन्धमृगस्य च ।।३३।।

पृथक्-पृथक् आसनों की व्यवस्था मण्डलद्वार के बाहर बनाये व पूजन में कभी पत्ता का बना आसन, न प्रयोग करे। देवताओं के कामिक (सकाम) पूजन में पहले बताये चमड़ों से बने तथा गन्ध-मृग (कस्तूरीमृग) के चमड़े एवं हाथी दाँत के आसन का प्रयोग करना चाहिए। हाथी के अतिरिक्त अन्य किसी प्राणी के अङ्ग या हड्डियों से बने आसन का पूजन में प्रयोग न करे।।३३।।

सलिले यदि कुर्वीत देवतानां प्रपूजनम् ।
तत्राप्यासन आसीना नोत्थितस्तु कदाचन ।।३४।।

यदि जल में देवताओं का पूजन करना हो तो वहाँ भी आसन पर बैठकर ही करना चाहिये। कभी भी खड़े होकर पूजन नहीं करे।।३४।।

तोये शिलामयं कुर्यादासनं कौशमेव वा ।
दारवं तैजसं वापि नान्यदासनमाचरेत् ।।३५।।

जल में शिलानिर्मित, लकड़ी, धातु या कुशा के बने आसन का उपयोग करे। अन्य चार्मज, वस्त्र या कम्बल के आसन का नहीं ।।३५।।

आसनारोपसंस्थानं स्थानाभावे तु पूजकः ।
आसनं कल्पयित्वा तु मनसा पूजयेज्जले ।।३६।।

यदि आसन बिछाने की व्यवस्था हो तो उपर्युक्त आसनों की व्यवस्था करे अन्यथा साधक, मानसिक आसन की व्यवस्था कर, जल में पूजन करे यदि उचित आसन न मिले तो भी मानसिक आसन की परिकल्पना से ही जल में पूजन करे ।।३६।।

यद्यासितुं न संस्थानं विद्यते तोयमध्यतः ।
अन्यत्र वा तदा स्थित्वा देवपूजां समाचरेत् ।।३७।।

जल में या अन्य स्थान पर जहाँ आसन बिछाने की व्यवस्था न हो वहाँ मानसिक-आसन की कल्पना से ही स्थित हो, देवपूजन सम्पन्न करे ।।३७।।

इत्येतत् कथितं पुत्र पूज्यपूजकसङ्गतम् ।
आसनं पाद्यमधुना श्रृणु वेताल भैरव ।।३८।।

हे वेताल और भैरव नामक दोनों पुत्रों ! यह पूज्य-पूजक के विचार से आसन बताया गया । अब तुम दोनों पाद्य के विषय में सुनो ।।३८।।

।। पाद्यवर्णन ।।

पादार्थमुदकं पाद्यं केवलं तोयमेव तत्।
तत् तैजसेन पात्रेण शङ्खेनापि प्रदापयेत् ।।३९।।

पैर (प्रक्षालन) के निमित्त जो केवल जल, दिया जाता है, उसे पाद्य कहते हैं। इसे धातु के पात्र या शङ्ख से प्रदान करे।।३९।।

धर्मार्थकाममोक्षाणां संस्थानं पाद्यमिष्यते ।
तदासनोत्तरं दद्यान्मूलमन्त्रेण सर्वतः ।।४०।।

पाद्य, धर्म-अर्थ-काम-मोक्ष का संस्थान बताया गया है। उसे सब जगह, आसन-दान के पश्चात् मूलमन्त्र से प्रदान करना चाहिये ।।४०।।

।। अर्घ्यवर्णन ।।

कुशपुष्पाक्षतैश्चैव सिद्धार्थश्चन्दनैस्तथा ।
तोयैर्गन्धैर्यथालब्धैरर्घ्यं दद्यात् तु सिद्धये ।।४१।।

साधक यथोपलब्ध कुश, पुष्प, अक्षत, चन्दन, गन्ध (सुगन्धित पदार्थ) और जल से, सिद्धि की कामना सहित अर्घ्यप्रदान करे ।।४१।।

अर्घ्येण लभते कामानर्घ्येण लभते धनम् ।
पुत्रायुः सुखमोक्षाणि दानादर्घ्यस्य वै लभेत् ।।४२।।

अर्घ्य से कामनायें प्राप्त होती हैं। अर्घ्य से धनप्राप्त होता है। अर्घ्यदान से ही पुत्र, आयु, सुख या मोक्षप्राप्त होता है ।।४२।।

न दद्याद् भास्करायार्घ्यं शङ्खतोयैर्विचक्षणः ।
तथा न शुक्तिपात्रेण विष्णवेऽर्घ्यं निवेदयेत् ।।४३।।

बुद्धिमान् साधक, शङ्खस्थितजल, सूर्य को तथा सीपी का जल, विष्णु को अर्घ्य के रूप में प्रदान न करे ।।४३।।

।। आचमनीयवर्णन ।।

दद्यादाचमनीयं तु सुगन्धिसलिलैः शुभैः ।
कर्पूरवासितैर्वापि कृष्णागुरुविधूपितैः ।।४४।।
यथा तथा सुगन्धैर्वा प्रसन्नैः फेनवर्जितैः ।
तत् तैजसेन पात्रेण शङ्खेनापि प्रदापयेत् ।।४५।।

शुभ, सुगन्धितजल, कर्पूर से सुगन्धित तथा कालेअगर से धूपित यथोपलब्ध सुगन्ध से युक्त, फेन से रहित, जल को, धातु के पात्र या शङ्खपात्र में लेकर आचमनीय प्रदान करे॥४४-४५॥

उदकं दीयते यत् तु प्रसन्नं फेनवर्जितम् ।
आचमनाय देवेभ्यस्तदाचमनमुच्यते ।।४६।।

जो प्रसन्न (स्वच्छ), फेन रहित, जल, देवताओं के आचमन हेतु दिया जाता है, उसे **आचमनीय** कहते हैं ॥४६॥

केवलं तोयमात्रेण तद् वा दद्यान्न मिश्रितम् ।
वासितं तु सुगन्धाद्यैः कर्तव्यं यदि लभ्यते ।।४७।।

यदि उपलब्ध हो तो सुगन्ध आदि से सुगन्धित जल से आचमनीय अथवा केवल बिना कुछ उसमें मिलाये जलमात्र से ही आचमनीय प्रदान करे ॥४७॥

आयुर्बलं यशोवृद्धिं प्रदायाचमनीयकम् ।
लभते साधको नित्यं कामांश्चैव यथोत्थितान् ।।४८।।

आचमनीयप्रदान कर के साधक, आयु, बल, यश की वृद्धि और अभिलषित कामनाओं को नित्य प्राप्त करता है ॥४८॥

।। मधुपर्कवर्णन ।।

दधिर्सर्पिर्जलं क्षौद्रं सिता ताभिश्च पञ्चभिः ।
प्रोच्यते मधुपर्कस्तु सर्वदेवौघतुष्टये ।।४९।।

दधि, घी, जल, मधु, मिश्री इन पाँच पदार्थों से युक्त पदार्थ, मधुपर्क कहा जाता है। वह सभी देवसमूह को तृप्तिप्रदान करने वाला है ॥४९॥

जलं तु सर्वतः स्वल्पं सितादधिघृतं समम् ।
सर्वेभ्यश्चाधिकं क्षौद्रं मधुपर्के प्रयोजयेत् ।।५०।।

मधुपर्क बनाने में जल सबसे कम, मिश्री, दही, घी समानमात्रा में तथा शहद का सर्वाधिकप्रयोग करना चाहिये ॥५०॥

तद् दद्यात् कांस्यपात्रेण रौक्मश्वेतमयेन वा ।
ज्योतिष्टोमाश्वमेधादौ पूर्वे चेष्टे च पूजने ।।५१।।

वह मधुपर्क, सोना, शंख या काँसे के पात्र में ज्योतिष्टोम, अश्वमेध आदि यज्ञ में तथा अपने इष्टदेव के पूजन में प्रदान करे ॥५१॥

मधुपर्कः प्रदिष्टोऽयं सर्वदेवौघतुष्टिदः ।।५२।।
धर्मार्थकाममोक्षाणां साधकः परिकीर्तितः ।
मधुपर्कः सौख्यभोग्य-तुष्टि-पुष्टि-प्रदायकः ।।५३।।

ऊपर इस प्रकार का वर्णित, मधुपर्क सभी देवसमूह को तुष्टि देने वाला तथा धर्म- अर्थ-काम-मोक्ष का साधक कहा गया है। यह सौख्य, भोग्य, तुष्टि व पुष्टि प्रदान करने वाला है ।।५२-५३।।

।। स्नानीयवर्णन ।।

पिष्टातकोऽथ कस्तूरी रोचनं कुङ्कुमं तथा ।
गुडः क्षौद्रं पञ्चगव्यं सर्वौषधिगणस्तथा ।।५४।।
सिता निर्णेजनं तैलं स्निग्धस्नेहेन तत्तिलाः ।
प्रान्ते तोयमिति प्रोक्तं स्नानीयं कल्पकोविदैः ।।५५।।

कल्प (पूजा विधि) जानने वालों द्वारा सुगन्धयुक्तचूर्ण, कस्तूरी, गोरोचन, कुङ्कुम, गुड़, मधु, पञ्चगव्य, सर्वौषधि, मिश्री, निर्णेजन (साबुन), तेल, स्निग्ध स्नेहयुक्त तिल, अन्त में जल इन के मिश्रण को **स्नानीय** कहा जाता है ।।५४-५५।।

स्वर्णरत्नोदकं चैव कर्पूराद्यधिवासितम् ।
तैजसैः कांस्यपात्रैर्वा शङ्खैर्वा तन्निवेदयेत् ।।५६।।

स्वर्ण और रत्नयुक्तजल, कपूर से सुगन्धित स्नानीयजल को धातु, काँसा, या शङ्ख के पात्र में निवेदित करे।।५६।।

मण्डले केशरे देयमादित्यप्रतिमासु च ।
शिवलिङ्गे तथा भोगे पीठे देवतनौ तथा ।।५७।।

स्नानीयपदार्थ, मण्डल में पद्म के केशर पर, सूर्य की प्रतिमा पर, शिव के लिङ्ग पर, भोग (सर्प) की पीठ पर तथा देवता के शरीर पर देना चाहिये ।।५७।।

सद्यःस्निग्धे मृन्मये वा सर्पिःसिन्दुरजे तथा ।
श्रीचन्दनप्रतिष्ठे वा लेपयेत् प्रतिमातनौ ।
स्वस्तिकस्थापिते खड्गे स्नापयेद् दर्पणेऽथवा ।।५८।।

अत्यन्त कोमल, मिट्टी की बनी, घी और सिन्दूर से बनी, श्री चन्दन पर प्रतिष्ठित प्रतिमा के शरीर पर स्नानीय का लेप करना चाहिये किन्तु स्वास्तिक पर स्थापित होने पर, खड्ग पर, दर्पण पर स्नान कराना चाहिये।।५८।।

एवं दद्यात् तु स्नानीयं महादेव्यै विशेषतः ।
रवि विष्णुशिवेभ्यो वा यत्र तत्र प्रपूजने ।।५९।।

इस प्रकार से सूर्य, विष्णु, शिव आदि को या जहाँ कहीं पूजन करना हो विशेष कर महादेवी को, स्नानीय प्रदान करे ।।५९।।

पूजकः स्नानदानात् तु चिरायुरुपजायते ।
सम्यक् स्नानप्रदानात् तु कल्पान्तं स्वर्गभाग्भवेत् ।।६०।।

उपर्युक्त रीति से स्नान कराने से पूजक, चिरायु होता है तथा विधिपूर्वक स्नान-दान से वह कल्पपर्यन्त स्वर्ग-सुख का भोग करता है ।।६०।।

यदेव दीयते पाद्यं गन्धपुष्पादिकं तथा ।
उपाचारांस्तथा सर्वानर्घ्यपात्राहितैर्जलैः ।।६१।।
अमृतीकरणाद्यैस्तु संस्कृतैस्त्वभिषिच्य तैः ।
प्रदद्यादिष्टदेवेभ्यो गृह्णाति च ततः स्वयम् ।।६२।।

पाद्य-गन्ध-धूप-दीप आदि सभी उपचारों का अर्घ्य-पात्र के अमृतीकरण आदि द्वारा संस्कारितजल से अभिषेक कर, इष्टदेवता को अर्पित करे तो देवता उसे स्वयं ग्रहण करते हैं।।६१-६२।।

अर्घ्यपात्राणि तैस्तोयैर्विना यद्विनिवेदनम् ।
दीयते चेष्टदेवेभ्यः सर्वं तन्निष्फलं भवेत् ।।६३।।

अर्घ्यपात्र से उन जलों की व्यवस्था किये बिना जो इष्टदेव को निवेदन किया जाता है, वह सब निष्फल होता है ।।६३।।

रागाल्लोभात् प्रमादाद् वा ह्यर्घ्यं पात्रामृतीकृतम् ।
तोयं स्रुतं स्यात् पात्रात् तु पुनः कुर्यात् तदामृतम् ।।६४।।

क्योंकि राग से लोभ से या आलस्यवश अर्घ्य पात्र का अमृतीकृतजल यदि, पात्र से बह जाय तो पुनः अमृतीकरण करे।।६४।।

स्वल्पावशेषतोये तु पात्रस्थे ह्यमृतीकृते ।
तत्रान्यदुदकं दद्यात् तत्तेनैवामृतं भवेत् ।।६५।।

अमृतीकरणयुक्तपात्र में बचे हुये थोड़े से भी जल में अन्यजल डालकर समर्पित करे तो उसका उसी से अमृतीकरण हो जाता है ।।६५।।

बहूनि यदि पुष्पाणि माला वा प्रचुरा यदि ।
दीयन्ते चार्घ्यपात्रस्थैर्जलैः संसिच्य चोत्सृजेत् ।।६६।।

यदि बहुत पुष्प या मालाएँ पर्याप्त मात्रा मे चढ़ानी हों तो उसका अर्घ्यपात्र के जल से सिंचन कर, उसे अर्पित करे ।।६६।।

अन्यतोयैर्यदुत्सृष्टमर्घ्यपात्रस्थितेतरैः ।
तन्न गृह्णातीष्टदेवो दत्तं विधिशतैरपि ।।६७।।

अर्घ्यपात्रस्थितजल के अतिरिक्त अन्यजल से जो जो पाद्यादिक चढ़ाया जाता है। सैकड़ों विधियों से चढ़ाये जाने पर भी देवता उन पदार्थों को ग्रहण नहीं करते।।६७।।

संस्कृते त्वर्घ्यपात्रे तु नवभिः प्रतिपत्तिभिः ।
तिष्ठन्ति सर्वतीर्थानि पीयूषाणि च सर्वतः ।।६८।।

नवप्रतिपत्तियों से संस्कृत किये, संस्कारितअर्घ्यपात्र में सभी तीर्थ और अमृत निवास करते हैं।।६८।।

तस्मात् तत्र स्थितैस्योयैरभ्युक्ष्योपचारानुत्सृजेत् ।
न योग्यमर्घ्यपात्रेषु निधाय विनिवेदयेत् ।।६९।।

इसलिए जिन्हें अर्घ्यपात्र में रखकर अर्पित करना उचित नहीं है, उन्हें उस अर्घ्यपात्र में स्थित जल से, उपचारों का अभ्युक्षण करके ही चढ़ावे।।६९।।

इदं ते भैरव प्रोक्तं षट्कं चैवासनादिकम् ।
वस्त्रादि दश वक्ष्यामि शृणु विज्ञानवृद्धये ।।७०।।

इति श्रीकालिकापुराणे आसनादिपूजोपचारवर्णने अष्टषष्टितमोऽध्याय: ।।६८।।

हे भैरव ! यह मैंने तुमसे आसन, पाद्य, अर्घ्य, आचमनीय, मधुपर्क, स्नानीय इन छः पूजाउपचारों के विषय में कहा । अब तुम दोनों का ज्ञान बढ़ाने के लिए वस्त्रादि अन्य दस, पूजाउपचारों के विषय में कहूँगा, उसे सुनो।।७०।।

श्रीकालिकापुराण में आसनादिपूजोपचारवर्णनसम्बन्धी अड़सँठवाँ अध्याय सम्पूर्ण हुआ ।।६८।।



एकोनसप्ततितमोऽध्यायः

वस्त्रादिपूजोपचारवर्णनम्

।। श्रीभगवानुवाच ।।

।। वस्त्रवर्णनम् ।।

कार्पासं कम्बलं वाल्कं कोशजं वस्त्रमिष्यते ।
तत्पूर्वं पूजयित्वैव मन्त्रैर्देवाय चोत्सृजेत् ।।१।।

श्रीभगवान् बोले–कार्पास (कपास से बने, सूती), कम्बल (ऊनी), वल्कल से बने तथा कोशा (रेशम) से बने, ये चार प्रकार के वस्त्र कहे जाते हैं, जिन्हें पहले पूजन कर (प्रतिष्ठित करके), मन्त्रोच्चारपूर्वक अपने पूज्यदेवता को समर्पित करे।।१।।

निर्दशं मलिनं जीर्णं छिन्नं गात्रावलिङ्गितम् ।
परकीयं ह्याखुदंष्टं सूचीविद्धं तथोषितम् ।।२।।
उप्तलेशं विधौतं च श्लेष्ममूत्रादिदूषितम् ।
प्रदाने देवताभ्यश्च दैवे पित्र्ये च कर्मणि ।
वर्जयेत् स्वोपयोगेन यज्ञादावुपयोजने ।।३।।

बिना माला आदि से सजे हुए, मैले, पुराने, कटे हुए, शरीर पर धारण किये हुये, दूसरों के, चूहों से काटे हुए, सूई से छिदे (सिले), जले हुये, उप्तलेश (कतरन), बिना धोये, कफ-मूत्र आदि से दूषित वस्त्रों को दैव और पितृकार्यों में देवताओं के लिये पूजादान करने में प्रयोग नहीं करे। अपने उपयोग के वस्त्रों में, यज्ञादि में भी उनका उपयोग नहीं करना चाहिये ।।२-३।।

उत्तरीयोत्तरासङ्गैर्निचोलो मोदचेलकः ।
परिधानं च पञ्चैतान्यस्यूतानि प्रयोजयेत् ।।४।।

दुपट्टा, कुर्ता से रहित या बिना चोली के ढीले-ढाले, ऊपरी वस्त्रों या बिना सिले हुये पाँच प्रकार के वस्त्रों का प्रयोग करे।।४।।

शाणवस्त्रं निशारं च तथैवातपवारणम् ।
चण्डातकं तथा दृश्यं पञ्च स्यूतान्यदुष्टये ।।५।।

सन से बने वस्त्र, छाता, चण्डातक (लहँगा), निशार, दृश्य (पारदर्शक) ये पाँच सिले होने पर भी शुद्ध होते हैं।।५।।

पताकाध्वजकुण्डादौ स्यूतं वस्त्रं प्रयोजयेत् ।
अन्यत्रावरणादौ च तद्विनाशस्य तेन तत् ।।६।।

ध्वजा, पताका तथा कुण्ड आदि के लिए विनाश से बचाते हुये सिले वस्त्रों का ही प्रयोग करना चाहिये ।।६।।

रक्तं कौशेयवस्त्रं च महादेव्यै प्रशस्यते ।।७।।
पीतं तथैव कौशेयं वासुदेवाय चोत्सृजेत् ।
रक्तं तु कम्बलं दद्याच्छिवाय परमात्मने ।।८।।

साधक लालरेशमीवस्त्र देवी की उपासना के लिए और पीलेरेशमीवस्त्रों का भगवान्‌विष्णु के पूजन में उपयोग करे। उसे लाल एवं ऊनी वस्त्रों को परमात्मा शिव को समर्पित करना चाहिये ।।७-८।।

विचित्रं सर्वदेवेभ्यो देवीभ्योऽशु निवेदयेत् ।
कार्पासं सर्वतोभद्रं दद्यात् सर्वेभ्य एव च ।।९।।

रंगबिरङ्गे वस्त्र सभी देवी देवताओं को तथा कपास, रूई से बना सूतीवस्त्र जो सब प्रकार से कल्याण कारक है, सभी देवताओं को निवेदित करे।।९।।

नैकान्तरक्तं दद्यात् तु वासुदेवाय चैलकम् ।
तथा नैकान्तनीलं तु शिवाय विनिवेदयेत् ।।१०।।

एकमात्रलालवस्त्र भगवान्‌विष्णु को तथा एकमात्रकाला या नीलावस्त्र भगवान् शिव को न चढ़ाये ।।१०।।

नीलीरक्तं तु यद्वस्त्रं तत् सर्वत्र विवर्जितम् ।
दैवे पित्र्ये तूपयोगे वर्जयेत् तु विचक्षणः ।।११।।

नीले या काले, लाल, वस्त्रों का देवता, पितर एवं अपने उपयोग के भी कार्यों में बुद्धिमान् साधक, सदैव निषेध करे ।।११।।

नीलीरक्तं प्रमादात्तु यो दद्याद् विष्णवे बुधः ।
निष्फला तस्य तत्पूजा तदा भवति भैरव ।।१२।।

हे भैरव ! जो विद्वान् (साधक) लाल और काले वस्त्र भूल से भी भगवान् विष्णु को चढ़ाता है, उस समय कीजाने वाली उसकी वह पूजा, निष्फल हो जाती है ।।१२।।

विचित्रे वाससि पुनर्लग्नं नीलीविरञ्जितम् ।
वस्त्रं दद्यान्महादेव्यै नान्यस्मै तु कदाचन ।।१३।।

रंग-बिरंङ्गे-वस्त्रों के साथ ही कालेवस्त्र महादेवी को समर्पित करे किन्तु कभी भी दूसरे देवताओं को नहीं समर्पित करना चाहिये ।।१३।।

द्विपदां ब्राह्मणो यद्वद्देवानां वासवो यथा ।
तथा भूषणवर्गेषु वस्त्रमुत्तममुच्यते ।।१४।।

दो पैरवालों (मनुष्यों) में जैसे ब्राह्मण, देवताओं में इन्द्र, श्रेष्ठ हैं उसी प्रकार भूषणों (शरीर को सुशोभित करने वालो) में वस्त्र, सर्वश्रेष्ठ कहा गया है ।।१४।।

वस्त्रेण जीर्यते लज्जा वस्त्रेण हीयते त्वघम् ।
वस्त्रात् स्यात् सर्वतः सिद्धिश्चतुर्वर्गप्रदं च तत् ।।१५।।

वस्त्रदान से लज्जाक्षीण होती है । वस्त्रदान से पाप कम होता है । वस्त्रदान से सब प्रकार की सिद्धि प्राप्त होती है, वस्त्र चारो पुरुषार्थों को देने वाला है ॥१५॥

।। आभूषणवर्णनम् ।।

वस्त्रं ते कथितं पुत्र सर्वप्रीतिप्रदायकम् ।
भोग्यं भूषोत्तमं नित्यं भूषणानि शृणुष्व मे ।।१६।।

हे पुत्रों ! मैंने सबको प्रसन्नता देने वाले वस्त्रों के विषय में कहा । अब मैं नित्य उपयोग में आने वाले शोभाकारकों में श्रेष्ठ, आभूषणों के विषय में कहता हूँ, तुम दोनों उसे मेरे द्वारा सुनो ॥१६॥

किरीटं च शिरोरत्नं कुण्डलं च ललाटिका ।
तालपत्रं च हारश्च ग्रैवेयकमथोर्मिका ।।१७।।
प्रालम्बिकारत्नसूत्रमुत्तङ्गोतर्क्षमालिका ।
पार्श्वद्योतो नखद्योतो ह्यङ्गुलीच्छादकस्तथा ।।१८।।
जूटालकं मानवको मूर्धताराखलन्तिका ।
अङ्गदो बाहुबलयः शिखाभूषण इङ्गिका ।।१९।।
प्राग्दण्डबन्धमुद्घासनाभिपूरोऽथ मालिका ।
सप्तकी शृङ्खलं चैव दन्तपत्रं च कर्णकः ।।२०।।
ऊरुसूत्रं च नीवीं च मुष्टिबन्धं प्रकीर्णकम् ।
पादाङ्गदं हंसकश्च नूपुरं क्षुद्रघण्टिका ।।२१।।
सुखपट्टमिति प्रोक्ता अलङ्कारा: सुशोभना: ।
चत्वारिंशदमी प्रोक्ता लोके वेदे तु सौख्यदाः ।।२२।।

१. मुकुट २. शिरोरत्न ३. कुण्डल ४. ललाटिका (लांगटीका) ५. तालपत्र (कान का आभूषण) विशेष ६. हार ७. ग्रैवेयक ८. ऊर्मिका (अँगूठी) ९. प्रालम्बिका (मुक्ताहार) १०. रत्नसूत्र ११. उत्तङ्ग (उत्तङ्गश, मुकुट के उपर का आभूषण) १२. तर्क्षमालिका १३. पार्श्वद्योत १४. नखद्योत १५. अङ्गुलीच्छादक १६. जूटालक १७. मानवक १८. मूर्धतारा १९. खलन्तिका २०. अङ्गद (बाजूबन्द) २१. बाहुबलय (भुजदण्ड) २२. शिखाभूषण २३. इङ्गिका २४. प्राग्दण्डबन्धन २५. उद्घासना २६. अभिपूर २७. मालिका २८. सप्तकी (करधनी) २९. श्रृंखल (सीकड़) ३०. दन्तपत्र (कान का आभूषण विशेष) ३१. कर्णक (कान की बाली) ३२. ऊरुसूत्र ३३. नीवी (कमर बन्द) ३४. मुष्टिबन्ध ३५. प्रकीर्णक (चपर) ३६. पादाङ्गद ३७. हंसक (पैर का आभूषण विशेष) ३८. नूपुर (पायजेब) ३९. छुद्रघण्टिका (घुंघरू वाली करधनी) ४०. सुखपट्ट ये चालीस प्रकार के सुन्दर और सुखदायक गहने, लोक एवं वेद में कहे गये हैं॥१७-२२॥

अलङ्कारप्रदानेन चतुर्वर्गप्रसाधनम् ।
एतेषां पूजनं कृत्वा प्रदद्यादिष्टसिद्धये ।
तेषां दैवतमुच्चार्य पूजयेत् तु विचक्षणः ।।२३।।

अलङ्कारप्रदान करने से अर्थ, धर्म, काम, मोक्ष चारोपुरुषार्थों की सिद्धि होती है। इनका पूजन (प्रतिष्ठा) करके इष्टसिद्धिहेतु इन्हें इष्टदेव को प्रदान करना चाहिये ।।२३।।

शिरोगतानि वा दद्यात् सौवर्णानि तु सर्वदा ।
चूडारत्नादिकानीह भूषणानि तु भैरव ।।२४।।

हे भैरव ! सिर पर धारण किये जाने वाले चूड़ारत्न आदि आभूषण, सदैव स्वर्ण के बने ही अर्पित करना चाहिये ।।२४।।

ग्रैवेयकादिहंसान्तं सौवर्णं राजतं च वा ।
निवेदयेत् तु देवेभ्यो नान्यत् तैजससम्भवम् ।।२५।।

देवताओं को ग्रैवेयक से हंसक पर्यन्त उल्लिखित आभूषण, सोने या चाँदी से ही बने, अर्पित करे । किसी अन्य धातु से निर्मित नहीं ।।२५।।

रीतिरङ्गादि संजातं पात्रोपकरणादिकम् ।
दद्यादायसमयं तु भूषणं न कदाचन ।।२६।।

पीतल, काँसे आदि के बनेपात्र और उपकरण आदि भले दिये जायँ किन्तु उनके तथा लोहे के बने आभूषण कभी नहीं प्रदान किये जाने चाहिये ।।२६।।

घण्टाचामरकुम्भादिपात्रोपकरणादिकम् ।
तद्भूषणान्तरे दद्यादस्मात् तदुपभूषणम् ।।२७।।

जो घण्टा, चामर, कलश आदि पात्र और पूजा के उपकरण कहे जाते हैं, उन्हें आभूषणप्रदान करने के बाद चढ़ाना चाहिये । इसीलिए इन्हें उपभूषण कहा जाता है ।।२७।।

सर्वं ताम्रमयं दद्याद् यत् किञ्चिद् भूषणादिकम् ।
सर्वत्र स्वर्णवत् ताम्रमर्घ्यपात्रे ततोऽधिकम् ।।२८।।

अन्यथा जो भी आभूषण आदि देवता को अर्पित हों, वे सब ताँबे का ही बना हुआ अर्पित करना चाहिये । ताँबा सब जगह स्वर्ण के समान है किन्तु अर्घ्यपात्र की दृष्टि से तो यह स्वर्ण से भी श्रेष्ठ है ।।२८।।

पूजार्घ्यपात्रनैवेद्याधारपात्रं च पानकम् ।
औदुम्बरं सदा विष्णोः प्रीतिदं तोषदं तथा ।।२९।।

पूजा की दृष्टि से औदुम्बर (ताँबे) के बने अर्घ्यपात्र, नैवेद्य आदि के आधार-पात्र, पान (पीने के) पात्र, विष्णु को सदा सन्तोष और प्रसन्नता देने वाले हैं ।।२९।।

ताम्रे देवाः प्रमोदन्ते ताम्रे देवाः स्थिताः सदा ।
सर्वप्रीतिकरं ताम्रं तस्मात् ताम्रं प्रयोजयेत् ।।३०।।

ताँबे में देवता प्रसन्न होते है, ताँबे में देवता सदैव स्थित रहते हैं। ताँबा सबको सब प्रकार की प्रसन्नता देने वाला है, इसीलिए मनुष्य (साधक) को अपने तथा देवताओं के उपयोग के लिए भी ताँबे का ही प्रयोग करना चाहिये ।।३१।।

स्वोपयोगे नरः कुर्याद् देवानामपि भैरव ।
ग्रीवोर्ध्वदेशे रौप्यं तु न कदाचिच्च भूषणम् ।।३१।।

हे भैरव ! मनुष्य को अपने उपयोग के लिए हो या देवताओं के उपयोग के लिए हो, कभी भी गले ऊपर स्थित अङ्गों के लिए चाँदी के बने आभूषणों का उपयोग नहीं करना चाहिये ।।३१।।

प्रावारः पानपात्रं च गण्डको गृहमेव च ।
पर्यङ्कादि यदन्यच्च सर्वं तदुपभूषणम् ।।३२।।

पहनने के लिए चोंगा, पानपात्र, गण्डक (घोड़े का आभूषण विशेष) गृह, पलंग आदि जो अन्य वस्तुयें हैं, वे सब वस्तुएँ उपभूषण कही जाती हैं ।।३२।।

अयोमयमृते कांस्यमृते यद्भूषणं भवेत् ।
स्वर्णरोप्यस्य चाभावे त्वधः काये नियोजयेत् ।।३३।।

सोने और चाँदी के बने आभूषणों के अभाव में, लोहे एवं काँसे के छोड़कर अन्य धातुओं के बने आभूषण, शरीर के निचले भाग में चढ़ाये ।।३३।।

एतेषां भूषणादीनां यद् दातुं शक्यते नरैः ।
तत् तद् दद्यात् सम्भवे तु सर्वमेव प्रदापयेत् ।।३४।।

साधक मनुष्यों द्वारा इन आभूषण आदि में से जो-जो देना सम्भव हो वे-वे देवता को अर्पित करे। यदि सम्भव हो तो सभी प्रकार के आभूषण प्रदान करे ।।३४।।

चतुर्वर्गप्रदं त्वित्थं भूषणं सर्वसौख्यदम् ।
तुष्टिपुष्टिप्रीतिकरं यथाशक्तीष्टये सृजेत् ।।३५।।
इदं वा भूषणं प्रोक्तं सर्वदेवस्य तुष्टिदम् ।।३६।।

यह सब आभूषण, चारो पुरुषार्थ प्रदान करने वाले, सब प्रकार का सुख देने वाले, तुष्टि-पुष्टि और प्रीति कारक हैं। इन्हें अपने सामर्थ्य के अनुरूप इष्ट देवता को समर्पित करे। ये सभी देवताओं को सन्तुष्ट करने वाले आभूषण बताये गये हैं ।।३६।।

।। गन्धवर्णन ।।

गन्धं च सम्यक् शृणुतं पुत्रौ वेतालभैरवौ ।
चूर्णीकृतो वा घृष्टो वा दाहाकर्षित एव वा ।।३७।।

रसः सम्मर्दजो वापि प्राण्यङ्गोद्भव एव वा ।
गन्धः पञ्चविधः प्रोक्तो देवानां प्रीतिदायकः ।।३८।।

हे वेताल और भैरव नामक पुत्रों ! अब तुम दोनों, गन्ध के विषय में भली-भाँति सुनो—

चूर्ण बनाया हुआ, घिसा गया, जलाकर प्राप्त किया गया (भस्म आदि), परस्पर घर्षण से प्राप्त रस, प्राणियों के अङ्ग से उत्पन्न (कस्तूरी आदि) के भेद से देवताओं को प्रीतिप्रदान करने वाला, गन्ध इस प्रकार पाँच प्रकार का बताया गया है ॥३६-३८॥

गन्धचूर्णं गन्धपत्रं चूर्णं सुमनसस्तथा ।
प्रशस्तगन्धयुक्तानां पत्रचूर्णानि यानि तु ।
तानि गन्धवहानि स्युः सगन्धः प्रथमः स्मृतः ।।३९।।

चन्दन का चूर्ण, चन्दन के पत्ते का चूर्ण, उसके पुष्पों का चूर्ण या उत्तम सुगन्धितपत्तों के चूर्ण जो स्वयं में सुगन्धित होता है, वह प्रथमकोटि का गन्ध (चूर्णकृत गन्ध) कहा गया है॥३९॥

घृष्टो मलयजो गन्धः सचूर्णीकृतमेरुणा ।।४०।।
अगुरुप्रभृतिश्चापि यस्य पङ्कः प्रदीयते ।
गन्धो घृष्ट्वामघृष्टोऽयं द्वितीयः परिकीर्तितः ।।४१।।

मलयाचल पर उत्पन्न, मेरु (शिला) पर रगड़ा गया चन्दन, अगुरु आदि से बना, जिसका पङ्क मिलाकर, प्रदान किया जाता है, वह गन्ध से युक्त हो घिसे जाकर द्वितीयकोटि का घृष्टगन्ध कहा जाता है ॥४०-४१॥

देवदार्वगुरुपद्मगन्धसारान्त चन्दनाः ।
प्रियादीनां च यो दग्ध्वा गृह्यते दाहजो रसः ।।४२।।
स दाहाकर्षितो गन्धस्तृतीयः परिकीर्तितः ।

देवदारु, अगुरु, कमल, चन्दन, प्रिया (छोटी इलायची) आदि को जलाकर दाह के कारण जो रसतत्त्व प्राप्त किया जाता है वह तृतीयकोटि का दाहकर्षितगन्ध कहा जाता है ॥४२॥

सुगन्धकरवीबिल्वगन्धीनि तिलकं तथा ।।४३।।
प्रभृतीनां रसो योऽसौ निष्पीड्य परिगृह्यते ।
स सम्मर्दोद्भवो गन्धः सम्मर्दज इतीष्यते ।।४४।।

सुगन्धित कनैल, बिल्व (बेल), तिलक (वृक्ष विशेष) आदि निचोड़ कर जो रस ग्रहण किया जाता है, वह रगड़ से उत्पन्न होने के कारण चौथे प्रकार का सम्मर्दजगन्ध कहा जाता है ॥४३-४४॥

मृगनाभिसमुद्भूतस्तत्कोषोद्भव एव वा ।
गन्धः प्राण्यङ्गजः प्रोक्तो मोददः स्वर्गवासिनाम् ।।४५।।

कस्तूरीमृग की नाभि से उत्पन्न या उसकी कोषिकाओं से उत्पन्न जो गन्ध है, उसे प्राणी के अङ्ग से उत्पन्न गन्ध कहा जाता है और यह सभी स्वर्गवासियों, देवताओं को आनन्द देने वाला है ।।४५।।

कर्पूरगन्धसाराद्याः क्षोदे घृष्टे च संस्थिताः ।
चन्द्रभागादयश्चापि रसे पङ्के च सङ्गताः ।।४६।।
गन्धसारं सर्वरसं गन्धादौ च प्रयुज्यते ।
मृगनाभिर्भवेद् घृष्टश्चूर्णोऽप्यन्यस्य योगतः ।।४७।।

कर्पूर, चन्दन आदि सिल पर, चकले पर स्थित हो, चन्द्रभाग आदि के जल और कीचड़ से युक्त हुए सभी पदार्थ चन्दन की भाँति प्रयुक्त होते हैं। मृगनाभि (कस्तूरी) भी अन्यों से मिलकर घृष्ट या चूर्ण अवस्था को प्राप्त कर लेता है ।।४६-४७।।

एवं सर्वं तु सर्वत्र गन्धो भवति पञ्चधा ।
घृष्टादिभावादन्योन्यं गन्धः प्रीतिकरं परः ।।४८।।

इस प्रकार सभीगन्ध सबजगह पाँच प्रकार का ही होता है। घृष्टादि भावों को ग्रहण करते हुये ये गन्ध, अत्यधिक प्रसन्नता देते हैं ।।४८।।

गन्धस्य विस्तरो भेदः प्रोक्तः कालीयकादयः ।
सर्वः पञ्चविधेष्वेव प्रविष्टो भवति क्षणात् ।।४९।।

गन्ध के कालीयक आदि जो विस्तृत-भेद कहे गये हैं, वे सभी क्षणभर में ही इन्हीं पाँचभेदों में समाविष्ट हो जाते हैं ।।४९।।

गन्धो मलयजो यस्तु दैवे पित्र्ये च सम्मतः ।
तस्य पङ्को रसो वापि चूर्णो वा विष्णुतुष्टिदः ।।५०।।

जो मलयाचल में उत्पन्न होने वाला गन्ध (चन्दन) है, वह देवता और पितरों को रुचिकर है एवं उसका पङ्क (लेप), रस या चूर्ण, भगवान्विष्णु को तुष्टि देने वाला है।।५०।।

सर्वेषु गन्धजातेषु प्रशस्तो मलयोद्भवः ।
तस्मात् सर्वप्रयत्नेन दद्यान्मलयजं सदा ।।५१।।

गन्धहेतु प्रयोग किये जाने वाले पदार्थों में मलयज सर्वश्रेष्ठ है । अतः सब प्रकार के प्रयत्नपूर्वक सदैव मलयपर्वत पर उत्पन्न चन्दन ही अर्पित करना चाहिये ।।५१।।

कृष्णागुरुः सकर्पूरः सहितो मलयोद्भवैः ।
वैष्णवीप्रीतिदो गन्धः कामाख्यायाश्च भैरव ।।५२।।

हे भैरव ! मलयजचन्दन और काले अगुरु और कपूरसहित निर्मितगन्ध वैष्णवी एवं कामाख्या को प्रसन्नता देने वाला है।।५२।।

कुङ्कुमागुरुकस्तूरीचन्द्रभागैः समीकृतैः ।
त्रिपुराप्रीतिदो गन्धस्तथा चण्ड्यांश्च शस्यते ।।५३।।

कुङ्कुम, अगुरु, कस्तूरी और चन्द्रभाग (कपूर) समान मात्रा में मिलाये जाने से त्रिपुरा को प्रसन्नता प्रदान करने वाला एवं चण्डी के लिए प्रशस्त गन्ध बनता है ।।५३।।

देवतोद्देशपूर्वेण गन्धं सम्पूज्य साधकः ।
देवायेष्टाय वितरेत् सर्वसिद्धिप्रदं सदा ।।५४।।

देवता को लक्ष्य में रखकर, उनकी पूजा के पश्चात् साधक सदैव सब प्रकार की सिद्धि देने वाला चन्दन, अपने इष्टदेव को अर्पित करे ।।५४।।

गन्धेन लभते कामान् गन्धो धर्मप्रदः सदा ।
अर्थानां साधको गन्धो गन्धे मोक्षः प्रतिष्ठितः ।।५५।।

गन्ध (प्रदान करने) से साधक को उसकी कामनायें प्राप्त होती हैं, गन्ध उसे सदैव धर्म देता है, गन्ध अर्थ की सिद्धि कराता है, गन्ध मोक्ष को प्रतिष्ठित करता है ।।५५।।

।। पुष्पवर्णन ।।

अयं वा कथितो गन्धः पुत्रौ वेतालभैरवौ ।
पुष्पाणि देव्या वैष्णव्याः प्रियाणि शृणु सम्प्रति ।।५६।।

हे वेताल और भैरव नामक पुत्रों ! यह मैंने तुम दोनों से गन्ध (चन्दन) के विषय में कहा, अब देवी वैष्णवी के प्रिय पुष्पों के सम्बन्ध में सुनो ।।५६।।

बकुलैश्चैव मन्दारैः कुन्दपुष्पैः कुरुण्टकैः ।
करवीरार्कपुष्पैश्च शाल्मलैश्चापराजितैः ।।५७।।
दमनैः सिन्धुवारैश्च सुरभी कुरुवकैस्तथा ।
लताभिर्ब्रह्मवृक्षस्य दूर्वाङ्कुरैश्च कोमलैः ।।५८।।
मञ्जरीभिः कुशानां च बिल्वपत्रैः सुशोभनैः ।
पूजयेद् वैष्णवीदेवीं कामाख्यां त्रिपुरां तथा ।।५९।।

बकुल, मँदार, कुन्द, कुरुण्टक, कनैल, आक, शाल्मली, अपराजिता, दमन, सिन्धुवार कुरुवक के सुगन्धित पुष्पों, ब्रह्मवृक्ष (ढाक या गुलर) की लताओं, दूब के कोमलअङ्कुरों, कुशकी मञ्जरियों, सुन्दरबिल्वपत्रों से साधक वैष्णवी देवी, कामाख्या तथा त्रिपुरा का पूजन करे।।५७-५९।।

अन्याश्च या शिवाप्रीत्यै जायन्ते पुष्पजातयः ।
ता इमाः शृणु कथ्यन्ते मया वेतालभैरव ।।६०।।

हे वेताल एवं भैरव ! शिवा (देवी) की प्रसन्नता के लिए अन्य जो पुष्पों की जातियाँ उत्पन्न हैं, उनके विषयों में कहता हूँ, तुम दोनों सुनो ।।६०।।

मालती मल्लिका जाती यूथिका माधवी तथा ।
पाटला करवीरश्च जवा तर्कारिका तथा ।।६१।।
कुब्जकस्तगरश्चैव कर्णिकारोऽथ रोचना ।
चम्पकाम्रातकौ बाणो बर्बरा मल्लिका तथा ।।६२।।
अशोको लोध्रतिलकौ अटरूषशिरीषकौ ।
शमीपुष्पं च द्रोणश्च पद्मोत्पलबकारुणाः ।।६३।।
श्वेतारुणस्त्रिसन्ध्ये च पलाशः खदिरस्तथा ।
वनमालाऽथ सेवन्ती कुमुदोऽथ कदम्बकः ।।६४।।
चक्रं कोकनदं चैव तण्डिलो गिरिकर्णिका ।
नागकेशरपुन्नागौ केतक्यञ्जलिका तथा ।।६५।।
दोहदा बीजपूरश्च नमेरुः शाल एव च ।
त्रपुषी चण्डबिल्वश्च झिण्टी पञ्चविधास्तथा ।
एवमाद्युक्तकुसुमैः पूजयेद् वरदां शिवाम् ।।६६।।

मालती, मल्लिका, जाती (चमेली), यूथिका (जूही), माधवी, पाटल, करवीर, जवा, तर्कारिका, कुब्जक, तगर, कर्णिकार, रोचना, चम्पक, आम्रातक, बाण (पुष्पविशेष), बर्बर (वनतुलसी), अशोक, लोध, तिलक, अटरूष, शिरीष, शमीपुष्प, द्रोण, पद्म (लालकमल), उत्पल (नीलकमल), बकारुण, श्वेतारुण, पलाश, खदिर (खैर), वनमाला, सेवन्ती, कुमुद, कदम्ब, चक्र, कोकनद, तण्डिल, गिरिकर्णिका, नागकेशर, पुन्नाग, केतकी और अञ्जलिका, दोहद, बीजपूर, नमेरू, शाल, त्रपुषी, चण्डबिल्व और पाँच प्रकार के झिण्टी पुष्पों से वरदायिनी शिवा का तीनों संध्याओं में पूजन करना चाहिये ।।६१-६६।।

अपामार्गस्य पत्रं तु ततो भृङ्गारपत्रकम् ।
ततोऽपि गन्धिनीपत्रं वलाहकमतः परम् ।।६७।।
तस्मात् खदिरपत्रं तु वञ्जुलस्तवकस्तथा ।
आम्रं तु बकगुच्छं तु जम्बुपत्रं ततः परम् ।।६८।।
बीजपूरस्य पत्रं तु ततोऽपि कुशपत्रकम् ।
दूर्वांकुरं ततः प्रोक्तं शमीपत्रमतः परम् ।।६९।।
पत्रमामलकं तस्मादामलं पत्रमन्ततः ।
सर्वतो बिल्वपत्रं तु देव्याः प्रीतिकरं मतम् ।।७०।।

अपामार्ग (चिचिड़ा), भृङ्गार (भेंगरैया), गन्धिनी (गन्धवती), वलाहक, खदिर, वञ्जुल, आम, बकगुच्छ, जामुन, बीजपूर, कुश के पत्ते, दूर्वांकुर, आवँले, आमड़े के पत्ते, क्रमशः देवी को विशेष प्रिय हैं किन्तु बेल के पत्ते देवी को सबसे अधिक प्रसन्नता देने वाले कहे गये हैं ।।६७-७०।।

पुष्पं कोकनदं पद्मं जपा बन्धूक एव च ।।७१।।
पत्रं बिल्वस्य सर्वेभ्यो वैष्णवीतुष्टिदं मतम् ।
सर्वेषां पुष्पजातीनां रक्तपद्ममिहोत्तमम् ।।७२।।

वैष्णवी को तुष्टि देने वाले पुष्पों में, कोकनद, पद्म (लालकमल), जपा, बन्धूक के पुष्प तथा बिल्वपत्र सबसे श्रेष्ठ बताये गये हैं। सभी प्रकार की पुष्प जातियों में लालकमल सर्वश्रेष्ठ कहा गया है ।।७१-७२।।

रक्तपद्मसहस्रेण यो मालां सम्प्रयच्छति ।
भक्तियुक्तो महादेव्यै तस्य पुण्यफलं शृणु ।।७३।।

जो साधक भक्तियुक्त होकर महादेवी को हजारलालपद्मों की बनी माला अर्पित करता है, उसके पुण्यफल को सुनो ।।७३।।

कल्पकोटिसहस्राणि कल्पकोटिशतानि च ।
स्थित्वा मम पुरे श्रीमांस्ततो राजा क्षितौ भवेत् ।।७४।।

वह साधक हजारों और सैकड़ों करोड़कल्पों की अवधि तक मेरे पुर में निवास कर, पुनः पृथिवी पर श्रीसम्पन्न राजा होता है ।।७४।।

पत्रेषु बिल्वपत्रं तु देवीप्रीतिकरं मतम् ।
तत्सहस्रकृता माला पूर्ववत् फलदा भवेत् ।।७५।।

पत्तों में बिल्वपत्र देवी को अत्यन्त प्रसन्नता देने वाला कहा गया है। उसकी हजारपत्तों से निर्मितमाला पहले के ही समान फल देने वाली होती है ।।७५।।

वाजिदन्तकपत्रैश्च पुष्पौघैरपि पूजयेत् ।
तुलसीकुसुमैः पत्रैरचर्ययेच्छ्रीविवृद्धये ।।७६।।

यदि सम्भव हो वाजिदन्त के पत्र-पुष्पों से भी देवी का पूजन करे। लक्ष्मी की वृद्धि के लिए तुलसी के पत्ते और मञ्जरी से देवी का पूजन करे।।७६।।

पुष्पैर्देवाः प्रसीदन्ति पुष्पे देवाश्च संस्थिताः ।
चराचराश्च सकलाः सदा पुष्परसाः स्मृताः ।।७७।।

पुष्पों से देवता प्रसन्न होते हैं, पुष्प में देवता वास करते हैं, समस्त चराचर-जगत सदैव पुष्प का रसास्वादन करने वाला कहा गया है ।।७७।।

किञ्चाति बहुनोक्तेन पुष्पस्योक्तिर्मतल्लिका ।
परं ज्योतिः पुष्पगतं पुष्पेणैव प्रसीदति ।।७८।।

बहुत अधिक कहने से क्या लाभ पुष्प सर्वश्रेष्ठ है क्योंकि पुष्प में स्थित परमज्योति (मतल्लिका) जगदम्बा, पुष्प-अर्पण से ही प्रसन्न होती हैं ।।७८।।

त्रिवर्गसाधनं पुष्पं तुष्टिश्रीपुष्टिमोक्षदम् ।
पुष्पमूले वसेद् ब्रह्मा पुष्पमध्ये तु केशवः ।।७९।।
पुष्पाग्रे तु महादेवः सर्वे देवाः स्थिता दले ।

तस्मात् पुष्पैर्यजेद् देवान्नित्यं भक्तियुतो नरः ।
उच्चारितं नाममात्रं जायते सर्वभूतये ।।८०।।

पुष्प, अर्थ, धर्म, काम तीनों पुरुषार्थों को सिद्ध करने वाला और तुष्टि, पुष्टि, श्री एवं मोक्ष प्रदान करने वाला है । इसके मूल में ब्रह्मा, मध्यभाग में विष्णु, अग्र-भाग में महादेव शिव तथा पंखुड़ियों में सभी देवता निवास करते हैं । इसलिए मनुष्य (साधक), देवताओं का नित्य (प्रतिदिन) भक्तिपूर्वक पुष्प से देवताओं का पूजन करे, जिसका नाम मात्र उच्चारण ही सब प्रकार से ऐश्वर्य देने वाला है।।७९-८०।।

किञ्चात्र बहुनोक्तेन सामान्येनेदमुच्यते ।
उक्तानुक्तैस्तथापुष्पैर्जलजैः स्थलसम्भवैः ।।८१।।
पत्रैः सर्वैर्यथालाभं सर्वौषधिगणैरपि ।
वनजैः सर्वपुष्पैश्च पत्रैरपि शिवां यजेत् ।।८२।।

बहुत कहने से क्या लाभ ? सामान्यरूप से यह कहा जाता है कि— जल में, स्थल में या वन में उत्पन्न होने वाले सभी फूलों, पत्तों और औषधिगणों से जो ऊपर कहे गये हों या न कहे गये हों किन्तु उपलब्ध हों, उनसे शिवा (कालिका) का पूजन करना चाहिये ।।८१-८२।।

पूजयेत् परमेशानीं पुष्पाभावेऽपि पत्रकैः ।
पत्राणामप्यभावे तु तृणगुल्मौषधादिभिः ।।८३।।

परमेश्वरी का पुष्पों के अभाव में पत्तों से, पत्तों के अभाव में तृण-गुल्म, औषधि आदि से विधिपूर्वक पूजन करना चाहिये।।८३।।

औषधीनामभावे तु तत्फलैरपि पूजयेत् ।
अक्षतैर्वा जलैर्वापि तदभावे तु सर्षपैः ।
सितैस्तस्याप्यलाभे तु मानसीं भक्तिमाचरेत् ।।८४।।

औषधियों के अभाव में उनके फलों से पूजन करे या अक्षत और जल से, इनके भी अभाव में, श्वेतसरसों से पूजन करे। यदि वह भी सम्भव (उपलब्ध) न हो तो मानसी पूजा करे।।८४।।

सततं पुष्पपर्णाभ्यां पूजयेद् यस्तु देवताम् ।
ताभ्यामेव चतुर्वर्गः कथितो नात्र संशयः ।।८५।।

जो साधक निरन्तर पत्र-पुष्प से देवता का पूजन करता है, उन्हीं के लिए चतुवर्ग है, इसमें कोई संशय नहीं है।।८५।।

एवं वां कथितो पुष्पो धूपं च शृणुतं सुतौ ।।८६।।

हे पुत्रों ! यह मैंने तुम दोनों से पुष्प के विषय में कहा । अब धूप के विषय में सुनो।।८६।।

।। धूपवर्णन ।।

नासाक्षिरन्ध्रसुखदः सुगन्धोऽतिमनोहरः ।
दह्यमानस्य काष्ठस्य प्रयतस्येतरस्य च ।।८७।।
परागस्याथवा धूमो निस्तापो यस्य जायते ।
स धूप इति विज्ञेयो देवानां तुष्टिदायकः ।।८८।।

नाक और आँख के छिद्रों को सुख देने वाला अत्यन्तसुन्दर सुगन्धवाला, जलने वाली लकड़ी या लगाये हुए अन्य पराग का जिससे बिना ताप का धुआँ निकलता है, उसे धूप जानना चाहिये। यह देवताओं को सन्तोष देने वाला है।।८७-८८।।

राशीकृतैर्न चैकत्र तैर्द्रव्यैः परिधूपयेत् ।
तुषाग्निवर्तुलां कृत्वा न तत् फलमवाप्नुयात् ।।८९।।

उन पदार्थों को एक स्थान पर इकट्ठा कर भूसा और आग से घेर कर धुआँ न करे क्योंकि इस प्रकार के धूप-अर्पण का कोई फल प्राप्त नहीं होता है ।।८९।।

श्रीचन्दनं च सरलः शालः कृष्णागुरुस्तथा ।
उदयः सुरथस्कन्दो रक्तविद्रुम एव च ।।९०।।
पीतशालः परिमलो विर्मदी काशलस्था ।
नमेरुर्देवदारुश्च बिल्वसारोऽथ खादिरः ।।९१।।
सन्तानः पारिजातश्च हरिचन्दनवल्लभौ ।
वृक्षेषु धूपाः सर्वेषां प्रीतिदाः परिकीर्तिताः ।।९२।।

श्रीचन्दन, सरल (चीड़ा), शाल, कृष्णागुरु, उदय, सुरथ, स्कन्द (पारा) लाख, पीतशाल (चन्दन), परिमल (सुगन्ध), काशलस्थचूर्ण, नमेरु, देवदार, बेल की गुद्दी, खदिर (खैर), सन्तान (पुष्प विशेष), पारिजात, हरिचन्दन, वल्लभ वृक्षों के धूप, सबके प्रसन्नता देने वाले कहे गये हैं ।।९०-९२।।

अरालः सह सूत्रेण श्रीवासः पट्टवासकः ।
कर्पूरः श्रीकरश्चैव परागः श्रीहरामलौ ।।९३।।
सर्वौषधीव जातीव वराहश्चूर्ण उत्कलः ।
जातीकोषस्य चूर्णं च गन्धः कस्तूरिका तथा ।
क्षोदे वृत्ते च गदिता धूपा एते उदाहृताः ।।९४।।

रेशे के सहित अराल, श्रीवास (कमल), पट्टवास, कपूर, श्रीकर (लाल-कमल), पराग, श्रीहर, आँवला, सभी प्रकार की औषधियाँ, जाती (चमेली), वाराहचूर्ण (विदारीकंद का चूर्ण), उत्कल, जातीकोष का चूर्ण, कस्तूरी, गन्ध आदि सिल पर पिसी या घिसी अवस्था में धूप कहे गये है ।।९३-९४।।

यक्षधूपो वृक्षधूपः श्रीपिष्टोऽगुरु झर्झरः ।।९५।।
पुत्रिवाहः पिण्डधूपः सुगोलः कण्ठ एव च ।
अन्योन्ययोगा निर्यासा धूपा एते प्रकीर्तिताः ।।९६।।

यक्षधूप (गुग्गुल),वृक्षधूप (तारपीन), श्रीपिष्ट, अगुरु, झर्झर (बेंत), पुत्रिवाह, पिण्ड-धूप, सुगोल (मैनसिल), कण्ठ आदि परस्परसहयोग से या इनके रस भी धूप कहे जाते हैं॥९५-९६॥

एतैर्विधूपयेद् देवान् धूमिभिः कृष्णवर्त्मना ।
येषां धूपोद्भवैर्घ्राणस्तुष्टिं गच्छन्ति जन्तवः ।।९७।।

इन उपर्युक्त पदार्थों के अग्नि द्वारा उत्पन्न धुएँ से देवताओं को धूप समर्पित करे, जिनके धूप से उत्पन्न सुगन्ध से, सभी जन्तुओं की घ्राणेन्द्रियाँ तृप्त हो जाती हैं॥९७॥

निर्यासश्च परागश्च काष्ठं गन्धं तथैव च ।
कृत्रिमश्चेति पञ्चैते धूपाः प्रीतिकराः पराः ।।९८।।

रस, पराग, लकड़ी, गन्ध और घिसकर बनाये गये कृत्रिम, ये पाँच प्रकार के धूप, अत्यन्त प्रीतिकारक होते हैं ॥९८॥

न यक्षधूपं वितरेन्माधवाय कदाचन ।
न रक्तं विद्रुमं मह्यं सुरथं कद्रिलं तथा ।।९९।।

न गुग्गुल, कभी भगवान विष्णु को, न लाख, विद्रुम, सुरथ, कद्रिल, मुझ शिव को प्रदान करे॥९९॥

यक्षधूपः पुत्रिवाहः पिण्डधूपः सुगोलकः ।
कृष्णागुरुः सकर्पूरो महामायाप्रियः स्मृतः ।
वृक्षधूपेन वा देवीं महामायां प्रपूजयेत् ।।१००।।

गुग्गुल, पुत्रिवाह, पिण्डधूप, सुगोलक, कृष्णागुरु और कपूर महामाया के प्रिय धूप कहे गये हैं अथवा वृक्षधूप (तारपीन) से देवी महामाया का पूजन करे॥१००॥

मेदोमज्जासमायुक्तान् न धूपान् विनियोजयेत् ।
परकीयांस्तथाघ्रातांस्तेऽपि कृत्याभिमर्दितान् ।।१०१।।

मेदा, मज्जा से युक्त, दूसरों के लाये गन्ध, पुष्प, धूप, दूसरों के द्वारा सूँघे-गये या कुचलेगये धूपों का प्रयोग न करे ॥१०२॥

पुष्पं धूपं च गन्धं च उपचारांस्तथापरान् ।
घ्रात्वा निवेद्य देवेभ्यो नरो नरकमाप्नुयात् ।।१०२।।

पुष्प, धूप, गन्ध आदि तथा अन्य पूजाउपचारों को, जो सूँघ कर देवता को अर्पित करता है, वह साधक नरक में जाता है॥१०२॥

न भूमौ वितरेद् धूपं नासने न घटे तथा ।
यथातथाधारगतं कृत्वा तद् विनिवेदयेत् ।।१०३।।

भूमि पर, आसन पर या घड़े पर, धूप अर्पित न करे अपितु किसी प्रकार का आधार लेकर ही धूप समर्पित करे ॥१०३॥

रक्तविद्रूमशालौ च सुरथः सरलस्तथा ।
सन्तानको नमेरुश्च कालागुरुसमन्वितः ।।१०४।।
जातीकोषाक्षसंयुक्तो धूपः कामेश्वरीप्रियः ।
त्रिपुण्यायास्तथैवायं मातृणामपि नित्यशः ।।१०५।।
सर्वेषां पीठदेवानां रुद्रादीनां च पुत्रकौ ।।१०६।।

लाख, विद्रुम, शाल, सुरथ, सरल, सन्तानक, नमेरु, कालागुरु, जातीकोष और अक्ष (बहेड़े) युक्त धूप, देवी कामेश्वरी, त्रिपुरा तथा मातृकाओं को नित्य ही प्रिय है। हे पुत्र ! यह रुद्रादि सभी पीठस्थ देवताओं को भी नित्यप्रिय है।।१०४-१०६।।

।। दीपवर्णन ।।

दीपेन लोकाञ्जयति दीपस्तेजोमयः स्मृतः ।
चतुर्वर्गप्रदो दीपस्तस्माद् दीपैर्यजेच्छ्रियम् ।।१०७।।

दीपक से लोकों को जीता जाता है, दीप तेजस्वरूप कहा गया है, दीप, धर्म, अर्थ, काम, मोक्ष, चारो पुरुषार्थों को देने वाला है । इसलिए साधक को दीपों से देवी का पूजन करना चाहिये।।१०७।।

घृतप्रदीपः प्रथमस्तिलतैलोद्भवस्ततः ।।१०८।।
सार्षपफलनिर्यासजातो वा राजिकोद्भवः ।
दधिजश्चान्नजश्चैव दीपाः सप्त प्रकीर्तिताः ।।१०९।।

दीप, सात प्रकार के कहे गये है— प्रथम घी का प्रदीप, उसके बाद तिल के तेल का दीप, सरसो के तेल का दीप, काली सरसो (राई) के तेल का, दधिज (तारपीन) के तेल, फलों के रस, राल आदि के प्रज्ज्वलित दीप, बिनौला आदि अन्न के रस से प्रज्ज्वलित दीप ।।१०८-१०९।।

पद्मसूत्रभवा दर्भगर्भसूत्रभवाऽथवा ।
शणजा बादरी वापि फलकोषोद्भवा तथा ।
वर्तिका दीपकृत्येषु सदा पञ्चविधाः स्मृताः ।।११०।।

पद्मसूत्र (कमलनाल के रेशे) से बनी, दर्भगर्भ (कुशा के मूलभाग से बनी) अथवा सन से बनी, बादरी (रूई से बनी), फल के कोश से बनी, होने से, दीपकार्य के लिए बत्ती भी सदैव, पाँच प्रकार की कही गई है ।।११०।।

तैजसं दारवं लौहं मार्त्तिक्यं नारिकेलजम् ।
तृणध्वजोद्भवं वापि दीपपात्रं प्रशस्यते ।।१११।।

तैजस (धातु से बना), दारव (लकड़ी से बना), लौह (लोहे से बना), मार्तिक्य (मिट्टी से बना) नारीकेलज (नारीयल की खोपड़ी से बना), तृणध्वज (बाँस) से बना होने के कारण, पाँच प्रकार के दीपक-पात्र, उत्तम कहे गये हैं।।१११।।

दीपवृक्षाश्च कर्तव्यास्तैजसाद्यैस्तु भैरव ।
वृक्षेषु दीपो दातव्यो न तु भूमौ कदाचन ।।११२।।

हे भैरव ! उपर्युक्त दीपपात्रों की भाँति ही दीप-वृक्ष (दीयट) भी तैजस आदि पूर्वोक्त पाँच प्रकार के ही बनाने चाहिये । इन दीपवृक्षों (दीप के आधार-स्तम्भ, दीयट) पर ही देवता को दीपक अर्पित करना चाहिये । भूमि पर कभी अर्पित न करे॥११२॥

सर्वसहा वसुमती सहते न त्विदं द्वयम् ।
अकार्यपादघातं च दीपतापं तथैव च ।।११३।।
तस्माद् यथा तु पृथिवी तापं नाप्नोति वै तथा ।
दीपं दद्यान्महादेव्यै अन्येभ्योऽपि च भैरव ।।११४।।

हे भैरव ! सब कुछ सहने वाली वसुमती (पृथ्वी) बिना प्रयोजन, पैर से मारना (पैर पटक कर चलना) और दीपक का ताप, इन दो कष्टों को नहीं सह पाती । अतः पृथ्वी जिस प्रकार से ताप को न प्राप्त करे, उसी प्रकार महादेवी और अन्य देवताओं को दीपक अर्पित करना चाहिये॥११३-११४॥

कुर्वन्तं पृथिवीतापं यो दीपमुत्सृजेन्नरः ।
स ताम्रतापं नरकं प्राप्नोत्येव शतं समाः ।।११५।।

जो मनुष्य पृथ्वी को तापप्रदान करने वाला दीपक, ईष्ट देवता को अर्पित करता है, वह सौ वर्षो तक ताम्रताप नामक नरक को प्राप्त करता है ॥११५॥

सुवृत्तवर्तिः सुस्नेहः पात्रमग्नः सुदर्शनः ।
सूच्छ्राये वृक्षकोटौ तु दीपं दद्यात् प्रयत्नतः ।।११६।।

साधक, सुन्दर ऊँचे वृक्ष (दीयट) के कोटि, पाटे पर, सुडौल बत्ती, सुन्दर घी या तेलयुक्त, सुन्दर दिखाई देने वाले अखण्डदीपपात्र युक्त दीपक, प्रयत्नपूर्वक अर्पित करे॥११६॥

लभ्यते यस्य तापस्तु दीपस्य चतुरङ्गुलात् ।
न स दीप इति ख्यातो ह्योघवह्निस्तु स श्रुतः ।।११७।।

जिस दीपक का ताप चारअङ्गुल की ऊँचाई से अनुभव किया जाता है, वह दीपक, दीपक नहीं कहा जाता। वह ओघवह्नि निरन्तर प्रज्वलितअग्नि सुना जाता है॥११७॥

नेत्राह्लादकरः स्वर्चिर्दूरतापविवर्जितः ।
सुशिखः शब्दरहितो निर्धूमो नातिह्रस्वकः ।।११८।।
दक्षिणावर्तवर्तिस्तु प्रदीपः श्रीविवृद्धये ।।११९।।

आँखों को प्रसन्न करने वाला, ज्वाला और दूर तक फैलने वाले ताप व धूयें एवं शब्द से रहित, बहुत छोटी बत्ती वाली न हो, ऐसी सुन्दर शिखा (लौ) से युक्त दक्षिणावर्त बत्तीवाला प्रदीप, श्री की वृद्धि के लिए होता है ॥११८-११९॥

दीपवृक्ष स्थिते पात्रे शुद्धस्नेहप्र पूरिते ।।१२०।।
दक्षिणावर्तवर्त्या तु चारुदीप्तः प्रदीपकः ।
उत्तमः प्रोच्यते पुत्र सर्वतुष्टिप्रदायकः ।।१२१।।

हे पुत्र ! दीपवृक्ष पर स्थित, शुद्ध स्नेह (घृत, तेल आदि) से भरे हुए पात्र में दक्षिण की ओर (दाहिनी ओर) झुकी हुई बत्तीवाला, सुन्दर ढंग से जलने वाला दीपक, उत्तम कोटि का कहा जाता है तथा यह सब को सन्तोष प्रदान करने वाला होता है।।१२०-१२१।।

वृक्षेण वर्जितो दीपो मध्यमः परिकीर्तितः ।
विहीनः पात्रतैलाभ्यामधमः परिकीर्तितः ।।१२२।।

दीपवृक्ष (दीयट) से रहित दीपक, मध्यम तथा पात्र और तेल से रहित बत्ती मात्र का दीपक, अधम, दीपक कहा जाता है।।१२२।।

शाणं वा दारवं वस्त्रं जीर्णं मलिनमेव वा ।
उपयुक्तं च नादद्याद् वर्तिकार्थं तु साधकः ।।१२३।।
उपादद्यान्नूत्नमेव सततं श्रीविवृद्धये ।
कोषजं रोमजं वस्त्रं वर्तिकार्थं न चाददेत् ।।१२४।।

साधक सन का बना, लकड़ी का बना, या फटा पुराना और मैलावस्त्र, बत्ती के लिए न प्रयोग करे। वह श्रीवृद्धि के लिए नित्य नये वस्त्र का ही उपयोग करे। वह रेशम और रोम (ऊन) से बने वस्त्र भी बत्ती के लिए न प्रयोग करे ।।१२३-१२४।।

न मिश्रीकृत्य दद्यात् तु दीपे स्नेहघृतादिकान् ।
कृत्वा मिश्रीकृतं स्नेहं तामिस्रं नरकं व्रजेत् ।।१२५।।

दीपक में स्नेह के रूप में घी और तेल मिलाकर उपयोग न करे क्योंकि मिला हुआ स्नेह, उपयोग करने से साधक, तामिस्र नामक नरक को जाता है ।।१२५।।

वसामज्जास्थिनिर्यासैः स्नेहैः प्राण्यङ्गसम्भवैः ।
प्रदीपं नैव कुर्यात् तु कृत्वा पङ्केऽवसीदति ।।१२६।।

चर्बी, मज्जा या हड्डी से निकले रस या प्राणी के अंग से उत्पन्न, तरलपदार्थों के स्नेह से दीपक नहीं बनाना चाहिये। ऐसा करने से साधक, पङ्क में कष्ट पाता है।।१२६।।

अस्थिपात्रेऽथवा पच्येद् दुर्गन्धास्थिपवासिनि ।
नैव दीपः प्रदातव्यो विबुधैः श्रीविवृद्धये ।।१२७।।

श्री की अभिवृद्धि चाहने वाले विद्वानों को अस्थिपात्र में या दुर्गन्धयुक्तअस्थि आदि के बीच दीपक नहीं प्रदान करना चाहिये।।१२७।।

नैव निर्वापयेद् दीपं कदाचिदपि यत्नतः ।
सततं लक्षणोपेतं देवार्थमुपकल्पितम् ।।१२८।।

कभी भी देवता के निमित्त जलाये गये, सभी लक्षणों युक्त, निरन्तर जलाये गये, दीपक को, प्रयत्नपूर्वक नहीं बुझाना चाहिये ।१२८।।

न हरेदज्ञानतो दीपं तथा लोभादिना नरः ।
दीपहर्ता भवेदन्धः काणो निर्वापको भवेत् ।।१२९।।

मनुष्य अज्ञानवश या लोभ आदि के कारण उपर्युक्त दीप को नष्ट न करे, न (बुझाये) क्योंकि दीप को नष्ट करने वाला अन्धा तथा बुझाने वाला काना होता है।।१२९।।

उद्दीप्तदीप्तप्रतिमः काष्ठकाण्डसमुद्भवः ।
बिल्वेध्मोद्भवमेवाथ दीपालाभे निवेदयेत् ।।१३०।।

दीपक के अभाव में बेल के ईन्धन से जला हुआ, लकड़ी के टुकड़े का बना, दीप के समान प्रज्ज्वलित पिण्डरी अर्पित करे।।१३०।।

उल्मुकं नैव दीपार्थे कदाचिदपि चोत्सृजेत् ।
प्रसन्नार्थं तु तं दद्याउपचाराद् बहिष्कृतम् ।।१३१।।

देवता को अर्पितदीप के रूप में उल्मुक (जलती हुई लकड़ी या मशाल) का कभी उपयोग न करे, यदि प्रसन्नता या विशेष प्रकाश हेतु देना ही हो तो, पूजा उपचारों से अलग प्रदान करे।।१३१।।

।। नेत्र रञ्जन वर्णन ।।

एष वां कथितो दीपः श्रृणु तन्नेत्ररञ्जनम् ।
येन तुष्यति कामाख्या त्रिपुरा वैष्णवी तथा ।।१३२।।

यह मैनें तुम दोनों से दीप का वर्णन किया । अब उस नेत्ररञ्जन (काजल) के विषय में मुझसे सुनो । जिससे कामाख्या, वैष्णवी, त्रिपुरादेवी सन्तुष्ट हो जाती हैं।।१३२।।

सौवीरं यामुनं तुत्थं मयूरयामुनं तथा ।
दर्विका मेघनीलश्च अञ्जनानि भवन्ति षट् ।।१३३।।

सौवीर (सुरमा), यामुन (अंजन विशेष), तुत्थं (तुतिया), मयूर, यामुन, दर्विका और मेघनील (मेघ के समान नीला) ये छः प्रकार के अञ्जन होते हैं।।१३३।।

स्त्रवद्द्रुमं च सौवीरं यामुनं प्रस्तरं तथा ।
मयूरग्रीवकं रत्नं मेघनीलस्तु तैजसम् ।।१३४।।
घृष्टानि ग्राह्य चैतानि शिलायां तैजसेऽथवा ।
प्रदद्यात् सर्वदेवेभ्यो देवीभ्यश्चापि पुत्रक ।।१३५।।

हे पुत्र ! सौवीर, वृक्ष से निकलने वाला रस, यामुनपत्थर, मयूर, ग्रीवक, रत्न एवं मेघनील धातुमय होता है । इन्हें शिला या धातु पर घिसा हुआ ही ग्रहण करना चाहिये और सभी देवी-देवताओं को देना चाहिये।।१३४-१३५।।

घृततैलादियोगेन ताम्रादौ दीपवह्निना ।
यदञ्जनं जायते तु दर्विका परिकीर्तिता ।
सर्वाभावे तु तद् दद्याद् देवीभ्यो दाहजाञ्जनम् ।।१३६।।

घी, तेल आदि के योग से ताँबा आदि पर दीपक की लौ से जो अञ्जन (काजल) बनता है उसे दर्विका कहा जाता है, सब प्रकार के अञ्जनों के अभाव में उस दाह से उत्पन्न अञ्जन को ही देना चाहिये ।।१३६।।

महामाया जगद्धात्री कामाख्या त्रिपुरा तथा ।
आप्नुवन्ति महातोषं षड्भिरेभिः सदाञ्जनैः ।।१३७।।

महामाया, जगत्द्धात्री, कामाख्या तथा त्रिपुरा देवियाँ इन उपर्युक्त छः प्रकार के अञ्जनों से महान् सन्तोष प्राप्त करती हैं ।।१३७।।

विधवा नाञ्जनं कुर्यान्महामायार्थमुत्तमम् ।
नादत्ते त्वञ्जनं कुर्यान्महामायार्थमुत्तमम् ।।१३८।।

विधवा स्त्री को महामाया के निमित्त अञ्जन नहीं लगाना चाहिये और न तो कहीं से लिया हुआ अञ्जन ही महामाया को अर्पित करना चाहिये ।।१३८।।

न मृत्पात्रे योजयेत् तु साधको नेत्ररञ्जनम् ।
न पूजाफलमाप्नोति मृत्पात्रविहिताञ्जनैः ।।१३९।।

साधक मिट्टी के पात्र में आँख की शोभा बढ़ानेवाले, अञ्जन की व्यवस्था न करे क्योंकि मिट्टी के पात्र में अञ्जन रखने से पूजा का फल साधक को प्राप्त नहीं होता।।१३९।।

चतुर्वर्गप्रदो दीपः कामदं नेत्ररञ्जनम् ।
तस्माद् द्वयमिदं दद्याद् देवेभ्यो भक्तितो नरः ।।१४०।।

दीपअर्पण करना अर्थ, धर्म, काम, मोक्ष चारों पुरुषार्थों को प्रदान करता हैं तथा नेत्ररञ्जन सभी कामनाओं को प्रदान करता है, इसीलिए साधकमनुष्य देवताओं को ये दोनों पदार्थ भक्तिपूर्वक अर्पित करे।।१४०।।

इति वां गदितो दीपस्तथोक्तं नेत्ररञ्जनम् ।
नैवेद्यं तु महादेव्याः शृण्वैकाग्रमनाः पुनः ।।१४१।।

इति श्रीकालिकापुराणे वस्त्रादिपूजोपचारवर्णने एकोनसप्तितमोऽध्यायः ।।६९।।

यह तुम दोनों से दीप एवं नेत्ररञ्जन के विषय में, मेरे द्वारा कहा गया । अब आगे एकाग्रमन से महादेवी के नैवेद्य के विषय में सुनो ।।१४१।।

श्रीकालिकापुराण में वस्त्रादिपूजोपचारवर्णनसम्बन्धी उनहत्तरवाँ अध्याय सम्पूर्ण हुआ।।६९।।



सप्ततितमोऽध्यायः

नैवेद्यादिपूजोपचारवर्णनम्

।। नैवेद्यवर्णन ।।

।। श्रीभगवानुवाच ।।

निवेदनीयं यद् द्रव्यं प्रशस्तं प्रयतं तथा ।
तद्भक्ष्याद्यं पञ्चविधं नैवेद्यमिति गद्यते ।।१।।

श्रीभगवान् बोले—जो पदार्थ निवेदन के लिए उत्तम और प्रस्तावित हैं, उन भक्ष्य आदि पाँचप्रकार के नैवेद्य के विषय में कहा जाता है ।।१।।

भक्ष्यं भोज्यं च लेह्यं च पेयं चोष्यं च पञ्चमम् ।
सर्वत्र चैतन्नैवेद्यमाराध्येष्टे निवेदयेत् ।।२।।

भक्ष्य, भोज्य, लेह्य (चाटने योग्य), पेय (पीने योग्य), चोष्य (चूसने योग्य) ये पाँच प्रकार के नैवेद्य, आराध्य-इष्टदेव को निवेदित करना चाहिये ।।२।।

तेषु प्रियतरं देव्याः कथये शृणुतं तु वाम् ।
भक्ष्यादिपञ्चकैर्देवी दत्तैरेवाभितुष्यति ।
नादत्ते विधिवत् किञ्चिद् दत्तं चैतन्न विद्यते ।।३।।

उन भक्ष्यादि पाँचों में देवी को जो विशेषरूप से प्रिय हैं, जिनके अर्पणमात्र से ही देवी, सन्तुष्ट हो जाती हैं। जिनके विधि-पूर्वक दिये बिना वह कुछ भी नहीं स्वीकार करती किन्तु इनके समर्पण से देने को कुछ नहीं बचता, उन नैवेद्यों के विषय में मैं कहता हूँ, तुम दोनों सुनो ।।३।।

नागरं च कपित्थं च द्राक्षां क्रमुकमेव च ।।४।।
करकं वरदं कोलं कुष्माण्डं पनसं तथा ।
बकुलं च मधूकं च रसालाम्रातकेशरम् ।।५।।
आक्षोडं पिण्डखर्जूरं करुणं श्रीफलं तथा ।
औदुम्बरं च पुन्नागं माधवं कर्कटीफलम् ।।६।।
जाम्बवं पिण्डखर्जूरं बीजपूरं च जाम्बवम् ।
हरीतकीमामलकं षड्विधं नागरङ्गकम् ।।७।।
देवकं मधुकं शीतं पटोलं क्षीरवृक्षजम् ।
पाटलं शालजं वृन्तमग्निजं कदलीफलम् ।।८।।

तिन्दुकं कुसुमं पीतं कारविन्दं करूषकम् ।
गर्भावर्तं च तत्पुष्पं क्षीरस्त्राव्यमनङ्गजम् ।।९।।
कुमुदानां पङ्कजानां फलानि विविधानि च ।
वन्यानां सकलैर्देवीं फलैः पुष्पैः प्रपूजयेत् ।
ऋते श्लेष्मातकं विम्बशैलकं वैष्णवीं तथा ।।१०।।

नारंगी, कैंथ, अंगूर, क्रमुक (सुपारी), करक (अनार), वरद, कोल (बैर विशेष) कुष्माण्ड, (कुम्हड़ा या भतुआ), पनस (कटहल), बकुल (मौलसिरी), मधूक (महुआ), रसाल (आम), आम्रातक (अमड़ा), केशर, आक्षोड (अखरोट), पिण्डखजूर, करुण, श्रीफल (बेल), गूलर, पुन्नाग, माधव, ककड़ी, जामुन, पिण्ड-खर्जूर, बीजपूर (बिजौरा) और जाम्बव, हर्रे, आँवला, छः प्रकार की नारङ्गियाँ, देवक, मधूक, शीत, लिसोड़ा, पटोल, क्षीरवृक्षज (अंजीर), पाटल (लाललोध), शालफल, वृन्त, अग्निज, केला, तिन्दुक (तेन्दु के फूल), पीले कारबिन्द, करुषक, गर्भावर्त (कटहल) और उसका फूल, क्षीरस्त्राव्य एवं अनङ्गज, कुमुद, पङ्कज आदि अनके फल, पुष्पों, श्लेष्मान्तक (लिसोड़ा) और विम्बशैल (बिम्ब) फल को छोड़कर सभी प्रकार के जंगलीफल पुष्पों से, वैष्णवी देवी का पूजन करना चाहिये (यहाँ कई फलों के नाम दो बार आये हैं)॥४-१०॥

सर्वेषां फलजातीनां मध्ये देवीप्रियं फलम् ।
लाङ्गलं मातुलुङ्गं च करमर्दं रसालकम् ।।११।।

सभी फल-जातियों (फलों) में लाङ्गल, मातुलुङ्ग (चकोतरा), करमर्द और आम, देवी के प्रियफल हैं ॥११॥

एवं फलानि देयानि कामाख्यायै च भैरव ।
त्रिपुरायै तथा सम्यक् पीठदेवीभ्य एव च ।।१२।।

हे भैरव ! इसी प्रकार के फल कामाख्या, त्रिपुरा, और पीठदेवियों को भली-भांति देना चाहिये॥१२॥

श्रृङ्गाटकं कशेरुं च शालूकं च मृणालकम् ।।१३।।
श्रृङ्गबेरं काञ्चनं च स्थूलं कन्दं बकुलकम् ।
एवमादीनि कन्दानि दैव्यै सर्वाणि चोत्सृजेत् ।।१४।।

श्रृंगाटक (सिंघाड़ा), कशेरु, शालक (कुमुदिनी की जड़), मृणालक (कमलनाल), श्रृंगबेर (अदरक), काञ्चन, स्थूलकंद (कन्दा), बकुल आदि कन्दों (कन्दजातीय) फलों को देवी को समर्पित करे ॥१३-१४॥

परमान्नं पिष्टकं च यावकं कृशरं तथा ।
मोदकं पृथुकादीनि कन्दुपक्वानि चोत्सृजेत् ।।१५।।

परमान्न (खीर), पिष्टक (बाटी), यावक (हलुआ), कृशर (खिचड़ी), मोदक (लड्डू), पृथुक (चूड़ा) आदि पतीली में बनाये पदार्थ, देवी को समर्पित करे ॥१५॥

हविःशाल्योदनं दिव्यमाज्ययुक्तं सशर्करम् ।
निवेदयेन्महादेव्यै सर्वाणि व्यञ्जनानि च ॥१६॥

हविष्य और धान (चावल) के घी, चीनी युक्त भात आदि दिव्यव्यञ्जनों को महादेवी के लिए निवेदित करे॥१६॥

क्षीरादीन्यथ गव्यानि माहिष्याणि च सर्वशः ।
अजाविकमृगाणां च क्षीरादीनि निवेदयेत् ॥१७॥

दुग्धसम्बन्धी पदार्थों की दृष्टि से गौ, भैंस, बकरी, भेड़, मृग आदि के सभी प्रकार के दूध आदि को निवेदन करना चाहिये ॥१७॥

मध्वादीनि च सर्वाणि गुडधानाः सितां तथा ।
अन्नानि चैव पानानि मांसानि विनिवेदयेत् ॥१८॥

मधु आदि के निमित्त सब प्रकार के गुड़, मदिरा, अन्न आदि से बने पेयपदार्थ एवं मांस आदि को निवेदित करे ॥१८॥

सर्वं सुरभिगन्धाढ्यं व्यञ्जनं सुमनोहरम् ।
शाकमांसादिसम्भूतं महादेव्यै निवेदयेत् ॥१९॥

सब प्रकार के सुन्दरगन्धयुक्त, मन को प्रिय लगने वाले, शाक और मांस आदि से बने व्यञ्जन, महादेवी को निवेदित करे ॥१९॥

आमिषं परमान्नं च दधिसर्पिः सशर्करम् ।
महादेव्यै निवेद्याथ वाजिमेधफलं लभेत् ॥२०॥

आमिष, खीर, दही, घी, चीनी, से युक्त पदार्थ, महादेवी को निवेदित कर साधक, वाजपेययज्ञ का फल प्राप्त करता है ॥२०॥

सितासम्मिश्रितां दत्त्वा सुरां मधुसमन्विताम् ।
देवीलोके चिरं स्थित्वा राजा क्षितितले भवेत् ॥२१॥

देवी को सिता (मिश्री) और मधु से युक्त सुरा अर्पित करने वाला साधक, देवीलोक में चिरकाल तक निवास कर, पृथ्वी-तल पर पुनः जन्म ले, राजा होता है ॥२१॥

लाङ्गलं क्रमुकं दत्त्वा रुचकं करमर्दकम् ।
सौभाग्यमतुलं प्राप्य देवीलोके महीयते ॥२२॥

देवी को लाङ्गल (नारीयल), क्रमुक (सुपारी), रुचक (नीबू), करमर्दक प्रदान कर साधकदेवी लोक में अतुलसौभाग्य को प्राप्त करता है॥२२॥

माषान् मुद्गान् मसूरांश्च-तिलान् भङ्गास्तथैव च ।
यवादीन्यथ सर्वाणि यथायोग्यं निवेदयेत् ।।२३।।

उर्द, मूँग, मसूर, तिल तथा भङ्गा (पटसन), जौ आदि सब पदार्थों को यथोचित रूप से निवेदित करे।।२३।।

यथा यथा भवेद्भक्ष्यं यथा द्रव्यं तथा तथा ।
संस्कृत्य वेश-वाराद्यैर्महादेव्यै निवेदयेत् ।।२४।।

जैसे-जैसे द्रव्य भोजन करने योग्य हो सके, उसे वेश, वार आदि के अनुसार वैसा ही संस्कारित कर (बनाकर), देवी को अर्पित करना चाहिये ।।२४।।

महावीरो मुनिर्वापि ब्राह्मणश्चेतरोऽथवा ।
यद् यद् भक्ष्यं स्वमर्थं तु प्रकल्प्यं स्याद् यथा यथा ।
तथा तथा महादेव्यै भक्तियुक्तो निवेदयेत् ।।२५।।

कोई साधक चाहे वह महान् साधक, वीर हो, ब्राह्मण या कोई अन्य हो, वह अपने निमित्त जिन-जिन भक्ष्य पदार्थों का उपयोग करता हो, उसे वे ही पदार्थ, उन्हीं रूपों में महादेवी को भक्तिपूर्वक निवेदित करना चाहिये।।२५।।

संस्कार्याण्यथ संस्कृत्य यथा संस्कारकं भवेत् ।
संस्कार्यश्च यथा तस्यास्तत्तद् दद्यात्तथा तथा ।।२६।।

संस्कारित किये जाने वाले पदार्थों को संस्कारकर्ता साधक द्वारा उचितरूप से संस्कारित कर, उसे संस्कारितरूप में ही देवी को अर्पित करना चाहिये।।२६।।

यत्पूतिगन्धसंयुक्तं दग्धं भोज्यविवर्जितम् ।
तदुक्तमपि नो दद्यान्महादेव्यै कदाचन ।।२७।।

जो पदार्थ पीब आदि गंधो से युक्त हो, जला हुआ हो, खाने के योग्य न हो, उस पदार्थ का निर्देशित होने पर भी उसे महादेवी को कभी निवेदित न करे।।२७।।

बलिदानेषु विहिता य एव मृगपक्षिणः ।
तेषां मांसानि मत्स्यानां मांसानि च निवेदयेत् ।।२८।।

बलिदानप्रकरण में जो पशु-पक्षी बताये गये है उनका मांस तथा मछलियों का माँस देवी को निवेदित करे।।२८।।

खड्गवार्ध्रीणसच्छागमांसैर्मिश्रीकृतैः कृतम् ।।२९।।
व्यञ्जनं स्वादुगन्धाढ्यं वासितं सुमनोहरम् ।
सकृद् दत्त्वा महादेव्यै सार्वभौमो नृपो भवेत् ।।३०।।

गैंडा, वार्ध्रीणस, और बकरे के मांस को स्वाद एवं सुन्दरगन्ध से युक्त कर एक बार भी महादेवी को अर्पित करने वाला साधक, सार्वभौम-राजा होता है ।।२९-३०।।

मूलकैरेणमांसेन लोहपात्रे सुसंस्कृतम् ।
व्यञ्जनं गन्धिनं दत्त्वा देवीलोकमवाप्नुयात् ।।३१।।

देवी को मूली से निकाली मदिरा और मांस से लोहे के बर्तन में बनाये हुये सुगन्धितव्यञ्जन प्रदान कर, साधक देवीलोक को प्राप्त करता है।।३१।।

खर्जूरं पिण्डखर्जूरं यवचूर्णं च साज्यकम ।
वैष्णव्यै विनिवेद्यैव राजसूयफलं लभेत् ।।३२।।

खजूर, पिण्डखजूर, घी के सहित जौ का चूर्ण, वैष्णवी को निवेदित करने मात्र से ही साधक, राजसूययज्ञ का फल प्राप्त करता है।।३२।।

कृशरान्नप्रदानेन सौभाग्यमतुलं भवेत् ।
दत्त्वैव नारिकेलाम्बु वह्निष्टोमफलं लभेत् ।।३३।।

खिचड़ी प्रदान करने से साधक अतुल सौभाग्यवान होता है तथा नारीयल का जल अर्पित कर, वह अग्निष्टोमयज्ञ का फल प्राप्त करता है ।।३३।।

जाम्बवं लवली धात्री श्रीफलानि निवेद्य च ।
वह्निष्टोमफलं लब्ध्वा देवीलोकमवाप्नुयात् ।।३४।।

जामुन, लवली, आँवला और श्रीफल (बेल) देवी को निवेदित कर, साधक अग्निष्टोमयज्ञ का फलभोग कर, अन्त में देवी के लोक को प्राप्त करता है।।३४।।

द्राक्षां सितासमायुक्ता नागरङ्गसंयुताम् ।
विनिवेद्य महादेव्यै लक्ष्मीवान् रूपवान् भवेत् ।।३५।।

मिश्रीयुक्त द्राक्षा, नारङ्गी, महादेवी को निवेदित कर साधक, लक्ष्मीवान् और रूपवान होता है।।३५।।

धान्यं च पृथुकं देव्यै दत्त्वा श्रियमवाप्नुयात् ।
इक्षुदण्डं मुद्गमण्डं नवनीतं निवेद्य च ।
सौभाग्यमुत्तमं प्राप्य देवीलोके महीयते ।।३६।।

देवी को चावल और चूड़ा देवी को अर्पित कर साधक, श्री (शोभा) को प्राप्त करता है। गन्ना, बिना मांड़ का मूँग, मक्खन निवेदित कर उत्तम-सौभाग्य को प्राप्त कर, वह देवीलोक को जाता है।।३६।।

नवनीतसमायुक्तं तिलं देव्यै निवेद्य च ।
इह कामानवाप्यैव मृतो मोक्षमवाप्नुयात् ।।३७।।

देवी को, नवनीत से युक्त तिल निवेदित कर, इस लोक में कामनाओं को प्राप्त कर साधक, मृत्यु के बाद मोक्ष को प्राप्त करता है।।३७।।

अभक्ष्यवर्ज्यं सर्वान्नं व्यञ्जनेन समन्वितम् ।
भोज्यवत् परिकल्प्याथ महादेव्यै निवेदयेत् ।।३८।।

अभक्ष्य-अन्न को छोड़कर सब प्रकार का अन्न-व्यञ्जन से समन्वित कर, भोज्य की भाँति कल्पना कर, महादेवी को निवेदित करे ॥३८॥

रत्नतोयसमायुक्तं सलिलं नारिकेलजम् ।
क्षीराज्यमधुभिर्मिश्रं सितादधिसमन्वितम् ॥३९॥
यस्तैजसेन पात्रेण पेयं देव्यै निवेदयेत् ॥४०॥

देवी को रत्नजल से युक्तजल, नारीयल का पानी, घी, दूध, मधु, चीनी, दही युक्त पेयपदार्थ, धातु के पात्र में पेय के रूप में निवेदित करे॥३९-४०॥

भक्तिप्रवणचित्तेन तस्य पुण्यफलं शृणु ।
कल्पकोटिसहस्राणि कल्पकोटिशतानि च ॥४१॥
स्थित्वा देवीपुरे धीरः सार्वभौमो भवेत् क्षितौ ।
ततः परं तु कैवल्यमाप्नोति च यथेच्छया ॥४२॥

भक्तियुक्त चित्त से ऐसा करने वाला, धैर्यवान्, साधक जो पुण्यफल प्राप्त करता है, उसे सुनो। वह सैकड़ों एवं हजारों कल्पों तक देवीलोक में स्थित हो, पुनः जन्म लेकर पृथिवी पर सार्वभौमराजा होता है । तदनन्तर वह इच्छानुसार मोक्षप्राप्त करता है॥४१-४२॥

कलायं च सनीवारं क्वथितं दधिसंयुतम् ।
महादेव्यै निवेद्यैव काममिष्यमवाप्नुयात् ॥४३॥

मटर और नीवार को धीमी आँच में पकाकर दही के साथ, महादेवी को निवेदित करके साधक अभीष्ट कामनाओं को प्राप्त कर लेता है ॥४३॥

मरिचं पिप्पलीकोलं जीरकं तन्तुभं तथा ।
संस्कारे च समक्षे च महादेव्यै निवेदयेत् ॥४४॥

मरिच, पीपल, कोल, जीरा, तन्तुक (सरसों) से संस्कारित नैवेद्यमहादेवी के समक्ष निवेदित करे॥४४॥

तिन्तिडीं खण्डसंयुक्तां भक्तियुक्तो निवेद्य च ।
ज्योतिष्टोमफलं लब्ध्वा देवीलोकमवाप्नुयात् ॥४५॥

देवी को भक्तिपूर्वक खाँड़ सहित इमली, निवेदितकर साधक, ज्योतिष्टोमयज्ञ का फल प्राप्त करता है, तत्पश्चात् वह देवी लोक को प्राप्त करता है ॥४५॥

राजमाषं मसूरं च पालङ्कं चाथ पोतिकाम् ।
कालशाकं कलायं च ब्राह्मीमूलकमेव च ॥४६॥
वास्तूकं च कलम्बीं च कञ्चुकं हिलमोचिकाम् ।
चक्रं विद्रुमपत्रं च तथैव च पुनर्नवाम् ॥४७॥
शाकानेतान् महादेव्यै योजयेद् भक्तिसंयुतः ।
सोऽतुलां श्रियमाप्नोति मम लोके महीयते ॥४८॥

राजमा, मसूर, पालक, पोतिका, कालशाक, मटर, ब्राह्मी, मूली, वास्तूक, कदम्ब, कञ्चुक (जौ), हिलमोचिका, चक्र, विद्रूमपत्र, पुनर्नवा इन शाकों को जो भक्तिपूर्वक महादेवी को निवेदित करता है, वह अतुलश्री को प्राप्त कर, मेरे लोक (शिवलोक) को जाता है ॥४६-४८॥

श्रद्धापरीष्टिसंस्कारभक्तिद्रव्याभिसम्भ्रमम् ।
रागाधिक्यात् फलाधिक्यं हीनाद् वै हीनतां व्रजेत् ॥४९॥

श्रद्धापूर्णसंस्कार, भक्तिरूपीद्रव्य का सम्भार तथा अनुराग की अधिकता से, फल में अधिकता तथा हीनता से, फल में हीनता आती है। (पूजोपचारों के निवेदन के साथ श्रद्धा-भक्ति एवं अनुराग का मिश्रण पूजाफल को बढ़ाता या घटाता है)॥४९॥

॥ ताम्बूल वर्णनम् ॥

ताम्बूलं गन्धसंयुक्तं कर्पूराद्यधिवासितम् ।
सञ्चूर्णैर्जलजानां च संस्कृतं विनिवेदयेत् ॥५०॥

(नैवेद्य अर्पण के बाद) साधक सुगन्ध से युक्त, कर्पूर आदि से सुगन्धित, कमल के चूर्ण से संस्कारित ताम्बूल देवी को अर्पित करे ॥५०॥

मन्त्रकालविरुद्धानि नैवेद्यानि कदाचन ।
देवेभ्यो नोपयुञ्जीत गुरुताविहितानि च ॥५१॥

किन्तु गौरवशालीमन्त्र और काल से विरुद्ध नैवेद्य कभी भी, देवी को नहीं अर्पित करना चाहिये॥५१॥

राजते वाऽथ सौवर्णे ताम्रे वा प्रस्तरेऽपि च ।
पद्मपत्रेऽथवा दद्यान्नैवेद्यं मत्प्रियाप्रियम् ॥५२॥

मेरीप्रिया, योगमाया को प्रिय नैवेद्य, चाँदी, सोना, ताँबा, पत्थर के पात्र में अथवा कमलपत्र पर, समर्पित करना चाहिये॥५२॥

तैजसेषु च पात्रेषु सौवर्णं ताम्रमेव वा ।
प्राशनार्थमुपादद्यादर्घ्यपात्रार्थमेव वा ॥५३॥
यज्ञदारुमयं वापि पात्रं मध्यममिष्यते ।
सर्वालाभे तु माहेयं स्वहस्तघटितं यदि ॥५४॥

भोजन-पात्र या अर्घ्यपात्र हेतु धातु के पात्रों में सोने और ताँबे का उपयोग करना चाहिये। इस दृष्टि से यज्ञकाष्ठ का बना पात्र, मध्यम कहा गया है। यदि उपर्युक्त सबका अभाव हो तो अपने हाथ से बनाये हुए मिट्टी के पात्र में ही अर्पित करे॥५३-५४॥

नैवेद्येन भवेत् सर्वं नैवेद्येनामृतं भवेत् ।
धर्मार्थकाममोक्षाश्च नैवेद्येषु प्रतिष्ठिताः ॥५५॥

नैवेद्य से सब कुछ होता है। नैवेद्य से सब कुछ अमृतमय हो जाता है। नैवेद्य में ही धर्म, अर्थ, काम, मोक्ष प्रतिष्ठित होते हैं ॥५५॥

सर्वयज्ञमयं नित्यं नैवेद्यं सर्वतुष्टिदम्।
ज्ञानदं कामदं पुण्यं सर्वभोग्यमयं तथा ॥५६॥

नैवेद्य, नित्य ही समस्त यज्ञों का स्वरूप है। वह सभी को सन्तुष्टिप्रदान करने वाला, ज्ञानप्रदान करने वाला, कामनाओं को प्रदान करने वाला, पवित्र तथा सब प्रकार से भोग्यमय है॥५६॥

मनसापि महादेव्यै नैवेद्यं दातुमिच्छति।
यो नरो भक्तियुक्तः सन् स दीर्घायुः सुखी भवेत् ॥५७॥

जो मनुष्य भक्तियुक्त होकर महादेवी को मानसिकरूप से भी नैवेद्यप्रदान करने की इच्छा रखता है, वह दीर्घायु और सुखी होता है॥५७॥

महामायां सदा देवीमर्चयिष्यामि भक्तितः।
नानाविधैस्तु नैवेद्यैरिति चिन्ताकुलस्तु यः।
स सर्वकामान् सम्प्राप्य ममलोके महीयते ॥५८॥

मैं महामाया देवी का सदैव अनके प्रकार के नैवेद्यों से भक्तिपूर्वक पूजन करूंगा, इस चिन्ता से जो साधक आकुल रहता है, वह अपनी समस्तकामनाओं को प्राप्त कर, मेरे लोक में महत्त्वपूर्णस्थान को प्राप्त करता है॥५८॥

विदधाति च नैवेद्यं महादेव्यै सुभक्तिमान्।
दातुं प्रति नरः सोऽपि देवीलोकमवाप्नुयात् ॥५९॥

जो सुन्दरभक्तिमान् पुरुष, महादेवी को अर्पित करने के लिए नैवेद्य-प्रस्तुत करता है, वह मनुष्य भी देवीलोक को प्राप्त करता है॥२३॥

एतद् वां कथितं पुत्रौ नैवेद्यं वैष्णवीप्रियम्।
कामाख्यायास्तथा देव्यास्त्रिपुराया विशेषतः ॥६०॥
प्रदक्षिणनमस्कारौ साम्प्रतं शृणुतं युवाम् ॥६१॥

इति श्रीकालिकापुराणे नैवेद्यादिपूजोपचारवर्णने सप्ततितमोऽध्यायः ॥७०॥

हे पुत्रों! इस प्रकार से मैंने तुम दोनों से वैष्णवी, विशेषरूप से कामाख्या और देवीत्रिपुरा के प्रियनैवेद्य के विषय में कहा। अब तुम दोनों प्रदक्षिणा और नमस्कार के विषय में सुनो ॥६०-६१॥

श्रीकालिकापुराण में नैवेद्यादिपूजोपचारवर्णनसम्बन्धी सत्तरवाँ अध्याय सम्पूर्ण हुआ॥७०॥



एकसप्ततितमोऽध्यायः

प्रदक्षिणादिपूजोपचारवर्णनम्

।। प्रदक्षिणा ।।

।। श्रीभगवानुवाच ।।

प्रसार्य दक्षिणं हस्तं स्वयं नम्रशिरः पुनः ।
दक्षिणं दर्शयन् पार्श्वं मनसापि च दक्षिणः ।।१।।
सकृत् त्रिर्वा वेष्टयेयुर्देव्याः प्रीतिः प्रजायते ।
स च प्रदक्षिणो ज्ञेयः सर्वदेवौघतुष्टिदः ।।२।।

श्रीभगवान् बोले—दाहिना हाथ फैलाकर स्वयं मस्तक झुकाये हुये, अपना दक्षिणपार्श्व दिखाते हुये मानसिकरूप से भी उन्हें दक्षिण रखते हुये देवी की एक या तीन आवृत्ति करने से देवी को प्रसन्नता होती है, वह क्रिया प्रदक्षिणा जानी जाती है तथा वह सभी देवताओं को प्रसन्नता देने वाली है।।१-२।।

अष्टोत्तरशतं यस्तु देव्याः कुर्यात् प्रदक्षिणम् ।
स सर्वकाममासाद्य पश्चान्मोक्षमवाप्नुयात् ।।३।।

जो साधक देवी की एक सौ आठ प्रदक्षिणायें करता है वह इस लोक में सभी कामनाओं को प्राप्त कर, अन्त में मोक्ष को प्राप्त करता है ।।३।।

मनसापि च यो दद्याद् देव्यै भक्त्या प्रदक्षिणम् ।
प्रदक्षिणाद् यमगृहे नरकाणि न पश्यति ।।४।।

देवी को भक्तिपूर्वक जो साधक मानसिकरूप से भी प्रदक्षिणा अर्पित करता है, वह प्रदक्षिणा के फलस्वरूप, यमलोक को नहीं जाता है तथा नरकों को भी नहीं देखता है।।४।।

।। नमस्कार ।।

कायिको वाग्भवश्चैव मानसस्त्रिविधः स्मृतः ।
नमस्कारः श्रुतस्तज्ज्ञैरुत्तमाधममध्यमः ।।५।।

उसके रहस्य को जानने वाले साधकों द्वारा शरीरिक, वाचिक और मानसिक तीन प्रकार के, नमस्कार कहे गये हैं। तीन-तीन भेद सुने। उन तीन भेदों के भी उत्तम, मध्यम, अधम सुना जाता है।।५।।

।। कायिकनमस्कार ।।

प्रसार्य पादौ हस्तौ च पतित्वा दण्डवत् क्षितौ ।
जानुभ्यामवनिं गत्वा शिरसास्पृश्य मेदिनीम् ।
क्रियते यो नमस्कार उत्तमः कायिकस्तु सः ।।६।।

हाथ और पैर को फैलाकर, पृथ्वी पर दण्ड की भाँति गिरकर, घुटनों के बल सिर से पृथ्वी को स्पर्श करते हुये जो प्रणाम किया जाता है, वह उत्तमश्रेणी का कायिकनमस्कार होता है।।६।।

जानुभ्यां न क्षितिं स्पृष्ट्वा शिरसास्पृश्य मेदिनीम् ।
क्रियते यो नमस्कारो मध्यमःकायिकः स्मृतः ।।७।।

घुटनों से पृथ्वी का स्पर्श न करते हुये मस्तक से पृथ्वी का स्पर्श करने पर जो नमस्कार सम्पन्न होता है, उसे मध्यमश्रेणी का कायिकनमस्कार कहा जाता है।।७।।

पुटीकृत्य करौ शीर्षे दीयते यद् यथा तथा ।
अस्पृष्ट्वा जानुशीर्षाभ्यां क्षितिं सोऽधम उच्यते ।।८।।

दोनों हाथों को सिर के ऊपर जोड़कर, घुटनों और सिर से पृथ्वी का बिना स्पर्श किये जो नमस्कार किया जाता है, उसे अधमश्रेणी का कायिकनमस्कार कहते हैं।।८।।

।। वाग्भवनमस्कार ।।

या स्वयं गद्यपद्याभ्यां घटिताभ्यां नमस्कृतिः ।
क्रियते भक्तियुक्तेन वाचिकस्तूत्तमस्तु सः ।।९।।

स्वनिर्मित गद्य-पद्यमय स्तुतियों से भक्तिपूर्वक जो नमस्कार (स्तुति) किया जाता है, उसे उत्तमकोटि का वाचिक (वाग्भव) नमस्कार कहते हैं।।९।।

पौराणिकैर्वैदिकैर्वा मन्त्रैर्वा क्रियते नतिः ।
स मध्यमो नमस्कारो भवेद् वाचनिकः सदा ।।१०।।

पौराणिक या वैदिक मन्त्रों से जो नमस्कार किया जाता है वह मध्यमकोटि का वाचिकनमस्कार होता है ।।१०।।

यत् तु मानुष्यवाक्येन नमनं क्रियते सदा ।
स वाचिकोऽधमो ज्ञेयो नमस्कारेषु पुत्रकौ ।।११।।

हे पुत्रों ! नमस्कारों में मनुष्य के (मानव रचित) वाक्यों से जो नमस्कार किया जाता है । वह सदैव अधमकोटिका वाचिकनमस्कार जाना जाता है।।११।।

।। मानसिकनमस्कार ।।

इष्टमध्यानिष्टगतैर्मनोभिस्त्रिविधं पुनः ।
नमनं मानसं प्रोक्तमुत्तमाधममध्यमम् ।।१२।।

इष्ट, मध्य, अनिष्ट मनोगत भावों के कारण मानसिकनमस्कार भी उत्तम, मध्यम और अधम, तीन कोटि का कहा गया है ।।१२।।

त्रिविधे च नमस्कारे कायिकश्चोत्तमः स्मृतः ।
कायिकैस्तु नमस्कारैर्देवास्तुष्यन्ति नित्यशः ।।१३।।

उपर्युक्त कायिक, वाचिक और मानसिक तीनों नमस्कारों में कायिक-नमस्कार, उत्तमनमस्कार कहा गया है। कायिकनमस्कार से देवतागण नित्य-सन्तुष्ट, हो जाते हैं ।।१३।।

अयमेव नमस्कारो दण्डादिप्रतिनामभिः ।
प्रणाम इति विज्ञेयः स पूर्वं प्रतिपादितः ।।१४।।

यह कायिकनमस्कार ही दण्ड आदि प्रत्येक नामों से युक्त होकर प्रणाम ऐसा जाना जाता है जैसा कि पहले वर्णन किया जा चुका है ।।१४।।

देवमानुषगन्धर्वाः यक्षराक्षसपन्नगाः ।
नमस्कारेण तुष्यन्ति महात्मानः समन्ततः ।।१५।।

देवता, मनुष्य, गन्धर्व, यक्ष, राक्षस, सर्प तथा समस्तमहात्मागण नमस्कार से ही सन्तुष्ट होते हैं।।१५।।

नमस्कारेण लभते चतुर्वर्गं महामतिः ।
सर्वत्र सर्वसिद्ध्यर्थं नतिरेव प्रशस्यते ।।१६।।

महान्मतिवालासाधक नमस्कार से ही चारो पुरुषार्थो को प्राप्त करता है । सर्वत्र सफलताप्राप्ति के लिए नमन ही प्रशंसनीय कहा गया है ।।१६।।

नत्या विजयते लोकान्नत्यायुरपि वर्धते ।
नमस्कारेण दीर्घायुरच्छिन्ना लभते प्रजाः ।।१७।।

नमन से लोकों पर विजय प्राप्त होती है, नमन से आयु भी बढ़ती है । (देवतादि को) नमस्कार करने से दीर्घायु तथा अछिन्न, सतत, सन्ततिपरम्परा प्राप्त होती है।।१७।।

नमस्कुरु महादेव्यै प्रदक्षिणमथो कुरु ।
नैवेद्यं देहि नितरामिति यो भाषते मुहुः ।
सोऽपि कामानवाप्येह मम लोके प्रमोदते ।।१८।।

महादेवी को नमस्कार करो, प्रदक्षिणा करो, देवी को नैवेद्य अर्पित करो ऐसा निरन्तर बार-बार जो कहता है । वह साधक भी अपनी कामनाओं को प्राप्त कर, मेरे लोक में आनन्दित होता है।।१८।।

इति वां कथिताः सम्यगुपचारास्तु षोडश ।
किमन्युद्रुचितं वां तत् कथयिष्यामि पृच्छतोः ।।१९।।

।। इति श्रीकालिकापुराणे प्रदक्षिणादिपूजोपचारवर्णने एकसप्ततितमोऽध्यायः ।।७१।।

इस प्रकार से तुम दोनों से सोलहपूजा-उपचारों के सम्बन्ध में भलीभाँति कहा गया । तुम लोगों को और क्या रुचिकर लगता है, वह तुम दोनों से पूछे जाने पर मैं उसे भी कहूँगा ।।१९।।

।। श्रीकालिकापुराण में प्रदक्षिणादिपूजोपचारवर्णन-सम्बन्धी एकहत्तरवाँ अध्याय सम्पूर्ण हुआ ।।७१।।



द्विसप्ततितमोऽध्यायः

कामाख्यामाहात्म्यवर्णनम्

।। श्रीभगवानुवाच ।।

कामाख्यायाश्च माहात्म्यं शृणुतं च वदामि वाम् ।
साङ्गं तद् सरहस्यं च शृणु वेताल भैरव ।।१।।

श्रीभगवान् बोले– हे वेताल एवं भैरव ! मैं तुम दोनों से अङ्गों और रहस्य के सहित कामाख्यादेवी का माहात्म्य कहता हूँ, तुम दोनों सुनो।।१।।

एकदा गरुडेनाशु विष्णुर्विष्णुपरायणौ ।
गच्छन् देवीं तु कामाख्यां नीलस्थामाससाद ह ।।२।।

एक बार भगवान विष्णु और उनके परायण, भक्त (श्री नारद), गरुड़ पर सवार हो, तेजी से जाते हुए, देवी कामाख्या के नीलाचल नामक पर्वत पर पहुँचे।।२।।

आसाद्य तं गिरिश्रेष्ठमवज्ञाय स केशवः ।
गच्छ गच्छेति गरुडं चोदयामास तं गतौ ।।३।।

वहाँ उस श्रेष्ठ पर्वत की अवज्ञा कर, उन विष्णुने गरुड़ को चलो-चलो कहकर गति के लिए प्रेरित किया।।३।।

तं च देवी महामाया कामाख्या जगतां प्रसूः ।
गरुडेन समं कृष्णं स्तम्भयामास रोदसी ।।४।।

उस समय जगत्जननी, महामाया, देवीकामाख्या ने उन कृष्ण (विष्णु) को गरुड़ के सहित आकाश में ही स्तम्भित कर दिया ।।४।।

स तु गन्तुं महामाया-मायया परिमोहितः ।
न गन्तुमथवागन्तुमशकद् बद्धवत् स्थितः ।।५।।

वे महामाया की माया से मोहित हो, जाने के लिए प्रयत्नशील होने पर भी न आगे जा सकते थे और न पीछे ही आ सकते थे । वे बँधे हुए (कैदी) की भाँति वहीं स्थिर हो गये।।५।।

अशक्तं गरुडं दृष्ट्वा गमने गरुडध्वजः ।
क्रुद्धस्तं पर्वतश्रेष्ठमुत्सारयितुमुद्यतः ।।६।।

गरुड़ को चलने में असमर्थ देखकर गरुड़-ध्वज (भगवान् विष्णु), क्रोधित हो, उस पर्वतों में श्रेष्ठ, नीलाचल को स्वयं उखाड़ने को उद्यत हो गये ।।६।।

ततः कराभ्यां तं शैलं क्रोडीकृत्य जगत्पतिः ।
अभूत् क्षमश्चालयितुं मनागपि न केशवः ।।७।।

तब जगत् के स्वामी (श्री विष्णु) ने उस पर्वत को अपने दोनों हाथों से गोद में पकड़ लिया किन्तु केशव उस समय, उसे थोड़ा भी हिलाने-डुलाने में सक्षम नहीं हुये ॥७॥

तं विचालयितुं शैलं कामाख्या क्रोधतत्परा ।
सिद्धसूत्रेण वैकुण्ठं बबन्ध गरुडेन हि ।।८।।

उस समय कामाख्यादेवी ने क्रोधित होकर उस पर्वत को विचलित करने को उत्सुक वैकुण्ठ (भगवान विष्णु) को, गरुड़ के सहित अपने सिद्धसूत्र (सिद्धपाश) से बाँध दिया॥८॥

तं बद्ध्वा सिद्धसूत्रेण ग्राहाग्रे लवणार्णवे ।
चिक्षेप हेलया देवी संक्षेपात् प्रापतत् तलम् ।।९।।

देवी ने पहले उन्हें सिद्धसूत्र में बाँध कर पकड़ा, तब खिलवाड़ में ही फेंककर, लवणसमुद्र के तल में उन्हें पहुँचा दिया॥॥९॥

तं सागरतलं प्राप्तं पुनरेव स्वमायया ।
यन्त्रयित्वा समाक्रम्य जग्राहाब्धितल स्थितम् ।।१०।।

सागरतल में पहुंचे हुए उन भगवानविष्णु को अपनी माया से मोहित कर पुनः उठाकर सागरतल पर स्थित किया ॥१०॥

स प्रयत्नेन महता नोत्प्लुतिं कर्तुमिष्टवान् ।
महायत्नं प्रकुर्वाणः पुनरुन्मज्जने हरिः ।।११।।

उन्होंने उठने का पुनः महान् प्रयत्न किया किन्तु अत्यन्तप्रयत्न के पश्चात् भी वे विष्णु, बाहर न आ सके ॥११॥

तस्यासारं प्रसारं च कामाख्या प्रतिषेधयेत् ।
ज्ञानोद्गमनमप्यस्य सा देवी प्रतिषेधयेत् ।।१२।।

उनके विस्तार को तथा उनके ज्ञान के उद्‌गम को भी कामाख्यादेवी ने रोक दिया था॥१२॥

ततः प्रज्ञानरहितः प्रसारासारवर्जितः ।
गरुडेन समं तोयतले शीर्णमभूच्चिरम् ।।१३।।

तब ज्ञान से रहित तथा व्यर्थप्रसार से वर्जित हो, वे दीर्घकाल तक दुखी हो, गरुड़ के साथ ही सागर-तल में पड़े रहे॥१३॥

मार्गमाणस्तु तं स्त्रष्टा सागरान्तरसंस्थितम् ।
हरिमासादयामास विशीर्णं प्राकृतं तथा ।।१४।।

तब उनको खोजते हुए ब्रह्मा ने सामान्यजन की भाँति दुखीअवस्था में, सागर-तल में उन्हें स्थित पाया॥१४॥

तमासाद्य स तार्क्ष्यं तु स्रष्टा लोकपितामहः ।
हस्ताभ्यां तं समादाय वोत्प्लावयितुमिष्टवान् ।।१५।।

गरुड़ के सहित उन्हें उस अवस्था में देखकर, लोक के पितामह, श्रीब्रह्मा ने हाथ से पकड़कर उन्हें ऊपर उठाना चाहा॥१५॥

तमुत्प्लावयितुं शक्तो नाभूल्लोकपितामहः ।
स्वयं च देवीमायाभिर्बद्धः सन् विस्मयन् स्थितः ।।१६।।

किन्तु लोकपितामह ब्रह्मा, उन्हें ऊपर न उठा सके और देवी की माया से आश्चर्यचकित हो, स्वयं बँध से गये ॥१६॥

मार्गमाणन्तु ते सर्वे देवाः शक्रपुरोगमाः ।
चिरेण चाथ कालेन समासे दुर्जलान्तरे ।।१७।।

उन्हें खोजते हुए इन्द्रादि सभी देवताओं ने बहुत खोजने के पश्चात्, उन दोनों को जल के भीतर पाया ॥१७॥

तावासाद्य ततः सर्वे सुराः शक्रपुरोगमाः ।
समुत्प्लावयितुं यत्नं चक्रुर्नाशक्नुवंश्च ते ।।१८।।

तब उन दोनों को उस अवस्था में प्राप्त कर इन्द्रादि सभी देवताओं ने उन्हें ऊपर उठाने का प्रयत्न किया किन्तु वे भी उन्हें उठा न सके ॥१८॥

ततः सर्वेऽपि ते देवा मोहिता मायया भृशम् ।
विधिविष्णू स्थितौ यद्वत् तद्वत् ते तत्र संस्थिताः ।।१९।।

तब सभी देवता भी देवी की माया से अत्यधिक मोहित हो, जहाँ ब्रह्मा और विष्णु, जिस रूप में बँधे हुए स्थित थे, वहीं उसी रूपमें वे सब भी स्थित हो गये ॥१९॥

मार्गमाणोऽथ तान् सर्वान् देवान् देवगुरुस्तदा ।
बृहस्पतिर्महादेवं हिमवत्-सानुसंस्थितम् ।।२०।।

तब उन देवगणों को खोजते हुये, देवगुरु-बृहस्पति, हिमालय के शिखर पर स्थित, महादेव (शिव) के समीप पहुँचे॥२०॥

समासाद्य स देवानां वृत्तान्तं देवपूजितः ।
पृष्टवान् सादरं सम्यक् स्तुत्वा नत्वा यथाविधि ।।२१।।

वहाँ जाकर उन देवगुरु ने, शिव को भली-भाँति, आदरपूर्वक तथा विधिपूर्वक, स्तुति और नमस्कार करके देवताओं के विषय में पूछा॥२१॥

।। देवगुरु-उवाच ।।

महादेव जगद्धाम जगत्प्रशमकारण ।
शक्रादीन्मार्गमाणोऽहं देवांस्त्वां समुपस्थितः ।।२२।।

देवगुरु (बृहस्पति) बोले– हे जगत् के आश्रय, संसार को शान्ति प्रदान करने वाले, महादेव ! मैं इन्द्रादि देवताओं को खोजता हुआ, आपकी सेवा में उपस्थित हुआ हूँ॥२२॥

ब्रह्मा विष्णुश्च न ब्रह्मसदने नापि नाकतः ।
संस्थितौ नापि कुत्रापि ज्ञायते ह्यन्यतो यथा ।।२३।।

ब्रह्मा और विष्णु भी इस समय न तो ब्रह्मलोक में है और न स्वर्ग में ही हैं। वे इस समय अन्यत्र कहाँ है, यह भी पता नहीं चल रहा है॥२३॥

तमिमं संशयं देव च्छिन्धि त्वं देवदेवताः ।
कुत्र तिष्ठन्ति कस्माद् वा तथा भूत्वा ह्यवस्थिताः ।।२४।।

हे महादेव ! आप उनसे सम्बन्धित, मेरे इस संशय को दूर कीजिये कि वे दोनों देव तथा अन्य देवगण इस समय क्यों, कहाँ और किस अवस्था में हैं?॥२४॥

अनुयास्यामि तान् सर्वानुपदेशात् तव प्रभो ।
तेषां स्थितिं त्वं कथय यदि ते वर्तते दया ।।२५।।

हे प्रभो ! यदि आप की दया हो तो आप उनकी स्थिति के विषय में कहिये। मैं आपके उपदेश (बताने) के अनुसार, उन सबका अनुगमन (अन्वेषण) करूँगा॥२५॥

तस्य तद् वचनं श्रुत्वा तदुद्देशमहं पुनः ।
तत् सर्वमुक्तवान् कर्म यथा बद्धाश्च मायया ।।२६।।
अवज्ञाता महादेवी महामायाजगन्मयी ।
तेन तन्माययाबद्धो विष्णुस्तिष्ठंति सागरे ।।२७।।

उनके उस वचन को सुनकर, उन्हें लक्ष्य करके मैं (शिव) ने वह सब कार्य कह सुनाया, जिससे, महादेवी, जगन्मयी, महामाया की अवज्ञा करने के फलस्वरूप उन्हीं की माया से बँधकर, विष्णु, सागर में पड़े थे॥२६-२७॥

तं मार्गमाणास्त्रिदशा ब्रह्माद्या मायया पुनः ।
निबद्धा निकटे तस्य स्थिताश्चात्यर्थसंयताः ।।२८।।

उन्हें ही खोजते हुये ब्रह्मा आदि देवता, उसी माया से बद्ध हो, उन्हीं के अत्यन्त समीप, नियन्त्रित हो, बँधे हुये स्थित थे॥२८॥

तांस्तु मार्गयितुं यासि यदिह त्वं मया विना ।
बद्धस्तथैव त्वं चापि नायातुं भविता प्रभुः ।।२९।।

यदि आप मेरे बिना उन्हें खोजने के लिए वहाँ जायेंगे तो आप भी वैसे ही बँध जायेंगे और पुनः (लौटकर) यहाँ आने में समर्थ नहीं होंगे ॥२९॥

तस्माद् गच्छाम्यहं तत्र यत्रास्ते गरुडध्वजः ।
ब्रह्मेन्द्राद्यास्तथा गुप्तान्मोचयिष्ये च तान् क्रमात् ।।३०।।

इसलिए जहाँ भगवान् विष्णु, ब्रह्मा, इन्द्रादि देवता छिपे हुए हैं, मैं भी वहाँ चलता हूँ, उन्हें मुक्त कराने का यत्न करूँगा।।३०।।

इत्युक्त्वा गुरुणा सार्धं सम्भूय स वृषध्वजः।
देवौघा यत्र तिष्ठन्ति गतस्तत्र महेश्वरः ।।३१।।

ऐसा कहकर गुरुबृहस्पति के साथ, जहाँ देवगण स्थित थे, वृषध्वज (भगवान् शिव), वहीं गये।।३१।।

तत्र गत्वा महादेवो विष्णुमाभाष्य वेधसम् ।
सर्वांस्तान् परिपप्रच्छ किमर्थं संस्थितास्त्विह ।।३२।।

वहाँ जाकर महादेव, ने विष्णु, ब्रह्मा और इन्द्रादि सभी देवताओं से पूछा— आप लोग इस दशा को कैसे प्राप्त हुये?।।३२।।

गतागतविहीनाश्च जडवज्ज्ञानवर्जिताः ।
किमर्थमभवन् देवास्तन्मे भाषन्तु सम्प्रति ।।३३।।

आप सब देवगण इस समय आवागमन से रहित, ज्ञान से वर्जित हो, मूढ़ की भाँति, इस अवस्था में कैसे प्राप्त हुए हैं? वह मुझसे कहिये।।३३।।

तस्य तद्वचनं श्रुत्वा महादेवस्य केशवः ।
शनैर्भर्गमुवाचेदं ब्रह्मादीनां पुरस्तदा ।।३४।।

उन महादेव के उस कथन को सुन कर, भगवान विष्णु ने ब्रह्मादि देवताओं के सम्मुख धीरे से भगवान शिव से यह कहा—।।३४।।

।। श्रीभगवानुवाच ।।

नीलकूटस्य शिखरादूर्ध्वभागेन गच्छता ।
वियता गरुडस्थेन मया नीलोमहागिरिः ।
धृतः करेण चोद्धर्तुं गरुडागतिवारणे ।।३५।।

श्रीभगवान् (विष्णु) बोले– गरुड़ पर सवार हो, नीलाचल नामक पर्वत के ऊपर से आकाश-मार्ग से जाते हुए जब मैंने गरुड़ की गति को रोके हुये नीलाचल को स्थित देखा तब उसे हाथ से उखाड़ फेंकने का यत्न किया ।।३५।।

तत्र मां सा महामाया कामाख्या कामरूपिणी ।
योगनिद्रा स्वयं धृत्वा चिक्षेपाम्बुधिपुष्करे ।।३६।।

तब उन कामरूपधारण करनेवाली, महामायाकामाख्या, योगनिद्रा ने मुझे स्वयं पकड़कर, पुष्कर के जलराशि में फेंक दिया ।।३६।।

ततोऽहं तलमासाद्य तोयराशेः सवाहनः ।
पतितो निवसाम्यत्र चिरमन्धकसूदन ।।३७।।

हे अन्धकासुर का वध करने वाले शिव! तब मैं अपने वाहन गरुड़ के समेत सागर-तल में पहुँच गया। वहाँ पहुँच कर मैं चिर काल से यहाँ ही पड़ा हूँ ।।३७।।

निवसामि चिरं चाहमत्र सागरतोयके ।
नाद्यापि सा महामाया नुदते मां महेश्वर ।।३८।।

हे महेश्वर ! मैं यहाँ सागर के जल में चिरकाल से पड़ा हूँ तो भी महामाया आज भी मुझपर प्रसन्न नहीं हो रही हैं ।।३८।।

मदर्थमागता देवा ब्रह्मेन्द्राद्याः समन्ततः ।
तेऽपि बद्धा महादेव्या मायापाशेन वै हठात् ।।३९।।

मेरे लिए ब्रह्मा-इन्द्र आदि सभी देवता भी आये किन्तु वे भी महादेवी द्वारा अपने माया-पाश से बलपूर्वक बाँध दिये गये ।।३९।।

तस्मान्नो ह्यनुगृह्णीष्व नयेदानीं शिवालये ।
तां च प्रसादयिष्यामः सम्यग्बन्धविहिंसया ।।४०।।

अत: हम लोगों पर आप कृपा करके इस समय हमें शिवलोक, शिवा के लोक (देवी लोक) में ले चलें। वहाँ हम सब बन्धन से मुक्त हो भली-भाँति, उन महादेवी को प्रसन्न करेंगे।।४०।।

हरेस्तद्वचनं श्रुत्वा ह्यहं च करुणायुतः ।
उवाच परमप्रीत्या विधिविष्णू प्रति स्वयम् ।।४१।।

भगवान् विष्णु के उन वचनों को सुन, करुणा से भर कर मैंने, अत्यन्तप्रेम-पूर्वक, विष्णु व ब्रह्मा से स्वयं कहा—।।४१।।

ईश्वर्याः कामपूर्वायाः कवचं सुमनोहरम् ।
बद्ध्वा शरीरे चाप्लाव्य पश्चाद् गच्छन्तु तां प्रति ।।४२।।

पहले काम लगे ईश्वरी, कामेश्वरी के सुन्दर-कवच से, अपने शरीर को बाँधकर, ऊपर उठकर आप सब, उन तक पहुँचने का प्रयत्न करें।।४२।।

अहं निबद्धकवचस्तेनाहं मायया त्विह ।
न बद्धो मम संसर्गात् तथा चेह बृहस्पतिः ।।४३।।

उनके कवच से आबद्ध होने के कारण ही मैं, यहाँ उनकी माया से बिना बँधे, स्थित हूँ तथा मेरे संसर्ग से ही यह बृहस्पति भी इस समय माया से आबद्ध नहीं हुए हैं।।४३।।

तस्माद् यूयं तु कवचं शृणुध्वं वचनान्मम ।
येन सौख्यात् समुत्प्लुत्य द्रक्ष्यामः परमेश्वरीम् ।।४४।।

अत: आप सब मेरे कथन से, उस कवच को सुनो, जिससे हम सब ऊपर जाकर सुखपूर्वक परमेश्वरी कामाख्या को देखेंगे।।४४।।

।। कामाख्या-कवच ।।

ॐ कामाख्याकवचस्य ऋषिर्बृहस्पतिः स्मृतः ।।४५।।
देवी कामेश्वरी तस्य अनुष्टुप्छन्द इष्यते ।
विनियोगः सर्वसिद्धौ तं च शृण्वन्तु देवताः ।।४६।।

इस कामाख्याकवच के ऋषि, बृहस्पति कहे गये हैं। कामाख्या देवी तथा अनुष्टुप्, छन्द बताया गया है। सब प्रकार की सिद्धियों में इसका विनियोग होता है। आप सब देवता उस कामाख्या कवच को सुनें ॥४५-४६॥

शिरः कामेश्वरी देवी कामाख्या चक्षुषी मम ।
सारदा कर्णयुगलं त्रिपुरावदनं तथा ॥४७॥

कामेश्वरीदेवी मेरे सिर की, कामाख्या नेत्रों की, शारदा दोनों कानों की तथा त्रिपुरा, मुख की रक्षा करें ॥४७॥

कण्ठे पातु महामाया हृदि कामेश्वरी पुनः ।
कामाख्या जठरे पातु शारदा मां तु नाभितः ॥४८॥

मेरे कण्ठ में महामाया तथा हृदय में कामेश्वरी रक्षा करें। जठर में कामाख्या-देवी और नाभि में शारदादेवी रक्षा करें ॥४८॥

त्रिपुरा पार्श्वयोः पातु महामाया तु मेहने ।
गुदे कामेश्वरी पातु कामाख्योरुद्वये तु माम् ॥४९॥

त्रिपुरादेवी पार्श्व-भाग में तथा महामाया, मेहन (लिङ्ग) में रक्षा करें। कामेश्वरी गुदा में और कामाख्या दोनों उरुओं (जंघों) में मेरी रक्षा करें ॥४९॥

जानुनोः शारदा पातु त्रिपुरा पातु जङ्घयोः ।
महामाया पादयुगे नित्यं रक्षतु कामदा ॥५०॥

दोनों घुटनों में शारदादेवी तथा टखनों में त्रिपुरादेवी रक्षा करें। कामनाओं की पूर्त्ति करने वाली महामाया नित्य मेरे दोनों पैरों में रक्षा करें॥५०॥

केशे कोटेश्वरी पातु नासायां पातु दीर्घिका ।
भैरवी दन्तसङ्घाते मातंग्यवतु चाङ्गयोः ॥५१॥

केशों में कोटेश्वरी रक्षा करें। नाक में दीर्घिका, दाँतसमूह में भैरवी एवं अङ्गो में मातङ्गी रक्षा करें॥५१॥

बाह्वोर्मां ललिता पातु पाण्योस्तु वनवासिनी ।
विन्ध्यवासिन्यङ्गुलिषु श्रीकामा नखकोटिषु ॥५२॥

बाहों में ललिता, हाथों में वनवासिनी, अङ्गुलियों में विन्ध्यवासिनी और नखों में श्रीकामा देवी मेरी रक्षा करें ॥५२॥

रोमकूपेषु सर्वेषु गुप्तकामा सदावतु ।
पादाङ्गुलिपार्ष्णिभागे पातु मां भुवनेश्वरी ॥५३॥

सभी रोमकूपों में सदा गुप्तकामादेवी रक्षा करें तथा पैरों की अंगुलियों और एड़ियों में भुवनेश्वरीदेवी रक्षा करें॥५३॥

जिह्वायां पातु मां सेतुः कः कण्ठाभ्यन्तरेऽवतु ।
लः पातु चान्तरे वक्ष इः पातु जठरान्तरे ।
सामीन्दुः पातु मां वस्ताविन्दुबिन्द्वन्तरेऽवतु ॥५४॥

जिह्वा में सेतु (ऊँकार) मेरी रक्षा करे, कण्ठ के भीतर ककार रक्षा करे। 'ल' कार वक्ष के भीतर तथा 'इ' कार जठरान्तर में रक्षा करे। अर्धचन्द्र सर्वदा मेरे वस्तिभाग की तथा इन्दु (बिन्दु) बिन्दु (योनि) के अन्तर में रक्षा करे (क्लीं द्वारा रक्षा)॥५४॥

तकारस्त्वचि मां पातु रकारोऽस्थिषु सर्वदा ।
अकारः सर्वनाडीषु ईकारः सर्वसन्धिषु ॥५५॥
चन्द्रः स्नायुषु मां पातु बिन्दुमज्जासु सन्ततम् ॥५६॥

इसी प्रकार तकार मेरी त्वचा की तथा र कार हड्डियों की सदैव रक्षा करें। अकार सभी नाड़ियो में, ई कार सभी जोड़ो में, चन्द्र (अर्धचन्द्र) स्नायुयों में तथा बिन्दु सदैव मेरी मज्जाओं में रक्षा करे (त्रीं द्वारा रक्षा)॥५५-५६॥

पूर्वस्यां दिशि चाग्नेय्यां दक्षिणे नैर्ऋते तथा ।
वारुणे चैव वायव्यां कौबेरे हरमन्दिरे ॥५७॥
अकाराद्यास्तु वैष्णव्या अष्टौ वर्णास्तु मन्त्रगाः ।
पान्तु तिष्ठन्तु सततं समुद्भवविवृद्धये ।
ऊद्र्ध्वाधः पातु सततं मां तु सेतुद्वयं सदा ॥५८॥

पूर्व, अग्निकोण, दक्षिण, नैर्ऋत्यकोण, वारुण (पश्चिम), वाायव्य, कौबेर (उत्तरदिशा), हर का मन्दिर (ईशान कोण) की आठो दिशाओं में वैष्णवी मन्त्र के अकार-आदि आठोवर्ण क्रमशः मेरी रक्षा करें तथा निरन्तर मेरी उन्नति एवं विकास हेतु स्थित रहें, मेरे ऊपर और नीचे की ओर से दोनोंसेतु निरन्तर रक्षा करें॥५७-५८॥

नवाक्षराणि मन्त्रेषु शारदामन्त्रगोचरे ।
नवस्वरं तु मां नित्यं नासादिषु समन्ततः ॥५९॥

शारदामन्त्र के नवअक्षर और नवछिद्रोस्वर नाक आदि की सब ओर से नित्य मेरी रक्षा करें॥५९॥

वातपित्तकफेभ्यस्तु त्रिपुरायास्तु त्र्यक्षरम् ॥६०॥

त्रिपुरा के तीनों अक्षर, वातपित्तकफ सम्बन्धी विकारों से मेरी रक्षा करें॥६०॥

नित्यं रक्षतु भूतेभ्यः पिशाचेभ्यस्तथैव च ।
तत्सेतू सततंपातां क्रव्याद्भ्योमान्निवारकौ ॥६१॥

भूत-पिशाच, तथा दुर्निवार, मांसभोजी प्रेतादि से उसका सेतु, निरन्तर मेरी रक्षा करे॥६१॥

नमः कामेश्वरीं देवीं महामायां जगन्मयीम् ।
या भूत्वा प्रकृतिर्नित्यं तनोति जगदाद्यताम् ॥६२॥

उन महामाया जगन्मयी कामेश्वरी देवी को नमस्कार है जो प्रकृतिरूप हो जगत् का नित्य विस्तार करती हैं॥६२॥

कामाख्यामक्षमालाभयवरदकरां सिद्धसूत्रैकहस्तां-
श्वेतप्रेतोपरिस्थां मणिकनकयुतां कुङ्कुमापीतवर्णाम्।
ज्ञानध्यानप्रतिष्ठामतिशयविनयां ब्रह्मशक्रादिवन्द्या-
मग्रौ बिन्द्वन्तमन्त्रप्रियतमविषयां नौमि सिद्ध्यै रतिस्थाम्।।६३।।

हाथों में रुद्राक्षमाला, अभय और वरदमुद्रा तथा सिद्धसूत्र (पाश) धारण की हुई, श्वेत-प्रेत पर स्थित, सोने और मणियों से युक्त, कुङ्कुम के समान पीलेरङ्ग वाली, ज्ञान-ध्यान में प्रतिष्ठित, अत्यन्त विनय (सौम्यता) से युक्त, आगे स्थित हुये ब्रह्मा-इन्द्र आदि देवताओं द्वारा वन्दिता, बिन्दु पर्यन्त मन्त्र बीजाक्षर ही जिनका प्रिय विषय है, रति में स्थित ऐसी देवी कामाख्या को मैं सिद्धि हेतु, नमस्कार करता हूँ।।६३।।

मध्ये मध्यस्यभागे सततविनमिता भावहावाबलीया-
लीलालोकस्य कोष्ठे सकलगुणयुताव्यक्तरूपैकनम्रा।
विद्याविद्यैकशान्ता शमनशमकरी क्षेमकर्त्री वरास्या
नित्यं पायात् पवित्रप्रणववरकरा कामपूर्वेश्वरी नः।।६४।।

कमर के मध्यभाग में निरन्तर झुकी हुई, हाव-भाव से बलवती, लीलालोक के कोष्ठ में सभी गुणों से युक्त, प्रकटरूप में नम्रता की प्रतिमूर्तिविद्या और विधियों से शान्त, शमन (यम) का भी शमन करने वाली, कल्याण करने वाली, श्रेष्ठमुखवाली, पवित्र प्रणवस्वरूपा, वरदहाथों (मुद्रा) वाली, पहले काम शब्द से युक्त ईश्वरी, कामेश्वरी, नित्य हमारी रक्षा करें।।६४।।

इति हरकवचं तनुस्थितं शमयति वै शमनं तथा यदि।
इह गृहाण यतस्व विमोक्षणे सहित एष विधिः सह चामरैः।।६५।।

शिव द्वारा कहा गया यह कवच शरीर में स्थित हो शमन (यमराज) का भी शमन करने वाला है। देवताओंसहित आप इसे ग्रहण करें और मुक्तिहेतु प्रयत्न करें। यही विधि है।।६५।।

इत्ययं कवचं यस्तु कामाख्यायाः पठेद् बुधः।
सकृत् तं तु महादेवी त्वनुव्रजति नित्यदा।।६६।।

जो विद्वान्साधक, कामाख्या के इस कवच को एक बार भी पढ़ता है वरदायिनीदेवी उसका नित्य अनुगमन करती हैं।।६६।।

नाधिव्याधिभयं तस्य न क्रव्याद्भ्यो भयं तथा।
नाग्नितो नापि तोयेभ्यो न रिपुभ्यो न राजतः।।६७।।

उसे आधिव्याधि और क्रव्यादि से कोई भय नहीं होता एवं न तो उसे अग्नि, जल, शत्रु या राजा से ही भय होता है।।६७।।

दीर्घायुर्बहुभोगी च पुत्रपौत्रसमन्वितः।
आवर्तयञ्छतं देवीं मन्दिरे मोदते परे।।६८।।

वह दीर्घायु, बहुत प्रकार के भोग करने वाला, पुत्र-पौत्र से समन्वित होता है तथा परलोक में देवी के धाम में चक्कर लगाता (भ्रमण करता) हुआ, आनन्दित होता है ।।६८।।

यथा तथा भवेद् बद्धः संग्रामेऽन्यत्र वा बुधः ।
तत् क्षणादेव मुक्तः स्यात् स्मरणात् कवचस्य तु ।।६९।।

साधक यदि किसीभाँति से युद्ध में या अन्यत्र बन्धन में आ जाता है तो इस कवच के स्मरणमात्र से ही वह क्षणभर में मुक्त हो जाता है।।६९।।

।। ईश्वर उवाच ।।

इति श्रुत्वा तु कवचं हरिर्ब्रह्मा सुरास्तथा ।
शक्रोऽपि कवचं देहे न्यासं चक्रुः पृथक् पृथक् ।।७०।।

ईश्वर बोले– इस कवच को सुन कर विष्णु, ब्रह्मा और इन्द्र ने भी अलग-अलग अपने शरीर में इसे न्यस्त किया ।।७०।।

ते तु विन्यस्तकवचा महामायाप्रभावतः ।
उत्प्लुप्य सागरस्याम्भ आसेदुः क्षितिमञ्जसा ।।७१।।
आसाद्य पृथिवीं सर्वे ब्रह्मविष्ण्वादयः सुराः ।
नीलकूटं समासाद्य कामाख्यां द्रष्टुमागताः ।।७२।।

कवच का न्यास किये वे, ब्रह्मा-विष्णु आदि सभी देवगण भी, महामाया के प्रभाव के कारण सागर के जल से ऊपर आकर पृथ्वी पर पहुँच गये। वे पृथ्वी पर आकर नीलकूटपर्वत पर पहुँच कर कामाख्या का दर्शन करने पहुँचे।।७१-७२।।

दृष्ट्वा कामेश्वरीं देवीं केशवस्तां जगन्मयीम् ।
इदमाह स्वयं ज्ञात्वा प्रभावं तत् प्रतिष्ठितम् ।।७३।।

भगवान विष्णु ने उस जगन्मयी कामेश्वरी देवी को देखकर तथा स्वयं उनके प्रभाव को जानकर उनकी प्रतिष्ठा में यह कहा—।।७३।।

।। विष्णुरुवाच ।।

त्वमेव प्रकृतिर्देवी त्वमेव पृथिवी जलम् ।
त्वमेव जगतां माता त्वमेव च जगन्मयी ।।७४।।

विष्णु बोले– आप ही प्रकृति देवी हैं, आप ही पृथ्वी एवं जल हैं। आपही जगत् की माता हैं और आप जगन्मयी भी हैं ।।७४।।

त्वं कर्त्री सर्वजगतां विद्या त्वं मुक्तिदायिनी ।
परापरात्मिका देवी स्थूलसूक्ष्मात्मिका तथा ।।७५।।

आप समस्त जगत् की कर्ता (रचयिता) हैं, आप मुक्तिदायिनी विद्या हैं, आप परा से भी परात्मिका देवी हैं, आप स्थूल तथा आप ही सूक्ष्म भी हैं ।।७५।।

प्रसीद त्वं महादेवि प्रसन्नायां शुभे त्वयि ।
देवाः सर्वे प्रसीदन्ति चतुर्वर्गप्रदेऽनघे ।।७६।।

हे महादेवी आप प्रसन्न होइये। हे शुभे ! हे चारोपुरुषार्थों को प्रदान करने वाली ! हे निष्पाप ! आपके प्रसन्न होने पर सभी देवता, प्रसन्न हो जाते हैं ।।७६।।

इति श्रुत्वावचस्तस्य केशवस्य महात्मनः ।
प्रत्यक्षरूपा कामाख्या हरिमाभाष्य चाब्रवीत् ।।७७।।

उन महात्माविष्णु के इस प्रकार के वचन को सुनकर, कामाख्यादेवी प्रत्यक्षरूप में विष्णु को दर्शन दे, बोलीं ।।७७।।

।। देव्युवाच।।

केशव ब्रह्मणा सार्धं सर्वैर्देवैस्तथा गणैः ।
मद्योनिसलिलेष्वद्य स्नानं पानं कुरु द्रुतम् ।।७८।।

देवी बोलीं– ब्रह्मा और सभी देवगणों के सहित हे विष्णु ! तुम मेरे योनि से निकले जल में स्नान और उस जल का पान, शीघ्र करो ।।७८।।

ततस्त्वं निरहङ्कारः परवीर्यसमन्वितः ।
आरुह्य गरुडं याहि त्रिदिवं सह वेधसा ।।७९।।

तब तुम घमण्डरहित हो तथा श्रेष्ठ वीर्य (पराक्रम) से युक्त हो, गरुड़ पर सवार हो, ब्रह्मा के साथ स्वर्ग को जाओ ।।७९।।

एवमुक्तो महादेव्या केशवः सह वेधसा ।
योनिमण्डलतोयेषु स्नानं पानं चकार ह ।।८०।।

महादेवी द्वारा ऐसा कहे जाने पर, ब्रह्मा के सहित भगवानविष्णु ने योनि-मण्डल के जल में स्नान और उस जल का पान किया।।८०।।

कृतप्लावास्ततो देवाः कृतस्नानश्च केशवः ।
गता देव्याश्च सम्मत्या त्रिदिवं प्रति हर्षिताः ।।८१।।

तब स्नान किये विष्णु तथा अन्य देवगण, देवी की सम्मतिपूर्वक हर्षित हो, स्वर्ग को गये।।८१।।

गच्छन्तस्ते देवगणाः सहिताः केशवेन च ।
ब्रह्मणा च तदाद्राक्षुः कामाख्यां तां वियद्गताम् ।।८२।।

तब ब्रह्मा और विष्णु के साथ जाते हुए उन देवगण ने उस समय स्वर्ग में स्थित, कामाख्यादेवी को देखा।।८३।।

नीलकूटसहस्राणि योनिभिः सह तद्गतैः ।
ऊर्ध्वाधोभागयोगेन ददृशुः संस्थितानि च ।।८३।।

उन्होंने योनियों सहित, हजारों नीलकूटों को ऊपर नीचे जुड़े हुए, उन्हीं में स्थित देखा।।८३।।

तानि प्रत्येकतो देवा आरुह्यारुह्य तत्क्षणात् ।
पपुः सस्नुः पूर्ववत् ते प्रीतिमापुस्तथातुलाम् ।।८४।।

उनमें से प्रत्येक पर क्षणभर में पहले की भाँति चढ़ते-उतरते तथा स्नान एवं पान करते, वे देवता अतुलनीय प्रसन्नता को प्राप्त हुए।।८४।।

निरामयास्तथा जग्मुर्विस्मयाक्लिष्टचेतनाः ।
स्तुवन्तः प्रस्तुवन्तश्च कामाख्यायोनिमण्डलम् ।।८५।।

वे रोग-दोष से रहित, विस्मययुक्तचित्तवाले होकर, कामाख्या के योनि-मण्डल की स्तुति और प्रस्तुति करते रहे।।८५।।

ततो देवगुरुं नत्वा मां स्तुत्वा च मया पुनः ।
विसृष्टास्त्रिदिवं याता हर्षोत्फुल्लविलोचनाः ।।८६।।

तब देवगुरु को नमस्कार कर तथा मेरी स्तुति करने के पश्चात् मेरे द्वारा विसर्जित किये जाने पर, हर्ष से खिले नेत्रों वाले, वे सब, स्वर्ग को चले गये ।।८६।।

माहात्म्यमीदृशं देव्याः कामाख्यायास्तु भैरव ।
कवचं चेदृशं प्रोक्तं तत्त्वमासाद्य पुत्रक ।
यथेष्टविनियोगेन तामासाद्य सुखी भव ।।८७।।

हे पुत्र भैरव ! देवी कामाख्या का इस प्रकार का माहात्म्य और कवच कहागया । उसे ग्रहण करो और उसे यथोचित विनियोगपूर्वक अपना कर सुखी होओ।।८७।।

कामाख्यायाश्च माहात्म्यं किमन्यत् कथयामि ते ।
यस्या योनिशिलायोगाल्लोहाद्या यान्ति स्वर्णताम् ।।८८।।

अब उस कामाख्या देवी के माहात्म्य के विषय में तुम से और क्या कहूँ, जिसके योनिमण्डल की शिला के स्पर्श से लोहा भी सोना हो जाता है।।८८।।

यद्योनिमण्डले स्नात्वा सकृत् पीत्वा च मानवः ।
नेहोत्पत्तिमवाप्नोति परं निर्वाणमाप्नुयात् ।।८९।।

।। इति श्रीकालिकापुराणे कामाख्यामाहात्म्यवर्णननाम द्विसप्ततितमोऽध्यायः ।।७२।।

जिसके योनिमण्डल में एक बार स्नान करके या पान करके मनुष्य, इस लोक में पुनः जन्म नहीं प्राप्त करता, अपितु अन्त में निर्वाण को प्राप्त करता है।।८९।।

।। श्री कालिकापुराण में कामाख्यामाहात्म्यवर्णनामक बहत्तरवाँ अध्याय सम्पूर्ण हुआ ।।७२।।



त्रिसप्ततितमोऽध्यायः
मातृकान्यासवर्णनम्

।। श्रीभगवानुवाच ।।

मातृकान्यासमधुना शृणु वेताल भैरव ।
येन देवत्वमायाति नरोऽपि विहितेन वै ।।१।।

श्रीभगवान् बोले–हे वेताल और भैरव ! अब तुम मातृकान्यास के विषय में सुनो, जिसके करनेमात्र से मनुष्य में देवत्व आ जाता है।।१।।

वाग् ब्रह्माणीमुखा देव्यो मातृकाः परिकीर्तिताः ।
तासां मन्त्राणि सर्वाणि व्यञ्जनानि स्वरास्तथा ।
चन्द्रबिन्दुप्रयुक्तानि सर्वकाम प्रदानि च ।।२।।

वाक्, ब्रह्माणी आदि देवियाँ मातृकाएँ कही गई हैं। सभीस्वर तथा व्यञ्जन उन्हीं के मन्त्र हैं। जो चन्द्रबिन्दु से युक्त हो साधक की समस्तकामनाओं की पूर्ति करते हैं।।२।।

ऋषिस्तु मातृमन्त्राणां ब्रह्मैव परिकीर्तितः ।
प्रोक्तश्छन्दश्च गायत्री देवता च सरस्वती ।।३।।
शरीरशुद्धिमुख्ये तु सर्वकामार्थसाधने ।
विनियोगः समुद्दिष्टो मन्त्राणां न्यूनपूरणे ।।४।।

मातृकामन्त्र के ऋषि ब्रह्मा ही कहे गये हैं । इसका गायत्रीछन्द, सरस्वती-देवता, शरीरशुद्धि-पूर्वक सब काम एवं अर्थ साधन में विनियोग, इन मन्त्रों की न्यूनता पूर्तिहेतु बताया जाता है।।३-४।।

अकारेण सम कादिर्वर्गो यः प्रथमः स्मृतः ।
तैश्चन्द्रबिन्दुसंयुक्तैस्तत्रस्थैरक्षरैर्बहिः ।।५।।

अकार के सहित जो क आदि वर्ग पहले बताये गये हैं, उन्हीं के पहले स्थित चन्द्रबिन्दु से युक्त उन अक्षरों द्वारा शरीर के बाहरी अंगों में न्यास करे ।।५।।

आकारं च तथोच्चार्य अङ्गुष्ठाभ्यां नमस्तथा ।
प्रथमं मातृकामन्त्रमङ्गुष्ठद्वयतो न्यसेत् ।।६।।

आकार का पहले उच्चारण कर अंगुष्ठाभ्यां नमः कहकर इस पहले मन्त्र का दोनों अंगूठों में न्यास करे॥६॥

परे वर्गाः स्वरैः सार्धं ये वान्ये न्यासकर्मणि ।
ते सर्वे चन्द्रबिन्दुभ्यां युक्ताः कार्यास्तु सर्वतः ॥७॥

बाद के वर्गों के स्वरों से युक्त जो अन्य-अक्षर हैं वे सब न्यासकर्म में चन्द्र-बिन्दु से युक्त करके, सब जगह प्रयोग करना चाहिये ॥७॥

ह्रस्वेकारश्चवर्गेण दीर्घेकारान्तकेन तु ।
तर्जन्योर्विन्यसेत् सम्यक् स्वाहान्तेन तु पूर्ववत् ॥८॥

ह्रस्व इकार और च वर्ग के दीर्घ ई कारान्त अक्षरों से स्वाहापर्यन्त पहले की भाँति उच्चारण कर दोनों तर्जनियों में न्यास करे॥८॥

ह्रस्वोकारष्टवर्गेण दीर्घोकारान्तकेन तु ।
मध्यमायुगले सम्यग्वषडन्तेन विन्यसेत् ॥९॥

ह्रस्व उ कार और ट वर्ग से दीर्घ ऊकार पर्यन्त, वर्ण का वषट् युक्त उच्चारण कर दोनों मध्यमाअङ्गुलियों में न्यास करे॥९॥

एकारादितवर्गन्तु ऐकारान्तेन चैव हुम् ।
न्यसेदनामिकायुग्मे नियतं तत्र भैरव ॥१०॥

हे भैरव ! ए कारादि और त वर्ग से ऐकारपर्यन्त हुम् से अन्त करते हुये ही दोनों अनामिकाओं में निश्चितरूप से न्यास करे ॥१०॥

ओकरादिपवर्गं तु औकारान्तमशेषतः ।
वौषडन्तं कनिष्ठायां विन्यसेत् कार्यसिद्धये ॥११॥

कार्य की सिद्धि के लिए ओकारादि व पवर्ग के औकार पर्यन्त, सभी वर्णों से वौषट्युक्त कनिष्ठाअङ्गुलियों में न्यास करे॥११॥

अङ्कारादियकारादिवर्गेण क्षान्तकेन तु ।
अः इत्यन्तेन वलयोर्विन्यसेत् पाणिपृष्ठयोः ॥१२॥
वषट्कारं शेषभागे अस्त्रन्यासे नियोजयेत् ॥१३॥

अंकार और यवर्ग के आदि से क्ष पर्यन्त वर्णों से अः तक वर्ण तथा अन्त में फट् लगाकर, हाथ के तलों और पृष्ठों में न्यास कर, शरीर के अन्यभागों में अस्त्रन्यास करने के लिए वषट्कार का प्रयोग करे॥१२-१३॥

हृद्यादिषडङ्गेषु पूर्ववत् क्रमतो न्यसेत् ।
अङ्गुष्ठाद्युक्तवर्गैस्तु क्रमात् षड्भिस्तथाविधैः ॥१४॥

उसी विधि से अङ्गुष्ठादि के लिए कहे गये छः क्रमों से ही हृदय आदि छः अङ्गो में पहले की ही भाँति न्यास करे॥१४॥

पुनस्तथा पादजानुसक्थिगुह्येषु पार्श्वयोः ।
वस्तौ च विन्यसेन्मन्त्रान् क्रमात् पूर्ववदक्षरैः ।।१५।।

पुनः पहले ही की भाँति अक्षरों का न्यास, क्रमशः पैर, घुटने, सक्थि (जाँघ), गुह्य, पार्श्व और वस्तिक्षेत्र में करे।।१५।।

बाह्वोः पाण्योस्तथा कट्यां नाभौ च जठरे तथा ।
स्तनयोरपि विन्यासं तथा षड्भिः समाचरेत् ।।१६।।

भुजाओं हाथों, कमर, नाभि, पेट, स्तन इन छः अङ्गों में भी न्यासकार्य सम्पन्न करे ।।१६।।

वक्त्रे च चिबुके गण्डे कर्णयोश्च ललाटके ।
अंसे कक्षे च षड्वर्गैः पूर्ववन्न्यासमाचरेत् ।।१७।।

मुख, ढुड्डी, गण्डस्थल, कान, ललाट, कन्धे एवं काँख के छः अङ्गों में पहले ही की भाँति छः वर्गाक्षरों से न्यास करे ।।१७।।

रोमकूपे ब्रह्मरन्ध्रे गुदे जङ्घायुगे तथा ।
नखेषु पादपार्ष्ण्योश्च तथा पूर्ववदाचरेत् ।।१८।।

पहले की भाँति ही रोमकूप, ब्रह्मरन्ध्र, गुदा, दोनों जंघाओं (टखनों), नाखून, पैर की एड़ियों में भी न्यास करे।।१८।।

एवं तु मातृकान्यासं यः कुर्यान्नरसत्तमः ।
स सर्वयज्ञपूजासु पूतो योग्यस्तु जायते ।।१९।।

जो मनुष्यों में श्रेष्ठपुरुष, इस प्रकार से मातृकान्यास करता है, वह सभी यज्ञ एवं पूजासम्बन्धी कार्यहेतु पवित्र और अधिकारी हो जाता है।।१९।।

नातः परतरं मन्त्रं विद्यते क्वचिदेव हि ।
यत्सर्वकामदं पुण्यं चतुर्वर्गप्रदं परम् ।।२०।।

इसके अतिरिक्त कोई अन्य उत्तममन्त्र नहीं है। जो सभी कामनाओं को देने वाला, परमपवित्र तथा चारोपुरुषार्थों को प्रदान करने वाला हो ।।२०।।

वाग्देवतां हृदि ध्यात्वा मूर्तिसर्वाक्षराणि च ।
त्रिधा च मातृकामन्त्रैः सक्रमैश्च पिबेज्जलम् ।
स वाग्मी पण्डितो धीमान् जायते च वरः कविः ।।२१।।

जो साधक वाग्देवता और सभी मन्त्र-अक्षरों की मूर्तियों का हृदय में ध्यान करके, मातृकामन्त्रों से क्रमशः तीन बार जल पीता है । वह वक्ता, विद्वान्, बुद्धिमान् तथा श्रेष्ठकवि होता हैं।।२१।।

।। मातृका आचमनविधि ।।

चन्द्रबिन्दुसमायुक्तान् स्वरान् पूर्वं पठेद् बुधः ।
व्यञ्जनानि तु सर्वाणि केवलानि पठेत् ततः ।।२२।।

अकारादिक्षकारान्तान्येवं श्वासैश्च पूरकैः ।
जलं करतले गृह्य पठित्वाक्षरसङ्घ्यकम् ।।२३।।
अभिमन्त्र्य तु तत् तोयं प्रथमं पूरकैः पिबेत् ।
कुम्भकेन द्वितीयं तु तृतीयन्त्वथ रेचकैः ।।२४।।

विद्वान्‌साधक पहले चन्द्र-बिन्दु से युक्त सभी स्वरों को पढ़े तब केवल सभी व्यञ्जनों को पढ़े । अकार से क्षकार पर्यन्त इन वर्णों को पूरकश्वास प्रक्रिया से पढ़ता हुआ कर-तल में जल-ग्रहण कर, उसे अक्षरों के समूह से अभिमन्त्रित कर, प्राणयाम की पूरकप्रक्रिया द्वारा जल पीये । विचक्षण (बुद्धिमान् साधक) कुम्भक से दूसरी तथा रेचक से तीसरी बार जल पीकर, आचमन करे ।।२२-२४।।

एवं सकृत् त्रिवारं तु पीत्वा तोयं विचक्षणः ।
दृढाङ्गः पण्डितो भूयात् पुत्रपौत्रसमन्वितः ।।२५।।

इस प्रकार जो साधक एक बार या तीन बार जल पीता है । वह दृढ़अङ्गों-वाला, पण्डित तथा पुत्र-पौत्र से युक्त होता है ।।२५।।

त्रिसन्ध्यमथ पीत्वैव मातृकामन्त्रमन्त्रितम् ।
तोयं कवित्वमाप्नोति सर्वान् कामांस्तथैव च ।।२६।।

तीनों सन्ध्याओं में मातृका मन्त्र से अभिमन्त्रित जल पीकर साधक, कवित्व तथा सभी कामनाओं को प्राप्त कर लेता है ।।२६।।

सततं कुरुते यस्तु मातृकामन्त्रमन्त्रितम् ।
तोयपानं महाभाग पूरकुम्भकरेचकैः ।।२७।।
स सर्वकामान् संप्राप्य पुत्रपौत्रसमृद्धिमान् ।
भूत्वा महाकविर्लोके बलवान् सत्यविक्रमः ।।२८।।
सर्वत्र वल्लभो भूत्वा चान्ते मोक्षमवाप्नुयात् ।।२९।।

जो साधक महाभाग, मातृकामन्त्र से अभिमन्त्रित जल का पूरक, कुम्भक, रेचक-प्रक्रियाओं से निरन्तर पान करता है, वह अपनी सभी कामनाओं को प्राप्त कर, पुत्र-पौत्र से युक्त होकर लोक में महाकवि, बलवान, सत्यविक्रमी होता है। वह इस लोक में सब जगह प्रिय होकर अन्त में मोक्ष को प्राप्त करता है।।२७-२९।।

राजानमथवा राजपुत्रं भार्यामथापि वा ।
वशीकरोति नचिरान्मातृकामन्त्रपानतः ।।३०।।

मातृका-मन्त्र से अभिमन्त्रित जल का पान करने वाला साधक, राजा को, राजकुमार को या स्त्री को शीघ्र ही अपने वश में कर लेता है।।३०।।

न्यासक्रमे क्रमः प्रोक्तो वर्गक्रम इहैव तु ।
अक्षराणां क्रमेणाथ तोयपानं समाचरेत् ।।३१।।

न्यासकार्य में मातृकाओं का प्रयोग जिस वर्गक्रम से करना बताया गया है जलपान (आचमन) के कार्य में इन्हीं अक्षर-क्रम का प्रयोग करना चाहिये ।।३१।।

ये ये मन्त्रा देवतानामृषीणामथ रक्षसाम् ।
ते मन्त्रा मातृकामन्त्रैर्नित्यमेव प्रतिष्ठिताः ।।३२।।

देवताओं, ऋषियों, राक्षसों के जो-जो मन्त्र हैं वे सभी मन्त्र, मातृकामन्त्रों में ही नित्यप्रतिष्ठित होते हैं ।।३२।।

सर्वमन्त्रमयश्चायं सर्ववेदमयस्तथा ।
चतुर्वर्गप्रदश्चायं मातृकामन्त्र उच्यते ।।३३।।

यह मातृकामन्त्र सभी मन्त्रों का स्वरूप है । यह सभी वेदों का भी स्वरूप है। यही चारोपुरुषार्थप्रदान करने वाला भी कहा जाता है ।।३३।।

इति ते कथितं पुत्र मातृकान्याससमद्भुतम् ।
विभागमथ मुद्राणां शृणु वेताल भैरव ।।३४।।

।। इति श्रीकालिकापुराणे मातृकान्यासवर्णने त्रिसप्ततितमोऽध्याय:।।७३।।

हे पुत्र ! यह मेरे द्वारा अद्भुत मातृकान्यास तुम से कहा गया । हे वेताल और भैरव ! अब मुद्राओं का विभाग सुनो।।३४।।

।। श्रीकालिकापुराण में मातृकान्यासवर्णनसम्बन्धी तिहत्तरवाँ अध्याय सम्पूर्ण हुआ ।।७३।।



चतुःसप्ततितमोऽध्यायः

मुद्राविभागः

।। श्रीभगवानुवाच ।।

या योनिमुद्रा कथिता मुद्राविभजने पुरा ।
अष्टधा योनिमुद्रा स्यात् प्रथमा सा तु कीर्तिता ।।१।।

श्रीभगवान् बोले–पहले मुद्रावर्णनप्रसङ्ग में जिस योनिमुद्रा का वर्णन किया गया है, वह आठ प्रकार की कही गई है, जिसमें पहली योनिमुद्रा कही गई है।।१।।

द्वितीया खेचरी मुद्रा कामाख्यायास्तु भैरव ।
तां विद्धि चाद्भुतं गुह्यं येन तुष्यति चण्डिका ।।२।।

हे भैरव ! दूसरी योनिमुद्रा, कामाख्या हेतु प्रयोग की जाने वाली खेचरीमुद्रा है। तुम उस अद्भुत और गुप्तमुद्रा, को जानो जिससे चण्डिका सन्तुष्ट होती है ।।२।।

।। खेचरीमुद्रावर्णन ।।

अनामिकां दक्षिणस्य तर्जन्यां वामतो न्यसेत् ।
वामानामां दक्षिणस्य तर्जन्यां विनिवेशयेत् ।।३।।

दाहिने, हाथ की अनामिका को बायें, हाथ की तर्जनी पर रखे तथा बायें हाथ की अनामिका को दाहिने हाथ की तर्जनी पर रखे।।३।।

ते द्वे तथा तर्जनीभ्यां वेष्टयेदग्रतोऽग्रतः ।
मध्ये द्वयं तु विन्यस्य चोर्ध्वभागे त्वनामयोः ।।४।।

उन दोनों अनामिकाओं को तर्जनियों के आगे करके लपेटे, तत्पश्चात् उन दोनों अनामिकाओं के मध्य में ऊपर की ओर दोनों मध्यमाओं को रखे।।४।।

तदग्राग्रेण संयोगात् तथैव च कनिष्ठके ।
अग्रेणैव च संयुक्ते तन्मूलेऽङ्गुष्ठके न्यसेत् ।
इयं ते खेचरी योनिर्योनिमुद्रा तु कामदा ।।५।।

उन सबके आगे उसी भाँति दोनों कनिष्ठिकाओं को तत्पश्चात् मिले हुये अंगूठे को भी उसके मूल में स्थापित करे। इससे यह कामनाओं को प्रदान करने वाली **खेचरीयोनिमुद्रा** बनती है।।५।।

।। गुह्ययोनिमुद्रावर्णन ।।

एषैवाधः कनिष्ठे द्वे नियोज्य यदि युज्यते ।
गुह्ययोनिस्तु सा ख्याता कामेश्वर्यास्तु तुष्टिदा ।।६।।

इसी के निचलेभाग में दोनों कनिष्ठाओं का उपयोग किया जाय तो यह कामेश्वरी को सन्तुष्ट करने वाली गुह्ययोनिमुद्रा कही गयी है।।६।।

।। त्रिशांङ्करीयोनिमुद्रावर्णन ।।

संवेष्टय पूर्ववत् पाण्योर्द्वे कनिष्ठे त्वनामिके ।
अधोभागे नियोज्याथ मध्यमे चोर्ध्वतस्तथा ।।७।।
तासां परस्परश्चाग्रैरन्योऽन्यं योजयेद् यदि ।।८।।
मध्यां मध्ये तथाङ्गुष्ठे निःक्षिप्याग्रे नियोजयेत् ।
योनिस्त्रिशाङ्करी प्रोक्ता त्रिपुरा तुष्टिदा सदा ।।९।।

पहले की भाँति दोनों हाथों की कनिष्ठिका और अनामिकाओं को लपेट कर तथा उनके ऊपरीभाग में मध्यमाओं को एक दूसरे के आगे आपस में मिलाकर रखे एवं मध्यमाओं के मध्यमें अँगूठों को आगे की ओर स्थापित करे तो त्रिपुरा को सदैव सन्तुष्ट करने वाली, त्रिशाङ्करीयोनिमुद्रा कही गई है ।।७-९।।

।। शारदीयोनिमुद्रावर्णन ।।

मध्ये द्वे च तथा वेष्टया पूर्ववच्चाप्यनामिका ।
कनिष्ठाभ्यां पुरो न्यस्य अङ्गुष्ठौ मूलयोस्तयोः ।।१०।।
मुद्रेयं शारदी प्रोक्ता शारदायास्तु तुष्टिदा ।
मूलयोनिस्तु कथिता वैष्णवीतंत्रगोचरे ।।११।।

पहले की भाँति लपेटी हुई अनामिका तथा दोनों मध्यमाओं के मध्य में आगे की ओर कनिष्ठिाओं तथा उनके मूल में दोनों अँगूठों को रखने से शारदा को सन्तुष्ट करने वाली **शारदीयोनिमुद्रा** कही जाती है ।।१०-११।।

।। महायोनिमुद्रावर्णन ।।

तर्जन्यनामिकं मध्ये कनिष्ठेऽपि क्रमादपि ।
करयोर्योजयित्वैव कनिष्ठामूलदेशतः ।
अङ्गुष्ठायं तु निःक्षिप्य महायोनिः प्रकीर्तिता ।।१२।।

दोनों ही हाथो की तर्जनी, अनामिका, मध्यमा और कनिष्ठाओं को ऊपर-ऊपर क्रमशः स्थापित करके, कनिष्ठाओं के मूलदेश में अंगूँठों को रखने से बनने वाली मुद्रा, **महायोनिमुद्रा** कही गई है।।१२।।

।। योगिनीयोनिमुद्रावर्णन ।।

अङ्गुष्ठौ चाथ संवेष्ट्य संयुज्याथ कराङ्गुलीः ।।१३।।

अग्रभागैर्मध्यशून्यं तत्र कुर्यात् करद्वयम् ।
इयं तु योगिनीयोनिर्योगिनीनां प्रियंकरी ।।१४।।

हाथ की अङ्गुलियों को मिलाकर अँगूठों से लपेट कर, मध्य में खालीस्थान रखने से दोनों हाथों से जो मुद्रा बनती है, वह योगिनियों को प्रिय लगने वाली **योगिनीयोनिमुद्रा** होती है।।१३-१४।।

एता अष्टौ समाख्याता योन्यः कामेश्वरीप्रियाः ।
मूर्तिभेदेन चान्येषां देवानामपि तुष्टिदाः ।।१५।।

ये आठों योनि-मुद्रायें कामेश्वरीदेवी को प्रिय हैं तथा मूर्तिभेद से अन्य देवताओं को भी सन्तोष देने वाली हैं।।१५।।

यात्रायां युद्धविषये वाग्वादे कलहे तथा ।
अष्टौ योन्यः स्मरेद् यस्तु जयस्तस्य सनातनः ।।१६।।

यात्रा में, युद्ध-प्रसङ्ग में, वाद-विवाद में, झगड़े में जो इन आठों मुद्राओं का स्मरण (अभ्यास) करता है, उसकी विजय सुनिश्चित होती है।।१६।।

विसर्जने पूजने च स्मरणे कर्मभेदतः ।
एता योन्यः समाख्याताश्चण्डिकापूजनेषु च ।।१७।।

चण्डिका के पूजन हेतु विसर्जन, पूजन एवं स्मरण में कर्म-भेद के अनुसार ये योनिमुद्रायें कही गई हैं।।१७।।

एतास्तु कथिता योन्यः क्रमात् क्रमविसर्जने ।
रहस्यं वामदाक्षिण्यं मंत्रशुद्धिं शृणुष्व मे ।।१८।।

अब रहस्य तथा वाम-दाक्षिण्य के भेद और मन्त्रशुद्धि के विषय में मुझसे सुनो। ये योनि-मुद्रायें क्रमविसर्जन के अन्तर्गत क्रमशः कही गई हैं।।१८।।

मंत्रेण क्रियते यत् तु शारीरं मंत्रमुत्तमम् ।
तद्रहस्यमिति प्राहुर्मंत्रेषु मंत्रकोविदाः ।।१९।।

मन्त्र से जो उत्तम शारीरमन्त्र किया जाता है उसे मन्त्रवेत्ता साधक मन्त्रों में रहस्य कहते हैं ।।१९।।

कामाख्यायास्तु षट्कोणं मण्डलस्य दलान्तरे ।
त्रिधा लिखेन्मूलमंत्रमूर्ध्वं त्रिष्वपि सन्धिषु ।।२०।।

कामाख्यादेवी के पूजनहेतु मण्डल (यन्त्र) के मध्य, षट्कोण बनाये उसकी ऊपरी तीनों सन्धियों के मूल में तीन बार कामाख्या के मूलमन्त्र को लिखे।।२०।।

अधस्त्रिसन्धिषु पुनर्विधिं शक्रं हरं तथा ।
सहितं मदनेनैव लिखेद् भूर्जत्वचि त्रिधा ।।२१।।

पुनः भोजपत्र पर तीन बार नीचे की तीनों सन्धियों (कोणों) में ब्रह्मा, इन्द्र, शिव के (बीजमन्त्र) के सहित मदन क्लीं लिखे ।।२१।।

तन्तुमादाय साहस्त्रं दक्षिणेन करेण वै ।
मालामपि समादाय संजपेदुत्तरामुखः ।।२२।।

उस यन्त्र को दाहिने हाथ में रखकर तथा माला भी लेकर उत्तराभिमुख हो एक-हजार मूलमन्त्र का जप करना चाहिये ।।२२।।

तद्भुजे दक्षिणे धार्य बाहौ वा साधकोत्तमैः ।
जपान्ते लिखितं यंत्रं तेन सर्वजयी भवेत् ।।२३।।
दीर्घायुः सर्ववशकृद्धनधान्यसमृद्धिमान् ।
मृतो देवीगृहे याति यंत्रयत्रिंतबुद्धिमान् ।।२४।।

जप के अन्त में उत्तमसाधक द्वारा लिखे गये इस प्रकार से अभिमन्त्रितयन्त्र को दाहिनीभुजा या हाथ में बाँधने से, बाँधने वाला, सबको जीतने वाला हो जाता है। वह दीर्घायु, सबको वश में करने वाला तथा धन-धान्य से समृद्ध होता है। उपर्युक्त यन्त्र से अपने को नियन्त्रित करने वाला बुद्धिमानसाधक, मृत्यु के पश्चात् देवीलोक को जाता है ।।२३-२४।।

षट्कोणानन्तरकृतं वेष्टिताष्टदलेष्वथ ।
लिखित्वा भूर्जपत्रेषु विलीनैर्यावकोदकैः ।।२६।।
उत्तरादिक्रमेणैव वैष्णवीतंत्रसङ्गतान् ।
अष्टौवर्णान्मिध्यभागे पूर्ववत् कामराजकम् ।।२६।।

महावरघुलेजल से भोजपत्र पर अष्टदलकमल के भीतर षट्कोण बनाये। उसमें उत्तर आदि के क्रम से वैष्णवीतन्त्र में बताये गये आठो वर्णों को और मध्यभाग में कामराज (क्लीं) को पहले की ही भाँति लिखे ।।२६।।

त्रीन् वर्णान् नेत्रबीजस्य त्रिकोणस्याग्रतो लिखेत् ।
एवं त्रिधाकृतं यन्त्रं कृत्वा वामकरे स्थितः ।।२७।।

नेत्रबीज के तीन वर्णो को त्रिकोण के अगलेभाग में लिखे, इस प्रकार तीन आवृत्ति किये, यन्त्र को साधक, अपने बाये हाथ में ले।।२७।।

जपेत् त्रीणि सहस्त्राणि मालामादाय् दक्षिणे ।
जपान्ते वैष्णवीरूपध्यानं कुर्यादतन्द्रितः ।।२८।।
प्राणायामसहस्त्रं तु ततस्तं लिखितोत्तमम् ।
ग्रीवायां धारयेद् यंत्रं तेन सर्वजयी भवेत् ।।२९।।

तब दाहिनेहाथ में माला लेकर, तीनहजारमन्त्र जप करे, जप के अन्त में आलस्यरहित हो, वैष्णवीरूप का ध्यान करे और एकहजारप्राणायाम करे, तत्पश्चात् उस लिखे गये, उत्तमयन्त्र को गले में धारण करे। ऐसा करने साधक सबको जीतने वाला होता है।।२८-२९।।

राजपुत्रो भवेद्राजा तदन्यः सचिवो भवेत् ।
द्विजराजो भवेद्विद्वान् कविर्वाग्मी च वा भवेत् ।।३०।।

राजा का पुत्र राजा होता है तथा अन्य साधक, सचिव होता है। ब्राह्मण साधक विद्वान् या कवि और वक्ता होता है।।३०।।

राक्षसेभ्यः पिशाचेभ्यो भूतेभ्यश्चापि चान्यतः ।
साधु संविद्यते तस्य न कदाचित् पराजयः ।
दीर्घायुर्बलवान् प्राज्ञो मृते मोक्षमवाप्नुयात् ।।३१।।

राक्षसों से, पिशाचों से, भूतों से या अन्य किसी से उसे कभी पराजय नहीं होती। वह सकुशल रहता है। वह दीर्घायु, बलवान और बुद्धिमान होता है तथा मरने के बाद मोक्ष को प्राप्त करता है ।।३१।।

सम्पूर्ण मण्डलं कृत्वा अष्टपत्रसमन्वितम् ।
भूर्जत्वचि श्रीफलस्य निर्यासैस्तस्य मध्यतः ।।३२।।
षट्कोणं विलिखेत् तस्य प्रागग्रेष्वथ त्रिष्वपि ।
विलिखेत् त्रिपुरावर्णानधो बीजं तु नेत्रकम् ।।३३।।
दलेष्वष्टासु तु पुनर्वैष्णवीतंत्रसङ्गतान् ।।३४।।
अष्टौ वर्णास्तु विलिखेत् तथा द्वार्षु चतुर्ष्वपि ।
षट्कोणेषूत्तराकोणक्रमेणैकाग्रमानसः ।।३५।।

आठ दलों से युक्त एक पूर्णमण्डल, भोज-पत्र पर बेल के रस से बनावे। उसके मध्य में षट्कोण बनावे। उसके पहले (ऊपरी) तीनकोणों में त्रिपुरा के वर्ण तथा तीनकोणों में नेत्रबीज लिखे। आठदलों में वैष्णवीतन्त्र से सम्बन्धित आठ वर्णों को लिखे। चारो द्वारों पर भी षट्कोण के उत्तरी कोण के क्रम से इन्हें ही एकाग्रमन से लिखे।।३२-३५।।

तद्धृत्वा दक्षिणकरे वैष्णवीतंत्रमंत्रकम् ।
जपेत् त्रिभिर्दिनैरेवायुतं संयतमानसः ।।३६।।
प्राणायामसहस्राणि त्रीणि कृत्वा तु हर्षितः ।
सन्ध्याकाले नवम्यां तु शीर्षेण धारयेद् बुधः ।।३७।।

वैष्णवीतन्त्रमन्त्र से युक्त, उस यन्त्र को दाहिने हाथ में धारण कर, संयत-मन से तीन दिनों में ही दशहजारमन्त्रजप करे और विद्वान्साधक प्रसन्नता- पूर्वक तीनहजार प्राणायाम कर, नवमी के दिन सन्ध्या को उस यन्त्र को मस्तक पर धारण करे ।।३६-३७।।

शतायुः सर्वदमनो मतिमान् पण्डितोत्तमः ।
बलवीर्यधनैश्वर्ययुक्तः पार्थिव एव वा ।।३८।।

ऐसा करने वाला साधक शतायु, सब का दमन करने वाला, बुद्धिमान् तथा पण्डितों में उत्तम या बल, वीर्य, धन और ऐश्वर्य से युक्त राजा होता है ।।३८।।

प्रत्यक्षतो महामायां कामाख्यां त्रिपुरामपि ।
नित्यं पश्यति मेधावी महोच्छ्वासां च शारदाम् ।।३९।।

वह मेघावीसाधक नित्य महामाया, कामाख्या, त्रिपुरा, महोच्छ्वासा, शारदा को प्रत्यक्षरूप से देखता है ।।३९।।

सिंहव्याघ्रौ भुजङ्गो वा येऽन्ये वा तस्य हिंसकाः ।
सर्वे तस्य तनुं प्राप्य विषीदन्ति न संशयः ।।४०।।

सिंह, बाघ, सर्प या और भी जो उसको हानि पहुँचाने वाले हिंसकप्राणी हैं वे सभी उसके शरीर को पाकर नष्ट हो जाते है । इसमें कोई संशय नहीं है ।।४०।।

जयहेतुरतोऽन्यस्मात् संग्रामे शास्त्रवादतः ।
न विद्यते त्रिभुवने तस्मात् कुर्यात् तु यंत्रकम् ।
अन्ते देवीगृहं प्राप्य ततो मोक्षमवाप्नुयात् ।।४१।।

अन्यों से विजयहेतु संग्राम, शास्त्रचर्चा या वाद-विवाद में रत होने पर उसे नियन्त्रित करने वाला तीनों-लोकों में कोई नहीं होता, अन्त में वह देवी के धाम को प्राप्त करता है, तत्पश्चात् मोक्ष को पाता है ।।४१।।

महामाया शारदाख्या कामाख्या त्रिपुरा तथा ।।४२।।
महोत्साहा तथैतेषां मंत्राणां यो गणे भवेत् ।
मण्डलं चाष्टदलकं तन्मध्ये विलिखेत् पुनः ।।४३।।

महामाया, शारदा, कामाख्या, त्रिपुरा तथा महोत्साहा एवं इनके मन्त्रों के जो गण हैं। उन्हें आठदलों से युक्त, मण्डल बनाकर, उनके मध्य पुनः लिखे।।४२-४३।।

लिखित्वा पूर्ववत् पूर्व प्रोक्तं मंत्रगणं समम् ।
अन्यद्वयं द्वारदेशे कोष्ठेष्वक्षरतो लिखेत् ।।४४।।

पहले बताये मन्त्रगणों के समूह को पूर्ववत् लिखकर अन्य दो को द्वारदेश के कोष्ठो में अक्षरशः लिखे ।।४४।।

शुक्लकौशेयवस्त्रेषु रसैर्वह्निशिखस्य तु ।
उत्तरीयं तु तद्वस्त्रं कृत्वा जप्यं समाचरेत् ।।४५।।

सफेद-रेशमीवस्त्रों पर बह्निशिख (केशर) से, इस, उपर्युक्त यन्त्र को लिखकर, उस वस्त्र का उत्तरीयदुपट्टा ओढ़ कर जप सम्पन्न करे।।४५।।

कृतोपवासः शुद्धश्च मातृकान्यासपूर्वकम् ।
पञ्चानामपि वर्गाणां सहस्राणि तु पंच वै ।।४६।।
दिवसैः पञ्चभिर्जप्त्वा तदन्ते च समाचरेत् ।
प्राणायामसहस्राणि पंच वै पंचभिर्दिनैः ।।४७।।

उपवास करके शुद्ध हो, मातृकान्यास करके, पाँचों वर्गों के पाँचहजार मन्त्रों का, पाँच दिन तक जप करे। पाँच दिनों में जप करके जप के, अन्त में पाँचहजार प्राणायाम सम्पन्न करे।।४६-४७।।

अन्ते तु कवचन्यासं कात्यायन्याः समाचरेत्।
ततस्तु मातृकामंत्रैः श्वासरोधनपूर्वकम्।
त्रिः पिवेत् कपिलाक्षीरं जागृवांश्च तदा निशि।।४८।।

अन्त में कात्यायनी के कवचों का न्यास, सम्पन्न करे तत्पश्चात् मातृका- मन्त्रों से श्वासनिरोधपूर्वक तीन बार कपिला गौ का दूध पीये तथा रात्रि में जागरण करे।।४८।।

एवं यः कुरुते यंत्र शरीरे शुक्लवाससा।।
सोऽत्र सिद्धिमवाप्नोति देवीलोकं च गच्छति।।४९।।

इस प्रकार से जो शरीरपर, श्वेतवस्त्र के रूप में यन्त्र को धारण करता है वह यहाँ, इस लोक में सिद्धि को प्राप्त करता है तथा देहान्त होने पर देवीलोक को जाता है।।४९।।

य उत्तरीयं विभृयाद् वस्त्रं मंत्रेण मन्त्रितम्।
नित्यमेव महाभाग प्रभावं तस्य वै श्रृणु।।५०।।

जो इस प्रकार के मन्त्र से अभिमन्त्रितवस्त्र को चद्दर के रूप में नित्यधारण करता है, हे महाभाग ! तुम उसके प्रभाव के विषय में सुनो।।५०।।

न तस्य देहे शस्त्राणि प्रवेक्ष्यन्ति कदाचन।
नाग्निर्दहति तत्कायं नापः संक्लेदयन्ति च।।५१।।

उसके शरीर में कोई शस्त्र न तो कभी प्रवेश करते हैं, न अग्नि उसके शरीर को जलाती है और न ही जल उसके शरीर को भिगोता है।

राक्षसाश्च पिशाचाश्च भूताद्या ये तु हिंसकाः।।
ते तं दृष्ट्वा महाभागं भुवं गच्छन्ति वै भिया।।५२।।

राक्षस, भूत, पिशाचादि जो हिंसकतत्त्व हैं, वे उस महाभागसाधक को देखकर, भयवश धरती में समा जाते हैं।।५२।।

गच्छेदवारितः सोऽपि सर्वत्र साधकोत्तमः।
वशीकरोति देवांश्च नृपानन्यांश्च योषितः।।५३।।

वह उत्तम साधक भी निर्बाधरूप से सब स्थानों पर विचरण करता है। वह देवताओं को, राजाओं को तथा अन्यों को और स्त्रियों को वश में कर लेता है।।५३।।

उत्सहेद् यदि मेधावी वाग्मी राजा च वै भवेत्।।५४।।
चिरजीवी महाभागो धनधान्यसमृद्धिमान्।
कविः प्रज्ञासमायुक्तः सोऽभेद्यो जायतेऽरिभिः।।५५।।

वह साहस करे तो तो मेधावी, वक्ता और राजा होता है। वह महाभाग्यवान्, चिरजीवी, धन और धान्य से समृद्धिमान् होता है। वह कवि, प्रकृष्ट-बुद्धि से युक्त एवं शत्रुओं के लिए अभेद्य होता है।।५४-५५।।

यस्मिन् पुरे स निवसेद् वज्रपातो न तत्र वै ।
रसः शरीरं शस्त्राणि दृढहस्तोज्झितान्यपि ।।५६।।
एतं न घ्नन्ति सततं जयः सर्वत्र भैरव ।
आराधयन्ति सततं तस्य सर्वत्र भैरव ।।५७।।

हे भैरव ! जिस नगर में वह साधक निवास करता है, वहाँ कभी वज्रपात नहीं होता। विष तथा दृढ़ हाथों से फेंके गये (चलाये गये) शस्त्र भी उसके शरीर को नष्ट नहीं करते, वह सब जगह जय प्राप्त करता है। सब जगह सभी निरन्तर उसकी आराधना करते हैं।।५६-५७।।

नाधयो व्याधयस्तस्य जायन्ते तु कदाचन ।
देवीपुत्रः स मतिमान् मृतो मोक्षमवाप्नुयात् ।।५८।।

उसको किसी प्रकार के मानसिक या शारीरिक रोग कभी नहीं होते। वह बुद्धिमान्, देवीपुत्र (देवी को पुत्रवत् प्रिय) साधक, मरने पर मोक्ष को प्राप्त करता है।।५८।।

यन्त्रता स्वामिना यन्त्रं या दधाति पतिव्रता ।
पुत्रैश्वर्यमवाप्नोति दीर्घायुः सा वधूर्भवेत् ।।५९।।

अपने पति द्वारा यन्त्रित (बनाये) इस यन्त्र को जो पतिव्रतास्त्री धारण करती है, वह उत्तमवधू, दीर्घायु तथा पुत्र एवं ऐश्वर्य से युक्त होती है।।५९।।

प्रत्येकमेकं संहत्यावर्धनासहितेन च ।
क्रमाद् विंशतिमंत्राणि कथितानि मयेह वै ।।६०।।

एक-एक को संहित कर आवर्धन के सहित, मेरे द्वारा इस समय तुम दोनों से, बीसमन्त्रों का वर्णन किया गया।।६०।।

तानि प्रत्येकतो बुद्ध्वा यो न्यसेत् सर्वदा हृदि ।
लिखित्वा सर्वयंत्राणि बिभृयाद्योऽथवा गले ।।६१।।
देवेन्द्रो जायते सोऽत्र प्रभावेणेह भूतले ।
पूर्वोक्तानि समस्तानि फलान्याप्नोति तत्क्षणात् ।
पिहितः सर्वलोकांस्त्रीन्नित्यमेव प्रपश्यति ।।६२।।

उनमें से एक-एक को भी जानकर जो सर्वदा अपने हृदय में स्थापित करता है अथवा सभी यन्त्रों को लिखकर जो गले में धारण करता है, वह इस धरती पर प्रभाव की दृष्टि से देवराजइन्द्र हो जाता है। वह पहले कहे गये सभी फलों को तत्क्षण प्राप्त कर लेता है। सभी लोकों की गुप्त स्त्रियों (देवियों) को वह प्रत्यक्ष देखता है।।६१-६२।।

एवं सार्ध यंत्रवर्गैः समस्तै-
रष्टाभिर्यत् पूर्वमुक्तं सहस्रम् ।
शुक्ले वस्त्रे संलिखित्वा स्वदेहे
धृत्वा नित्यं प्राप्नुयाद् वै समस्तम् ।।६३।।

इस प्रकार हजारों यन्त्रों में से जो आठयन्त्र पहले बताये गये हैं, उन्हें श्वेतवस्त्र पर लिखकर, अपने शरीर पर नित्य धारण करके सब कुछ प्राप्त किया जा सकता है।।६३।।

यः क्षत्रजातिर्हृदये स कुर्यात्
संग्रामकाले कवचोष्टधाम्नि ।
मंत्राक्षराण्यादिकृतानि देव्या
अष्टौ बहिर्गात्रविशेषतश्च ।।६४।।

जो क्षत्रिय, इन आठों यन्त्रों को युद्धकाल में अपने हृदय पर धारण कर देवी के यन्त्राक्षरों को अपने बाहरी अङ्गों में विशेषरूप से धारण करता है ।।६४।।

गले हरिं वक्षसि वै लिखेद् विधिं
स्तनद्वये पुत्रयुतं महेश्वरम् ।
बाह्वंगसन्ध्योश्च हरिं च वैष्णवीं
बाह्वोस्तु लक्ष्मीं च सरस्वतीं च ।।६५।।

इस कार्य में वह गले पर हरि (विष्णु), वक्षस्थल पर ब्रह्मा, दोनों स्तनों पर पुत्र गणेश के सहित शिव का नाम (बीज मन्त्र) लिखे, भुजाओं और अङ्गों की सन्धियों में क्रमशः विष्णु और वैष्णवी का तथा दोनों भुजाओं पर लक्ष्मी और सरस्वती का मन्त्र लिखे ।।६५।।

एवं रणाष्टाङ्गमिदं विधाय
गात्रे सवर्मण्यनुचिन्तयेच्छिवाम् ।
लिखेल्ललाटे तिलकान्तरे नरः
समस्तमंत्राक्षरयंत्रमुत्तमम् ।।६६।।

इस प्रकार से अष्टाङ्ग का विधान कर, रण में साधक अपने शरीर को कवच-युक्त मानकर शिवा का अनुचिन्तन करे। उस समय वह मनुष्य तिलक के मध्य में सभी मन्त्राक्षरों से युक्त, उत्तममन्त्र ललाट पर लिखे ।।६६।।

ततो जपेदष्टधा तु पाणिं दत्त्वाष्टधामसु च ।
वैष्णवीतंत्रमंत्रं तु ततो गच्छेद्रणाजिरम् ।।६७।।

तब आठस्थानों पर हाथ रखकर, वैष्णवीतन्त्र में वर्णितमन्त्र का आठ बार जपकरके वह क्षत्रिय, रणभूमि में जाये ।।६७।।

स तु बीरो मम समः संग्रामेषु च जायते ।
तृणानीव परास्त्राणि जायन्तेऽग्नौ तथात्मनि ।।६८।।

इस प्रकार से सुरक्षित वह वीर, संग्राम में मेरे (शिव के) समान हो जाता है। उसके प्रति चलाये गये, शत्रुओं के अस्त्र, अग्नि में फेंके गये तृण के समान नष्ट हो जाते हैं॥६८॥

विनिःसरन्ति रिपवो याचका धनिनो धनम्।
सिंहाग्रयान्नरशार्दूलो वीर्यवान् बलवान् भवेत्॥६९॥

शत्रु उससे और दूर हट जाते हैं तथा याचक धन से सम्पन्न हो जाते हैं। वह नरशार्दूल, सिंहों (वीरों) में अग्रणी हो वीर्यवान्, बलवान् हो जाता है॥६९॥

इदं रहस्यं कथितं कामाख्यायास्तु भैरव।
वैष्णव्यासतंत्रमुख्येषु त्रिपुरायास्ततः शृणु॥७०॥

हे भैरव! यह कामाख्या देवी का रहस्य तुमसे कहा गया। अब वैष्णवीतन्त्रों में मुख्य त्रिपुरा के रहस्य को सुनो॥७०॥

तस्यास्तु सर्वमंत्राणि त्रयोदशयुतानि वै।
विंशतिं तु सहस्राणां तत्राद्यं वाग्भवं स्मृतम्॥७१॥

उसके सभी मन्त्रों की संख्या तैंतिस हजार है जिनमें प्रथम वाग्भव कहा गया है॥७१॥

द्वितीयं कामराजाख्यं मोहनं च तृतीयकम्।
आम्रेडितं वाग्भवं तु चतुर्थं परिकीर्त्तितम्॥७२॥

दूसरा कामराज नामक (क्लीं), तीसरा मोहन, दो बार उच्चारित वाग्भव चतुर्थ कहा गया है॥७२॥

नेत्रबीजं द्वितीयं तु द्विरुक्तं वाग्भवं तथा।
आद्यं तत्पञ्चमं प्रोक्तं चतुर्भिरपि चाक्षरैः॥७३॥

पहले दोबार वाग्भवबीज तब द्वितीय नेत्रबीज यह चार अक्षरों सहित पाँचवाँ मन्त्र कहा गया है॥७३॥

नेत्रबीजं द्वितीयं तु प्रथमं परिकीर्त्तितम्।
द्वितीयं कामबीजं तु तृतीयं वाग्भवं तथा॥७४॥
एभिस्त्रिभिस्तु यं मंत्रं तत् षष्टं परिकीर्त्तितम्।
नेत्रबीजं द्वितीयं तु वाग्भवं तेन सप्तमम्॥७५॥
तदेवं वाग्भवाद्यं तु अष्टमं परिकीर्त्तितम्।
वाग्भवं कामबीजं तु नेत्राभ्यां नवमं स्मृतम्॥७६॥

द्वितीयनेत्रबीज प्रथमवर्ण, कामबीज द्वितीयवर्ण और वाग्भव तृतीयवर्ण इन तीनों वर्णों के मिलने से जो मन्त्र बनता है वह छठाँ कहा गया है। पहले नेत्रबीज तत्पश्चात् वाग्भव मिलकर सप्तम, वही वाग्भव के पहले कर देने पर आठवाँ

मन्त्र कहा गया है। वाग्भव, कामबीज और दो नेत्रों के योग से नौवाँ कहा गया है॥७४-७६॥

कामबीजं तथैवाद्यं दशमं चैव मोहनम् ।
एकादशमिदं प्रोक्तं डामराद्यं तु वाग्भवम् ॥७७॥

उसी प्रकार जब कामबीज को आगे कर मोहन का प्रयोग करते हैं तो दसवाँ और डामर को आगे कर वाग्भव का प्रयोग करते हैं तो ग्यारहवाँ मन्त्र बनता है॥७७॥

द्वादशं कीर्तितं मंत्रं शेषतस्त्रैपुरं महः ।
तन्महस्त्रैपुरं मंत्रं शृणुष्वैकमनास्त्विदम् ॥७८॥

उस महस्त्रैपुरमन्त्र को एकाग्रमन से सुनो। यही महः के साथ बारहवाँमन्त्र और महस्त्रैपुरमन्त्र तेरहवाँमन्त्र कहा गया है॥७८॥

प्रान्तादिस्तस्य चाप्यादिर्वह्निर्वाग्भवसन्धितः ।
आद्यं त्रिपुरभैरव्या बीजमाद्यं प्रकीर्तितम् ॥७९॥

अन्तिम वर्ण के पहले से पहले का वर्ण अग्नियुक्त वाग्भव से युक्त होने पर त्रिपुरभैरवी का प्रथम बीज कहा गया है॥७९॥

उपान्तश्च तदादिश्च वह्निशेषस्वरस्तथा ।
चतुर्थस्वरबिन्द्विन्दुयुताश्चैतत् द्वितीयकम् ॥८०॥

उसी प्रकार अन्त से पहला वर्ण ह, वह्नि बीज र तथा चन्द्रबिन्दु युक्त चतुर्थ स्वर ई से युक्त हो त्रिपुरभैरवी का द्वितीयमन्त्र ह्रीं कहा गया है॥८०॥

उपान्तश्च तदादिश्च वह्निशेषस्वरस्तथा ।
समाप्तिर्बिन्दुसहिता सहितस्तु तृतीयकः ॥८१॥
एतत् तत्त्वं विजानाति यो नरो भुवि भूमणिः ।
सिद्धविद्याधरेभ्यस्तु सोऽधिकस्तत्समो भवेत् ॥८२॥

उसी प्रकार उपान्त के आदि का वर्ण स् अग्नि और अन्तिम स्वर औ के साथ चन्द्रबिन्दु तथा विसर्ग से युक्त हो त्रिपुरा का तृतीयमन्त्र स्त्रौं बनता है। इस पृथ्वी पर इस रहस्य को जो मनुष्य जानता है, वह पृथ्वी के मणिस्वरूपश्रेष्ठ, सिद्धविद्याधरों से भी अधिक श्रेष्ठ हो जाता है॥८१-८२॥

एते त्रयोदश प्रोक्ता मंत्रा मंत्रेषु चोज्ज्वलाः ।
विंशतेस्तु सहस्रेभ्यः पराश्चैते प्रकीर्तिताः ॥८३॥

ये ऊपर बताये गये तेरहमन्त्र, मन्त्रों में अत्यन्त उज्ज्वलमन्त्र हैं। बीसहजार मन्त्रों में ये श्रेष्ठमन्त्र, बताये गये हैं॥८३॥

विंशतेस्तु सहस्राणामाद्यमेतत् प्रकीर्तितम् ।
त्रिपुरायास्तु बालायाः मंत्रं तच्छृणु भैरव ॥८४॥

बीसहजार मन्त्रों में ये प्रारम्भ के कहे गये हैं । हे भैरव ! अब त्रिपुरा-बाला के मन्त्रों को सुनो।।८४।।

वाग्भवं कामराजस्तु उपान्तादिः सबिन्दुकः ।
शेषस्वरसमाप्तिभ्यां मंत्रमेतत् प्रकीर्तितम् ।।८५।।

वाग्भव, कामराज, उपान्त ह के आदि का व्यञ्जन स, विसर्ग, बिन्दु तथा अन्तिम स्वर औ से युक्त हो बना सौः, यह ऐं क्लीं सौः मन्त्र कहा गया है।।८५।।

एषा तु त्रिपुरा बाला मध्या प्रोक्ता पुरैव हि ।
शेषा तेजस्विनी प्रोक्ता येयं त्रिपुरभैरवी ।।८६।।

यह त्रिपुराबाला कही गई, मध्या, पहले ही कही जा चुकी है । शेष (अन्तिम) तेजस्विनी कही गई है यही त्रिपुरभैरवी भी है ।।८६।।

मध्यायाः पूजनं प्रोक्तं बालायाः शृणु साम्प्रतम् ।
तथा त्रिपुरभैरव्याः सर्वसिद्धिप्रदायकम् ।।८७।।

मध्या का पूजन कहा जा चुका है अब बाला का तथा त्रिपुरभैरवी का सब प्रकार की सिद्धि देने वाला, पूजनविधान सुनो ।।८७।।

विभिद्य शक्त्या शम्भुं तु शक्तिं चापि विभेदयेत् ।
शम्भवे वर्णषट्कोणं केशरं तत्र संलिखेत् ।।८८।।
मध्यायास्त्रिपुरायास्तु यादृशे द्वारमण्डले ।
तादृशेऽत्रापि कर्तव्यं कोणेषु लिखितं तथा ।।८९।।

शक्तित्रिकोण (अधोमुखीत्रिकोण) से शम्भु (ऊर्ध्वमुखीत्रिकोण को भेद कर षट्कोण के केशर में छः वर्णो को लिखे । मध्यात्रिपुरा के पूजन में जिस प्रकार का मण्डल एवं द्वारदेश बताया गया है, वैसा ही यहाँ भी करना चाहिये एवं यन्त्र में लिखना चाहिये।।८८-८९।।

पापोत्सारणकर्माणि भूम्यादीनां विशोधनम् ।
पूर्वमुत्तरतंत्रोक्तं त्रिपुरापीठभाषितम् ।।९०।।

पहले बताये गये उत्तरतन्त्र के त्रिपुरापीठ के सम्बन्ध में वर्णितविधि के अनुसार पापोत्सारण, भूमिशोधन आदि कर्म करना चाहिये।।९०।।

कामाख्यापूजने प्रोक्तं सर्वंकुर्यात् तु साधकः ।
दहनप्लवनादीनि प्रतिपत्तिं च पात्रके ।।९१।।

साधक कामाख्यापूजनप्रसङ्ग में बतायी गई विधि से दहन, प्लवन, पात्रादि की प्रतिपत्ति आदि सभी कार्य करे ।।९१।।

सर्वं तु पूर्ववत् कार्यं कामाख्यापूजने यथा ।
कृत्वाऽत्र देहन्यासं तु मंत्रवर्णैस्तथाक्षरैः ।
सर्वैः स्वरैस्तथा काद्यैस्ततो रूपं विचिन्तयेत् ।।९२।।

कामाख्यापूजनक्रम में जैसा बताया गया है वैसा ही सब कुछ पूर्वोक्तविधि से करना चाहिये। तत्पश्चात् मन्त्र में प्रयुक्त वर्णों तथा अक्षरों से, सभी स्वरों तथा क आदि व्यञ्जनों से देहन्यास करके, देवी के स्वरूप का चिन्तन करे ॥९२॥

॥ त्रिपुर भैरवी ध्यान ॥

चतुर्भुजां रक्तवर्णां रक्तवस्त्रविभूषिताम् ॥९३॥
दक्षिणोर्ध्वे स्रजं चाधो बिभ्रतीं पुस्तकोत्तमम्।
अभयं वामहस्ताभ्यां वरं च दधतीं तथा ॥९४॥

वे चारभुजाओं से युक्त लालरङ्ग की हैं, वे लालरङ्ग के वस्त्रों से विभूषित हैं। उन्होंने अपनी दाहिनी ओर के ऊपरी हाथ में माला, निचले हाथ में उत्तम पुस्तक, बाये हाथों में क्रमशः अभय तथा वरद मुद्रायें धारण कर रखा है॥९३-९४॥

सहस्रसूर्यसंकाशं त्रिनेत्रां गजगामिनीम्।
पीनतुङ्गस्तनयुगां सितप्रेतासनस्थिताम् ॥९५॥

वे हजारों सूर्य के समानआभावाली, तीन नेत्रों से सुशोभित, हाथी के समान गमन करने वाली हैं। उनके स्तन, पुष्ट और उठे हुए हैं। वे श्वेत-प्रेत के आसन पर विराजमान हैं ॥९५॥

स्मितप्रसन्नवदनां सर्वालंकारसंयुताम्।
तिसृभिर्मुण्डमालाभिः शिरोवक्षः कटीषु च।
त्रिगुणां त्रिगुणीभूतैः प्रत्येकं परिभूषिताम् ॥९६॥

वे मुस्कुराते हुये प्रसन्नमुखवाली, सभी प्रकार के आभूषणों से सुशोभित हैं। उन्होंने अपने सिर, वक्षस्थल और कमर में तीन मुण्डमालायें धारण किया है। जो एक-एक तीन गुणों से युक्त तथा तिगुनी की गई हैं॥९६॥

मदिराघूर्णनयनां रक्तदन्तच्छदद्वयाम्।
चिन्तयेद् वरदां देवीमेवं त्रिपुरभैरवीम् ॥९७॥

उनके नेत्र मदिरापान से घूर्णित (झूमते हुए) तथा दोनों ओठ लालरङ्ग के हैं, ऐसी वरदायिनी त्रिपुरभैरवी देवी का ध्यान करे ॥९७॥

बालायास्त्रिपुरायास्तु रूपं पूर्व प्रपूजने।
उक्तः क्रमः पीठयोगे तंत्रादि शृणु भैरव ॥९८॥

हे भैरव! बाला और त्रिपुरा का ध्यान एवं पूजन तुमसे कहा। अब पीठ, क्रम तन्त्र आदि को सुनो ॥९८॥

पुष्पबाणांस्तु पाशं च धत्ते पौष्पं शरासनम्।
पाशं च कुणपारूढा सा बाला त्रिपुरा स्मृता ॥९९॥

बालात्रिपुरा पुष्पों से बना बाण, पुष्पों का ही बना हुआ धनुष और पाश धारण की हुई तथा कुणप (शव) पर आरूढ़ बताई गई हैं॥९९॥

मंत्रे त्रिपुरे देवीं विद्महे पदमादितः ।
कामेश्वरीं धीमहि त्वां तन्नः क्लिन्ने प्रचोदयात् ।।१००।।
एषा त्रिपुरगायत्रीत्यावाहनविशेषतः ।
स्नानाद्यैः पूजयेत् सम्यग् बालामन्यां च भैरवीम् ।।१०१।।

उसके मन्त्रों में **त्रिपुरेदेवीं विद्महे** पद प्रारम्भ में, **कामेश्वरीं धीमहि त्वां क्लिन्ने प्रचोदयात्** शब्दों का प्रयोग करने पर, **त्रिपुरेदेवीं विद्महे कामेश्वरीं धीमहि त्वां तन्नः क्लिन्ने प्रचोदयात्** त्रिपुरा गायत्रीमन्त्र बनता है। इसको उपयोग विशेषकर आवाहन में होता है। हे वेताल और भैरव ! स्नानादि से भलीभाँति बाला तथा अन्य त्रिपुरभैरवी का पूजन करना चाहिये।।१००-१०१।।

अस्याः क्रमे विशेषो यो न्यासे चोत्तरकर्मणि ।
तत् सर्वं सह मंत्रौघैः श्रृणु वेतालभैरव ।।१०२।।

हे वेताल और भैरव ! इस पूजनक्रम में उत्तरकर्म और न्यास आदि में जो विशेष है, उन सबको सम्बन्धितमन्त्रसमुदाय के सहित सुनो ।।१०२।।

ब्राह्मे मुहूर्ते उत्थाय चिन्तयेत् परमं गुरुम् ।
ततोऽनु स्वगुरुं शुद्धं ततस्त्रिपुरभैरवीम् ।।१०३।।

सर्वप्रथम ब्राह्ममुहूर्त्त में उठकर परमगुरु का चिन्तन (ध्यान) करे तत्पश्चात् अपने गुरु के शुद्धस्वरूप का, तब त्रिपुरभैरवी का ध्यान करे ।।१०३।।

चतुर्भुजां शुक्लवर्णां वरदाभयपुस्तकाम् ।।१०४।।
अक्षमालां च क्रमतो धत्ते वामे च दक्षिणे ।
सुवर्णरत्नखचिते संस्थितां प्रवरासने ।।१०५।।
सौवर्णमुत्तरीयं तु धत्ते सौवर्णकुण्डले ।
स्वगुरुं वर्णतो ध्यानात् तथैव परिचिन्तयेत् ।।१०६।।

जो चारभुजाओंवाली तथा श्वेतवर्णोंवाली हैं, जिन्होंने अपनी भुजाओं में बायें और दक्षिण के क्रम से क्रमशः वरद एवं अभय मुद्रायें, पुस्तक और रुद्राक्ष माला धारण की हुई हैं । जो सोने और रत्न जड़े, श्रेष्ठसिंहासन पर विराजमान हैं । जिन्होंने सोने का दुपट्टा, सोने के कुण्डल धारण किया है। स्वर्णिमवर्ण के अपने गुरु का उसी प्रकार ध्यान करे।।१०४-१०६।।

भैरवीं चिन्तयित्वा तु तत उत्थाय चाचरेत् ।
मैत्रमाचमनं चैव दन्तानां शोधनं तथा ।।१०७।।

उपर्युक्त विधि से भैरवी (त्रिपुरभैरवी) का चिन्तन कर, मैत्र (शौच) और आचमन तथा दाँतों को शुद्ध करने का कार्य करना चाहिये ।।१०७।।

प्रातःस्नानं ततः कुर्यात् त्रैपुरं योजयन् क्रमम् ।
सर्वत्र देवीमंत्रेषु वैदिकेष्वपि भैरवीम् ।।१०८।।

तब प्रातः काल स्नान करके तीनों, पुरों के समायोजन के क्रम में देवी के मन्त्रों और वैदिकमन्त्रों से भैरवी का सब जगह पूजन करे॥१०८॥

त्रिपुरां चिन्तयेन्नित्यं देवमंत्रेषु च क्रमात् ।
त्रिभिस्तु त्रिपुराबीजैस्त्रिधा मज्जनमाचरेत् ।।१०९।।

त्रिपुरादेवी का नित्यचिन्तन करता हुआ देवमन्त्रों में से, तीन त्रिपुराबीजों से तीन बार स्नान करे॥१०९॥

देवानामपि सर्वेषु भैरवेषु पदं सदा ।
कुर्याद् विशेषणं नित्यं नोच्चार्यं निर्विशेषणम् ।।११०।।

देवताओं का भी सबमें भैरवपद का विशेषण लगाकर सदा नित्य उच्चारण करना चाहिये, बिना विशेषण लगाये नहीं ॥११०॥

आपः पुनन्तु पृथिवीमुक्त्वा त्रिपुरभैरवीम् ।
कुर्यादाचमनं विप्रो द्रुपदायां तथाचरेत् ।।१११।।

आपः पुनन्तु पृथिवीं..... मन्त्र बोलकर तथा **द्रुपदा.....** से ब्राह्मण (साधक) त्रिपुराभैरवी का आचमन करे ॥१११॥

इदं विष्णुर्भैरवस्तु विचक्रम इतीरितम् ।
मृदालम्भनकृत्येषु नित्यमेवाप्युदीरयेत् ।।११२।।

नित्य मृतिकाग्रहण मन्त्रों में **इदं विष्णु भैरव विचक्रमे.....** मन्त्र का प्रयोग करे॥११२॥

गायत्रीं त्रिपुराद्यां तु भैरवीमाह्वयेच्छिवाम् ।
मार्तण्डभैरवायेति सूर्यायार्घ्यं निवेदयेत् ।।११३।।

सम्बन्धितगायत्री से त्रिपुराआद्याभैरवी शिवा का आवाहन करे तथा मार्तण्डभैरवाय कहकर सूर्य को अर्घ्य प्रदान करे ॥११३॥

उदुत्यं जातवेदसं देवं वहन्ति केतवः ।
दृशे विश्वाय सूर्यं शेषे भैरवमीरयेत् ।।११४।।

तब **उदुत्यं जात वेदसं देवं वहन्ति केतवः दृशे विश्वाय सूर्यं** के अन्त में भैरव शब्द कहे ॥११४॥

तर्पणादौ प्रयुंजीत तृप्यतां ब्रह्मभैरवः ।
आवाहने स्वयं पितृन् भैरवानिति कीर्तयेत् ।।११५।।

तर्पण आदि में **तृप्यतां ब्रह्मभैरवः** मन्त्र का प्रयोग करे। आवाहन में स्वयं पितरों को भैरवान् कहे॥११५॥

तृप्यतां भैरवीमातः पितर्भैरव तृप्यताम् ।
आदौ च त्रिपुरापूर्वं तर्पणेऽपि प्रयोजयेत् ।।११६।।

भैरवीमातः तृप्यताम्, भैरवपितः तृप्यताम् ऐसा कहे। देवी तर्पण के प्रारम्भ में त्रिपुर शब्द का प्रयोग करे ॥११६॥

ज्योतिष्टोमाश्वमेधादौ यत्र यं यं प्रपूजयेत् ।
तत्र भैरवरूपेण देवीमपि च भैरवीम् ॥११७॥

ज्योतिष्टोम अश्वमेधादि यज्ञों में भी जो जो प्रयोग करना हो उसमें देवताओं का भैरवरूप में एवं देवियों का भैरवीरूप में पूजन करे ॥११७॥

मदिरापात्रमालोक्य रक्तवस्त्रां स्त्रियं तथा ।
शिरो नरस्य दृष्टा तु भैरवीं चिन्तयेद् द्विजः ॥११८॥

मदिरापात्र तथा लालवस्त्रवालीस्त्री एवं मनुष्य के शिर (कपाल) को देखकर द्विज (साधक) भैरवी का चिन्तन करे॥११८॥

स्त्रियो दृष्ट्वा ह्यथैकत्र युवतीः सुमनोहराः ।
ताभ्यस्त्रिपुरभैरव्याः प्रीतये वन्दनादिकम् ।
दद्याद् भक्त्या तु मनसा चिन्तयन्नथ भैरवीम् ॥११९॥

सुन्दरीयुवती या एक साथ बहुत सी सुन्दर स्त्रियों को एकत्र देखकर उन्हें मन से भैरवी के रूप में उनका चिन्तन करता हुआ त्रिपुरभैरवी की प्रसन्नता के लिए उनके प्रति वन्दनादि करे॥११९॥

भैरवीं प्रतिगृह्णामि भैरवोऽहं प्रतिग्रही ।
कन्यायां भावयेद् धीमांस्त्रिपुरायाः प्रपूजकः ॥१२०॥

मैं भैरवी का प्रतिग्रह करता हूँ और मैं स्वयं भैरवरूप से ग्रहण करने वाला हूँ, त्रिपुरा का पूजक, बुद्धिमान् साधक कन्या के प्रति इस प्रकार की भावना करे॥१२०॥

भैरवाय ददाम्यद्य देवीं त्रिपुरभैरवीम् ।
इतीरयेत् प्रदाने तु कन्यायास्त्रिपुरां ततः ॥१२१॥

आज मैं देवी त्रिपुरभैरवी को भैरव को प्रदान करता हूँ। कन्या रूपिणी, त्रिपुरा को पूजोपचार प्रदान करते हुए ऐसा कहे॥१२१॥

तस्याः पूजोपकरणपात्राद्यं नान्यपूजने ।
आसनाद्यं च सततं नोपयोज्यं कदाचन ॥१२२॥

उसकी पूजा में जो आसन-पात्र आदि पूजा-उपकरण, नित्य प्रयोग किये जायँ उनका किसी दूसरे के पूजन में प्रयोग नहीं करना चाहिये॥१२२॥

सकृत् तु दापयेदन्यैर्मदिरां साधको द्विजः ॥१२३॥
शूद्रादयस्तु सततं ददुरासवमुत्तमम् ।
एवं तु वामभावेन यजेत् त्रिपुरभैरवीम् ॥१२४॥

जो साधक द्विज है, केवल एक बार अन्यों से मदिरा दिला दे।

शूद्रादि उत्तम आसव निरन्तर देवें। इस भाँति वामभाव से त्रिपुरभैरवी का पूजन करे॥१२३-१२४॥

बालां तु वामदाक्षिण्यमार्गाभ्यामपि पूजयेत्।
श्मशानभैरवीं देवीमुग्रतारां तथैव च ॥१२५॥
उच्छिष्टभैरवीं चण्डीं तथा त्रिपुरभैरवीम्।
एतास्तु वामभावेन पूज्या दक्षिणतां विना ॥१२६॥

बाला देवी का वाम और दक्षिण दोनों मार्गों से पूजन करे। श्मशानभैरवी, देवी-उग्रतारा, उच्छिष्टभैरवी, चण्डी तथा त्रिपुरभैरवी का पूजन, दक्षिणभाव छोड़कर, मात्र वामभाव से ही करे ॥१२५-१२६॥

ऋषीन् देवान् पितृंश्चैव मनुष्यान् भूतसञ्चयान्।
योजयेत् पंचभिर्यज्ञैर्ऋणानि परिशोधयेत् ॥१२७॥

ऋषियों, देवताओं, पितरों, मनुष्यों, प्राणीसमूह सम्बन्धी ऋण का शोधन बलि-वैश्वादि पञ्चयज्ञों से करे॥१२७॥

विधिवत् स्नानदानाभ्यां कुर्वन् यद्विधिपूजनम्।
क्रियते सरहस्यं तु तद्दाक्षिण्यमिहोच्यते ॥१२८॥

विधिपूर्वक स्नान-दान-आदि द्वारा, तत्त्वज्ञानपूर्वक, जो विधि के अनुसार पूजनकर्म किया जाता है उसे दाक्षिण्य कहा जाता है॥१२८॥

सर्वे च पितृदेवादौ यस्माद् भवति दक्षिणः।
देवीच दक्षिणा यस्मात् तस्माद् दक्षिण उच्यते ॥१२९॥

सभी देवगण एवं पितृगण दक्षिणभाग में स्थित रहते हैं और देवी भी दक्षिण में ही स्थित रहती हैं, इसीलिए दक्षिण कहा जाता है ॥१२९॥

या पुनः पूज्यमाना तु देवादीनां च पूर्वतः।
यज्ञभागं स्वयं धत्ते सा वामा तु प्रकीर्तिता ॥१३०॥

जो देवता आदि द्वारा पहले की भाँति पुनः पूजी जाती हैं, जो स्वयं यज्ञभाग को धारण करती हैं, वे ही वामा कही गई हैं॥१३०॥

पूजकोऽपि भवेद् वामस्तत्रैव सततं सुत।
पंचयज्ञान् न वा कुर्याद् यद् वा वाम्यप्रपूजने ॥१३१॥

हे पुत्र ! पूजक भी तभी वाममार्गी हो जाता है जब वह अपनी वामपूजा में बलि-वैश्वादिपञ्चयज्ञों को नित्य नहीं करता ॥१३१॥

अन्यस्य पूजाभागं हि यतो गृह्णाति वामिका।
यत्पूजयेद्वामभावैर्न तत् स्यादृणशोधनम्।
पितृदेवनरादीनां जायते च कदाचन ॥१३२॥

इसमें अन्य परकीय द्वारा समर्पित पूजाभाग को वामिकाग्रहण करती है। वाम भाव से जो पूजा की जाती है, उससे देव-पितृ अदि का ऋण-शोधन कभी भी नहीं होता।।१३२।।

सोऽभ्यस्य त्रिपुरायोगं तेन योगेन संयुतः ।।१३३।।
जीयते यदि सुप्राज्ञस्तदा मोक्षमवाप्नुयात् ।
स च मोक्षश्चिरेणैव जायतेऽत्र पुनः पुनः ।।१३४।।

उस वाम-मार्ग का अभ्यास, त्रिपुरायोग में करके, उस योग से युक्त हो सुप्राज्ञ, साधक जीवन-यापन कर, मोक्ष को प्राप्त करता है । वह मोक्ष बार-बार के यत्न के बाद दीर्घकाल में प्राप्त होता है।।१३३-१३४।।

ऋणशोधनजैः पापैराक्रान्तश्चैव भैरव ।
इह लोके सुखश्चैर्ययुक्तः सर्वत्र वल्लभः ।।१३५।।

हे भैरव ! वह ऋणशोधन से उत्पन्न पापों से आक्रान्त होते हुये भी इस लोक के सुखों और ऐश्वर्य से युक्त हो, सर्वत्र प्रिय हो जाता है ।।१३५।।

मदनोपमकान्तेन शरीरेण विराजता ।
सराष्ट्रकं च राजानं वशीकृत्य समन्ततः ।।१३६।।
मोहयन् वनिताः सर्वाः सर्वाश्च मदविव्हलाः ।
सिंहान् व्याघ्रान् तरक्षूंश्च भूतप्रेतपिशाचकान् ।
वशीकुर्वन् विचरति वायुवेगोद्यतस्ततः ।।१३७।।

वह कामदेव के समान सुन्दरशरीर से विराजमान हो, अपने-अपने देश (राज्य) के सहित सब राजाओं को वश में कर लेता है । वही सभी स्त्रियों को मद से विह्वल कर, मोहित कर, सिंह, व्याघ्र, लकड़बघ्घा, भूत-प्रेत, पिशाच आदि को अपने वश में करता हुआ, वायुवेग से इधर-ऊधर विचरण करता है।।१३६-१३७।।

बालां वा त्रिपुरां देवीं मध्यां वाप्यथ भैरवीम् ।
यो जयेत् परया भक्त्या यश्च बाणोपमाकृतिः ।।१३८।।
कामेश्वरीं तु कामाख्यां पूजयेत् तु यथेच्छया ।
दाक्षिण्याद् वामभावाद् वा सर्वथा सिद्धिमाप्नुयात् ।।१३९।।

जो बाण के समान आकृति वाला अर्थात् तीक्ष्णबुद्धिसाधक, बाला, त्रिपुरा, मध्या, भैरवी या कामाख्या की इच्छानुसार, परमभक्ति से वाम या दाक्षिण्यभाव से, पूजन करता है, वह सब प्रकार की सिद्धि प्राप्त करता है।।१३८-१३९।।

महामायां शारदां च शैलपुत्री तथैव च ।
यथा तथा प्रकारेण दाक्षिण्यादेव पूजयेत् ।।१४०।।

महामाया, शारदा, शैलपुत्री का दाक्षिण्यभाव से ही यथोचितरूप से पूजन करना चाहिये।।१४०।।

यो दाक्षिण्यं विना भावं महामायां समर्चति ।
स पापः स्वर्गलोकेभ्यच्युतो भवति रोगधृक् ।।१४१।।

जो दाक्षिण्यभाव के बिना अन्यभाव से महामाया का पूजन करता है वह पापी स्वर्गलोक से पतित हो, रोगी होता है।।१४१।।

अन्यास्तु शिवदूत्याद्या देव्यो याः पूर्वमीरिताः ।
तास्तु वां पान्तु दाक्षिण्यात् पूजितव्यास्तु साधकैः ।।१४२।।

अन्य जो शिवदूती आदि देवियाँ पहले कही गई हैं, वे साधकों द्वारा दाक्षिण्य-भाव से पूजने योग्य हैं वे, सदैव तुम दोनों की रक्षा करें ।।१४२।।

किन्तु यः पूजको वामः सोऽन्यासां परिवर्जितः ।
सर्वासां पूजकः स्यात् तु दक्षिणस्तेन उत्तमः ।।१४३।।

जो वामभाव का पूजक होता है, वह अन्यों द्वारा परित्यक्त हो जाता है किन्तु दक्षिणभाव से पूजन करने वाला साधक, सब में श्रेष्ठ होता है।।१४३।।

अथ त्रिपुरभैरव्यां न्यासं च शृणु भैरव ।
येन वै न्यासमात्रेण देववज्जायते नरः ।।१४४।।

हे भैरव ! अब त्रिपुरभैरवी के उस न्यास को सुनो जिस न्यासमात्र के करने से ही मनुष्य, देववत् हो जाता है ।।१४४।।

भैरवीतंत्रमंत्रस्य ऋषिदक्षिण उच्यते ।।१४५।।
छन्दः पंक्तिः समाख्याता देवी त्रिपुरभैरवी ।
कामार्थयोः साधने च विनियोगः प्रकीर्तितः ।।१४६।।

भैरवीतन्त्र-मन्त्र के दक्षिण ऋषि, पंक्ति छन्द, त्रिपुरभैरवी देवी, काम और अर्थ साधन में विनियोग कहा गया है ।।१४५-१४६।।

हकारं विन्यसेन्नाभौ सकारं वस्तितो न्यसेत् ।
वकारं शेफे विन्यस्य एकारं च गुदे तथा ।।१४७।।

हकार का नाभि में, सकार का वस्ति में, लकार का शेफ (लिङ्ग) में, एकार का गुदा में न्यास करे ।।१४७।।

पुनरूर्वोस्तथैवाद्यं जानुयुग्मे द्वितीयकम् ।
तृतीयं जङ्घयोर्न्यस्य चतुर्थं पादयोर्न्यसेत् ।।१४८।।

पुनः प्रथममन्त्र से ऊरु, द्वितीयमन्त्र से जानु, तृतीयमन्त्र से टखनों में तथा चतुर्थमन्त्र से पैरों में न्यास करे ।।१४८।।

त्रिविधं विन्यसेद् देवं नाभ्यादेः पादसङ्गतम् ।
द्वितीयस्य तु बीजस्य आद्यं हृद्येव विन्यसेत् ।।१४९।।

तीन प्रकार के देव का नाभि से पैरों तक और द्वितीयमन्त्र के पहले बीज का हृदय में विशेषप्रकार से न्यास करे ।।१४९।।

वामे स्तने द्वितीयं तु तृतीयं दक्षिणे स्तने ।
चतुर्थमुदरे न्यस्य पंचमं पार्श्वयोर्न्यसेत् ।।१५०।।

बायेंस्तन में द्वितीयमन्त्र का, दाहिनेस्तन में तृतीयमन्त्र का, चौथेमन्त्र का उदर में न्यास कर, पाँचवें का पार्श्वभागों में न्यास करे ॥१५०॥

षष्ठं नाभौ परिन्यस्य न्यसेचापि त्रिधा त्रिधा ।
तृतीयस्य तु बीजस्य मूर्ध्नि चायं तु विन्यसेत् ।।१५१।।

छठेमन्त्र का नाभि में न्यास कर तृतीयमन्त्र के बीजमन्त्रों का मस्तक पर न्यास करे॥१५२॥

द्वितीयं न्यस्य केशान्ते तृतीयं वदने न्यसेत् ।
चतुर्थं हृदये न्यस्य यथा स्यात् तु त्रिधा त्रिधा ।।१५२।।

दूसरे का केश के अन्तिमभाग में न्यास कर तीसरे का मुख में न्यास करे। चौथे का हृदय में तीन-तीन बार न्यास करे ॥१५२॥

आद्याद्यं दक्षिणाङ्गुष्ठे द्वितीयं तर्जनीं पुनः ।
तृतीयं च मध्यमायामनामायां चतुर्थकम् ।।१५३।।

पहले के पहले बीजमन्त्र का दाहिने अँगूठे में, द्वितीय का तर्जनी में तीसरे का मध्यमा और चौथे का अनामिका में न्यास करे ॥१५३॥

तृतीयाद्यं कनिष्ठायां वामाङ्गुष्ठे द्वितीयकम् ।
तृतीयं वामतर्जन्यां चतुर्थ मध्यमातनौ ।।१५४।।

तीसरे के पहले का कनिष्ठा में दूसरे का बायें अँगूठे में, तीसरे का बायीं तर्जनी और चौथे का मध्यमा में न्यास करे ॥१५४॥

अनामायां पंचमं तु षष्ठं शेषे तु विन्यसेत् ।
एवं त्रिधा तु विन्यस्य तृतीयमथ बीजकम् ।।१५५।।

अनामिका में पाँचवें का छठें का शेष में न्यास करे इस प्रकार तृतीयबीज का तीन-तीन बार न्यास करे ॥१५५॥

उभयोर्हस्तयोः कृत्वा अङ्गुष्ठाद्यं युगं युगम् ।
तृतीयं बीजवर्णास्तु विन्यसेत् क्रमतो बुधः ।।१५६।।

इस प्रकार विद्वान्‌साधक, तृतीय मन्त्र के दो-दो बीजाक्षरों का क्रमशः दोनों हाथों के अंगुष्ठादि में न्यास करे॥१५६॥

पिण्डितं सर्वबीजं तु विन्यसेत् तु कनिष्ठयोः ।
आद्यं तु तलयोर्न्यस्य पृष्ठयोश्च द्वितीयकम् ।।१५७।।

पिण्डित सभी बीजों का कनिष्ठा में न्यास कर, पहले का हाथ के तल में न्यास करें, दूसरे का पीठ पर न्यास करे॥१५७॥

तालत्रयं ततो दत्त्वा तृतीयेन तु वेष्टनम् ।
कर्णयोश्चिबुके गण्डे मुखे दृङ्नासयोस्तथा ।।१५८।।
स्कन्धयोश्च कफोणौ च जठरे शिश्नमूर्धनी ।
पादयोः पार्श्वयोश्चैव हृदये स्तनयुग्मके ।
कण्ठदेशे च न्यस्तव्या मंत्रवर्णक्रमात् पुनः ।।१५९।।
लिङ्गे रत्यै नम इति वाग्भवाद्येन विन्यसेत् ।।१६०।।

तब तीन ताल देकर तृतीयमन्त्र से वेष्टन करे। कानों, ठुड्डी, गण्डस्थल, मुख, नेत्र, नासिकाछिद्रों, कन्धों, कुहनियों, पेट, शिश्न, मस्तक, पैरों, पार्श्वभागों, हृदय, दोनों स्तन तथा कण्ठदेश में मन्त्र के वर्णों का क्रमशः न्यास करे तत्पश्चात् लिङ्ग पर **रत्यै नमः** के साथ वाग्भवयुक्त बीज का न्यास करे।।१५८-१६०।।

ॐ क्लीं प्रीत्यै नम इति हृदये विन्यसेत् ततः ।
मनोभवायेति ततो भ्रुवोर्मध्ये तृतीयकम् ।
विन्यसेत् त्रिपुराबीजं सद्यो देवत्वसिद्धये ।।१६१।।

ॐ क्लीं प्रीत्यै नमः कह कर हृदय में न्यास करे तब शीघ्र देवत्व सिद्धिहेतु तृतीयत्रिपुरामन्त्र सहित **मनोभवाय नमः** कहकर दोनों भौहों के बीच न्यास करे।।१६१।।

ॐ ईं ईशानरूपाय ततो मनोभवाय वै ।
नम इत्यन्ततः प्रोक्तो मूर्ध्नीशानं न्यसेत् पुनः ।।१६२।।

ॐ ईं ईशानरूपायमनोभवाय नमः कहकर शिर पर ईशान का न्यास करे।।१६२।।

वक्त्रे तत्पुरुषं चापि बीजेन मकरध्वजम् ।
हृदये घोरकन्दर्पमाद्यबीजेन वै न्यसेत् ।।१६३।।

मकरध्वजबीज (कामबीज) से, मुख में तत्पुरुष का तथा आदिबीज से घोर एवं कन्दर्प का हृदय में न्यास करे।।१६३।।

शिश्ने वा वामदेवं तु मन्मथं चापि विन्यसेत् ।
सद्योजातं पादद्वये कामदेवं च विन्यसेत् ।।१६४।।

शिश्न में वामदेव एवं मन्मथ का तथा दोनों पैरों में सद्योजात और कामदेव का न्यास करे।।१६४।।

ॐ कारं चहकारं च रेफमेकत्र सन्थितम् ।।१६५।।
प्रान्तस्वरं वाग्भवाद्यं स्वरैर्ह्रस्वैस्तु पञ्चभिः ।
एभिस्तु पञ्चभिर्मंत्रैरीशानादीनि विन्यसेत् ।।१६६।।
वक्त्राणि पूर्वमुक्तानि स्वमुखोर्ध्वे तु पूर्वतः ।
दक्षिणोत्तरयोः पश्चात् पश्चिमे चापि विन्यसेत् ।।१६७।।

ॐकार, हकार, रेफ एक साथ मिलाकर वाग्भवादि ऐं, प्रान्त स्वर औ पर्यन्त अ इ उ ए ओ इन पाँच ह्रस्व स्वरों से पहले कहे गये ईशानादि मुखों का अपने मुख पर, ऊपर, पूर्व, दक्षिण, उत्तर तथा पश्चिम दिशाओं में न्यास करे।।१६५-१६८।।

हृदयदिषडङ्गानि दीर्घैराद्यस्वरैः पुनः ।
न्यसेत् ततः पञ्चबाणान् मूर्धादिष्वथ विन्यसेत् ।।१६८।।

हृदय आदि छः अङ्गों आदि में दीर्घ स्वरों, आ ई ऊ ऐ औ से तत्पश्चात् पञ्च-बाणों का शिर आदि स्थानों पर न्यास करे।।१६८।।

ॐ ह्रीं क्लीं सौं द्रावणाय न्यसेन्मूर्ध्नि ततःपुनः ।
ॐ ह्रीं क्षोभणबाणाय पद्भ्यां नम इतीरयेत् ।।१६९।।

ॐ ह्रीं क्लीं सौं द्रावणाय बोलकर शिर पर न्यास करे तब पुनः **ॐ ह्री क्षोभणबाणाय पद्भ्यांनमः** ऐसा कहे।।१६९।।

ॐ क्लीं क्लीं ह्रीं समाप्यन्तु षट्कारान्तार्धचन्द्रकैः ।
वक्त्रे वशीकृतं लिङ्गे सम्मोहनमथो न्यसेत् ।।१७०।।
आकर्षणं तथा बाणं हृदि मंत्रैः क्रमान्न्यसेत् ।

ॐ क्लीं क्लीं ह्रीं जो सकार एवं अर्धचन्द्र से युक्त हो जिसके अंत में वशीकरण का मुह में, लिङ्ग में सम्मोहनबाण का न्यास करे। मन्त्रों सहित आकर्षण बाण का हृदय में न्यास करे।।१७०।।

वाग्भवाद्यन्तकारान्तो वषट्कारसमन्वितः ।।१७१।।
त्रिःशेषस्वर एवात्र चन्द्रार्धो बिन्दुसंयुकः ।
एभिस्तु पञ्चभिर्मंत्रैरष्टशक्तीः क्रमादिमाः ।।१७२।।

वाग्भव ऐं से आरम्भ हो यकारपर्यन्त वषट् सहित त्रिशेषस्वर, चन्द्रार्ध और बिन्दु से युक्त हो उपयुक्त पाँचमन्त्रों द्वारा अष्टशक्तियों का नीचे लिखे क्रम में न्यास करे।।१७१-१७२।।

एतेषु चाष्टस्थानेषु विन्यसेमंत्रवित् पुनः ।
सुभगां च भगां देवीं तृतीयां भगरूपिणीम् ।।१७३।।
भगमालां चतुर्थीं तु अनङ्गकुसुमां ततः ।
अनङ्गमेखलां पश्चादनङ्गमदनां तथा ।।१७४।।
अष्टमीं च तथा देवीं मदविभ्रममन्थराम् ।
रूपतो ध्यानतश्चैषा यथा त्रिपुरभैरवी ।।१७५।।
ललटभ्रूमध्यभागमुखकर्णान्तकण्ठके ।
हृन्नाभिलिंगेष्वेवात्र न्यस्तव्या अष्टशक्तयः ।।१७६।।

मन्त्रवेत्ता साधक, सुभगा, भगा, भगरूपिणी, भगमाला, अनङ्गकुसुमा, अनङ्ग-मेखला, अनङ्गमदना, मदविभ्रममन्थरा आठशक्तियों का नाम की त्रिपुरभैरवी की भाँति

ध्यान करता हुआ, क्रमशः ललाट, भौहों के बीच में, मुख, कानों के छोर, कण्ठ, हृदय, नाभि और लिङ्ग इन आठस्थानों में न्यास करे॥१७३-१७६॥

शिरोललाटभ्रूयुग्मकर्णनेत्रद्वयेषु च ।
गण्डयोरथ नासायां दन्तवीथ्यां मुखे तथा ।
चतुर्दशपदेष्वेषु न्यसेच्चतुर्दशस्वरान् ।।१७७।।

शिर, ललाट, दोनों भौहों, दोनों कान और दोनों नेत्रों, गण्डस्थलों, नाक, दन्तपंक्तियों, मुख इन चौदहस्थानों में चौदह स्वरों का न्यास करे ॥१७७॥

चिबुके त्वथ ग्रीवायां कण्ठेदेशे तु पार्श्वयोः ।।१७८।।
स्तनयोः कक्षयोश्चापि कफोण्योर्हस्तयोस्तथा ।
तत् पृष्ठयोस्तथा नाभौ लिङ्गे चोरुद्वये तथा ।।१७९।।
अष्ठीवदोर्जङ्घयोस्तु स्फिचोस्तु पदमूलयोः ।
चरणाङ्गुष्ठयोः कादिमान्तान् वर्णास्तु विन्यसेत् ।।१८०।।

ठुड्डी, गला, कण्ठ, पार्श्वों, स्तनों, काँखों, कुहनियों, हाथों और उनके पीठ में नाभि, लिङ्ग, दोनों जंघों, टखनों में, कुल्हों, एड़ियों, पैर के अँगूठों में क वर्ण से प्रारम्भकर म पर्यन्त २५ वर्णो का न्यास करे॥१७८-१८०॥

मेखलायां कण्ठदेशे बाहुभूषणभागतः ।
हारे स्रजि कुण्डले च केशबन्धे तथैव च ।।१८१।।
चूडामणौ च न्यस्तव्या नकाराद्याः क्रमात्पुनः ।
मंत्राक्षराणि त्रीण्येव सन्धितानि पुनस्तथा ।।१८२।।

मेखला, कण्ठ, बाहुभूषण का स्थान, हार, माला, कुण्डल, केशबन्ध (चूडा) चूड़ामणि के दशस्थानों पर, नकार से आरम्भ कर तीन मन्त्राक्षरों का न्यास करना चाहिये॥१८१॥

प्रातिलोम्येन विन्यस्य मंत्रैर्मूर्ध्नि त्रिधात्रिधा ।
अमृतां योगिनीं विश्वयोगिनीं चाक्षरक्रमात् ।।१८३।।

उल्टे क्रम से तीन-तीन बार मन्त्रों का न्यास करते हुए शिर पर अमृता-योगिनी एवं विश्वयोगिनी का न्यास करे ॥१८३॥

ततो बीजत्र्यक्षराणि मूर्ध्नि बाहौ तथा हृदि ।
विन्यस्य पूर्ववत् पूजामारभेन्मंत्रविद् बुधः ।।१८४।।

तब बुद्धिमान मन्त्रवेत्तासाधक, बीज के तीन अक्षरों से शिर में, भुजाओं में, हृदय में, पहले की भाँति ही न्यास करके पूजन प्रारम्भ करे॥१८४॥

पूर्ववत् पूजयेद् देवीं पीठदेवविवर्जिताम् ।
विशेषतो ह्यष्टशक्तीः क्रमात् तु सुभगादिकाः ।।१८५।।

मण्डलस्याष्टदिग्भागे पूर्वादौ परिचिन्तयेत् ।
त्रिकोणाग्रेऽमृताद्यास्तु सम्पूज्यास्तु त्रियोनयः ।।१८६।।

पीठदेवताओं को छोड़कर पहले की ही भाँति देवी का विशेषकर, सुभगादि अष्टशक्तियों का पूजन करे। मण्डल की पूर्व आदि आठो दिशाओं में त्रिकोण के अगले भाग में अमृता आदि तीन योनियों का पूजन करे।।१८५-१८६।।

मध्येऽष्टभूषणान्येव पूजयेत् तु ततः पुनः ।
ईशानादीनि वक्त्राणि मम भैरव मध्यतः ।।१८७।।

हे भैरव ! त्रिकोण के मध्य में, मेखलादि पूर्वोक्त अष्ट-आभूषणों का पूजन करे तत्पश्चात् मेरे ईशानादि मुखों का मध्य में पूजन करे।।१८७।।

पूजयेत् तु तथा तत्र मनोभवमुखानपि ।
अन्यच्च पूजने तत्र क्रमः पूर्वोदितश्च यः ।
स एव सततं ग्राह्यः त्रिपुरापरिपूजने ।।१८८।।

तथा वहीं पर उसी प्रकार पाँच मनोभव आदि का भी पूजन करे। जैसा पहले बताया गया है, उसी क्रम (पद्धति) से अन्यपूजन भी सम्पन्न करे । त्रिपुरा के विधिवत पूजन में वहीक्रम अपनाना चाहिये ।।१८८।।

निर्माल्यधारिणी देवी चैतस्याः श्रृणु भैरवी ।
विसर्जनं चोत्तरस्यां त्यक्त्वा निर्माल्यमाचरेत् ।।१८९।।

इनका निर्माल्यधारण करने वाली देवी भैरवी है, विसर्जन के पश्चात् उत्तर दिशा में इनके निर्माल्य का परित्याग करना चाहिये ।

त्रिमूर्ति पूजयेत् तां तु देवीं त्रिपुरभैरवीम् ।
न जपेत् त्रिंशता न्यूनं साधकस्तु कदाचन ।।१९०।।

देवी त्रिपुरभैरवी की त्रिमूर्ति का पूजन करना चाहिये एवं कभी भी साधक को तीनसौ मन्त्रों से कम का जप नहीं करना चाहिये ।।१९०।।

अङ्गुष्ठमध्यमानामाङ्गुलीभिस्तिसृभिः पुनः ।
सदा पुष्पादिकं दद्यान्मालां तु त्रिगुणां चरेत् ।।१९१।।

अँगूठा, मध्यमा, अनामिका इन तीन अँगुलियों के ही योग से सदा देवी को पुष्पादि की त्रिगुणा माला देकर साधक पूजन करे ।।१९१।।

चर्मासनमधिष्ठाय पश्चात् कृत्वा पदद्वयम् ।
पूजयेन्निर्जने देशे साधकोऽनन्यमानसः ।।१९२।।

चमड़े के आसन पर बैठकर अपने दोनों पैरों को पीछे की ओर वज्रासनमुद्रा में करके साधक, निर्जनस्थान में अनन्यमन से पूजन करे।।१९२।।

आसादयेत् तु पुष्पादि नैवेद्यादि च यद् भवेत् । ।१९३।।

तद् वामहस्तमुख्येन सततं साधको बुधः ।
त्रिच्छिद्रा त्रिपुरा प्रोक्ता न सम्यक्पूजिता यदि ।।१९४।।

विद्वान्साधक सतत बायेंहाथ से पुष्प-नैवेद्यादि जो पूजोपहार हों उन्हें उपलब्ध कराये । क्योंकि यदि त्रिपुरा देवी की पूजा सम्यकरीति से न सम्पन्न हो, तो यह तीन दोषों को उत्पन्न करती है ।।१९३-१९४।।

शरीरे निन्दितो व्याधिर्जायतेऽवश्यमेव हि ।
अवश्याः पुत्रदाराश्च भृत्याद्याश्च भवन्ति हि ।।१९५।।
अस्त्राघातो भवेत् स्वस्य प्राणत्यागो न संशयः ।
त्रिच्छिद्रदायिनी चैवमन्यथा पूजिता यदि ।।१९६।।

यदि अन्यथा (अविहित) रीति से त्रिपुरापूजन किया जाय तो निम्नलिखित तीन दोष उत्पन्न होते हैं-

१. साधके के शरीर में अवश्यम्भाविकरूप में घृणितव्याधि उत्पन्न होती है ।

२. उसके पत्नी, पुत्र एवं सेवक आदि अवश्य (निरङ्कुश) हो जाते हैं ।

३. उसके ऊपर अस्त्र का आघात होता है जिससे स्वयं का उसका प्राण-त्याग तक हो जाता है । इसमें कोई संशय नहीं है ।।१९५-१९६।।

इतः प्रकारां सततं सम्यग् बेतालभैरव ।
एषा च त्रिपुरादेवी याश्चान्याः पूर्वभाषिताः ।।१९७।।
सर्वास्तु माया भैरव्या योगनिद्रा जगत्प्रसूः ।
तस्याः प्रपंचरुपैस्तु बहुभिः सैव क्रीडति ।।१९८।।
महामाया मूलभूता ततस्तु शारदा पुरा ।

हे वेताल भैरव ! इस प्रकार त्रिपुरा देवी नित्य ही सम्यक्रूप से पूजनीया हैं। ये त्रिपुरादेवी एवं अन्य जिन देवियों का वर्णन पहले किया गया है वे सभी, भैरवी, योगनिद्राजगत्प्रसू, उसी की माया हैं। वही अनेक प्रपञ्चात्मकरूपों से निरंतर क्रीड़ा करती है।।१९७-१९८।।

उमा ततः शैलपुत्री मत्प्रियायास्ततस्त्विमाः ।
उग्रचण्डा प्रचण्डाद्यास्त्रिपुराद्यास्तथैव च ।।१९९।।

महामाया ही मूलरूप में है, इसके बाद पहले वर्णन की गई शारदा, तब उमा है, तब भगवती शैलपुत्री मेरी प्रिया का रूप है । तत्पश्चात् उग्रचण्डा, प्रचण्डा, आदि त्रिपुरा भी उन्हीं की भाँति मुझे प्रिय हैं।।१९९।।

तासां चापि सदैवाहं महाभैरवरुपधृक् ।
नायकः सुतरां ताभिर्नित्यं नित्यं वसेद्बुधः ।।२००।।

मैं उन्हीं के साथ भैरवरूप धारण कर सदैव उनके नायक के रूप में नित्य रहता हूँ। ऐसा मानकर बुद्धिमान् साधक हम दोनों की सेवा करे।।२००।।

मम भैरवरूपस्य मंत्रः पूर्वं मयोदितः ।
रूपं चोक्तं पूजनेषु त्रिपुरायाः क्रमः स्मृतः ।।२०१।।

मेरे भैरवरूप का मन्त्र, पहले ही मेरे द्वारा बताया गया है तथा त्रिपुरा के पूजनक्रम में मेरेरूप का वर्णन भी पहले ही कहा जा चुका है।।२०१।।

महाभैरवं विद्महे कालरुद्राय धीमहि ।
तन्नः कामो भैरवस्तु क्लेदिन् नित्यं प्रचोदयात् ।।२०२।।
एषा भैरवरूपस्य गायत्री मे प्रतिष्ठिता ।।२०३।।

महाभैरवं......प्रचोदयात्। यह मेरे द्वारा मेरे भैरवरूप की गायत्री प्रतिष्ठित की गई हैं। **मन्त्रार्थ—**मैं महाभैरव को जानता हूँ कालरुद्र का ध्यान करता हूँ, वे क्लेदिन् मुझे प्रेरित करें।।।२०२-२०३।।

यथेष्टमांसमद्यादि भोजनार्थं मया धृतः ।
महाभैरवकायोऽयं तथा स्त्रीरतिसंगमे ।
अयं तु वाम्यभावेन पूज्यो मद्यादिभिः सदा ।।२०४।।

यह महाकाया, विशालस्वरूपवाला महाभैरवरूप मेरे द्वारा इच्छानुसार माँस, मदिरा आदि के भोजन तथा स्त्रियों के साथ रतिप्रसङ्ग हेतु धारण की गई है जिसका मदिरा आदि द्वारा वाम-भाव से सदा पूजन किया जाना चाहिये।।२०४।।

वामः कायो ब्रह्मणोऽपि मांसमद्यादिभुक्तये ।
कृतो महामोहनामा चार्वाकादिप्रवर्तकः ।।२०५।।

इसी प्रकार ब्रह्मा द्वारा मद्य-मांस आदि के भोगहेतु, चार्वाक आदि के मतों के प्रवर्तक, महामोह नामक वाममार्गीशरीर को धारण किया गया है।।२०५।।

विष्णोर्वामात्मिका मूर्तिर्नरसिंहाह्वया भवेत् ।
सा तु दाक्षिण्यवामाभ्यां पूजनीया सदा बुधैः ।।२०६।।

विष्णु की भी वाममार्गीमूर्ति, नरसिंह नाम से पुकारी जाती है । जो विद्वानों द्वारा सदैव अपनी श्रद्धा के अनुसार वाम और दक्षिण दोनों ही मार्गों से पूजेजानेयोग्य है।।२०६।।

तथैव बालगोपालमूर्तिर्जरायुवेष्टिता ।
मद्यमांसाशनो भोगी लोलुपः स्त्रीषु सर्वदा ।।२०७।।

उसी प्रकार जरायु से लिपटी जो बाल-गोपाल की वैष्णवीमूर्ति है, वह भी मद्य-मांसभोगी और स्त्रियों के प्रति आसक्ति रखने वाली है।।२०७।।

वह्वयस्तु चण्डिकादेव्याः वामिका मूर्तयः स्मृताः ।
लक्ष्म्यास्तु वामिकामूर्तिरुक्ता दहनभैरवी ।।२०८।।
याग्निदाहं पुरग्राममन्दिरेष्वकरोदियम् ।
सुपूजिता महालक्ष्मीर्देहल्यां तां तु पूजयेत् ।।२०९।।

चण्डिका देवी की भी बहुत सी ऐसी मूर्तियाँ हैं जो केवल वाममार्गीमूर्तियाँ कही गई हैं। जैसे लक्ष्मी की वाममार्गी-मूर्ति दहनभैरवी कही गई है जो नगर, गाँव, और घरों में अग्निदाह करती हैं। महालक्ष्मी की पूजा के समय, इसका देहली पर पूजन किया जाना चाहिये॥२०८-२०९॥

वाग् भैरवी सरस्वत्या वामिकामूर्तिरीरिता।
तस्या मंत्रं पुरा प्रोक्तं शुक्लवर्णा तु सा स्मृता॥२१०॥

सरस्वती की वाममूर्ति वाग्भैरवी कही गई है। उनका मन्त्र पहले ही बताया गया है, वह श्वेतवर्ण की बताई गई है॥२१०॥

मध्यायास्त्रिपुरायास्तु रूपं ध्यानमिहोच्यते।
पूजाक्रमस्तथैवोक्तः सर्वत्रैव तु भैरव॥२११॥

हे भैरव! त्रिपुरा में मध्यत्रिपुरा का जो रूप या ध्यान है वही इनका भी रूप एवं ध्यान कहा जाता है। सब जगह इनका पूजनक्रम, वैसा ही बताया गया है॥२११॥

मार्तण्डभैरवो नाम मूर्तिः सूर्यस्य कीर्तिता।
गणेशस्याग्निवेतालः कथितो वामनामकः॥२१२॥
एते वाम्येन भावेन पूजनीया विशेषतः॥२१३॥

सूर्य की वाममूर्ति, मार्तण्डभैरव तथा गणेश की वाममूर्ति, अग्नि-वेताल कही गई है। इन ऊपर वर्णित सभी मूर्तियों का विशेषरूप से वामभाव से पूजन करना चाहिये॥२१२-२१३॥

त्रिधाद्यस्तु यथापूर्वं नमयैर्लवैस्तथा।
वान्तैर्द्विरेफैः सर्वत्र यथा कृत्वा तथा तथा॥२१४॥
अनुस्वारविसर्गाभ्यां प्राक्शेषौ परिकीर्तितौ।

पूर्वक्रमानुसार नमय और वलय के साथ आद्य बीज को तीन बार तत्पश्चात् व के अन्त में आने वाला श, दोबार रेफ के सब स्थानों पर अनुस्वार और विसर्ग के सहित प्राक्शेष कहा जाता है॥२१४॥

मध्ये तु केवलाः पूर्वं सानुस्वारविसृष्टिभिः॥२१५॥
पश्चाद् द्वित्रिक्रमाद् यस्तु वर्णैरेकेन चैव हि।
व्यस्तैः समस्तैरपि च दकारादिषु संयुतैः॥२१६॥
आद्यायास्त्रिपुरायास्तु मंत्रवद् योजितैस्तथा।
तथा त्रिपुरभैरव्या मंत्रवच्चाक्षरैरपि॥२१७॥
त्रिश्चतुर्दशभिः कृत्वा डादींस्त्रींस्तु विशारयेत्।
द्वितीयं द्विगुणं कृत्वा शेषेऽत्रादौ च योजयेत्॥२१८॥

मध्य में केवल अ, पहले अनुस्वार और विसर्ग के साथ लिखा जाय तत्पश्चात् दो-तीन के क्रम से एक ही वर्ण समस्त एवं व्यस्तक्रम में दकार आदि से संयुक्त करके आद्या, त्रिपुरा तथा त्रिपुरभैरवी के मन्त्रों की भाँति, अक्षरों को दो-तीन-चार और दश के क्रम में तीन डादि का तथा द्वितीय त्रिपुरामंत्र को दो गुना कर शेष को यहाँ प्रारम्भ में जोड़ दे॥२१५-२१८॥

विंशतिस्तु सहस्राणि शेषे चापि त्रयोदश ।
आद्यमाद्यं ततः प्रोक्तं वाग्भवाद्यं तृतीयकम् ।
एवं च परमप्येतन्मन्त्राणां च चतुष्टयम् ।।२१९।।

बीस हजार के बाद तेरह मन्त्रों में पहला, प्रथमश्रेणी का आद्यमन्त्र है तत्पश्चात् वाग्भव से मिलकर तृतीयमन्त्र बनता है। इन सभी मन्त्रों में सर्वश्रेष्ठ चारमन्त्र है॥२१९॥

एतज् ज्ञात्वा नरः कामानखिलान् प्राप्य सङ्गतः ।
मृते देवीपुरं याति क्रमादेव तु भैरव ।।२२०।।

हे भैरव ! इनको जानकर मनुष्य जीवन में सम्पूर्णकामनाओं को प्राप्त कर, मृत्यु के पश्चात् क्रमशः देवीपुर को जाता है॥२२०॥

यः सकृत् तु जपेदेतत् सकलं मंत्रसञ्चयम् ।।२२१।।
प्रथमं कामतो न्यस्य साधकस्तु त्रिभिर्दिनैः ।
चिन्तयन्मनसा देवीं सम्यक् त्रिपुरभैरवीम् ।।२२२।।
स कामानखिलान् प्राप्य स्वरूपे मदनोपमः ।
धार्मिको नृपतिर्भूयाद् ब्राह्मणो द्विजराड् भवेत् ।।२२३।।

जो एक बार शरीर में न्यासपूर्वक, भली-भाँति देवीत्रिपुरभैरवी का मन में चिन्तन करता हुआ, इस मन्त्रसमुदाय का जप करता है, वह साधक, तीन दिनों में ही सभी कामनाओं को प्राप्त कर, स्वरूप में कामदेव के समान सुन्दर, राजा, धार्मिक और ब्राह्मण द्विजों में श्रेष्ठ हो जाता है ।।२२१-२२३।।

अबाधितशरीरस्तु पिशाचाद्यैः सदैव हि ।
नीरोगश्च चिरायुश्च बलवानपि जायते ।
एवं त्रिपुरभैरव्या मया प्रोक्तस्त्वयं क्रमः ।।२२४।।

साधक का शरीर सदैव पिशाचादि से बाधारहित, निरोग, चिरायु और बलवान हो जाता है । इस प्रकार यह मेरे द्वारा त्रिपुराभैरवी का क्रम, (उपासना पद्धति) कहा गया है॥२२४॥

वैष्णव्यास्तु महादेव्याः सहस्राणि तु षोडश ।
शृणु भैरव मंत्राणि शिवैकाग्रमनाः पुनः ।।२२५।।

हे भैरव ! महादेवी वैष्णवी के सोलह हजार मन्त्रों को तुम शिवा (कालिका) के प्रति एकाग्रचित्त होकर आगे सुनो।।२२५।।

अष्टोत्तरसहस्रं तु चतुःषष्टिस्तथा त्रयः ।
मंत्राः प्रोक्ता महादेव्या मूर्तिभेदेन ताः पुनः ।।२२६।।

महादेवी के मूर्तिभेद से एक हजार आठ, चौसठ और तीन मन्त्र कहे गये है।।२२६।।

अनुस्वारविसर्गाभ्यां द्विगुणास्ते पुनः समाः ।
कादिव्यञ्जनसंयोगादूर्ध्वाधो व्यस्तभावतः ।।२२७।।
द्वाभ्यां त्रिभिश्च सततमुद्धरेन्मंत्रवित् पुनः ।।२२८।।

अनुस्वार और विसर्गयोग से वे द्विगुणित हो जाते हैं। क से आरंभ कर व्यञ्जनों के योग से ऊपर और नीचे व्यस्तभाव से दो और तीन के क्रम से मन्त्रवेत्ता निरन्तर मन्त्र का उद्धार करे।।२२७।।

अष्टावष्टौ ततः कृत्वा समस्तव्यस्तसंयुतैः ।
विस्वरैः सस्वरैश्चापि सानुस्वारविसर्गकैः ।।२२९।।
केवलैरपि तत्रैव द्विव्यस्तैरन्तरैस्तथा ।
एवमष्टोत्तरं यावत् संयोगयोगभावतः ।।२३०।।

आठसमस्त और आठव्यस्त रूपों के स्वरयुक्त एवं स्वररहित, अनुस्वार और विसर्गयुक्त, केवल उन्हीं के दिव्यरूपों तथा उत्तरों से संयोग-वियोग की भावना करते हुए एक सौ आठ मन्त्रों का रूप हो जाता है ।।२२९-२३०।।

देव्यास्तु षट्सहस्राणि सहस्राणि तथा दश ।
मंत्रास्तु संख्यया ख्याताः क्रमाद् वेतालभैरव ।।२३१।।

हे वेताल और भैरव ! देवी के यहीं सोलह हजार मन्त्र क्रमशः कहे गये हैं।।२३१।।

समस्तव्यस्तरूपेण वैष्णव्या ये मयोदिताः ।
ताञ् ज्ञात्वा मानवो याति ममैव सदनं प्रति ।।२३२।।

समस्त और व्यस्त रूप से वैष्णवी देवी के मेरे द्वारा जो मन्त्र कहे गये हैं उन्हें जानकर मनुष्य (साधक) मेरे घर, (शिव-लोक) को जाता है।।२३२।।

अष्टम्यां च नवम्यां च सहस्राणि तु षोडश ।
यो जपेमंत्रबीजानि सकृदेव तु भैरव ।
ध्यायंस्तु वैष्णवीं मूर्तिं तदेकाग्रमनाः शृणु ।।२३३।।

हे भैरव ! अष्टमी और नवमी को इन सोलह हजार बीजमन्त्रों का एक बार भी वैष्णवी मूर्ति का एकाग्रमन से ध्यान करता हुआ, जो साधक जप करता है, उसका फल सुनो।।२३३।।

नरराजो भवेद् भूमौ पण्डितश्चातिहर्षितः ।
चिरायुः सुखभोगी स्यादुद्रिक्तो बलवाहनैः ।।२३४।।

वह पृथिवी पर मनुष्यों का राजा होता है । वह पण्डित होता है तथा अत्यन्त प्रसन्नतापूर्वक जीवनयापन करता है। वह चिरायु, सुखभोगनेवाला, बल और वाहनों से परिपूर्ण होता है।।२३४।।

तान्येव चाष्टधा जप्त्वा सार्वभौमो नृपो भवेत् ।
गणाध्यक्षो मृतेः स स्यात् ततो मुक्तिमवाप्नुयात् ।।२३५।।

उन्हीं मन्त्रों का आठ बार जप कर साधक, सार्वभौमराजा होता है । मृत्यु के बाद वह गणों का स्वामी होता है और अन्त में मुक्ति को प्राप्त करता है।।२३५।।

इति सकलगुणौघैरस्तदोषस्तु नित्यं
भवति कलुषहन्ता श्रीविवृद्ध्यै सुमंत्रः ।
सततमखिलवेत्ता यो भवेदेतयोस्तु
स च भवति जितारी रोगशोकप्रमुक्तः ।।२३६।।

।। इति श्रीकालिकापुराणे मुद्राविभागनाम चतुःसप्ततितमोऽध्यायः ।।७४।।

इस प्रकार वह सभी गुणों के समूहों से युक्त तथा दोषों को समाप्त कर, निर्दोष हो जाता है। वह सुन्दरमन्त्रवेत्ता दोषों का नाश करने वाला हो जाता है। जो इनके समस्त तत्त्वों को निरन्तर जानता है, वह शत्रुओं को जीतने वाला तथा रोग एवं शोक से मुक्त हो जाता है।।२३६।।

श्रीकालिकापुराण में मुद्राविभागनामक चौहत्तरवाँ अध्याय सम्पूर्ण हुआ ।।७४।।



पञ्चसप्ततितमोऽध्यायः

पुरश्चर्याविधिः

।। श्रीभगवानुवाच ।।

पुरश्चरणकार्येषु बिल्वपत्रयुतैस्तिलैः ।
साक्षतैः सघृतैर्वापि शिवामुद्दिश्य यत्नतः ।
जुहुयादनलं वृद्धं संस्कृतं कामवृद्धये ।।१।।

श्रीभगवान् बोले—कामना की वृद्धि (पूर्णता) के लिए पुरश्चरणकार्य में बिल्वपत्रयुक्त तिल, घी, अक्षत से शिवा के निमित्त प्रज्ज्वलित एवं संस्कारित, अग्नि में होम करना चाहिये।।१।।

सङ्कल्पितः कामसिद्धये सङ्ख्यया यः कृतो जपः ।
तदन्ते पूजनं यत्तु विहितं क्रियते द्विजैः ।
पुरश्चरणसंज्ञं तु कीर्तितं द्विजसत्तमैः ।।२।।

संकल्पित (इच्छित) कामना की सिद्धि के लिए निश्चित संख्या में जो जप किया जाता है । उसके अन्त में द्विजातियों द्वारा विधिपूर्वक जो पूजन किया जाता है, उसे ही श्रेष्ठब्राह्मण, पुरश्चरण कहते हैं।।२।।

तस्मिन् पुराणके पूर्वं पूर्वोक्तैर्विस्तरोदितैः ।
विधानैः पूजयेद् देवीं कामाख्यां वैष्णवीमपि ।।३।।
यथासम्भवमेवात्र दद्यात् षोडश साधकः ।
उपचारांस्तथैवोक्तान् विधिकृत्यान्न लङ्घयेत् ।।४।।
सम्पूर्णं पूजनं कृत्वा कल्पोक्तं शतधा जपेत् ।।५।।

उस पुरश्चरणकर्महेतु पुराणों में पहले ही विस्तारपूर्वक बताये गये विधानों से देवी कामाख्या और वैष्णवी का भी पूजन करे। साधक, उस समय यथासम्भव सोलहउपचारों को भी इसमें प्रदान करे। बताये गये विधि-सम्बन्धी कृत्यों का उलङ्घन न करे। वह कल्प (पूजाविधान) में वर्णितरीति से सम्पूर्णपूजन करके, कम से कम सौबार मन्त्र जप करे।।३-५।।

जपान्ते जुहुयादग्निं होमान्ते तु बलित्रयम् ।
त्रिजातीयं तु वितरेत्तौर्यत्रिक्रमतः परम् ।।६।।

पत्नीं स्वयं वा भ्राता वा गुरुर्वा विनियोजयेत् ।
नैवेद्यादीनि सर्वाणि स्वपुत्रः शिष्य एव वा ।।७।।

जप सम्पन्न कर अग्नि में होम करे और होम के पश्चात् तीनबलिदान करे। यह बलिदान तीन जाति (प्रकार) का होना चाहिये। तत्पश्चात् तौर्यत्रिक् (नृत्य, गायन, वाद्य का समेकित) आयोजन करे । इसमें स्वयं को, अपनी पत्नी, भाई, गुरु, पुत्र और शिष्य को सम्मिलित करे तथा सब प्रकार के नैवेद्य अर्पित करे ।।६-७।।

यज्ञावसाने दद्यात् तु गुरवे दक्षिणां शुभाम् ।
चामीकरं तिलान् गाश्च तदशक्तौ तु चोलकम् ।।८।।

यज्ञ के समापन पर गुरु के लिए सुन्दर चामीकर (स्वर्ण), गौ, तिल आदि गुरु को दक्षिणारूप में दे, यदि ऐसा करने में समर्थ न हो तो वस्त्र ही दान करे।।८।।

अष्टम्यां शुक्लपक्षस्य ब्रह्मचारी जितेन्द्रियः ।
नवम्यां वा चतुर्दश्यां महादेव्याः पुरश्चरेत् ।।९।।

साधक जितेन्द्रिय और ब्रह्मचारी हो, शुक्लपक्ष की अष्टमी, नवमी या चतुर्दशी को महादेवी का पुरश्चरण करे।।९।।

आदद्याद् गुरुवक्त्रात् तु विधिना विस्तरेण तु ।
कल्पोदितेन सम्पूज्य तिथिष्वेतासु भैरव ।।१०।।

हे भैरव ! उपर्युक्त तिथियों में गुरु-मुख से ज्ञात, कल्प (पूजाविधान) में वर्णित, विधि के अनुसार, विस्तार से पूजन कर, मन्त्रग्रहण करे।।१०।।

सम्पूर्णपूजां नो कृत्वा न दद्यान्मन्त्रमीप्सितम् ।
न पुरश्चरणं वापि कुर्यात् कृत्वाऽवसीदति ।।११।।

बिना पूजा सम्पूर्ण किये, न तो इच्छितमन्त्र ही किसी को देना चाहिये और न पुरश्चरण ही करना चाहिये। यदि कोई करता है तो वह कष्ट पाता है।।११।।

नित्यपूजा सा तु पुनः सम्पूर्णा यदि शक्यते ।
कल्पोदितं पूजयितुं तदा कुर्यादतन्द्रितः ।।१२।।

यदि सम्भव हो तो आलस्यरहितसाधक, कल्पोक्तरीति से नित्यपूजा, स्वयं सम्पन्न करे।।१२।।

न चेद् विस्तरशः कर्तुं देव्याः पूजां तु भैरव ।
कल्पोक्तां वाऽन्यदेवस्य तत्रायं विधिरुच्यते ।।१३।।

हे भैरव ! यदि विस्तार से, कल्पोक्तरीति से, देवी या अन्य देवों की पूरी पूजा, सम्भव न हो तो, इस सम्बन्ध में यहाँ यह विधि बताई जा रही हैं।।१३।।

मार्जनाद्यैस्तु संस्कृत्य स्थण्डिले मण्डलं लिखेत् ।
पात्रस्य प्रतिपत्तिं तु कृत्वा दाहं प्लवं तथा ।।१४।।

ध्यायेदात्मानमथ च संस्कृत्याङ्गस्वरूपतः ।
अङ्गुष्ठाद्यस्त्रपर्यन्तं द्वादशाङ्गस्य शुद्धये ।।१५।।

मार्जन (झाड़ने-बुहारने) आदि से वेदिका का संस्कार कर, उस पर मण्डल लिखे । तब पात्र का स्थापन कर, दहन और प्लवन की क्रियाएँ सम्पन्न करे, तत्पश्चात् शरीर के बारह अंगों की शुद्धि हेतु, अगूँठा से अस्त्रतक, अङ्गों के रूप में अपना ही ध्यान कर, संस्कार करे।।१४-१५।।

अर्घ्यपात्रेऽष्टधा जप्त्वा उपचारान् प्रसेचयेत् ।
आधारशक्तिप्रमुखं मूलवर्णान् प्रयुज्य च ।।१६।।
हृदिस्थां देवतां ध्यात्वा बहिःकृत्यं च वायुना ।
आरोप्य मण्डले दद्यादुपचारान् यथाविधि ।।१७।।

अर्घ्यपात्र पर ८ बार मूलमन्त्र का जप कर, उसके जल से पूजा उपचारों का सिंचन करे। मूलवर्णों का प्रयोग करता हुआ आधार-शक्ति आदि का हृदय में स्थित देवता का ध्यान कर, वायुमार्ग से उसे बाहर लाकर, मण्डल पर आरोपित कर, यथाविधि उपचारों को प्रदान कर, उनका पूजन करे।।१६-१७।।

पूजयित्वा षडङ्गानि तथाष्टौदलदेवताः ।
पुष्पाञ्जलित्रयं दत्त्वा जप्त्वा स्तुत्वा प्रणम्य च ।।१८।।
मुद्रामग्रे प्रदर्श्याथ ततः पश्चाद् विसर्जयेत् ।
सर्वेषामेव देवानामेष एव विधिः स्मृतः ।।१९।।

साधक छओअङ्गों तथा अष्ट-दल कमल में देवताओं का पूजन कर, तीन पुष्पाञ्जलि देकर जप, स्तुति एवं प्रणाम करे तब आगे मुद्रा का प्रदर्शन कर विसर्जन करे । सभी देवताओं के पूजन की यही विधि बताई गई है।।१८-१९।।

सम्यक् कल्पोदिता पूजा यदि कर्तुं न शक्यते ।
उपचारांस्तथा दातुं पञ्चैतान् वितरेत् तदा ।।२०।।
गन्धंपुष्पं च धूपं च दीपं नैवेद्यमेव च ।
अभावे पुष्पतोयाभ्यां तदभावे तु भक्तितः ।।२१।।

विधान में वर्णित पूजा, भली-भाँति करना, सम्भव न हो तो गन्ध, पुष्प, धूप, दीप और नैवेद्य इन पाँच उपचारों को ही अर्पित करे यदि यह भी सम्भव न हो तो भक्तिपूर्वक जल और पुष्प से ही इष्टदेवता का पूजन करे ।।२०-२१।।

संक्षेपपूजा कथिता तथावस्त्रादिकं पुनः ।
पुरश्चरणकृत्ये च विशेषं शृणु भैरव ।।२२।।

हे भैरव ! मेरे द्वारा संक्षिप्तपूजा और वस्त्रादिकउपचार तथा पुरश्चरणकृत्य के सम्बन्ध में बताया गया। अब उसके विषय में विशेष सुनो।।२२।।

निष्पल्लवद्वादशभिर्लक्षैर्मंत्रजपैस्तथा ।
पुरश्चरेत् साधकस्तु कामामिष्टाप्तिहेतवे ।।२३।।

साधक अभीष्टकामना की पूर्ति के लिए पल्लवरहित, बारहलाख मन्त्रों का जप कर, पुरश्चरण का कार्य सम्पन्न करे।।२३।।

जातीपुष्पं च बकुलं मालतीपुष्पमेव च ।
नन्द्यावर्तपाटलं च सितपद्ममतः परम् ।।२४।।
आज्यमन्नं पायसं च दधिक्षीर तथा मधु ।
लाजाश्चापि सकर्पूरा अमी एव चतुर्दश ।
पुरश्चरणसम्भूता त्रिपुरायाः प्रकीर्तिताः ।।२५।।

चमेली का पुष्प, मौलसिरी का पुष्प, मालती का फूल, नन्द्यावर्त (केशर), श्वेतकमल, घी, अन्न, खीर, दही, दूध, मधु और कपूर के सहित लावा, ये चौदह पदार्थ त्रिपुरा के पुरश्चरण के सम्भार (उपादान) बताये गये है।।२४-२५।।

द्वादशष्वेव लक्षेषु जप्तेष्वपि च साधकः ।
एतानि सर्वद्रव्याणि जुहुयादनलोज्ज्वले ।।२६।।

साधक, बारहलाखमन्त्रजप करने के पश्चात् उपर्युक्त सभी द्रव्यों का प्रज्ज्वलित अग्नि में होम करे।।२६।।

लक्षत्रयं तु यो जप्त्वा पुरश्चरणमाचरेत् ।
स तु साज्यं सकर्पूरं जुहुयात् तु चतुष्टयम् ।।२७।।

जो तीनलाखमन्त्रों का जप कर पुरश्चरण करे उसे घी और कपूर के सहित उपर्युक्त में से मात्र चारपदार्थो का होम करना चाहिये।।२७।।

दशभिर्नवलक्षेषु द्रव्यैर्मन्त्री पुरश्चरेत् ।
जप्तेषु चाष्टभिः षट्सु सर्वैः सर्वत्र चाचरेत् ।।२८।।

यदि मन्त्रजापक नवलाख मन्त्रों से पुरश्चरण करे तो दशपदार्थो से तथा छः लाख मन्त्रों से करने पर आठपदार्थों से हवन करे। इसी प्रकार सभी जगह सभी पदार्थों से हवन करना चाहिये।।२८।।

हस्तमात्रं तु कुण्डं स्यात् षट्कोणं त्र्यङ्गुलाधिकम् ।।२९।।
त्रिपुरायास्तु मध्याया बालायाश्च सदैव हि ।
तथा त्रिपुरभैरव्याः कुण्डमानं प्रकीर्तितम् ।।३०।।

त्रिपुरा, मध्या, बाला और त्रिपुरभैरवी के हवन के लिए कुण्ड का मान, एक हाथ से तीनअङ्गुल अधिक एवं आकारषट्कोण बताया गया है।।२९-३०।।

चतुष्कोणं भवेत् कुण्डं हस्तमात्रद्वयेषु च ।
अष्टाङ्गुलाधिकं प्रोक्तं वैष्णव्यास्तु पुरश्चरे ।।३१।।

वैष्णवी के पुरश्चरण में दो हाथ से आठअङ्गुल अधिक का, चौकोरकुण्ड हो, ऐसा कहा गया है।।३१।।

त्रिकोणं हस्तमात्रं तु कामाख्यायास्तु कुण्डकम् ।
एवं सर्वप्रपञ्चानामासामपि तथा तथा ।।३२।।

कामाख्या देवी के लिए एक हाथ मान का त्रिकोणकुण्ड बनाये। इसी प्रकार सभी प्रपञ्चों (रुपों) का भी वैसा-वैसा (भिन्न-भिन्न) कुण्ड बनाना चाहिये।।३२।।

संस्कुर्यादनलं वृद्धं विधिवद् वैष्णावीकृतौ ।
कामाख्यायास्तथा कुर्याज्ज्योतिष्टोमादि मत्सुतौ ।।३३।।

हे मेरे पुत्रों ! विधिपूर्वक वैष्णवी तथा कामाख्यादेवी के लिए प्रज्ज्वलित अग्नि का संस्कार करके ज्योतिष्टोमादि यज्ञसम्पन्न करे।।३३।।

आदौ त्रिपुरभैरव्याश्चतुर्भिर्दशभिस्तथा ।
जुहुयादनले वृद्धे आहुतीश्च चतुर्दश ।।३४।।

प्रारम्भ में त्रिपुरभैरवी के चौदहमन्त्रों से प्रज्ज्वलित अग्नि में चौदह आहुतियों से हवन करे।।३४।।

पश्चात् तु मूलमंत्रेण अष्टोत्तरशतत्रयम् ।
होमं यन्नव वा तेन शतानि नव वाऽथवा ।।३५।।

तत्पश्चात् तीन सौ आठ मूलमन्त्रों से होम करे, यदि नवलक्ष किया होतो नौसौ मन्त्रों से होम करे।।३५।।

जपान्ते तु बलिं दद्याद् वैष्णव्या बलिदानतः ।
रत्नकर्पूरकनकान् यत्रैव गुरुदक्षिणाः ।।३६।।

जप के पश्चात् वैष्णवीतन्त्र में वर्णित, बलिदान की विधि के अनुसार, बलि-प्रदान करे तथा रत्न एवं कपूर के कणों से गुरुदक्षिणा अर्पित करे।।३६।।

अलाभे दधिपुष्पाज्यलाजैर्देव्याः पुरश्चरेत् ।
लाभे चतुर्दशद्रव्यैर्जुहुयाद् विधिपूर्वकम् ।।३७।।

यदि उपलब्ध हो तो ऊपरवर्णित चौदहपदार्थों से विधिपूर्वक होम करे, न उपलब्ध होने पर दही, पुष्प, घी और धान के लावा से ही करे।।३७।।

अस्या यन्त्रं रहस्येन शृणु वेतालभैरव ।
यत्कृत्वैवाखिलान् कामाँल्लभते नरसत्तम ।।३८।।

हे वेताल भैरव (शिव के सम्बोधन पर) अथवा हे नरों में श्रेष्ठ (और्व मुनि से सम्बोधन पर) इसके यन्त्र को रहस्यसहित सुनो, जिसके (पूजन) ! करने से सभी कामनायें प्राप्त हो जाती हैं।।३८।।

षट्कोणं मण्डलं कृत्वा तत् तु कोणत्रये लिखेत् ।
मंत्र त्रिपुरभैरव्यास्त्रिवर्णं तु ततस्त्वधः ।।३९।।

षट्कोण और मण्डल बनाकर उसके बाद त्रिकोण लिखे उसके नीचे त्रिपुर-भैरवी के त्रयक्षरीमन्त्र को लिखे॥३९॥

आद्यायास्त्रिपुरायास्तु त्रिबीजानि लिखेदनु ।
मध्यबीजत्रयं मध्ये लिखित्वा पीठयन्त्रके ॥४०॥

उसके पश्चात् आद्यात्रिपुरा के तीनोंबीजमन्त्रों को लिखे। यन्त्रपीठ के मध्य में मध्य-- बीज को तीन बार लिखे॥४०॥

सर्वैस्तु मातृकावर्णैस्त्रिधा संवेष्टयेदनु ।
लाक्षारसैर्लिखित्वा तु त्रिलोहैर्वेष्टयेत् ततः ।
तद् धार्य मूर्ध्नि सततं तेन सर्वजयी भवेत् ॥४१॥

तत्पश्चात् सभी मातृकावर्णों से उसे तीन बार घेरे। यह सम्पूर्णयन्त्र, लाक्षारस से लिखकर, त्रिलोह (सोना, चाँदी एवं ताँबे) के बनी डिब्बी में रखकर, उसे निरन्तर मस्तक पर धारण करे। ऐसा करने से वह साधक सर्वत्र विजयी होता है॥४१॥

रूपवान् बलवान् वाग्मी धनरत्नयुतः सदा ।
दीर्घायुः कामभोगी च सुप्रजः स च जायते ॥४२॥

वह सदा रुपवान, बलवान, वाग्मी, धन एवं रत्न से युक्त दीर्घायु, कामों का उपभोग करने वाला, उत्तमसन्तान का स्वामी हो जाता है ॥४२॥

मध्ये बीजं लिखित्वैकं मूर्ध्नि चाधस्तथापरम् ।
आद्यायास्त्रिपुरायास्तु भैरव्यास्तद्वदेव हि ॥४३॥

मध्य में मस्तक पर भैरवी का बीजमन्त्र लिखकर उसके नीचे उन पर क्रमशः आद्या और त्रिपुरा के मन्त्रों को लिखे॥४३॥

इमानि षट्कमंत्राणि क्रमाद् वेतालभैरव ।
पूर्ववत् सल्लिखित्वैकं संवेष्टयाथ त्रिलोहकैः ॥४४॥
वामे बाहौ दक्षिणे च हृदि कण्ठे करे तथा ।
मूर्ध्नि धार्याणि क्रमतः फलमेतच्च तद्भवम् ॥४५॥

हे वेताल और भैरव ! इन छः मन्त्रों को पहले की भाँति क्रमशः लिखकर एक-एक को त्रिलोह में संवेष्टित कर बायीं और दाहिनी बाँह, हृदय, कण्ठ, हाथ तथा मस्तक पर धारण करने से, उसका यह फल होता है ॥४४-४५॥

सम्पत्सौभाग्यसंस्तम्भ - वशीकरणमोहनम् ।
कवित्वमथ सर्वत्र भवेदेतन्न संशयः ॥४६॥

उसको सर्वत्र सम्पत्ति, सौभाग्य, संस्तम्भन, वशीकरण, मोहन, कवित्व, हो जाता है, इसमें कोई संशय नहीं है॥४६॥

यन्त्रमन्त्राणित्राणि तन्त्राणि त्रैपुराणि तु भैरव ॥४७॥

स पञ्च षट् सहस्राणि मंत्रोघैस्त्रिगुणीकृतैः ।
तज् ज्ञात्वा पूजको धीमान् परत्रेह न सीदति ।।४८।।

हे भैरव ! त्रिपुरासम्बन्धी यन्त्र-मन्त्र और तन्त्रों की संख्या, पाँच-छः हजार मन्त्रों को तीन गुना कर कही गई है । इनको जान कर, पूजन करने वाला बुद्धिमान् साधक, इस लोक या परलोक में कहीं कष्ट नहीं पाता।।४७-४८।।

मंत्रौघैस्तन्त्रमन्त्रैरविचलितपदं त्रैपुरं यत् प्रधानं
यद्विप्राद्यैरदेयं विगतभयपदं यत्कवित्वप्रदातृ ।
त्रैवर्गीयं त्रिरूपं त्रिदिवमथ सुरा यत्र सन्ति त्रयोऽपि
तज्ज्ञानौघैः सुभूतंसकलशुभफलंयन्म हत्त्रैपुराख्याम् ।।४९।।

मन्त्रों के समुदाय, त्रिपुरासम्बन्धी तन्त्र-मन्त्रों में जो अविचलित और प्रधान, ब्राह्मण आदि साधकों द्वारा सर्वसाधारण को दिये जाने योग्य, भय को दूर करने वाला है । यह कवित्वप्रदान करने वाला, अर्थ-धर्म-काम तीनों पुरुषार्थ, तीन रुपों वाला, तीनों स्वर्गरूप, जहाँ तीनों देव निवास करने वाले है। ऐसा जो महात्रैपुर नामक मन्त्र है, वह ज्ञान का समूह, सुन्दरढंग से उत्पन्न एवं समस्त शुभफलों को देनें वाला है।।४९।।

कवचं त्रिपुरायास्तु शृणु वेतालभैरव ।
यज्ज्ञात्वा मन्त्रवित् सम्यक् फलमाप्नोति पूजने ।।५०।।

हे वेताल और भैरव ! अब तुम दोनों त्रिपुरा के कवच को सुनो, जिसे जानकर पूजन करने से मन्त्रवेत्ता सम्यक् फलों को प्राप्त कर लेता है।।५०।।

उपचाराः पुरा प्रोक्ता येन एवात्र पूजने ।
प्रतिपत्तिस्तु सैवात्र कीर्तिता नित्यपूजने ।।५१।।

यहाँ पूजनप्रकरण में जो उपचार, पहले बताये गये हैं, वे ही उपक्रम यहाँ भी नित्यपूजन में कहे गये हैं।।५१।।

कवचस्य च माहात्म्यमहं ब्रह्मा न केशवः ।
वक्तुं क्षमस्त्वनन्तोऽपि बहुजिह्वः कदाचन ।।५२।।

इस कवच के माहात्म्य को मैं ब्रह्मा, विष्णु और बहुत (हजार) जिह्वा वाले, अनन्त भी कहने में कभी समर्थ नहीं है।।५२।।

क्रव्याद् भयं न लभते तथा तोयपरिप्लवे ।
कवचस्मरणादेव सर्वकल्याणमाप्नुयात् ।।५३।।

कवच के स्मरणमात्र से क्रव्यादों का भय नहीं होता और न जलप्लावन ही होता है तथा साधक सबप्रकार से कल्याण प्राप्त करता है।।५३।।

।। त्रिपुराकवच ।।

ॐ त्रिपुराकवचस्यास्य ऋषिर्दक्षिण उच्यते ।

छन्दश्चित्राह्वयं प्रोक्तं देवी त्रिपुरभैरवी ।
धर्मार्थकाममोक्षाणां विनियोगस्तु साधने ।।५४।।

ॐ अस्य त्रिपुराकवचस्य दक्षिणऋषिः चित्राछन्दः त्रिपुरभैरवी देवी धर्मार्थ-काम-मोक्षाणां साधने विनियोगः। इस त्रिपुराकवच के दक्षिण ऋषि, चित्रा नामके छन्द हैं, त्रिपुरभैरवी देवीधर्मअर्थकाम और मोक्ष, साधन में विनियोग, कहा गया है।।५४।।

यथाद्यात्रिपुराख्याया ! बीजानि क्रमतः सुत ।
नामतो वाग्भवादीनि कीर्तितानि मया पुरा ।।५५।।

हे पुत्र ! जिस प्रकार आद्या, त्रिपुरा, के नामानुसार वाग्भवादिबीज क्रमशः मेरे द्वारा पहले ही कहे गये है।।५५।।

तथा त्रिपुरभैरव्या बीजान्नामपि नामतः ।
वाग्भवः कामराजश्च तथा त्रैलोक्यमोहनः ।।५६।।

उसी प्रकार त्रिपुरभैरवी के भी नामानुसार वाग्भव, कामराज और त्रैलोक्यमोहन बीज कहे गये है।।५६।।

अवतु सकलशीर्षं वाग्भवे वाचमुग्रां
निखिलरचितकामान् कामराजोऽवतान्मे ।
सकलकरणवर्गमीश्वरः पातु नित्यं
तनुगतबहुतेजो वर्धयन् बुद्धिहेतुः ।।५७।।

सर्वप्रथम वाग्भवबीज मेरी उग्र (प्रभावशाली) वाणी की रक्षा करे, मेरे सम्पूर्णरचित कामों की कामराजबीज रक्षा करे। शरीर में स्थित बहुत से तेजों को बढ़ाते हुए, बुद्धि के लिए मेरे करण (इन्द्रिय) वर्गो की ईश्वर, नित्य रक्षा करें।।५७।।

कूटैस्तु पञ्चभिरिदं गदितं हि यन्त्रम्
मन्त्रं ततोऽनु सततं मम तेज उग्रम् ।
तेजोमयं महति नित्यपरायणस्थं
तन्त्रो हृदि प्रविततां तनुतां सुबुद्धिम् ।।५८।।

यह मन्त्र पञ्चकूटों से युक्त कहा गया है। ऐसा मन्त्र, उनके बाद मेरे उग्रतेज की रक्षा करे। महान् तेज से युक्त नित्यपरायण, साधक के विशालहृदय में, यह तन्त्र सुन्दरबुद्धि को संचारित करे।।५८।।

आधारे वाग्भवः पातु कामराजस्तथा हृदि ।
भ्रुवोर्मध्ये च शीर्षं च पातु त्रैलोक्यमोहनः ।।५९।।

आधार में वाग्भवबीज तथा हृदय में कामराज, भौहों के मध्य और शिर में त्रैलोक्यमोहन रक्षा करे।।५९।।

विततकुलकलाज्ञा कामिनी भैरवी या
त्रिपुरपुरदहाख्या सर्वलोकस्य माता ।
वितरतु मम नित्यं नाभिपद्मे सकुक्षौ
गणपतिवनिता मां रोगहानिं सुखं च ।।६०।।

कलाज्ञा कुल को बढ़ावें, जो कामिनी, भैरवी, त्रिपुरदहा नामकी समस्त लोकों की माता, गणपति की पत्नी, कुक्षि के सहित मेरे नाभिकमल में मेरे लिए रोगहानि एवं सुख प्रस्तुत करें।।६०।।

योगैर्जगन्ति परिमोहयतीव नित्यं
जागर्ति या त्रिपुरभैरवभामिनीति ।
सायं च भावकलिता मम पञ्चभागे
नासाक्षिकर्णरसनात्वचि पातु नित्यम् ।।६१।।

जो त्रिपुरभैरव की पत्नी, नित्य जगत को सब ओर से मोहित करती हुई, स्वयं जागृत हैं, वही भाव से युक्त हो नित्य मेरे नाक, आँख, कान, जीभ और त्वचा नामक पाँचभागों की रक्षा करें।।६१।।

आद्या तु त्रिपुरेयं या मध्या या कामदायिनी ।
त्रिधा तु ह्यवतां नित्यं देवी त्रिपुरभैरवी ।।६२।।

ये त्रिपुरा जो आद्या, मध्या एवं कामदायिनी इन तीनों नामों से युक्त हैं। वही त्रिपुरभैरवी देवी, नित्य मेरी तीनों प्रकार से रक्षा करें।।६२।।

उदयदिशि सदा मां पातु बाला तु माता
यमदिशि मम मध्याभद्रमुग्रं विदध्यात् ।
वरुणपवनकाष्ठामध्यतो भैरवी मा-
मवतु सकलरक्षां कुर्वती सुन्दरी मे ।।६३।।

उदयदिशा (पूर्वदिशा) में माता बाला, सदा मेरी रक्षा करें, यमदिशा (दक्षिण-दिशा) में मध्या देवी मेरे उग्र (अधिक) कल्याण का विधान करें, वरुणदिशा (पश्चिम दिशा) में एवं पवनकाष्ठा (वायव्यकोण) में भैरवी देवी, मेरी रक्षा करें। सुन्दरीदेवी मेरी सबप्रकार की रक्षा करें।।६३।।

महामाया महायोनि विश्वयोनिः सदैवतु ।
सा पातु त्रिपुरा नित्यं सुन्दरी भैरवी च मा ।।६४।।

जो महामाया, महायोनि, विश्वयोनि, सुन्दरी, त्रिपुरा और भैरवी हें, वे सदैव नित्य मेरी रक्षा करें।।६४।।

ललाटे सुभगा देवी पूर्वस्यां दिशि कामदा ।
नित्यं तिष्ठतु रक्षन्ती सदा त्रिपुरसुन्दरी ।।६५।।

ललाट में सुभगा देवी, पूर्वदिशा में कामदा देवी, तथा नित्य, त्रिपुरसुन्दरी देवी, सदैव मेरी रक्षा करती हुई स्थित रहें।।६५।।

भ्रुवोर्मध्ये तथाग्नेय्यां दिशि मां त्रिपुरा च या।
वर्धयन्ती भगणान् पातु त्रिपुरभैरवी ।।६६।।

त्रिपुरा मेरे भौहों के बीच और आग्नेयदिशा में तथा जो त्रिपुरभैरवी देवी हैं, वे मेरे ऐश्वर्यसमुदाय को बढ़ाती हुई रक्षा करें ।।६६।।

वदने दक्षिणस्यां च दिशि मां भगसर्पिणी।
त्रिपुरा यमदूतादीन् वारयन्ती सदाऽवतु ।।६७।।

मुखमण्डल एवं दक्षिणदिशा में भगसर्पिणी देवी मेरी रक्षा करें तथा त्रिपुरादेवी यमदूतों को रोकती हुई सदैव मेरी रक्षा करती रहें ।।६७।।

कर्णयोः पश्चिमायां च दिशि मां भगमालिनी।
अयोनिजा जगद्योनिर्बाला मां त्रिपुरावतु ।।६८।।

दोनों कानों और पश्चिमदिशा में भगमालिनी देवी मेरी रक्षा करें तथा योनि से न उत्पन्न होने वाली किन्तु स्वयं समस्त संसार को उत्पन्न करने वाली बालात्रिपुरा मेरी रक्षा करें।।६८।।

अनङ्गकुसुमाकण्ठे प्रतीच्यां दिशि सुन्दरी।
त्रिपुरभैरवी माता नित्यं पातु महेश्वरी ।।६९।।

अनङ्गकुसुमा देवी मेरे कण्ठ में, सुन्दरी देवी पश्चिमदिशा में तथा माता त्रिपुर-भैरवी जो स्वयं महेश्वरी हैं, नित्य मेरी रक्षा करें।।६९।।

हृदि मारुतकाष्ठायां देवी चानङ्गमेखला।
नाभावुदीच्यां दिशि मां मातङ्गी त्रिपुरापरा ।।७०।।

हृदय और मारुत्काष्ठा (वायव्यकोण) में अनङ्गमेखला देवी तथा नाभि एवं उत्तरदिशा में परा त्रिपुरा, मातङ्गी देवी मेरी रक्षा करें।।७०।।

अनङ्गमदना देवी पातु त्रिपुरभैरवी।
ऐशान्यां दिशि लिङ्गे च मदविभ्रममन्थरा ।।७१।।

अनङ्गमदना देवी और त्रिपुरभैरवी देवी ईशानकोण में मद-विभ्रम से मन्थर गति वाली, मदविभ्रममन्थरा देवी लिङ्ग में स्थित हो, मेरी रक्षा करें।।७१।।

वाग्वादिनी रक्षतु मां सदा त्रिपुरभैरवी।
गुदमेढ्रान्तरे पातु रतिस्त्रिपुरभैरवी ।।७२।।

वाग्वादिनी त्रिपुरभैरवी सदैव मेरी रक्षा करें तथा रतिनाम वाली त्रिपुरभैरवी देवी गुदा एवं मेढ्रस्थानों में रक्षा करें।।७२।।

हृदयाभ्यन्तरे प्रीतिः पातु त्रिपुरभैरवी।
भ्रूनासयोर्मध्यदेशे नित्यं पातु मनोभवः ।।७३।।

हृदयाभ्यन्तर में प्रीति नामवाली त्रिपुरभैरवीदेवी तथा भौहों एवं नासिका के मध्यदेश में कामदेव मेरी रक्षा करें।।७३।।

द्रावणी मां ग्रहात् पातु वाणी मां दुर्गमूर्धनि ।
क्षोभणो मां सदा पातु क्रव्याद्भ्योऽनिष्टभीतितः ।।७४।।

द्रावणदेवी मेरे प्रभाव की, दुर्ग और मूर्धा की वाणीदेवी एवं क्षोभणदेवी मांशभोजी जन्तुओं तथा अनिष्ट के भय से सदैव मेरी रक्षा करें।।७४।।

वशीकरणवाणी मामग्नितः पातु राजतः ।
आकर्षणाह्वया वाणी मां पातु शस्त्रघाततः ।।७५।।

वशीकरणवाणी अग्नि और राजा के भय (राजकीय भय) से मेरी रक्षा करें, आकर्षण नामक वाणीशस्त्र के घात से मेरी रक्षा करें।।७५।।

मोहनाः सर्वभूतेभ्यः पिशाचेभ्यो जलात्तथा ।
नित्यं पातु महाबाणस्तन्वानः काममुत्तमम् ।।७६।।

सभी प्राणियों, पिशाचों तथा जल से महाबाणसंधान किये हुए उत्तम काम की मोहन, नित्य रक्षा करे।।७६।।

माला मां शास्त्रबोधाय शास्त्रवादे सदाऽवतु ।
पुस्तकं पातु मनसि संकल्पं वर्धयन् मम ।।७७।।

शास्त्र के ज्ञान के लिए माला सदैव शास्त्रसम्बन्धीवाद में मेरी रक्षा करे तो पुस्तक, मेरे मन में संकल्पों को बढ़ाते हुये मेरी रक्षा करे।।७७।।

वरः पातु सदा धाम्नि धामतेजो विवर्धयन् ।
अभयं ह्यभयं धत्तां सर्वेभ्यो भूतिभावनम् ।।७८।।

वरमुद्रा घर के तेज को बढ़ती हुई घर में मेरी रक्षा करे । अभयमुद्रा को धारण करने वाली भूतिभावन को सबसे अभय प्रदान करे ।।७८।।

ऊर्ध्वाधोभावभूतस्थिततरकरणै रक्तकीर्णा सुचक्रा
कालाग्निप्रख्यरोचिः सकलसुरगणैरर्चिता मुण्डमाला ।
ज्ञानध्यानैकतानप्रबलबलकरं तत्त्वभूतप्रतिष्ठ
पातादूर्ध्वं तथाधः सकलभयभृतो भोगभीरोस्तु विद्या ।।७९।।

देवी की मुण्डमाला, जो क्रम से स्थित होने सम्बन्धित शिरों के नीचे-ऊपर स्थित होने, परस्पर रक्त से भरी होने के कारण सुन्दरढंग से ग्रथित है। जो कालाग्नि के समान किरणों से प्रकाशमान है। जिसकी समस्त देवगण अर्चन किया करते हैं। वह हमारे ज्ञान तथा ध्यान की एकरुपता से प्रबल-बल प्रदान करे। तत्त्वस्वरूप में प्रतिष्ठित करने वाली हो। विद्या ऊपर-नीचे दोनों ही ओर से सभी भयप्रदभोग के भय से रक्षा करे।।७९।।

हः पातु हृदि मां नित्यं सः शीर्षे पातु नित्यशः ।
रः पातु गुह्यदेशे मां सौः पातु कण्ठपार्श्वयोः ।।८०।।

हः नित्य मेरे हृदय तथा सः नित्य ही मेरे मस्तक की रक्षा करे। रः मेरे गुह्यदेश की, सौः मेरे कण्ठ और पार्श्वभाग की रक्षा करे ।।८०।।

रकारो मम नाडीषु शिरः सौः पातु सर्वदा ।
शक्रः पातु सदाकाशे ब्रह्मा रक्षतु सर्वतः ।।८१।।

रकार सदैव मेरे नाड़ियों की तथा सौः मेरे शिर की रक्षा करे, इन्द्र सदैव आकाशतत्व की रक्षा करें तथा ब्रह्मा सब ओर से मेरी रक्षा करें।।८१।।

विद्या विद्याभाविनी कामरूपा,
स्थूला मायया यादिमाया ।
ब्रह्मेन्द्राद्यैरर्चिता भूतिदात्री
रक्षां कुर्यात् सर्वतो भैरवी माम् ।।८२।।

जो आदि माया हैं, वे स्थूल और सूक्ष्म रूपों वाली विद्या को उत्पन्न करने वाली, कामरूपा विद्या, माया से मेरी रक्षा करे, ब्रह्मा और इन्द्र आदि देवताओं द्वारा पूजी गई तथा ऐश्वर्य प्रदान करने वाली, भैरवीदेवी सब ओर से मेरी रक्षा करें।।८२।।

आद्या मध्या भाविनी नीतियुक्ता,
सम्यग्ज्ञानज्ञेयरूपापरा या ।
आदावन्ते मध्यभागे च तारा
पायाद् देवी त्रैपुरी भैरवी या ।।८३।।

जो आद्या, मध्या, भाविनी, नीति से युक्त, सम्यक्ज्ञान एवं ज्ञेय-रूपवाली, अपरा, त्रिपुराभैरवी, तारा देवी हैं, वे मेरे आदि, अन्त और मध्य- भाग की रक्षा करें।।८३।।

यन्मन्त्रभागतन्त्राणां यन्त्राणामपि केशवः ।
ब्रह्मा रुद्रश्च जानाति तत्वं नान्यो नमोऽस्तु तान् ।।८४।।

तन्त्रों के जिन मन्त्रभाग और यन्त्रों के तत्व को ब्रह्मा, विष्णु तथा रुद्र (शिव) ही जानते हैं, अन्य कोई नहीं जानता, उन को नमस्कार है।।८४।।

त्वं ब्रह्माणि भवानि विश्वभवितुर्लक्ष्मीररतिर्योगिनी
त्वं वाग्मी सुभगा भवायुतयुगं मंत्राक्षरं निष्कलम् ।
वर्णास्ते निखिला स्तनावचलितस्त्वं कामिनीकामदा
त्वं देवि त्रिपुरे कवित्वममलं सौभाग्यमुच्चैः कुरु ।।८५।।

आप ब्रह्मा की पत्नी ब्रह्माणी, भव (शिव) की पत्नी भवानी हैं, आप ही विश्व के पालनकर्ता विष्णु की लक्ष्मी, रति योगिनी हैं। आप वाग्मी (वक्ता), सुभगा हैं। आप शिव से निकले निष्कल मन्त्राक्षर हैं। समस्त वर्ण आपके स्तनचलन के ही परिणाम

हैं। आप कामनापूर्ति करने वाली कामिनी हैं। हे देवि त्रिपुरा ! आप मुझे अमल कवित्व और उच्चसौभाग्य प्रदान कीजिये ॥८५॥

इदं तु कवचं देव्या यो जानाति स मन्त्रवित् ।
नाधयो व्याधयस्तस्य न भयं च सदा क्वचित् ॥८६॥

देवी के इस कवच को जो जानता है वही वास्तविक मन्त्रवेत्ता है । उसे कभी शारीरिक या मानसिक रोग नहीं होते। वह सदैव, कभी भी, भय नहीं प्राप्त करता॥८६॥

इति ते परमं गुह्यमाख्यातं कवचं परम् ।
तद्भजस्व महाभाग ततः सिद्धिमवाप्स्यसि ॥८७॥

हे महाभाग ! यह अत्यन्तगोपनीय एवं श्रेष्ठ कवच, तुमसे कहा गया। तुम उसी का अभ्यास करो। उससे ही तुम सिद्धि प्राप्त करोगे ॥८७॥

इदं पवित्र परमं पुण्यं कीर्तिविवर्धनम् ।
त्रिपुरायास्त्रिमूर्तेस्तु कवचं मयकोदितम् ॥८८॥

यह त्रिपुरा की त्रिमूर्ति का अत्यन्त, पवित्र और पुण्यदायक, यश को बढ़ाने वाला कवच, मेरे द्वारा कहा गया है ॥८८॥

यः पठेत् प्रातरुत्थाय स प्राप्नोति मनोगतम् ।
लिखितं कवचं यस्तु कण्ठे गृह्णाति मन्त्रवित् ॥८९॥
न तस्य गात्रं कृन्तन्ति रणे शस्त्राणि भैरव ।
संग्रामे शास्त्रवादे च विजयस्तस्य जायते ॥९०॥

हे भैरव ! इसे जो प्रातः काल उठ कर पढ़ता है, वह मनोगत कामनाओं को प्राप्त कर लेता है । जो मन्त्रवेत्ता इस कवच को लिखकर अपने कण्ठ में धारण करता है, युद्ध में उसके शरीर पर कोई शस्त्र, घात नहीं करते। युद्ध और शास्त्रार्थ दोनों में उसकी विजय होती है ॥८९-९०॥

इदं कवचमज्ञात्वा यो जपेत् त्रिपुरां नरः ।
स शस्त्रघातमाप्नोति भैरवीं सुन्दरीमपि ॥९१॥

इस कवच को न जानकर जो साधक मनुष्य ! त्रिपुरा, भैरवी और सुन्दरी में से किसी का भी जप करता है, वह शस्त्रघात को प्राप्त करता है॥९१॥

बीजमुच्चारयेत् स्वस्थो गतवाग् दोषनिश्चितः ।
संयोगबोधः प्रत्येकभेद - श्रवणगोचरः ।
यथैव जायते सम्यग्यज्ञादिदोषवर्जितः ॥९२॥

जो वाणीरहित (मौन) हो, स्वस्थचित्त से दोषों को जानता हुआ, बीजमन्त्रों का उच्चारण करता है उसे इनका परस्पर संयोगबोध हो जाता है तथा प्रत्येक रहस्य श्रवणगोचर हो जाते हैं । वह यज्ञादिदोष से सम्यकरूप से रहित हो जाता है॥९२॥

यस्योच्चारणरणकृत्ये तु संयोगो बोधदूषणम् ।
प्रत्येकभिन्नताबोधः स कुष्ठी जायते नरः ॥९३॥

जिसके उच्चारणकर्म में संयोग और बोध सम्बन्धी दोष और प्रत्येक प्रकार की भिन्नता का बोध पाया जाता है, वह साधक मनुष्य, कोढ़ी होता है।।९३।।

न्यासानां प्रचुरत्वे तु फलानामपि भूरिता ।
उक्तन्यासो न हि त्याज्यो ह्यधिकं तु समाचरेत् ।।९४।।

न्यासों की अधिकता से फल में भी अधिकता होती है इसलिए उपर्युक्त न्यासों को नहीं छोड़ना चाहिये अपितु अधिक ही न्यास करना चाहिये।।९४।।

मयोक्तन्यासमज्ञात्वा न कृत्वा वा प्रमादतः ।
यः कुर्यात् पूजनं देव्या आप्नुयात् स महापदम् ।।९५।।

प्रमादवश इन न्यासों को, बिना जाने या किये, जो साधक देवी का पूजन करता है, वह महान् आपत्तियों को प्राप्त करता है।।९५।।

मन्त्राक्षरस्य विन्यासः सर्वमन्त्रेषु कीर्तितः ।
वैष्णवे चाथवा रौद्रे महाभागेऽथवा पुनः ।।९६।।
मन्त्रे कलेवरगते महामायाप्रपूजने ।
मंत्रन्यासे न वा कुर्यात् कुर्यात् वान्यत्र वाचरेत् ।।९७।।

विष्णुसम्बन्धी या शिवसम्बन्धी महाभागा (देवी), देवताओं के मन्त्रों में शरीर पर या महामाया के विशेष पूजन में, सभी मन्त्रों के मन्त्राक्षरों को विशेष प्रकार से न्यास करना चाहिये अथवा अन्यत्र मन्त्र न्यास करे।।९६-९७।।

अङ्गरागेषु सिन्दूरं पानेषु मदिरा तथा ।
वस्त्रं रक्तं तु कौशेयं त्रिपुराप्रीतिदं मतम् ।।९८।।

अङ्गरागों में सिन्दूर, पेयपदार्थों में मदिरा तथा वस्त्रों में लालरेशमीवस्त्र देवी त्रिपुरा को विशेष प्रसन्नता देने वाले बताये गये हैं ।।९८।।

त्रयो दीपाः प्रदातव्याः पञ्च वा सप्त भैरव ।
इतो न्यूनान् न प्रदद्यात् त्रिपुरायै कदाचन ।।९९।।

हे भैरव ! पूजन में तीन, पाँच या सात दीप, प्रदान करना चाहिये।। इनसे कम दीप, त्रिपुरादेवी के पूजन में कभी भी प्रयोग नहीं करना चाहिये।।९९।।

मल्लिकामालतीकुन्दं वको द्रोणः सिताम्बुजम् ।
शुक्लपुष्पाणि त्रिपुराप्रीतिदानि तु भैरव ।।१००।।

हे भैरव ! मल्लिका (चमेली), मालती, कुन्द, बक, द्रोण, श्वेत-कमल और सफेदपुष्प त्रिपुरा को प्रसन्नता देने वाले होते हैं ।।१००।।

रक्ताम्बुजं जवा रक्ता करवीरोऽथ कोमलः ।
रक्तं त्रिपुरभैरव्याः प्रीतिदा स्नेहकाञ्चनैः ।।१०१।।

देवी त्रिपुरा को प्रेम से अर्पित लालकमल, लालगुड़हल, कोमल कनैल, सुवर्ण से भी अधिक प्रसन्नता देने वाले होते हैं।।१०१।।

इदं ते कथितं पुत्र संक्षेपादेव भैरव ।
अवाप्य सिद्धिं परमां स्वयं विस्तारयिष्यसि ॥१०२॥

हे पुत्र ! हे भैरव ! यह उपासनाक्रम मेरे द्वारा तुमसे संक्षेप में कहा गया इसके अनुसार परम सिद्धि को प्राप्तकर, तुम स्वयं इनका विस्तार करोगे ॥१०२॥

आराध्य त्वं महामायामवाप्य च गणेशताम् ।
कल्पमन्त्रौधमन्त्राणां भविष्यसि वितानक ॥१०३॥

तुम महामाया की आराधना करके गणाध्यक्षपद को प्राप्त करोगे तत्पश्चात् कल्प (पूजाविधान) सम्बन्धी मन्त्रों के समूह तथा अनेक मन्त्रों के विस्तारकर्त्ता होगे॥१०३॥

अस्यास्त्रिपुरभैरव्याः शुक्लरूपाणि यानि तु ।
तानि सारस्वताख्यानि मन्त्राः सम्यगुदीरिताः ॥१०४॥

इस त्रिपुरभैरवी के जो सरस्वती आदि के श्वेतरूप हैं उनके मन्त्र भलीभाँति मेरे द्वारा कहे गये हैं॥१०४॥

सरस्वती तु या देवी वीणापुस्तकधारिणी ।
स्रक् कमण्डलुहस्ता च दक्षिणे शुक्लपर्णिका ॥१०५॥
महाचलस्य पृष्ठस्था सितपद्मोपरिस्थिता ।
शुक्लवर्णा शुक्लवस्त्रा शुक्लाभरणभूषिता ॥१०६॥

जो सरस्वती देवी हैं, वे वीणा और पुस्तक धारण करने वाली, हाथों में माला एवं कमण्डलु धारण करने वाली तथा दाहिने में श्वेतपर्णिका धारण की महान् पर्वत के पृष्ठपर श्वेतपद्मपर स्थित हैं। वे श्वेतवर्ण की हैं, वे श्वेतवस्त्र तथा श्वेतआभूषण, धारण करने वाली हैं॥१०५-१०६॥

तस्यास्तु वाग्भवाद्याभ्यां नेत्रबीजं द्वितीयकम् ।
कृत्वान्ते विनियोज्यैव मन्त्रं प्राक्प्रतिपादितम् ॥१०७॥

उसके ही मन्त्र, वाग्भव प्रथम तथा नेत्रबीज दूसरे का प्रयोग करे, उनके अन्य मन्त्र पहले ही कहे गये हैं॥१०७॥

वरदाभयहस्ता च मालापुस्तकधारिणी ।
शुक्लपद्मासनगता सा परा वाग् सरस्वती ॥१०८॥

जो वरद और अभय की मुद्रावाले हाथों तथा हाथों में माला एवं पुस्तक धारण करने वाली, श्वेतपद्मासन पर विराजमान सरस्वती कही गई हैं, वे ही परावाक् हैं॥१०८॥

बालाबीजाद्यक्षरं तु द्विरुक्तं चार्धचन्द्रकम् ।
मन्त्रमस्याः पुरा प्रोक्तं तन्त्रं सामान्यमीरितम् ॥१०९॥

बालाबीज का पहला अक्षर अर्धचन्द्र के साथ यदि दो बार कहा जाय तो इसका मन्त्र बनता है, जो पहले ही कहा गया है। इनका सामान्यतन्त्र (पूजाविधान) भी मैंने पहले ही कह दिया है॥१०९॥

एषा तु या रक्तवर्णा मुण्डमालाविभूषिता ।
तस्याः प्रोक्तः पुरा मन्त्रः सा तु वृद्धा सरस्वती ॥११०॥
षष्ठमन्त्रस्तथैतस्यास्त्रयोदशनिरूपणे ॥१११॥

यह जो मुण्डमाला से विभूषित लालरङ्ग की देवी हैं, जिनका मन्त्र पहले ही कहा गया है, वे ही वृद्धा सरस्वती हैं । पूर्वोक्त कहे तेरह मन्त्रों के समुदाय में छठा मंत्र उसी का बताया गया है॥११०-१११॥

एषा कवित्वशास्त्रौध - तत्त्ववादविनिश्चये ।
सुखसम्पत्करा प्रोक्ता नित्यमेव तु भैरव ॥११२॥

हे भैरव ! ये कवित्त्व और शास्त्रसमूह के तत्त्ववाद के निश्चयहेतु उपास्य तथा नित्य सुख-सम्पत्ति प्रदान करने वाली कही गई हैं॥११२॥

अस्या व्यस्तसमस्तैश्च शुक्लरक्तादिभेदतः ।
चतुःषष्टिमूर्तयश्च त्रैपुरादुत वाग्भवम् ॥११३॥
महामाया योगनिद्रा मूलभूता जगत्प्रसूः ।
जगन्माता जगद्धात्री विद्याविद्यापरात्मिका ॥११४॥

व्यस्त, समस्त, श्वेत और रक्तभेद से त्रिपुरा वाग्भव, महामाया, योगनिद्रा, मूलभूता, जगत्प्रसू, जगत्माता, जगद्धात्री, विद्या, अविद्या, परात्मिका आदि चौंसठ मूर्तियाँ, इसी की हैं ॥११३-११४॥

तस्या एव महाभाग त्रिपुराद्या विभूतयः ।
प्रस्तुताः कथिता नित्यं ताः स्वयंगत एव हि ॥११५॥

हे महाभाग ! ये त्रिपुरा आदि वर्णित देवियाँ उन्हीं महादेवी की विभूतियाँ कही गई हैं। वे नित्य हैं तथा स्वयं जाने-जाने योग्य हैं॥११५॥

इति ते कथितं पुत्र महादेव्या मनोहरम् ।
रहस्यं वामदाक्षिण्यं मन्त्रसिद्धिं शृणुष्व मे ॥११६॥

॥ इति श्रीकालिकापुराणे पुरश्चर्याविधिर्नाम पञ्चसप्ततितमोऽध्यायः ॥७५॥

हे पुत्र ! यह तुमसे महादेवी के मनोहर, वाम और दक्षिण के रहस्य को कहा गया। अब मुझसे उसकी मन्त्रसिद्धि को सुनो॥११६॥

श्रीकालिकापुराण में पुरश्चर्याविधिनामक पचहत्तरवाँ अध्याय सम्पूर्ण हुआ॥७५॥



षट्सप्ततितमोऽध्यायः
वेतालभैरवसिद्धिलाभः

।। श्रीभगवानुवाच ।।

मन्त्रशुद्धिमवेक्ष्यैव गृह्णीयान्मन्त्रमुत्तमम् ।।१।।

श्रीभगवान् बोले—मन्त्रशुद्धि का विचार करके ही उत्तममन्त्र, ग्रहण करना चाहिये।।१।।

तत्र सिद्धं सुसिद्धं च साध्यं शात्रवमेव च ।
मन्त्रं चतुर्विधं प्रोक्तं तद्विद्ध्यक्षरभेदतः ।।२।।

इस विषय में अक्षरभेद से मन्त्र, सिद्ध, सुशिद्ध, साध्य और शात्रव चार प्रकार के कहे गये हैं ।।२।।

वर्णक्रमः शाश्वतस्तु यो मया भाषितः पुरा ।
तत्रादौ भैरव ज्ञात्वा पश्चाच्चक्रं शृणुष्व मे ।
वर्णानां तु मुखादीनां वैष्णवीतन्त्रसंज्ञक ।।३।।

हे भैरव ! वैष्णवीतन्त्र के अन्तर्गत मुख्यवर्णों का जो वर्णक्रम मेरे द्वारा पहले बताया गया, वही शाश्वत है, पहले उसे जानकर, चक्रों के विषय में मुझसे सुनो ।।३।।

यः प्रोक्तोऽभून्महामन्त्रस्तस्यासन्नक्षराणि तु ।
मूलभूतानि तान्येव ततोऽन्यानपि वर्धयेत् ।।४।।

जो पहले महामन्त्र बताया गया है, उसके अक्षर ही मूलभूतवर्ण हैं। उन्हीं से अन्य को विकसित करे।।४।।

अकारश्च ककारश्च चटकारौ तथैव च ।
तपकारौ यकारश्च वर्गाद्याः परिकीर्तिताः ।।५।।

अ, क, च, ट, त, प, य ये अक्षर, वर्णों के वर्गों के, आदिअक्षर कहे गये हैं जो वैष्णवीतन्त्र में मूलभूतरूप में वर्णित हैं ।।५।।

अ इ उ ऋ लृ मूल्लैते स्वरा अदीर्घदीर्घकाः ।
ए ऐ ओ औ विसर्गश्च बिन्द्वादियौगिकस्तथा ।
ध्वनेरन्तरजाश्चेति कीर्तितास्तु स्वरा अमी ।।६।।

अ, इ, उ, ऋ, लृ, ये मूलस्वर अदीर्घ (ह्रस्व) और दीर्घ दोनों ही प्रकार के

होते हैं। ए, ऐ, ओ, औ, विसर्ग एवं बिन्दु (अनुस्वार), ध्वनि के भेद से उत्पन्न, ये वर्ण, यौगिकस्वर कहे गये हैं ।।६।।

खकारगकारौच घ ङो क वर्गः प्रकीर्तितः ।
व्यञ्जनकारादिछजौ टकारः परमस्मृतः ।।७।।
ठकाराश्च डकारश्च भैरवशब्दादिरेव च ।
णकारान्तस्तृतीयोऽयं वर्गोष्ठादिः प्रकीर्तितः ।।८।।
थकारश्च दकारश्च धर्मशब्दादिरेव च ।
नवशब्दस्य चैवादिश्चतुर्थो वर्ग उच्यते ।।९।।
फलशब्दस्य यश्चादिर्बहुशब्दादिरेव च ।
भकारो मनः शब्दादिः पञ्चमो वर्ग उच्यते ।।१०।।
यकारश्च रकारश्च लकारो वस्तथैव च ।
एभिश्चतुर्भिर्वर्गोऽयं षष्ठो भैरव उच्यते ।।११।।

हे भैरव ! ख, ग, घ, ङ, कवर्ग, छ, ज, झ, ञ, चवर्ग, तत्पश्चात् ट, ठ, ड, भैरव (ड) जिसके आदि में है वह ढ, तथा णकार तक तृतीयवर्ग ट वर्ग है जिसे ओष्ठादिवर्ग भी कहा गया है। थ, द और धर्मशब्द का आदि अक्षर ध, नव शब्द का आदि अक्षर न, यह चौथा वर्ग तवर्ग कहा गया है। फल शब्द का प्रारम्भिक वर्ण फ, बहुशब्द का जो आदि वर्ण ब, भ एव मन शब्द का आदि वर्ण म, ये पञ्चम वर्ग प- वर्ग कहे गये हैं। य, र, ल एवं व इन चारों वर्णों से व्यञ्जनों का छठावर्ग यवर्ग कहा जाता है।।७-११।।

शषसा हः क्षकारश्च संयोगः परिवेदकः ।
पञ्चभिः शेषवर्गोऽयं सप्तमः परिकीर्तितः ।।१२।।

श, ष, स, ह, क्ष इन पाँच वर्णों से बना यह अन्तिमवर्ग, संयोग, परिवेदक या सातवाँवर्ग कहा गया है ।।१२।।

संयोगायोगसंलोमप्रतिलोमैरिमे सुत ।
वर्णाः स्युर्मन्त्रानामादौ वाङ्मात्रेऽपि च भैरव ।।१३।।

हे पुत्र, भैरव ! संयोग, अयोग, संलोम, प्रतिलोम भेद से ये वर्ण चार प्रकार के होते हैं जो मन्त्रों के आदि में वाणी मात्र में प्रयुक्त होते हैं।।१३।।

चर्तुवर्गप्रदा वर्णाः सुखदुःखकरास्तथा ।
रोगं च तेजसम्पूज्यपूजकाः परिकीर्तिताः ।।१४।।

ये वर्ण चारोप्रकार के पुरुषार्थ (अर्थ, धर्म, काम, मोक्ष), सुख, दुःख, रोग एवं तेज कारक तथा पूज्य और पूजक कहे गये हैं।।१४।।

अहं विष्णुश्च ब्रह्मा च गायत्री ब्रह्ममातृकाः ।।१५।।
अपरं ब्रह्मवर्णार्थे परब्रह्मसुखप्रदम् ।
अपरं ब्रह्मकुशलः परब्रह्माधिगच्छति ।।१६।।

मैं (शिव), विष्णु, ब्रह्मा, ब्रह्ममातागायत्री और अन्य ब्रह्मवर्ण (विद्योपासकों) के लिए परब्रह्म का सुख देने वाले कहे गये हैं। अन्य साधक भी जो ब्रह्मकौशल (ज्ञान) से युक्त है, वह भी परब्रह्म को प्राप्त करता है ।।१५-१६।।

सिसृक्षुरीश्वरो वर्णाज्जगन्ति स्वेच्छया पुनः ।
ससर्ज मम वक्त्रे तां ब्रह्मवक्त्रे च वै न्यधात् ।।१७।।

वर्णों से जगत् की इच्छा रखने वाले ईश्वर ने स्वेच्छा से उनकी सृष्टि कर उन वर्णों को मेरे एवं ब्रह्मा के मुख में स्थापित किया।।१७।।

अहं तु सकलान् वर्णान् न्यस्य भैरव तन्त्रकम् ।
अकारबहुलं पुत्र ज्ञानमार्गविवर्धयन् ।।१८।।

हे पुत्र भैरव ! मैंने अकार के विस्तारवाले, सभी वर्णों को, ज्ञानमार्ग को बढ़ाते हुये, तन्त्रशास्त्र में न्यस्त किया है ।।१८।।

य इमे गदिता वर्णा मया वर्णविनिश्चये ।
मन्त्रशुद्धिविवेकार्थं वर्णचक्रं ततः शृणु ।।१९।।

मन्त्रशुद्धिविवेकहेतु मेरे द्वारा कहे गये ये वर्ण, वर्णनिश्चय (वर्णों के निर्धारण) के लिए कहे गये हैं। अब वर्णचक्र को सुनो।।१९।।

शक्तिशम्भुस्वरूपिण्यो रेखे द्वे प्रथमं न्यसेत् ।
तन्मध्यतः पुनारेखे विष्णुलक्ष्मीतले तथा ।।२०।।
तयोस्तु रेखयोर्मध्ये द्वे रेखे समतो न्यसेत् ।
तस्य चक्रस्य चारेषु रेखास्तु परिसंख्यया ।।२१।।

शक्ति और शिव सम्बन्धी दो रेखायें पहले खींचे, उनके मध्य में विष्णु एवं लक्ष्मी स्वरूपिणी रेखाओं का लेखन कर विष्णु-लक्ष्मी के रेखा के समानान्तर दो रेखाएँ खींचे। इसी प्रकार दूसरी ओर उतनी ही रेखायें उस चक्र के निर्माण हेतु खींचनी चाहिये।।२०-२१।।

चतस्रस्तु प्रदातव्याः स्वरमध्ये तु भैरव ।
भिन्नानां च तथा वर्णाः सन्धयोऽष्टौ प्रकीर्तिताः ।
नेमयस्तु चतस्रोऽस्य सन्धिमध्येषु कीर्तिताः ।।२२।।

हे भैरव ! उसमें चारो ओर स्वरों के बीच में भिन्न-भिन्न वर्ण और आठ संधियों (य से ह तक) के वर्ण कहे गये हैं । इसकी संधियों के मध्य चार नेमियाँ कही गई हैं।।२२।।

अष्टारसंयुतं चक्रं चतुर्नेमिसमन्वितम् ।
बहिर्वेष्टनसंयुक्तं वर्णचक्रं प्रकीर्तितम् ।।२३।।

आठ अक्षरों और चारो नेमियों से समन्वित तथा बाहर से घिरा हुआ चक्र, वर्णचक्र कहा गया है।।२३।।

मेषादीनां च राशीनामुदयास्तप्रतिज्ञया ।
इदमेव भवेच्चक्रं ज्ञानश्रीवृद्धि-कारकम् ।।२४।।

मेषादि को आरम्भ और अन्त के क्रम से जोड़ने पर यही वर्णक्रम (संभवतः मन्त्र महोदधि का अकडमचक्र) साधक के ज्ञान और श्री के विकास का कारक हो जाता है।।२४।।

इदं चक्रं लिखित्वा तु समभूमावुदङ्मुखः ।
प्राङ्मुखो वा लिखेद् वर्णाञ्छुचिरिष्टं नमन् गुरुम् ।।२५।।

इस चक्र को सम-भूमि पर, उत्तरमुँह या पूर्वमुँह लिख कर, अपने इष्ट एवं गुरु को नमस्कार करके, पवित्र हो, साधक वर्णों को लिखे।।२५।।

प्रदक्षिणं लिखेत् तस्मिन् वर्णास्तेष्वेव तु क्रमात् ।
पुरोनेमावकारं तु रकारं चापि वै लिखेत् ।।२६।।
अकारं वर्जयेद् दीर्घमीकारं च स्वरेषु वै ।।२७।।

उस चक्र में वर्णों को प्रदक्षिणाक्रम (दक्षिणावर्त) से क्रमशः लिखे। पहले नेमियों में क्रमशः अ और र लिखे इस क्रम में स्वरों में आकार एवं दीर्घ ईकार न लिखे।।२६-२७।।

अकारादिक्षकारान्तं झ ट ञ ण विवर्जितम् ।
प्रदक्षिणक्रमादेव लिखित्वा वर्णसंचयम् ।।२८।।
स्वनामाद्यक्षरं गृह्य कुर्यात् तु गणनक्रमम् ।
मन्त्रस्याद्यक्षरं यावत् सिद्धाद्यं तत्र योजयेत् ।।२९।।

झ ट ञ ण वर्णों को छोड़कर अकार से क्षकार पर्यन्त वर्णों को प्रदक्षिणाक्रम से लिखकर अपने नाम के पहले अक्षर से गणना कर साधक, मन्त्र के आदिअक्षर तक गिनकर, सिद्धसाध्यादि की योजना करे।।२८-२९।।

नवैकपंचके सिद्धः साध्यः षड्युग्मपङ्क्तिषु ।
त्रिसप्तैकादशेष्वेव सुसिद्धः परिकीर्तितः ।
द्वादशाष्टचतुर्थेषु शात्रवः परिकीर्तितः ।।३०।।

यह संख्या यदि नव या पाँच हो तो वह मन्त्र साधक के लिए सिद्ध, छः या दो हो तो साध्य, तीन, सात, ग्यारह हो तो सुसिद्ध, चार, आठ, बारह हो तो शात्रव कहा गया है।।३०।।

सिद्धेनैवाचिरात् सिद्धिः साध्यः कालेन सिध्यति ।
कामान्नाशयते शत्रुः सुसिद्धः सिद्धिदोऽचिरात् ।।३१।।
यो यो वर्णक्रमः प्रोक्तो मन्त्रे दक्षिणगोचरे ।।३२।।

सिद्धमन्त्र की साधना से शीघ्रसिद्धि प्राप्त होती हैं, साध्यमन्त्र विलम्ब से सिद्ध होता है, शत्रु कोटिका मन्त्र कामनाओं का नाश करता है, तथा सुसिद्धमन्त्र शीघ्र ही साधक को सिद्धिप्रदान करने वाला होता है। यहाँ जो वर्णक्रम कहा गया है, वह दक्षिणभाव से मन्त्रसाधना हेतु कहा गया है।।३१-३२।।

वाम्याराधनमन्त्रेषु क्रमं शृण्विह भैरव ।
ऋलृ द्वयं ङ ॠ णना वर्ज्याश्च वर्णगोचरे ।
लिखेद् वामक्रमेणैव तत्र वर्णास्तु मंत्रवित् ।।३३।।

हे भैरव ! अब वामभाव से आराधन किये जाने वाले मन्त्रों के विषय में सुनो- दोनों ऋ लृ, तथा ङ, ॠ, ण, न वर्णों को वर्णविचार में छोड़ देना चाहिये तत्पश्चात् मन्त्रवेत्ता शेषवर्णों को वामक्रम से लिखे ।।३३।।

नृसिंहार्कवाराहाणां प्रासादप्रणवस्य च ।
एकाक्षरद्वयक्षराणां न सिद्धादिविचिन्तनम् ।।३४।।

नृसिंह, सूर्य, वाराह, के मन्त्रों, प्रासादमन्त्र, प्रणव, एकाक्षर एवं दो अक्षरों वाले मन्त्रों की दीक्षा में पूर्वोक्त, सिद्ध आदि भेदों का विचार नहीं करना चाहिये।।३४।।

बीजेषु चापि सर्वेषु दीक्षार्थेषु च भैरव ।
सिद्धादिचिन्ता नो कार्या ग्राह्यास्तु दश वश्यकम् ।।३५।।

हे भैरव ! सभी प्रकार के बीजमन्त्रों की दीक्षा के लिए भी सिद्ध आदि की चिन्ता नहीं करनी चाहिये। इनका विचार केवल दश वश्यकर्मों में ही करना चाहिये।।३५।।

सुसिद्धं कामदं ग्राह्यं साध्यसिद्धविचारणात् ।
न ग्राह्यः शात्रवो धीरैर्गृहीत्वाप्नोति चापदम् ।।३६।।

सुसिद्धमन्त्र कामनाओं को पूर्ण करने वाला होता है अतः उसे अवसर मिलते ही ग्रहण कर लेना चाहिये, सिद्ध और साध्यमन्त्रों को विचारपूर्वक ग्रहण करना चाहिये किन्तु शत्रुमन्त्र कभी नहीं ग्रहण करना चाहिये क्योंकि यदि इन्हें धीरसाधकों द्वारा ग्रहण किया जाय तो ये अनेक प्रकार की आपत्ति प्रदान करने वाले होते हैं ।।३६।।

यो यस्यैकाक्षरो मन्त्रस्तन्नाम्ना स निगद्यते ।
सहितश्चन्द्रबिन्दुभ्यां तद् बीजमिति गद्यते ।।३७।।

जो जिसका एकाक्षर मन्त्र होता है उसे उसी के नाम से कहा जाता है। नाम का पहला अक्षर ही चन्द्र-बिन्दु के सहित, सम्बन्धित देवता का बीजमन्त्र कहा जाता है।।३७।।

यथा शक्रो शकारः स्यात् सार्धचन्द्रः सबिन्दुकः ।
स एव शक्रबीजं स्यात् तथान्यत्रापि योजयेत् ।।३८।।

जैसे शक्र का पहला अक्षर 'श' अर्धचन्द्र और बिन्दु के साथ इन्द्रदेवता का बीजमन्त्र शँ हो जाता है। उसी प्रकार अन्य देवताओं के सम्बन्ध में भी विचार करना चाहिये।।३८।।

मन्त्रोद्धारेषु सर्वत्र परतः परतः पुरः ।
पूर्वतोऽपि परे कार्यमनुक्तः पूर्वपक्षकः ।।३९।।

जो पहले नहीं बताया गया है, वह यह है कि मन्त्रोद्धारों में सब जगह बाद वालों का पहले प्रयोग करना चाहिए और पहले का बाद में उपयोग करे।।३९।।

यदा षोडशसाहस्त्रं वैष्णव्या मन्त्रसञ्चयम् ।
चक्रं निरीक्ष्यते तत्र षोडशारं तु चक्रकम् ।।४०।।

जब वैष्णवी के सोलहहजार मन्त्रों का चक्र, विचारकरना हो तो सोलह अरों का चक्र निर्माण कर विचार करना चाहिये ।।४०।।

विंशतिस्तु सहस्त्राणि त्रिपुराया यदीक्षते ।
द्वात्रिंशारं तत्र चक्रं लेखनीयं सदा बुधैः ।।४१।।

यदि त्रिपुरा के बीस हजार मन्त्रों का विचार करना हो तो विद्वान् साधकों द्वारा सदैव बत्तीस अरों का चक्र बनाना चाहिये ।।४१।।

इदमेव महाचक्रं षोडशारादिकं कृती ।
कुर्यादधिकरेखाभिर्मन्त्रशुद्ध्यन्तरे सुत ।।४२।।

हे पुत्र ! साधक को इसी प्रकार षोडश या इससे अधिक रेखाओं से चक्र निर्माण, मन्त्रशुद्धि के बाद करना चाहिये ।।४२।।

इयं ते कथिता पुत्र मन्त्रसिद्धिरभीष्टदा ।
जानाति सम्यक् य इमां स जयी काममाप्नुयात् ।।४३।।

हे पुत्र ! यह अभीष्टसिद्धि देनेवाली मन्त्रों की सिद्धि, मैंने तुमसे कही। जो विजयी साधक इसे भली-भाँति जानता है, वह अपनी समस्त कामनाओं को प्राप्त कर लेता है।।४३।।

रहस्यं परमं पुत्र प्रयोगादिप्रकारतः ।
वक्ष्यामि तत् समासेन शृणु वेतालभैरव ।।४४।।

हे वेताल-भैरव ! हे पुत्रों ! अब मैं संक्षेप में प्रयोग-आदि सहित इनके परम-रहस्य को कहूँगा। तुम दोनों उसे सुनो।।४४।।

।। प्रयोगविधि ।।

दन्तः पक्षविडालस्य तत् त्वचा परिवेष्टितः ।
निर्माल्येन तु वैष्णव्या तत् संवेष्ट्य गुणत्रयम् ।।४५।।
तत् तद् वा वामसूत्रस्य तत्तन्मन्त्रेण मन्त्रितम् ।
गृहीत्वा दक्षिणे पाणौ मन्त्राणां शतमादितः ।।४६।।
सञ्चयेदथ वैष्णव्या अष्टम्यां नियतेन्द्रियः ।।४७।।

पक्षविडाल के दाँत को उसकी ही खाल में लपेट कर, वैष्णवी के निर्माल्य से, उसे वामा स्त्री के हाथ से कते, सूत्र से वेष्टित् और अभीष्टमन्त्र से अभिमन्त्रित कर, इन्द्रियनिग्रहपूर्वक साधक, तीन बार वेष्टित कर, अष्टमीतिथि को उस वैष्णवीमन्त्र को अपनी दाहिनेहाथ में बाँधे।।४७।।

ततस्तु दक्षिणे बाहौ धार्यं यन्त्रोत्तमं बुधैः ।
ततो द्वादशसिद्धिः स्याद्धर्ताचेन्नाभितित्तिलीम् ।।४८।।

तब विद्वान् द्वारा उपर्युक्त उत्तम-यन्त्र को अपनी दाहिनी भुजा में धारण करना चाहिये। ऐसा करने से धारण करने वाला यदि वह तित्तिली को प्राप्त न करे (विचलित न हो तो) बारह प्रकार की सिद्धियाँ प्राप्त करता है।।४८।।

जयः संग्रामवादेषु शरीरस्याप्यरोगिता ।
वशकृद्राजपुत्राणां राज्ञामपि च सन्ततम् ।।४९।।

वह युद्ध एवं शास्त्रार्थ या मुकदमें में विजय, शरीर में आरोग्यता, राजाओं व राजपुत्रों (राजकर्मियों) को निरन्तरवश में करने की सामर्थ्य, प्राप्त करता है।।४९।।

भूतप्रेतपिशाचश्च नो यान्ति नेत्रगोचरम् ।
योषितां समदानां तु वशकृच्चिन्तनात् सकृत ।।५०।।

उसे कभी भूत-प्रेत पिशाचादि दिखाई नहीं देते और वह एक बार चिन्तनमात्र से ही प्रमत्तकामिनी को भी अपने वश में करने में समर्थ होता है ॥५०॥

रुधिराणां श्लेष्मणां च धातूनां स्तम्भनं तथा ।
तेजसां स्तम्भकं चैव चक्षुस्तेजःप्रदं तथा ।।५१।।

वह रक्त, कफ, धातु तथा वीर्य को भी स्तम्भन करने में समर्थ और अपनी आँखों से ही तेज प्रदान करने वाला हो जाता है ॥५१॥

मूर्ध्नि पक्षविडालस्य हस्तं दत्त्वा शतत्रयम् ।
वैष्णवीतन्त्रमन्त्रं तु जप्त्वा तं स्थापयेद् गृहे ।।५२।।

पक्षविडाल के हाथ को सिर पर रखकर, वैष्णवीतन्त्र के मन्त्र का तीन सौ बार जप कर, उसे अपने घर में स्थापित करे ॥५२॥

तं विडालं तु या पश्येन्मलिनी वनिता सुत ।
नापुत्रा सा भवित्री तु कदाचिदपि भैरव ।।५३।।

हे भैरव ! हे पुत्र ! उस विडाल को जो मालिनी (रजोधर्मा) स्त्री देखेगी, वह कभी भी पुत्रहीन नहीं होगी ॥५३॥

तादृक् पक्षविडालस्तु यस्य तिष्ठति मन्दिरे ।
मृतापत्यापि तद्गेहे जीवत् पुत्रा प्रजायते ।।५४।।

उस प्रकार का पक्षविडाल जिसके घर में रहता है, जिसके पुत्र पैदा होके मर जाते हों, ऐसी स्त्री भी उस घर में जीवित-पुत्रों वाली हो जाती है ॥५४॥

कोकिलो भृङ्गराजो वा चकोरो वा शुकोऽथवा ।
वैष्णवीतन्त्रमन्त्रेण मन्त्रितो यत्र तिष्ठति ।
विघ्नं न मन्दिरे तस्य भवित्री सुप्रजा भवेत् ।।५५।।

कोयल, भौंरे, भृङ्गराज, चकोर अथवा तोते, वैष्णवी मन्त्र से अभिमन्त्रित हो, जहाँ रहते हैं। वहाँ, उस घर में कभी विघ्न नहीं होते तथा सदैव उत्तमसन्तति उत्पन्न होती है।।५५।।

न सर्पास्तत्र गच्छन्ति गताः खादन्ति नो नरान् ।
नारी न बन्धकी तस्य मन्दिरेऽपि प्रजायते ।।५६।।

उस घर में कभी सर्प नहीं जाते और यदि चले भी जायँ तो मुनष्यों को डँसते नहीं। उस घर में स्त्री कभी वन्ध्या नहीं होती ॥५६॥

पञ्चमूर्तेश्चण्डिकायाः निर्माल्यानि च पञ्चमः ।
तेषां बलीनां मांसेन स्थाल्यां पक्त्वा दिनत्रयम् ।।५७।।

अष्टम्यां तत्पुनर्देव्यै दत्त्वा मन्त्रमन्त्रितैः ।
तोयैरभ्युक्ष्य भुञ्जीयान्मनसा चिन्तयेच्छिवाम् ।।५७।।

पूर्ववर्णित चण्डिका की पाँच मूर्तियों के निर्माल्य और उनके बलिदान को दिये मांस को तीन दिन तक स्थाली में पका कर अष्टमी को उनके मन्त्रों से अभिमन्त्रित कर, उसे पुनः निवेदित कर, जल से सींचकर, साधक, शिवा का चिन्तन करता हुआ। उसका भोजन करे।।५७-५८।।

तस्मिन् भुक्ते तु दीर्घायुर्जरा शोकविवर्जितः ।
तेजस्वी शत्रुदमनः कविर्वाग्मी च जायते ।।५९।।

पूर्वोक्त प्रसाद के भोजन से साधक दीर्घायु, बुढ़ापा और शोक से रहित, तेजस्वी, शत्रुओं का दमन करने वाला, कवि और वक्ता हो जाता है।।५९।।

ललाटे मूर्ध्नि कण्ठे च बाह्वोः पाण्योस्तथा हृदि ।
वैष्णवीतन्त्रमन्त्रस्य यानि चाष्टाक्षराणि च ।।६०।।
लिखित्वा तानि चैतेषु स्थानेषु मंत्रविद् बुधः ।
कुङ्कुमं क्षीरमलयजातपङ्कैः सुयावकैः ।।६१।।
अष्टम्यां संयतो भूत्वा नवम्यां प्रथमं नरः ।
प्रतिष्ठाने न्यस्य करमष्टावष्टौ जपेद् बुधः ।।६२।।

मन्त्रवेत्ता साधक अष्टमी के दिन संयत हो, कुङ्कुम, दूध, चन्दन, महावर के लेप से, वैष्णवी-तन्त्र-मन्त्र में जो आठ अक्षर कहे गये हैं, उन्हें क्रमशः ललाट, शिर, गला, दोनों भुजाओं, दोनों हाथों तथा हृदय, इन आठ स्थानों पर लिखे। तब नवमी के दिन पहले मनुष्य उन आठो स्थानों पर अपने हाथ रखकर, आठो वर्णों का आठ-आठ बार जप करे।।६०-६२।।

आवर्तनेन मंत्राणां ततोऽनु पूजयेच्छिवाम् ।
ततस्तस्मिन् दिने देव्यै विजातीयं बलित्रयम् ।।६३।।
जपत्वा सहस्रं मन्त्रस्य संख्यया जपमारभेत् ।
जपान्ते तु हविर्भुक्त्वा संयतो रजनीं नयेत् ।।६४।।

उपर्युक्त रीति से मन्त्रजप के पश्चात् शिवा का पूजन करे और उसी दिन देवी के लिए तीन प्रकार की बलि देकर, एक हजारसंख्या में मन्त्रजप आरम्भ करे। जप समाप्त कर, हविष्य का भोजन कर, संयतरूप से वह रात्रि व्यतीत करे।।६३-६४।।

एवं सकृत्कृते पुत्र रणे तस्य पराजयः ।
कदाचिदपि नो भूयान्न च वादेषु शास्त्रतः ।।६५।।

हे पुत्र ! एक बार भी इस प्रकार से पूजन करने से साधक का युद्ध में, वाद में, शास्त्रार्थ में पराजय नही होता।।६५।।

विधिमेवं सकृत् कृत्वा रणकाले यथा तथा ।
सदा लिखेत् क्षत्रियस्तु विजयाय रणेषु च ।।६६।।

यदि कोई क्षत्रिय, युद्धकाल में एक बार भी इस विधि से पूजन करे तो उसे

पूर्वोक्तफल ही प्राप्त होता है। युद्ध में विजय प्राप्त करने के लिए क्षत्रिय इसे सदा लिखे॥६६॥

अपरं तु रणाष्टाङ्गं गृह्यमेतत् प्रकीर्तितम् ।
अनेनैव तु गुह्येन विजयी त्वं भविष्यसि ।।६७।।

अन्य उपायों से विशिष्ट अष्टांगन्यासपूर्वक यह रणविधान, जो अत्यन्त गुप्त है, (हे भैरव अथवा हे राजन्!) उसे मैंने कहा है। इसे जानकर तुम विजयी अर्थात् अपने उद्देश्यप्राप्ति में सफल होगे॥६७॥

इति नौ कथितं सर्वं गुह्याद् गुह्यतरं शुभम् ।
सुखसम्पत्करं मन्त्रं यन्त्रतन्त्रसमन्वितम् ।।६८।।

यह मैंने तुम दोनों से गोपनीय से भी गोपनीय (अर्थात् अत्यन्त गोपनीय), शुभ-फलदायक, सुख-सम्पत्ति प्रदान करने वाला, यन्त्र और तन्त्र से समन्वित, मन्त्र और उससे सम्बन्धित, सब कुछ कहा है ॥६८॥

यच्छ्रोतुं त्रिदशाः सर्वे नित्यं वाञ्छन्ति चामृतम् ।
तदिदंते समाख्यातं पुत्र वेतालभैरव ।।६९।।

हे पुत्र वेताल और भैरव ! जिस अमृतमयतत्त्व को सुनने की सभी देवगण भी नित्य कामना करते हैं, वही यह, मेरे द्वारा तुम दोनों से भली-भाँति कहा गया है ॥६९॥

एतत् सर्वं तु यो ज्ञात्वा तत्त्वतः पुत्र भैरव ।
स कामानखिलान् प्राप्य नित्यं कैवल्यमाप्नुयात् ।।७०।।

हे पुत्र भैरव ! जो इन सबको यथार्थरूप में जान जाता है, वह सम्पूर्ण कामनाओं को प्राप्त कर नित्य कैवल्य को प्राप्त करता है॥७०॥

शृणोति यः सकृदिदं कथ्यमानो द्विजोत्तमैः ।
न तस्य विघ्ना जायन्ते नापुत्रः स च जायते ।।७१।।

जो उत्तमद्विजो के प्रति कहे गये इस तथ्य को एक बार भी सुनता है, उसके कार्यों में विघ्न उत्पन्न नहीं होते और न तो वह पुत्रहीन ही होता है॥७१॥

दीर्घायुर्बलयुक्तश्च नित्यं प्रमुदितः कृती ।
वाञ्छितार्थमवाप्नोति देवीगृहमवाप्नुयात् ।।७१।।

वह नित्य दीर्घायु, बलवान्, प्रसन्नचित्त, यशस्वी होता है तथा अपने वाञ्छित-प्रयोजन को प्राप्त कर लेता है और अन्त में देवी के धाम को प्राप्त करता है॥७२॥

गच्छतं कामरूपान्तःपीठं नीलाचलाह्वयम् ।
कामाख्यानिलयं गुह्यं कुब्जिकापीठसंज्ञकम् ।।७३।।

तुम दोनों कामाख्या देवी के निवास, कुब्जिकापीठ नामक, अत्यन्त गोपनीय, नीलाचल नाम के कामरूपपीठ पर जाओ॥७३॥

आकाशगङ्गा यत्रास्ति तज्जलैरभिषिच्य च ।
तत्राराधयतं पुत्रो महामायां जगन्मयीम् ।।७४।।
सा प्रसन्नाचिराद् देवी वरदा वां भविष्यति ।।७५।।

हे पुत्रों ! जहाँ आकाशगङ्गा विराजमान हैं। वहीं उसीके जल से जगन्मयी महामाया का अभिषेक कर, उनकी आराधना करो। वह वरदायिनी देवी, शीघ्र ही तुम दोनों पर प्रसन्न हो जायेंगी।।७४-७५।।

।। और्व उवाच ।।

इत्युक्त्वा वृषभारूढस्तदा वेतालभैरवौ ।
स पुत्रौ तु परित्यज्य तत्रैवान्तरधीयत ।।७६।।

और्व बोले—तब ऐसा कहकर वृषभ पर सवार (शिव), अपने पुत्रों बेताल और भैरव को छोड़कर, वहीं अन्तर्ध्यान हो गये।।७६।।

ततस्तौ नाटकं शैलं परित्यज्य तपस्विनौ ।
आसेदतुर्महात्मानं वसिष्ठं ब्रह्मणः सुतम् ।।७७।।

तब वे दोनों तपस्वी, नाटक-पर्वत को छोड़कर, ब्रह्माजी के पुत्र, महात्मा-वशिष्ठ के यहाँ गये।।७७।।

स तु सन्ध्याचलगतस्तौ दृष्ट्वा समुपस्थितौ ।
सभाजयामास मुनिः शिष्यवत् तौ हरात्मजौ ।।७८।।

सन्ध्याचल पर उपस्थित हुये उन दोनों शिवपुत्रों को देखकर, उन मुनि वशिष्ठ ने, उन दोनों के प्रति शिष्यवत् व्यवहार किया ।।७८।।

ततस्तस्योपदेशेन वसिष्ठस्य महात्मनः ।
जग्मतुस्तौ महाशैलं नीलं कामाख्यया गतम् ।।७९।।

तत्पश्चात् महात्मावशिष्ठ के उपदेशानुसार महान् आत्मावाले वे दोनों नीलाचल पर, कामाख्याधाम में चले गये।।७९।।

तत्र गत्वा महात्मानौ वैष्णवीतन्त्रगोचरम् ।
आदाय यजतां देवीं महामायां जगन्मयीम् ।।८०।।
भैरवाख्यस्य लिङ्गस्य निकटस्थौ शिवात्मनः ।
आकाशगङ्गामाप्लाव्य स्थण्डिले मण्डलोत्तमम् ।
विधाय नरशार्दूलौ जपेतुर्मन्त्रमुत्तमम् ।।८१।।

वहाँ जाकर उन दोनों महात्माओं ने वैष्णवीतन्त्र में वर्णित, जगन्मयी महामाया देवी का पूजन करते हुए उन्हें लाकर, शिव के भैरव नामक लिङ्ग के निकट स्थित हो, अपने को आकाशगङ्गा में आप्लावित कर, उसी के तट पर वेदिका पर आकर उत्तममण्डल बनाकर, उन दोनों नरशार्दूलों ने उत्तममन्त्र का जप किया।।८०-८१।।

तौ जप्त्वा विधिवन्मन्त्रं सिद्धमष्टाक्षरात्मकम् ।
वेतालस्य तथासाध्यमष्टलक्षाणि संख्यया ।।८२।।
त्रिभिर्वर्षैस्तु लक्षाणां चतुर्णामन्ततस्ततः ।
त्रिधा पुरश्चरणं च तौ भक्तया समकुर्वताम् ।।८३।।

स्वयं के सिद्ध तथा वेताल के साध्य अष्टाक्षर मन्त्र का उन दोनों ने

विधिपूर्वक, तीन वर्षों में चार-चार लाख जपकर, आठलाख मन्त्रों से भक्तिपूर्वक तीन बार पुरश्चरण किया॥८२-८३॥

यद् यदोत्तरतन्त्रोक्तं कल्पोक्तं पूजने कृतम् ॥८४॥
तत्सर्वं चक्रतुस्तौ तु तं त्रिहायणसंवृतौ ।
कामाख्या त्रिपुरादीनामन्यासामपि पूजनम् ॥८५॥

उत्तरतन्त्र में कहे पूजनविधान में त्रिपुरा, कामाख्या, आदि का जो-जो पूजन और न्यास बताया गया है, उन्होंने उसके अनुसार तीन वर्षों तक वह सब कुछ किया॥८४-८५॥

सकृत् कृत्वा पीठयात्रां चेरतुर्विधिवत् तदा ।
एवं तौ बद्धकवचौ कृतन्यासौ हरात्मजौ ॥८६॥

तब इस प्रकार कवच से आबद्ध हो, न्यास करके, उन दोनों शिवपुत्रों ने एक बार कामरूपपीठ की विधिपूर्वक यात्रा सम्पन्न की॥८६॥

सुप्रीता चानुग्राह महामायाऽथ तौ तदा ।
ध्यानस्थयोस्तु जपतोर्यजतोश्च जगन्मयीम् ।
शिवलिङ्गं विनिर्भिद्य तदा प्रत्यक्षतां गता ॥८७॥

उन दोनों के जगमन्यी के ध्यानस्थ हो, जप-पूजन करने पर महामाया ने प्रसन्न हो, उन दोनों पर अनुग्रह किया। उस समय वे शिवलिङ्ग को भेदकर प्रत्यक्ष हुईं॥८७॥

तस्यां विनिर्गतायां तु शिवलिङ्गं त्रिधाऽभवत् ।
भैरवो भैरवी चेति हेरुकश्च तथा त्रयः ॥८८॥

उनके प्रकट होते ही वह शिवलिङ्ग, भैरव, भैरवी और हेरुक नाम से तीन रूपों में, तीनखण्ड हो गया॥८८॥

तां ददर्श तदा देवीं वेतालो भैरवस्तदा ।
यथा ध्यानगता दृष्टा वहिश्चापि तथा तथा ॥८९॥

तब उस देवी को वेताल और भैरव ने जैसा अपने ध्यान में देखा था वैसा ही उस समय, बाहर प्रत्यक्षरूप में भी देखा॥८८॥

तां दृष्ट्वा चारुसर्वाङ्गीं पीनोन्नतपयोधराम् ।
वरदाभयहस्तां च सिद्धसूत्रासिधारिणीम् ॥९०॥
रक्तपद्मप्रतीकाशां सितप्रेतासनस्थिताम् ॥९१॥
निमील्य नयनद्वयं तदा वेतालभैरवौ ।
त्राहि त्राहि महामाये ऊचतुस्तौ मुहुर्मुहुः ॥९२॥

उन सभी प्रकार से सुन्दर अङ्गोंवाली, पुष्ट और ऊँचे स्तनों वाली, वरद-अभय मुद्राओं तथा हाथों में सिद्ध-सूत्र, तलवार एवं (पाश) धारण करने वाली, लालकमल के समान आभावाली, श्वेतप्रेत के आसन पर स्थित, भगवती को

देखकर, अपने नेत्रों को बन्द कर वे दोनों वेताल तथा भैरव, महामाया रक्षा कीजिये, महामाया रक्षा कीजिये, ऐसा बारम्बार कहने लगे॥९०-९२॥

ततस्तया महादेव्या तेजसाप्यायितौ तु तौ ।
पस्पर्श वरहस्तस्य चाग्रभागेन वैष्णवी ॥९३॥

तब अपने तेज से अभिभूत हुए उन दोनों का वैष्णवी देवी ने अपने वरद-हस्त के अगलेभाग से स्पर्श किया ॥९३॥

आप्यायितौ ततस्तौ तु स्पृष्टावपि तथा पुनः ।
आसेदतुश्च देवत्वं मनुष्यत्वं विहाय च ॥९४॥

तब वैष्णवी के तेज से आप्यायित और देवी द्वारा स्पर्श किये गये वे दोनों, मनुष्यत्व को छोड़कर देवत्व प्राप्त किये॥९४॥

देवभूतौ तदा तौ तु महामायां जगन्मयीम् ।
स्तुतिभिर्नतिभिश्चेति तदा तुष्टुवतुः शिवाम् ॥९५॥

उस समय देवरूप होकर उन दोनों ने अपनी नम्रता तथा स्तुति से शिवा, महामाया, जगत्स्वरुपा, उन देवी की स्तुति की ॥९५॥

॥ वेतालभैरवावूचतुः ॥

जय जय देवि सुरगणार्चितयुगलपादपङ्कजे
विश्वस्य भूतिभाविनि शशिमौलि-केलिभाविनि गिरिजे ।
नेत्रत्रयनिर्जितविवस्वद्विधुवह्निकान्तिकमलजे
मध्यनेत्रनतभ्रूभङ्गभक्तमतिज्वायकविमलजे ॥९६॥

वेताल और भैरव बोले— जिसके चरणकमल, देवगणों से पूजे जाते हैं ऐसी देवी, आपकी जय हो। हे विश्व के ऐश्वर्य को जन्म देने वाली, शशि (चन्द्रमा) जिनके मस्तक पर शोभायमान हैं, ऐसे शिव के साथ केलि करने वाली गिरिजा देवी, आपकी सदा जय हो । अपने तीनों नेत्रों से विवस्वान् (सूर्य), विधु (चन्द्रमा) तथा बह्नि (अग्नि) की कान्ति को जीतने वाली, कमल से उत्पन्न देवी, अपने मध्यवर्ती नेत्र को नत (कृपालु) रखी हुई, अपने भ्रूभङ्ग से ही भक्त की मति का प्रकटीकरण करने वाली, निर्मलस्वभाववाली, देवी आपकी जय हो ॥९६॥

आज्ञाचक्रान्तशान्तनवकोटिकरोटितुल्यकान्त शान्तशशधरे ।
बहुमायकायभोगयोगतरङ्गसारस्य पद्मवसुचरे ॥९७॥

हे देवि ! आप आज्ञाचक्रपर्यन्त शान्त, नौ करोड़ करोटि के समान कान्ति-युक्त, मस्तक पर शान्त (बाल) चन्द्रधारण करने वाली हैं। हे देवी ! आप अनेक प्रकार के माया और रूपों के भोग और योग के सारस्वरूपपद्मपर विचरण करने वाली हैं॥९७॥

त्रिनाडिनीतमध्यवद्धविष्किर-वल्लभशुभसुषुम्नसमाधारपरे।
विबुधरत्नविमोदिविश्वमूर्ति-महोमयानवसि षट्चक्रधरे॥९८॥

आप इडा पिंगला सुषुम्णा तीनों नाड़ियों के मध्य में स्थित, विस्तृत, प्रिय, शुभ, सुषुम्ना को अपना आश्रय बनायी कुण्डलिनीरूपा हैं। आप देवताओं में श्रेष्ठ रत्न के समान श्रेष्ठ, देवजनों (ब्रह्मा-विष्णु-महेश) को विशेष रूप से आनन्दित करने वाली हैं। आप स्वयं विश्वरूपा हैं। आप सुषुम्नागत उस महान् यान में निवास करने वाली तथा षट्चक्रों को आधार बनाई हुई हैं॥९८॥

आदिषोडशचक्रचुम्बितचारुदेह पीनतुङ्गकुचाचलालिंगितभूमिमध्यनागशाकगते ।
सिद्धसूत्रवराभयासिशान्तपातक- पङ्कजातकमूलमणिचतुर्बाहुयुते ।
ज्ञानतालकमत्रन्तन्त्रोयोगियोग-निबद्धस्त्रारसूतभङ्ग विनोदकृते ।
आत्मतत्त्वपरैकशाररत्नहारक- मुक्तिसूक्तिविवेकसितप्रेतरते ॥९९॥

आपकी सुन्दर देहयष्टि आदि षोडशचक्र का चुम्बन कर रही हैं तथा कुचाचल (स्तनमण्डल) पुष्ट, मोटे और उठे हुए हैं। ऐसी आप भूमध्य मूलाधार से स्वर्ग सदृश सहस्रार तक स्थित हैं। आपने अपने हाथों में सिद्ध-सूत्र (पाश), वर तथा अभय मुद्रायें, पातक (दुष्टों) को शान्त करनेवाली तलवार धारण किया है। इस प्रकार अपनी चार भुजाओं से युक्त मूलाधार पद्म में मणिके समान श्रेष्ठतापूर्वक स्थित हैं। आप ज्ञानरूपी कुण्डी हैं। आप मंत्र, तंत्र, योग से योगियों को निबद्ध करने वाली एवं सब प्रकार के पाश को भङ्कर भक्तों को आनन्दित करनेवाली हैं। आप आत्म तत्त्वपरायण एक शाररूप रत्नहार और सूक्तिरूपी मुक्तिदायक ज्ञानविवेक के कारण सितप्रेत से अनुराग रखने वाली हैं॥९९॥

रत्नसारसमस्तसङ्गतरङ्गराग- वियोगिमन्त्रशान्तपुरविशेषकृते ।
योगिनीगणनृत्यभृत्यभावन- निबद्धनद्धहारकङ्कणमुख्यभूषणपते ।
साट्टहासविनोदमोदितमुक्त- केशसुरेशनिबद्धदेहपुटे ।
देहि देवि शोकशोचनबन्ध-मोचन पापशातन शुद्धमते ॥१००॥

आप समस्त रत्नों के सार से सुशोभित, रंग राग से वियुक्त भक्त के शान्तपुर (हृदय) को मन्त्र से विशेष रूप से युक्त करने वाली हैं। आप के चारो ओर योगिनीगण (योगिनियों के समूह) नृत्य करती रहती हैं। भृत्य (भैरवगढ़) आनन्द मग्न हो आप को घेरे रहते है। आप आभूषणों की स्वामिनी हैं। तथा हार एवं कंङ्कण जैसे- मुख्य आभूषणों से नद्ध है। आप विनोद से मुदित हैं, आपके केश उन्मुक्त हैं, आप सुरेश (देवाधिदेव शिव महादेव) के शरीर से उनके अन्धार्गरूप मे युक्त है। इस प्रकार की उपयुर्क्त विशेषताओं वाली हेदेवि आप मेरे शोक को भी शोकग्रस्त (नष्ट), करने बन्धन से मुक्त करने तथा पापों का समन करने वाली शुद्धमति प्रदान कीजिए।

सर्वविद्यात्मिकां गुह्यां मन्त्रंयन्त्रमयीं शिवाम्।
प्रणमामि महामायां लोके वेदे च कीर्तिताम्॥१०१॥

मैं सर्वविद्यात्मिका, गोपनीया, मन्त्रयन्त्रमयी, शिवा, महामाया को, जो लोक एवं वेद में प्रसिद्ध हैं, प्रणाम करता हूँ ॥१०१॥

परापरात्मिकां नित्यां साध्याधारैकसंस्थिताम् ।
कामाह्लादकरीं कान्तां त्वां नमामि जगन्मयीम् ।।१०२।।

आप परा, परात्मिका, साध्या एवं एक आधार पर स्थित, काम को आह्लादित करने वाली, कान्ता, जगत्स्वरूपा हो। मैं आपको नमस्कार करता हूँ।।१०२।।

प्रपञ्चपरमव्यक्तं जगदेकविविर्धिनि ।
प्रभावेनार्धरक्तांगि देवि तुभ्यं नमोऽस्तुते ।।१०३।।

आप इस प्रपंच में परमअव्यक्त हैं । जगत को बढ़ाने वाली, एकमात्र आप ही प्रभावयुक्त हैं। आप पराप्रकृति हैं। हे लालअंगों वाली देवी ! ये सब कार्य आप अपने आधे प्रभाव से ही करती हैं। ऐसी आप को नमस्कार है।।१०३।।

कामाख्या नित्यरूपाख्या महामाया सरस्वती ।
या लक्ष्मीर्विष्णुवक्षःस्था नमावो ह्यच्युतां शिवाम् ।।१०४।।

जो कामाख्या, नित्यरूपा, महामाया, सरस्वती आदि नामों से ख्यात हैं तथा लक्ष्मीरूप से विष्णु के वक्षस्थल में स्थित हैं । उन अच्युता, शिवा को हम दोनों नमस्कार करते हैं।।१०४।।

मन्त्राणि यस्यास्तन्त्राणि सहस्राणि च षोडश ।
मन्त्रयन्त्रात्मके तुभ्यं नमोऽस्तु मम पार्वति ।।१०५।।

जिसकें सोलह हजार मंत्र और तन्त्र हैं । ऐसी हे मंत्रतंत्रवाली मेरी माँ, पार्वती आपको नमस्कार है।।१०५।।

इति स्तुता ततस्ताभ्यां महामाया जगत्प्रसूः ।
उवाच मुदिता चेति वरं वरयतं युवाम् ।।१०६।।

तब इस प्रकार से उन दोनों के द्वारा स्तुति किये जाने पर वे महामाया, जगतजननी प्रसन्नतापूर्वक उनसे बोलीं—तुम दोनों मुझसे वर माँगो ।।१०६।।

प्रत्यक्षतो महामायां पूर्ववद् ध्यानगोचराम् ।
तौ दृष्टवा भर्गतनयौ प्राहतुश्चेदमुत्तमम् ।।१०७।।

उन महामाया को प्रत्यक्षरूप में पहले ध्यान में दिखाई देने वाले की ही भाँति देखकर शिव के उन दोनों पुत्रों ने, ये उत्तम वचन कहे-।।१०७।।

।। वेताल-भैरवावूचतुः ।।

देव्यनेन शरीरेण भवत्याः शङ्करस्य च ।
प्रार्थये शाश्वतीं सेवां नित्यं यावद्रविः शशी ।।१०८।।

वेताल और भैरव बोले– हे देवि ! हम दोनों आपसे प्रार्थना करते हैं कि जब तक सूर्य और चन्द्रमा हैं, तब तक हम दोनों अपने इस शरीर से, आपकी और भगवान्शङ्कर की शाश्वतरूप से नित्य, सेवा करते रहें ।।१०८।।

नान्यं वरं साधयावो माये त्वत्तो जगन्मयि ।
अन्यथा तव भक्त्यैव स्थास्यावो गिरिकन्दरे ।।१०९।।

हे जगन्मयी माये ! आपके अतिरिक्त हम दोनों कोई अन्य वर नहीं साधेंगे (मांगेंगे)। अन्यथा पर्वतों की कन्दराओं में आपकी भक्ति में ही रहकर, स्थायीरूप से निवास करेंगे॥१०९॥

।। और्व उवाच ।।

एवमुक्ता यतस्ताभ्यां महामाया जगन्मयी ।
एवस्त्विति चोवाच भवत्येवं मुहुर्मुहुः ।।११०।।

और्व बोले– महामाया जगन्मयी उनदोनों के द्वारा चूँकि इस प्रकार कही गईं, अत: उनके द्वारा बारम्बार उन दोनों से कहा गया कि ऐसा ही हो॥११०॥

एवं सिद्धिर्जगद्धात्री प्रोक्ता स्वस्याथ चूचुके ।
निष्पीडय कारयामास क्षीरधाराद्वयं शिवा ।।१११।।

इस प्रकार कहकर उस शिवा, सिद्धि, जगद्धात्री ने अपने चूचुकों को दबा कर दो दुग्धधारायें उत्पन्न किया॥१११॥

ततस्तु निःसृतं क्षीरं पाययामास भैरवम् ।
वेतालं च महाराज पिवतस्तौ च तत् तदा ।।११२।।

हे महाराज ! तब उससे निकले हुये दूध को, उन भैरव एवं वेताल को, जो उस समय पी रहे थे, पिलाया॥११२॥

पीत्वा तौ च तदा क्षीरं देवत्वं प्राप्य शाश्वतम् ।
अजरौ चामरौ भूतौ महातेजस्विनौ शुभौ ।।११३।।

उस समय उस दूध को पीकर वे दोनों शाश्वत देवत्व को प्राप्त कर, अजर-अमर, महात्तेजस्वी एवं शुभस्वरूपवाले हो गये ॥११३॥

तस्यास्तु क्षीरममृतं तत् पीत्वा तौ महाबलौ ।
पीयूषपानात् सजातौ ततस्तौ प्राह वैष्णवी ।।११४।।

अपने अमृतमय उस दूध को पीकर, अमृतपान के कारण महाबलशाली हुए उन दोनों से उन वैष्णवी देवी ने कहा–॥११४॥

।। वैष्णवी उवाच ।।

गणानां देवदेवस्य भवतश्चाधिपौ युवाम् ।
द्वाःस्थौ च नित्यमासन्नो नन्दिवद् भवतं सुतौ ।।११५।।

*वैष्णवी बोली–*हे पुत्रों ! तुम दोनों देवो के देव, महादेव के गणों के स्वामी होओ और नन्दि की भाँति नित्य उनके निकट द्वार-देश में स्थित रहो॥११५॥

।। और्व उवाच ।।

इत्युक्त्वा हरसम्मत्या महामाया जगन्मयी ।
योगिनीगणसंयुक्ता तत्रैवान्तरधीयत ।।११६।।

औौर्व बोले– ऐसा कहकर महामाया, जगन्मयी, योगिनी, गणों के सहित भगवान शिव की सम्मति से वहीं अन्तर्हित हो गईं।।११६।।

अन्तर्हितायां तस्यां तु तदा वेतालभैरवौ ।
मुदितौ परमप्रीतौ कृतकृत्यौ बभूवतुः ।।११७।।

उन देवी के अन्तर्हित हो जाने पर, वेताल और भैरव अत्यधिक प्रेममय, प्रसन्न और कृतकृत्य हो गये ।।११७।।

अथागच्छद् देवगणैः सार्धं सप्रमथो हरः ।
सभाजयितुमत्यर्थं पुत्रौ वेतालभैरवौ ।।११८।।

इसके बाद अपने दोनों पुत्रों, वेताल और भैरव के अत्यधिक सभाजन के लिए देवगणों और प्रमथगणों के सहित भगवान् शिव, स्वयं वहाँ आ पहुँचे।।११८।।

तावासाद्य महादेवस्तदा नीलाह्वयं गिरिम् ।
सकलं दर्शयामास पीठं तु स्थानभेदतः ।।११९।।

तब उस नीलनामक पर्वत पर उन दोनों के पास पहुँच कर महादेव ने उन्हें सम्पूर्णपीठों का स्थानभेद के अनुसार दर्शन कराया ।।११९।।

कामाख्याया गुहां तत्र दर्शयित्वा मनोभवाम् ।
ततः स्वीयां कामगुहां छायाच्छत्रं स्वमालयम् ।।१२०।।

उन्होंने उन्हें कामाख्या की मनोभवगुहा दिखाया तत्पश्चात् अपनी कामाख्या-गुफा एवं अपना स्थान, छायाच्छत्र भी दिखाया ।।१२०।।

स्वकीयं पञ्चमूर्तीनां संस्थानं चाप्यदर्शयत् ।
कामरूपस्य सकलं पीठं देवमयं तथा ।।१२१।।

उन्होंने अपनी ईशानादिपञ्चमूर्तियों के संस्थान को भी दिखाया तथा देव-स्वरूप समस्त कामरूपपीठ का भी उन्हें दर्शन कराया ।।१२१।।

प्रत्येकं दर्शयामास क्रमतस्त्रिपुरान्तकः ।
प्रथमं करतोयाख्यां सत्यगङ्गां सदाशिवाम् ।
पुण्यतोयमयीं शुद्धां दक्षिणाब्ध्येकगामिनीम् ।।१२२।।

।। इति श्रीकालिकापुराणे वेतालभैरवसिद्धिलाभोनाम षट्सप्ततितमोऽध्यायः।।७६।।

उन्होंने क्रमशः प्रत्येक स्थानों को उन्हें दिखाया। इस क्रम में उन्होंने सर्वप्रथम सदा कल्याण करने वाली, वास्तविकगङ्गास्वरूप, दक्षिणी सागर को अकेले जाने वाली, पवित्रजल से युक्त, शुद्ध, करतोयानाम वाली नदी, को दिखाया।।१२२।।

श्री कालिकापुराण में वेतालभैरवसिद्धिलाभनामक
छिहत्तरवाँ अध्याय सम्पूर्ण हुआ।।७६।।



सप्तसप्ततितमोऽध्यायः

कामरूपवर्णनेजल्पीशमाहात्म्यम्

।। जल्पीशमाहात्म्यम् ।।

।। और्व उवाच ।।

ततस्तु कामरूपस्य वायव्यां त्रिपुरान्तकः ।
आत्मनो लिङ्गमतुलं जल्पीशाख्यं व्यदर्शयत् ।।१।।

और्व बोले– उसके बाद त्रिपुरान्तकशिव ने कामरूप की वायव्यदिशा में स्थित, अपने जल्पीशनामक अतुलनीय लिङ्ग का दर्शन कराया।।१।।

यत्र नन्दी समाराध्य महादेवं जगत्पतिम् ।
अभिन्नेन शरीरेण गाणपत्यमवाप्नुयात् ।।२।।

जहाँ नन्दी ने जगत के स्वामी, महादेव की भलीभाँति आराधना करके, अपने शरीर से ही (जीते जी) गणों के स्वामी का पद, प्राप्त किया था।।२।।

नन्दिकुण्डं महाकुण्डं यत्र नन्दी पुराऽकरोत् ।
अभिषेकं लब्धवरं पीतं तोयमनुत्तमम् ।।३।।

जहाँ पहले नन्दी ने अपनी तपस्याहेतु नन्दिकुण्ड नामक एक महान् कुण्ड बनाया तथा उसके उत्तम जल को पीकर, उससे जल्पीश का अभिषेक कर, वर प्राप्त किया था।।३।।

तत्र स्नात्वा च पीत्वा च कृतकृत्यो नरोत्तमः ।
हरस्य सदनं याति नन्दिनोऽपि महाश्रियः ।।४।।

नरों में श्रेष्ठ साधक, वहाँ स्नान करके और उसका जल पीकर, कृतकृत्य हो, शिवलोक को जाता है। नन्दी भी शिव के लोक को जाकर महान् शोभा को प्राप्त हुये हैं।।४।।

तस्यासन्ने महादेवीं नातिदूरे व्यवस्थिताम् ।
सिद्धेश्वरीं योनिरूपां महामायां जगन्मयीम् ।
त्र्यम्बको दर्शयामास भैरवाय महात्मने ।।५।।

उसी के निकट समीप में ही स्थित जगन्मयी, योनिरूपवाली, सिद्धेश्वरी, महामाया, कामाख्यादेवी का भी त्रयम्बकशिव ने महात्मा भैरव को दर्शन कराया।।५।।

यत्र नन्दी महामायामाज्ञया शशिधारिणः ।
स्तुतिभिर्नतिभिः पूज्य गाणपत्यमावाप्नुयात् ।।६।।

जहाँ नन्दी ने चन्द्रमा को धारण करने वाले, शिव को महामाया की आज्ञा से अपनी स्तुतियों और नमस्कार से सन्तुष्ट कर गाणपत्य (गणों के स्वामित्व) को प्राप्त किया था।।६।।

सुवर्णमानसस्तत्र नदमुख्यो मनोहरः ।।७।।
नन्दिनोऽनुग्रहायाशु मानसाख्यं सरस्तु तत् ।
आगतं चाज्ञया शम्भोः पूर्वमेव तपस्यतः ।।८।।

वहीं शिव की आज्ञा से पहले से ही तपस्यारत नन्दी पर कृपा करके नदों में श्रेष्ठ सुवर्णमानस नामक सुन्दर सरोवर के रूप में मानसरोवर नामक तीर्थ वहाँ शीघ्रता से आया हुआ है।।७-८।।

जटोद्भवा तत्र नदी हिमवत्प्रभवा शुभा ।
यस्यां स्नात्वा नरः पुण्यमाप्नोति जाह्नवीसमम् ।।९।।

वहीं शिव की जटा से उत्पन्न हो, हिमालय से निकली जटोद्भवा नामक शुभदायिनी नदी है, जिसमें स्नान कर मनुष्य, गङ्गास्नान के समान पुण्य प्राप्त करता है।।९।।

गौरीविवाहसमये सर्वैर्मातृगणैः कृतः ।
जलाभिषेको भर्गस्य जटाजूटेषु यः पुरा ।
तैस्तोयैरभवद्यस्माज्जटोदाख्या नदी ततः ।।१०।।

प्राचीनकाल में गौरीविवाह के समय सभी मातृकाओं द्वारा शिव के जटाजूटों पर जो अभिषेक किया गया था, उस समय उस जल से उत्पन्न होनेवाली नदी, जटोदा नाम से प्रसिद्ध हुई।।१०।।

चैत्रे मासि सिताष्टम्यां स्नात्वा यस्यां नरो व्रजेत् ।
पूर्णायुर्वै नरश्रेष्ठ शिवस्य सदनं प्रति ।।११।।

चैत्रमास के शुक्लपक्ष की अष्टमीतिथि को जिसमें स्नान कर, मनुष्य पूर्णायु भोगकर, मृत्यु के उपरान्त, शिवलोक को जाता है ।।११।।

द्वापरस्य तु या गङ्गा त्रिःस्रोताख्या सरिद्वरा ।
हिमवत्प्रभवा शुद्धचन्द्रबिम्बाद् विनिर्गता ।।१२।।
यस्यां स्नात्वा महामाघ्यां मातृयोनौ न जायते ।
चन्द्रसूर्यग्रहे स्नात्वा कैवल्यं प्राप्नुयान्नरः ।।१३।।
सितप्रभानाम नदी महादेवावतारिता ।।१४।।

द्वापर में तीन स्रोतोंवाली नदियों में श्रेष्ठ, जो गङ्गा नदी, हिमालय से उत्पन्न हो, शुद्धचन्द्रबिम्ब से निकली थी । जिसमें महामाघी (माघशुक्ल अष्टमी)

को स्नान कर मनुष्य, मातृयोनि को नहीं प्राप्त करता, वही जिसमें चन्द्र-सूर्य-ग्रहण के समय स्नान करके मनुष्य, कैवल्य को प्राप्त करता है, उस सितप्रभा नाम की नदी को, महादेव शिव ने ही अवतरित किया था ॥१२-१४॥

हिमवत्प्रभवा सापि सिता दक्षसमुद्रगा ।
तस्यां दशहरायां तु दशम्यां शुक्लपक्षके ।
स्नात्वा विष्णुगृहे याति नरो वै मुक्तपातकः ॥१५॥

हिमालय से निकलने के कारण वह स्वच्छजलवाली नदी भी दक्षिणीसमुद्र में गिरती है। उसमें ज्येष्ठशुक्लपक्ष की दशमीतिथि, दशहरा (गङ्गा दशहरा) को स्नान कर मनुष्य, सभी पापों से मुक्त हो, विष्णुलोक को प्राप्त करता है ॥१५॥

नवतोया नाम नदी ततः पूर्वस्थिता पुरा ।
नवं नवं नवं नित्यं कुर्वन्ती सा पुनाति हि ॥१६॥
नवतोया ततः प्रोक्ता हिमवत्प्रभवैव सा ॥१७॥

तत्पश्चात् (शिव ने भैरव को) पहले से ही पूर्वदिशा में स्थित नवतोया नामकी नदी को दिखाया जो नित्य ही नया-नया करती है और नवद्वार या पीढ़ियों को पवित्र करती है। इसीलिए वह नवतोया कही जाती है । यह नवतोया नदी भी हिमालय से ही निकली हुई है॥१६-१७॥

तस्यां स्नात्वा महामाघ्यां नरो गच्छति देवताम् ।
सम्पूर्णं माघमासं तु स्नात्वा विष्णुगृहं व्रजेत् ॥१८॥

उस नदी में महामाघी पर स्नान करके मनुष्यदेवत्त्व को प्राप्त करता है तथा यदि वह सम्पूर्णमाघ महीने भर उसमें स्नान करे तो, विष्णुलोक को जाता है ॥१८॥

तासां नदीनां तु पतिरगदो नाम वै नदः ।
पीठपूर्वे स्थितः पुण्यो ब्रह्मपादसमुद्भवः ॥१९॥
हिमवत्प्रभवः सोऽपि देवगन्धर्वसेवितः ।
तत्र स्नात्वा च पीत्वा च नरो ब्रह्मगृहं व्रजेत् ॥२०॥

उन नदियों का स्वामी, पीठ के पूर्वभाग में स्थित, ब्रह्मा के चरणकमल से उत्पन्न हो, हिमालय से निकला हुआ, देवता एवं गन्धर्वों से सेवित, अगद नाम का नद है। उसमें स्नान करके और उसका जलपीकर मनुष्य, ब्रह्मलोक को जाता है॥१९-२०॥

कार्तिकं सकलं मासं योऽगदाख्ये महानदे ।
स्नानं करोति मनुजस्तस्य पुण्यफलं शृणु ॥२१॥

जो मनुष्य सम्पूर्णकार्तिकमास, उस अगद नामक महानद में स्नान करता है उसके पुण्यफल को सुनिये ॥२१॥

इह लोके त्वरोगः स प्राप्य चैवोत्तमं सुखम् ।
शेषे ब्रह्मगृहं प्राप्य ततो मोक्षमवाप्नुयात् ।।२२।।

वह इस लोक में आरोग्य और उत्तमसुख को पाकर, शेष (शरीरान्त) होने पर ब्रह्मलोक को प्राप्त करता है। तत्पश्चात् मोक्ष को पाता है।।२२।।

नन्दिकुण्डे नरः स्नात्वा नक्तं कुर्यात् तदा निशि ।
ततः परस्मिन् दिवसे गच्छेज्जल्पीशमन्दिरम् ।।२३।।

नन्दिकुण्ड में स्नान करके मनुष्य को उस दिन नक्तव्रत कर, उस रात्रि में वहीं भोजन करना चाहिये। तब दूसरे दिन जल्पीशमन्दिर को जाना चाहिये।।२३।।

तत्र स्नात्वा महानद्यां जल्पीशं प्रतिपूज्य च ।
तस्यां निशि हविष्याशी संयतस्तां निशां नयेत् ।।२४।।

उस महान् नदी में स्नान करके तथा जल्पीशशिव का पूजनकर, उसरात्रि में हविष्य भोजन कर, संयत हो, वह रात्रि व्यतीत करे ।।२४।।

ततोऽनुदिवसे प्राप्ते गच्छेत् सिद्धेश्वरीं शिवाम् ।
तां पूजयेत् तथाष्टम्यामुपवासं तथाचरेत् ।।२५।।

तत्पश्चात् अगले दिन वह सिद्धेश्वरी, शिवा के मन्दिर में जाकर, वहीं उनका पूजन तथा अष्टमी का उपवाससम्पन्न करे।।२५।।

।। सिद्धेश्वरीस्वरूपवर्णन ।।

चतुर्भुजा तु सा देवी पीनोन्नतपयोधरा ।
सिन्दूरपुञ्जसङ्काशा धत्ते कर्त्रीं च खर्परम् ।।२६।।
दक्षिणे वामबाहुभ्यामभीतिरवरदायिनी ।
जटामण्डितशीर्षा च रक्तपद्मोपरिस्थिता ।।२७।।

वह शिवा देवी, चार भुजाओं से सुशोभित, पुष्ट और उन्नत वक्षस्थल धारण करने वाली, सिन्दूर के ढेर के सदृश आभावाली, दाहिनीभुजाओं में कर्त्री (कैंची) व खप्पर धारण करती हैं तथा बायीं भुजाओं से अभय एवं वर, प्रदान करती हैं । उनका सिर, जटा से सुशोभित है और वे लालकमल पर विराजमान हैं।।२६-२७।।

पंचारक्षरजपान्तादिर्मन्त्रऽस्याः परिकीर्तितः ।
कामख्यातन्त्रमेवास्याः पूजने तन्त्रमीरितम् ।
एवं कृत्वा नरो धीरः पुनर्योनौ न जायते ।।२८।।

पञ्चाक्षरजप उनका आदिमन्त्र कहा गया है। कामाख्यातन्त्र ही उनके पूजन की पद्धति कहा गया है, ऐसे पञ्चाक्षरमन्त्र और कामाख्यातन्त्र के प्रयोग करने से धैर्यवान् मनुष्य, पुनः मातृयोनि में गमन नहीं करता अर्थात् जन्म नहीं लेता ।।२८।।

जामदग्न्यभयाद् भीताः क्षत्रियाः पूर्वमेव ये ।
म्लेच्छच्छद्मान्युपादाय जल्पीशं शरणं गताः ।।२९।।

जो क्षत्रिय, पहले जमदग्निऋषि के पुत्र, परशुराम के भय से भयभीत हो गये थे वही, म्लेच्छ इस छद्मनाम से जल्पीश (शिव) की शरण में गये ।।२९।।

ते म्लेच्छवाचः सततमार्यवाचश्च सर्वदा ।
जल्पीशं सेवमानास्ते गोपायन्ति च तं हरम् ।।३०।।
त एव तु गणास्तस्य महाराजमनोहराः ।
तोषयित्वा तथा सर्वान् जल्पीशं पूजयेन्नरः ।।३१।।

वे ही म्लेच्छवाची निरन्तर आर्यवाची होकर सदा जल्पीश की सेवा करते हुए, शिव के उस रूप की रक्षा करते रहते हैं। हे महाराज ! वे ही वहाँ के सुन्दर गण है। अतः मनुष्य उन्हीं सब को सन्तुष्ट कर जल्पीश भगवान् का पूजन करे।।३०-३१।।

।। जल्पीशरूपवर्णन ।।

वरदाभयहस्तोऽयं द्विभुजः कुन्दसन्निभः ।
तत् पुरुषस्य तु मन्त्रेण पूजयेद् देवमुत्तमम् ।।३२।।

जल्पीश वरद और अभय मुद्राओं से युक्त दो भुजाओं वाले तथा कुन्द की आभावाले हैं, उस उत्तमदेव का **तत्पुरुषमन्त्र** से पूजन करना चाहिये।।३२।।

एवं पुण्यकरः पीठो जल्पीशस्य महात्मनः ।
एवं ज्ञात्वा नरो याति शंकरस्य पुरं प्रति ।।३३।।

।। इति श्रीकालिकापुराणे कामरूपवर्णनेजल्पीशमाहात्म्यनाम सप्तसप्ततितमोऽध्यायः ।।७७।।

इस प्रकार से महात्माजल्पीश का यह स्थान, पुण्यदायक है। इसे जानकर मनुष्य, शिवलोक को प्राप्त हो जाता है।।३३।।

श्रीकालिकापुराणमें कामरूपवर्णनेजल्पीशमाहात्म्यनामक सतहत्तरवाँ अध्याय सम्पूर्ण हुआ।।७७।।



अष्टसप्ततितमोऽध्यायः

कामरूपवर्णनेमणिकूटमाहात्म्यम्

।। मार्कण्डेय उवाच ।।

एतच्छ्रुत्वा तु संवादमुत्तमं शंकरस्य च ।
भैरवस्य तु वेतालसहितस्य महात्मनः ।।१।।
भूयश्च सगरो राजा मुनिमौर्वं महामतिम् ।
प्रपच्छ मोदसंहृष्टः सूनृतं चेदमुत्तमम् ।।२।।

मार्कण्डेय बोले—भगवान् शङ्कर एवं महात्मावेताल के सहित भैरव के इस त्तमसंवाद को सुनकर पुनः राजा सगर ने प्रसन्नता से भरकर, महान् बुद्धिमान् और्वमुनि से, यह सत्य एवं उत्तम प्रश्न पूछा ॥१-२॥

।। सगर उवाच ।।

विचित्रमिदमाख्यातं भगवन्मुनिसत्तम ।
कामरूपस्य पीठस्य संस्थानं निर्णयं तथा ।।३।।

सगर बोले—हे मुनिसत्तम् ! कामरूपपीठ के संस्थान और निर्णय के विषय में आपके द्वारा यह अद्भुत प्रसङ्ग कहा गया॥३॥

भूयश्च श्रोतुमिच्छामि विस्तरेण महामते ।
वायव्यस्याथ मध्यस्य पूर्वभागस्य निर्णयम् ।।४।।

हे महामति ! अब मैं पुनः विस्तारपूर्वक क्षेत्र के वायव्य मध्यभाग, पूर्वभाग के निर्धारण के विषय में सुनना चाहता हूँ॥४॥

यथा यस्मिन् निष्ठितोऽस्ति महादेवोऽम्बिका तथा ।
तत्सर्वं मुनिशार्दूल कथय श्रोतुमुत्सहे ।।५।।

हे मुनिशार्दूल ! जिस प्रकार से जहाँ-जहाँ महादेव शिव और अम्बिका (पार्वती) स्थित हैं, आप वह कहिये । मैं उसे सुनना चाहता हूँ ॥५॥

।। और्व उवाच ।।

उक्तो वायव्यभागस्य निर्णयो नृपसत्तम ।
नैर्ऋत्योत्तरमध्यैन्द्रैः शृण्विदानीं विनिर्णयम् ।।६।।

और्व बोले—हे राजाओं में श्रेष्ठ ! मेरे द्वारा आपसे कामरूप के वायव्य- भाग

का निर्णय कहा गया। अब उसके नैर्ऋत्य, उत्तर, मध्य, ऐन्द्री (पूर्व) दिशाओं की स्थिति के विषय में, मुझसे सुनो ।।६।।

बहुरोका नाम नदी करतोया प्रदक्षिणे ।
उत्तरश्रवणी चास्ते तत् पूर्वं कामरूपकम् ।।७।।

करतोया नदी के दक्षिणभाग में बहुरोका नाम की एक नदी है जो उत्तर की ओर बहती हुई, कामरूप के पूर्वभाग में स्थित है ।।७।।

सुरसो नाम जीमूतः कामरूपं ततः स्थितः ।
निःसृता बहुरोकेति नदी तस्माद् वृषप्रदा ।।८।।

तत्पश्चात् कामरूप में एक सुरसनामका जीमूत (पर्वत) है जिससे बहुरोका नामक नदी निकली है जो वृषप्रदान करने वाली है।।८।।

आसन्ने सुरसाख्यस्य शिवलिङ्गो महावृषः ।
माहेश्वरी तत्र देवी योनिमण्डलरूपिणी ।।९।।

सुरस के समीप ही एक महावृष नाम का शिवलिङ्ग है । वहाँ देवी महेश्वरी, योनिमण्डल के रूप में स्थित हैं।।९।।

स्नात्वा तु बहुरोकायामारूह्य सुरसाचलम् ।
महावृषं पूजयित्वा महादेवीं महेश्वरीम् ।
धूतपापो जितद्वन्द्वः पुनर्योनौ न जायते ।।१०।।

बहुरोका नदी में स्नान कर, सुरस नामक पर्वत पर चढ़कर, शिवरूप महावृष तथा महेश्वरी देवी का पूजन कर साधक, पाप रहित हो, द्वन्द्व को जीत कर, पुनः किसी योनि में उत्पन्न नहीं होता, जन्म नहीं लेता।।१०।।

चतुर्भुजो वृषारुढो वरदाभयशूलधृक् ।
शुद्धस्फटिकसंकाशो जटावान् स महावृषः ।।११।।
अघोरस्य तु मंत्रेण पूजाऽस्य परिकीर्तिता ।।१२।।

वे महावृष, वरद और अभय मुद्राओं तथा शूल-धारण की, चारभुजाओं से युक्त हो, वृषभ पर सवार हैं। वे शुद्धस्फटिक के समान आभा वाले हैं तथा जटावान हैं। उनकी पूजा, **अघोरमन्त्र** से कही गई है ।।११-१२।।

कामेश्वर्याः स्वरूपं तु माहेश्वर्याः प्रकीर्तितम् ।
पूजापि यद्वदेवास्यास्तद्वत्फलप्रदायिका ।।१३।।

कामेश्वरी का स्वरूप ही महेश्वरी का भी बताया गया है । उनकी पूजा भी उन्हीं की भाँति दी गई है तथा वे उन्हीं की भाँति फलप्रदान करने वाली भी हैं।।१३।।

तत्र वसिष्ठकुण्डं तु वसिष्ठमुनिसेवितम् ।
यत्र स्थितो वसिष्ठस्तु नरकेण निवारितः ।।१४।।

वहीं वशिष्ठमुनि द्वारा सेवित, वशिष्ठकुण्ड है जहाँ निवास करते हुये वशिष्ठमुनि, नरकासुर द्वारा रोके गये थे ।।१४।।

अप्राप्य गन्तुं जीमूतं नीलाख्यं वाशपत्तु तम् ।
स्वस्नानार्थं कृतं तत्र कुण्डं देवगणार्चितम् ।
तत्र स्नात्वा नरो याति नाकपृष्ठं यथेच्छया ।।१५।।

नील नामक पर्वत पर न जा पाने पर उन्होंने उसे (नरकासुर को) शाप दे दिया तथा अपने स्नान हेतु वहाँ देव गणों से पूजित एक कुण्ड का निर्माण किया । जहाँ स्नान करके मनुष्य, इच्छानुसार स्वर्गलोक को जाता है ।।१५।।

सुरसस्य च पूर्वस्यां कृत्तिवासाह्वयो गिरिः ।
कृत्तिवासाः स्वयं तत्र सत्या सहावसत् पुरा ।।१६।।
चन्द्रिकाख्या नदी यत्र तस्यां स्नात्वा दिवं व्रजेत् ।।१७।।

सुरस की पूर्वदिशा में कृत्तिवास नाम का पर्वत है, जहाँ स्वयं भगवान् कृत्तिवास (शिव) ने प्राचीनकाल में सती के साथ निवास किया था। वहीं चन्द्रिका नाम की एक नदी बहती है जिसमें स्नान करके मनुष्य, स्वर्ग को जाता है।।१६-१७।।

चन्द्रिकायां नरः स्नात्वा सम्पूज्य कृत्तिवाससम् ।
भाद्रशुक्लचतुर्थ्यां तु निष्कलङ्को भवेन्नरः ।।१८।।

भादो के शुक्लपक्ष की चतुर्थी को चन्द्रिकानदी में स्नान कर तथा कृत्तिवास (शिव) का पूजन कर, मनुष्य निष्कलङ्क हो जाता है ।।१८।।

पूर्णभाद्रपदं मासं चन्द्रिकायां नरोत्तमः ।
स्नात्वा गच्छति भूतेशं दृष्ट्वैव कृत्तिवाससम् ।
उत्तरस्राविणीं नित्यं चन्द्रिकाख्या सरिद्वरा ।।१९।।

पूरे भाद्रपद महीनेभर चन्द्रिकानदी में स्नान कर, कृत्तिवास के दर्शनमात्र से मनुष्यों में उत्तममनुष्य, भूतेशशिव को प्राप्त करता है। नदियों में श्रेष्ठ यह चन्द्रिका नाम की नदी, नित्य उत्तर की ओर बहने वाली है।।१९।।

नातिदूरे चन्द्रिकायाः पूर्वस्यां दिशि फेनिला ।
संज्ञया च सरिच्छ्रेष्ठा शतानन्दावतारिता ।।२०।।
ब्रह्मणो दुहिता सा तु गङ्गा पर्वतसम्भवा ।।२१।।

चन्द्रिका से थोड़ी ही दूरी पर, पूर्वदिशा में एक फेनिला नाम की श्रेष्ठनदी बहती है जो ब्रह्मा की पुत्री, पर्वत से निकली हुई गङ्गा है, जिसे शतानन्द धरती पर लाये थे।।२०-२१।।

फेनिलायां नरः स्नात्वा ब्रह्मोत्थानदिने पुनः ।
फाल्गुने मासि नरकं जित्वा स्वर्गमवाप्नुयात् ।।२२।।

फेनिला में ब्रह्मोत्थान दिवस (देवोत्थान एकादशी) को या पूर्ण फाल्गुनमास-भर स्नान कर, मनुष्य नरक को जीत कर, स्वर्ग को प्राप्त करता है।।२२।।

ततः सिताह्वया पूर्वं सरिदुत्तरगामिनी ।
तस्यां स्नात्वा महाचैत्र्यां गङ्गास्नानफलं लभेत् ।।२३।।

वहाँ से पूर्व में उत्तर दिशा की ओर बहने वाली सिता नामकी एक नदी है, उसमें महाचैत्री (महावारुणी) के अवसर पर स्नान कर, मनुष्य गङ्गा-स्नान का फल प्राप्त करता है।।२३।।

ततः पूर्वं सुमदना योजनद्वितयान्तरे ।
नदी जनकराजेन समाराध्य वृषध्वजम् ।
हिताय भैरवाख्यस्य सुतीक्ष्णादवतारिता ।।२४।।

उससे पूर्व में दोयोजन (१६ मील) की दूरी पर सुमदना नामकी एक नदी है जो राजा जनक द्वारा वृषध्वजशिव की भलीभाँति आराधना कर, भैरव के हित के लिए सुतीक्ष्णपर्वत से अवतरित की गई थी ।।२४।।

सुतीक्ष्णं गिरिमारुह्य स्नात्वा सुमदनाजले ।।२५।।
माघशुक्लचतुर्थ्यां तु पूजयित्वा महेश्वरम् ।
संप्राप्य सकलान् कामान् शिवलोकाय गच्छति ।।२६।।

माघ के शुक्लपक्ष की चतुर्थी तिथि को सुमदना नामवाली नदी में स्नान कर तथा सुतीक्ष्णपर्वत पर चढ़कर, महेश्वर का पूजन कर, मनुष्य अपनी समस्तकामनाओं को प्राप्त कर, शिवलोक को जाता है।।२५-२६।।

एता नद्यः कामरूपैर्नैर्ऋत्यामुत्तरस्रवाः ।
पीठस्य पूर्वतस्तत्र त्रिपुरा यत्र पूज्यते ।।२७।।

ये (उपर्युक्त) नदियाँ कामरूपपीठ के नैर्ऋत्यभाग में जहाँ देवी, त्रिपुरारूप में पूजी जाती हैं, स्थित हैं तथा उत्तर की ओर बहने वाली हैं।।२७।।

एवं ते कथितं राजन् महापुण्यदमुत्तमम् ।
कामरूपस्य नैर्ऋत्यां यत्र शम्भुः सदाम्बिका ।।२८।।

हे राजन् ! इस प्रकार आपसे कामरूप के उस उत्तम, महानपुण्य-देनेवाले नैर्ऋत्यभाग का वर्णन किया गया, जहाँ शिव, अम्बिका के साथ सदैव निवास करते हैं।।२८।।

पुनरेव महाराज या नद्यो दक्षिणस्रवाः ।
हिमवत्प्रभवां याताः क्रमशः शृणु भूपते ।।२९।।

हे भूपति ! हे महाराज ! आप पुनः उन नदियों के विषय में सुनें, जो हिमालय से निकलकर क्रमशः दक्षिण की ओर बहकर जाने वाली हैं।।२९।।

अगदस्य नदस्योर्ध्वं भद्राख्या तु महानदी ।
भाद्रे कृष्णचतुर्दश्यां यस्यां स्नात्वा दिवं व्रजेत् ।।३०।।

अगद के उत्तर में एक भद्रा नाम की महानदी है। जिसमें भाद्रपद के कृष्णपक्ष की चतुर्दशीतिथि को स्नान कर मनुष्य, स्वर्ग को जाता है।।३०।।

ततः पूर्वसुभद्राख्या नदी पुण्यतमा सदा ।
वैशाखस्य तृतीयायां यस्यां स्नात्वा दिवं व्रजेत् ।।३१।।

उसके पूर्व में सुभद्रा नाम की सदैव पुण्यतमा नदी है जिसमें वैशाख की तृतीयातिथि को स्नान करके मनुष्य, स्वर्ग को जाता है ।।३१।।

ततस्तु मानसा नाम नदी पुण्यतमा मता ।
सरसो मानसाख्यात् तु तृणबिन्द्ववतारिता ।।३२।।
वैशाखं सकलं मासं तस्यां स्नात्वा नरोत्तमः ।
विष्णुलोकमवाप्यैव ततो मोक्षमवाप्नुयात् ।।३३।।

उसके बाद मानसा नाम की पवित्रतम मानी जाने वाली वह नदी है । जो राजा तृण-बिन्दु द्वारा मानससर से अवतरित की गई है । उसमें सम्पूर्ण वैशाखमास-पर्यन्त स्नान करके, मनुष्यों में श्रेष्ठपुरुष, पहले विष्णुलोक को प्राप्त करता है, तत्पश्चात् मोक्ष को प्राप्त करता है।।३२-३३।।

हिमवन्निकटे शैलो विभ्राटः स महाद्युतिः ।
यस्मिन् वसति भूतेशः सदा भैरवरूपधृक् ।।३४।।

हिमालय के निकट ही एक विभ्राट् नामक पर्वत है। वह महान् चमक से सुशोभित है जिसपर स्वयं भगवान् भूतेश्वर, शिव, भैरवरूप धारण कर निवास करते हैं।।३४।।

तस्मात् तु भैरवी नाम नदी पुण्योदका शुभा ।
प्राङ् मानसाद्या स्त्रवति गङ्गेव फलदायिनी ।।३५।।

मानसानदी के पूर्वभाग में उस विभ्राटपर्वत से निकली हुई, भैरवी नामकी, पवित्र, जलवाली, गङ्गा की भाँति फल देने वाली, एक शुभकारिणी नदी बहती है।।३५।।

यस्यां वसन्तसमये स्नात्वा गच्छति वै दिवम् ।
यस्यां सम्पूज्य कामाख्यामिष्टं ज्ञानमवाप्नुयात् ।
सम्पूज्याथ महामायां द्विगुणं प्राप्नुयात् फलम् ।।३६।।

जिसमें वसन्तसमय में स्नान करके मनुष्य, स्वर्ग को जाता है तथा जिसमें (जिसके जल से) कामाख्या देवी की पूजाकर अभीष्टज्ञान प्राप्त करता है। तत्पश्चात् महामाया का भलीभाँति पूजन कर दूना फल प्राप्त करता है।।३६।।

ऊर्ध्वं ततो देवगङ्गा वर्णासाख्या सरिद्वरा ।
हिमवत्प्रभवा नित्यं फलदा मानसोपमा ।।३७।।

उससे ऊपर देवगङ्गा वर्णासा नाम की वह श्रेष्ठ नदी है जो नित्य हिमालय से निकलती है तथा मानससरोवर के समान फल देने वाली है।।३७।।

सुभद्राद्यास्तु याः प्रोक्ता वर्णासान्ताः सरिद्वराः ।
हिमवत् प्रभवास्तास्तु सर्वा एवोत्तरप्लवाः ।।३८।।

सुभद्रा से प्रारम्भ कर वर्णासापर्यन्त जिन श्रेष्ठनदियों का वर्णन किया गया है । वे सभी हिमालय से निकलकर उत्तर की ओर बहने वाली नदियाँ हैं ।।३८।।

पूर्वेतु मदनारास्तु ब्रह्मक्षेत्रस्य पश्चिमे ।
रविक्षेत्रं यत्र देव आदित्यः सततं स्थितः ।।३९।।

मदनारा के पूर्व तथा ब्रह्मक्षेत्र के पश्चिम में रविक्षेत्र नामक वह स्थान है, जहाँ आदित्यदेव (सूर्य) निरन्तर स्थित रहते हैं।।३९।।

भैरवस्य हितार्थाय यत्र सर्वेश्वराः स्थिताः ।।४०।।
कामरूपे महापीठे ब्रह्मेन्द्रवरुणादयः ।
तदा तत्त्वाह्वये शैले श्रीसूर्योऽपि व्यवस्थितः ।।४१।।

भैरव के कल्याण के लिए ब्रह्मा, इन्द्र, वरुण आदि समस्त देवता कामरूप नामक महान् पीठ में स्थित हुए तभी तत्त्व नामक पर्वत पर श्री सूर्यदेव भी व्यवस्थित किये गये थे ।।४०-४१।।

त्रिस्रोता नाम यस्यास्ति नदी पूर्वदिशि स्थिता ।
कपोतकरणं पश्चादस्य कुण्डद्वयं स्थितम् ।।४२।।

जिसके पूर्वदिशा में त्रिस्रोता (तिस्ता) नाम की नदी तथा उसके बाद कपोत तथा करण नामावाले दो कुण्ड स्थित हैं।।४२।।

कपोतकुण्डे विधिवत् स्नात्वा करणकुण्डके ।
तत्त्वाचलं समारुह्य सम्पूज्य च दिवाकरम् ।
सकृदेव नरो याति भास्करस्य गृहं प्रति ।।४३।।

विधिपूर्वक कपोतकुण्ड और करणकुण्ड में स्नान करने के पश्चात् तत्त्वाचल पर चढ़कर एकबार सूर्य भगवान् का पूजन करने से मनुष्य, भाष्कर के गृह, सूर्यलोक को जाता है।।४३।।

सूर्यरश्मिसमुद्भूतं कपोतकरणामृतम् ।
पुण्यतोयसमाख्यातं पापं कपोत मे हर ।।४४।।

मन्त्र–सूर्यरश्मिसमुद्भूत.....हर! मन्त्रार्थ–हे कपोत एवं करण नामक अमृतमय कुण्डों! तुम सूर्य की किरणों से उत्पन्न हुये हो, पुण्यतोय के नाम से प्रसिद्ध, हे कपोत, तुम मेरे पापों का हरण करो।।४४।।

इत्यनेन तु मन्त्रेण स्नात्वा कपोतपुष्करे ।
करणं समुपस्पृश्य तत्त्वशैले रविं यजेत् ।।४५।।

इस मन्त्र से कपोतकुण्ड में स्नान कर करण-कुण्ड के जल का स्पर्श करे तब तत्त्वशैल पर सूर्यदेव का पूजन करे।।४५।।

।। आदित्य मन्त्र ।।

त्रिविधं ब्रह्मबीजं तु सहस्त्रपदमन्ततः ।
रश्मयेऽपि चतुर्थ्यां तु देवोजाया तु चेष्टतः ।।४६।।
अङ्गबीजमिदं प्रोक्तमादित्यस्यातिकामदम् ।।४७।।

तीन बार ब्रह्मबीज **(ॐ)** के पश्चात् सहस्त्र शब्द और तब **रश्मये** भी कहे और देवोजाया (स्वाहा) शब्द के प्रयोग से बना, अत्यधिक कामनाओं को पूर्ण करने वाला, **''ॐ ॐ ॐ सहस्त्ररश्मये स्वाहा''** यह आदित्य का अङ्गबीज कहा गया है।।४६-४७।।

।। आदित्यध्यान ।।

पद्मासनः पद्मकरः पद्मगर्भसमद्युतिः ।
सप्ताश्वः सप्तरज्जुश्च द्विभुजो भास्करः सदा ।।४८।।
वर्तुलं मण्डलं चास्य अष्टपत्रसमन्वितम् ।।४९।।

भास्कर, सूर्यदेव, सदैव कमल के आसन पर विराजमान, हाथों में कमल धारण किये हुए, कमल के गर्भ के समान पीताभ चमक वाले, सात रस्सियों को पकड़े हुए, सात घोड़ो से जुते रथ पर स्थित, दो भुजाओं वाले बताये गये हैं। इनका मण्डल, आठदलों से युक्त वृत्ताकार होता है।।४८-४९।।

अङ्गुष्ठाग्राङ्गुलीनां च हृदादीनां तथा च षट् ।
अङ्गमन्त्रेण सहित उपान्ते वह्निसंयुतः ।
सर्वन्यासे सुमुद्दिष्टो मंत्रः सर्वफलप्रदः ।।५०।।

अंगुष्ठा तथा अङ्गुलियों के अग्रभाग सहित हाथ एवं हृदय आदि छः अङ्गों का न्यास कहा गया है। सभी न्यासों के लिए अङ्गमन्त्र के सहित वह्नियुक्त उपान्त व्यंजन ह सभी प्रकार का फल देने वाला उत्तममन्त्र बताया गया है।।४९-५०।।

हृच्छिरस्तु शिखा वर्मनेत्रास्योदरपृष्ठतः ।
बाह्वोः पाण्योर्जङ्घयोस्तु पादयोश्चापि विन्यसेत् ।।५१।।
जघने च समस्तानि क्रमान्मन्त्राक्षराणि च ।
क्रमोच्चोत्तरतः प्रोक्तः पूजने परिकीर्तितः ।।५२।।

हृदय, शिर, शिखा, कवच, नेत्र, मुख, उदर, पीठ, दोनों भुजायें, दोनों हाथ, दोनों टखनों, दोनों पैर, जघन आदि समस्तस्थानों में क्रमशः मन्त्रों के एक-एक अक्षर का न्यास करे। पूजन में आगे-आगे (बादका) का क्रम बताया गया है।।५१-५२।।

विसर्जनं तथैशान्यां विद्याद्या दलशक्तयः ।
निर्माल्यधृक् तत्त्वचण्डो माठराद्यास्तु पार्श्वयोः ।
बीजमुत्तरतंत्रस्य पूर्वतः प्रतिपादितम् ।।५३।।

इस पूजन में देवता का विसर्जन ईशानकोण में, विद्या आदि आठ दलों की

आठशक्तियाँ, निर्माल्यधारण करने वाला देवता तत्त्वचण्ड और माठर आदि पार्श्ववर्तीगण बताये गये हैं। इस का बीजमन्त्र, पहले ही उत्तरतन्त्र में बताया गया है।।५३।।

अनेन विधिना तत्त्वे पूजयित्वा नरोत्तमः ।।५४।।
स कामानखिलान् प्राप्य इहलोके प्रमोदते ।
सुखी शेषे तथा गच्छेद् भास्करस्यालयं प्रति ।।५५।।

इस विधि से भगवान् सूर्य का तत्त्वपर्वत पर पूजन कर, उत्तम साधक, अपनी समस्त कामनाओं को प्राप्त कर, इस लोक में आनन्द से सुखपूर्वक रहता है तथा शेष (अन्त) होने पर वह भास्कर के आलय, सूर्यलोक को जाता है।।५४-५५।।

नातिदूरे भास्करस्य दक्षिणस्यां शुभाह्वयः ।
तस्योर्ध्वसानौ वसति लिङ्गं शांकरमुत्तमम् ।।५६।।
परिवार्य सदा यान्ति महाकायास्तु वानराः ।
परिवार्यावतिष्ठन्ते सेवमानाश्च शङ्करम् ।।५७।।

भास्कर के समीप ही दक्षिणदिशा में शुभनामक एक पर्वत है जिसकी ऊँची चोटी पर एक उत्तम शिवलिङ्ग स्थित है, जिसे विशालकाय वानर सदैव घेरे रहते हैं। तथा उसे घेर कर शङ्कर की सेवा में लगे रहते हैं।।५६-५७।।

त्रिस्रोतायां नरः स्नात्वा यः पश्येत् तु शुभाचले ।
महात्मानं महादेवं काममिष्टं लभेन्नरः ।।५८।।

त्रिस्रोता नामवाली नदीं में स्नान कर जो मनुष्य, शुभाचल पर महान आत्मावाले भगवानशिव का दर्शन करता है । वह अपनी अभीष्ट कामनाओं को प्राप्त कर लेता है ।।५८।।

ततः पूर्वं सुरनदी नाम्ना कुसुममालिनी ।
क्षीरोदाख्यापरा तस्मात् ते गते दक्षिणस्त्रवे ।।५९।।
एते अपि महाराज पुण्यतोयेऽमृतस्त्रवे ।
तयोः स्नात्वा नरो याति शङ्करस्यालयं प्रति ।।६०।।

उसके पूर्व में एक कुसुममालिनी नामवाली देवनदी (गङ्गा) तथा दूसरी क्षीरोदा नामकी नदी, उसी से निकली है। ये दोनों ही नदियाँ दक्षिण की ओर जाती हैं । हे महाराज ! ये दोनों ही नदियाँ पवित्रजलवाली एवं अमृतबहानेवाली हैं। उन दोनों में स्नानकर, मनुष्य शिवलोक को जाता है ।।५९-६०।।

ततोऽपि पूर्वतो देवीलीलाख्या चापरा नदी ।
यस्यां स्नात्वा महानद्यां शिवलोकाय गच्छति ।।६१।।

उससे भी पूर्व में देवीलीला नामवाली, एक अन्य महानदी बहती है जिसमें स्नान कर मनुष्य शिवलोक को जाता है ।।६१ ।।

ततः पूर्वं शिवाचण्डी चण्डिकाख्या महानदी ।
निर्याति धवलाख्यात् तु पर्वतात् सुमनोहरात् ।।६२।।

उसके पूर्व में शिवाचण्डी-चण्डिका नाम वाली एक महान् नदी है जो धवल नामक सुन्दरपर्वत से निकलती है॥६२॥

शिवलिङ्गद्वयं तत्र नातिदूरे व्यवस्थितम् ।
गोलोकं चाथ शृङ्गं च क्रोशमात्रान्तरे स्थितम् ।।६३।।

वहीं मात्र एक कोश (२ मील) के अन्तर से गोलोक एवं शृंग नाम के दो शिवलिङ्ग, चण्डिका नदी के समीप ही स्थित है ।।६३।।

चण्डिकायां नरः स्नात्वा आरुह्य धवलाचलम् ।
दक्षिणं सागरं वीक्ष्य स्पृष्ट्वा गोलोकसंज्ञकम् ।।६४।।
ततोऽवतीर्य च पुनः शृङ्गिणं भूमिपीठकम् ।
शिवपूजाविधानेन पूजयित्वा महेश्वरम् ।।६५।।
अश्वमेधस्य यज्ञस्य फलं सम्प्राप्य मानवः ।
सर्वान् कामानवाप्येह देहान्ते शिवतां व्रजेत् ।।६६।।
एता याः कथिता नद्यः सर्वा वै दक्षिणस्त्रवाः ।।६७।।

चण्डिका नदी में स्नान कर, धवलाचल पर चढ़कर, दक्षिणसागर का दर्शन तथा गोलोक नामक शिवलिङ्ग का स्पर्श करके, वहाँ से पुनः धरातल पर उतर कर, शृङ्ग महेश्वर की, शिवपूजा की विधि से पूजन करके, मनुष्य, अश्वमेधयज्ञ का फल प्राप्त करता है एवं अपनी सभी कामनाओं को प्राप्त कर, देहान्त के पश्चात शिवत्व को जाता है (प्राप्त करता है)। ये जो नदियाँ कही गई है वे सभी दक्षिण की ओर बहने वाली हैं॥६४-६७॥

तस्मादीशानकाष्ठायां पर्वतो गन्धमादनः ।
यत्र भृङ्गाह्वयं लिङ्गं शिवस्यास्ते महत्तरम् ।
स एव पर्वतश्रेष्ठः प्राप्तः क्षेत्रस्य पश्चिमे ।।६८।।

उस (कामरूपपीठ) से ईशानदिशा में गन्धमादन नामक पर्वत है जहाँ शिव का एक भृङ्ग नामक विशाल लिङ्ग है । यही पर्वतश्रेष्ठ, क्षेत्र के पश्चिमीभाग तक फैला हुआ है॥६८॥

धृत्वा ब्रह्मशिलां देवीं सावित्री प्रतिगामिनी ।
गन्धमादनकस्यान्ते भृङ्गेशस्य पदद्वयम् ।
स्त्रवद्गङ्गाजलं चास्ते कुण्डं तत्रान्तरालकम् ।।६९।।

सावित्री की ओर जाने वाली ब्रह्मशिला को धारण कर, गन्धमादन पर्वत के अन्त में भृङ्गेश के दो चरण, स्थित हैं । जिनसे सदैव गङ्गाजल बहता रहता है । वहीं अन्तरालक नाम का एक कुण्ड भी है ।।६९।।

अन्तरालककुण्डे तु स्नात्वा पीत्वा च तज्जलम् ।।७०।।
भृङ्गेशस्य ततो दृष्टा शिलासंस्थं पदद्वयम् ।
पूजयित्वा महाभृङ्गं गाणपत्यमवाप्नुयात् ।।७१।।

अन्तरालककुण्ड में स्नान कर, उसके जल को पीकर, भृङ्गेश का तथा ब्रह्मशिला पर स्थित उनके दोनों पैरों का पूजन कर साधक, महाभृङ्ग नाम से गणों के स्वामीत्व को प्राप्त करता है।।७०-७१।।

शम्भुपादसमुद्भूतमन्तरालदृशाकरम् ।
वृषध्वजपदानां त्वं संयोजय महावृष ।।७२।।
इत्यनेन तु मन्त्रेण स्नानं कृत्वान्तराजले ।
भृङ्गदेवं ततः पश्येत् कुब्जपीठान्तवासिनम् ।।७३।।

मन्त्रार्थ-शिव के चरणों से उत्पन्न अन्तरालक में एकत्रित होने वाले हे महान् (जलस्रोत) वृष ! तुम मुझे वृषध्वज शिव के चरणों में लगाओ, इस अर्थवाले **शम्भुपाद-महावृष** मन्त्र से अन्तरालक के जल में स्नान कर, कुब्जपीठ के अन्त में निवास करने वाले भृङ्गेश का दर्शन करना चाहिये।।७२-७३।।

मणिकूटस्याथ गिरेर्गन्धमादनकस्य च ।
मध्ये स्रवति लौहित्यो ब्रह्मणाग्निसमुत्थितः ।
वर्णाशाया दक्षिणस्यां लौहित्यो नाम सागरः ।।७४।।

ब्रह्मा के अग्नि (वीर्य) से उत्पन्न, लौहित्य (ब्रह्मपुत्र) नाम वाला, महान् नद मणिकूट और गन्धमादन पर्वतों के बीच से बहता है । यह लौहित्य नामक सागर (महानद), वर्णाशा से दक्षिण में स्थित है (कालिका पुराण में यही दक्षिण, सागर नाम से अभिहित है)।।७४।।

मणिकूटः स्थितः पूर्वे हयग्रीवो हरिर्यतः ।।७५।।
स हयग्रीवरूपेण विष्णुर्हत्त्वा ज्वरासुरम् ।
निहत्य स हयग्रीवः क्रीडायै यत्र संस्थितः ।।७६।।

पूर्व में मणिकूटपर्वत स्थित है जहाँ हयग्रीव, हरि (भगवान् विष्णु), हयग्रीवरूप में विराजमान हैं । क्योंकि ज्वरासुर को मारने के पश्चात् वहीं विष्णु, हयग्रीवरूप में क्रीड़ाहेतु स्थित हैं।।७५-७६।।

हत्वा ज्वरं तथा विष्णुस्तत्र वासयथाकरोत् ।
नरदेवासुरादीनां यथा भवति वै हितम् ।।७७।।

ज्वरनामक असुर को मारकर विष्णु ने वहाँ इस प्रकार निवास किया जिससे देवता, असुर और मनुष्य सभी का कल्याण हो ।।७७।।

ज्वरेणापीडिततनुर्ज्वरं हत्वा महासुरम् ।
सर्वलोकहितार्थाय सोऽगदस्नानमाहरत् ।।७८।।

ज्वर से पीड़ित शरीर वाले हयग्रीव ने समस्तलोक के हित के लिए ज्वर नामक उस महान् असुर को मार कर रोगमुक्तिस्नान किया ।।७८।।

अगदस्नानसम्भूतं संजातं च महासरः ।
तस्य स्वयं हयग्रीवो नाम चक्रेऽपुनर्भवम् ।।७९।।

उनके अगदस्नान से एक महान् सरोवर निर्मित हो गया जिसे स्वयं भगवान् हयग्रीव ने अपुनर्भव नाम दिया।।७९।।

न पुनर्जायते यस्मात् तत्र स्नात्वा नरोत्तमः ।
अपुनर्भवसंज्ञं तत् सरस्तु परिकीर्तितम् ।।८०।।

इसमें स्नान करने से श्रेष्ठपुरुष को पुनः जन्म नहीं लेना पड़ता इसीलिए वह सरोवर अपुनर्भव कहा गया है।।८०।।

मणिकूटाचले विष्णुर्हयग्रीवस्वरूपधृक् ।
शतव्यामप्रमाणेन विस्तरेणैव शोभितम् ।।८१।।

मणिकूटाचल पर भगवान् विष्णु, हयग्रीवरूप धारण कर एक सौ व्याम (परोसा) के क्षेत्र में विस्तार से शोभायमान हैं।।८१।।

तस्मात् पूर्वे भद्रकामः पर्वतस्तु त्रिकोणकः ।
यत्र कालहयो नाम शिवलिङ्गो व्यवस्थितः ।।८२।।

उससे पूर्वभाग में भद्रकाम नामक एक त्रिकोणाकारपर्वत है जिस पर कालहय नामक एक शिवलिङ्ग विशेषरूप से स्थित है।।८२।।

तस्यासन्ने दक्षिणस्यामपुनर्भवकुण्डकम् ।
अपुनर्भूसरस्तीरे पर्वते भद्रकामदे ।।८३।।
हरवीथीति विख्याता शिला ब्रह्मस्वरूपिणी ।
तत्र योगी महादेवो योगज्ञो ध्यानतत्परः ।
यं दृष्टा योगवान् मर्त्यो मृतो मोक्षमवाप्नुयात् ।।८४।।

उसी के समीप अपुनर्भवकुण्ड से दक्षिणदिशा में अपुनर्भवसर के तट पर स्थित, भद्रकामदपर्वत पर हरवीथि नाम से ब्रह्मस्वरूपिणी एक शिला है। ध्यान में तत्पर योगी महादेव जो योग के ज्ञाता हैं, उसी पर स्थित हैं। जिन्हें देखकर मनुष्य को जीते जी योग प्राप्त होता है तथा मरने पर वह मोक्ष को प्राप्त करता है।।८३-८४।।

तस्यामेव शिलायां तु गोकर्णो नाम शङ्करः ।
गोकर्णो निहतो येन अन्धकस्य सखा पुरा ।।८५।।

उसी शिला पर उन भगवान् शङ्कर का गोकर्ण नामक शिवलिङ्ग भी स्थित है, जिन शङ्कर के द्वारा प्राचीनकाल में अन्धक का मित्र, गोकर्ण नामक असुर मारा गया था।।८५।।

गोकर्णस्य तथैशान्यां केदारः शम्भुरन्ततः ।
ततोऽन्धकसमः प्रोक्तः कमलाकरभोगधृक् ।।८६।।

गोकर्ण से ईशानदिशा में शम्भु के समीप, केदार है जो कमलाकर के भोग को धारण करता है। वह गोकर्ण के मित्र अन्धक के समान कहा गया है ।।८६।।

यत्रास्ति शम्भुः केदारः स गिरिर्मदनाह्वयः।
तत्रैव कमलः प्रोक्त स महात्मालयप्रदः।।८७।।

और जहाँ पर केदार नामक शिव स्थित हैं, वह मदन नामका एक पर्वत है। वहाँ एक कमल बताया गया है जो महात्मात्ओं का आश्रयस्थल है।।८७।।

स्नात्वाऽपुनर्भवजले दृष्ट्वा गोकर्णयोगिनौ ।।८८।।
केदारकमलौ दृष्ट्वा मुक्तिर्माधवदर्शने ।
दृष्ट्वा तु माधवं देवं ततः कामं विलोकयेत् ।।८९।।
कामं विलोक्य तत्रस्थो निरीक्षेदपुनर्भवम् ।
एवं कृत्वा पीठयात्रामनेन क्रमयोगतः ।।९०।।
सप्तपूर्वान् सप्तपरानात्मानं दशपञ्च च ।
पितृनुद्धृत्य त्रिदिवं नयेत् स पुरुषोत्तमः ।।९१।।

यदि उत्तमपुरुष, अपुनर्भव के जल में स्नान कर, गोकर्ण तथा योगी नामक शिवरूपों का दर्शन कर, केदार और कमल का दर्शन कर, मुक्ति और माधव के दर्शन करे तत्पश्चात् माधव देव का दर्शन करने के बाद, काम का दर्शन करे। काम के दर्शन के अनन्तर वहीं स्थित अपुनर्भव का पुनः दर्शन करे, तो इस क्रम और रूप से पीठयात्रा करने से पुरुषों में श्रेष्ठ वह, अपने सहित सात पहले तथा सात बाद के, कुल १५ पितरों का उद्धार कर, उन्हें स्वर्ग में ले जाता है।।८८-९१।।

विष्णुस्थानसमुद्भूतापुनर्भवहरीश्वर ।
पापं हर स्वर्ग हेतोर्जितसङ्गमहोदधे ।
अनेनैव तु मन्त्रेण स्नायाद् वीरोऽपुनर्भवेत् ।।९२।।

मन्त्रार्थ—हे विष्णु के स्थान से उत्पन्न अपुनर्भव नामक जल के ईश्वर ! मेरे पापों को दूर करो। हे महोदधि ! तुम स्वर्ग के लिए सङ्ग से परे हो। इस **विष्णुस्थान-महोदये** मन्त्र से यदि स्नान करे तो वीर साधक पुनः न जन्म लेने वाला हो जाता है।।९२।।

हयग्रीवस्य तन्त्रं तु पुरैव प्रतिपादितम् ।
रूपं श‍ृणु महाराज चिन्तयेत् तस्य यादृशम् ।।९३।।

हयग्रीव का तन्त्र तो पहले ही कहा जा चुका है । अब हे महाराज ! उनके जिसरूप का ध्यान करना चाहिये, उसके विषय में सुनिये।।९३।।

।। हयग्रीवध्यान ।।

कर्पूरकुन्दधवलः सितपद्मोपरिस्थितः ।
चतुर्भुजः कुण्डलादिनानालङ्कारभूषितः ।।९४।।

वे कपूर और कुन्द के समान श्वेतवर्ण के हैं। वे श्वेतकमल के ऊपर स्थित हैं, वे चारभुजाओं से युक्त तथा कुण्डल आदि विविधआभूषणों से सुशोभित हैं।।९४।।

वरदाभयहस्तस्तु वामहस्तद्वयेन तु ।।९५।।
पुस्तकं सितपद्मं च धत्ते हस्तद्वयेऽपरे ।
श्रीवत्सकौस्तुभोरस्कः कचिच्च गरुडासनः ।।९६।।

वे अपने दोनों बायें हाथों में वरद और अभय मुद्रायें तथा दूसरे (दाहिने) दोनों हाथों में क्रमशः पुस्तक एवं श्वेतकमल धारण किये हैं तथा हृदय में श्रीवत्स और कौस्तुभमणि धारण करते हैं, कभी-कभी वे गरुड़ पर भी विराजमान होते हैं।।९५-९६।।

सर्व उत्तरतन्त्रोक्तः क्रमो ग्राह्यः प्रपूजने ।
विष्वक्सेनो हयारेस्तु निर्माल्यधृग् विसर्जने ।।९७।।

उत्तरतन्त्र में कहा गया समस्तक्रम ही इनके विशेषपूजन में भी ग्रहण करना चाहिये। हयग्रीव के विसर्जन के समय निर्माल्यधारण करने वाले विष्वक्सेन हैं।।९७।।

शिलारूपप्रतिच्छत्रः सदास्ते गरुडध्वजः ।
क्रीडमानोऽथ गन्धर्वैः स्थितो लोकहिताय च ।।९८।।

वहाँ गरुड़ध्वजविष्णु, गन्धर्वो के साथ सदैव क्रीड़ा करते हुये, लोक के कल्याण के लिए, प्रच्छन्नरूप से शिलारूप में स्थित रहते हैं ।।९८।।

हयग्रीवस्य मन्त्रस्य सिद्धिर्लक्षद्वयेन तु ।
यावकैः पायसैराज्यैर्होमं कुर्वन् पुरश्चरेत् ।।९९।।

हयग्रीवमन्त्र की सिद्धी दो लाख मन्त्रजप करने से होती है । यावक (हलुये), खीर, और घी से होम करते हुये पुरश्चरण करना चाहिये।।९९।।

एकेनैव तु राजेन्द्र पुरश्चरणकर्मणा ।
इष्टसिद्धिमवाप्येह विष्णुलोकमवाप्नुयात् ।।१००।।

हे राजेन्द्र ! एक ही पुरश्चरणकर्म सम्पन्न करने से इस लोक में ईष्टसिद्धि प्राप्त करके साधक, मृत्यु के बाद विष्णुलोक को प्राप्त करता है ।।१००।।

मन्त्रैस्तु पञ्चवक्त्राणां पञ्चमूर्तीन सदार्चयेत् ।
पूर्वे तत्पुरुषादीनां कामादीन् पूजको द्विजः ।।१०१।।

पूजाकरनेवाला द्विज साधक, पहले कहे गये पञ्चवक्त्र के मन्त्रों से तत्पुरुष आदि तथा काम आदि पाँचों मूर्तियों का सदैव पूजन करे।।१०१।।

कामस्तत्पुरुषो ज्ञेयो योगीशानः प्रकीर्तितः ।
अघोरो ह्यथ गोकर्णः केदारो वामदेवकः ।
सद्योजातस्तु कमलामन्त्रैस्तैस्तैः प्रपूजयेत् ।।१०२।।

इस क्रम में कामलिङ्ग को तत्पुरुष जानना चाहिये, योगी को ईशान कहा गया है, गोकर्ण-अघोर तथा केदार, वामदेव, कमला-सद्योजात हैं। साधक उनकी उन्हीं के मन्त्रों से पूजा करे।।१०२।।

पर्वतश्चैव केदारः शिवगङ्गा तु कालिका ।।१०३।।
हयग्रीवस्य पूर्वस्यां केदारस्य तु पश्चिमे ।
छायाभोगाह्वयस्थानं पुरी भोगवती तथा ।।१०४।।

केदार, पर्वत तथा कालिका शिवगङ्गा हैं। हयग्रीव से पूर्व तथा केदार के पश्चिम में छायाभोग नामक स्थान एवं भोगवतीनामवाली एक नगरी स्थित है।।१०३-१०४।।

यो गच्छेन्मणिकूटाख्यां कौतुकाच्चापुनर्भवम् ।
स सर्वतीर्थयात्राणां फलमाप्नोति मानवः ।।१०५।।

जो मनुष्य, मणिकूट नामक पर्वत तथा अपुनर्भवकुण्ड पर कौतुक से भी जाता है, वह सभी तीर्थों की यात्रा का फल प्राप्त करता है।।१०५।।

ज्येष्ठे मासि सिते पक्षे पञ्चदश्यष्टमीषु च ।
स्नात्वाऽपुनर्भवजले यः पश्येद् विधिवद्धरिम् ।
स सर्व कुलमुद्धृत्य विष्णुसायुज्यमाप्नुयात् ।।१०६।।

जो मनुष्य ज्येष्ठमास के शुक्लपक्ष की पूर्णिमा और अष्टमी तिथियों में, अपुनर्भवकुण्ड के जल में स्नान कर, विधिपूर्वक श्री हरि (विष्णु) का दर्शन करता है, वह अपने समस्तकुल का उद्धार कर, विष्णु के सायुज्य को प्राप्त करता है।।१०६।।

ज्येष्ठं तु सकलं मासं नित्यं पश्येत् तु यो हरिम् ।
हरौ विलीनतां याति स सर्वैः सहितः कुलैः ।।१०७।।

जो सम्पूर्ण ज्येष्ठमास तक नित्य, विष्णु का वहाँ दर्शन करता है, वह अपने समस्तकुल के सहित हरि में विलीन होने का योग प्राप्त करता है ।।१०७।।

एतत् ते कथितं पुण्यं मणिकूटाह्वयं परम् ।
वाराणसीतो ह्यधिकं सिद्धविद्याधरार्चितम् ।।१०८।।

यह। आप से जिस मणिकूट नामक पर्वत का वर्णन किया गया, वह परम पुण्यमय तथा वाराणसी से भी अधिक, सिद्ध और विद्याधरों द्वारा अर्चित है।।१०८।।

यः पठेच्छृणुयाद्विप्रो मणिकूटस्य निर्णयम् ।
स सर्ववेदस्य फलं प्राप्नोत्येव न संशयः ।।१०९।।

।। इति श्रीकालिकापुराणे कामरूपवर्णनेमणिकूटमाहात्म्यनाम अष्टसप्ततितमोऽयाय:।।७८।।

जो विप्र, इस मणिकूटनिर्णय प्रसङ्ग को पढ़ता या सुनता है, वह सभी वेदों के अध्ययन का फल प्राप्त करता है। इसमें कोई संशय नही है ।।१०९।।

श्रीकालिकापुराण में कामरूपवर्णनेमणिकूटमाहात्म्यनामक अठहत्तरवाँ अध्याय सम्पूर्ण हुआ।।७८।।



एकोनाशीतितमोऽध्यायः
कामरूपवर्णनेदर्पणादिमाहात्म्यम्

।। और्व उवाच ।।

ततः पूर्वं महाराज दर्पणो नाम पर्वतः ।
कुबेरो यत्र वसति धनपालैः समं सदा ।।१।।

और्व बोले– हे महाराज ! उसके पूर्व में दर्पण नामक एक पर्वत है जहाँ अपने धनरक्षकगणों के साथ कुबेर सदैव निवास करते हैं ।।१।।

यस्मिन्नास्ते मध्यभागे रोहितो रोहिताकृतिः ।
यस्मिँल्लोहादिकं स्पृष्टं स्वर्णतां याति तत्क्षणात् ।।२।।

जिसके मध्यभाग में लालरंग की रोहित (रोहू मछली) के आकार का एक रोहित है, जिसका स्पर्श प्राप्त कर लोहा आदि धातुएँ तत्काल सोना हो जाती हैं।।२।।

यन्नातिदूरे स्रवति दर्पणो नाम वै नदः ।
हिमाद्रिप्रभवो नित्यं लौहित्यसदृशः फलैः ।।३।।

जिससे बहुत दूर नहीं (समीप ही) एक दर्पण नाम का नद बहता है, जो हिमालय से उत्पन्न है तथा नित्यप्रवहमान एवं लौहित्य के समान फल देने वाला है।।३।।

समुत्पन्नं हि लौहित्यं सर्वैर्देवगणैर्हरिः ।
सर्वतीर्थोदकैः सम्यक् स्नापयामास तं सुतम् ।।४।।

लौहित्य के उत्पन्न होते ही सभी देवों के साथ हरि (ब्रह्मा) ने अपने उस पुत्र को सभी तीर्थों के जल से भलीभाँति स्नान कराया।।४।।

तस्य स्नानसमुद्भूतः पापदर्पस्य पाटनः ।
तेनायं दर्पणो नाम पुरा देवगणैः कृतः ।।५।।

उस स्नान के फलस्वरूपउत्पन्न, पाप के दर्प को नष्ट करने के कारण देवगणों द्वारा प्राचीनकाल में इसका नाम दर्पण रखा गया ।।५।।

तस्मिन् स्नात्वा नदवरे योऽर्चयेद् दर्पणाचले ।
कुबेरं प्रतिपत्तिथ्यां कार्तिके शुक्लपक्षके ।
स याति ब्रह्मसदनमिह भूतिशतैर्युतः ।।६।।

कार्तिक के शुक्लपक्ष की प्रतिपदा-तिथि को दर्पण नामक पर्वत पर स्थित,

इस श्रेष्ठ नद में स्नान कर जो कुबेर का पूजन करता है, वह इस लोक में सैकड़ों ऐश्वर्यों से युक्त हो, मृत्यु के बाद ब्रह्मलोक को जाता है॥६॥

दर्पणाद् दिशि पूर्वस्यामग्निमालाह्वयो गिरिः ।
सर्पाकारः सप्तशतव्यामदीर्घोर्धविस्तृतः ॥७॥

दर्पण से पूर्वदिशा में अग्निमालनामक एक पर्वत है । यह सात सौ व्याम लम्बा तथा उसका आधा चौड़ा, सर्पाकार, पर्वत है॥७॥

तत्र तिष्ठति वै वह्निरूर्ध्वभागेऽग्निमण्डले ।
सिन्दूरपुञ्जसङ्काशे चारुदारुशिलातले ॥८॥
तस्मिन्निरिन्धनो वह्निर्नित्यमद्यापि काशते ॥९॥

वहाँ ऊर्ध्वभाग में, अग्निमण्डल के मध्य। स्वयं अग्निदेव, निवास करते हैं। सिन्दूर के ढेर के समान आभावाले वे अग्निदेव, सुन्दरदारुशिला के तल पर बिना इन्धन के ही, आज भी नित्य प्रकाशित होते हैं॥८-९॥

भैरवस्य हितार्थाय कामाख्यापरिसेवने ।
पूर्वमेव स्थितस्तत्र साक्षाद् वह्निर्गणैः सह ॥१०॥

अग्नि प्रत्यक्षरूप में, भैरव के कल्याण के लिए, कामाख्या देवी की सेवा में पहले से ही अपने गणों के सहित, वहाँ उपस्थित हैं॥१०॥

लौहित्यपाथसि स्नात्वा त्वग्निमालाह्वयं गिरिम् ।
आरुह्य वह्निं सम्पूज्य मोदते विष्णुमन्दिरे ॥११॥

लौहित्य के जल में स्नानकर तथा अग्निमाल नामक पर्वत पर चढ़कर, वह्निदेव का पूजन, कर मनुष्य विष्णुलोक में आनन्द लेता है॥११॥

पुरस्तादग्निमालस्य कुण्डकं वारुणाह्वयम् ।
तस्य तीरे गिरिश्रेष्ठो नाम्ना कंसकरः स्मृतः ।
वरुणस्तत्र वसति नित्यमेव जलाधिपः ॥१२॥

अग्निमालपर्वत के सामने वारुण नाम का एक कुण्ड है, जिसके तटपर कंसकर नामक पर्वतश्रेष्ठ बताया जाता है, जहाँ जल के स्वामी वरुण नित्य ही निवास करते हैं ॥१२॥

तस्मिन् कंसकरे सम्यक् पूजयित्वा प्रचेतसम् ।
स्नात्वा च वारुणे कुण्डे वारुणं लोकमाप्नुयात् ॥१३॥

उस कंसकर पर प्रचेतस (वरुण) का भलीभाँति पूजन कर, वारुणकुण्ड में स्नान करके साधक, वरुणदेव के लोक को प्राप्त करता है॥१३॥

आद्यं व्यञ्जनमेवात्र पञ्चमस्वरसंयुतम् ।
शम्भुचूडाशिखायुक्तं कौबेरं बीजमुच्यते ॥१४॥

यहाँ पहला व्यञ्जन क पञ्चमस्वर उ से युक्त, हो शिव की चूडा (चन्द्र) और शिखा (बिन्दु) से मिलकर, कुबेर का बीज **कुँ** कहा जाता है ॥१४॥

सप्तमो यः पकारस्य बिन्दुश्चन्द्रार्धसंयुतः ।
वह्निबीजमिति ख्यातं तेन वह्निं प्रपूजयेत् ।।१५।।

प से सातवाँ वर्ण र, बिन्दु और अर्धचन्द्र से युक्त हो वह्निबीज **रँ** के नाम से प्रसिद्ध है। उससे ही वह्नि (अग्नि) का पूजन करना चाहिये ।।१५।।

मकारपञ्चमः सोमबिन्दुना वारुणः समृतः ।
एभिर्मन्त्रैरिमान् देवान् नित्यमेव प्रपूजयेत् ।।१६।।

म से पाँचवाँ वर्ण व, सोम, चन्द्र, और बिन्दु से युक्त हो, वरुण का बीज मन्त्र **वँ** स्मरण किया गया है । इन मन्त्रों से नित्य ही इन देवताओं का पूजन करना चाहिये।।१६।।

वायुकूटो नाम गिरिः पूर्वस्यां वरुणाचलात् ।
द्विखण्डो वायुबीजेन मण्डलेन समन्वितः ।।१७।।
वायुलोकस्थितश्चन्द्रो यस्मान्निसृत्यमानसाः ।
ऊर्ध्वाधोभागमासाद्य नित्यं वहति भूपते ।।१८।।
तत्र वायुं समभ्यर्च्य वायुलोकमवाप्नुयात् ।।१९।।

हे भूपति! वरुणाचल से पूर्वदिशा में वायुकूट नामक एक पर्वत है। वह दो खण्डों वाला पर्वत, वायुबीज और मण्डल से समन्वित है। वायुलोक में जो चन्द्रमा स्थित है, उससे निकल कर वायु, ऊपरी और निचले दोनों भागों में नित्य बहती है। वहाँ वायुदेव का पूजन कर मनुष्य वायुलोक को प्राप्त करता है।।१७-१९।।

पूर्व वायुगिरेः शैलश्चन्द्रकूट इति स्मृतः ।
त्रिकोणश्चन्द्रसङ्काशस्तदूर्ध्वे चन्द्रमण्डलम् ।।२०।।

वायुकूट के पूर्वभाग में चन्द्रकूट नामक एक पर्वत है जहाँ चन्द्रमा के समान एक त्रिकोण और उसके ऊपर चन्द्रमण्डल स्थित है।।२०।।

द्वितीयवर्गस्याद्यं तु बिन्दुना समलङ्कृतम् ।
चन्द्रबीजमिति प्रोक्तं तेन चन्द्रं प्रपूजयेत् ।।२१।।

व्यञ्जनों के द्वितीयवर्ग, च वर्ग का पहलावर्ण च, चन्द्र-बिन्दु से सुशोभित होने पर चन्द्रमा का बीज **चँ** कहा गया है। उसी से चन्द्रमा का पूजन करना चाहिये।।२१।।

अद्यापि प्रतिदर्शे तु पर्वतं तं निशापतिः ।
प्रदक्षिणीकरोत्येव दशभिश्चापि खेचरैः ।।२२।।

दश देवताओं सहित, ग्रहों, चन्द्रमा प्रत्येक अमावस्या को आज भी उस पर्वत की प्रदक्षिणा करते हैं।।२२।।

तस्यैव पूर्वभागे तु सोमकुण्डाह्वयं सरः ।
तत्र स्नात्वा च पीत्वा च नरः कैवल्यमश्नुते ।।२३।।

उसी के पूर्वभाग में सोमकुण्ड नाम का एक सरोवर है। उसमें स्नान कर और उसका जल पीकर मनुष्य कैवल्य प्राप्त करता है।।२३।।

स्वर्गादवतरच्चन्द्रः कामाख्यासेवने यदा ।
तदा तद्रश्मिसङ्घातान्निःसृतास्तोयराशयः ।।२४।।
तैस्तोयैर्वासवः कुण्डमकरोदिन्द्रचन्द्रयोः ।
मध्ये पुण्यतमे स्थाने स्वयं ब्रह्मशिलोपरि ।।२५।।

जब कामाख्या देवी की सेवाहेतु, चन्द्रमा स्वर्ग से धरती पर अवतरित हुए, उस समय उसकी किरणों के समूह से जलराशि निकली । उस जल से इन्द्रदेव ने स्वयं ब्रह्मशिला के ऊपर, इन्द्र और चन्द्रमा के मध्य, पवित्र स्थान में एक कुण्ड का निर्माण किया ।।२४-२५।।

चन्द्ररश्मिसमुद्भूत चन्द्रकुण्डमहोदधौ ।
यं यं भावं समासाद्य तं चन्द्रकलुषहरम् ।।२६।।
सुधास्रवणमाह्लाद् त्वं चन्द्रकलुषं हर ।
इत्यनेन तु मन्त्रेण यः स्नात्वा चन्द्रपाथसि ।।२७।।
चान्द्रकूटं समारूह्य पूजयेद् यस्तु तं नरः ।
अविच्छिन्नासन्ततिस्तु सुकान्ता तस्य जायते ।
परत्र चन्द्रभवनं भित्त्वा याति परं पदम् ।।२८।।

मन्त्रार्थ—हे ! चन्द्रमा की किरणों से उत्पन्न, चन्द्रकुण्डरूपी महान उदधि! जो जिस भाव से तुम्हारे समीप आये वहाँ तक तुम उसके, पाप को चन्द्रमा के कलुष के समान हरने वाले हो। तुम चन्द्रमा से उत्पन्न सुधाप्रवाह के आह्लादस्वरूप हो। तुम चन्द्रमा की भाँति मेरे भी दोषों को दूर करो। इस **चन्द्ररश्मि**-हर मन्त्र से जो मनुष्य चन्द्रकुण्ड में स्नान कर, चन्द्रकूट पर चढ़कर, पूजन करता है, उसकी सुन्दर और अविच्छिन्न सन्ततिपरंपरा होती है और परलोक में वह चन्द्रलोक को पारकर, परम्पद को प्राप्त करता है।।२६-२८।।

तीरे तु चन्द्रकूटस्य नन्दनो नाम वै गिरिः ।
तस्मिन् वसति शक्रस्तु कामाख्यासेवने रतः ।।२९।।

चन्द्रकूट के निकट, नन्दन नामक वह पर्वत है जहाँ पर कामाख्या की सेवा में रत होकर इन्द्र निवास करते हैं।।२०।।

पञ्चभावं समासाद्य सर्वदेवेश्वरो हरिः ।
सेवितुं त्रिदशेशानीं सततं वर्तते नरः ।।३०।।

सभी देवताओं के स्वामी इन्द्र पञ्चभावों का आश्रय ले, त्रिदश (देवताओं) की स्वामिनी (कामाख्या) की सेवा में निरन्तर रत रहते हैं।।३०।।

चन्द्रकूटस्य तु गिरेर्नन्दनस्य तथा गिरेः ।
प्रतिदर्शं तथा चन्द्रः प्रदक्षिणयति त्रिधा ।।३१।।

प्रत्येक अमावस्या को चन्द्रमा, चन्द्रकूट तथा नन्दनपर्वत की तीनपरिक्रमा करता है।।३१।।

चन्द्रकूटजले स्नात्वा समारुह्याथ नन्दनम् ।
आराध्य शक्रं लोकेशं महाफलमवाप्नुयात् ।।३२।।

चन्द्रकूटपर जल में स्नान कर तथा नन्दनपर्वत पर चढ़कर, लोकपाल इन्द्र की आराधना कर, मनुष्य महान् फल प्राप्त करता है।।३२।।

नन्दनात् पूर्वभागे तु भस्मकूटो महागिरिः ।
यः स्वयं भर्गरूपः स सदा चेच्छान्तमुत्तमम् ।।३३।।

नन्दनपर्वत के पूर्वभाग में भस्मकूट नामक एक महान् पर्वत है जो स्वयं शिवरूप है तथा सदा उत्तम और शान्त है।।३३।।

दक्षिणे भस्मकूटस्य देवी पीयूषधारिणी ।
उर्वशी नाम विख्याता शक्रप्रीतिकरी सदा ।।३४।।

भस्मकूट के दक्षिण में उर्वशी नाम से प्रसिद्ध, इन्द्र को सदैव प्रसन्न करने वाली पीयूषधारिणी देवी स्थित हैं ।।३४।।

देवैर्यत् स्थापितं पूर्वममृतं भोजनाय वै ।
कामाख्यायास्तदादाय स्वयं तिष्ठति चोर्वशी ।।३५।।
शिलारूपो हरस्तां तु समावृत्यैव तिष्ठति ।।३६।।

पहले देवताओं ने देवी कामाख्या के भोजन के लिए जो अमृत स्थापित किया था उसे धारण किये हुये, यह ऊर्वशी स्थित रहती है । एवं शिलारूपी शिव दोनों ओर से उसे घेर कर स्थित हैं।।३५-३६।।

सा चैवामृतराशिं तु कृत्वा किञ्चन किञ्चन ।
उपस्थापयते नित्यं कामाख्यायोनिमण्डले ।।३७।।

वह उस अमृतराशि को थोड़ा-थोड़ा करके कामाख्या देवी के योनिमण्डल में नित्य उपस्थापित करती है।।३७।।

सुधाशिलान्तरस्था तु उर्वशीकुण्डवासिनी ।
उर्वशीभस्मकूटस्य मध्ये कुण्डं सदावृतम् ।।३८।।
द्वात्रिंशद्धनुराकीर्णं पञ्चाशद्धनुरायतम् ।
तत्र स्नात्वा च पीत्वा च नरो मोक्षमवाप्नुयात् ।।३९।।

उर्वशीकुण्ड में निवास करने वाली वह शिलाओं के अन्दर बहती हुई सुधाधारिणीउर्वशी, भस्मकूट के मध्य में, बत्तीस धनु (मान विशेष) चौड़े और पचास धनु लम्बे कुण्ड को सदा ढके रहती है । उसमें स्नान कर और उसका जल पीकर के मनुष्य, मोक्ष को प्राप्त करता है।।३८-३९।।

कामाख्यायोनिरैशानीं दिशं याति सदैव हि ।
भस्मकूटे प्रविशति उर्वशीमपि योगिनी ।।४०।।
आप्यायिता चामृतेन नित्यं देवी प्रमोदते ।
मोदयुक्ता महादेवी कामेन मोदते सदा ।।४१।।

यह कामाख्या देवी के योनिमण्डल से ईशानकोण की दिशा में सदैव जाती है तत्पश्चात् भस्मकूट में प्रवेश करती है। योगिनी उर्वशी के अमृत से संतृप्त हो, देवी नित्य प्रमुदित होती हैं। प्रसन्नता से युक्त हो, महादेवी सदैव काम के साथ आनन्दित होती हैं।।४०-४१।।

भस्मकूटस्य चैशान्यां मणिकूटो महागिरिः ।
मणिकर्णो नाम हरस्तत्र तिष्ठति लिङ्गकम् ।।४२।।

भस्मकूटपर्वत के ईशानकोण में मणिकूट नामक एक महान् पर्वत है जहाँ मणिकर्ण नाम का शिवलिङ्ग स्थित है।।४२।।

स सद्योजातरूपस्तु मणिकर्ण इतीरितः ।
सद्योजातस्य मन्त्रेण पूजितव्यः सदाशिवः ।।४३।।

शिव का जो सद्योजातरूप है वही मणिकर्ण कहा गया है। सद्योजातमन्त्र से ही मणिकर्ण नामक सदाशिव का सदैव पूजन करना चाहिये ।।४३।।

चन्द्रतीर्थजले स्नात्वा दृष्ट्वा चन्द्रं सवासवम् ।
मणिकर्णेश्वरं दृष्ट्वा मुक्तिर्भस्माचलं गते ।।४४।।

चन्द्रतीर्थ के जल में स्नान करके तथा इन्द्र के सहित चन्द्रमा एवं मणिकर्णेश्वर का दर्शन कर, भस्माचल पर जाने से साधक को मुक्ति प्राप्त होती है।।४४।।

।। चन्द्रस्वरूप वर्णन ।।

श्वेतः श्वेताम्बरधरो दशाश्वो हेमभूषितः ।
गदापाणिर्द्विबाहुश्च कर्तव्यो वरदः शशी ।।४५।।

चन्द्रमा की प्रतिमादि, श्वेतवर्ण के, श्वेतवस्त्रधारण किये हुये, दश घोड़ों के रथ पर विराजमान, स्वर्णाभूषणों से युक्त, दो भुजाओं वाले एक हाथ में गदा लिए तथा दूसरे में वरदमुद्राधारी, बनानी चाहिये।।४४।।

।। इन्द्रस्वरूप वर्णन ।।

सहस्रनेत्रो गौराङ्गो द्विभुजो वामहस्तगम् ।
वज्रं गदांकुशं धत्ते दक्षिणेनापि पाणिना ।।४६।।
ऐरावतगजस्थस्तु बाणतूणीरबन्धनः ।
धनुश्च कक्षे गृह्णाति सेवमानो महेश्वरीम् ।।४७।।

इन्द्र की प्रतिमा, सहस्रनेत्र के, गोरे अङ्गों वाले, बायें हाथ में वज्र तथा दाहिने हाथ में भी गदा और अङ्कुश धारण किये हुये, बाण से भरा तरकश बाँधे, कक्ष में धनुष ग्रहण करके महेश्वरी की सेवा में तत्पर, ऐरावत हाथी पर स्थितरुप में बनाये।।४६-४७।।

।। शक्र मत्र ।।

वकारानन्तरो वर्णश्चन्द्रबिन्दुसमन्वितः ।
शक्रबीजमिति प्रोक्तं शक्रं तेन प्रपूजयेत् ।।४८।।

व कार के बाद आने वाला वर्ण श, चन्द्र-बिन्दु से समन्वित हो, शक्र का बीज **शँ** कहा गया है। उससे इन्द्रदेवता का पूजन करना चाहिये।।४८।।

नदी सुमङ्गलानाम हिमपर्वतनिर्गता ।
पूर्वस्यां मणिकूटस्य सदा स्रवति शोभना ।।४९।।

वहीं सुमङ्गला नाम की एक सुन्दरनदी, हिमालयपर्वत से निकल कर, मणिकूटपर्वत के पूर्वभाग में सदा बहती है।।४९।।

मणिकूटं समारूह्य यस्तां पश्यति वै नदीम् ।
स गङ्गास्नानजं पुण्यमवाप्य त्रिदिवं व्रजेत् ।।५०।।

मणिकूट पर चढ़कर, जो व्यक्ति उस नदी का दर्शन मात्र करता है, वह गङ्गास्नान का फल प्राप्त कर, स्वर्ग को जाता है।।५०।।

मणिकूटाचलात् पूर्वं मत्स्यध्वजकुलाचलः ।
निर्दग्धो यत्र मदनो हरनेत्राग्निना पुनः ।।५१।।
शरीरं प्राप तपसा समाराध्य वृषध्वजम् ।
तत्र मत्स्यस्वरूपस्तु कामदेवेन संस्थितः ।।५२।।

मणिकूटपर्वत की पूर्वदिशा में मत्स्यध्वज नामवाला एक कुलपर्वत है, जहाँ शिव के नेत्र की अग्नि से जलाये जाने के पश्चात्, कामदेव ने मत्स्य रूप से स्थित हो, तपस्या द्वारा वृषभध्वज शिव की आराधना कर, पुनः स्वशरीर प्राप्त किया था।।५१-५२।।

अधित्यकायां पृथिवीं वीक्षमाणः समन्ततः ।
नदी तु शाश्वती नाम तत्रास्ते दक्षिणस्रवा ।।५३।।

वहीं अधित्यका में सब ओर से पृथ्वी का निरीक्षण करती हुई, दक्षिण की ओर बहने वाली एक शाश्वती नाम की नदी बहती है।।५३।।

सरः कामसरो नाम तत्र शैले व्यवस्थितम् ।
शाश्वत्यां विधिवत्स्नात्वा पीत्वा कामसरोऽम्भसि ।
विमुक्तपापः शुद्धात्मा शिवलोके महीयते ।।५४।।

वहीं पर्वतपर एक कामसर नामक सरोवर भी है। शाश्वती नदी में विधिपूर्वक स्नानकर तथा कामसर के जल का पान कर, साधक, पाप से मुक्त, शुद्ध अन्तःकरण वाला, होकर शिवलोक को जाता है ।।५४।।

गन्धमादनपूर्वस्यां सुकान्तो नाम पर्वतः ।
तत्प्रान्ते वासवं कुण्डं वासवामृतभोजनम् ।।५५।।
यत्र स्थित्वा दक्षिणस्यां पुरः शक्रः शचीपतिः ।
अमृतं श्रान्तदेहस्तु कामरूपान्तरे पपौ ।।५६।।

गन्धमादन के पूर्व में एक सुकान्त नाम का पर्वत है। उसके किनारे वासव, इन्द्र द्वारा अमृतभोजन कराये जाने से सम्बन्धित एक वासव नाम का कुण्ड है।

जिसके दक्षिणदिशा में स्थित हो प्राचीनकाल में थक कर, शची के पति, इन्द्र ने कामरूपक्षेत्र में अमृत का पान किया था॥५५-५६॥

स्नात्वा तु वासवे कुण्डे समारूह्य सुकान्तकम् ।
वासवस्य प्रियो भूत्वा शक्रलोकमवाप्नुयात् ॥५७॥

वासवकुण्ड में स्नानकर एवं सुकान्तपर्वत पर चढ़कर, इन्द्र का प्रिय होकर मनुष्य, शक्र (इन्द्र) लोक को प्राप्त करता है॥५७॥

पूर्वस्यां तु सुकान्तस्य रक्षःकूटाह्वयो गिरिः ।
यत्रास्ते सततं देवो निर्ऋति राक्षसेश्वरः ॥५८॥

सुकान्त के पूर्व में रक्षकूट नाम का एक पर्वत है, जहाँ राक्षसों के राजा निर्ऋतिनाम के देवता, निरन्तर निवास करते हैं॥५८॥

॥ निर्ऋतस्वरूप वर्णन ॥

खड्गहस्तो महाकायो वामे चर्मधरस्तथा ॥५९॥
जटाजूटसमायुक्तः प्रांशुः कृष्णाचलोपमः ।
द्विभुजः कृष्णवासास्तु गर्दभोपरिसंस्थितः ॥६०॥

वे निर्ऋति, विशाल शरीर वाले हैं, उन्होंने अपने दाहिनेहाथ में षड्ग तथा बायेंहाथ में ढालधारण किया है। इस प्रकार वे अपनी दो भुजाओं से युक्त हैं । वे जटाजूट से सुशोभित, काले पहाड़ के समान ऊँचे कद के हैं । उन्होंने कालावस्त्र पहन रखा है तथा वे गधे पर विराजमान हैं॥५९-६०॥

॥ निर्ऋतिमन्त्र ॥

प्रान्तोपान्तौ बिन्दुचन्द्रसहितावादिरेव च ।
नैर्ऋत्यं कथितं बीजं तेन तं परिपूजयेत् ॥६१॥

चन्द्र-बिन्दु के सहित अन्तिम और उसके पहले के व्यंजन क्ष और ह तथा आदि क नैर्ऋति का बीज कहा गया है। उससे उस निर्ऋति का पूजन करना चाहिये॥६१॥

रक्षःकूटं समारूह्य निर्ऋतिं राक्षसेश्वरम् ।
यः पूजयेद् विधानेन चण्डिकां राक्षसेश्वरीम् ।
न तस्य राक्षसेभ्योऽस्ति भयं नृप कदाचन ॥६२॥

हे राजन् ! रक्षकूट पर चढ़कर जो साधक, राक्षसेश्वरनिर्ऋति तथा राक्षसेश्वरी चण्डिका का विधिपूर्वक पूजन करता है, उसे कभी राक्षसों से भय नहीं होता है॥६२॥

राक्षसाश्च पिशाचाश्च वेताला गणनायकाः ।
तं दृष्ट्वा पुरुषं राजन् सर्वदैव प्रविभ्यति ॥६३॥

हे राजन् ! उस पुरुष को देखकर, राक्षस, पिशाच, वेताल एवं गणनायक सभी, सदैव विशेषरूप से भयभीत होते हैं ॥६३॥

रक्षःकूटात् पूर्वदिशि भैरवनाम् माधवः ।
पाण्डुनाथ इति ख्यातो ग्रावरूपेण संस्थितः ।।६४।।

रक्षकूट से पूर्वदिशा में भैरव नाम के विष्णु, पाण्डुनाथ नाम से प्रसिद्ध हो, शिलारूप में वहाँ विराजमान हैं।।६४।।

तं पाण्डुनाथं सततमष्टाक्षरभवोत्तरम् ।
तैनैव पूजयेद् देवं पाण्डुनाथाह्वयं हरिम् ।।६५।।
वर्णेन रक्तगौराङ्गं गदापद्मधरं करे ।
दक्षिणे चक्रशक्ती च बाहुभ्यामपि विभ्रतम् ।।६६।।
चतुर्भुजं रक्तपद्मसंस्थितं मुकुटोज्ज्वलम् ।
कुण्डले विभ्रतं शुद्धे श्रीवत्सोरस्कमुत्तमम् ।।६७।।
नमो नारायणायेति मूलबीजेन वा हरेः ।
एवं सम्पूजयेद् भूप चतुर्वर्गस्य सिद्धये ।।६८।।

उन पाण्डुनाथ नामक विष्णु का उत्तरतन्त्र में वर्णित अष्टाक्षरमन्त्र से अथवा **ॐ नमो नारायणाय;** विष्णु के इस मूलमन्त्र से निरन्तर पूजन करे। लालगौराङ्गवर्णवाले, जिनके दाहिनेहाथों में गदा-पद्म और बायेंहाथों में चक्र तथा शक्ति शोभायमान हो रही है। जो उज्ज्वलमुकुट धारण कर लालकमल पर, चारभुजाओं से सुशोभित हो स्थित हैं एवं दो शुद्ध कुण्डलों से शोभायमान हैं। जो वक्षस्थल पर उत्तम श्रीवत्समणि धारण किये हैं। हे राजन् ! चतुर्वर्ग की सिद्धि के लिये पाण्डुनाथ का इसी रूप में पूजन करना चाहिये।।६५-६८।।

पाण्डुनाथस्योत्तरस्यां ब्रह्मकूटाह्वयं सरः ।
ब्रह्मणा निर्मितं पूर्वं स्नानार्थं स्वर्गवासिनाम् ।।६९।।
आयामेन शतव्यामं विस्तीर्णं त्वेतदर्धकम् ।।७०।।

पाण्डुनाथ से उत्तरदिशा में स्वर्गवासीजनों (देवगणों) के स्नान हेतु ब्रह्मा द्वारा पहले ही निर्मित, एक ब्रह्मकूट नामक सरोवर है, जो सौ व्याम लम्बा तथा उसका आधा, पचास व्याम चौड़ा है।।६९-७०।।

सर्वपापहरं पुण्यं देवलोकात् समागतम् ।
कमण्डलुसमुद्भूत ब्रह्मकुण्डामृतस्त्रव ।
हर मे सर्वपापानि पुण्यं स्वर्गं च साधय ।।७१।।
इत्यनेन तु मन्त्रेण स्नात्वा तस्मिन् सरोजले ।
पाण्डुनाथं च सम्पूज्य विष्णुसायुज्यमाप्नुयात् ।।७२।।

मन्त्रार्थ–हे देवलोक से आये हुये, ब्रह्मा के कमण्डलु से निकले, ब्रह्मकुण्ड में स्त्रवित होने वाले, सभी पापों को हरने वाले पवित्रजल, आप मेरे सभी पापों को दूर कर, मुझे पुण्य एवं स्वर्ग सुलभ करायें। इस मन्त्र से उस सरोवर के जल

में स्नान और पाण्डुनाथ का पूजन करके मनुष्य, विष्णु के सायुज्य को प्राप्त करता है॥७१-७२॥

ब्रह्मकुण्डजले स्नात्वा पूजयित्वा उमापतिम्।
वायुकूटं समारूह्य मुक्तिमेवाप्नुयान्नरः ॥७३॥

ब्रह्मकुण्ड के जल में स्नानकर, भगवान् शिव का पूजन करने के पश्चात् मनुष्य, वायुकूट पर्वत पर चढ़कर, मुक्तिप्राप्त करता है॥७३॥

पाण्डुनाथात् पूर्वदिशि गिरिश्चित्रहरो हरिः।
सततं यत्र रमते विष्णुर्वाराहरूपधृक् ॥७३॥

पाण्डुनाथ से पूर्व दिशा में चित्रहर नाम का भगवान् विष्णु का एक पर्वत है जहाँ भगवान् विष्णु, वाराह का रूप धारण करके निरन्तर रमण (निवास) करते हैं॥७४॥

ततस्तु नीलकूटाख्यं कामाख्यानिलयं परम्।
तत् पूर्वभागे वसति ब्रह्मा ब्रह्मगिरिः पुनः ॥७५॥

तत्पश्चात् नीलकूट नामक कामाख्या देवी का श्रेष्ठ निवास है, जिसके पूर्वभाग में ब्रह्मा, ब्रह्मगिरि के रूप में पुनः निवास करते हैं॥७५॥

ब्रह्मशैलस्य पूर्वस्यां भूमिपीठे व्यवस्थितम्।
चारुनिम्नशुभावर्त कामाख्यानाभिमण्डलम् ॥७६॥

उपर्युक्त ब्रह्मशैल के पूर्वभाग में भूमितल पर ही, कामाख्या देवी का नाभिमण्डल स्थित है जो सुन्दर, गहरा, शुभ आवर्तन वाला है॥७६॥

ततोग्रतारारूपेण रमते परमेश्वरी।
तत्र तेनैव रूपेण पूजितव्या शुभात्मिका ॥७७॥

वहीं उग्रतारारूप से परमेश्वरी रमण करती हैं। उस शुभस्वरूपा देवी का, वहाँ उसीरूप में पूजन करना चाहिये॥७७॥

तस्यास्तु बीजं पूर्वस्मिन्नुत्तरे प्रतिपादितम्।
रूपं शृणु नरश्रेष्ठ येन ध्येया सदा शिवा ॥७८॥

हे मनुष्यों में श्रेष्ठ ! उसका बीजमन्त्र पहले ही उत्तरतन्त्र में बताया जा चुका है, अब उसके रूप को सुनो, जिससे उस शिवा का, सदा ध्यान करना चाहिये॥७८॥

॥ उग्रतारास्वरूपवर्णन ॥

कृष्णा लम्बोदरी दीर्घा विरला रक्तदन्तिका।
चतुर्भुजा कृशाङ्गी तु दक्षिणे कर्त्रीखर्परौ ॥७९॥
खड्गं चेन्दीवरं वामे शीर्षे चैकजटा पुनः।
वामपादं शवस्योर्वोर्निधायाघ्रिं तु दक्षिणाम् ॥८०॥
शवस्य हृदये न्यस्य साट्टहासं प्रकुर्वती।
नागहारशिरोमालाभूषिता कामदा परा ॥८१॥
त्रिकोणं मण्डलं चास्या हुङ्कारं मध्यबीजकाम् ॥८२॥

वे परमेश्वरी, काले रङ्ग की, लम्बेपेटवाली, लम्बी-काया, पतलेशरीर, लालदाँतों से युक्त, चार भुजाओं सहित, दुर्बलकायावाली हैं । उन्होंने अपने दोनोंहाथों में कैंची और खप्पर तथा बायेंहाथों में खड्ग और नीलकमल एवं मस्तक पर एक जटा धारण किया है । वे अपना बायाँपैर, शव के जङ्घों पर तथा दाहिनापैर, शव के हृदय पर रखकर अट्टहास कर रही हैं। वे नागों के हार तथा शिरों की माला से सुशोभित, कामनाओं की पूर्ति करने वाली, परा देवी हैं, इनका हुङ्कारमय मध्यवर्तीबीज से युक्त त्रिकोणमण्डल है।।७९-८१।।

द्वारेशानां योगिनीनां नामान्यस्यातु तन्त्रके ।
ज्ञेयानि नरशार्दूल यत् प्रोक्तं वाम्यगोचरे ।।८३।।

हे नरशार्दूल ! इनके द्वारपालों एवं योगिनियों का नाम जो अन्य वामतन्त्रों में कहा गया है, वैसा ही जानना चाहिये।।८२-८३।।

उर्वश्यां विधिवत् स्नात्वा स्पृष्ट्वा पाण्डुशिलां तथा ।
नीलकूटं समारुह्य पुनर्योनौ न जायते ।।८४।।

उर्वशीकुण्ड में विधिपूर्वक स्नान कर, पाण्डुशिला का स्पर्श कर तथा नीलकूट पर चढ़कर, मनुष्य पुनः योनि में प्रवेश नहीं करता अर्थात् जन्म नहीं लेता ।।८४।।

।। उर्वशीस्तुति ।।

पुरन्दरपुरायाते वाराणस्याः फलाधिके ।
सुधासंकीर्णतोयौघैः पापं हर ममोर्वशि ।।८५।।

हे उर्वशी ! आप पुरन्दरपुर, इन्द्रलोक से आई हुई हैं, वाराणसी से भी अधिक फल (महत्व) वाली हैं, अमृत से युक्त, अपनी जल राशि से आप, मेरे पापों का हरण करें।।८५।।

अमृतस्राविणी देवी सुधौघपरिपूरणी ।
अमृतेनामृतं मेऽद्य देहि देवि ममोर्वशि ।।८६।।

हे देवी ! आप अमृतप्रवाहित करने वाली, अमृतसमूह से परिपूर्ण हैं। हे देवी उर्वशी ! इस अमृत से, आप आज मुझे, अमरता प्रदान करें। आप मेरे हृदय में विराजमान हों।।८६।।

पुरन्दरप्रिये देवि वाराणस्याः सदाम्बिके ।
लौहित्यह्रदसंकीर्णे पापं हर ममोर्वशि ।।८७।।

हे उर्वशी ! आप वाराणसी से भी अधिक श्रेष्ठ हैं तथा पुरन्दर की प्रिय हैं, आप लौहित्य ह्रद से मिली हैं अतः हे देवि ! आप मेरे पापों को दूर करें।।८७।।

इत्येभिः स्तुतिभिर्मन्त्रैः स्नात्वा पुण्योर्वशीजले ।
सर्वपापविनिर्मुक्तो विष्णुलोके विचेष्टते ।।८८।।

इन उपर्युक्त मन्त्रों से स्तुति कर तथा उर्वशी के पवित्रजल में स्नान करके मनुष्य, सभी पापों से मुक्त हो, विष्णुलोक को जाता है॥८८॥

।। उर्वशीस्वरूपवर्णन ।।

उर्वशी द्विभुजा प्रोक्ता स्वर्णकङ्कणधारिणी ।
सौवर्णपात्रममृतस्रावणाय विभर्ति च ।।८९।।
शुक्लवस्त्रा गौरवर्णा पीनोन्नतपयोधरा ।
सर्वाङ्गसुन्दरी शुद्धा सर्वाभरणभूषिता ।।९०।।

उर्वशी, सोने का कङ्कण पहने हुये, अमृतप्रवाहित करने हेतु सुवर्ण-पात्र धारण करने वाली, दो भुजाओं से युक्त, गौरवर्ण, श्वेतवस्त्रधारण की हुई, पुष्ट और ऊँचे स्तनों वाली, सभी अङ्गों से सुन्दर, शुद्ध एवं सभी प्रकार के आभूषणों से विभूषित हैं॥८९-९०॥

एतन्नामाद्यक्षरं तु मन्त्रमस्याः प्रकीर्तितम् ।
उमातन्त्रे तु गदितं मन्त्रमस्याः प्रकीर्तितम् ।।९१।।

इनके नाम का पहला अक्षर, चन्द्र-बिन्दु सहित, इनका मन्त्र, या उमातन्त्र में वर्णितमन्त्र, इनके मन्त्र कहे गये हैं॥९१॥

गणेशः पूर्वद्वारस्थः कामाख्यापर्वतस्य तु ।
तत्रैव चाग्निवेतालः स्थितो द्वारि मनोहरः ।।९२।।

कामाख्यापर्वत के पूर्वी द्वार पर गणेशजी स्थित हैं एवं वहीं द्वार पर सुन्दर अग्निवेताल भी स्थित है॥९२॥

तयो रूपं च मन्त्रं च यथोक्तं शम्भुना पुरा ।
तदहं प्रतिवक्ष्यामि महाराज श्रृणुष्व मे ।।९३।।

हे महाराज ! जैसा भगवान्‌शङ्कर ने पहले बताया था, वैसा ही मैं भी उनके रूपों एवं मन्त्रों के विषय में कहूँगा, आप उसे सुनें॥९३॥

ॐ नमः उल्कामुखायेति मूलबीजादिसङ्गतम् ।
मंत्रं सिद्धगणेशस्य द्वारस्थस्य प्रकीर्तितम् ।।९४।।

प्रारम्भ में मूलबीज (गं) के सहित **ॐ नमः उल्कामुखाय,** यह कामाख्या के द्वार पर स्थित, सिद्धगणेश का मूलमन्त्र कहा गया है॥९४॥

।। सिद्धगणेशरुप वर्णन ।।

रूपं तस्य प्रवक्ष्यामि गजवक्त्रं त्रिलोचनम् ।
लम्बोदरं चतुर्बाहुं व्यालयज्ञोपवीतिनम् ।।९५।।
शूर्पकर्णं बृहद्‌गण्डमेकदन्तं पृथूदरम् ।
दक्षिणे तु करे दण्डमुत्पलं च तथापरे ।।९६।।
लड्डुकं परशुं चैव वामतः परिकीर्तितम् ।

बृहत्त्वाक्षिप्तगगनं पीनस्कन्धाङ्घ्रिपाणिनम् ।
युक्तं बुद्धिकुबुद्धिभ्यामधस्तान्मूषकान्वितम् ।।९७।।

अब मैं उनके रूप के विषय में कहूँगा—वे हाथी के मुँह वाले, तीन नेत्रों से युक्त, लम्बे पेट, चार भुजाओं एवं सर्प के यज्ञोपवीत से विभूषित हैं । उनके कान शूप की आकृति के, बड़े, उनका गण्डस्थल विस्तृत है। वे एक दाँत वाले तथा विशालउदर वाले हैं। वे अपने दाहिने हाथों में दण्ड, कमल तथा बायें हाथों में लड्डु व परशु धारण किये हुये बताये गये हैं । वे अपनी विशालता से आकाश को ढँके हुये, पुष्टकन्धों, हाथ-पैरों से युक्त हैं। उनके साथ में बुद्धि और कुबुद्धि नामक दो देवियाँ हैं तथा उनके निचलेभाग में मूषक, विराजमान है।।९५-९७।।

तन्त्रस्तु यादृशः प्रोक्तः पञ्चवक्त्रस्य पूजने ।
स एव तन्त्रो ग्राह्यस्तु तादृग् विधिनिषेधनम् ।।९८।।

जिस प्रकार का तन्त्र (पूजाविधान) और विधिनिषेध पञ्चवक्त्र के पूजनप्रसङ्ग में बताया गया है वैसा ही यहाँ भी ग्रहण (प्रयोग) करना चाहिये ।।९८।।

।। अग्निवेतालरूपवर्णन ।।

द्विभुजः पीनवदनो रक्तनेत्रो भयङ्करः ।
छुरिकां दक्षिणे पाणौ वामे रुधिरपात्रकम् ।।९९।।
दंष्ट्राकरालवदनं कृशो धमनिसन्ततः ।
जटां दीर्घां मूर्ध्नि विभ्रद् घोररावयुतस्तथा ।।१००।।

वे (अग्निवेताल) दो भुजाओं से युक्त, मोटेशरीर, लालनेत्र, भयंकरस्वरूप वाले हैं । उन्होंने अपने दाहिने हाथ में छुरिका और बायें हाथ में रुधिर के लिए पात्र, धारण किया है । उनके दाँत और मुँह भयानक हैं वे दुर्बल तथा उनकी धमनियों से युक्त हैं। वे मस्तक पर लम्बी जटाएँ-धारण किये एवं घोर गर्जन करते रहते हैं।।९९-१००।।

पचतुर्थोऽग्निबीजेन षष्ठवरविभूषितः ।
अग्निवेतालबीजोऽयं सर्वत्र भयनाशकः ।।१०१।।

अग्नि (र) से युक्त, प से चौथा वर्ण भ जो छठेस्वर (ऊ) से सुशोभित हो, अग्निवेताल का बीजमन्त्र भ्रू होता है जो सभी जगह भयनाशक है।।१०१।।

पूजयेदग्निवेतालं सर्वत्र भयनिवारणम् ।
यः पूजयेत् तस्य पुनर्भूतादिभ्यो भयं नहि ।।१०२।।

सभी स्थानों पर भय दूर करने के लिए अग्निवेताल का पूजन करना चाहिये। जो साधक उसका पूजन करता है, उसे भूतादिका पुनः भय नहीं होता।।१०२।।

अष्टानामथ मंत्राणां योगिनीनां क्रमान्नृप ।।१०३।।
शैलपुत्रीप्रमुख्याणां मंत्राण्यष्टाक्षराणि तु ।
वैष्णवीतन्त्र संस्थानि पूर्वोक्तानि तानितु ।।१०४।।

शैलपुत्र्यास्तथा चाङ्ग मन्त्रां प्राक् प्रतिपादितम् ।
रूपं तु नरशार्दूल योगिनीनां विशेषतः ।।१०५।।

हे राजन् ! शैलपुत्री आदि प्रमुख आठ योगिनियों के जो आठ मन्त्र हैं, वे वैष्णवीतन्त्र के आठ मन्त्राक्षरों के रूप में क्रमशः पहले ही कहे गये हैं। हे मनुष्यों में शार्दूल के समान ! शैलपुत्री के अङ्गमन्त्र और विशेषरूप से योगिनियों के स्वरूप का वर्णन पहले ही प्रतिपादित किया गया है।।१०३-१०५।।

प्रत्यक्षरेण बीजेन दुर्गातन्त्रेण वा त्विमाः ।
नेत्रबीजेनैव पूज्या योगिन्यो नृपसत्तम ।।१०६।।

हे राजाओं में श्रेष्ठ ! दुर्गातन्त्र में वर्णित बीजमन्त्र के प्रत्येक अक्षरों से अथवा नेत्रबीज से, इन योगिनियों का पूजन करना चाहिये ।।१०६।।

कात्यायनीं पाददुर्गां दुर्गातन्त्रेण पूजयेत् ।
तदेव पूजनं रूपं तत्पूर्वं प्रतिपादितम् ।।१०७।।

साधक कात्यायनी, पाददुर्गा का भी दुर्गातन्त्र से ही पूजन करे। पहले बताये गये पूजनविधान एवं रूप का ही, यहाँ भी प्रयोग करे।।१०७।।

कालरात्र्यास्तु मन्त्रेण कालरात्रिं प्रपूजयेत् ।
कालरात्र्या रूपमन्त्रौ पुरैव प्रतिपादितौ ।
महामायातन्त्रैः पूजयेद् भुवनेश्वरीम् ।।१०८।।

वह कालरात्रि के मन्त्रों से कालरात्रि का पूजन करे । कालरात्रि के रूप और मन्त्र पहले ही प्रतिपादित किये गये हैं। महामायातन्त्र के मन्त्रों से भुवनेश्वरी का पूजन करे।।१०८।।

एताःसर्वास्तु योगिन्यः कामाख्यावत् फलप्रदाः ।।१०९।।
विशेषो यत्र नैवोक्तो रूपे तन्त्रे च पूजने ।
दुर्गातन्त्रेण मंत्रेण तत्र पूजां समाचरेत् ।।११०।।

ये सभी योगिनियाँ कामाख्या के समान ही फलदायिनी हैं । जहाँ कोई विशेषरूप, तन्त्र या पूजनविधान न निर्दिष्ट हो, वहाँ दुर्गातन्त्र के मन्त्रों से ही इनका पूजन करे।।११०।।

प्रत्येकं योगिनीं यस्तु पूजयेन्नरसत्तमः ।
स सर्वयज्ञस्य फलं प्राप्नोति नरसत्तम ।।१११।।

हे नरसत्तम् ! जो श्रेष्ठपुरुष प्रत्येक योगिनी का पूजन करता है, वह सभी यज्ञों के करने का फल प्राप्त करता है।।१११।।

नीलशैलस्य पूर्वस्मिन् स्वरूपं प्रतिपादितम् ।
नाभिमण्डलपूर्वस्यां भस्मकूटस्य दक्षिणे ।
पूर्वस्यां कर्पटो नाम पर्वतो यमरूपधृक् ।।११२।।

नीलशैल का स्वरूप पहले ही प्रतिपादित किया है। नाभिमण्डल के पूर्वभाग में तथा भस्मकूट के दक्षिण में पूर्वदिशा में, यमरूपधारण किया हुआ, कर्पटनाम का एक पर्वत है।।११२।।

तत्र याम्यशिला कृष्णा नीलाञ्जनसमप्रभा ।
अधित्यकायां राजेन्द्र व्यामपञ्चसुविस्तृता ।।११३।।

हे राजेन्द्र ! वहीं पर्वत के ऊपरीमैदान, अधित्यका में एक कालेअञ्जन के समान कालेरङ्ग की पाँचव्याम में फैली हुई यमशिला है।।११३।।

।। यमस्वरूप वर्णन ।।

पूजयेत् तत्र शमनं पाणौ दण्डं सदैव यः ।
धत्ते तु पाणिना नित्यं प्राणिदण्डस्य साधनम् ।।११४।।
कृष्णवर्णं तु द्विभुजं किरीटमुकुटोज्ज्वलम् ।।११५।।
दधतं चासिपुत्रीं च वामपाणौ सदैव हि ।
कृष्णवस्त्रं स्थूलपादं बहिर्निःसृतदन्तकम् ।।११६।।
भयाभयप्रदं नित्यं नृणां महिषवाहनम् ।
पूजयेत्परया भक्त्या याम्यबीजेन साधकः ।।११७।।

वहाँ उन यमराज का पूजन करे जो अपने हाथों से प्राणियों के दण्डसाधनहेतु हाथ में सदा दण्डधारण किये रहते हैं। काले रङ्ग के जो दो भुजाओं वाले, उज्ज्वलकिरीट (मुकुट) धारण करने वाले, सदैव बायें हाथ में कटारधारी, काले वस्त्र धारण करते हैं । जिनके पैर स्थूल और दाँत बाहर निकले रहते हैं । जो नित्य मनुष्यों को उनके कर्मानुसार भय और अभय प्रदान करते हैं । जो महिष पर सवार हैं, ऐसे यमराज का परमभक्ति के साथ साधक, याम्यबीज से पूजन करे।।११४-११७।।

।। यममन्त्रवर्णन ।।

उपान्तवर्गस्यादिर्यो वर्णो बिन्द्विन्दुसंयुतः ।
यमबीजमिति ख्यातं यमस्य प्रीतिदायकम् ।।११८।।

अन्त से पहले व्यञ्जनवर्ग (य वर्ग) का जो आदि वर्ण य है, वह बिन्दु और चन्द्रमा से युक्त हो यमराज का प्रसिद्ध बीजमन्त्र (यं) है और यह यमराज को प्रसन्नता प्रदान करने वाला है।।११८।।

अनेनैव तु मन्त्रेण शमनं पूजयेत् तु यः ।
कर्पटाख्येऽचलवरे नापमृत्युमवाप्नुयात् ।।११९।।

इसी मन्त्र से कर्पट नामक श्रेष्ठपर्वत पर जो यमराज का पूजन करता है, वह साधक, अपमृत्यु को नहीं प्राप्त करता।।११९।।

पूर्वस्यां कर्पटाख्यात् तु शैलाच्चित्रं इति स्मृतः ।
यः पूर्वभागप्रान्तेऽभूद् दिश्याग्नेय्यामवस्थितः ।।१२०।।

कर्पट नामक पर्वत से पूर्वदिशा में एक चित्र नामक पर्वत है जो पूर्वदिशा के अन्त में आग्नेयदिशा में अवस्थित है॥१२०॥

पीठस्तु ब्रह्मग्रावस्तु स प्राक् पर्वत उच्चते ।
तस्मिन् वसन्ति सततं ग्रहा नव यथेच्छाया ।
तत्र तान् पूजयेद् यस्तु स नाप्नोत्यापदं क्वचित् ॥१२१॥

वही पर्वत पहले ब्रह्मग्रावपीठ कहा गया है। उसमें निरन्तर सभी नवग्रह, इच्छानुसार निवास करते हैं। वहाँ जो उन ग्रहों का पूजन करता है, वह कभी भी आपत्ति को प्राप्त नहीं करता॥१२१॥

रूपं मन्त्रं च सूर्यस्य चन्द्रस्य प्रतिपादितम् ।
सप्तानामितरेषां तु मन्त्रं रूपं शृणुष्व मे ॥१२२॥

सूर्य एवं चन्द्रमा के रूप (ध्यान) तथा मन्त्र पहले ही बताये गये हैं। अन्य सातों के रूपों और मन्त्रों को मुझसे सुनो ॥१२२॥

॥ मङ्गलस्वरूपवर्णन ॥

रक्ताम्बरधरः शूली शक्तिमांश्च गदाधरः ।
चतुर्भुजो मेषरथो वरदो मङ्गलो मतः ॥१२३॥

मङ्गलग्रह, लालवस्त्र धारण किये, चारभुजाओं से युक्त, शूल, शक्ति, गदा तथा वरदमुद्रा धारण किये, भेंड़ के रथ पर सवार बताये गये हैं ॥१२३॥

॥ बुधस्वरूपवर्णन ॥

पीताम्बरधरः शूली पीतमाल्यानुलेपनः ।
खड्गचर्मगदापणिः सिंहस्थो वरदो बुधः ॥१२४॥

बुधग्रह, पीलावस्त्र धारण किये हुए, शूल, खड्ग और ढाल, गदा, हाथों में धारण किये, पीले रंग की माला तथा चन्दन से सुशोभित, वरदायक एवं सिंह पर सवार बताये गये हैं॥१२४॥

॥ बृहस्पतिस्वरूपवर्णन ॥

स्वर्णगौरः पीतवासाः स्वर्णपर्यंकसंस्थितः ।
मालां कमण्डलुं दण्डं वामेन वरदायकम् ॥१२५॥
चतुर्भुजं च सर्वज्ञं चिन्तयेद् देवतीर्थकम् ।
सर्वैर्देवगणैर्नित्यं तप्यमानं मनोहरम् ॥१२६॥

सुनहले गोरे-वर्ण, पीलेवस्त्र, वामावर्त में माला, कमण्डलु, दण्ड तथा वरदमुद्रा धारण किये, चार भुजाओं से युक्त, सभी देवगणों द्वारा नित्य जिनके लिए तपस्या की जाती है। ऐसे सर्वज्ञ और सुन्दर, देवताओं के तीर्थ (पूज्य), देवगुरु बृहस्पति का ध्यान करना चाहिये॥१२५-१२६॥

॥ शुक्ररूपवर्णन ॥

शुक्लवस्त्रं शुक्लवर्णं शङ्खनागोपरिस्थितम् ।

चतुर्भुजं पाशमालां पुस्तकं च वराभये ।।१२७।।
क्रमाद् दक्षिणवामायां धत्ते दैत्यगुरुः सदा ।।१२८।।

दैत्यगुरुशुक्र, सदैव श्वेतवस्त्र धारण करते हैं, वे शुक्लवर्ण के हैं। वे शङ्ख नामक हाथी पर स्थित हैं। वे चारभुजाओं वाले हैं, उन्होंने क्रमशः दाहिनी भुजाओं में पाश और माला या रुद्राक्षमाला एवं पुस्तक तथा बायें हाथों में वरद और अभय मुद्रायें धारण की हुई हैं ।।१२७-१२८।।

।। शनिरूपवर्णन ।।

इन्द्रनीलनिभः शूली वरदो गृध्रवाहनः ।
पाशबाणासनधरो ध्यातव्योऽर्कसुतः सदा ।।१२९।।

अर्क (सूर्य)पुत्र-शनि-ग्रह का सदैव इन्द्रनील-मणि के समान आभावाले, शूल, पाश, धनुष तथा वरदमुद्रा धारण किये हुये एवं गीध पर सवाररूप में ध्यान करना चाहिये।।१२९।।

।। भौम-बुध-मन्त्र ।।

कामदेवस्य बीजं तु मन्त्रं भौमस्य कीर्तितम् ।
दुर्गाया नेत्रबीजस्य यत्तु मध्यावरं शुभम् ।
तन्मन्त्रं शशिपुत्रस्य सर्वकामफलप्रदम् ।।१३०।।

कामदेव का जो बीजमन्त्र कहा गया है वही मङ्गल का भी मन्त्र कहा गया है, दुर्गा का जो नेत्रबीज है, उसके मध्य और उसके बाद का जो अक्षर है, वह सभी कामनाओं का फलप्रदान करने वाला, शशिपुत्र, बुध का मन्त्र होता है।।१३०।।

।। गुरु-शुक्र-मन्त्र ।।

तकारपञ्चमादिस्तु चतुःषट्स्वरसंयुतम् ।
गणेशबीजान्तमिदं गुरोर्मन्त्रं प्रकीर्तितम् ।।१३१।।
बिन्द्विन्दुसंयुतं चापि पूर्ववर्णद्वयं पुनः ।
सप्तमस्वरसंयुक्तो मकारस्त्वादिरन्तरम् ।।१३२।।
प्रान्तवर्गाद्यक्षरं तु बिन्द्वेन्दुभ्यां समन्वितम् ।
भवेच्छुक्रस्य बीजं तु सर्वकामसमृद्धिदम् ।।१३३।।

चन्द्रबिन्दु से समन्वित् तकार से पाँचवा वर्ण न जिसके आदि में है वह प, चतुर्थ स्वर ई तथा षट्स्वर ऊ से संयुक्त हो, गणेशबीज गं में समाप्त होता हुआ, वृहस्पति का बीजमन्त्र पीं पूँ गं कहा गया है। पुनः वही दोनों वर्ण, मकार जिसके आदि में है वह य और उसके बाद के वर्ण र के साथ तथा सप्तमस्वर से युक्त हो प्रीं प्रूं पृं के साथ व्यञ्जनों के अन्तिम श वर्ग का पहला अक्षर श, चन्द्रबिन्दु से समन्वित हो सभी कामनाओं को समृद्धि देने वाला, शुक्र का बीजमन्त्र होता है।।१३२-१३३।।

।। शनि मन्त्र ।।

प्रान्तवर्गाद्यक्षरं तु चन्द्रबिन्दुभ्यां समन्वितम् ।।१३४।।

आद्यमन्त्रस्वरोपेतं तदेवेत्यादिसंयुतम् ।
शनैश्चरस्य मन्त्रोऽयं सर्वदोषविनाशनः ।।१३५।।

पूर्व की भाँति चन्द्रबिन्दु से समन्वित अन्तिमवर्ग का आदिअक्षर श आदि स्वर अ एवं चन्द्रबिन्दु से युक्त हो उसी की भाँति सभी दोषों को दूर करने वाला, यह **शँ** शनि का बीजमन्त्र कहा गया है।।१३४-१३५।।

बिन्दुचन्द्रसमायुक्तं नामाद्यक्षरमेव वा ।
तेषां सर्वग्रहाणां वै मन्त्रमङ्गं प्रकीर्तितम् ।।१३६।।

अथवा ग्रहों के नाम के पहले अक्षर, बिन्दु और चन्द्र से समन्वित हो, उन सब ग्रहों के अङ्गमन्त्र कहे गये हैं।।१३६।।

शान्तिके पौष्टिके कृत्ये एभिर्मन्त्रैर्ग्रहानिमान् ।
पूजयेत् सर्वदा धीरो भूतिकामो महामतिः ।।१३७।।

शान्ति और पुष्टि हेतु किये जाने वाले कार्यों में, ऐश्वर्य की कामना करने वाला धैर्यवान्, महामतिवाला साधक, इन्हीं मन्त्रों से, इन ग्रहों का सदा पूजन करे।।१३७।।

।। राहुस्वरूपवर्णन ।।

वरदाभयहस्तश्च खड्गचर्मधरस्तथा ।
सिंहासनगतः कृष्णो राहुर्धीरः प्रचक्ष्यते ।।१३८।।

राहु, वरद और अभयमुद्रायुक्त हाथोंवाला, तथा खड्ग और ढाल धारण किया हुआ, धीर, सिंह पर विराजमान, काले रङ्ग का कहा जाता है।।१३८।।

।। केतुस्वरूपवर्णन ।।

धूम्रवर्णो विशालाक्षः पुच्छरूपी चतुर्भुजः ।
खड्गचर्मगदाबाणपाणिः केतुः शवासनः ।।१३९।।

केतु, धूम्रवर्ण का, बड़ेनेत्रोंवाला, पूँछरूप में चार भुजाओं से युक्त, शव पर विराजमान, हाथों में खड्ग, ढाल, गदा और बाण, धारण किया हुआ, कहा जाता है।।१३९।।

उपान्तादिर्द्वादशेन स्वरेण सहितः पुनः ।
उपान्तः पञ्चमेनेन्दुबिन्दुभ्यां सहितावुभौ ।।१४०।।
मन्त्रोऽयमनुलोमेन राहोः केतोर्विलोमतः ।
आद्याक्षरं पूर्ववद् वा मन्त्रयुक्तमथैतयोः ।।१४१।।

अन्तिम वर्ग से पहले वर्ग का पहला वर्ण य के आदि का वर्ण स उपान्त व्यञ्जन ह जिसके आदि में है वह क्ष द्वादशस्वर के सहित चन्द्रबिन्दु व पंचमस्वर सहित ऊपान्त (ह) से बना हुं, ये दोनों अनुलोम से राहु एवं विलोम से केतु के

मंत्र बनते हैं। अथवा इन दोनों के नाम का पहला अक्षर ही पहले की भाँति मन्त्र हो जाता है।।१४०-१४१।।

एवं चित्रे शैलवरे पूजयित्वा नवग्रहान् ।
अभीष्टाल्लँभते कामान्नरः शान्तिं तथोत्तमाम् ।।१४२।।

इस प्रकार चित्र नामक श्रेष्ठपर्वत पर नवग्रहों का पूजन कर, मनुष्य उत्तम शान्ति और अभीष्ट कामनाओं को प्राप्त करता है।।१४२।।

चित्रकूटात् तु पूर्वस्यां कज्जलाचल उत्तमः ।
सर्वविद्याधराद्यास्तु सन्त्यस्मिन् देवयोनयः ।।१४३।।

चित्रपर्वत से पूर्वदिशा में कज्जल नाम का एक उत्तमपर्वत है, जिस पर विद्याधर आदि सभी देवयोनियाँ, निवास करती हैं।।१४३।।

तं पर्वतं समारूह्य प्रणम्य सकलान् सुरान् ।
स्वर्गं यान्ति नरश्रेष्ठ इह चाप्यतुलां श्रियम् ।।१४४।।

हे नरश्रेष्ठ ! उस पर्वत पर चढ़कर तथा सभी देवताओं को प्रणाम कर, इस लोक में अतुलसम्पत्ति प्राप्त कर, साधक स्वर्ग जाते हैं।।१४४।।

कज्जलाचलशैलात् तु पूर्वस्मिञ्छुभपर्वतः ।
शच्या सार्धं पुरा रेमे यत्र शक्रः सुरेश्वरः ।।१४५।।

कज्जलाचल से पूर्व में शुभपर्वत है जहाँ प्राचीनकाल में देवराजइन्द्र ने शची के साथ रमण किया था।।१४५।।

तत्पूर्वस्यां महादेवी नदी कपिलगङ्गिका ।
तस्यां स्नात्वा नरो गङ्गास्नानजं फलमाप्नुयात् ।।१४६।।

उससे पूर्वदिशा में कपिलगङ्गिका नाम की एक महादेवी नदी है । उसमें स्नान कर मनुष्य, गङ्गास्नान से उत्पन्न, फल प्राप्त करता है ।।१४६।।

कामाख्यानिलयात् पूर्वं दक्षिणस्यां तथा दिशि ।
विद्यते महदावर्तं भुवि ब्रह्मबिलं महत् ।।१४७।।
पंचविंशतिमानेन योजनानां नरेश्वर ।
तस्मादायाति सानदी सिताम्भोऽपम तोयभाक् ।।१४८।।

हे राजन् ! कामाख्यामन्दिर से पूर्व तथा दक्षिणदिशा में पृथ्वी पर एक बड़ा गोलाकार महान् ब्रह्मबिल है जो पच्चीस योजन मान का है । उससे ही वह (उपर्युक्त) नदी आती है जो सिताम्भ (अमृत) के समान जल से युक्त है।।१४७-१४८।।

को ब्रह्मा कीर्तितो देवैर्यस्मात् तस्य पिलात् सृता ।
गंगेव फलदा यस्मात् तस्मात् कपिलगंगिका ।।१४९।।

देवताओं द्वारा ब्रह्मा कः कहे गये हैं। उनके 'पिल' (बिल) से निसृत होने तथा गङ्गा के समान फलदायी होने के कारण ही वह कपिल गंगिका कही जाती है॥१४९॥

स्नात्वा कपिलगङ्गायां सर्वमन्वन्तरेषु च।
नरः स्वर्गमवाप्यादौ ब्रह्मलोकं ततो व्रजेत्॥१५०॥

सभी मन्वन्तरों में कपिलगङ्गा में स्नान करके मनुष्य, प्रारम्भ में स्वर्ग को प्राप्त करता है तत्पश्चात् ब्रह्मलोक को जाता है॥१५०॥

अतीत्य तां नदीं पूर्वभागे दमनकाह्वया।
नदी महाकृष्णतोया पापस्य दमनी तथा॥१५१॥

उस नदी को पारकर पूर्वभाग में जाने पर, बहुत अधिक कालेजल से युक्त, पापों का दमन करने वाली, दमनिका नाम की नदी है॥१५१॥

ततो वृद्धाह्वया चाभूदपरा सरिदुत्तमा।
तस्या नद्याः पूर्वभागे गङ्गावत् फलदायिनी॥१५२॥

उसके पूर्वभाग में उससे वृद्धा नाम की एक अन्य उत्तम नदी उत्पन्न हुई है, जो स्वयं गङ्गा के समान फल देने वाली है॥१५२॥

माघं तु सकलं मासं स्नात्वा मुक्तिमवाप्नुयात्।
तथा दमनिकायां च परं निर्वाणमाप्नुयात्॥१५३॥

उस वृद्धानदी में माघ महीने भर स्नान करके मनुष्य, मुक्ति तथा दमनिका में स्नान करके परंनिर्वाण को प्राप्त करता है॥१५३॥

ततः पूर्वे परादेवी नाम्ना सा सरिदुत्तमा।
महती दिव्ययमुना यमुनावत् फलप्रदा॥१५४॥

उसके पूर्व में परादेवी नाम की वह उत्तम नदी है जो यमुना के समान दिव्य तथा यमुना की ही भाँति फलप्रदान करने वाली भी है॥१५४॥

दक्षिणाद्रिसमुद्भूता दक्षिणोदधिगामिनी।
तस्यां तु कार्तिकं मासं स्नात्वा मुक्तिमवाप्नुयात्।
इह चैवोत्तमान् भोगान् भागधेयान् प्रतिष्ठितान्॥१५५॥

यह नदी दक्षिणपर्वत से निकल कर दक्षिणसागर तक जानेवाली है। कार्तिक महीने भर इसमें स्नान करने से मनुष्य, मुक्ति प्राप्त करता है एवं इस लोक में प्रतिष्ठित लोगों को प्राप्त, उत्तम भोगों को प्राप्त करता है॥१५५॥

तन्मध्ये भैरवो देवो भर्गसम्भोगसम्भवः।
दुर्जयाख्ये वरगिरावस्त्युपत्यकभूमिगः॥१५६॥
योऽसौ शरभरूपस्य मध्यखण्डोऽतिभैरवः।
स एव भैरवाख्योऽयं पञ्चवक्त्रस्य मत्रकैः॥१५७॥
सम्पूज्य तत्र मतिमान् स याति शिवलोकताम्॥१५८॥

उसके मध्य में शिव के सम्भोग से उत्पन्न, भैरव नामक देव, दुर्जय नाम के श्रेष्ठपर्वत की घाटी में रहते हैं। शिव के शरभावतार के समय उनके शरभ-रूप का जो अत्यन्तभयानकमध्यखण्ड था, ये वही भैरव नामक देव हैं बुद्धिमान् साधक पञ्चवक्त्र-मन्त्र से जिनका पूजन कर शिवलोक को प्राप्त करता है॥१५६-१५८॥

कामेश्वरस्य या पूजा कथिता नीलनिर्णये ।
सम्पूज्य पर्वतश्रेष्ठे दुर्जये चाचलोत्तमे ।।१५९।।

नीलपर्वत के वर्णनप्रसङ्ग में कामेश्वर की जो पूजा कही गई है। उसे पर्वतों में श्रेष्ठ, दुर्जय नामक उत्तमपर्वत पर करनी चाहिये ॥१५९॥

तत्र भैरवगङ्गास्ति सरो वै भैरवाह्वयम् ।
तयोः स्नात्वा नरो याति शिवलोकं सनातनम् ।।१६०।।

वहीं भैरव नाम का एक सरोवर है एवं भैरवगङ्गा नामकी एक नदी है, उन दोनों में स्नान करके मनुष्य, सनातन (स्थायी) रूप से, शिवलोक को जाता है॥१६०॥

दुर्जयाख्यस्य पूर्वस्यां पुरं नाम वरासनम् ।
तद्दक्षिणे महाशैलः क्षोभको नाम नामतः ।।१६१।।

दुर्जय नामक पर्वत के पूर्व में एक वरासन नाम का पुर है, उसके दक्षिण में ही अपने नाम के अनुरूप ही एक क्षोभक नाम का महान् (विशाल) पर्वत है॥१६१॥

तस्मिन् गिरौ शिलापृष्ठे रक्तदेवी व्यवस्थिता ।
पञ्चपुष्करिणी नाम्ना पञ्चयोनिस्वरूपिणी ।।१६२।।
पञ्चभिर्दुर्गायोनिभिः पूजयेत् पंचवक्त्रकम् ।
स्थिता रमयितुं तत्र नित्यमेव हिमाद्रिजा ।।१६३।।

उस पर्वत के शिलातल पर, पञ्चपुष्करिणी नाम से पाँच-योनियों के रूप में रक्तदेवी स्थित हैं। वहाँ हिमालय पर्वत की पुत्री, पार्वती ही रमण हेतु नित्य, स्थित रहती हैं, वहाँ उन पाँच-दुर्गम योनियों (के जल) से पंचवक्त्र, शिव का पूजन करे॥१६२-१६३॥

तच्छैलपूर्वभागे तु कान्ता नाम महानदी ।
दक्षिणं सागरं याति प्रथमं चोत्तरस्त्रवा ।।१६४।।

उस पर्वत के पूर्वभाग में एक कान्ता नामक महानदी है जो पहले उत्तर की ओर बहती है फिर दक्षिणसागर (ब्रह्मपुत्र) को जाकर मिल जाती है॥१६४॥

दिव्यं कुण्डं महाकुण्डं तच्छैलोपत्यकांक्षितौ ।
संस्थितं तत्र स्नात्वा तु तां देवीं परिपूजयेत् ।।१६५।।

उसी पर्वत की घाटी की भूमि पर, महाकुण्ड नामक एक दिव्य-कुण्ड, स्थित है, उसमें स्नान कर उस देवी का पूजन करना चाहिये॥१६५॥

दिव्यकुण्डे नरः स्नात्वा पञ्चपुष्करिणीं शिवाम् ।
यः पूजयेन्महाभागः स योनौ न हि जायते ॥१६६॥

दिव्यकुण्ड में स्नान करके जो महाभाग, पञ्चपुष्करिणीरूपी शिवा का पूजन करता है, वह पुनः योनि में उत्पन्न नहीं होता अर्थात् मुक्त हो जाता है ॥१६६॥

पञ्चयोन्यः पुष्करिणीः पंचैव परिसंस्थिताः ।
यतस्ततः पञ्चरूपा पञ्चपुष्करिणी मता ॥१६७॥

वह शिवा अपनी पाँच योनियों को ही पञ्चपुष्करिणियों के रूप में स्थापित कर स्थित हैं, इस प्रकार के अपने पाँचरूपों के कारण ही वह देवी, स्वयं पञ्चपुष्करिणी मानी गई हैं॥१६७॥

यथा बकुल-पुष्पाणि तथैताः पञ्चयोनयः ।
पञ्चपुष्करिणीदेव्यः प्रचण्डाः सर्वकामदाः ॥१६८॥

ये पाँच योनियाँ आकार में बकुल के पुष्प के समान हैं। ये पञ्च-पुष्करिणी देवियाँ, प्रचण्ड हैं किन्तु साधकों की सभी कामनाओं को पूर्ण करने वाली हैं॥१६८॥

त्रिपुराद्यास्तु तन्त्रेण ताः पूज्याः साधकोत्तमैः ।
कामेश्वरीतन्त्रमन्त्रैरथवा पूजयेच्छिवाम् ॥१६९॥

उत्तमसाधक त्रिपुरा आदि तन्त्रों के मंत्रों से अथवा कामेश्वरीतन्त्र के मन्त्रों से उन देवियों का पूजन करे॥१६९॥

बालायास्त्रिपुरायास्तु मन्त्रमस्याः प्रकीर्तितम् ।
कामेश्वर्यास्तु वा मन्त्रं पूजनेऽस्याः प्रकीर्तितम् ॥१७०॥

बाला, त्रिपुरा के ही मन्त्र, उसके मन्त्र कहे गये हैं अथवा कामेश्वरी के मन्त्र भी इनके पूजन के मन्त्र कहे गये हैं॥१७०॥

उग्रचण्डा प्रचण्डा च चण्डोग्रा चण्डनायिका ।
चण्डा चेति च योगिन्यः पञ्चास्याः परिकीर्तिताः ॥१७१॥

इसकी पाँच योगिनियाँ-उग्रचण्डा, प्रचण्डा, चण्डोग्रा, चण्डनायिका, चण्डा इन-पाँच नामों से कही गई हैं॥१७१॥

शिवलिङ्गं च तत्रास्ति शिलायां हेरुकाह्वयम् ।
देवीदक्षिणपूर्वस्यां नायकं तं तु पूजयेत् ।
भैरवस्य तु मंत्रेण पूजयित्वा दिवं व्रजेत् ॥१७२॥

वहीं शिलापर हेरुक नाम का शिवलिङ्ग है जो देवी के दक्षिणपूर्वदिशा में स्थित है, उन योगनियों के नायक के रूप में उसका पूजन करे। भैरव के मन्त्र से उसका पूजन कर साधक, स्वर्ग को जाता है ॥१७२॥

निर्माल्यधारिणी देवी चण्डगौरीति कीर्तिता ।
एतस्यां नरशार्दूल पुरा भर्गेण भाषिता ।।१७३।।

इनकी निर्माल्यधारिणीदेवी चण्डगौरी कही गई हैं। हे मनुष्यों में शार्दूल की भाँति श्रेष्ठ ! इनके विषय में पहले ही भगवान् शङ्कर द्वारा कहा जा चुका है।।१७३।।

कान्तायां सलिले स्नात्वा वसन्ते मानवोत्तमः ।
रूपवान् गुणवान् भूत्वा शिवलोकाय गच्छति ।।१७४।।

वसन्तऋतु में उत्तममनुष्य इस कान्ता-नदी के जल में स्नान करके रूप और गुणों से युक्त हो शिवलोक को जाता है।।१७४।।

क्षोभकाख्याद् महाशैलादैशान्यां पर्वतोत्तमः ।
तुंगसन्ध्याचलो नाम वसिष्ठो यत्र शप्तवान् ।।१७५।।

क्षोभक नाम के महान् पर्वत से ईशानकोण में सन्ध्याचल नाम का एक ऊँचा और उत्तमपर्वत है जहाँ प्राचीनकाल में वशिष्ठमुनि ने शाप दिया था।।१७५।।

निमिनाम्नस्तु राजर्षेः शापाद् ब्रह्मसुतः पुरा ।
वसिष्ठो ह्यशरीरोऽभूत् तच्छापाच्च निमिस्तथा ।।१७६।।

प्राचीनकाल में ब्रह्माजी के पुत्र वशिष्ठमुनि स्वयं राजर्षिनिमि के शाप से शरीरविहीन हुये तथा उन वशिष्ठ के शाप से निमि, शरीर विहीन हुये थे ।।१७६।।

ततो ब्रह्मोपदेशेन निर्जने कामरूपके ।
सन्ध्याचले तपस्तेपे तस्य विष्णुरभूत् तदा ।।१७७।।
प्रत्यक्षस्तस्य देवस्य वरदानान्महामुनिः ।
अमृतान्यवतार्याशु कुण्डं कृत्वा गिरेस्तटे ।।१७८।।
तत्र स्नात्वा च पीत्वा च शरीरं प्राप पूरितम् ।।१७९।।

तब ब्रह्मा के उपदेश से निर्जन कामरूपक्षेत्र में सन्ध्याचलपर्वत पर उन्होंने तपस्या की जिससे भगवान् विष्णु ने उनको प्रत्यक्ष दर्शन दिया। उन विष्णुदेव के वरदान से महामुनि वशिष्ठ ने पर्वत की तलहटी में कुण्ड बनाकर, उसमें अमृत को उतारा था। तब उसमें स्नान कर तथा उस कुण्ड के जल को पीकर वे पूर्णशरीरवाले हुये थे।।१७७-१७९।।

तस्मादमृतकुण्डाच्च सन्ध्या नाम नदीवरा ।
निःसृता तत्र चाप्लुत्य चिरायुरगदो भवेत् ।।१८०।।

उस अमृतकुण्ड से ही सन्ध्यानाम की श्रेष्ठनदी निकली है जिसमें स्नान करके मनुष्य, निरोगी और दीर्घायु हो जाता है।।१८०।।

तस्मात् पूर्वं तु ललिता ललिताख्या सरिद्वरा ।
सागराद् दक्षिणात् पूर्वं महादेवावतारिता ।।१८१।।

उससे पूर्व में ललिता नाम की एक श्रेष्ठ और सुन्दर नदी है, जिसे पहले महादेव, शिव ने दक्षिणसागर (ब्रह्मपुत्र) से निकाला था॥१८१॥

वैशाखशुक्लपक्षस्य तृतीयायां नरस्तु यः ।
कुर्याद् वै ललितास्नानं स शम्भुसदनं व्रजेत् ।।१८२।।

वैशाखशुक्लतृतीया (अक्षयतृतीया) को जो मनुष्य, इस ललिता नाम की नदी में स्नान करता है, वह शिवलोक को जाता है॥१८२॥

ललितायाः पूर्वतीरे भगवान्नाम पर्वतः ।
स्वयं विष्णुर्लिङ्गरूपी तत्रास्ते भगवान् हरिः ।।१८३।।

ललिता के पूर्वीतट पर भगवान् नाम का एक पर्वत है जहाँ स्वयं भगवान्-विष्णु, लिङ्गरूप में निवास करते हैं ॥१८३॥

ललितायां नरः स्नात्वा द्वादश्यां शुक्लपक्षके ।
भगवन्तं समारूह्य यो यजेत् परमेश्वरम् ।
स याति विष्णुसदनं शरीरेण विराजता ।।१८४।।

शुक्लपक्ष की द्वादशीतिथि को जो मनुष्य, ललिता नदी में स्नान कर भगवान् पर्वत पर चढ़कर परमेश्वर का पूजन करता है, वह अपने वर्तमानशरीर से ही विष्णुलोक को जाता है॥१८४॥

एताः पूर्वोदिता नद्यः सर्वाश्चैवोत्तरस्त्रवाः ।
क्रमात् तु दक्षिणं यान्ति सागरं जाह्नवीसमाः ।।१८५।।

ये पहले बताई गईं सभी नदियाँ उत्तर की ओर बहने वाली हैं, ये गङ्गा के समान श्रेष्ठ हैं और क्रमशः दक्षिणसागर में जाकर गिरती हैं ॥१८५॥

कामाख्या प्रथमं दृष्ट्वा स्नात्वा चैवोर्वशीजले ।
य एतासु चरेत् स्नानं स तु मुक्तिमवाप्नुयात् ।।१८६।।

॥ इति श्रीकालिकापुराणे कामरूपवर्णनेदर्पणादिमाहात्म्यनाम एकोनाशीतितमोऽध्यायः॥७९॥

जो साधक पहले कामाख्यादेवी का दर्शन कर, उर्वशी के जल में स्नान करता है, तत्पश्चात् इन नदियों में स्नान करता है, वह मुक्ति प्राप्त करता है॥१८६॥

श्रीकालिकापुराण में कामरूपवर्णनेदपर्णादिमाहात्म्यसम्बन्धी उन्नासिवाँ अध्याय सम्पूर्ण हुआ॥७९॥



अशीतितमोऽध्यायः

कामरूपवर्णनेदीपवत्यादिमाहात्म्यम्

।। और्वउवाच ।।

शाश्वती कथिता या तु नदी मत्स्यध्वजासिता ।
तस्याः पूर्वे समाख्याता नदी दीपवती मता ।।१।।

और्व बोले—मत्स्यध्वजा नाम की नीलेजलवाली शाश्वती नदी जो पहले कही गई है, उसके पूर्व में दीपवती नामकी एक प्रसिद्ध नदी मानी गई है।।१।।

एषा च हिमवज्जाता छिन्दन्ती दीपवत्तमः ।
तेन देवमनुष्येषु नदी दीपवती स्मृता ।।२।।

हिमालय से उत्पन्न यह नदी, जैसे दीपक अन्धकार को दूर कर देता है, उसी प्रकार तमस् (पापों) को दूर कर देती है। इसीलिए देवताओ और मनुष्यों में यह नदी, दीपवती नाम से स्मरण की जाती है।।२।।

दीपवत्याः पूर्वतस्तु शृङ्गाटो नाम पर्वतः ।
तत्र देवस्य भर्गस्य लिङ्गमेकं प्रतिष्ठितम् ।।३।।

दीपवती नदी के पूर्व में एक श्रृंगाट नामक पर्वत है जहाँ भगवान् शिव का एक लिङ्ग स्थापित है।।३।।

सरित् तु सिद्धा त्रिःस्रोता दक्षिणोदधिगामिनी ।
शृङ्गाटकस्य सततं स्रवन्ती सा तु पादतः ।
दक्षिणसागरं याति भर्गस्य प्रियकारिणी ।।४।।

वहाँ सिद्धात्रिस्रोता नामवाली, एक नदी है जो बहकर दक्षिण- सागर को जाती है । वह सदैव श्रृंगाटक पर्वत के पादवहा (तलहटी) से निकलती है एवं दक्षिणसागर को जाती है। वह शिव का प्रिय करने वाली है।।४।।

सलिले यो नरः स्नात्वा त्रिःस्रोतायां नरोत्तमः ।
शृङ्गाटकं समारुह्य पूजयेल्लिङ्गशङ्करम् ।।५।।
स दीप्तकायः शुद्धात्मा प्राप्य कामानिहातुलान् ।
अन्ते भर्गगृहं याति ततो मोक्षमवाप्नुयात् ।।६।।

जो उत्तमपुरुष उपर्युक्त त्रिस्रोता में स्नान कर, श्रृंगाटक पर जाकर शिवलिङ्ग का पूजन करता है वह तेजस्वीशरीर और शुद्धआत्मावाला हो, इस लोक में अतुल-

कामनाओं को प्राप्त कर, मृत्यु के पश्चात् शिवलोक को जाता है तत्पश्चात् मोक्ष को प्राप्त करता है।।५-६।।

हरस्तु द्विभुजस्तस्मिन् सदा वृषभवाहनः ।।७।।
उमया रमते सार्धं वामदेवस्य मन्त्रकैः ।
तन्त्रैश्च पूजयेद् देवमुमामन्त्रेण चण्डिकाम् ।।८।।

वहाँ पर वृषभपरसवार होकर दो भुजाओं वाले भगवान् शिव सदैव उमा के साथ रमण करते हैं । वहाँ भगवान् शिव का वामदेव के मन्त्र तथा तन्त्रों से एवं चण्डिका का उमामन्त्रादि से पूजन करना चाहिये।।७-८।।

तत्-पूर्वतो निम्नगा तु नाम्ना तु वृद्धवेदिका ।
तस्यां स्नात्वा फलं मर्त्यो वेदिकास्नानजं लभेत् ।।९।।

उसके पूर्व में वृद्धवेदिका नाम की एक नदी है। उसमें स्नान करके मनुष्य वेदिका में स्नान करने का फल प्राप्त करता है ।।९।।

ततो भट्टारिका नाम हिमशैलसमुद्भवा ।
महानदी देवगणैर्या सदोपास्यते सुखम् ।।१०।।

उसके आगे हिमालयपर्वत से उत्पन्न भट्टारिका नाम की एक महानदी है जिसकी देवगण सदा सुखपूर्वक उपासना करते हैं ।।१०।।

तस्यां यः कुरुते स्नानं युगादिषु चतुर्ष्वपि ।
स याति परमं स्थानं तद् विष्णोः परमं पदम् ।।११।।

चारों युगों में जो उसमें स्नान करता है वह उस परमस्थान को जाता है जो विष्णु का परमपद है।।११।।

अस्ति नाटकशैले तु सरो मानससन्निभम् ।
यत्र सार्धं शैलपुत्र्या जलक्रीडां सदा हरः ।
कुरुते नरशार्दूल स्वर्णपङ्कजशोभिते ।।१२।।

हे नर शार्दूल ! नाटकशैल पर मानसरोवर के समान एक सरोवर है, जहाँ शिव, पार्वती के साथ, स्वर्णकमल से सुशोभित सरोवर में सदैव जल-क्रीड़ा करते हैं।।१२।।

तस्य पश्चान्मध्यपूर्वभागेभ्यस्तु सरित्-त्रयम् ।
अवतीर्ण प्रयात्येव दक्षिणं सागरं प्रति ।।१३।।

उसके पश्चात् पश्चिमी-पूर्व भागों से तीन नदियाँ निकल कर, दक्षिणसागर की ओर जाती हैं।।१३।।

तस्य पश्चिमभागे तु नदी दिक्करिकाह्वया ।
दिग्गजक्षतसंजाता तेन दिक्करिकाह्वया ।।१४।।

उसके पश्चिमीभाग में दिक्करिका नाम की एक नदी बहती है। वह नदी दिग्गजों के आघात से उत्पन्न हुई है, इसीलिए इसे दिक्करिका कहा जाता है ॥१४॥

मध्यभागात् सृता या तु शङ्करेणावतारिता ।
वृद्धगंगाह्वया सा तु गंगेव फलदायिनी ।।१५।।

जो पृथ्वी पर शङ्कर के द्वारा अवतरित की गई तथा मध्यभाग से निकली है, वह वृद्धगङ्गा नाम की नदी, गङ्गा के ही समान फल देने वाली है।।१५।।

या निःसृता पूर्व भागात् तस्माद् गिरिवरान्नदी ।
सुवर्णश्रीरिति ख्याता सा गङ्गासदृशीफले ।।१६।।

जो नदी उस श्रेष्ठपर्वत के पूर्वभाग से निकली है वह सुवर्णश्री इस नाम से प्रसिद्ध है तथा फल देने में गङ्गा के समान है।।१६।।

कुर्वत्याः सरसि स्नानं पार्वत्याश्च शरीरतः ।
निःसृताः स्वर्णकणिकास्ता वहन्ति जलैरिमाः ।।१७।।
क्रीडार्थं शम्भुना गात्रे कणिकाभिः समाचिताः ।
स्वस्थानात् तत्र संलग्नास्ततश्चन्दनबिन्दवः ।।१८।।
ता उमायाः शरीरात् तु संस्रवन्ति जलैः सह ।
ततः स्वर्णवहा नाम स्वर्णश्रीः सर्वतोऽधिका ।।१९।।

सरोवर में स्नान करते समय पार्वती के शरीर से निकली स्वर्णकणिकायें इस जल में बहती हुई, क्रीड़ा करते समय शिव के शरीर की कणिकाओं से मिलती हैं। उस समय अपने स्थान से लगे हुए चन्दन के बिन्दु उमा के शरीर में जल के साथ बहते हैं तब से सबसे अधिक स्वर्णकण बहाने के कारण वह, स्वर्णश्रीनाम से प्रसिद्ध है।।१७-१९।।

एतासु चैत्रमासं तु स्नात्वा मर्त्यो नरर्षभः ।
कृष्णपक्षे चतुर्दश्यां त्रिकालं यत्र मानवः ।।२०।।
चिरं देवीगृहे स्थित्वा शेषे ब्रह्मगृहं व्रजेत् ।
भूमाववगतः पश्चात् सार्वभौमो नृपो भवेत् ।।२१।।

हे मनुष्यों में श्रेष्ठ ! चैत्रमास के कृष्णपक्ष की चतुर्दशी तिथि को जो मनुष्य इन नदियों में त्रिकालस्नान करता है। वह चिरकाल तक देवी के धाम में निवास कर, अन्त में ब्रह्मलोक को जाता है और तत्पश्चात् भूमि पर पुनः आकर (जन्म लेकर) सार्वभौमराजा होता है।।२०-२१।।

वृद्धगङ्गाजलस्यान्तस्तीरे ब्रह्मसुतस्य वै ।
विश्वनाथाह्वयो देवः शिवलिङ्गसमन्वितः ।।२२।।
विश्वदेवी महादेवी योनिमण्डलरूपिणी ।।२३।।

ब्रह्मपुत्रनद के तट पर वृद्धगङ्गा के जल में विश्वनाथ नामक देव, शिवलिङ्ग-रूप में तथा महादेवी, विश्वदेवी, योनिमण्डल के रूप में समन्वितरूप में निवास करती हैं।।२२-२३।।

हयग्रीवेण युयुधे तत्र देवो जगत्पतिः ।
हयग्रीवं यत्र हत्वा मणिकूटं पुरागतम् ।।२४।।

वहाँ जगत के स्वामी भगवान् विष्णु ने प्राचीनकाल में, हयग्रीवनामक दैत्य से युद्ध किया था और हयग्रीव को मारकर मणिकूटपर्वत पर गये थे।।२४।।

तत्र यः पूजयेद् दुर्गां शारदां तन्त्रमन्त्रकैः ।
हयग्रीवस्य मन्त्रेण तन्त्रेण गरुडध्वजम् ।।२५।।
कामेश्वरस्य तन्त्रेण मन्त्रेणापि च शङ्करम् ।
यो यजेत् परया भक्त्या द्वादश्यां समुपोषितः ।
अष्टम्यां च चतुर्दश्यां तस्य पुण्यफलं शृणु ।।२६।।

वहाँ जो साधक शारदातन्त्र के मन्त्रों से देवी दुर्गा का, हयग्रीव के तन्त्र-मन्त्र से गरुडध्वज विष्णु का, कामेश्वर के तन्त्र-मन्त्र से भगवान् शङ्कर का पूजन करता है। जो द्वादशी, अष्टमी और चतुर्दशी को उपवास रख कर इनका पूजन करता है, उसका पुण्यफल सुनिये।।२५-२६।।

कल्पकोटित्रयं स्थित्वा शिवगेहे गृहे हरेः ।।२७।।
तावन्तं संस्थितः कालं तावन्तं च शिवागृहे ।
शेषे भुवं समासाद्य वेदविद् ब्राह्मणो भवेत् ।।२८।।

वह तीनकरोड़कल्पों तक शिव के धाम में, उतनी ही अवधि तक विष्णुलोक में, उतने ही समय तक शिवा के धाम में रहकर, अन्त में पृथिवी पर जन्म लेकर वेदवेत्ता ब्राह्मण होता है ।।२७-२८।।

नद्याः ध्स्वर्णश्रियः पूर्वं नदी कामाह्वया शुभा ।
कामायाः पूर्वभागे तु नदी सोमाशनाह्वया ।।२९।।
सोमाशनायाः पूर्वस्यां नदी ध्नाम्ना वृषोदका ।
ततः पूर्वे कामरूपं पीठं ते जगतां प्रसूः ।
जगन्मयी महामाया देवी दिक्करवासिनी ।।३०।।

स्वर्णश्री नदी के पूर्व में कामा नाम की सुन्दर-नदी स्थित है, उस कामा के पूर्वभाग में सोमाशना नामक नदी, सोमाशना के पूर्व में वृषोदका नाम की नदी स्थित है। उसके पूर्व में, जगत की माता, जगत् स्वरूपा के रूप में महामाया दिक्करवासिनी देवी का काध्मरूपपीठ स्थित है।।२९-३०।।

एता याः कथिता नद्यः सकलाः दक्षिणस्त्रवाः ।
तासु स्नात्वा च पीत्वा च स्वर्गलोकमवाप्नुयात् ।।३१।।

ये जो ऊपर वर्णित नदियाँ हैं, वे सभी दक्षिणदिशा में बहने वाली हैं। इनमें स्नानकर और इनका जल पीकर मनुष्य, स्वर्गलोक को प्राप्त करता है॥३१॥

प्रान्ते दिक्करवासिन्याः सदा वहति स्वर्णदीं ।
सितगङ्गाह्वया लोके साक्षाद् गङ्गाफलप्रदा ।।३२।।

दिक्करवासिनी के निकट ही स्वर्ग की नदी, सितगङ्गा नाम से सदैव बहती है जो लोक में गङ्गा के समान साक्षात् फल देने वाली है॥३२॥

सा भूमिपीठसंस्था च देवी दिक्करवासिनी ।
अन्तर्जले प्लावयन्ती याति प्रत्यक्षतां सुरैः ।।३३।।

वह देवी दिक्करवासिनी भूमितल पर, जल में डूबी हुई स्थित रहती हैं तथा देवताओं द्वारा प्रत्यक्षरूप में देखी जाती हैं॥३३॥

सितगङ्गाजले स्नात्वा दृष्ट्वा शम्भुं हरिं विधिम् ।
इष्ट्वा ललितकान्ताख्यां पुनर्योनौ न जायते ।।३४।।

सितगङ्गा के जल में स्नान, शिव, विष्णु और ब्रह्मा का दर्शन तथा ललितकान्ता नाम की देवी का पूजन कर, मनुष्य पुनः योनि से जन्म नहीं लेता॥३४॥

लिङ्गस्वरूपी भगवाञ्छंभुस्तत्र स्वयं स्थितः ।
विष्णुः शिलास्वरूपेण ब्रह्मलिङ्गस्वरूपधृक् ।।३५।।

वहाँ भगवान् शिव स्वयं लिङ्गरूप में, विष्णु शिलारूप में और ब्रह्मा भी लिङ्गरूप धारण कर वहीं विराजमान रहते हैं ॥३५॥

पीठे दिक्करवासिन्या द्विरूपा रमते शिवा ।।३६।।
तीक्ष्णकान्ताह्वया त्वेका योग्रतारा प्रकीर्तिता ।
परा ललितकान्ताख्या या श्रीमङ्गलचण्डिका ।।३७।।

दिक्करवासिनी पीठ में शिवा दो रूपों में रमण करती हैं जिनमें से एक तीक्ष्णकान्ता नाम की हैं जो उग्रतारा कही गई हैं तो दूसरी ललितकान्ता नामक श्री मङ्गलचण्डिका कही गई हैं॥३६-३७॥

।। तीक्ष्णकान्तावर्णन ।।

तस्यास्तु सततं रूपं तीक्ष्णकान्ताह्वयं नृप ।
कृष्णा लम्बोदरी या तु सा स्यादेकजटा शिवा ।।३८।।
तेन रूपेण तां देवीं सततं परिपूजयेत् ।
अङ्गमन्त्रं च रूपं च तस्याः प्राक्प्रतिपादितम् ।।३९।।

हे राजन् ! उनका शाश्वतरूप तीक्ष्णकान्ता नामक ही है जिसमें वह शिवा कालेवर्ण, लम्बेपेट, एकजटा से युक्त रहती हैं। उसी तीक्ष्णकान्तारूप में उन देवी का निरन्तर पूजन करना चाहिये। उनका अङ्गमन्त्र और ध्यान, पहले ही बताया गया है॥३८-३९॥

त्रिकोणं मण्डलं चास्याः कर्तव्यं मंत्रपूर्वकम् ।
आदौ रेखे ततः पश्चात् सुरेखेति पदं ततः ।।४०।।
तथा पदं चाधिगम्य तिष्ठन्त्विति पदं ततः ।
मण्डलस्यास्य मन्त्रोऽयं तीक्ष्णायाः परिकीर्तितः ।।४१।।

इस देवी का मण्डल, मन्त्रपूर्वक त्रिकोणात्मक बनाना चाहिये। इसके मन्त्र में पहले रेखे तब सुरेखे शब्द का प्रयोग करे तत्पश्चात् तिष्ठन्तु इस शब्द का आश्रय लेने से इन तीक्ष्णकान्ता देवी के मण्डलनिर्माण का मन्त्र **रेखे सुरेखे तथा तिष्ठन्तु** कहा गया है।।४१-४१।।

नरत्रिपुरदेवादियमवेतालदुर्धराः ।
गणश्रमेत्यन्तकान्ता द्वारपालाः प्रकीर्तिताः ।
एतांस्तु पूजयेत् सम्यङ्मण्डलस्याष्टदिक्षु वै ।।४२।।

अन्तक शब्द से समाप्त होने वाले नर, त्रिपुर, देव, यम, वेताल, दुर्धर, गण, श्रम; नरान्तक, त्रिपुरान्तक, देवान्तक, यमान्तक, वेतालान्तक, दुर्धरान्तक, गणान्तक और श्रमान्तक ये आठ देवी के द्वारपाल कहे गये हैं। मण्डल की आठो दिशाओं में इनका भली-भाँति पूजन करे ।।४२।।

आदौ सम्बोधनं कृत्वा वज्रपुष्पं ततः परम् ।
वह्निजायां ततः पश्चान्मन्त्रमेषां प्रकीर्तितम् ।।४३।।

इस हेतु पहले उनका सम्बोधन (नामोच्चार) करके वज्रपुष्पं शब्द तत्पश्चात् वह्निजाया (स्वाहा) शब्द के प्रयोग से बना, इन द्वारपालों का नाम और वज्रपुष्पं स्वाहा मिलकर इनका मन्त्र कहा गया है।।४३।।

पात्रोपकरणादीनां स्थानन्यासस्य सर्वतः ।
सर्वमुत्तरतन्त्रोक्तं गुह्यं रूपद्वयेऽपि च ।।४४।।

दिक्करवासिनी के दोनों ही रूपों (तीक्ष्णकान्ता एव ललितकान्ता) के पूजन में पात्र, उपकरण, स्थान और न्यास, अन्य उपचारों में सब जगह, उत्तरतन्त्र में कहे अनुसार सब कुछ गुप्तरूप से करना चाहिये।।४४।।

चामुण्डा च कराला च सुभगा भीषणा भगा ।
विकटेति च योगिन्यः प्रोक्ता तस्यास्तथैव षट् ।।४५।।

उनकी चामुण्डा, कराला, सुभगा, भीषणा, भगा और विकटा, योगिनियाँ बताई गई हैं।।४५।।

हे भगवत्येकजटे विद्महे पदमन्ततः ।
विकटदंष्ट्रे धीमहि तन्नस्तारे प्रचोदयात् ।।४६।।
एषा तु तीक्ष्णगायत्री पीठदेव्याः प्रकीर्तिता ।
निर्माल्यधारिणी चास्या देवी विकटचण्डिका ।।४७।।

हे भगवत्येकजटे विद्महे के पश्चात् विकटदंष्ट्रे धीमहि तन्नः तारे प्रचोदयात्। **मन्त्रार्थ**—हे भगवति एक जटे हम आपको को जानते हैं, विकटदंष्ट्रा का ध्यान करते हैं, वे तारा देवी हमें प्रेरित करें। यह पीठदेवी तीक्ष्णकान्ता की तीक्ष्ण गायत्री कही गई है। विकटचण्डिका इनकी निर्माल्यधारिणीदेवी कही गई हैं।।४६-४७।।

माला तु मृन्मयी प्रोक्ता रुद्राक्षसम्भवापि वा ।
विशेष एष देव्यास्तु पूजने परिकीर्तितः ।।४८।।

इन देवी के पूजन में उत्तरतन्त्र से हटकर के मिट्टी की या रुद्राक्ष की बनी माला, विशेषरूप कही गई है।।४८।।

उपचारादिकं कृत्यं बलिदानं जपादिकम् ।
सर्वं तु पूर्ववद् ग्राह्यं कामाख्यापूजने यथा ।।४९।।

पूजासम्बन्धी उपचार, जप, बलिदान आदि सभी कृत्य, जिस प्रकार से पहले कामाख्यापूजन में बताये गये हैं, वैसा ही सब कुछ ग्रहण करना चाहिये ।।४९।।

पानेषु मदिरा शस्ता नरो बलिषु पार्थिव ।।५०।।
मोदको नारिकेलं च मांसव्यञ्जनमैक्षवम् ।
नैवेद्येषु प्रियकरास्तीक्ष्णायाः परिकीर्तिताः ।।५१।।

हे राजन् ! देवी के पेयपदार्थों में मदिरा तथा बलियों में नरबलि श्रेष्ठ बताई गई है। मोदक, नारीयल, मांस, व्यञ्जन (चटनी), ऐक्षव (गन्ने का उत्पाद गुड़ आदि), तीक्ष्णा के प्रिय लगने वाले नैवेद्य कहे गये हैं ।।५०-५१।।

।। ललितकान्तावर्णन ।।

यैषा ललितकान्ताख्या देवी मङ्गलचण्डिका ।
वरदाभयहस्ता सा द्विभुजा गौरदेहिका ।।५२।।
रक्तपद्मासनस्था च मुकुटोज्ज्वलमण्डिता ।
रक्तकौशेयवसना स्मितवक्त्रा शुभानना ।
नवयौवनसम्पन्ना चार्वङ्गी ललितप्रभा ।।५३।।

जो ललितकान्ता नामक मङ्गलचण्डिका देवी हैं, वे गोरेशरीरवाली, वरद और अभय हाथों की मुद्राओं से युक्त, दो भुजाओं वाली हैं । वे लालकमल पर विराजमान हैं तथा उज्ज्वलमुकुट से सुशोभित हैं। वे लालरेशमीवस्त्र पहने हैं तथा सुन्दर और मुस्कुरातेमुँहवाली, नये यौवन से सम्पन्न, सुन्दरअङ्गोंवाली, सुन्दरप्रभा से युक्त हैं।।५२-५३।।

उमायाः भाषितं मंत्रं यत् पूर्वं त्वेकमक्षरम् ।
मन्त्रमस्यास्तु तज्ज्ञेयं तेन देवीं प्रपूजयेत् ।।५४।।

पहले उमा देवी का जो एकाक्षरमन्त्र कहा गया है उसे ही इन ललितकान्ता-देवी का भी मन्त्र जानना चाहिये तथा उसी से इनका भी पूजन करना चाहिये।।५४।।

नारायण्यै विद्महे त्वां चण्डिकायै तु धीमहि ।
तन्नो ललितकांन्तेति ततः पश्चात् प्रचोदयात् ।।५५।।
एषा ललितागायत्री देव्या इष्टयै प्रकीर्तिता ।।५६।।

नारायण्यै विद्महे त्वां चण्डिकायैतुधीमहि तन्नो ललितकान्ता कह कर **प्रचोदयात्** कहे, यह **नारायण्यै विद्महे त्वां चण्डिकायै धीमहि तन्नो ललितकान्ता प्रचोदयात्** (नारायणी को जानते हैं, आप चण्डिका का ध्यान करते हैं वह ललितकान्ता हमें प्रेरित करें) इष्ट प्राप्ति हेतु यह ललितकान्ता की गायत्री कही गई है।।५५-५६।।

लोहितांगस्य दिवसः प्रियोऽस्याः परिकीर्तितः ।
कालो वसन्तकालश्च स्वरश्चापि तु पञ्चमः ।।५७।।

लोहितांग (मङ्गल) का दिन उनका प्रियदिन कहा गया है, उनका प्रियकाल, वसन्तकाल तथा स्वर पञ्चमस्वर है।।५७।।

अष्टम्यां च नवम्यां च पूजा कार्या विभूतये ।
निर्माल्यधारिणी चास्या देवी ललितचण्डिका ।।५८।।

ऐश्वर्यप्राप्तिहेतु अष्टमी और नवमी को इनका पूजन करना चाहिये। इनकी निर्माल्यधारिणी देवी ललितचण्डिका कही गई हैं ।।५८।।

दूर्वाङ्कुरैः समायुक्तमक्षतं प्रीतिदं परम् ।
अयमस्या विशेषस्तु पूजने परिकीर्तितः ।।५९।।

इस देवी के पूजन में दूर्वाङ्कुरयुक्तअक्षत विशेषरूप देवी को परमप्रीति देने वाला, कहा गया है।।५९।।

वैष्णवीतन्त्रमन्त्रस्य तन्त्रं ग्राह्यं तु पूजने ।
उपचारो बलिश्चास्या विहितो यः क्रमः पुरा ।।६०।।
महामायामहादेव्यास्तद् ग्राह्यं परिपूजने ।
स्वगात्ररुधिरं दद्यांदात्मनश्च हिताय वै ।।६१।।

वैष्णवीतन्त्रमन्त्र की विधि ही इनके पूजन में ग्रहण करनी चाहिये । पहले महामाया महादेवी के पूजन का जो उपचार, बलि या क्रम (पद्धति) बताया गया है वही इन देवी के भी पूजन में ग्रहण करना चाहिये । अपने कल्याणहेतु साधक को अपने शरीर का रक्त, प्रदान करना चाहिये ।।६०-६१।।

पटेषु प्रतिमायां वा घटे मङ्गलचण्डिकाम् ।
यः प्रपूजयेद् भौमदिने शुभैर्दूर्वाङ्कुरैः शिवाम् ।
सततं साधकः सोऽपि काममिष्टमवाप्नुयात् ।।६२।।

जो साधक भौमवार के दिन वस्त्रोंपर (चित्र में), प्रतिमा में या कलश पर

मङ्गलचण्डिका, शिवा का सुन्दरदुर्वाङ्कुरों से निरन्तर पूजन करता है, वह साधक अपनी अभीष्टकामनाओं को प्राप्त कर लेता है।।६२।।

एवं दिक्करवासिन्याः कथितः पूजनक्रमः ।
यच्छ्रुत्वा नाशुभं किञ्चिदाप्नोति श्रवणे रतः ।।६३।।

दिक्करवासिनी देवी का इसप्रकार का पूजनक्रम कहा गया है जिसे सुनकर, सुनने वाला कुछ भी अशुभ नहीं प्राप्त करता।।६३।।

दिक्करस्त्वरुणः प्रोक्तस्तथा शम्भुश्च दिक्करः ।
तस्मिन्नध्युषिता देवी तस्माद् दिक्करवासिनी ।।६४।।

दिक्कर सूर्यदेव को कहा जाता है, तथा शिव को भी दिक्कर कहा जाता है, देवी उनके ऊपर बसी होती है, इसीलिए उसे दिक्करवासिनी कहा गया है।।६४।।

जगत् त्रयेऽपि यस्यास्तु सदृशी चाऽपि सुन्दरी ।
नान्यास्ति ललिता तेन देवी ललितकान्तिका ।।६५।।

तीनों लोकों में कोई दूसरी सुन्दरी, उनके समान सुन्दर नहीं है इसीलिए वे देवी ललितकान्तिका कही जाती हैं।।६५।।

।। ब्रह्मपूजनविधि ।।

शङ्करस्य पुरा प्रोक्तो ग्राह्यो वै पूजनक्रमः ।
शृणु राजनन्वहितो ब्रह्मणः पूजनक्रमम् ।।६६।।

शङ्कर की पूजा का जो क्रम पहले बताया गया है वहीं यहाँ भी ग्रहण करना चाहिये। हे राजन् ! अब आप मेरे द्वारा ब्रह्मा के लिए निर्दिष्ट पूजनक्रम को सुनो।।६६।।

ब्रह्मबीजं पुरा प्रोक्तं तन्मन्त्रं सर्वतश्चरेत् ।
तेनैव तं तु सम्पूज्य परं निर्वाणमाप्नुयात् ।।६७।।

ब्रह्मा का जो बीजमन्त्र पहले बताया गया है, उसी मन्त्र का सब जगह प्रयोग करना चाहिये। उसी से ब्रह्मा की पूजा करके साधक, परं निर्वाण को प्राप्त करता है।।६७।।

एतस्य चाङ्गमन्त्रं तु यथा भर्गेण भाषितम् ।
वेतालभैरवाभ्यां तु रूपं च शृणु भूमिप ।।६८।।

हे राजन् ! अब इनके अङ्गमन्त्र और उनके रूप के विषय में सुनो जैसा कि भगवान् शङ्कर द्वारा वेताल और भैरव से कहा गया है।।६८।।

पस्तृतीयश्च बह्निश्च शेषः स्वरसमन्वितः ।
चन्द्रबिन्दुसमायुक्तो ब्रह्ममन्त्रं प्रकीर्तितम् ।।६९।।

प से तृतीय वर्ण ब और वह्नि (र) शेषस्वर (आ), चन्द्र-बिन्दु से युक्त हो ब्रह्मा का मन्त्र ब्राँ कहा गया है ।।६९।।

अनेनैव तु मन्त्रेण ब्रह्माणं यः प्रपूजयेत् ।
स काममिष्टं संप्राप्य ब्रह्मलोकेषु मोदते ।।७०।।

इसी मन्त्र से जो ब्रह्मा का पूजन करता है, वह अपनी इष्टकामनाओं को प्राप्त कर ब्रह्मलोक में आनन्द प्राप्त करता है।।७०।।

।। ब्रह्माकाध्यान ।

ब्रह्मा कमण्डलुधरः चतुर्वक्त्रश्चतुर्भुजः ।
कदाचिद्रक्तकमले हंसारूढः कदाचन ।।७१।।
वर्णेन रक्तगौराङ्गः प्रांशुस्तुङ्गाङ्ग उन्नतः ।
कमण्डलुं वामकरे स्रुचं हस्ते च दक्षिणे ।।७२।।
दक्षिणाधस्तथा मालां वामाधश्च तथा स्रुवम् ।
आज्यस्थाली वामपार्श्वे देवाः सर्वेऽग्रतः स्थिताः ।।७३।।
सावित्री वामपार्श्वेस्था दक्षिणस्था सरस्वती ।
सर्वे च ऋषयो ह्यग्रे कुर्यादेवं विचिन्तनम् ।।७४।।

ब्रह्मा कमण्डलु धारण किये, चारमुँह और चारभुजाओं से युक्त, कभी लाल कमल पर तो कभी हंस पर सवार, लालगोरेरङ्ग के, लम्बे, उठे हुये अङ्गों वाले, ऊँची काया वाले हैं। वे अपने बाएँ हाथों में कमण्डलु और दाहिने हाथ में स्रुचि, दाहिनेनिचले हाथ में माला तथा बायेंनिचले हाथ में स्रुवा धारण किये हैं, उनके बायेंभाग में आज्यस्थाली तथा सामने सभी देवगण स्थित रहते हैं। उनके बाँयेभाग में सावित्री तथा दाहिनेभाग में सरस्वती एवं आगे की ओर सभी ऋषिगण विराजमान हैं। ब्रह्मा का ऐसा चिन्तन, ध्यान करना चाहिये।।७१-७४।।

।। ब्रह्मायन्त्रवर्णन ।।

चतुष्कोणं चतुर्द्वारमष्टपत्रसमन्वितम् ।
चतुष्कोणेष्वङ्कितं तु स्त्रक्कमण्डलुस्रुक्स्रुवैः ।।७५।।
सम्मार्जनादिकं सर्वं याश्चान्याः प्रतिपत्तयः ।
दृष्टवाश्चोत्तरतन्त्रोक्ता योगपीठेऽङ्गिकादिकाः ।।७६।।
आधारशक्तिप्रमुखांस्तथा सर्वास्तु पूजयेत् ।
अष्टपत्रेषु पद्मस्य दिक्पालांश्च प्रपूजयेत् ।।७७।।

ब्रह्मा के यन्त्र के रूप में चारद्वार एवं आठपत्रों (दलों) से युक्त एक चतुष्कोण बनाना चाहिये। जिसके चारों द्वारों पर क्रमशः पूर्वादिक्रम से माला, कमण्डलु, स्रुक और स्रुवा अङ्कित करे। सम्मार्जन आदि या अन्य प्रतिपत्तियाँ, जो उत्तरतन्त्र में कही गई हैं, उन्हें वहाँ से देखकर, योगपीठ पर अङ्गिका आदि सभी आधार शक्तियों का पूजन करना चाहिये। योगपीठ पर अष्टदलकमल के आठपत्रों में आठोंदिग्पालों का पूजन करना चाहिये।।७५-७७।।

।। ब्रह्मगायत्री ।।

पद्मासनाय विद्महे हंसारूढाय धीमहि ।

तन्नो ब्रह्मन्निति पदं ततः पश्चात् प्रचोदयात् ।।७८।।
एषा तु ब्रह्मगायत्री पूजयेदनया विधिम् ।।७९।।

पद्मासनाय विद्महे हंसारुढाय धीमहि तन्नो ब्रह्मन् के पश्चात् प्रचोदयात् पद लगाने से **ॐ पद्मासनायविद्महे हंसारूढ़ाय धीमहि तन्नो ब्रह्मन् प्रचोदयात्** (हम पद्मासन को जानते हैं, हंसारुढ का ध्यान करते हैं वह ब्रह्मा हमें प्रेरित करें), यह ब्रह्मा की गायत्री है, इससे ब्रह्मा का पूजन करना चाहिये।।७८-७९।।

निर्माल्यधारी चैतस्य सनत्कुमार उच्यते ।
उपचाराः पूर्ववत् तु नेत्राञ्जनविवर्जिताः ।।८०।।

इनके निर्माल्यधारी सनत्कुमार कहे जाते हैं, इनके पूजोपचार भी पहले ही की भाँति हैं, केवल आँखों में अञ्जन का निषेध है।।८०।।

रक्तकौशेयवस्त्रं तु ब्रह्मप्रीतिकरं परम् ।
अन्नं सपायसं सर्पिस्तिलयुक्तं च भोजनम् ।
सितरक्तसमायुक्तं चन्दनं परिकीर्तितम् ।।८१।।

लालरेशमीवस्त्र ब्रह्मा को अत्यन्त प्रसन्नता देने वाला है। पायस (खीर), घी और तिल के सहित अन्न, ब्रह्मा का प्रिय भोजन है । श्वेत और लाल रङ्गों का मिला हुआ चन्दन, उनका प्रिय-चन्दन कहा गया है।।८१।।

पार्श्वयोः शंकरं विष्णु पूजने पूजयेत् पुरः ।।८२।।
स्रुवादीन् करसंस्थांस्तु मण्डले परिपूजयेत् ।
सरस्वतीं च सावित्रीं हंसं पद्मं तथैव च ।।८३।।

पूजन में पहले, ब्रह्मा के पार्श्वभागों में शङ्कर और विष्णु का पूजन करना चाहिये। उनके हाथों में स्थित स्रुवा आदि का तथा सरस्वती, सावित्री, हंस और पद्म का भी उसी प्रकार पूजन करना चाहिये ।।८२-८३।।

अयं विशेषः कथितः प्रणामश्चास्य दण्डवत् ।
पद्मबीजभवा माला जपकर्मणि कीर्तिता ।।८४।।

यह विशेष रूप से कहा गया, ब्रह्मा का विशेष प्रणाम, दण्डवत कहा गया है। कमल के बीज (कमलगट्टे) से बनी माला, इनके जपकर्म के लिए कही गई है।।८४।।

पूर्णादर्शौ तिथी ग्राह्यौ पूजाकर्मणि सर्वदा ।
क्षीरेणार्घं प्रदद्यात् तु सर्वदा ब्रह्मणे नृप ।।८५।।

हे राजन् ! ब्रह्मा के पूजन में सदैव पूर्णिमा और अमावस्या तिथियों को ग्रहण करना चाहिये तथा ब्रह्मा के लिए दूध से, अर्घ-प्रदान करना चाहिये।।८५।।

अयं ते कथितो भूप यथा भर्गेण भाषितः ।
दर्शयता स्वपुत्राभ्यां कामरूपाह्वयं शुभम् ।।८६।।

हे राजन् ! यह मेरे द्वारा आपसे वह सब कहा गया जो भगवान् शिव ने अपने पुत्रों से, सुन्दरकामरूप क्षेत्र का का परिचय देते हुये, कहा था॥८६॥

यत्र-तत्र विधिश्चैव साधकः परिपूजयेत् ।
पीठे सम्यक् पूजयित्वा परं निर्वाणमाप्नुयात् ॥८७॥

जहाँ के लिए जो विधि निर्दिष्ट है, साधक को वहाँ उसी के अनुसार पूजन करना चाहिये। पीठ पर विधिपूर्वकपूजन करके साधक परंनिर्वाण प्राप्त करता है॥८७॥

॥ वैष्णवपूजाविधि ॥

कथिता ब्रह्मणः पूजा पूजनं श्रृणु वैष्णवम् ।
बीजं तु वासुदेवस्य पुरैव प्रतिपादितम् ॥८८॥

मेरे द्वारा ब्रह्मा की पूजा कही गई, अब आप वैष्णवपूजा (विष्णु की पूजा) के विषय में सुनो। वासुदेव का बीजमन्त्र तो पहले ही कहा गया है॥८८॥

तदङ्गमन्त्रं राजेन्द्र द्वादशाक्षरमुच्यते ।
नमो भगवते पूर्वं वासुदेवाय वै परम् ॥८९॥
अङ्गमन्त्रमिदं चैव वासुदेवाय कीर्तितम् ।
अस्य प्रत्यङ्गरूपं तु दधिवामनसंज्ञकम् ॥९०॥

हे राजेन्द्र ! उनका बारहअक्षरोंवाला अङ्गमन्त्र ॐ नमो भगवते पहले कहकर तत्पश्चात् वासुदेवाय लिखने से बना **ॐ नमो भगवते वासुदेवाय** है । यही वासुदेव का अङ्गमन्त्र कहा गया है। भगवान् विष्णु का प्रत्यङ्गरूप **दधिवामन** नाम का है॥८९-९०॥

तस्य मन्त्रं नरश्रेष्ठ शम्भुना भाषितं श्रृणु ।
ॐ नमो विष्णवे पूर्वपदं तस्य प्रकीर्तितम् ॥९१॥
पदं च सुरपतये चतुर्थ्यन्तं महाबलम् ।
स्वाहान्तं हृदयासन्नं प्रत्यङ्गवैष्णवं मतम् ॥९२॥

हे नरश्रेष्ठ ! अब आप शिव के द्वारा कहा गया, उनका मन्त्र सुनो। ॐ नमो विष्णवे शब्द उसका पहला पद कहा गया है तत्पश्चात् सुरपतये शब्द, तब चतुर्थीविभक्ति से महाबल शब्द महाबलाय हृदय (नमः) से युक्त तथा अन्त में स्वाहा से समन्वित **"ॐ नमो विष्णवे सुरपतये महाबलाय नमः स्वाहा"** यह भगवान् विष्णु का प्रत्यङ्गमन्त्र कहा गया है ॥९१-९२॥

मन्त्रत्रयं तु यो वेद बीजं प्रत्यङ्गसंज्ञकम् ।
स पुमान् देवकायस्तु न स भूयोऽभिजायते ॥९३॥

जो बीज से लेकर प्रत्यङ्गपर्यन्त उपर्युक्त तीनों मन्त्रों को जानता है, वह पुरुष देव-शरीर को प्राप्त करता है और उसका पुनर्जन्म नहीं होता॥९३॥

सर्वं उत्तरतन्त्रोक्तः क्रमो ग्राह्यः प्रपूजने ।
त्रिषु मंत्रेषु च सदा विशेषं शृणु भूपते ।।९४।।

हे भूपति ! तीनों मन्त्रों के साथ सदा, सबजगह पूजन में उत्तरतन्त्र में कहा गया क्रम ही ग्रहण करना चाहिये । यहाँ जो विशेष करणीय है उसे सुनिये ।।९४।।

रूपं तु बीजमन्त्रस्य प्रथमं शृणु भूपते ।
पूर्णचन्द्रोपमः शुक्लः पक्षिराजोपरिस्थितः ।।९५।।
चतुर्भुजः पीतवस्त्रैस्त्रिभिः संवीतदेहभृत् ।
दक्षिणोर्ध्वे गदां धत्ते तदधो विकचाम्बुजम् ।।९६।।
वामोर्ध्वे चक्रमत्युग्रं धत्तेऽधः शङ्खमेव च ।
श्रीवत्सवक्षाः सततं कौस्तुभं हृदि चांशुमत् ।।९७।।
धत्ते कक्षे ह्यधोवामे तूणीरं बाणपूरितम् ।
दक्षिणे कोषगं खड्गं नन्दकं सशरासनम् ।।९८।।
शीर्षे किरीटं सूद्योतं कर्णयोः कुण्डलद्वयम् ।
आजानुलम्बिनी चित्रां वनमालां गले स्थिताम् ।।९९।।
दधानं दक्षिणे देवीं श्रियं पार्श्वे तु बिभ्रतम् ।
सरस्वतीं वामपार्श्वे चिन्तयेद् वरदं हरिम् ।।१००।।

हे राजन् ! बीजमन्त्र की साधना में प्रयुक्त भगवान् विष्णु का रूप (ध्यान) पहले सुनो–वे विष्णु, पूर्णचन्द्रमा के समान श्वेतवर्ण के हैं, वे पक्षियों के राजा गरुड़ पर विराजमान हैं । वे चारभुजाओं से युक्त हैं तथा उन्होंने अपने शरीर को तीन पीलेवस्त्रों से भलीभाँति ढँक रखा है। वे अपने ऊपरी दाहिनेहाथ में गदा एवं उसके नीचे खिला हुआ कमल, बायें ऊपरी हाथ में अत्यन्तउग्र चक्र और नीचे शङ्ख, धारण किया है । वे निरन्तर, हृदय में श्रीवत्स व चमकती हुई कौस्तुभमणि तथा अपने बायें पार्श्व में नीचे की ओर बाणों से भरा तरकस व दाहिनी ओर म्यान में नन्दक नामक खड्ग और धनुष रखे हुये हैं । उन्होंने मस्तक पर सुन्दर चमकता हुआ मुकुट तथा कानों में दो कुण्डल, गले में घुटनों तक लम्बी रङ्गबिरङ्गी वनमाला धारण की है। दाहिने- पार्श्व में श्री देवी (लक्ष्मी) तथा बायेंपार्श्व में सरस्वती से विभूषित वरदायक ऐसे विष्णु का ध्यान करे।।९५-१००।।

बीजमन्त्रस्य रूपं च कथितं तव पार्थिव ।
द्वादशाक्षरमन्त्रस्य रूपमेतच्छृणुष्व मे ।।१०१।।

हे राजन् ! बीजमन्त्र सम्बन्धी भगवान् विष्णु का ध्यान आपसे कहा गया अब आप द्वादशाक्षरमन्त्र से सम्बन्धित ध्यान को मुझसे सुनें।।१०१।।

नीलोत्पलदलश्यामं तथैव च चतुर्भुजम् ।
दक्षिणोर्ध्वस्थितं पद्मं गदां चाधः प्रयोजयेत् ।।१०२।।

वामेऽधश्चक्रमतुलमूर्ध्वे शंखं च विभ्रतम् ।
चिन्तयेद् वरदं देवं सर्वमन्यच्च पूर्ववत् ।।१०३।।

नीलेकमल के समान श्यामशरीर और वैसी ही चारभुजाओं से युक्त, जिनमें दक्षिण की ऊपरी भुजा में कमल तथा नीचे गदा, बायें निचले हाथ में अतुलनीय चक्र और ऊपरी हाथ में शंख धारण किये हुये वरदायक भगवान् विष्णु का ध्यान करे। अन्य सब कुछ पहले बताये बीजमन्त्र की भाँति ही जाने।।१०२-१०३।।

अष्टादशाक्षरस्यास्य प्रत्यङ्गस्य च चिन्तनम् ।
श्रृणु राजनन्वहितो दारिद्र्यभयनाशनम् ।।१०४।।

हे राजन् ! दरिद्रता के भय का नाश करने वाले इन (भगवान् विष्णु) के अठारह अक्षरों के प्रत्यङ्ग मन्त्र सम्बन्धी चिन्तन (ध्यान) के विषय में मुझसे सुनो।।१०४।।

पूर्णेन्दुसदृशं कान्त्या शुक्लवर्णं विचिन्तयेत् ।
करे विचिन्तयेद् वामे पीयूषापूरितं घटम् ।।१०५।।
दध्यन्नखण्ड संयुक्तं दक्षिणे स्वर्णभाजनम् ।
पद्मासनगतं देवं चन्द्रमण्डलमध्यगम् ।।१०६।।
शुक्लवस्त्रधरं देवं प्रमाणाद् वामनं सदा ।
ईषद्धाससमायुक्तं त्रिलोकेशं त्रिविक्रमम् ।
चिन्तयेद् वरदं देव सर्वकामफलप्रदम् ।।१०७।।

कान्ति की दृष्टि से पूर्णचन्द्रमा के समान शुक्लवर्ण का उनका ध्यान करे । उनके बायेंहाथ में अमृत से पूरीतरह भरा हुआ घट, दाहिने हाथ में दही और भात से भरास्वर्णपात्र, चन्द्रमण्डल के मध्य पद्मासन पर विराजमान, श्वेतवस्त्रधारण किये हुये, आकार के मान से सदैव वामनरूप, थोड़ी हँसी से युक्त, तीनलोकों के स्वामी, सभी भक्तों की कामनाओं को फल देने वाले, वरदायक, त्रिविक्रमदेव भगवान् विष्णु का, ध्यान करना चाहिये।।१०५-१०७।।

दहनप्लवनादौ च पूर्वतन्त्रोदिता यथा ।
तथा मन्त्राः परिग्राह्यास्तथा चोत्तरतन्त्रगाः ।।१०८।।

इन मन्त्रों का दहन-प्लवन आदि कार्य पहले के तन्त्रों में जैसा बताया गया है वैसे ही करना चाहिये। उत्तरतन्त्र में बताये मन्त्रों को ही ग्रहण करना चाहिये।।१०८।।

मण्डलस्य क्रमं तस्य श्रृणु भर्गेण भाषितम् ।।१०९।।

हे राजन् ! अब शिव द्वारा कहे गये इनके मण्डलक्रम को सुनो।।१०९।।

रेखया नित्यपूजासु रजोभिः पंचभिस्तथा ।
नैमित्तिके यथा कार्यं भेदाभेदेन साम्प्रतम् ।।११०।।

नित्य की पूजा में पाँचरङ्ग के रजकणों की रेखाओं से तथा नैमित्तिक कार्यों में कार्यभेद के अनुसार, यथोचित मण्डलनिर्माण करना चाहिये।।११०।।

हस्तमात्रं चतुर्द्वारं वर्तुलाम्बुजसन्निभम्।
चतुष्कोणे चतुर्भिस्तु शङ्खैर्युक्तं मनोहरम् ।।१११।।
बद्धद्वारं दिक्पतीनामायुधैः करणैस्तथा ।
अष्टासु दिक्षु निहितं सवहिर्वेष्टपद्मकम् ।।११२।।

एक हाथमात्र में चतुष्कोणमण्डल बनाये जो चारद्वारों से युक्त एवं एक कमल के समान वृत्ताकार हो, चारो कोनों पर शङ्खों से युक्त, सुन्दर दिक्पालों के आयुध एवं उपकरणों से आठों दिशाओं से घिरा हुआ, बाहर से कमल से घिरा हो॥१११-११२॥

एवं यथा रजोभिस्तु कार्यं तच्छृणु पार्थिव ।
सितैः पीतैस्तथा रक्तैः श्यामैश्च हरितैः क्रमात् ।
रजोभिर्मण्डलं कुर्यादन्यथा न समाचरेत् ।।११३।।

हे राजन् ! ऐसा जिस प्रकार के रजकणों से करना चाहिये, वह सुनो-क्रमशः सफेद, पीला, लाल, काला एवं हरे चूर्ण से मण्डल बनाना चाहिये । इससे अन्यथा नहीं करना चाहिये॥११३॥

चतुर्हस्तं त्रिहस्तं च द्विहस्तं हस्तमात्रकम् ।।११४।।
सर्वत्र मण्डलं कुर्याद् यथोक्तं वाधिकं पुनः ।
राजसूयाश्वमेधादौ चतुर्हस्ताधिकं मतम् ।।११५।।

चार हाथ, तीन हाथ, दो हाथ या एक हाथ मान का या अधिक मान का सर्वत्र यथोचित मण्डल बनाना चाहिये किन्तु राजसूय-अश्वमेध आदि यज्ञों में चार हाथ से अधिक माप का मण्डल बनाना चाहिये॥११४-११५॥

कल्पानतिक्रमाद् भूप यथोक्तं यत्र यत्र च ।
दिक्पालायुधपद्मानां पूर्ववल्लिखनक्रमः ।।११६।।

हे राजन् ! कल्पों, पूजाविधियों का अतिक्रमण बिना किये जहाँ जैसा बताया गया है, वहाँ वैसा ही दिक्पालों के अस्त्रों और पद्मों का पहले ही की भाँति लेखन करना चाहिये॥११६॥

सितै रजोभिः कर्तव्यं मध्ये पद्मं सुवर्तुलम् ।
कर्णिका पीतवर्णस्य केशराग्रं तथारुणम् ।
रक्तैः पीतैः पूरयेत् तु बहिः पद्मस्य सर्वतः ।।११७।।

सफेदचूर्ण से मध्य में गोलाकार कमल बनाना चाहिये । इसकी कर्णिका में पीले, केशरों का अगला भाग लालरङ्ग के, कमल के बाहर सब ओर लालपीले रङ्ग के चूर्ण से भरे॥११७॥

वज्रं शक्तिं लोहदण्डं खड्गं पाशाङ्कुशं गदाम् ।
शूलमष्टदिगीशानामायुधानि कमात पुनः ।।११८।।

वज्र, शक्ति, लोहदण्ड, खड्ग, पाश, अङ्कुश, गदा, शूल ये क्रमशः इन्द्रादि आठ दिक्पालों के आठ आयुध कहे गये हैं॥११८॥

शम्भुर्गौरी तथा ब्रह्मा रामः कृष्णस्तथैव च।
एतास्तु सततं पूज्याः संस्थिताः पञ्चदेवताः ।।११९।।

शिव, गौरी, ब्रह्मा, राम, कृष्ण इन पाँचो संस्थित देवताओं का पूजन करना चाहिये॥११९॥

न कदाचिदधः कुर्याच्छम्भुगौर्योर्वियोजनम्।
वियोगे तु कृता पूजा निष्फला तस्य जायते ।।१२०।।
विच्छिन्नं मूर्ध्नि भूतं तु पूजितं शक्तमेव च ।।१२१।।

कभी भी नीचे की ओर (अर्घे के रूप में) स्थित शिव-पार्वती को एक दूसरे से अलग नहीं करना चाहिये। जो पूजा इन दोनों को अलग करके की जाती है, वह निष्फल हो जाती है। इन्हें अलगकर की हुई मूर्ध्निभूत (श्रेष्ठ) पूजा भी सीमित (अपूर्ण) ही रहती है॥१२०-१२१॥

न्यासे तु मण्डलस्यास्य रजोदोषं विवर्जयेत्।
सर्वत्र मण्डलं कार्यं वासुदेवस्य पूजने।
एवमेव नृपश्रेष्ठ निष्फलं चान्यथेतरत् ।।१२२।।

इस मण्डल के निर्माण में रजो-दोष (आटे के दोष) को हटाना चाहिये। वासुदेव (विष्णु) के पूजन हेतु सब जगह मण्डल का निर्माण करना चाहिये। हे राजाओं में श्रेष्ठ! इसी प्रकार वासुदेव का पूजन करे, इससे अन्यथा करने पर पूजा निष्फल हो जाती है॥१२२॥

बलभद्रश्च कामश्च ह्यनिरुद्धस्तदुद्भवः।
नारायणस्तथा ब्रह्मा विष्णुः षष्ठः प्रकीर्तितः ।।१२३।।
नरसिंहो वाराहश्च योगिन्नोऽष्टौ प्रकीर्तिताः ।।१२४।।

बलभद्र, काम और उससे उत्पन्न अनिरुद्ध, नारायण, ब्रह्मा तथा विष्णु ये छः तथा नरसिंह और वाराह ये आठ योगी कहे गए हैं ॥१२३-१२४॥

पूर्वाद्यष्टदलेश्वेतान् रूपतो मन्त्रतः पृथक्।
पूजयेत् कर्णिकामध्ये वासुदेवं तु नायकम् ।।१२५।।

पूर्व आदि के आठ-श्वेतदलों में अलग-अलग ध्यान और मन्त्रों से इनका पूजन तथा कमल की कर्णिका के मध्य में वासुदेव का नायक के रूप में पूजन करे॥१२५॥

विमला नायिका तस्य वासुदेवस्य कीर्तिता।
बलभद्रमुखानां तु योगिनीः शृणु पार्थिव ।।१२६।।

हे राजन् ! उन वासुदेव की नायिका विमलादेवी कही गई हैं। अब बलभद्र आदि की योगिनियों के विषय में सुनो।।१२६।।

आदावुत्कर्षिणी ज्ञेया ज्ञाना पश्चात् क्रियापरा ।
योगा प्रह्वी तथैशानी अनुग्राही तथाष्टमी ।।१२७।।

इनमें पहली उत्कर्षिणी तत्पश्चात् क्रमशः ज्ञेया, क्रिया, योगा, प्रह्वी तथा ऐशानी और अनुग्राही, ये आठ योगिनियाँ हैं ।।१२७।।

सर्वाश्चतुर्भुजाः प्रोक्ताः शङ्खचक्रगदाधराः ।
योगिनो बलभद्रं तु कामं विधिमृते तथा ।।१२८।।

बलभद्र, काम तथा ब्रह्मा को छोड़कर सभी पूर्वोक्त योगी, चार भुजाओं वाले तथा शङ्ख-चक्र-गदाधारी बताये गये हैं।।१२८।।

विधेरूपे तु पूर्वोक्तं हलं च मुषलं बलः ।
खड्गं चक्रं च धत्ते यो गदां पार्श्वे स्थितां सदा ।।१२९।।

विधाता (ब्रह्मा) का रूप पहले ही कहा गया है तथा बलभद्र, हल एवं मुषल खड्ग और चक्र धारण करते हैं तथा गदा उनके पार्श्वभाग में सदैव रखी रहती है।।१२९।।

कामस्तु पुष्पकोदण्डं धत्ते वामेन पाणिना ।
गदां चक्रं च पुष्पं च धत्तेऽन्यैः पाणिभिः पुनः ।
पार्श्वे पद्मं तथा धत्ते सर्वमन्यच्च पूर्ववत् ।।१३०।।

कामदेव अपने बायें हाथ में पुष्प का बना धनुष तथा अन्य हाथों में इसके अतिरिक्त गदा, चक्र एवं पुष्प धारण करते हैं । उनके पार्श्व में पद्म रहता है तथा अन्य सब पहले की ही भाँति होता है।।१३०।।

चक्रं शङ्खो वाराहस्य दक्षिणे परिकीर्तितौ ।
नृसिंहस्य पुनश्चक्रशङ्खौ दक्षिणवामयोः ।।१३१।।

चक्र और शङ्ख वाराह के दाहिने हाथों में तथा नृसिंह के दाहिने हाथ में चक्र और बायें में शङ्ख होता है।।१३१।।

शङ्खं पद्मं तथा विष्णोः पाण्योर्दक्षिणयोः स्थितम् ।।१३२।।
शङ्खो गदा वामतस्तु नारायणकरस्थितौ ।
दक्षिणाधो गदां धत्ते ह्यनिरुद्धो नरोत्तम ।।१३३।।

हे नरों में उत्तम् ! विष्णु के दाहिने हाथ में शङ्ख तथा पद्म, नारायण के बायें हाथ में शङ्ख और गदा रहती है तथा अनिरुद्ध दाहिनी ओर के निचले हाथ में गदा धारण करते हैं।।१३२-१३३।।

सितरक्तस्तथा पीतो भिन्नाञ्जननिभस्तथा ।
नीलोत्पलदलश्यामस्तथा रक्तघनप्रभः ।।१३४।।

भ्रमरश्यामलः पिङ्गः सुवर्णगौरः क्रमादिमे ।
वर्णतो योगिनः प्रोक्ता वासुदेवस्य पार्थिव ।।१३५।।

हे राजन् ! श्वेत, लाल, पीला, अञ्जन के टुकड़े के समान आभावाला (काला), नीलेकमल की पंखुड़ियों की भाँति नीला, लालबादल की प्रभा वाला, भौरे की तरह काला, पिङ्ग (पीताभ), सुनहले गोरे रङ्ग के भगवान् विष्णु के बलभद्रादि क्रमशः आठयोगी, कहे गये हैं।।१३४-१३५।।

यादृग्वर्णश्च ध्यानं च यस्य यस्य च योगिनः ।
तादृशीर्योगिनीस्तस्य चिन्तयेत् तत् समीपगाः ।।१३६।।

जिस योगी का जो रङ्ग और ध्यान बताया गया है उसी प्रकार की उनकी समीपवर्ती योगिनियों का भी चिन्तन करना चाहिये।।१३६।।

आधारशक्तिप्रमुखाः सर्वा आसनदेवताः ।
ग्रहाश्च सर्वे दिक्पाला ध्यानतो मन्त्रतस्तथा ।
पूजनीया यथोद्देशे मण्डलस्य क्रमान्नृप ।।१३७।।

हे राजन् ! आधारशक्ति आदि सभी आसनदेवताओं, ग्रहों, दिक्पालों का मण्डल के यथोचित स्थानों पर, निर्दिष्ट ध्यान एवं मन्त्र के द्वारा क्रमशः पूजन करना चाहिये।।१३७।।

देवस्य चिन्तितं यद् यच्छरीरे कमलादिकम् ।
धृतास्त्रं वज्रशक्त्यादिगरुडादींश्च पूजयेत् ।।१३८।।

देव (भगवान् विष्णु) के चिन्तन में जिन-जिन रूपों में कहा है, कमल, वज्र, शक्ति आदि धारण किये अस्त्रों एवं गरुड़ आदि का पूजन करे ।।१३८।।

वर्णमालां शम्भुमतामासाद्य क्रमयोगतः ।
आद्यद्वितीयक्रमतो गदादीनां तु मंत्रकम् ।।१३९।।
पञ्चरात्रोदिते भागे नारदेन यथोदिताः ।
मंत्राश्चक्रगदादीनां ग्राह्याः सर्वत्र पूजने ।।१४०।।

क्रमयोग में शिवद्वारा प्रतिपादित, वर्णमाला व गदा आदि के मन्त्रों का प्रथम-द्वितीय के क्रम से अथवा नारद द्वारा पञ्चरात्रदर्शन में कहे क्रम से, पूजन में सर्वत्र, चक्र, गदा आदि के मन्त्रों को ग्रहण करना चाहिये।।१३९-१४०।।

गरुत्मान् सूर्यसङ्काशो गदा कृष्णायसी पुनः ।।१४१।।
सरस्वती शुक्लवर्णा लक्ष्मीर्हेमप्रभा सदा ।
मध्याह्नसूर्यप्रतिमं चक्रं तु परिकीर्तितम् ।।१४२।।

सदा गरुड़ सूर्य के समान, गदा काले लोहे की, सरस्वतीदेवी श्वेतवर्ण की, लक्ष्मी सुनहरी प्रभा से युक्त और चक्र, मध्याह्नकालिकसूर्य के समान, कहे गये हैं।।१४१-१४२।।

सम्पूर्णचन्द्रप्रतिमः शङ्खास्तु परिकीर्तितः ।
कौस्तुभो ह्यरुणः प्रोक्तः श्रीवत्सो ह्यरुणद्युतिः ।।१४३।।

शंखसम्पूर्ण चन्द्रमा के समान श्वेत कहा गया है। लालरङ्ग की कौस्तुभमणि तथा श्रीवत्स भी लाल ही आभावाला कहा गया है ।।१४३।।

आरक्तकौस्तुभो ज्ञेयो माला चित्रा प्रकीर्तिता ।
विद्युत् प्रभा सर्वबाणाः शक्रचापप्रभं धनुः ।।१४४।।

कौस्तुभमणि को लाल रङ्ग का जानना चाहिये, वनमाला रङ्गबिरङ्गी कही गई है। उनके सभी बाण, बिजली के समान चमक वाले और धनुष, इन्द्रधनुष के समान आभावाला कहा गया है।।१४४।।

स्वर्णचूर्णप्रकाशं तु वस्त्रमस्य प्रकीर्तितम् ।
बालसूर्यप्रतीकाशे कुण्डले द्वे श्रवोगते ।
सूर्यस्य सदृशं शीर्षे किरीटं परिकीर्तितम् ।।१४५।।

उनका वस्त्र, स्वर्णचूर्ण के समान आभावाला कहा गया है, उनके दोनों कानों में स्थित कुण्डल, बाल (नये उगते) सूर्य के समान एवं सिर पर स्थित मुकुट, सूर्य के समान कहा गया है।।१४५।।

शृणु न्यासं ततो भूप यैर्न्यासैर्विष्णुरूपधृक् ।
साधको हि भवेन्नित्यं स्वर्गमोक्षप्रदायकम् ।।१४६।।

हे राजन् ! अब उस न्यास के विषय में सुनो जिसे करके साधक, स्वयं विष्णुरूप धारण कर नित्य, स्वर्ग और मोक्ष प्रदान करने में समर्थ हो जाता है।।१४६।।

न्यासं तु प्रथमं कुर्यान्मन्त्रविद् द्वादशाक्षरैः ।।१४७।।
वासुदेवस्य बीजेन बीजं चैवाथ योगिनाम् ।
ततो न्यसेन्महामन्त्रे ततश्चाष्टादशाक्षरैः ।।१४८।।

मन्त्रवेत्ता साधक को सर्वप्रथम द्वादशक्षरों से न्यास करना चाहिये तब वह वासुदेवबीज एवं उनके योगियों के बीजमन्त्रों से तत्पश्चात् अष्टादशाक्षरमन्त्र के अक्षरों से न्यास करे।।१४७-१४८।।

ततस्तु हृदयादीनां षड्भिर्मन्त्रैर्द्विधा पुनः ।
एवं चतुर्भिर्न्यासैस्तु पूजामेकां समाचरेत् ।।१४९।।

तदनन्तर हृदय आदि का छः मन्त्रों से दोबार न्यास (अङ्गन्यास एवं करन्यास) करे । इस प्रकार उपर्युक्त चारो-न्यासों के करने के पश्चात् एक पूजन सम्पन्न करे।।१४९।।

प्रथमं दक्षिणाङ्गुष्ठे न्यसेदाद्यक्षरं बुधः ।
द्वादशाक्षरमन्त्रस्य शेषबीजानि तु क्रमात् ।।१५०।।

तर्जन्यादौ दक्षिणस्य वामाङ्गुष्ठान्तमेव च ।
शेषाक्षरद्वयं पश्चाद् न्यसेत् पाणितलद्वये ।।१५१।।

पहले द्वादशाक्षर मन्त्र के प्रथम अक्षर का विद्वान् साधक अपने दाहिने अँगूठे पर न्यास करे तब अन्य बीजमन्त्रों का भी क्रमशः न्यास करे । इस क्रम में पहले दाहिने हाथ की तर्जनी से प्रारम्भ कर बाएँ अँगूठे के अन्त तक अक्षरों का न्यास करे। अन्त में शेष दो अक्षरों का दोनों हथेलियों में न्यास करे।।१५०-१५१।।

हृदि शीर्षे शिखायां च स्कन्धयोर्दृक्पिचण्डयोः ।
पृष्ठे तु भुजयोः पाण्योर्जंघयोः पादयोः क्रमात् ।
द्वादशाक्षरमन्त्रस्य बीजानि च ततो न्यसेत् ।।१५२।।

हृदय, सिर, शिखा, दोनोंकन्धों, नेत्र, दोनों पिचण्ड (पेट), पीठ, दोनों-भुजाओं, हाथों, टखनों तथा पैरों में न्यास करे तत्पश्चात् द्वादशाक्षर मन्त्र के बीजाक्षरों का क्रमशः न्यास करे।।१५२।।

अङ्गुष्ठयोस्तु प्रथमं वासुदेवस्य तत्त्वकम् ।
तर्जन्यादौ योगिनां तु बीजान्यष्टौ द्वयोर्न्यसेत् ।।१५३।।

पहले दोनों अँगूठों में वासुदेवतत्त्व से तथा दोनों हाथों की तर्जनी आदि आठ अंगुलियों में बलभद्रादि आठ योगियों के बीजों का न्यास करे ।।१५३।।

शिरोदृगास्यकण्ठोरोनाभिगुह्येशेषु जानुनोः ।
पादयोर्वासुदेवस्य योगिबीजानि विन्यसेत् ।।१५४।।

शिर, नेत्र, मुँह, कण्ठ, ऊरु, नाभि, गुह्य, घुटनों, तथा पैरों में वासुदेव और उनके योगियों के बीजमन्त्र का न्यास करे।।१५४।।

मन्त्राणि हृदयादीनां यान्युक्तानि पुरा नृप ।
तानि न्यस्याङ्गुष्ठमूलेऽङ्गुलीजाते द्वये द्वये ।।१५५।।
वामदक्षिणपाण्योस्तु शेषं तु तलयोर्न्यसेत् ।
हृदयाद्यस्त्रपर्यन्तं पुनस्तानि क्रमान्न्यसेत् ।।१५६।।

हे राजन् ! हृदयादि के जो मन्त्र पहले कहे गये हैं उन्हें दोनों बायें हाथों के अँगूठे की जड़ों तथा अङ्गुलियों के जड़ों में न्यास करे । शेष का बायें और दाहिने हाथ के तलों में न्यास करे । हृदय से अस्त्रपर्यन्त पुनः उन्हीं मन्त्रों से न्यास करके अङ्गन्यास को क्रमशः सम्पन्न करे।।१५५-१५६।।

अष्टादशाक्षरस्यादिनववर्णान् न्यसेद् बुधः ।
शिरोनेत्रादिपूर्वोक्ते नवबीजस्य गोचरे ।।१५७।।
शेषान् वर्णान श्रवणपार्श्वबस्तिषु शेफसि ।
कट्यामूर्वोर्जङ्घयोश्च न्यसेत् पादाङ्गुलीषु च ।।१५८।।

विद्वान् साधक अष्टादशाक्षरमन्त्र के प्रारम्भ के नववर्णो का क्रमशः पहले कहे सिर-नेत्र आदि नवस्थानों पर बीजन्यास करे एवं शेष नववर्णों का श्रवण, पार्श्व, वस्ति, शेफ (लिङ्ग), कटि, ऊरु (जङ्घे) आदि स्थानों एवं पैरों की अङ्गुलियों में न्यास करे॥१५७-१५८॥

यस्य मन्त्रस्य या पूजा तन्त्रैस्तु यत्र चोदिता ।।१५९।।
तस्य तन्त्रस्य तत्रैव न्यासं मन्त्री समाचरेत् ।
अथ चैकत्र सर्वेषां न्यासं कुर्याद् विचक्षणः ।।१६०।।

जिस मन्त्र से जो पूजा, जिन तन्त्रों में जहाँ बतायी गई है, उस तन्त्र के मन्त्र से उसी स्थान पर, मन्त्री (मन्त्रवेत्ता) को न्यास करना चाहिये । इसके बाद विचक्षणसाधक सभी न्यासों को एक साथ करे॥१५९-१६०॥

चतुर्विधैः कृतैर्न्यासैः पूतात्मा धूतकल्मषः ।
साक्षाद् विष्णुर्भवेन्मन्त्री सम्यक् पूजाफलं लभेत् ।।१६१।।

उपर्युक्त चारप्रकार के न्यासों के करने से मन्त्रवेत्तासाधक, अपने पापों से रहित हो, पवित्र आत्मा हो, साक्षात् विष्णुरूप हो जाता है और उसे भली-भाँति पूजा करने का फल प्राप्त होता है॥१६१॥

विनापि पूजनं यस्तु न्यासं कुर्याच्चतुर्विधम् ।
स धीरो विष्णुसायुज्यमाप्नोति परमं पदम् ।।१६२।।

बिना पूजन के भी जो साधक उपर्युक्त चारप्रकार के न्यासों को करता है वह धीरपुरुष, विष्णु का सायुज्य प्राप्त कर परमपद को प्राप्त करता है ॥१६२॥

योगपीठं ततो ध्यात्वा गरुडं चक्रं शङ्खं च ।
गदां लक्ष्मीं तथा पद्मं क्रमादेतेषु विन्यसेत् ।।१६३।।
पूर्वदक्षिणकौबेरपश्चात् कोणेषु वै क्रमात् ।
दक्षिणेचोत्तरे वापि विन्यसेन्मन्त्रविद् बुधः ।।१६४।।

मन्त्रवेत्ता विद्वान् साधक, पहले योगपीठ का ध्यान करे तत्पश्चात् उनकी पूर्व दिशा में गरुड़का, दक्षिण में चक्र का, उत्तर में शङ्ख का, पश्चिम में गदा, दक्षिण में लक्ष्मी और उत्तर में कमल का क्रमशः न्यास करे॥१६३-१६४॥

वनमालां पद्ममध्ये श्रीवत्सं कौस्तुभं मणिम् ।
विन्यस्य दक्षिणे तस्य न्यसेच्छार्ङ्गं शरासनम् ।।१६५।।
तूणीरयुगलं वामे खड्गं दक्षिणतो न्यसेत् ।
वामे चर्मनिधायाशु तत्र कुर्यात् सरस्वतीम् ।।१६६।।

पीठ पर कमल के मध्य में ही वनमाला, श्रीवत्स और कौस्तुभमणि का न्यास कर, उसके दाहिनेभाग में शार्ङ्गधनुष, बाएँभाग में दो तरकस तथा पुनः दाहिने भाग में

खड्ग का न्यास कर, बायें ढाल को रखकर, वामभाग में ही सरस्वती का न्यास करे॥१६५-१६६॥

पूजयित्वा च सर्वाणि ततो मुद्रां प्रदर्शयेत् ।
मुद्राः पुटाद्या याः प्रोक्ता विष्णुर्यश्चापि योगिनाम् ।
ग्रहाणां दिक्पतीनां च मुद्रास्ता दर्शयेत् पृथक् ।।१६७।।

इन सबकी पूजा करके साधक मुद्राओं का प्रदर्शन करे विष्णु और उनके योगियों, ग्रहों दिक्पालों की जो पुटादि मुद्रायें पहले कही गई हैं, उनका अलग-अलग प्रदर्शन करे॥१६७॥

शेषमन्त्राः पुरा प्रोक्ता अच्छिद्रस्यावधारणे ।
तन्मन्त्रान् संपठित्वैव सूर्यायार्घ्यं निवेदयेत् ।।१६८।।

अच्छिद्र (दोष के दूरीकरण) के निर्धारण के प्रसङ्ग में पहले ही जो शेषमन्त्र कहे गये हैं, उन्हीं मन्त्रों को पढ़कर सूर्य को अर्घ्य प्रदान करे॥१६८॥

निर्माल्यधारी विष्णोस्तु विष्वक्सेनश्चतुर्भुजः ।।१६९।।
शङ्खश्चक्रगदापाणिर्दीर्घश्मश्रुजटाधरः ।
रक्तपिङ्गलवर्णस्तु सितपद्मोपरिस्थितः ।।१७०।।

विष्णु का निर्माल्य धारण करने वाले देवता विष्वक्सेन कहे गये हैं जो स्वयं चार भुजाओं से युक्त हैं । वे अपने हाथों में शङ्ख, चक्र, गदा धारण करते हैं। वे लम्बी दाढ़ी और जटा धारण करते हैं। उनके शरीर का रङ्ग पीलापन लिए हुए लाल है तथा वे श्वेतकमल पर विराजमान हैं॥१६९-१७०॥

यत् तृतीयस्वरान्तेन संयुक्तो बिन्दुनेन्दुना ।
कीर्तितस्तस्य मन्त्रोऽयं तेन तं परिपूजयेत् ।।१७१।।

उनका मन्त्र य से तृतीय वर्ण (ल) अन्तिम स्वर औ और चन्द्र तथा बिन्दु से युक्त मन्त्र लौं, बताया गया है। उसी से उन विष्वक्सेन का पूजन करना चाहिये॥१७१॥

विसर्जनं तथा विष्णोरैशान्यां परिकीर्तितम् ।
अन्येषां मनसा कुर्याद् बलादीनां विसर्जनम् ।।१७२।।

विष्णु का विसर्जन, ईशानकोण में कहा गया है। बलभद्र-आदि अन्य योगियों का विसर्जन मानसिकरूप से ही करे॥१७२॥

एवं यः कुरुते पूजां विष्णोः शम्भोर्विधेःक्वचित् ।
पीठे दिक्करवासिन्याः स याति परमं पदम् ।।१७३।।

जो साधक दिक्करवासिनी देवी के स्थान में, उपर्युक्तरीति से कभी भी विष्णु-शिव या ब्रह्मा की पूजा करता है, वह परमपद को प्राप्त करता है॥१७३॥

यत्र यत्र भवेद् विष्णोः पूजनं नृपसत्तम् ।
तत्र तत्रैव तन्त्रोऽयं ग्राह्यो वै वैष्णवैर्बुधैः ।।१७४।।

हे नृपसत्तम् ! जहाँ-जहाँ भगवान् विष्णु का पूजन करे, वहाँ-वहाँ वैष्णव साधकों द्वारा इसी तन्त्र (पद्धति) को ग्रहण करना चाहिये।।१७४।।

सङ्क्षेपेणैव तत्रैव पूजयेद्दधिवामनम् ।
हृदयाद्यङ्गपूजा तु न कर्तव्याऽस्य पूजने ।
संक्षेपैर्विस्तरैर्वापि वासुदेवं प्रपूजयेत् ।।१७५।।

वहीं दधिवामन का पूजन भी संक्षेप में करना चाहिये । इनके पूजन में हृदयादि अङ्गों की पूजा नहीं करनी चाहिये। संक्षेप में हो या विस्तार से हो, वासुदेव का पूजन करना चाहिये।।१७५।।

रक्तं कौशेयवस्त्रं च पीतं शुक्लं तथैव च ।
प्रीतिदं वासुदेवस्य वस्त्रमेतत् प्रकीर्तितम् ।।१७६।।

लाल, पीले और सफेद, रेशमीवस्त्र, भगवान् विष्णु को विशेषप्रिय बताये गये हैं।।१७६।।

घृतप्रदीपो दीपेषु गन्धेषु मलयोद्भवः ।
पानार्घ्यभोज्यपात्रेषु ताम्रं प्रीतकरं मतम् ।।१७७।।

दीपकों में घी का दीपक, चन्दनों में मलयगिरि पर उत्पन्न चन्दन, पेयपदार्थों हेतु प्रयुक्त अर्घ्य, भोजन के पात्रों में ताम्रपात्र, विष्णु को विशेष प्रसन्नता देने वाले कहे गये हैं।।१७७।।

किरीटं कुण्डलं हारो भूषणं विष्णुतुष्टिदम् ।।१७८।।
शङ्खः स्नानीयपात्रेषु धूपेष्वगुरुरेव च ।
प्रीतिदो वासुदेवस्य सततं परिकीर्तितः ।।१७९।।

आभूषणों में मुकुट, कुण्डल और हार, विष्णु को सन्तुष्ट करने वाले आभूषण, स्नानयोग्यपात्रों में शङ्ख, धूपों में अगुरु, वासुदेव को निरन्तर प्रसन्नता देने वाले कहे गये हैं।।१७८-१७९।।

कदम्बं कुब्जकं जाती मल्लिका मालती तथा ।
पङ्कजं चेति पुष्पाणि तद् विष्णोः प्रीतिदान्युत ।।१८०।।

कदम्ब, कुब्जक, जाती, मल्लिका, मालती और कमल ये, विष्णु को विशेष प्रसन्नता देने वाले पुष्प हैं।।१८०।।

निर्जनं स्थण्डिलं स्थानं तीर्थं तोयमथापि वा ।
तद् विष्णोरिति मन्त्रस्तु स्तुतिः पुरुषसूक्तकम् ।।१८१।।

एकान्त स्थान में वेदी, तीर्थजल, **तद् विष्णोः**-मन्त्र, पुरुषसूक्त स्तुति कही गई है।।१८०।।

पुत्रञ्जीवोद्भवा माला प्रशस्ता विष्णुपूजने ।
तिथिश्च द्वादशी प्रोक्ता वसन्तः काल उत्तमः ।।१८२।।

विष्णुपूजन में पुत्रजीवा की माला उत्तम बताई गई है तथा द्वादशीतिथि एवं वसन्तकाल (ऋतु) उत्तम कही गई है ॥१८२॥

शाल्योदनं हविष्यान्नं यावकं पायसं घृतम् ।
कृशरान्नं तथान्नेषु पानेषु क्षीरमिष्यते ॥१८३॥

अन्नों (खाद्यपदार्थों) में शालिचावल का भात, हविष्यान्न, हलुआ, खीर, घी, खिचड़ी तथा पेयपदार्थों में दूध उन्हें प्रसन्नता देने वाले कहे गये हैं॥१८३॥

दलेषु तुलसीपत्रं वैल्वमामलमेव च ।
हरेः प्रीतिकराणि स्युरेतानि नृपसत्तम ।
सर्वाणि परकीयाणि यानि तानि च वर्जयेत् ॥१८४॥

हे राजाओं में श्रेष्ठ ! पत्तों में तुलसी, बेल या आँवले के पत्ते आदि ऊपर कहे गये पदार्थ, विष्णु को विशेष प्रसन्नता देने वाले होते हैं। इनमें जो जो भी दूसरों के पदार्थ हों उनका त्याग करना चाहिये ॥१८४॥

एवं यः पूजयेद् विष्णुं सततं नरसत्तमः ।
कुलकोटिं समुद्धृत्य स स्वयं स्याज्जनार्दनः ॥१८५॥

पुरुषों में श्रेष्ठ, जो साधक, इस प्रकार से भगवान् विष्णु का निरन्तर पूजन करता है, वह करोड़ों कुलों का उद्धार कर, स्वयं जनार्दन (विष्णु) स्वरूप हो जाता है॥१८५॥

इदं ते कथितं भूप वासुदेवस्य मन्त्रकम् ।
पीठस्य कामरूपस्य सङ्क्षेपान्निर्णयं तथा ॥१८६॥

हे राजा सगर ! यह वासुदेव का मन्त्र एवं संक्षेप में कामरूपपीठ का निर्णय तुमसे कहा गया॥१८६॥

इति सर्वं कामरूपपीठं शम्भुरदर्शयत् ॥१८७॥
पुत्राभ्यां स पुनस्ताभ्यां कैलासं प्रययौ गिरिम् ।
तत्र गत्वा यथायोगं निधाय तनयौ स्वकौ ॥१८८॥

इस प्रकार से भगवान् शङ्कर ने अपने पुत्रों, वेताल और भैरव को समस्त कामरूपपीठ का निदर्शन कराया तत्पश्चात् उन्हीं के साथ वे कैलाशपर्वत पर गये, वहाँ जाकर (उन्हें) अपने उन पुत्रों को यथोचित योगमार्ग में नियोजित किया॥१८७-१८८॥

विमुक्तशापास्ते जाताः शम्भुर्गिरिसुता तथा ।
वेतालो भैरवश्चेति नृपसत्तमनिर्जराः ॥१८९॥

हे राजाओं में श्रेष्ठ ! जिसके फलस्वरूप वे सभी शिव, पार्वती, वेताल और भैरव जो पहले देवता थे किन्तु शापवश मनुष्ययोनि में आये थे, शापमुक्त हो गये॥१८९॥

।। वेतालभैरवोपाख्यान-माहात्म्य ।।

इदं यो महदाख्यानं श्रृणोत्येकाग्रमानसः ।
शापभीतिर्न तस्यास्ति व्याधयस्तस्य नाधयः ।।१९०।।

इस महान् आख्यान को जो एकाग्रमन से सुनता है उसको किसी प्रकार के शाप का भय नहीं होता और न उसे किसी प्रकार के शारीरिक या मानसिक रोग ही होते हैं।।१९०।।

पुत्रपौत्रधनैश्वर्ययुक्तः सर्वत्र वल्लभः ।
सर्वकल्याणसंयुक्तो दीर्घकालं स जीवति ।।१९१।।

वह पुत्र-पौत्र, धन-ऐश्वर्य से युक्त होकर सब जगह प्रेमप्राप्त कर सभी प्रकार के कल्याणों से युक्त हो, दीर्घकाल तक जीता है।।१९१।।

कामरूपं महापीठं यो जानाति नरोत्तमः ।
स दिव्यज्ञानसम्पन्नः परं निर्वाणमाप्नुयात् ।।१९२।।

इस कामरूपमहापीठ को जो उत्तम नर (साधक) जान लेता है वह दिव्यज्ञान से युक्त हो, परंनिर्वाण को प्राप्त करता है।।१९२।।

यः कामरूपे सकले पीठयात्रां समाचरेत् ।
आसाद्य सकलान् पीठान् पूजयेत् सर्वदेवताः ।।१९३।।
दशपूर्वान् दशापरानात्मानं चैकविंशतिम् ।
दिव्ये ज्ञाने विधायाशु सर्वं मुक्तिमियात् सह ।।१९४।।

।। इति श्रीकालिकापुराणे कामरूपवर्णनेदीपवत्यादिमाहात्म्यनाम अशीतितमोऽध्यायः।।८०।।

जो समस्त कामरूपपीठ की यात्रा करता है, सभी पीठों पर जाकर सभी देवताओं का पूजन करता है । वह अपनी दश पहले की, दश बाद की और अपने को लेकर इक्कीस पीढ़ियों को, दिव्यज्ञान में लगाकर, उन सबके साथ मुक्तिप्राप्त करता है।।८०।।

श्रीकालिकापुराण में कामरूपवर्णनेदीपवत्यादिमाहात्म्यनामक अस्सीवाँ अध्याय सम्पूर्ण हुआ।।८०।।



एकाशीतितमोऽध्यायः

कामरूपमाहात्म्यवर्णनम्

।। और्व उवाच ।।

कामरूपे महापीठे स्नात्वा पीत्वा च देवताः ।
पूजयित्वा च विपुला लोकाः स्वर्गं पुरा ययुः ।
केचिद् भेजुश्च निर्वाणं केचिद् यान्ति स्म शम्भुताम् ।।१।।

और्व बोले– प्राचीनकाल में कामरूपपीठ में (स्थित तीर्थों में) स्नान, वहाँ का जल-पान, तथा पूजन करके बहुत से लोग एवं देवता, स्वर्ग को गये हैं। कुछ ने निर्वाण प्राप्त किया तो कुछ शिवत्व को प्राप्त किये।।१।।

न यमस्तान् धारयितुं नेतुं च निजमन्दिरम् ।
क्षमोऽभून्नरशार्दूल शिवाया जातसाध्वसः ।।२।।

हे मनुष्यों में सिंह ! शिवा के प्रभाव के कारण, यमराज न उन्हें रोकने में समर्थ हैं और न उन्हें अपने लोक में ही ले जाने में समर्थ हैं ।।२।।

यमदूतं तत्र यान्तं बाधन्ते शंकरा गणाः ।
न तद्भिया तत्र यान्ति यमदूताः प्रचोदिताः ।।३।।

शिव के गण यमदूतों को वहाँ जाने से रोकते हैं। उन्हीं के भय से यमदूत प्रेरित किये जाने पर भी वहाँ नहीं जाते।।३।।

तथा दृष्टवाथ शमनः स्वक्रियापरिवर्जितः ।
विधातारं समासाद्य वचनं चेदमब्रवीत् ।।४।।

इस प्रकार अपने क्रिया के रोके जाने को देखकर यमराज, विधाता के निकट जाकर ये वचन बोले—

।। यमोवाच ।।

विधातुः कामरूपेऽस्मिन्स्नात्वा पीत्वा च मानवः ।
कामाख्यागणतां याति तथा शम्भुगणेशताम् ।।५।।
तत्र मे नाधिकारोऽस्ति न तान् वारयितुं क्षमः ।
विधत्स्वात्रोचितं नीतिं युज्यते यदि गोचरे ।।६।।

यमराज बोले– हे विधाता ! इस कामरूप में स्नान करके और वहाँ का जल पीकर मनुष्य, कामाख्यादेवी के गणों की श्रेणी को तथा शिव के गणों के आधिपत्य को प्राप्त करता है । वहाँ मेरा कोई अधिकार नहीं है और न मैं उन्हें ऐसा करने से रोकने में ही सक्षम हूँ। यदि कोई उचित नीति दिखती हो तो यहाँ उसका प्रयोग करें।।५-६।।

।। और्व उवाच ।।

तस्य तद्वचनं श्रुत्वा ब्रह्मा लोकपितामहः ।
जगाम विष्णुभवनं सहैव समवर्तिना ।।७।।

और्व बोले– उसके इन वचनों को सुनकर लोकपितामह ब्रह्मा, समवर्ती (यमराज) के साथ विष्णुलोक को गये।।७।।

तमासाद्य तथा प्राह विष्णुर्वै यमभाषितम् ।
यथावत् सर्वलोकेशः स च तद्वाक्यमग्रहीत् ।।८।।

यमराज ने जैसा कहा था उसे ज्यों का त्यों लोकेश, ब्रह्मा ने उनके निकट जाकर विष्णु से कह दिया और उन्होंने ब्रह्मा के उस वाक्य को ग्रहण कर लिया।।८।।

सह ब्रह्मयमाभ्यां तु विष्णुः शम्भुं ययौ ततः ।
सत्कृतस्तेन पृष्टश्च प्राहेदं यमभाषितम् ।।९।।

तब ब्रह्मा और यमराज के साथ विष्णु, शिव के समीप गये । उनसे सम्मानित होकर तथा पूजे जाने पर उन्होंने, यमराज द्वारा कहे ये वचन कहे।।९।।

।। श्रीभगवानुवाच ।।

सर्वदेवैः सर्वतीर्थैः सर्वक्षेत्रैस्तथैव च ।
एतद् व्याप्तं कामरूपं नातोऽन्यद् विद्यते परम् ।।१०।।

श्रीभगवान् (विष्णु) बोले– यह कामरूपक्षेत्र सभी देवों, सभी तीर्थों एवं सभी क्षेत्रों से व्याप्त है, अन्य कुछ भी इससे श्रेष्ठ नहीं है।।१०।।

इदं पीठं समासाद्य देवत्वं यान्ति मानवाः ।
अमृतत्वं गणत्वं च तत्र शक्तो यमो नहि ।।११।।

इस पीठ को प्राप्तकर मनुष्य, देवत्व को प्राप्त करते हैं। वे अमरत्व और गणश्रेणी को प्राप्त कर लेते हैं। वहाँ यमराज नियन्त्रण करने में समर्थ नहीं हैं।।११।।

तथा कुरु महादेव यथा तत्र क्षमो यमः ।
यमो निरस्तो यत्रास्ति मर्यादा न प्रदृश्यते ।।१२।।

हे महादेव ! आप कुछ ऐसा करें, जिससे यमराज वहाँ नियन्त्रण स्थापित करने में समर्थ हो सकें। क्योंकि यमराज जहाँ अधिकार से निरस्त होते हैं वहाँ मर्यादा नहीं दिखाई देती ।।१२।।

।। और्वउवाच ।।

एतद् विष्णुवचः श्रुत्वा विधिना सहितस्य तु ।
अङ्गीचकार हृदये तद्वचः साध्यसाधने ।।१३।।
विसृज्य तान् ब्रह्मविष्णुयमान् वृषभवाहनः ।
आदाय स्वगणान् सर्वान् कामरूपान्तरं ययौ ।।१४।।

और्व बोले– वृषवाहनशिव ने ब्रह्मा के सहित, विष्णु द्वारा कहे इन वचनों को साध्य-साधन (पूरा करने) के लिए हृदय में धारण किया और उन ब्रह्मा, विष्णु तथा यमराज को विदाकर, वे अपने सभी गणों को साथ लेकर स्वयं कामरूपक्षेत्र में गये।।१३-१४।।

उग्रतारां ततो देवीं गणं च प्राह शङ्करः ।
उत्सारयन्तु सकलानिमाँल्लोकान् गणाः द्रुतम् ।
उग्रतारे महादेवी त्वं चाप्युत्सारय द्रुतम् ।।१५।।

तब भगवान शङ्कर ने वहाँ जाकर देवी उग्रतारा और अपने गणों से कहा— हे गणों ! तुम सब इन सभी लोगों को शीघ्र ही यहाँ से निकाल बाहर करो। हे महादेवी ! उग्रतारा आप भी शीघ्र ही इन्हें निकालें ।।१५।।

ततो गणाः कामरूपाद् देवी चाप्यपराजिता ।
लोकानुत्सारयामासुः पीठं कर्तुं रहस्यकम् ।।१६।।

तब शिवगणों और देवी अपराजिता ने भी कामरूपपीठ को रहस्यमयपीठ बनाने के लिए, लोगों को वहाँ से भगा दिया ।।१६।।

उत्सार्यमाणे लोके तु चतुर्वर्णद्विजातिषु ।
सन्ध्याचलगतो विप्रो वसिष्ठः कुपितो मुनिः ।।१७।।
सोऽप्युग्रतारया देव्या उत्सारयितुमीशया ।
गणैः सह धृतः प्राह शापं कुर्वन् सुदारुणम् ।।१८।।

द्विज आदि चारो वर्णो के लोगों के वहाँ से निकाले जाने पर, सन्ध्याचल पर स्थित, विप्र, वशिष्ठमुनि क्रोधित हो गये और गणों के सहित ईश्वरीउग्रतारादेवी द्वारा उनको भी निकालने को, पकड़े जाने पर वे भी उन्हें भयंकर शाप देते हुए बोले–।।१७-१८।।

।। वशिष्ठ उवाच ।।

यस्मादहं धृतो वामे त्वयोत्सारयितुं मुनिः ।
तस्मात् त्वं वाम्यभावेन पूज्या भव समन्त्रिका ।।१९।।

बशिष्ठ बोले—हे वामे (भगवति) ! मैं मुनि होते हुये भी तुम्हारे द्वारा हटाने के लिए पकड़ा गया हूँ, इसलिए तुम वाम-भाव से ही वाममन्त्रों के द्वारा पूजिता होओ॥१९॥

भ्रमन्ति म्लेच्छवद्यस्माद् गणानां मन्दबुद्धयः ।
भवन्तु म्लेच्छास्तस्माद्वै भवन्तः कामरूपके ॥२०॥

ये मन्दबुद्धि वाले गण जो यहाँ म्लेच्छों की भाँति घूम रहे है। सभी कामरूप में रहने वाले म्लेच्छ हों॥२०॥

महादेवोऽपि यस्मान्मां निःसारयितुमुद्यतः ॥२१॥
तपोधनं मुनिं दान्तं म्लेच्छवद् वेदपारगम् ।
तस्माद् म्लेच्छप्रियो भूयाच्छङ्करश्चास्थिभस्मधृक् ॥२२॥

महादेव शिव भी, जो मेरे जैसे तपस्वी, इन्द्रियों का दमन करने वाले, वेदपारङ्गत मुनिको, यहाँ से हटाने के लिए म्लेच्छ की भाँति उद्यत हुये हैं, वे भी म्लेच्छों के प्रिय तथा हड्डी और भस्म धारण करने वाले हों॥२१-२२॥

एतत् तु कामरूपाख्यं म्लेच्छैर्गुप्तं मदत्वरम् ।
स्वयं विष्णुर्न चायाति यावत् स्थानमिदं पुनः ॥२३॥

जब तक विष्णु स्वयं लौटकर इस स्थान पर नहीं आ जाते तब तक कामरूपपीठ, मद से पूरित, म्लेच्छों द्वारा ही रक्षित हो॥२३॥

विरलाश्चागमाः सन्तु य एतत्प्रतिपादकाः ।
विरलं यस्तु जानाति कामरूपागमं बुधः ।
स एव प्राप्ते कालेऽपि सम्पूर्ण फलमाप्स्यति ॥२४॥

इस वामभाव के प्रतिपादक आगमग्रन्थ दुर्लभ हो जायँ और जो साधक इस दुर्लभ कामरूपआगम को जानते हैं, वे ही समय आने पर सम्पूर्णफल प्राप्त करेंगे॥२४॥

एवमुक्त्वा वसिष्ठस्तु तत्रैवान्तरधीयत ।
ते गणा म्लेच्छतां याताः कामरूपे सुरालये ॥२५॥
वामाऽभूदुग्रतारापि शम्भुर्म्लेच्छरतोऽभवत् ।
आगमा विरलाश्चासन् ये च मत्प्रतिपादकाः ॥२६॥

ऐसा कहकर वशिष्ठमुनि वहीं अन्तर्ध्यान हो गये तथा वे गण, देवताओं के क्षेत्र, कामरूप में, म्लेच्छता को प्राप्त किये। उग्रतारादेवी भी वामा (वामभाव से पूजिता) तथा शिव, म्लेच्छों से सेवित हो गये। मेरा प्रतिपादन करने वाले आगमग्रन्थ दुर्लभ हो गये॥२५-२६॥

वेदमन्त्रविहीनं तु चतुर्वर्णविवर्जितम् ।
कामरूपं क्षणाज्जातं यद् यमेनानुशाशितम् ॥२७॥

जो कामरूपक्षेत्र था, वह वेदमन्त्रों से हीन तथा चारोंवर्णों से रहित होकर क्षणभर में ही यमराज से अनुशासित हो गया॥२७॥

आगतेऽपि हरौ मुक्ते शापात् पीठे फलप्रदे ॥२८॥
यथा न सम्यक् स्थास्यन्ति तत्पीठे देवमानुषाः ।
गुप्तये सर्वकुण्डानां ब्रह्मोपायं तथाऽकरोत् ॥२९॥

जिस प्रकार से उस पीठ पर विष्णु के पुनः आने पर कामरूपपीठ के शापमुक्त होके बाद भी फलदायक होने पर, देवता एवं मनुष्य भली भाँति वहाँ न रह सकें, ब्रह्मा ने वैसा ही उपाय वहाँ के सभी कुण्डों की रक्षा के लिए किया॥२८-२९॥

अपुनर्भवकुण्डस्य सोमकुण्डस्य चोभयोः ।
ब्रह्मोर्वशीकुण्डयोस्तु नदीनामपि भूरिशः ॥३०॥
नदीनां पूर्वमुक्तानामनुक्तानां च गुप्तये ।
सर्वस्यैकफलज्ञाने ब्रह्मोपायं तथाऽकरोत् ॥३१॥

ब्रह्मा ने वह उपाय किया, जिससे पूर्व के अध्यायों में कहे गये और न कहे गये बहुत सी नदियों तथा अपुनर्भवकुण्ड-सोमकुण्ड-ब्रह्मकुण्ड, उर्वशीकुण्ड एवं इनसे सम्बन्धित नदियों की, फल सहित रक्षा हो सके॥३०-३१॥

अमोघायां शान्तनोस्तु भार्यायां तनयं स्वकम् ।
जलरूपं समुत्पाद्य जामदग्न्येन धीमता ।
अवतारयदव्यग्रं प्लावयन् कामरूपकम् ॥३२॥

इस हेतु शान्तनु की अमोघा नाम की भार्या से उन्होंने जलरूप में अपने पुत्र (ब्रह्मपुत्र) को उत्पन्न किया और बुद्धिमान जमदग्निऋषि के पुत्र, परशुराम की सहायता से उसे धैर्यपूर्वक पृथ्वी पर अवतारित कर, पूर्वोक्त समस्त कामरूपपीठ को डुबा दिया॥३२॥

सतु ब्रह्मसुतो धीरः सावयन् कुण्डसञ्चयान् ।
आच्छाद्य सर्वतीर्थानि भुवि गुप्तानि चाकरोत् ॥३३॥

उस समय जलरूप ब्रह्मा के, उपर्युक्त धैर्यवानपुत्र ने पूर्ववर्णित कुण्डसमूहों को ढंक कर, वहाँ पृथिवी पर स्थित सभी तीर्थों को गुप्त कर दिया॥३३॥

लौहित्यमात्रं ये केचिज्जानन्ति तत्र वै नराः ॥३४॥
ते लौहित्यस्नानफलं प्राप्नुवन्ति सुनिश्चितम् ।
न जानन्ति च कुण्डानि नापि तीर्थानि चान्यतः ॥३५॥

जो कुछ लोग जानते हैं, उसे वे लौहित्य नाम से ही जानते है तथा उसमें स्नान कर लौहित्यस्नान का फल निश्चित रूप से प्राप्त करते हैं। वे अन्य कुण्डों या तीर्थों को नहीं जानते॥३४-३५॥

वसिष्ठशापादेतत् तु प्रवृत्तं तीर्थगोपनम् ।
यः कश्चित् तत्र जानाति तीर्थानां च विशेषताम् ।
समवाप्नोति तत् स्नानफलं सम्यग् नरोत्तम ।।३६।।

हे नरों में श्रेष्ठ ! वशिष्ठमुनि के शाप के कारण ही यह तीर्थों के गुप्त करने का कार्य सम्पन्न हुआ। जो इसे तथा उसमें लुप्त हुए तीर्थों की विशेषताओं को जानता है । वह उसमें स्नान का भली-भाँति फल प्राप्त करता है।।३६।।

सर्वानदीः समाप्लाव्य सर्वतीर्थानि सर्वतः ।
लौहित्यो ब्रह्मणः पुत्रो याति दक्षिणसागरम् ।।३७।।

सभी नदियों को तथा सभी तीर्थों को अपने में भली-भाँति समाहित कर, ब्रह्मा का पुत्र, लौहित्य नामक नद, आज भी दक्षिणसागर में जाता है ।।३७।।

एवं ते कथितं राजन् कामरूपस्य कीर्तनम् ।
यदन्यद्रोचते तुभ्यं तत् पृच्छ निगदामि ते ।।३८।।

।। श्री कालिकापुराणे कामरूपमाहात्म्यवर्णननाम एकाशीतितमोऽध्यायः।।८१।।

हे राजन् ! यह कामरूप का कीर्तन (माहात्म्य) मेरे द्वारा कहा गया । अब तुम्हे जो अच्छा लगे, पूछो, मैं उसे तुमसे कहूँगा ।।३८।।

।। श्रीकालिकापुराण में कामरूपमाहात्म्यवर्णननामक इक्यासीवाँ अध्याय सम्पूर्ण हुआ ।।८१।।



द्व्यशीतितमोऽध्यायः
लौहित्योत्पत्तिवर्णनम्

।। मार्कण्डेय उवाच ।।

और्वस्य वचनं श्रुत्वा सगरस्तं मुनिं पुनः ।
पप्रच्छेदं द्विजश्रेष्ठा हर्षसंप्लुतमानसः ।।१।।

मार्कण्डेय बोले– हे द्विजो और्वमुनि के वचनों को सुनकर राजा सगर ने हर्ष से प्लावितमन हो, उनसे पुनः यह पूछा– ।।१।।

।। सगर उवाच ।।

अमोघायां कथं यज्ञे लौहित्यो ब्रह्मणः सुतः ।
कथं शान्तनुजायायां रतः स कमलासनः ।।२।।

सगर बोले– अमोघा से ब्रह्मा का लौहित्य नामक पुत्र, कैसे उत्पन्न हुआ ? कमल जिनका आसन है, ऐसे वह ब्रह्मा, शान्तनु की पत्नी से क्यों अनुरक्त हुए?।।२।।

पारस्त्रैणेयपुत्रो वा कथं जज्ञे पितामहात् ।
तत् सर्वं श्रोतुमिच्छामि कथयस्व द्विजोत्तम ।।३।।

हे द्विजों में उत्तम ! ब्रह्मा ने पराई स्त्री के सम्बन्ध से उत्पन्नपुत्र, क्यों उत्पन्न किया ? वह मैं सुनना चाहता हूँ, आप बताइये।।३।।

।। और्व उवाच ।।

शृणु त्वं राजशार्दूल कथयामि महत्तरम् ।
आख्यानं ब्रह्मपुत्रस्य लौहित्यस्य महात्मनः ।।४।।

और्व बोले– हे राजाओं में सिंह के समान श्रेष्ठ ! ब्रह्मा के पुत्र, महात्मा-लौहित्यसम्बन्धी महान् आख्यान, मैं कहता हूँ, तुम उसे सुनो ।।४।।

हरिवर्षे महावर्षे शान्तनुर्नाम नामतः ।
मुनिरासीन्महाभागो ज्ञानवान् स तपोरतः ।।५।।

हरिवर्ष (भारत का पूर्व नाम) नामक महान् वर्ष में शान्तनु नाम के एक महाभाग, ज्ञानी मुनि थे । वे अपने नाम के अनुरूप शान्तनु और तपस्यारत थे।।५।।

तस्य भार्या महाभागा अमोघाख्या महासती ।
हिरण्यगर्भस्य मुनेस्तृणविन्द्वाश्रमोद्भवा ।।६।।

उनकी अमोघा नाम की महाभागा और महान्सती एक पत्नी थी, जो तृणविन्दु के आश्रमपर, हिरण्यगर्भमुनि से उत्पन्न हुई थी ।।६।।

तया सार्धं स कैलासं मर्यादापर्वते वसन् ।
लोहिताख्यस्य सरसस्तीरे वै गन्धमादने ।।७।।

उसके साथ वे शान्तनुमुनि लोहित नाम के सरोवर के किनारे, कैलास के मर्यादापर्वत, गन्धमादन पर, निवास करते थे ।।७।।

एकदा स तपोनिष्ठो निजपुष्पादिगोचरम् ।
जगाम वनमध्यं तु चिन्वन् बहुफलानि च ।।८।।

एक बार वे तपस्वीमुनि अपने पुष्प आदि की खोज में तथा बहुत से फलों के संग्रहहेतु वन में गये ।।८।।

तस्मिन्नवसरे ब्रह्मा सर्वलोकपितामहः ।
तत्राजगाम यत्रास्ति अमोघा शान्तनोः प्रिया ।।९।।

उसी अवसर पर सभी लोकों के पितामह, ब्रह्मा, वहाँ आये, जहाँ शान्तनु की अमोघा नाम की पत्नी थी ।।९।।

तां दृष्ट्वा देवगर्भाभां युवतीमतिसुन्दरीम् ।
मोहितो मदनेनाशु तदाऽभूद् दूषितेन्द्रियः ।।१०।।

उस देवगर्भा, अतिसुन्दरी, युवती को देखकर वे शीघ्र ही कामदेव से मोहित हो गये, उस समय वे दूषितइन्द्रिय वाले हो गये।।१०।।

उदीरितेन्द्रियो भूत्वा जिघृक्षुस्तां महासतीम् ।
अथाधावत् ततो ब्रह्मा सम्मुखो मदनार्दितः ।।११।।

तब काम से पीड़ित हो ब्रह्मा, जो उत्थित इन्द्रिय वाले हो गये थे, उस महान् सती को पकड़ने के लिए सामने (उसकी ओर) दौड़ पड़े।।११।।

धावमानं विधातारं दृष्ट्वाऽमोघा महासती ।
नैवं नैवमिति प्रोक्त्वा पर्णशालां व्यलीयत ।।१२।।

ब्रह्मा को उस प्रकार से अपनी ओर दौड़ते देखकर वह अमोघा नाम वाली महान्सती ऐसा मत करें, ऐसा न करें, कहती हुई पर्णशाला में छिप गई ।।१२।।

इदं चोवाच धातारममोघा कुपिता तदा ।
पर्णशालान्तरं गत्वा द्वारमावृत्य तत्क्षणात् ।।१३।।
अकार्यं न मया कार्यं मुनिपत्न्या विगर्हितम् ।
बलात् प्रमथ्य चाहं चेत् त्वया त्वां च शापाम्यहम् ।।१४।।

तब उस समय तुरंत पर्णशाला में जाकर उसने तत्काल पर्णशाला का द्वार बन्द कर लिया और क्रोधित होकर अमोघा ने ब्रह्मा से यह वचन कहा–मुझ मुनिपत्नी के साथ न करने योग्य निन्दित कर्म आपको नहीं करना चाहिये । यदि आप द्वारा बलपूर्वक मेरा प्रमथन किया जायेगा तो मैं आप को शाप दे दूँगी ।।१३-१४।।

अमोघया चैवमुक्ते विधातुश्च तदा नृप ।
रेतश्चस्कन्द तत्रैव आश्रमे शान्तनोर्मुनेः ।।१५।।

अमोघा के द्वारा ऐसा कहे जाने पर उस समय विधाता का वीर्य, वहीं शान्तनु-मुनि के आश्रम में ही स्खलित हो गया ।।१५।।

च्युते रेतसि धातापि हंसयानं समुत्थितः ।
लज्जयाऽतिपरीतात्मां द्रुतं वै स्वाश्रमं ययौ ।।१६।।

वीर्यपतन के बाद ब्रह्मा भी उठकर अत्यन्त लज्जा से भरकर अपने हंसयान से शीघ्र ही अपने धाम को चले गये ।।१६।।

गते वेधसि शान्तनुश्च निजमाश्रममागतः ।
आगत्य दृष्ट्वा हंसानां पादक्षोभं तदा भुवि ।।१७।।
तेजश्च पतितं भूमौ विधातुर्ज्वलनोपमम् ।
अमोघां परिपप्रच्छ पर्णशालान्तरस्थिताम् ।।१८।।

ब्रह्मा के चले जाने पर शान्तनुमुनि अपने आश्रम पर आये। आने के पश्चात् पृथ्वी पर हंसो के पैरों के चिह्न तथा ब्रह्मा के प्रखर वीर्य को देखकर उन्होंने पर्णशाला में स्थित अमोघा से पूछा।।१७-१८।।

।। शान्तनुरुवाच ।।

किमेतदत्र सुभगे प्रवृत्तं दृश्यते तु यत् ।
पक्षिणां च पदक्षोभं तेजश्चेदं च कीदृशम् ।।१९।।

शान्तनु बोले– हे सुभगे ! यह यहाँ क्या हुआ दिखाई देता है ? यह पक्षियों के पैरों का चिह्न और गिरा हुआ तेज कैसा है ? ।

।। और्व उवाच ।।

सा तस्य वचनं श्रुत्वा शान्तनुं मुनिसत्तमम् ।
अमर्षितैव न्यगददाकुला विकलानना ।।२०।।

और्व बोले– तब उस मुनियों में श्रेष्ठ, शान्तनुमुनि के उन वचनों को सुनकर क्रोध से भरी हुई किन्तु मनसे आकुल तथा मुख से व्याकुल, अमोघा ने कहा—।।२०।।

।। अमोघोवाच ।।

हंसयुक्तस्यन्दनेन कोऽप्यागत्य चतुर्मुखः ।
कमण्डलुकरोऽतीव रतिं मां समयाचत ।।२१।।

अमोघा बोली– हंसजुतेहुए रथ से कोई चारमुखों वाला, हाथ में कमण्डलु लिये आया था। आकर उसने मुझसे रति की अत्यधिक याचना की।।२१।।

ततो मया तर्जितः स उटजान्तरलीनया ।
प्रच्याव्य तेजः संयातो मम शापभयार्दितः ।।२२।।

तब मेरे द्वारा कुटिया में छिपने के बाद, उसे फटकारे जाने पर, मेरे शाप के भय से पीड़ित, उस व्यक्ति का तेज स्खलित हो गया ।।२२।।

कुरु तत्र प्रतीकारं यदि शक्नोषि शान्तनो ।
नहीमां धर्षणां सोढुं कश्चिच्छक्नोति जीवभृत् ।।२३।।

हे शान्तनु ! यदि आप कोई प्रतिकार कर सकते हो तो करें क्योंकि कोई प्राणी इस प्रकार का अपमान नहीं सह सकता।।२३।।

।। और्व उवाच ।।

स तस्या वचनं श्रुत्वा स्वयं ब्रह्मा समागतः ।
इति निश्चित्य मनसा तदा ध्यानपरोऽभवत् ।।२४।।

और्व बोले- तब वे शान्तनुमुनि, उस अमोघा के वचन को सुनकर मन में ऐसा निश्चय करके कि स्वयं ब्रह्मा यहाँ आये थे, ध्यान परायण हो गये।।२४।।

दिव्यज्ञानेन सा ज्ञात्वा देवकार्यमुपस्थितम् ।
तीर्थावतरणं चापि हिताय जगतां मुनिः ।
ज्ञात्वोद्रेकं चिन्तयित्वा स्वभार्यामिदमब्रवीत् ।।२५।।

अग्नि के समान उन मुनि ने दिव्यज्ञान से संसार के हित को लिए उपस्थित देवताओं के कार्य के (महत्त्व) हेतु तीर्थों के अवतारण के अवसर को जान लिया और उद्रेक को जानकर उन्होंने अपनी पत्नी से विचारपूर्वक ये वचन कहे-।।२५।।

।। शान्तनुरुवाच ।।

इदं तेजो ब्रह्मणस्त्वं पिवामोघे ममाज्ञया ।।२६।।
हिताय सर्वजगतां देवकार्यार्थसिद्धये ।
भवत्या निकटं ब्रह्मा स्वयमेव समागतः ।।२७।।

शान्तनु बोले- हे अमोघे ब्रह्मा के इस तेज को मेरी आज्ञा से तुम पी जाओ क्योंकि समस्तसंसार के कल्याण एवं देवताओं के कार्यसिद्धिहेतु स्वयं ब्रह्मा ही तुम्हारे समीप आये थे।।२६-२७।।

त्वामप्राप्य महत् कृत्यमावयोः स समर्प्य च ।
गतो निजास्पदं तत् त्वं कर्तुमर्हसि तद्वचः ।।२८।।

तुमको न पाकर इस महान् कार्य को हम दोनों को ही सौंप कर वे अपने लोक को चले गये हैं । अतः अब तुम्हीं उनके वचन को पूरा करो।।२८।।

।। और्व उवाच ।।

तच्छ्रुत्वा शान्तनोर्वाक्यममोघातीव लज्जिता ।
सान्त्वयन्तीव तं प्राह पतिं नत्वा महासती ।।२९।।

और्व बोले- शान्तनु के उपर्युक्त वचनों को सुन कर अमोघा अत्यन्त लज्जित हुई । उस महासती ने पति को नमस्कार किया और उन्हें सान्त्वना देती हुई बोली।।२९।।

।। अमोघोवाच ।।

नान्यस्य तेजो धास्यामि न च ते विमनस्कता ।
अवश्यं यदि कर्तव्यं पीत्वा त्वं मयि चोत्सृज ।।३०।।

अमोघा बोली– न तो मैं दूसरे का वीर्यधारण कर सकती हूँ और न आपकी खिन्नता ही सह सकती हूँ। इसलिए यदि आप इसे आवश्यक समझते हैं तो आप ही इसे पीकर मेरे में छोड़ दें (आधान करें)।।३०।।

ततस्तस्या वचः श्रुत्वा युक्तं तथ्यं च शान्तनुः ।
स्वयं पीत्वा तु तत् तेजः स्वभार्यायां न्यषेचयत् ।।३१।।

और्व बोले– तब उसके तथ्यपूर्ण और उचित, वचन को सुनकर शान्तनु ने स्वयं उस तेज का पान किया और उसका अपनी पत्नी में षेचन किया ।।३१।।

संक्रामितैः शान्तनुना तेजोभिर्ब्रह्मणः सती ।
गर्भं दधारामोघाख्या हिताय जगतां ततः ।।३२।।

तब शान्तनु के द्वारा ब्रह्मा के तेज से संक्रमित, अमोघा नाम वाली सती ने संसार के कल्याणहेतु, गर्भ धारण किया।।३२।।

तस्यःकाले तु सम्प्राप्ते नासातो जलसञ्चयः ।
तन्मध्ये तनयश्चापि नीलवासा कीरीटधृक ।।३३।।
रत्नमालासमायुक्तो रक्तगौरश्च ब्रह्मवत् ।
चतुर्भुजः पद्मविद्याध्वजशक्तिधरस्तथा ।
शिशुमारशिरस्थश्च तुल्यकायो जलोत्करैः ।।३४।।

समय आने पर उसकी नासिका से एक जल का समूह निकला। उसमें से नीलावस्त्र और मस्तक पर मुकुट, धारण किये, रत्नों की माला पहने, ब्रह्मा के समान लालं गौरवर्ण का और चार भुजाओं वाला एक पुत्र भी प्राप्त हुआ जो अपने हाथों में कमल, ग्रन्थ, ध्वजा और शक्ति धारण किये था। वह सोंस के सिर पर स्थित था। वह शरीर में जल के ढेर के ही समान था।।३३-३४।।

तज्जातं च तथाभूतं शान्तनुर्लोकशान्तनुः ।
चतुर्णा पर्वतानां च मध्यदेशे न्यवीविशत् ।।३५।।
कैलासश्चोत्तरे पार्श्वे दक्षिणे गन्धमादनः ।
जारुधिः पश्चिमे शैलः पूर्वे संवर्तकादयः ।।३६।।

उसके उस प्रकार उत्पन्न होने पर लोक को सान्त्वना देने वाले शान्तनु ने उत्तर में कैलाश, दक्षिण में गन्धमादन, पश्चिम में जारुधि तथा पूर्व में संवर्तक आदि चार पर्वतों के मध्यदेश में उसे बसाया ।।३५-३६।।

तेषां मध्ये स्वयं कुण्डं पर्वतानां विधेः सुतः ।
कृत्वाऽतिववृधे नित्य शरदीव निशाकरः ।।३७।।

उनके मध्य में ही, उस ब्रह्मा के पुत्र ने स्वयं एक कुण्ड का निर्माण किया और वहीं शरदऋतु के चन्द्रमा की भाँति बढ़ना आरम्भ किया ।।३७।।

तं तोयमध्यगं पुत्रमासाद्य द्रुहिणः सुतम् ।
क्रमतस्तस्य संस्कारानकरोद् देहशुद्धये ।।३८।।

ब्रह्मा ने अपने उस पुत्र को जल के बीच पाकर, उसकी शरीरशुद्धि के लिए संस्कारों को क्रमशः सम्पन्न किया।।३८।।

अथ काले बहुतिथे व्यतीते ब्रह्मणः सुतः ।
तोयराशिस्वरूपेण ववृधे पञ्चयोजनान् ।।३९।।

बहुत समय बीत जाने पर ब्रह्मा का वह पुत्र लौहित्य, जलराशि के रूप में पाँच योजन तक बढ़ गया।।३९।।

तस्मिन् देवाः पपुः सस्नुर्द्वितीय इव सागरे ।
सितामलजले हृद्ये दिव्यैश्चाप्सरसां गणैः ।।४०।।

दूसरे समुद्र जैसे श्वेत, निर्मल, हृदय को प्रिय लगने वाले, उसके जल में दिव्य अप्सराओं के सहित देवताओं ने स्नान किया एवं उसके जल को पिया ।।४०।।

तस्मिन्नवसरे रामो जामदग्न्यः प्रतापवान् ।
चक्रे मातृवधं घोरमयुक्तं पितुराज्ञया ।।४१।।
तस्य पापस्य मोक्षाय स्वपितुश्चोपदेशतः ।
स जगाम महाकुण्डं ब्रह्माख्यं स्नातुमिच्छया ।।४२।।

उसी अवसर पर जमदग्निऋषि के पुत्र राम (परशुराम), जो प्रतापी थे, उन्होंने अपने पिता की आज्ञा का पालन करते हुये, मातृवध जैसा भयानक और अनुचित कार्य किया एवं उस पाप से मुक्ति पाने हेतु अपने पिता के उपदेश के अनुसार-ब्रह्मपुत्र उत्पत्तिस्थल, ब्रह्मनामक उस कुण्ड में स्नान करने के लिए गये।।४१-४२।।

तत्र स्नात्वा च पीत्वा च मातृहत्यामपानयन् ।
बीथीं परशुना कृत्वा तं मह्यमवतारयत ।।४३ ।।

वहाँ स्नान कर उसका जल पीकर उन्होंने अपनी माता की हत्या के पाप को दूर किया तथा अपने परशु से मार्ग बना कर, उस जलराशिरूप, ब्रह्मपुत्र को पर्वतों के बीच से पृथिवी पर अवतरित किया।।४३।।

।। परशुरामोपाख्यान ।।

।। सगर उवाच ।।

जमदग्नेः सुतो रामः किमर्थं निजमातरम् ।
जघान तस्य माता च किन्नाम्नी कस्य चात्मजा ।।४४।।

सगर बोले– जगदग्निपुत्रराम ने अपनी माता को क्यों मारा? उनकी माता का क्या नाम था? वे किसकी पुत्री थीं?।।४४।।

मुनेः पुत्रः कथं जातस्तथा क्रूरो महाबलः ।
यो युद्धकुशलो वीरो राजन्यान् समपोथयत् ।।४५।।

मुनि के पुत्र होते हुये भी परशुराम ऐसे क्रूर और महाबलशाली, युद्ध में पारङ्गत, वीर, कैसे हुए, जिन्होंने अन्य राजाओं को नष्ट कर दिया ।।४५।।

तदहं श्रोतुमिच्छामि तत्त्वत्तो मुनिसत्तम ।
कथयस्व महाभाग यदि गुह्यं तथापि मे ।।४६।।

हे मुनियों में श्रेष्ठ ! वह मैं आप से सुनना चाहता हूँ। यदि गोपनीय भी हो तो भी आप मुझे वह सब बतायें।।४६।।

।। और्व उवाच ।।

श्रृणु राजन्नवहितो जमदग्नेः सुतस्य वै ।
चरितं स यथा जघ्ने प्रसूं क्रूरतरश्च सः ।।४७।।

और्व बोले– हे राजन् ! मेरे द्वारा वर्णित जमदग्नि के पुत्र परशुराम का वह चरित्र सुनो, जिस प्रकार उन्होंने अपनी जननी को मार डाला और वे मुनिपुत्र होते हुये भी क्रूरतर हो गये।।४७।।

ब्रह्मपुत्रो भृगुर्नाम ऋचीकस्तत्सुतोऽभवत् ।
स भार्यार्थी चरन् भूमौ कान्यकुब्जं गतः पुरा ।।४८।।

प्राचीनकाल में ब्रह्मा के पुत्र भृगु, नाम के एक ऋषि थे । जिनसे ऋचीक-नामक एक पुत्र उत्पन्न हुआ। वह अपनी पत्नी को पाने के निमित्त पृथ्वी पर घूमते हुये कान्यकुब्ज देश मे गया।।४८।।

ददर्श चारण्यगतं जह्नोर्वंशसमुद्भवम् ।
कुशिकस्य सुतं गाधिं तपःस्थं नृपसत्तम ।।४९।।

हे राजाओं में श्रेष्ठ ! वहाँ उन्होंने वन में जह्नु के वंश में उत्पन्न, कुशिक नामक राजा के पुत्र, गाधि को तपस्यारत देखा ।।४९।।

अरण्यस्थस्य तस्याथ पुत्रकामस्य भूभृतः ।
सभार्यस्य सुता जज्ञे देवकन्यासमा गुणैः ।
ऋचीको भृगुपुत्रस्तां भार्यार्थं समयाचत ।।५०।।

वे राजा गाधि, वन में रहते हुये पुत्र की कामना से पत्नी के साथ, वहाँ तपस्या कर रहे थे । उन्हें समय आने पर गुणों में देवकन्या के समान श्रेष्ठ, एक पुत्री उत्पन्न हुई थी। भृगुपुत्र ऋचीक ने उसे पत्नी के रूप में माँगा।।५०।।

दातुं योग्या सुता मेऽद्य तद्विधाय महामुने ।
किं त्वेकः कुलधर्मो मे विद्यते शुल्कसंग्रहे ।।५१।।
एकत्र कृष्णवर्णानामश्वानां चन्द्रवर्चसाम् ।
सहस्रमेकं यो दद्यात् तस्मै पुत्री प्रदीयते ।।५२।।

हे महामुनि ! आप जैसे योग्यवर को मैं अपनी कन्या देना चाहता हूँ किन्तु मेरे कुल में कन्या के बदले में शुल्कसंग्रह की एक परम्परा है- चन्द्रमा के समान, कृष्णवर्णनाम के एक हजार घोड़े, जो प्रदान करे, उसी को कन्या दी जाती है।।५१-५२।।

।। ऋचीक उवाच ।।

दास्याम्यश्वसहस्रं वै तव राजंस्तथाविधम् ।
किंचित् कालं प्रतीक्षस्व यावत् तदहमानये ।।५३।।

ऋचीक बोले– हे राजन् ! तुम्हें उस प्रकार के एक हजारघोड़े अवश्य प्रदान करूँगा, जब तक मैं उन्हें लाता हूँ, आप कुछ समय मेरी प्रतीक्षा करें।।५३।।

।। और्व उवाच ।।

एवमस्त्विति तं गाधिरुवाच भृगुसूनवे ।
गङ्गतीरं कान्यकुब्जं सोऽगच्छद्धयसाधने ।।५४।।

और्व बोले–गाधिने उस भृगुपुत्रऋचीक् से ऐसा ही हो, यह वचन कहा, तब वे ऋचीक् ऋषि, घोड़ों को लाने के लिए कान्यकुब्ज (कन्नौज) में गङ्गातट पर गये।।५४।।

तत्राराध्य भृगोः पुत्रो वरुणं यादसां पतिम् ।
तेन दत्तं लेभे सहस्रं वाजिनां मुनिः ।।५५।।

वहाँ आराधना कर के भृगु के पुत्र ऋचीक नामक मुनि ने जल के स्वामी वरुणदेवता की आराधना, कर उनसे दिये हुए, एक हजार घोड़ों को प्राप्त किया।।५५।।

तेन यत्र तदा लब्धा अश्वान् नृपतिसत्तम ।
तदश्वतीर्थं विख्यातं महाफलकरं परम् ।।५६।।

हे राजाओं में श्रेष्ठ ! उनके द्वारा, जब ये घोड़े प्राप्त हुए तभी से वह श्रेष्ठस्थान महान्फलदेनेवाले अश्वतीर्थ के नाम से प्रसिद्ध हो गया।।५६।।

गङ्गाजलादुत्थितं तु दत्तं सम्यक् प्रचेतसा ।
आदायाश्वसहस्रं तु मुनिर्गाधिमथाभ्ययात् ।।५७।।

गङ्गाजल से निकले तथा वरुण के द्वारा भली-भाँति दिये हुये उन एक हजार घोड़ों को लेकर वे राजा, गाधि मुनि के पास पहुँच गये ।।५७।।

तानश्वान् गाधिरादाय पुत्रीं सत्यवतीं सुताम् ।
ऋचीकाय ददौ लक्ष्मीं केशवायैव सागरः ।।५८।।

जिस प्रकार सागर ने लक्ष्मी को केशव (विष्णु) को प्रदान किया था, उसी प्रकार उन्होंने अपनी सत्यवती नाम की पुत्री को ऋचीक ऋषि को प्रदान कर दिया।।५८।।

ऋचीको गाधितनयां लब्ध्वा भार्यामनिन्दिताम् ।
मुदितः स तया रेमे यथाकामं स्वकाश्रमे ।।५९।।

ऋचीक ने भी उस अनिन्दित-गाधिपुत्री, को पत्नी के रूप में प्राप्त कर-अपने आश्रम में, उसके साथ प्रसन्नतापूर्वक रमण किया ।।५९।।

कृतदारं सुतं श्रुत्वा द्रष्टुं पुत्रं स्नुषां भृगुः ।
अथाजगाम मतिमान् स्नुषां दृष्ट्वा ननन्द च ।।६०।।

बुद्धिमान् भृगुमुनि, अपने बेटे के विवाह की बात का समाचार सुनकर, अपने पुत्र और पुत्रवधू को देखने के लिए वहाँ आये तथा अपनी पुत्रवधू को देखकर आनन्दित हुये।।६०।।

दम्पती तं समासीनं भृगुं देवगणार्चितम् ।
पूजयित्वा यथान्यायं तस्थतुस्तौ कृताञ्जली ।
ततो भृगुः स्नुषां स्वीयां सुप्रीत इदमब्रवीत् ।।६१।।

वे ऋचीक-दम्पती, अपने आश्रम में तथा आये हुये उन देवगणों से पूजे गये भृगुमुनि की यथोचित पूजा किये और हाथ जोड़कर खड़े हो गये। तब भृगु ने अपनी पुत्रवधू से प्रसन्नतापूर्वक ये वचन कहे–।।६१।।

।। भृगुरुवाच ।।

वरं वृणीष्व दास्यामि वाञ्छितं वरवर्णिनि ।
अदेयं दुष्करं वापि यत्र ते विद्यते स्पृहा ।।६२।।

भृगु बोले– हे वरवर्णिनी ! तुम्हारा जो अभिलषित हो वर माँगो । यदि तुम्हारी इच्छा हो तो अदेय एवं दुष्कर वर भी तुम माँग लो।।६२।।

।। और्व उवाच ।।

ततः सत्यवतीं पुत्रं तप-आम्नाय-पारगम् ।
मातुश्च वीरमतुलं पुत्रं वरमयाचत ।।६३।।

और्व बोले– तब सत्यवती ने तप-मार्ग में पारङ्गतपुत्र एवं माता के लिए अतुलनीयवीरपुत्र प्राप्ति का वर माँगा।।६३।।

स चैवमस्त्वित्युक्त्वैव भूत्वा ध्यानपरस्तदा ।
विश्वमाधृत्य मनसा यत्नाच्छ्वासं ससर्ज सः ।।६४।।
तस्य निःश्वासात् तु निःसृतं वै चरुद्वयम् ।
तस्यैतद्द्वितयं दत्त्वा भृगुस्तामिदमब्रवीत् ।।६५।।

सम्पूर्ण विश्व को मन में आधार बनाकर, यत्नपूर्वक उन्होंने निःश्वास छोड़ा और उस समय उनके निःश्वास से दो सुन्दर चरुपात्र निकले। उन दोनों को उसे देकर भृगुऋषि ने ये वचन कहे।।६४-६५।।

।। भृगुरुवाच ।।

चरुद्वयं गृहाणेदं स्नुषे सत्यवति स्वयम् ।
स्नात्वा ऋतौ ऋतौ माता स्नुषे त्वं च करिष्यथः ।।६६।।

भृगु बोले—हे पुत्रवधू सत्यवती ! तुम इन दोनों चरुपात्रों को स्वयं ग्रहण करो। ऋतुकाल में स्नान करके उस समय तुम और तुम्हारी माता, दोनों ही मेरे बताये अनुसार करना॥६६॥

आलिंग्याश्वत्थवृक्षे ते माता पुंसवनाय वै ।
चरुमारक्तकं चेमं सा भोक्ष्यति सुतस्ततः ।।६७।।

उस समय तुम्हारी माता यदि अश्वत्थवृक्ष के पेड़ (पीपल) का आलिङ्गन कर पुंसवन के लिए इस लालरङ्ग के सुन्दर, चरु का भोजन करेगी तो उसे इच्छितपुत्र प्राप्त होगा॥६७॥

त्वं चोदुम्बरवृक्षं तु समालिंग्यसितं चरुम् ।
भोक्ष्यसे तव पुत्रस्तु भविष्यति सनातनः ।।६८।।

तुम गूलर के वृक्ष का आलिङ्गन कर इस श्वेतरङ्ग के चरु का भोजन करोगी तो तुम्हें वाञ्छित, सनातन (सात्विक) पुत्र होगा॥६८॥

।। और्व उवाच ।।

एवमुक्त्वा भृगुर्यातो यथेच्छं सापि समुदम ।
अवाप मात्रा सहिता भर्त्रा पित्रा च भामिनी ।।६९।।

और्व बोले— ऐसा कहकर भृगुजी इच्छानुसार चले गये। तब इस भामिनी (सत्यवती) ने भी अपनी माता, पिता और पति के सहित, प्रसन्नता का अनुभव किया॥६९॥

अथ स्नानदिनेऽश्वत्थमालिंग्यारक्तकं चरुम् ।
आदात् सत्यवती तस्या माता फल्गुसितं चरुम् ।।७०।।

इसके बाद सत्यवती ने ऋतुस्नान के पश्चात् स्नान के दिन, उचितसमय पर अश्वत्थ का आलिङ्गन कर, स्वयं लालचरु ग्रहण किया। उसकी माता ने फल्गु (गूलर के वृक्ष) का आलिङ्गन कर श्वेतचरुग्रहण किया॥७०॥

परिवर्तं तु तज्ज्ञात्वा दिव्यज्ञानो भृगुर्मुनिः ।
अथागत्य स्नुषां तां तु वचनं चेदमब्रवीत् ।।७१।।

उस परिवर्तन (व्यतिक्रम) को जानकर, दिव्यज्ञान से सम्पन्न, भृगुमुनि अपनी पुत्रवधू के समीप जाकर उससे ये वचन बोले—॥७१॥

।। भृगुरुवाच ।।

विपर्ययस्त्वया भद्रे वृक्षालिङ्गनकर्मणि ।
तथा चरुप्राशने तु तत्रेदं ते भविष्यति ।।७२।।
ब्राह्मणः क्षत्रियाचारस्तव पुत्रो भविष्यति ।
क्षत्रियो ब्राह्मणाचारो मातुस्ते भविता सुतः ।।७३।।

भृगु बोले—हे भद्रे ! वृक्षों को आलिङ्गन करने के क्रम में तथा चरु के भोजन के प्रसङ्ग में, तुम्हारे द्वारा विपरीत किया गया है । इसलिए तुम्हारा पुत्र, क्षत्रिय-आचरण से युक्त ब्राह्मण होगा तथा तुम्हारी माता को ब्राह्मण-आचरण से युक्त क्षत्रियपुत्र उत्पन्न होगा।।७२-७३।।

।। और्व उवाच ।।

इत्युक्त्वा भृगुणा साध्वी तदा सत्यवती भृगुम् ।।७४।।
पुनः प्रसादयामास पौत्रो मेऽस्त्विवति तादृशः ।
एवमस्त्विवति स प्रोच्य तत्रैवान्तर्दधे भृगुः ।।७५।।

और्व बोले—भृगु के द्वारा ऐसा कहे जाने पर साध्वी सत्यवती ने भृगुऋषि को पुनः प्रसन्न किया और उनसे प्रार्थना की कि इस प्रकार का मेरा पौत्र हो। तब ऐसा ही हो यह कहकर भृगुऋषि वहीं अन्तर्हित हो गये।।७४-७५।।

अथ काले सुतं दीप्तं जमदग्निं च गाधिजा ।
सुषुवे जननी तस्या विश्वामित्रं तपोनिधिम् ।।७६।।

तत्पश्चात् समय आने पर गाधिपुत्री सत्यवती ने जमदग्नि नामक प्रकाशमानपुत्र को तथा उसकी माता ने विश्वामित्रनामक तपस्वीपुत्र को जन्म दिया।।७६।।

जमदग्निस्ततो वेदांश्चतुरः प्राप मा चिरम् ।
प्रादुरासीद् धनुर्वेदः स्वयं तस्मिन् महात्मनि ।।७७।।

तब जमदग्नी ने शीघ्र ही चारों वेदों को प्राप्त कर लिया (जान लिया) तत्पश्चात् उस महात्मा में धनुर्वेद का ज्ञान स्वयं उत्पन्न हो गया ।।७७।।

विश्वमित्रोऽपि सकलान् वेदानाप तथाऽचिरात् ।
धनुर्वेदं तथा कृत्स्नं विप्रश्चाभूत् तपोबलात् ।।७८।।

शीघ्र ही विश्वामित्र भी सभी वेदों तथा सम्पूर्ण धनुर्वेद को प्राप्त कर, अपनी तपस्या के बल पर ब्राह्मण हो गये ।।७८।।

जाज्वल्यमानस्तेजस्वी जमदग्निर्महातपाः ।
वेदैस्तपोभिः स मुनीनत्यक्रामच्च सूर्यवत् ।।७९।।

श्री कालिकापुराणे लौहित्योत्पत्तिवर्णननाम द्वयसीतितमोऽध्यायः ।।८२।।

सूर्य के समान जाज्वल्यमान, तेजस्वी, महान्तपस्वी उन जमदग्निऋषि ने वेद और तपस्या द्वारा अन्य मुनियों को पराभूत कर दिया।।७२।।

श्रीकालिकापुराण में लौहित्यउत्पत्तिवर्णननामक बयासीवाँ अध्याय सम्पूर्ण हुआ।।८२।।



त्र्यशीतितमोऽध्यायः

परशुरामचरितवर्णनम्

।। और्व उवाच ।।

अथ काले व्यतीते तु जमदग्निर्महातपाः ।
विदर्भराजस्य सुतां प्रयत्नेन जितां स्वयम् ।
भार्यार्थं प्रतिजग्राह रेणुकां लक्षणान्विताम् ।।१।।

और्व बोले–तत्पश्चात् बहुत समय बीतने पर महातपस्वी जमदग्नी ने प्रयत्नपूर्वक विदर्भराज की कन्या को स्वयं जीत लिया और लक्षणों से युक्त रेणुका नाम की उस कन्या को, पत्नी के निमित्त ग्रहण किया ।।१।।

सा तस्मात् सुषुवे पुत्रांश्चतुरो वेदसम्मितान् ।
रुषणवन्तं सुषेणं च वसुं विश्वावसुं तथा ।।२।।

उसने उन ऋषि से रुषणवन्त, सुषेण, वसु, विश्वासु नामक, वेदों के समान, चारपुत्रों को जन्म दिया।।२।।

पश्चात् तस्यां स्वयं जज्ञे भगवान् मधुसूदनः ।।३।।
कार्तवीर्यवधायाशु शक्राद्यैः सकलैः सुरैः ।
याचितः पंचमः सोऽभूत् तेषां रामाह्वयस्तु सः ।।४।।

उपर्युक्त चारों पुत्रों के जन्म के बाद, इन्द्रादि समस्त देवताओं की याचना पर, कार्तवीर्य का वध करने के लिए स्वयं भगवान् विष्णु, शीघ्र ही उन्हीं के गर्भ से उत्पन्न हुये। वे राम नाम से पुत्रों में पाँचवें पुत्र थे।।३-४।।

भारावतरणार्थाय जातः परशुना सह ।
सहजं परशुं तस्य न जहाति कदाचन ।।५।।

वे पृथ्वी का भार दूर करने के लिए, जन्म से ही परशु के सहित, उत्पन्न हुये थे इसलिए उनका फरसा उनसे कभी भी अलग नहीं होता था।।५।।

अयं निजपितामह्याश्चरुभुक्तिविपर्ययात् ।
ब्राह्मणः क्षत्रियाचारो रामोऽभूत् क्रूरकर्मकृत् ।।६।।

इस प्रकार अपनी दादी के द्वारा चरुभक्षण के व्यतिक्रम के कारण ब्राह्मणहोते हुये भी भी राम, क्षत्रिय-आचरण से युक्त क्रूरकर्म करने वाले हुये ।।६।।

स वेदानखिलान् ज्ञात्वा धनुर्वेदं च सर्वशः ।
सततं कृतकृत्योऽभूद् वेदविद्याविशारदः ।।७।।

वे सभी वेदों को तथा धनुर्वेद को पूर्णतः जानकर निरन्तर वेदविद्या में निपुण और कृतकृत्य हुये।।७।।

एकदा तस्य जननी स्नानार्थं रेणुका गता ।
गङ्गातोये ह्यथापश्यन्नाम्ना चित्ररथं नृपम् ।।८।।
भार्याभिः सदृशीभिश्च जलक्रीडारतं शुभम् ।
सुमालिनं सुवस्त्रं तं तरुणं चन्द्रसन्निभम् ।।९।।

एक बार उनकी माता रेणुका, स्नान के लिए गयी हुई थीं, वहाँ उन्होंने गङ्गा के जल में चित्ररथ नामक सुन्दर माला, और वस्त्र धारण किये तथा चन्द्रमा के समान छवि वाले राजा को देखा जो अपने ही समान स्त्रियोंसहित जलक्रीड़ा में रत था।।८-९।।

तथाविधं नृपं दृष्ट्वा सञ्जातमदना भृशम् ।
रेणुका स्पृहयामास तस्मै राज्ञे सुवर्चसे ।।१०।।
स्पृहायुतायास्तस्यास्तु संक्लेदः समजायत ।
विचेतनाम्भसा क्लिन्ना त्रस्ता सा स्वाश्रमं ययौ ।।११।।

उस प्रकार के, सुन्दर राजा को देखकर, वह बहुत अधिक काम से पीड़ित हो गई। तथा रेणुका ने उस तेजस्वीराजा की स्पृहा की । इस कामना के ही फलस्वरूप वह पसीने-पसीने हो गई । अनजाने में ही उत्पन्न उस जल से भींगी हुई, वह दुःखी और भयभीतमन से अपने आश्रम में गई।।१०-११।।

अबोधि जमदग्निस्तां रेणुकां विकृता तथा ।
धिग् धिक्कारतेत्येवं निनिन्द च समन्ततः ।।१२।।

जगदग्नि ने उस रेणुका को, उस प्रकार से विकृत जानकर, सब प्रकार धिक्कारा और निन्दा की।।१२।।

ततः स तनयान् प्राह चतुरः प्रथमं मुनिः ।
रुषण्वत्प्रमुखान् सर्वानेकैकं क्रमतो द्रुतम् ।।१३।।
छिन्धीमां पापनिरतां रेणुकां व्यभिचारिणीम् ।
ते तद्वचो नैव चक्रुर्मूकाश्चासन् जडा इव ।।१४।।

तब पहले उस जमदग्निमुनि ने रुषण्वन्त आदि अपने चार पुत्रों में से एक-एक से क्रमशः कहा कि इस पाप में लगी हुई व्यभिचारिणी रेणुका को शीघ्र ही काट डालो किन्तु वे पुत्र, उनके वचन का पालन न करते हुये गूँगे एवं जड़ की भाँति खड़े ही रहे।।१३-१४।।

कुपितो जमदग्निस्ताञ्छशापेति विचेतसः ।
भवध्वं यूयमाचिराज्जडा गोबुद्धिगर्धिताः ।।१५।।

तब जमदग्निऋषि ने क्रोधित हो उन निश्चेष्टपुत्रों को शाप दिया कि तुम सब शीघ्र ही पशुबुद्धि से युक्त, जड़मति होओ।।१५।।

अथाजगाम चरमो जामदग्न्येऽतिवीर्यवान् ।
तं च रामं पिता प्राह पापिष्ठां छिन्धि मातरम् ।।१६।।

तत्पश्चात् जमदग्नि ऋषि के अन्तिमपुत्र राम, वहाँ आ गये जो अत्यन्त पराक्रमी थे। उनसे पिता ने कहा कि इस पापिनी, माता को काट डालो ।।१६।।

स भ्रातृंश्च तथाभूतान् दृष्टा ज्ञानविवर्जितान् ।
पित्रा शप्तान् महातेजाः प्रसूं परशुनाच्छिनत् ।।१७।।

पिता द्वारा शाप दिये गये, उस प्रकार ज्ञान (चेतना) से रहित, अपने भाइयों को देखकर उस महातेजस्वी राम ने, अपने परशु से माता को काट दिया।।१७।।

रामेण रेणुकां छिन्नां दृष्ट्वा विक्रोधनोऽभवत् ।।१८।।
जमदग्निः प्रसन्नः सन्निति वाचमुवाच ह ।

राम के द्वारा रेणुका काट दी गई है, यह देखकर जमदग्निऋषि क्रोध से मुक्त हो गये और प्रसन्न हो, यह वाणी बोले।।१८।।

।। जमदग्निरुवाच ।।

प्रीतोऽस्मि पुत्र भद्रं ते यत् त्वया मद्वचः कृतम् ।
तस्मादिष्टान् वरान् कामांस्त्वं वै वरय साम्प्रतम् ।।१९।।

जमदग्नि बोले– हे पुत्र ! मैं प्रसन्न हूँ । तुम्हारा कल्याण हो, क्योंकि तुमने मेरे वचन का पालन किया है। अब तुम मुझसे अपने अभीष्ट वरों और कामनाओं को माँग लो।।१९।।

।। और्व उवाच ।।

स तु रामो वरान् वव्रे मातुरुत्थानमादितः ।
वधस्यास्मरणं तस्या भ्रातृणां शापमोचनम् ।।२०।।
मातृहत्याव्यपनयं युद्धे सर्वत्र वै जयम् ।
आयुः कल्पान्तपर्यन्तं क्रमाद् वै नृपसत्तम ।।२१।।

और्व बोले–हे राजाओं में श्रेष्ठ ! तब उन राम ने, माता पुन: जी उठें इससे प्रारम्भ कर, उन्हें अपने वध का स्मरण न रहे, भाइयों की शापमुक्ति हो जाय, स्वयं परशुराम की मातृहत्या का पाप हट जाय, सभी युद्धों में उन्हें विजय प्राप्त हो, कल्पपर्यन्त आयु हो, इन उपर्युक्त वरों को क्रमश: माँग लिया।।२०-२१।।

सर्वान् वरान् स प्रददौ जमदग्निर्महातपाः ।।२२।।
सुप्तिस्थितेव जननी रेणुका च तदाभवत् ।
वधं न चापि संस्मार सहजा प्रकृतिस्थिता ।।२३।।
युद्धे जयं चिरायुष्यं लेभे रामस्तदैव हि ।
मातृहत्याव्यपोहाय पिता तं वाक्यमब्रवीत् ।।२४।।

महान्तपस्वी जमदग्नि ने परशुराम द्वारा माँगे गये सभी वरों को दे दिया। फलस्वरूप उनकी माता रेणुका उस समय सोकर उठी हुई की भाँति सहज एवं स्वाभाविक हो गईं। उन्हें अपने वध का भी स्मरण नहीं रहा तथा उसी समय परशुराम ने पिता के द्वारा अपने चिरायुष्य और युद्ध में विजय का भी वर प्राप्त कर लिया। किन्तु मातृहत्या से मुक्ति के लिए पिता ने उनसे ये वचन कहे ॥२२-२४॥

न पुत्र वरदानेन मातृहत्यापगच्छति।
तस्मात् त्वं ब्रह्मकुण्डाय गच्छ स्नातुं च तज्जले ॥२५॥
तत्र स्नात्वा मुक्तपापो नचिरात् पुनरेष्यसि।
जगद्धिताय पुत्र त्वं ब्रह्मकुण्डं व्रज द्रुतम् ॥२६॥

जमदग्नि बोले– हे पुत्र! वरदान से मातृहत्या दूर नहीं होगी। इसलिए तुम ब्रह्मकुण्ड पर जाकर उसके जल में स्नान करने के लिए जाओ। वहाँ जाकर, स्नान कर, तुम शीघ्र ही पापरहित हो जाओगे। अतः तुम शीघ्र ही संसार के कल्याण के लिए वहाँ जाओ॥२५-२६॥

॥ और्व उवाच ॥

स तस्य वचनं श्रुत्वा रामः परशुधृक् तदा।
उपदेशात् पितुर्यातो ब्रह्मकुण्डं वृषोदकम् ॥२७॥

और्व बोले– वे अपने पिता के वचन सुनकर परशुधारण किये राम, उन्हीं के उपदेश से ब्रह्मकुण्ड नामक वृषोदक तीर्थ पर चले गये ॥२७॥

तत्र स्नानं च विधिवत् कृत्वा धौतपरश्वधः।
शरीरान्निःसृतां मातृहत्यां सम्यग् व्यलोकयत् ॥२८॥

वहाँ इन्होंने विधिवत् स्नान कर तथा अपने फरसे को धोकर, अपने शरीर से निकली हुई मातृहत्या को उन्होंने भलीभाँति देखा॥२८॥

जातसंप्रत्ययः सोऽथ तीर्थमासाद्य तद्वरम्।
वीथीं परशुना कृत्वा ब्रह्मपुत्रमवाहयत् ॥२९॥

विश्वास हो जाने पर उस श्रेष्ठतीर्थ पर पहुँच कर, उन्होंने अपने परशु से मार्ग बनाकर ब्रह्मपुत्र को पृथ्वी पर आवाहित किया ॥२९॥

ब्रह्मकुण्डात् सृतः सोऽथ कासारे लौहिताह्वये।
कैलासोपत्यकायां तु न्यपतद् ब्रह्मणः सुतः ॥३०॥

वह ब्रह्मा का पुत्र, ब्रह्मकुण्ड से निकल कर कैलाशपर्वत की उपत्यका में स्थित लौहित्य नामक सरोवर में गिरा॥३०॥

तस्यापि सरसस्तीरे समुत्थाय महाबलः।
कुठारेण दिशं पूर्वामनयद् ब्रह्मणः सुतम् ॥३१॥

महाबलीपरशुराम, उस सरोवर के किनारे से भी अपने परशु से उठाकर, उस ब्रह्मपुत्र को पूर्वदिशा में ले गये॥३१॥

ततः परत्रापि गिरिं हेमशृङ्गं विभिद्य च ।
कामरूपान्तरं पीठमावहद्यदमुं हरिः ॥३२॥

तब उन विष्णु ने आगे हेमशृंग नामक पर्वत को भी भेदकर उसे कामख्यापीठ की ओर प्रवाहित किया॥३२॥

तस्य नाम स्वयं चक्रे विधिर्लौहित्यगङ्गकम् ।
लौहित्यात् सरसो जातो लौहित्याख्यस्ततोऽभवत् ॥३३॥

ब्रह्मा ने स्वयं उसका नाम लौहितगङ्गा रखा, लौहित्य सरोवर से उत्पन्न होने के कारण वह लौहित्य नाम से प्रसिद्ध हुआ॥३३॥

स कामरूपमखिलं पीठमाप्लाव्य वारिणा ।
गोपयन् सर्वतीर्थानि दक्षिणं याति सागरम् ॥३४॥

वह सम्पूर्ण कामरूपपीठ को जल से डुबाकर तथा सभी तीर्थों को अपने में छिपाकर, दक्षिणसागर में जाता है॥३४॥

प्रागेव दिव्ययमुनां स त्यक्त्वा ब्रह्मणः सुतः ।
पुनः पतति लौहित्ये गत्वा द्वादशयोजनम् ॥३५॥

पहले ही कहे दिव्ययमुना को छोड़कर वह ब्रह्मपुत्र, बारहयोजन जाकर पुनः लौहित्य में गिरता है॥३५॥

चैत्रे मासि सिताष्टम्यां यो नरो नियतेन्द्रियः ।
चैत्रं तु सकलं मासं शुचिः प्रयतमानसः ॥३६॥
स्नाति लौहित्यतोये तु स याति ब्रह्मणः पदम् ।
लौहित्यतोये यः स्नाति स कैवल्यमवाप्नुयात् ॥३७॥

जो मनुष्य नियतेन्द्रिय होकर चैत्रमास के शुक्लपक्ष की अष्टमी को या सम्पूर्ण चैत्रमास, पवित्र और नियन्त्रित मन से, लौहित्य के जल में स्नान करता है वह ब्रह्मा के पद को प्राप्त करता है। जो लौहित्य के जल में स्नान करता है, वह कैवल्य को प्राप्त करता है॥३६-३७॥

इति ते कथितं राजन् यदर्थं मातरं पुरा ।
अहन् वीरो जामदग्न्यो यस्माद् वा क्रूरकर्मकृत् ॥३८॥

हे राजन् ! प्राचीनकाल में जमदग्नि के पुत्र परशुराम ने जिस कारण से माता का वध किया और क्रूरकर्मा हुए, वह मैंने तुमसे कह दिया॥३८॥

इदं तु महदाख्यानं यः शृणोति दिने दिने ।
स दीर्घायुः प्रमुदितो बलवानभिजायते ॥३९॥

यह एक महान आख्यान है जो इसे प्रतिदिन सुनता है, वह दीर्घायु, प्रसन्न और बलवान् हो जाता है ।।३९।।

इति ते कथितं राजञ्छरीरार्धं यथाद्रिजा ।
शम्भोर्जहार वेतालभैरवौ च यथाह्वयौ ।।४०।।
यस्य वा तनयौ जातौ यथा यातौ गणेशताम् ।
किमन्यत् कथये तुभ्यं तद्वदस्व नृपोत्तम ।।४१।।

हे राजन् ! जिस प्रकार पार्वती ने शिव के अर्धशरीर को प्राप्त किया, वेताल और भैरव दोनों जिसके पुत्र थे एवं जैसे उन्होंने गणों का स्वामित्व प्राप्त किया था, वह सब तुमसे मेरे द्वारा कहा गया । हे राजाओं में श्रेष्ठ! अब मैं तुमसे और क्या कहूँ? वह बताओ।।४०-४१।।

।। मार्कण्डेय उवाच ।।

इत्यौर्व्वस्य च संवादः सगरेण महात्मना ।
यौऽसौ कायार्धहरणं शम्भोर्गिरिजायाः कृतः ।।४२।।
सर्वोऽद्य कथितो विप्राः पृष्टं यच्चान्यदुत्तमम् ।
सिद्धस्य भैरवाख्यस्य पीठानां च विनिर्णयम् ।।४३।।
भृङ्गिणश्च यथोत्पत्तिर्महाकालस्य चैव हि ।
उक्तं हि वः किमन्यत् तु पृच्छन्तु द्विजसत्तमाः ।।४४।।

मार्कण्डेय बोले— हे विप्रों ! इस प्रकार और्व और महात्मा सगर का संवाद, जिसमें पार्वती द्वारा शिव के शरीरार्ध का ग्रहण किया गया, वह सब तथा अन्य जो उत्तम बातें पूछी गई, पीठों का निर्धारण, सिद्ध-भैरव-भृङ्गि और महाकाल की उत्पत्ति वह सब कहा गया। हे द्विजसत्तमों! आप सब और क्या पूछ रहे हैं।।४२-४४।।

इति सकलसुतन्त्रं तन्त्रमन्त्रावदातं
बहुतरफलकारि प्राज्ञविश्रामकल्पम् ।
उपनिषदमवेत्य ज्ञानमार्गैकतानं
स्रवति स इह नित्यं यः पठेत् तन्त्रमेतत् ।।४५।।

।। इति श्रीकालिकापुराणे परशुरामचरितवर्णने त्र्यशीतितमोऽध्यायः ।।

इस प्रकार से यह उत्तमतन्त्र, जो तन्त्र-मन्त्रों का समूह है, बहुत ही फलदायक है, बुद्धिमानों को विश्राम देने वाला है। जो इस तन्त्र को नित्य पढ़ता है, उसमें उपनिषदों की भाँति, ज्ञान का संचार होता है।।४५।।

श्रीकालिकापुराण में परशुरामचरितवर्णनसम्बन्धी तिरासीवाँ अध्याय सम्पूर्ण हुआ।।८३।।



चतुरशीतितमोऽध्यायः
राजधर्मकथनम्

।। ऋषय ऊचुः ।।

कथितो भवता सर्गः संशयश्चापि शातिताः ।
त्वत्प्रसादान्महाभाग कृतकृत्या वयं गुरो ।।१।।

ऋषिगण बोले– हे गुरुदेव ! आपके द्वारा सृष्टि का वर्णन किया गया तथा हमारे संशय भी नष्ट किये गये। हे महाभाग ! आपकी कृपा से हम सब कृतकृत्य हो गये हैं।।१।।

भूयश्च श्रोतुमिच्छामो वयमेतद् द्विजोत्तम ।
कोऽन्यो भृङ्गी महाकालो जातौ वेतालभैरवौ ।।२।।

हे द्विजों में उत्तम ! हम सब पुनः सुनना चाहते हैं कि क्या कोई अन्य भृङ्गी और महाकाल थे जो अगले जन्म में वेताल तथा भैरव हुए थे ।।२।।

वेतालं च महाकालं भैरवं भृङ्गिणं तथा ।
शृणुमो द्विजशार्दूल कथमेषां चतुष्ट्यम् ।।३।।

हे द्विजसिंहों ! हमने तो वेताल और महाकाल, भैरव तथा भृङ्गि, इन चार के विषय में सुना है, यह नाम चतुष्टय क्या है?।।३।।

।। मार्कण्डेय उवाच ।।

भुवं गते महाकाले मानुष्यस्थे च भृङ्गिणि ।
वेतालभैरवाख्ये च तयोर्भूते द्विजोत्तमाः ।।४।।

मार्कण्डेय बोले–हे द्विजों में श्रेष्ठजन ! महाकाल और भृङ्गि के मनुष्यशरीर प्राप्त कर पृथ्वी पर आने पर वे ही दोनों क्रमशः वेताल और भैरव नाम वाले हो गये।।४।।

वरलब्धे च वेताले भैरवे तेन सङ्गते ।
अन्धकं तपसा युक्तं भृङ्गिणं चाकरोद्धरः ।।५।।

वेताल और उसके साथ ही भैरव के वर प्राप्त कर लेने के बाद, तपस्या में लगे अन्धक को भगवान् शिव ने भृङ्गिगण बना दिया (नाम दिया)।।५।।

अन्धकस्तु हरं पूर्वं विरुध्यापदमागतः ।

पश्चाद्धरं समाराध्य पुत्रोऽभूत् तस्य सोऽसुरः ।
भृङ्गिस्नेहाद् भृङ्गिणं तं संज्ञया चाकरोद्धरः ।।६।।

पूर्वकाल में उस अन्धक नामक असुर ने भगवान् शङ्कर से विरोध करके आपत्ति (मृत्यु) को प्राप्त किया तत्पश्चात् भगवान् शिव की आराधना करके वह उनका पुत्र हुआ। भृङ्गि से विशेष स्नेह के कारण भगवान् शङ्कर ने उसे भृङ्गिगण का नाम दिया था।।६।।

स्नेहेन तु महाकाले बाणं बलिसुतं हरः ।
विष्णुना छिन्नबाहुं तु महाकालमथाकरोत् ।।७।।

महाकाल के प्रति विशेष स्नेह होने के कारण भगवान् शंकर ने बलि के पुत्र, बाण को ही विष्णु के द्वारा उसकी भुजायें काटे जाने के पश्चात्, उसे महाकाल नामक गण बना दिया।।७।।

एवं मुनिवरस्तेषां संयतं च चतुष्टयम् ।
वेतालभैरवौ भृङ्गिमहाकालौ ह्यनुक्रमात् ।।८।।

इस प्रकार वेताल, भैरव, भृङ्गि एवं महाकाल के रूप में उनका चतुष्टय, पुनः क्रमशः व्यवस्थित हो गया।।८।।

।। ऋषय ऊचुः ।।

यत् पृष्टं सगरेणैव मुनिमौर्व्वं महाधियम् ।
नीत्या योज्या यया भार्या सुत आत्माऽथवा गुरो ।।९।।
राजनीतौ सतां नीतौ सदाचारे च ये स्थिताः ।
विशेषास्तेन ये प्रोक्ता और्वेण सुमहात्मना ।।१०।।
विशेषेण द्विजश्रेष्ठ श्रोतुं सम्यक् तपोधन ।
इच्छामस्तान् महाभाग कथयस्व जगद्गुरो ।।११।।

ऋषिगण बोले– हे गुरु ! राजा सगर के द्वारा महान् बुद्धिमान् और्वमुनि से जो पूछा गया था कि किस नीति से स्वयं को, अपनी भार्या तथा अपने पुत्र को युक्त किया जाना चाहिये जिससे वे राजनीति, सज्जनों की नीति और सदाचार में स्थित रहें। इस सन्दर्भ में उन महात्मा और्व के द्वारा जो रहस्य कहा गया है। हे द्विजों में श्रेष्ठ! हे तपोधन! उसे हम विशेषरूप से सुनना चाहते हैं । हे महाभाग ! हे जगद्गुरु! उन्हें आप कहें।।९-११।।

।। मार्कण्डेय उवाच ।।

ये ये विशेषाः कथिता और्वेण सुमहात्मना ।
तद्वः सर्वं प्रवक्ष्यामि शृण्वन्तु मुनिसत्तमाः ।।१२।।

मार्कण्डेय बोले– हे मुनियों में श्रेष्ठ मुनिगण ! महात्मा और्व के द्वारा जो-जो भेद बताये गये हैं, वह सब मैं आप लोगों से कहूँगा । आप सब उसे सुनें।।१२।।

श्रुत्वैवं सगरो राजा मन्त्रकल्पादिकं पुनः ।
विशेषं परिपप्रच्छ नीत्यादीनां महामुनिम् ।।१३।।

इस प्रकार मन्त्र और विधि के सम्बन्ध में सुनकर राजा सगर ने महामुनि और्व से पुनः नीति आदि के भेद को पूछा ॥१३॥

।। सगर उवाच ।।

यया नीत्या प्रयोक्तव्यः सुत आत्मा प्रिया तथा ।
तेषां विशेषैः सहितं सदाचारं वदस्व मे ।।१४।।

जिस नीति से प्रिया, आत्मा, पुत्र को नियोजित करना चाहिये उसमें विशेषों (भेदों) सहित आप मुझसे सदाचार का वर्णन कीजिये ॥१४॥

।। और्व उवाच ।।

क्रमेण शृणु राजेन्द्र ययानीत्या नियोजिताः ।
आत्मा सुतो वा भार्या वा तद् विशेषं शृणुष्व मे ।।१५।।

और्व बोले– हे राजाओं में इन्द्र के समान श्रेष्ठ ! जिस नीति में अपने को, अपने पुत्र और पत्नी को नियोजित करना चाहिये, उन भेदों को तुम क्रमशः मुझसे सुनो॥१५॥

ज्ञानविद्यातपोवृद्धान् वयोवृद्धान् सुदक्षिणान् ।
सेवेत प्रथमं विप्रानसूयापरिवर्जितान् ।।१६।।

सबसे पहले, ईर्ष्या से रहित, ज्ञान, विद्या, तप और वय में वृद्ध ब्राह्मणों की, जिन्हें सुन्दरदक्षिणा से सन्तुष्ट किया गया हो, उनकी सेवा करे॥१६॥

तेभ्यश्च शृणुयान्नित्यं वेदशास्त्रविनिश्चयम् ।
यदूचुस्ते च तत् कार्यं प्राज्ञ चैव नृपश्चरेत् ।।१७।।

राजा उनसे नित्य वेद-शास्त्रों के सार सुने तथा जो वे कहें, उसके अनुसार ही बुद्धिमान् राजा कार्य करे॥१७॥

पञ्चेन्द्रियाणि पञ्चाश्वाः शरीरं रथ उच्यते ।
आत्मा रथी कशा ज्ञानं सारथिर्मन उच्यते ।।१८।।

आँख, कान, नाक, जिह्वा और त्वचा ये पाँच (ज्ञान) इन्द्रियाँ, शरीररूपी रथ के पाँच घोड़े हैं, आत्मा उस पर विराजमान रथी, ज्ञान चाबुक, तथा मन सारथि कहे जाते हैं॥१८॥

अश्वान् सुदान्तान् कुर्वीत सारथिं चात्मनो वशम् ।
कशा दृढा सदा कार्या शरीरस्थिरता तथा ।।१९।।

इन्द्रियरूपी अश्वों को सुन्दरढंग से नियन्त्रित करे तथा मनरूपी सारथी को अपने वश में रखे। ज्ञानरूपी कशाको सदैव दृढ़ करे और शरीररूपी रथ को स्थिरता प्रदान करे॥१९॥

अदान्तांस्तु समारुह्य सैन्धवान् स्यन्दनी यथा ।
अश्वानामिच्छया गच्छन्नुत्पथं प्रतिपद्यते ।।२०।।

अनियन्त्रित घोड़ों पर चढ़ा हुआ रथी जैसे घोड़ों के अपनी इच्छानुसार चलने पर अनुचित रास्ते पर चला जाता है।।२०।।

तत्रावशः सारथिस्तु स्वेच्छया प्रेरयन् हयान् ।
नयेत् परवशं सम्यग् प्रथितं वीरमप्युत ।।२१।।

वैसे ही वश में न किया सारथी भी स्वेच्छा से घोड़ों को प्रेरित कर प्रसिद्ध वीर को भी परवश कर देता है।।२१।।

तथेन्द्रियाणि नृपतिर्विषयाणां परिग्रहे ।
स्ववश्यानि प्रकुर्वीत मनो ज्ञानं दृढं तथा ।।२२।।

एक राजा को चाहिये कि वह विषयों के परिग्रह में इन्द्रियों को, मन को अपने वश में रखे तथा ज्ञान को दृढ़ करे।।२२।।

ज्ञाने दृढे कशायां च दृढायां नृपसत्तम ।
सारथिः स्ववशो दान्तानीशः प्रेरयितुं हयान् ।।२३।।

हे राजाओं में श्रेष्ठ ! ज्ञान के दृढ़ होने, कशा की दृढ़ता होने पर स्ववश सारथि के साथ, ईश (स्वामी) रथी, अपने घोड़ों को नियन्त्रितरूप से प्रेरित करने में सक्षम होता है।।२३।।

अतो नृपः स्वेन्द्रियाणि वशे कृत्वा मनस्तथा ।
ज्ञानमार्गमधिष्ठाय प्रकुर्वीतात्मनो हितम् ।।२४।।

इसलिए राजा अपनी इन्द्रियों तथा मन को वश में करके ज्ञानमार्ग का आश्रय ले अपना हित करे।।२४।।

भोक्तव्यं स्वेच्छया भूयो न कुर्याल्लोभमासवे ।
द्रष्टव्यमिति द्रष्टव्यं न द्रष्टव्यं च स्वेच्छया ।।२५।।

राजा को अपनी रुचि के अनुसार बार-बार भोग करना चाहिये किन्तु आसवों का लोभ नहीं करना चाहिये। जो देखने योग्य हो वही देखना चाहिये, देखने में मनमानी नहीं करनी चाहिये।।२५।।

श्रोतव्यमिति श्रोतव्यं नाधिकं श्रवणे चरेत् ।
शास्त्रतत्त्वामृते धीरेः श्रुतिवश्यो भवेन्न हि ।।२६।।

जो सुनने योग्य हो वही सुने, अधिक सुनने की चेष्टा न करे, शास्त्रज्ञान के अतिरिक्त, धीरपुरुष कानों के वश में न हो।।२६।।

एवं घ्राणं त्वचं चाति वशीकृत्येच्छया नृपः ।
स्वेच्छया नोपभुञ्जीत नोद्दामं विषयं व्रजेत् ।।२७।।

इसीप्रकार राजा अपनी घ्राणेन्द्रिय तथा त्वचा को भी अपने वश में करे, वह स्वेच्छा से उनका उपभोग न करे और न उन्हें विषयों की ओर उद्दामभाव से दौड़ने दे।।२७।।

एवं यदि भवेद्राजा तदा स स्याज्जितेन्द्रियः ।
जितेन्द्रियत्वे हेतुश्च शास्त्रवृद्धोपसेवनम् ।।२८।।

राजा यदि इस प्रकार का होवे तो वह जितेन्द्रिय हो जाता है। जितेन्द्रियता का मुख्य कारण, शास्त्र और वृद्ध जनों की सेवा ही है ।।२८।।

अवृद्धसेव्यशास्त्रज्ञो नृपः शत्रुवशो भवेत् ।
तस्माच्छास्त्रमधिष्ठाय भवेद्राजा जितेन्द्रियः ।।२९।।

बिना वृद्धों की सेवा किये तथा शास्त्र को न जानने वाला राजा भी शत्रुओं का वशवर्ती हो जाता है अत: शास्त्रों का अधिष्ठान होने पर भी राजा को जितेन्द्रिय होना चाहिये।।२९।।

धृतिः प्रागल्भ्यमुत्साहो वाक्पटुत्वं विवेचनम् ।
दक्षत्वं धारयिष्णुत्वं दानमैत्रीकृतज्ञता ।।३०।।
दृढशासनतासत्यशौचं मतिविनिश्चयम् ।
पराभिप्रायवेदित्वं चरित्रं धैर्यमापदि ।।३१।।
क्लेशधारणशक्तिश्च गुरुदेवद्विजार्चनम् ।
अनसूया ह्यकोपित्वं गुणानेतान्नृपोऽभ्यसेत् ।।३२।।

धैर्य, कुशलता, साहस, वाकपटुता, विवेचना की शक्ति, दक्षता, धारण की इच्छा, दान, मैत्री, कृतज्ञता, शासन की दृढ़ता, सत्य, शौच, बुद्धि की विशेष निश्चय की क्षमता, दूसरे का अभिप्राय जानने की प्रतिभा, चरित्र, आपत्ति में धैर्य, कष्ट सहने की शक्ति, गुरु-देवता और ब्राह्मण की पूजा, ईर्ष्या न करना, क्रोध रहित होने जैसे गुणों का राजा अभ्यास करे ।।३०-३२।।

कार्याकार्यविभागश्च धर्मार्थे काम एव च ।
सततं प्रतिबुध्येत कुर्यादवसरेऽपि तत् ।।३३।।

राजा को करने योग्य एवं न करने योग्य कार्यों के भेद, धर्म-अर्थ-काम के प्रति निरन्तर जागरुक होना चाहिये, अवसर पर वह उस जागृति का उपभोग भी करे ।।३२।।

सामदानं च भेदश्च दण्डश्चेति चतुष्टयम् ।
ज्ञात्वोपायांस्तु तत्काले तदुपायान् प्रयोजयेत् ।।३४।।

साम, दाम, दण्ड और भेद इन चारों उपायों को जानकर वह समय पर इन उपायों का प्रयोग करे।।३४।।

साम्नस्तु विषये भेदो मध्यमः परिकीर्तितः ।
दानस्य विषये साम योग्यमेवोपलक्ष्यते ।।३५।।

दानस्य विषये दण्डो ह्यधमः परिकीर्तितः ।
दण्डस्य विषये दानं तदप्यधममुच्यते ।
साम्नस्तु गोचरे दण्डो ह्यधमादधमः स्मृतः ।।३६।।

साम उपायों से सम्बन्धित विषयों में भेद मध्यम उपाय कहा गया है । दान विषय में साम ही उचित उपाय दिखाई देता है। दान सम्बन्धी समस्याओं में दण्ड अधम उपाय कहा गया है तथा दण्ड के विषय में दान उससे भी अधम उपाय कहा जाता है। साम के विषयों में दण्ड अधम से भी अधम उपाय कहा गया है।।३५-३६।।

सौजन्यं सततं ज्ञेयं भूभृतो भेददण्डयोः ।
साम्नो दानस्य च तथा सौजन्यं याति गोचरे ।।३७।।

राजा सदैव भेद और दण्ड में आपसी सौजन्य को जाने तथा साम और दाम में दिखाई देने वाले सौजन्य को देखे।।३७।।

कामः क्रोधश्च लोभश्च हर्षो मानो मदस्तथा ।
एतानतिशयान् राजा शत्रूनिव विशातयेत् ।।३८।।

काम, क्रोध, लोभ, हर्ष, मान तथा मद इनकी अधिकता को राजा, शत्रुओं की भाँति नष्ट करे।।३८।।

सेव्याः काले संयुक्तौ ते लोभगर्वौ विवर्जयेत् ।।३९।।

उसे इनका समयानुसार संयुक्तरूप से सेवन भी करना चाहिये किन्तु लोभ और घमण्ड को वह सदैव दूर रखे ।।३९।।

तेज एव नृपाणां तु तीव्रंसूर्यस्य वै यथा ।
तत्र गर्वं रोगयुक्तं कायवांस्तं तु संत्यजेत् ।।४०।।

राजाओं का तेज सूर्य के समान तीव्र होता है । ऐसी परिस्थिति में जैसे मनुष्य रोगी शरीर को छोड़ देता है उसी प्रकार राजा गर्व को छोड़ दे।।४०।।

आखेटकाक्षौ स्त्रीसेवा पानं चैवार्थदूषणम् ।
वाग्दण्डयेश्च पारुष्यं सप्तैतानि विविर्जयेत् ।।४१।।

शिकार, जुआ, परस्त्रीसेवन, मदिरादिपान, दूषितधनग्रहण, वाणी का दण्ड देना (अनुचित वचन), कठोरता इन सात दोषों को राजा छोड़ दे ।।४१।।

परस्त्रीषु विरक्तासु सेवामेकान्ततस्त्यजेत् ।
सतीषु निजनारीषु युक्तं कुर्यान्निवेशनम् ।।४२।।

वह दूसरे की स्त्रियों या जो उनसे विरक्त रहती हों, ऐसी स्त्रियों का सेवन निश्चितरूप से छोड़ दे तथा सतीचरित्र वाली अपनी पत्नियों से ही उचित सम्पर्क करे।।४२।।

रतिपुत्रफला दारास्तांस्तु नैकान्ततस्त्यजेत् ।
तयोः सिद्ध्यै स्त्रियः सेव्या वर्जयित्वातिसक्तताम् ।।४३।।

पत्नियाँ रतिसुख और पुत्र का फलप्रदान करने वाली होती हैं, इसलिए उनका

पूर्णतः परित्याग कभी न करे। उपर्युक्त दोनों सुखों की प्राप्ति के लिए स्त्रियों का सेवन करना चाहिये किन्तु उनमें अधिक आसक्त नहीं होना चाहिये॥४३॥

मृगयां तु प्रमादानां स्थानं नित्यं विवर्जयेत् ।
अक्षांस्तथा न कुर्वीत सत्कार्यासक्तिनाशनम् ।
अन्यैः कृतं कदाचित् तु सेवेत नात्मनाचरेत् ।।४४।।

शिकार एवं प्रमाद के स्थानों का नित्य त्याग करे। उसी प्रकार जुओं में भी आसक्ति न करे क्योंकि इससे सत्कार्य में आसक्ति का नाश होता है । यदि आवश्यकता पड़े तो कभी दूसरों के किये उपयुक्त कार्यों का लाभ ले ले किन्तु स्वयं सेवन न करे॥४४॥

अकार्यकरणे बीजं कृत्यानां च विवर्जने ।
अकालमन्त्रभेदे च कलहे सत्कृतिक्षये ।।४५।।
वर्जयेत् सततं पानं शौचमाङ्गल्यनाशनम् ।
अर्थक्षयकरं नित्यं त्यजेच्चैवात्मदूषणम् ।।४६।।

निरन्तर मदिरापान, न करने योग्य कार्यों के करने, करने योग्य कार्यों को न करने, असमय में मन्त्रभेद (रहस्यभेद), कलह, सत्कृति के क्षय, शौच तथा माङ्गल्य का नाश करने वाला और अर्थ क्षय का एक स्थायी कारक है इसलिए राजा अपने इस दोष को छोड़ दे॥४५-४६॥

अभिशस्तेषु चोरेषु घातकेष्वाततायिषु ।
सततं पृथिवीपालो दण्डपारुष्यमाचरेत् ।।४७।।

राजा, कलंकित, चोर, घातक, आततायी जनों के प्रति निरन्तर दण्डनीति और कठोरता का आचरण करे॥४७॥

नान्यत्र दण्डपारुष्यं कुर्यान्नृपतिसत्तमः ।
वाक्पारुष्यं च सर्वत्र नैव कुर्यात् कदाचन ।।४८।।

श्रेष्ठराजा, दण्ड और कठोरता का इनके अतिरिक्त अन्यत्र प्रयोग न करे, उसे कभी भी सभी स्थानों पर वाणी की कठोरता का प्रयोग नहीं करना चाहिये॥४८॥

रक्षणीयं सदा सत्यं सत्यमेकं परायणम् ।
क्षमां तेजस्वितां चैव प्रस्तावान्नृप आचरेत् ।।४९।।

हे राजा ! उसे एकमात्र सत्य का परायण हो सदैव सत्य की रक्षा करनी चाहिये। वह क्षमा और तेजस्विता जैसे गुणों का प्रयोग प्रस्तावों (परिस्थितियों) के अनुरूप करे॥४९॥

यानासनाश्रयद्वैधसन्धयो विग्रहस्तथा ।
अभ्यसेत् षड्गुणानेतांस्तेषां स्थानं च शाश्वतम् ।।५०।।

यान (प्रस्थान), आसन, आश्रय, द्वैध, संधि और विग्रह (युद्ध) इन छः गुणों का अभ्यास, वह निरन्तर स्थान (अवसर) के अनुरूप करे ॥५०॥

यः प्रमाणं न जानाति स्थाने वृद्धौ तथा क्षये ।
कोष जनपदे दण्डे न स राज्येऽवतिष्ठते ।।५१।।

जो राजा अपने कोष, जनपद, दण्ड की स्थिति, वृद्धि तथा क्षय को प्रमाणित रूप से नहीं जानता, वह राज्य में स्थित नहीं रह सकता।।५१।।

कोषे जनपदे दण्डे चैकैकत्र त्रयं त्रयम् ।
प्रस्तावाद् विनियुञ्जीत रक्षेन्नैकांस्ततस्त्विमान् ।।५२।।
मित्रे शत्रावुदासीने प्रभावं त्रिष्वपीरयेत् ।।५३।।

राजा कोष, जनपद और दण्ड (शासन) की रक्षा हेतु एक-एक अथवा प्रत्येक में तीन-तीन के विचार से रक्षा करे किन्तु उपर्युक्त तीनों को कभी भी किसी एक के हाथ में न सौंपे। मित्र, शत्रु और उदासीन का विचार कर तीनों पर प्रभाव का प्रयोग करे।।५२-५३।।

उत्साहो विजिगीषायां धर्मकृत्येऽष्टवर्गके ।
शरीरयात्रानिर्वाहे क्रियेत सततं नृपैः ।।५४।।

राजाओं द्वारा विजय की इच्छा में, धर्मकृत्यों में, अष्टवर्गसम्बन्धी कार्यों में, शरीरयात्रा के निर्वाह में, निरन्तर उत्साह का प्रयोग किया जाना चाहिये।।५४।।

मन्त्रनिश्चयसम्भूतां बुद्धिं सर्वत्र योजयेत् ।
अमात्ये शात्रवे राज्ये पुत्रेष्वन्तःपुरेषु च ।।५५।।

उसे मन्त्र (मन्त्रियों) के निश्चय से उत्पन्न बुद्धि का ही अमात्य, शत्रु, राज्य, पुत्र तथा अन्तःपुर सम्बन्धी व्यवहारों में उपयोग करना चाहिये ।।५५।।

कृषिं दुर्गं च वाणिज्यं खड्गानां करसाधनम् ।
आदानं सैन्यकरयोर्बन्धनं गजवाजिनोः ।।५६।।
शून्ये सद्ममुखानां च योजनं सततं जनैः ।
त्रयाणां सारसेतुनां बन्धनं चेति चाष्टमम् ।
एतदष्टसु वर्गेषु चारान् सम्यक् प्रयोजयेत् ।।५७।।

कृषि, दुर्ग, वाणिज्य, खड्ग (शस्त्र), करसाधन, आदान, सैन्यसंगठन, हाथी-घोड़ों का बन्धन, शून्यगृह आदि की व्यवस्था, नित्य लोगों के तीन, सारसेतुओं, बन्धन, इन आठ कार्यों में दूतों को (अधिकारियों को) भली-भाँति योजित करे।।५६-५७।।

कार्याकार्यविभागाय चाष्टवर्गाधिकारिणाम् ।
अष्टौ चारान्नियुञ्जीयादष्टवर्गेषु पार्थिवः ।।५८।।

हे राजन् ! कार्य (करने योग्य कार्य), अकार्य (न करने योग्य कार्य) के विचार के लिए आठो वर्गों के आधिकारिक आठदूतों को आठो वर्गों में नियुक्त करे।।५८।।

दश शून्येषु युञ्जीत क्रमतः शृणु तानि मे ।।५९।।

स्वामी सचिव-राष्ट्राणि मित्रं कोशो बलं तथा ।
दुर्गं तु सप्तमं ज्ञेयं राज्याङ्गं गुरुभाषितम् ।।६०।।

जिन दश शून्यों में अधिकारियों की नियुक्ति करनी चाहिये उसे क्रमशः सुनो– स्वामी, सचिव, राष्ट्र, मित्र, कोश, बल तथा दुर्ग इन सात को गुरु द्वारा कथित राज्य के अङ्ग जानना चाहिये।।५९-६०।।

दुर्गयुक्तं चाष्टवर्गे चारान्नात्मनि योजयेत् ।
तस्मादिमानि शेषाणि पंच चारपदानि च ।।६१।।

दुर्ग का उल्लेख पहले अष्टवर्ग के प्रसङ्ग में किया गया है और अपने पीछे अर्थात् दूतों को नहीं लगाना इसलिए उपर्युक्त सात अङ्गों में से केवल पाँच ही चरों द्वारा रक्षणीय हैं।।६१।।

शुद्धान्तेषु च पुत्रेषु ससूप्यादौ महानसे ।
शत्रूदासीनयोश्चापि बलाबलविनिश्चये ।
अष्टादशसु चैतेषु चारान् राजा प्रयोजयेत् ।।६२।।

शुद्ध (एकान्त), अन्तःपुर में एवं पुत्रों, रसोइयासहित रसोई में, शत्रुओं एवं उदासीनों के बलाबल का विनिश्चय करने के लिए राजा को उपयुक्त अठारह प्रकार के प्रसङ्गों (आठवर्ग एवं दशशून्य) का प्रयोग करना चाहिये।।६२।।

न यत्प्रकाशं जानीयात् तत् तच्चारैर्निरुपयेत् ।
निरुप्य तत्-प्रतीकारमवश्यं छिद्रतश्चरेत् ।।६३।।
यथानियोगमेतेषां यो यो यत्रान्यथाचरेत् ।
ज्ञात्वा तत्र नृपश्चारैर्दण्डयेद् वा वियोजयेत् ।।६४।।

जिसका स्पष्टतः पता न चले उसे जानने के लिए गुप्तचरों की व्यवस्था करनी चाहिये। चरों का निरुपण करने के पश्चात जो त्रुटियाँ मिलें उनका, उनके अनुरूप प्रतिकार अवश्य करे । जहाँ जिसकी नियुक्ति की गई हो यदि वह अन्यथा आचरण करे तो, उसे दूतों द्वारा जानकर, राजा उन्हें दण्डित करे या कार्यमुक्त कर दे।।६३-६४।।

चारांस्तु मन्त्रिणा सार्धं रहस्ये संस्थितो नृपः ।
प्रदोषसमये पृच्छेत् तदानीमेव साधयेत् ।।६५।।

राजा सन्ध्या के समय, एकान्त में मन्त्रियों के साथ, दूतों से पूछे तथा उसी समय उनकी व्यवस्था भी करे।।६५।।

स्वपुत्रे चाथ शुद्धान्ते ये तु चारा महानसे ।
नियुक्तास्तान्मध्यरात्रे पृच्छेत् स्वेऽपि च मन्त्रिणि ।।६६।।
एतांश्चारान् स्वयं पश्येन्नृपतिमन्त्रिणा विना ।
अन्यांस्तु मन्त्रिणा सार्धं निरुप्य प्रदिशेत् फलम् ।।६७।।

अपने पुत्रों, अपने अन्तःपुर के सेवकों, रसोइयों, अपने प्रति या मन्त्रियों के प्रति जिन दूतों की राजा द्वारा नियुक्ति की गई हो, उनसे मन्त्रियों की अनुपस्थिति में स्वयं राजा, मध्यरात्रि में विचार करें। अन्यों का मन्त्रियों के साथ रहकर निरूपण करे और फल का निर्देश करे॥६६-६७॥

नैकवेशधरश्चारो नैको नोत्साहवर्जितः ।
संस्तुतो नहि सर्वत्र नातिदीर्घो न वामनः ॥६८॥
सततं न दिवाचारी न रोगी नाप्यबुद्धिमान् ।
न वित्तविभवैर्हीनो न भार्यापुत्रवर्जितः ॥६९॥
कार्यश्चारो नृपतिना तत्त्वगुह्यविनिर्णये ॥७०॥

चार (दूत) तो न एक वेश धारण करने वाला, न अकेला और न वह उत्साह रहित हो । वह सब जगह, सबसे वार्ता करने वाला भी नहीं होना चाहिये । दूत न बहुत लम्बा हो और न बौना । उसको दिन में निरन्तर विचरण करने वाला भी नहीं होना चाहिये । वह न रोगी हो और न अबुद्धिमान् अर्थात बुद्धिहीन हो । वह धन और वैभव से न तो रहित हो और न स्त्री-पुत्र से रहित ही हो । राजा द्वारा गुप्ततत्त्वों के निर्णय हेतु उपर्युक्त लक्षणोंवाला दूत नियुक्त करना चाहिये॥६८-७०॥

अनेकवेशग्रहणक्षमं भार्यासुतैर्युतम् ।
बहुदेशवचोऽभिज्ञं पराभिप्रायवेदकम् ॥७१॥
दृढभक्तं प्रकुर्वीत चारं शक्तमसाध्वसम् ।
अभितिष्ठेत् स्वयं राजा कृषिमात्मसमैस्तथा ॥७२॥

राजा, कृषि में, अपने समानलोगों के प्रति अनेक वेश ग्रहण करने में समर्थ, पत्नी तथा पुत्र से युक्त, बहुत से देश की बोलियों को जानने वाले, दूसरों के अभिप्रायों को जानने वाले, शक्तिशाली एवं न थकने वाले, राजा के प्रति दृढ़भक्ति रखने वाले, दूतों को स्वयं नियुक्त करे॥७१-७२॥

वणिक्पथे तु दुर्गादौ तेषु शक्तान्नियोजयेत् ।
अन्तःपुरे पितुस्तुल्यान् धीरान्वृद्धान्नियोजयेत् ॥७३॥

व्यापारिक मार्गों पर, दुर्ग आदि प्रकृतियो के सन्दर्भ में शक्तिशाली तथा अन्तःपुर के कार्यों में पिता के समान धैर्यशाली और वृद्धगुप्तचरों की नियुक्ति करे॥७३॥

षण्डान् पण्डांस्तथा वृद्धां स्त्रियो वा बुद्धितत्पराः ।
शुद्धान्ते द्वारि युञ्जीयात् स्त्रियो वृद्धा मनीषिणीः ॥७४॥

राजा को अपने अन्तःपुर के द्वार पर बुद्धिमान्, वृद्ध, नपुंसक पुरुषों या बुद्धिमती, वृद्धा, स्त्रियों की नियुक्ति करनी चाहिये॥७४॥

नैकः स्वपेत् कदाचित् तु नैको भुञ्जीत पार्थिवः ।
नैकाकिनीं तु महिषीं ब्रजेन्मैत्राय नैककः ।।७५।।

राजा को न तो अकेले कभी सोना चाहिए और न अकेले भोजन ही करना चाहिये, न उसे एक ही रानी रखनी चाहिए, न उसे केवल अकेले शौच करने ही जाना चाहिये।।७५।।

अमात्यानुपधाशुद्धान् भार्याः पुत्रांस्तथैव च ।
प्रकुर्यात् सततं भूपः सप्रसादं समाचरन् ।।७६।।

राजा को उपधा (विशेष परीक्षण) द्वारा, अमात्य, पुत्र, एवं पत्नियों के साथ प्रसन्नतापूर्वक निरन्तर व्यवहार करना चाहिये ।।७६।।

धर्मार्थकाममोक्षैश्च प्रत्येकं परिशोधनैः ।
उपेत्य धीयते यस्मादुपधा सा प्रकीर्तिता ।।७७।।

धर्म, अर्थ और काम तथा मोक्ष में से एक-एक के शुद्धि हेतु, इसमें निकट से धारण किया जाता है (विचार किया जाता है), इसीलिए उसे उपधा कहा गया है।।७७।।

अर्थकामोपधाभ्यां तु भार्यापुत्रांश्च शोधयेत् ।
धर्मोपधाभिर्विप्रांस्तु सर्वाभिः सचिवान् पुनः ।।७८।।

राजा अर्थ और काम की उपधाओं से पत्नी और पुत्रों की परीक्षा करे, धर्मउपधा से ब्राह्मणों की तथा अर्थ, धर्म, काम सभी उपधाओं से सचिवों की परीक्षा करे ।।७८।।

।। धर्म-उपधावर्णन ।।

एभिर्यज्ञैस्तथा दानैरिहैव नृपतिर्भवेत् ।
तस्माद् भवांस्तु राज्यार्थी धर्ममेवं समाचरेत् ।।७९।।

इन यज्ञों और दानों के करने से मनुष्य इसी लोक में राजा हो जाता है । अतः आप भी राज्य के लिये इसी प्रकार के धर्म का आचरण करें।।७९।।

अनेनैवाभिचारेण यज्ञैर्वा पार्थिवो ह्ययम् ।
प्राणांस्त्यजति राजा त्वं भविष्यसि न संशयः ।।८०।।

इस अभिचार से, यज्ञ से, यह राजा मृत्यु को प्राप्त करेगा तथा आप राजा हो जायेंगे, इसमें कोई संशय नहीं है।।८०।।

इति धर्मो नृपस्यैव अश्वमेधादिकश्च यः ।
स्वयं न कुरुते भूपस्तस्मात् त्वं कुरु सत्तम ।।८१।।

हे श्रेष्ठ पुरुष ! जो अश्वमेधादि यज्ञ हैं, इनका करना राजा का कर्तव्य है किन्तु यदि वह नहीं कर रहे हैं तो आप ही स्वयं करें।।८१।।

एवं मन्त्रैर्मन्त्रयित्वा नृपः कार्यान्तिकाद् द्विजात् ।
तैरज्ञातान् स्वयं ज्ञात्वा गृह्णीयात् तस्य तैर्मनः ।।८२।।

इस प्रकार के उपर्युक्त परामर्शों से राजा, अपने समीपवर्ती द्विजकर्मचारियों से मन्त्रणा करके, उनके द्वारा न जानी गई बातों को स्वयं जानकर, उनके मन की बात को ग्रहण (ज्ञात) करे।।८२।।

यदि राज्याभिलाषेण सचिवोऽधर्ममाचरेत् ।
नृपतौ बाधिकं कुर्याद् धर्मं तं हीनतां नयेत् ।।८३।।

यदि राज्य की अभिलाषा से सचिव अधर्म का आचरण करता हो तो वह तो राजा का वध कर देता है या राज्यधर्म में हीनता उत्पन्न करता है ।।८३।।

आभिचारिकमत्यर्थं कुर्वाणं तु विघातयेत् ।
प्रवासयेद् ब्राह्मणं तु पार्थिवश्चाभिचारिकम् ।।८४।।

राजा अत्यधिक अभिचारिककर्म करने वाले क्षत्रिय को मार डाले, यदि वह ब्राह्मण हो तो उसे देश निकाला दे दे।।८४।।

एषा धर्मोपधा ज्ञेया तैरमात्यान् सुताञ् जयेत् ।
एतादृशीं तथैवान्यामुपधां धर्मतश्चरेत् ।।८५।।

यह धर्म उपधा है। इससे अमात्यों और पुत्रों को वश में करे। इसीप्रकार अन्य अर्थ, कामादि उपधाओं का भी वह, धर्मपूर्वक प्रयोग करे।।८५।।

।। अर्थ-उपधावर्णन ।।

कोशाध्यक्षान् समामन्त्र्य राजामात्यान् प्रतारयेत् ।
पुत्रानन्यान् प्रति तथा मन्त्रसंवरणाक्षमान् ।।८६।।

मन्त्र (परामर्श) वरण करने में असमर्थ कोशाध्यक्षों, अमात्यों, पुत्र आदि के आमन्त्रण का छल करे ।।८६।।

अयं हि प्रचुरः कोषो मदायत्तो नरोत्तम ।
आनये तव संमत्या तद् यदि त्वं प्रतीक्षसिः ।।८७।।
तवार्थलग्नादस्माकं जीवनं च भविष्यति ।
त्वं चापि प्रचुरैः कोषैः किं किं वा न करिष्यसि ।।८८।।
एवमन्यैः कोषगतैरुपायैर्नृपसत्तमः ।
पुत्रामात्यादिकान् सर्वान् सततं परिशोधयेत् ।।८९।।

हे श्रेष्ठपुरुष! यह जो मैंने बहुत अधिक कोष आदि अर्जित किया है, तुम्हारी सम्मति हो और तुम प्रतिक्षा करो तो, मैं उसे ले आऊँ। तुम्हारे लिए ही हमारा जीवन भी होगा । तुम भी पर्याप्त धन पाकर क्या क्या नहीं कर सकते अर्थात् बहुत कुछ कर सकते हो । इस प्रकार के अनेक कोशसम्बन्धी उपायों से, श्रेष्ठराजा, पुत्र तथा अमात्यादि का नित्य शोधन (परीक्षण) करता रहे।।८७-८९।।

कोषदोषकरान् हन्यात् कर्तुमिच्छन् विवासयेत् ।
द्वैधचित्तान् विमन्येत कुर्याद् वै कोशरक्षणम् ।।९०।।

तत्पश्चात् कोशसम्बन्धी (आर्थिक) अपराध करने वालों को मार डाले, करने की इच्छा करने वालों को निर्वासित कर दे, दुविधाग्रस्त की अवमानना करे, राजा को, अपने कोश की इस प्रकार से रक्षा करनी चाहिये।।९०।।

।। काम-उपधावर्णन ।।

दासीश्च शिल्पिनीर्वृद्धा मेधाधृतिमतीः स्त्रियः ।
अन्तर्वहिश्च या यान्ति विदिताः सचिवादिभिः ।।९१।।
ता राजा रहसि स्थित्वा भार्यादिभिरलक्षितः ।
अभिमन्त्र्याथ संमन्त्र्य प्रेषयेत् सचिवान् प्रति ।।९२।।

दासी, शिल्पी, वृद्धा, जो बुद्धिमती और धैर्यशालिनी स्त्रियाँ हों, जो सचिव आदि की जानकारी में बाहर-भीतर आती-जाती हों, ऐसी स्त्रियों से अपनी पत्नी आदि से छिप कर राजा एकान्त में मिले तथा उनसे मन्त्रणा करके अपनी सलाह के सहित उन्हें सचिव आदि के प्रति भेजे।।९१-९२।।

ता गत्वा हृदयं बुद्धा स्त्रियो विज्ञानतत्पराः ।
महिषीप्रमुखा राज्ञस्त्वां वै कामयते शुभाः ।
तत्राहं योजयिष्यामि यदि ते विद्यते स्पृहा ।।९३।।

वे विशेषज्ञानरखनेवाली, सुन्दर स्त्रियाँ वहाँ जाकर, उनके हृदय की बातजानें और कहें कि राजा की रानी आदि स्त्रियाँ आपकी कामना करती हैं। यदि आपकी भी इस सम्बन्ध में कोई इच्छा हो तो मैं आपको वहाँ जोड़ दूँगी, पहुँचा दूँगी।।९३।।

सचिवस्त्वां कामयते त्वद् योग्यो वरवर्णिनि ।
तं संगमयितुं शक्ता यदि श्रद्धा तवास्त्यहम् ।।९४।।

अथवा हे वरवर्णिनी ! अमुक सचिव भी आपकी कामना करता है और वह आपके योग्य भी है यदि आपकी श्रद्धा हो तो मैं उससे आपको मिला सकती हूँ।।९४।।

इत्यनेन प्रकारेण नानोपायैस्तथोत्तरैः ।
भार्याः पुत्रदुहित्रीश्च स्नुषाश्च प्रस्नुषास्तथा ।।९५।।
शोधयेत् सचिवान् पुत्रान् पौत्रादीन् सेवकांस्तथा ।
कामोपधाविशुद्धांस्तु घातयेदविचारयन् ।।९६।।

इस प्रकार के अनेक उपायों तथा अन्य उपायों, कामोपधाओं से पत्नी, पुत्रदुहिता (पोती), पतोहू, पौत्रवधू, सचिव, पुत्र, पौत्र, सेवकगण, अन्य स्त्री-पुरुष आदि सम्बन्धियों की परीक्षा लेकर, दोषी जनों को बिना विचारे ही मार डाले।।९५-९६।।

स्त्रियस्तु योज्या दण्डेन ब्राह्मणांस्तु प्रवासयेत् ।।९७।।

मोक्षमार्गावसक्तं तु हिंसापैशुन्यवर्जितम् ।
क्षमैकसारं नृपतिः सचिवं परिवर्जयेत् ।।९८।।

दोषी पाई गई स्त्रियों को दण्ड दे, ब्राह्मणों को देश निकाला दे, हिंसा-चुगुली आदि से रहित, मोक्षमार्ग में जुटे हुये, क्षमा ही जिनका एक मात्र सार है, ऐसे सचिव भी यदि दोषी पाये जायँ तो राजा उन्हें त्याग दे।।९७-९८।।

मोक्षमार्गविरक्तांस्तु दण्डयानपि न दण्डयेत् ।
समबुद्धिस्तु सर्वत्र तस्मात् तं परिवर्जयेत् ।।९९।।

मोक्षमार्ग में लगे हुये दण्डनीयचरित्रों को भी दण्ड नहीं देना चाहिये क्योंकि वे सबजगह अपनी समत्वबुद्धि के कारण दोष को समझ ही नहीं पाते, अतएव उनका त्याग ही, दण्ड है।।९९।।

इति सूत्रं चोपधानामुपधा बहुधा पुनः ।
विवेचिता चोशनसा तच्छास्त्रे तत्र बोधयेत् ।।१००।।

इस प्रकार उपधा सम्बन्धी बहुत से सूत्र होते हैं और बहुत सी उपधायें होती हैं, जिनका विवेचन उशना (शुक्राचार्य) ने किया है । उन्हें उनके शास्त्रों, नीति आदि ग्रन्थों से जानना चाहिये।।१००।।

विग्रहं सततं राजा परैर्न्न सम्यगाचरेत् ।
भूवित्तमित्रलाभेषु निश्चितेष्वेव विग्रहाः ।।१०१।।

राजा को सदैव शत्रुओं से युद्ध ही नहीं करना चाहिये। पृथ्वी, धन, मित्र आदि के लाभ का निश्चय (विचार) करके ही युद्ध करना चाहिये।।१०१।।

सप्ताङ्गेषु प्रसादश्च सदा कार्यो नृपोत्तमैः ।
कोषस्य सञ्चयं रक्षां सततं सम्यगाचरेत् ।।१०२।।

उत्तम राजाओं द्वारा अपने राज्य के सात अङ्गों का विस्तार तथा अपने कोष का सञ्चय और उसकी रक्षा, भलीभाँति और निरन्तर करनी चाहिये ।।१०२।।

मन्त्रिणस्तु नृपः कुर्याद् विप्रान् विद्याविशारदान् ।
विनयाज्ञान् कुलीनांश्च धर्मार्थकुशलानृजून् ।।१०३।।

राजा, विद्या में विशारद, विनय (विशेषनीति) का ज्ञान रखने वाले, कुलीन, धर्म और अर्थ सम्बन्धी कार्यों में कुशल, सरलप्रवृत्ति के ब्राह्मणों की मन्त्री के रूप में नियुक्ति करे।।१०३।।

मन्त्रयेत् तैः समं ज्ञानं नात्यर्थं बहुभिश्चरेत् ।
एकैकेनैव कर्तव्यं मंत्रस्य च विनिश्चयम् ।।१०४।।

वह उनके साथ समान ज्ञान से मन्त्रणा करे। मन्त्र का परामर्श, एक-एक से ही करे, बहुतों से, बहुत अधिक नहीं करे।।१०४।।

व्यस्तैः समस्तैश्चान्यस्य व्यपदेशैः समन्ततः ।
सुसंवृतं मन्त्रगृहं स्थलं वारुह्य मन्त्रयेत् ।
अरण्ये निःशलाके वा न यामिन्यां कदाचन ।।१०५।।

वह अलग-अलग, इकट्ठा होकर, दूसरों को हटाकर या सबको मिलाकर, भली-भाँति घिरे हुये, सुरक्षित मन्त्रणागृह या स्थान पर पहुँच कर, मन्त्रणा करे, वह कभी वन में, खुले स्थान में, रात्रि में मन्त्रणा न करे।।१०५।।

शिशूञ्छाखामृगान् षण्डाञ्छुकान् वै सारिकास्तथा ।
वर्जयेन्मन्त्रगेहे तु मनुष्यान् विकृतांस्तथा ।।१०६।।

बच्चों को, बन्दरों को, षण्ड (हिजड़ों), तोतों और मैना आदि पक्षियों एवं विकृतमनुष्यों को मन्त्रणाकक्ष से निकाल दे।।१०६।।

दूषणं मन्त्रभेदेषु नृपाणां यत् तु जायते ।
न तच्छक्यं समाधातुं दक्षैर्नृपशतैरपि ।।१०७।।

हे राजन्! मन्त्रणा के खुल जाने से राजा की जो हानि होती है, सौ कुशल राजा भी उसका समाधान नहीं कर सकते।।१०७।।

दण्ड्यांस्तु दण्डयेद् दण्डैरदण्ड्यान् दण्डयेन्नहि ।।१०८।।
अदण्डयन् नृपो दण्ड्यान्नदण्ड्यांश्चापि दण्डयन् ।
नृपतिर्वाच्यतां प्राप्य चौरकिल्विषमाप्नुयात् ।।१०९।।

राजा, दण्डनीयों को दण्ड-नीति से दण्डित करे, अदण्डनीयों को दण्डित न करे। न दण्डनीय को दण्ड देने वाला एवं दण्डनीय को दण्ड न देने वाला राजा, राजा शब्द से विभूषित होकर भी चोर के पाप का भागी होता है।।१०८-१०९।।

दुर्गे तु समतां कुर्यात् प्राकाराट्टालतोरणैः ।
भूषितान्नगराद्राजा दूरे दुर्गाश्रयं चरेत् ।।११०।।

राजा ऊँची अट्टालिकाओं, चहारदीवारी और तोरण से युक्त नगर से, दूरवर्ती, दुर्ग में निरन्तर आश्रय ले (निवास करे) ।।११०।।

दुर्गं बलं नृपाणां तु नित्यं दुर्गं प्रशस्यते ।
शतमेको योधयति दुर्गस्थो यो धनुर्द्धरः ।
शतं दशसहस्राणि तस्माद् दुर्गं प्रशस्यते ।।१११।।

राजा के लिए दुर्गबल एक स्थायी बल है। इसीलिए दुर्ग की प्रशंसा में कहा गया है कि दुर्ग के भीतर सुरक्षित एक धनुर्धारी योद्धा बाहर के सौ योद्धाओं से तथा सौ, दश हजार योद्धाओं से युद्ध कर सकता है । इसीलिये दुर्ग को विशेष महत्व दिया जाता है (दुर्ग शब्द, वर्तमान् में सम्पूर्ण रक्षा-विधान का बोधक है)।।१११।।

जलदुर्गं भूमिदुर्गं वृक्षदुर्गं तथैव च ।।११२।।

अरण्यंमरुदुर्गं च शैलजं परिखोद्भवम् ।
दुर्गं कार्यं नृपतिना यथा दुर्गं स्वदेशतः ।।११३।।

राजा को अपने देश (राष्ट्र) के अनुरूप जलदुर्ग, भूमिदुर्ग, वृक्षदुर्ग, अरण्यदुर्ग, मरुस्थलीयदुर्ग, पर्वतदुर्ग, तथा परिखा (खाई) से घिरे दुर्गों के रूप में, दुर्ग का निर्माण करना चाहिये।।११२-११३।।

दुर्गं कुर्वन् पुरं कुर्यात् त्रिकोणं धनुराकृति ।
वर्तुलं च चतुष्कोणं नान्यथा नगरं चरेत् ।।१४४।।

दुर्ग का निर्धारण कर उसमें त्रिकोण, धनुष के आकार का, वृत्ताकार या चौकोर नगर बनाये। इससे अतिरिक्त न बनाये ।।११४।।

मृदङ्गाकृतिदुर्गं तु सततं कुलनाशनम् ।
यथा राक्षसराज्यस्य लङ्का दुर्गान्विता पुरा ।।११५।।

मृदङ्ग के आकार का दुर्ग, निरन्तर कुल का नाश करने वाला होता है, जैसे प्राचीनकाल में राक्षसराज रावण की दुर्गान्वितलङ्का भी नष्ट हो गई थी।।११५।।

बलेः पुरं शोणिताख्यं तेजो दुर्गैः प्रतिष्ठितम् ।
तद् यस्माद् व्यञ्जनाकारं मानोभ्रष्टः शिवावलिः ।।११६।।

अग्निदुर्ग से प्रतिष्ठित बलि का शोणित नामक पुर, व्यञ्जन (पंखे) के आकार का होने से, मान से रहित हो, शृंगालों के द्वारा भ्रष्ट हुआ ।।११६।।

सौभाग्यं शाल्वराजस्य नगरं पंचकोणकम् ।
दिवि यद् वर्तते राज्यं तच्च भ्रष्टं भविष्यति ।।११७।।

शाल्वराज का सौभाग्य नामक पञ्चकोणात्मक नगर भी, जो स्वर्ग में रहता है, वह भी नष्ट-भ्रष्ट हो जायेगा।।११७।।

यच्चायोध्याह्वयं भूप पुरमिक्ष्वाकुभूभृताम् ।
धनुराकृति तच्चापि ततोऽभूद् विजयप्रदम् ।।११८।।

जो राजाइक्ष्वाकु का अयोध्या नामक धनुषाकार पुर था वह अपने नरेशों को विजयप्रदान करने वाला हुआ ।।११८।।

दुर्गभूमौ यजेद् दुर्गां दिक्पालांश्चैव द्वारतः ।
पूजयित्वा विधानेन जयं भूपः समाप्नुयात् ।
अतो दुर्गं नृपः कुर्यात् सततं जयवृद्धये ।।११९।।

दुर्ग की भूमि पर दुर्गा की तथा द्वारदेश में दिक्पालों की विधिपूर्वक पूजा कर राजा को विजय प्राप्त करना चाहिये । इसलिए राजा को अपनी विजय और समृद्धि के लिए दुर्ग का, सतत निर्माण करना चाहिये।।११९।।

न ब्राह्मणान् सदा राजा केनाप्यवमनीकृतान् ।
अवमन्य नृपो विप्रान् प्रेत्येह दुःखभाग् भवेत् ।।१२०।।

सदा राजा को किसी प्रकार से भी ब्राह्मणों की अवमानना नहीं करनी चाहिये। ब्राह्मणों की अवमानना कर, राजा इस लोक और परलोक दोनों ही स्थानों पर, दुःख का भागी होता है॥१२०॥

न विरोधस्तु तैः कार्यः स्वनितेषां न चाददेत् ॥१२१॥
कृत्यकालेषु सततं तानेव परिपूजयेत् ।
नैषां निन्दां प्रकुर्वीत नाभ्यसूयां तथाचरेत् ॥१२२॥

राजा न उनसे द्वेष करे और न उनकी सम्पत्ति ही अपने अधिकार में ले। कार्य आने पर वह निरन्तर उनका पूजन ही करे। वह न उनकी निन्दा करे न उनसे द्वेष ही रखे॥१२१-१२२॥

एवं नृपो महाबुद्धिस्तत्त्वमण्डलसंयुतः ।
अप्रमादी चारचक्षुर्गुणवान् सुप्रियंवदः ।
प्रेत्येह महती सिद्धिं प्राप्नोति सुखभोगवान् ॥१२३॥

इस प्रकार से महान् बुद्धिमान्, तत्त्वमण्डल से युक्त, प्रमादरहित, गुणवान्, चरों के माध्यम से राज्य का निरीक्षण करने वाला, राजा, परलोक एवं इहलोक दोनों ही स्थानों में, महान सिद्धि तथा सुख का उपभोग करता है॥१२३॥

यैर्गुणैर्योजितश्चात्मा तैः पुत्रानपि योजयेत् ॥१२४॥

जिन गुणों से राजा अपने को विभूषित करे, उन्हीं से वह अपने पुत्रों को भी संयुक्त करे॥१२४॥

नृपस्य च स्वतन्त्रत्वं सततं स्वं विनाशयेत् ।
स्वतन्त्रो भूपतनयो विकारं याति निश्चितम् ॥१२५॥

राजा की स्वतंत्रता (उच्छृंखलता) निरन्तर उसके स्वत्व का नाश करती है। स्वतन्त्र हुआ राजकुमार, निश्चितरूप से विकार (दोष) को प्राप्त करता है॥१२५॥

निर्विकाराय सततं वृद्धांश्च परियोजयेत् ।
भोजने शयने याने पुरुषाणां च वीक्षणे ॥१२६॥

निर्दोष होने के लिए, राजा को निरन्तर अपने भोजन, शयन, यान (यात्रा अभियान) आदि में तथा व्यक्तियों के परख में वृद्धों को नियोजित करना चाहिये॥१२६॥

वियोजयेत् सदा दारान् भूपः कामविचेष्टने ।
अस्वतन्त्राः स्त्रियः कार्याः सततं पार्थिवेन तु ॥१२७॥

राजा को स्त्रियों की कामचेष्टाओं से सदैव अलग रहना चाहिये। राजा द्वारा स्त्रियों को सतत अस्वतन्त्र (अपने अधिकार में) किया जाना चाहिये ॥१२७॥

ताः स्वतन्त्राः स्त्रियोः नित्यं हानये सम्भवन्ति हि ।
तस्मात् कुमारं महिषीमुपधाभिर्मनोहरैः ॥१२८॥

शोधयित्वा नियुञ्जीत यौवराज्यावरोधयोः ।
अन्तःपुरप्रवेशे तु स्वतन्त्रत्वं निषेधयेत् ।
भूपपुत्रस्य भार्यायाः बहिःसारे तथैव च ।।१२९।।

वे स्वतन्त्र स्त्रियाँ, नित्य हानि ही करती हैं, इसलिये राजकुमार और रानियों की सुन्दर उपधा द्वारा शोधन करके यौवराज्य एवं अवरोध सम्बन्धी कार्यों में नियुक्त करे। अन्त:पुर प्रवेश के अवसरों पर स्वतन्त्रता का पूर्णत: निषेध करना चाहिये तथा राजकुमारों की स्त्रियों के बाहर आने-जाने पर निषेध करना चाहिये ॥१२८-१२९॥

अयं विशेषः संक्षेपान्नृपधर्मो मयोदितः ।
पुत्राणां गुणविन्यासे भार्याणामपि भूपते ।।१३०।।

हे भूपति ! यह मेरे द्वारा राजधर्म का भेद, संक्षेप में कहा गया है, जिसका पुत्रों और स्त्रियों में गुणों के न्यासहेतु विशेष ध्यान रखना चाहिये ॥१३०॥

उशना राजनीतीनां तन्त्राणि तु बृहस्पतिः ।
चकारान्यान् विशेषांस्तु तयोस्तन्त्रेषु बोधयेत् ।।१३१।।

उशना (शुक्राचार्य) की राजनीति और बृहस्पति के तन्त्र (राजव्यवस्था) में अन्य भेद, बताये गये हैं, उनको वहीं से जानना चाहिये॥१३१॥

एवं राजा महाभागो राजनीतौ विशेषताम् ।
कुर्वन्न सीदति सदा भूयसीं श्रियमश्नुते ।।१३२।।

॥ इति श्रीकालिकापुराणे राजधर्मकथने चतुरशीतितमोऽध्यायः ॥८४॥

इस प्रकार से राजनीति में विशेषता का प्रयोग करने वाला, महान् ऐश्वर्यशाली राजा, कभी दु:ख नहीं पाता। वह विपुल श्री, शोभा को प्राप्त करता है ॥१३२॥

श्रीकालिकापुराण में राजधर्मकथनसम्बन्धी चौरासीवाँ अध्याय सम्पूर्ण हुआ ॥८४॥



पञ्चाशीतितमोऽध्यायः
नीराजनविधिः

।। और्व उवाच ।।

सदाचारेषु राजेन्द्र विशेषां शृणु सम्प्रति ।
यानवश्यं नृपः कुर्यात् तान्मत्तः सकलं शृणु ।।१।।

और्व बोले—हे राजाओं में इन्द्र के समान श्रेष्ठ! अब सदाचार सम्बन्धी उन रहस्यों को सुनो, जिन्हें राजाओं को अवश्य करना चाहिये। उन सभी भेदों को आप मुझसे सुनो।।१।।

साधवः क्षीणदोषाश्च सच्छब्दः साधुवाचकः ।
तेषामाचरणं यत् तत् सदाचारः स उच्यते ।।२।।

साधु (सज्जन) लोग, दोषमुक्त होते हैं, सत् शब्द साधु का बोधक है ऐसे साधुपुरुषों का जो आचरण है, उसे ही सदाचार कहा जाता है।।२।।

आगमेशु पुराणेषु संहितासु यथोदितान् ।
समुद्दिष्टसदाचारान् गृह्णीयात् तान् गृहस्थवत् ।।३।।

गृहस्थों के जो सदाचार, आगमों में, पुराणों में, संहिताओं में गृहस्थाश्रमवर्णनप्रसङ्ग में बताये गये हैं, उन्हें वहीं से उसीरूप में ग्रहण करना चाहिये।।३।।

ऋषीन् यजेद् वेदपाठैर्देवान् होमैः प्रपूजयेत् ।
श्राद्धैः पितृंस्तर्पयेत् तु भूतानि बलिभिस्तथा ।।४।।

ऋषियों का वेदपाठ द्वारा पूजन करे, देवताओं की होम से पूजा करे, श्राद्धों से पितरों को तथा बलि (भोजन) से प्राणियों को तृप्त करे ।।४।।

मैत्रं प्रसाधनं स्नानं दन्तधावनमञ्जनम् ।
सर्वं गृहस्थवत् कुर्यान्निषेकाद्यं विधिं तथा ।।५।।

मैत्र (मलोत्सर्ग), प्रसाधन (शरीर सज्जा), स्नान, दाँत की सफाई, अञ्जन, निषेक आदि सभी विधियाँ गृहस्थों की भाँति करनी चाहिये।।५।।

षट्कर्मसु नियुञ्जीत राजा विप्रान् समन्ततः ।
तथैव क्षत्रियादींश्च स्वे स्वे धर्मे नियोजयेत् ।।६।।

राजा को चाहिये कि वह ब्राह्मणों को ब्राह्मणों के लिए निर्दिष्ट पठन-पाठन आदि छः कर्मों में सब ओर से लगाये। उसी प्रकार उसे क्षत्रिय आदि अन्य वर्ण वालों को भी उनके अपने-अपने धर्मों में लगाना चाहिये।।६।।

यः स्वधर्मं परित्यज्य परधर्मं समाचरेत् ।
तं शतेन नृपो दण्डं पुनस्तस्मिन् नियोजयेत् ।।७।।

जो व्यक्ति अपने धर्म का परित्याग कर अन्य के धर्म का आचरण करे, राजा उसे पहले सौ मुद्राओं से दण्डित करे तत्पश्चात् उसे उसके अपने वर्णोचितकर्म में लगाये।।७।।

सांवत्सरेषु कृत्येषु विशिष्यैतान् समाचरेत् ।
अवश्यं पार्थिवो राजन् तान् विशेषां श्रृणुष्वमे ।।८।।

वह वार्षिककार्यक्रमों में इन विशिष्ट आचारों का प्रयोग करे। उक्त अवसरों पर राजाओं को जो कुछ अवश्य करना चाहिये, उनको मुझसे सुनो।।८।।

शरत् काले महाष्टम्यां दुर्गायाः परिपूजनम् ।
नीराजनं दशम्यां तु कुर्याद् वै बलवृद्धये ।।९।।

राजा बल की वृद्धिहेतु, शरदृऋतु की महाष्टमी को दुर्गादेवी का विशेष पूजन तथा दशमी को वह उनका नीराजन करे।।९।।

पौषे मासि तृतीयायां कुर्यात् पुष्याभिषेचनम् ।
पूजयित्वा श्रियं देवीं पञ्चम्यां नृपतिश्चरेत् ।
श्रीयज्ञं धनधान्यस्य वृद्धये नृपसत्तम ।।१०।।

पौषमास की तृतीया तिथि को राजा पुष्याभिषेक करे। वह पञ्चमी तिथि को श्री देवी की पूजा कर, धनधान्य की वृद्धिहेतु श्रीयज्ञ का आयोजन करे।।१०।।

ज्यैष्ठे दशहरायां तु विष्णोरिष्टिं तथाचरेत् ।।११।।
रवौ हरिस्थे द्वादश्यां शक्रपूजां समाचरेत् ।
विशिष्यैतांस्तु नृपतिः कुर्याद् यज्ञान् बहुव्ययैः ।।१२।।

ज्येष्ठमास की दशहरातिथि गङ्गादशहरा, को विष्णुयज्ञ का आयोजन करे तथा सूर्य के सिंहराशि पर स्थित रहने पर द्वादशी तिथि को शक्रपूजा का आयोजन करे। इन विशेष- यज्ञों के अतिरिक्त राजा, अत्यधिक व्ययवाले, यज्ञों का भी आयोजन करे।।११-१२।।

एभिः कृतैर्बलं राज्यं कोषश्चापि विवर्धते ।
अकृतेष्वेषु यज्ञेषु दुर्भिक्षं मरणं तथा ।
जायन्ते चेतयः सर्वा विशिष्यैतांस्ततश्चरेत् ।।१३।।

इनके करने से सेना, राज्य और कोष का विकास होता है तथा यज्ञों के न करने से राज्य में अनेक प्रकार की महामारियाँ, दुर्भिक्ष एवं मरण होते हैं। इसीलिए इन विशेष आयोजनों को, राजा को करना चाहिये ॥१३॥

शरत् काले महाष्टम्यां दुर्गायाः पूजने विधिः ।
पुरा प्रोक्तस्तु विधिना तेन कार्यं तु पूजनम् ।।१४।।

जहाँ तक शरत्ऋतु में महाअष्टमी के दिन दुर्गापूजन की विधि का प्रश्न है, पहले बताई गई विधि से ही उस पूजन के कार्य को सम्पन्न करना चाहिये ॥१४॥

विधिं नीराजनस्य त्वं शृणु पार्थिवसत्तम ।
कृतेन येन चाश्वानां गजानामपि वर्धनम् ।।१५।।

हे राजाओं में श्रेष्ठ! अब तुम देवी के नीराजन की उस विधि को सुनो जिसके करने से राजाओं के घोड़े और हाथियों की वृद्धि होती है॥१५॥

आश्विने शुक्लपक्षे तु तृतीया स्वातीयोगिनी ।
ऐशान्यां स्वपुरस्यैव गृहणीयात् स्थानमुत्तमम् ।।१६।।

आश्विनमास के शुक्लपक्ष में जब स्वातीनक्षत्र से युक्त तृतीयातिथि हो, अपने नगर के ही ईशानकोण में नीराजनहेतु उत्तमस्थान ग्रहण करे॥१६॥

नीराजनं ततः कुर्यात् संप्राप्ते दिवसेऽष्टमे ।
नीराजनस्य कालस्तु पूर्वमुक्तो मया तव ।।१७।।
विधानमात्रं शृणु मे कृतकृत्यो भविष्यसि ।।१८।।

तब उस दिन से आठवाँ दिन (दशमीतिथि) प्राप्त होने पर नीराजन करे । नीराजन का समय मेरे द्वारा तुम्हें पहले ही बताया गया है। अब तुम उसका विधानमात्र मुझसे सुनो, इसे करके तुम कृतकृत्य हो जाओगे॥१७-१८॥

एकं हयं महासत्त्वं सुमनोहरमेव च ।
पूजयेत् सप्तदिवसान् गन्धपुष्पांशुकादिभिः ।।१९।।
तृतीयादौ पूजयित्वा नयेत यज्ञमण्डपम् ।
चेष्टां निरूपयंस्तस्य जानीयात् तु शुभाशुभम् ।।२०।।

एक महानबलशाली, सुन्दर, मनोहर घोड़े की, गन्ध (चन्दन), पुष्प, वस्त्रादि से, तृतीया से प्रारम्भ करके, सात दिनों तक पूजन करने के पश्चात् उसे आठवें दिन, यज्ञमण्डप में लावे । उस समय उसकी चेष्टाओं का विचार करते हुए शुभाशुभ फलों को जाने॥१९-२०॥

परराष्ट्रावमर्दः स्यादश्वो यदि पलायते ।
म्रियते राजपुत्रस्तु यदि चाश्रूणि मुञ्चति ।।२१।।

उस समय यदि घोड़ा भागे तो शत्रुराष्ट्र से पराभव होता है, यदि वह आँसू गिराये तो राजकुमार का मरण होता है ॥२१॥

नीयमानो न गच्छेत् तु महिषीमरणं ततः ।
तथैव मुखनासाक्षि शब्दं कुर्याद्धयो यदि ।।२२।।

यदि अश्व, मण्डप में ले जाते समय, न जाये तो रानी का मरण होता है, ऐसा ही फल यदि घोड़ा, नाक और मुँह से ध्वनि निकाले तो भी होता है।।२२।।

यः काष्ठाभिमुखः कुर्यात् तत् काष्ठायां जयेद्रिपून् ।
उत्क्षिप्य दक्षिणाग्रं तु पदमश्वो भवेत् पुरः ।
तदा यदि समस्तांश्च नृपतिर्विजयेद्रिपून् ।।२३।।

जिस दिशा में वह मुँह करे, उसी दिशा में राजा, शत्रुओं को जीते। यदि घोड़ा अगला दाहिना पैर उठाकर आगे बढ़ता है तब राजा अपने समस्त शत्रुओं पर विजयी होता है।।२३।।

प्रातर्नीराजनं कुर्याद् दशम्यां नृपसत्तम ।।२४।।
तदप्राप्तौ च द्वादश्यां तस्यामेव समाचरेत् ।
कार्तिके पंचदश्यां वा तत्राभावे तु पार्थिव ।।२५।।

हे राजन् ! दशमी को प्रातःकाल नीराजन करना चाहिये। ऐसा न होने पर उसी को (आश्विनशुक्ल) द्वादशी को या उसके भी अभाव में कार्तिक की पूर्णिमा को नीराजन करे।।२४-२५।।

ऐशान्यां स्वपुरस्थोच्चैर्हस्तमानेन षोडश ।
दशहस्तं तु विपुलं कुर्याद् वै तत्र तोरणम् ।।२६।।
द्वात्रिंशद्धस्तमात्रं तु हस्तषोडशविस्तृतम् ।
यज्ञार्थं मण्डलं कुर्यान्मध्ये वेदिं विनिर्दिशेत् ।।२७।।

अपने नगर के ईशानकोण में, अपने हाथ के मान से सोलहहाथ ऊँचा, दशहाथ चौड़ा, तोरण बनाये। उसके भीतर बत्तीसहाथ मान का सोलहहाथ चौड़ा महामण्डल बनाये, उसके मध्य में यज्ञ हेतु वेदी बनावे।।२६-२७।।

वेद्याश्चोत्तरतश्चाश्व-वेदिं कुर्यादनुत्तमाम् ।
यत्र संस्थाप्य चाश्वश्च पूजितव्यः पुरोहितैः ।।२८।।

वेदी से उत्तर की ओर, श्रेष्ठअश्ववेदी का निर्माण करे। जहाँ घोड़े को भलीभाँति स्थापित कर, पुरोहितों द्वारा उसका पूजन किया जाना चाहिये।।२८।।

सर्जोदुम्बरशाखानामर्जुनस्याथवा नृप ।
मत्स्यशङ्खाङ्कितैश्चक्रैर्ध्वजैश्चाप्यभिभूषयेत् ।
तोरणं कनकरत्नैस्तथा नानाविधैः फलैः ।।२९।।

हे राजन् ! सर्ज (शाल), उदम्बर (गूलर) या अर्जुन की शाखाओं, मत्स्य, शङ्ख और चक्रांकित ध्वजाओं, स्वर्णरत्न तथा अनेक प्रकार के फलों से तोरण को सब ओर से सजाये।।२९।।

भल्लातकं शलिकुष्ठं सिद्ध्यर्थ सैन्धवस्य तु ।
कण्ठदेशे निबध्नीयात् पुष्टिशान्त्यर्थमेव च ।।३०।।

सफलता प्राप्ति एवं घोड़े की पुष्टि और शान्ति हेतु उसके गले में भल्लातक (लिसोड़ा), शालिकुष्ठ (सरसो) बाँधे।।३०।।

वैष्णवं मण्डलं कृत्वा दिक्पालांश्च नवग्रहान् ।
विश्वेदेवांस्तु मन्त्रेण विष्णुमुख्यान् प्रपूजयेत् ।।३१।।
आज्यैस्तिलैश्च पुष्पैश्च मिश्रीकृत्य पुरोहितः ।।३२।।

पुरोहित को चाहिये कि वह वैष्णवमण्डल बनाकर घी, फूल और तिल मिलाकर मन्त्रोचारपूर्वक दिक्पाल, नवग्रह, विश्वेदेवों और विष्णु आदि का पूजन करे।।३१-३२।।

रवेस्तु वरुणस्यैव प्रजेशस्य तथैव च ।
पुरुहूतस्य विष्णोश्च होमं सप्ताहमाचरेत् ।।३३।।

सूर्य, वरुण, प्रजापति, इन्द्र और विष्णु का एक सप्ताह तक होम करे ।।३३।।

एकैकस्य सहस्रं वा अष्टोत्तरशतं च वा ।
कुर्यात् तु प्रत्यहं होमं चतुर्वर्गस्य सिद्धये ।।३४।।

धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष नामक चतुर्वर्ग की प्राप्तिहेतु, प्रतिदिन एक-एक हजार या एक सौ आठ होम करना चाहिये।।३४।।

समिधश्चापि होतव्याः पलाशाः खादिरास्तथा ।
औदुम्बर्यश्च काश्मर्या आश्वत्थाश्च पुरोधसा ।।३५।।

पुरोहित द्वारा पलाश, खैर, गूलर, काश्मरी, पीपल की समिधायें होम की जानी चाहिये।।३५।।

सौवर्णान् रजतान् वापि मार्तिकान् वा यथेच्छया ।
कुर्यात् तु कलशानष्टौ फलाम्राम्बरयोजितान् ।।३६।।

आम्रफल और वस्त्रों से युक्त कर इच्छानुसार सोने, चाँदी अथवा मिट्टी के आठ कलश स्थापित करे।।३६।।

क्षिपेत् तेषु घटेष्वेव समङ्गहरितालकम् ।
चन्दनं च तथा कुष्टं प्रियङ्गुं च मनःशिलाम् ।।३७।।
अञ्जनं च हरिद्रां च श्वेतां दन्तीं तथैव च ।
भल्लातकं पूर्णकोशं सहदेवीं शतावरीम् ।।३८।।
वचां सनागकुसुमां सोमराजीं सुगुप्तिकाम् ।
तुत्थं च करवीरं च तुलसीदलमेव च ।
एतान् निक्षिपेन्मध्ये कलशानां पुरोहितः ।।३९।।

पुरोहित समङ्ग (मजीठ), हरिताल, चन्दन, कुष्ठ, प्रियङ्गु, मैनसिल, अन्जन, हरिद्रा, श्वेता, दन्ती, भल्लातक, पूर्णकोश, सहदेवी, शतावरी, वचा, नागकुसुम, सोमराजी, सुगुप्तिका, तुत्थ, करवीर और तुलसीदल, इन सबको सर्वौषधि के रूप में उन कलशों में छोड़े।।३७-३९।।

कनकैरम्बुजैर्यज्ञदारुभिः स्रुक्स्रुवौ तथा ।
कर्तव्ये शान्तिकामेन नीराजनविधौ नृप ।।४०।।
एवं सप्ताहपर्यन्तं पूजाभिर्हवनैस्तथा ।
पूर्वोक्तान् पूजयित्वा तु नृपः सप्ताहमाचरेत् ।।४१।।

हे राजन् ! शान्ति की कामना से किये जाने वाले नीराजनविधि में राजा, स्वर्णकमल एवं यज्ञ काष्ठ के बने स्रुचि और स्रुवा से एक सप्ताह तक हवन-पूजन करता हुआ पूर्वोक्त देवताओं का पूजन कर, सप्ताह व्यतीत करे।।४०-४१।।

यावन्नीराजनं कुर्यात् तावद्राजा वसेद् गृहे ।
रात्रौ न यज्ञभूमौ तु निवसेच्छान्तिमिच्छुकः ।।४२।।
नारोहयेत् तुरङ्गम् तं गजं वा तत्र पार्थिवः ।
यावत् सप्ताहपर्यन्तं यानेनान्येन वै व्रजेत् ।।४३।।

जब तक नीराजन विधि सम्पन्न न हो, तब तक वह घर ही रहे। उस अवधि में शान्ति चाहने वाला राजा, रात्रि में यज्ञशाला में न रहे और न तो उस हाथी या घोड़े पर ही चढ़े। सप्ताहपर्यन्त वह अन्य वाहन से ही यात्रा करे।।४२-४३।।

भक्ष्यैर्नानाविधैश्चैव मधुपायसयावकैः ।।४४।।
मोदकैर्वा बलिं कुर्यादन्नव्यञ्जनसम्भवैः ।
पूर्वोक्तानां तु देवानां सप्ताहं यावदुत्तमम् ।।४५।।

मधु, खीर, यावक (हलुआ), लड्डू तथा अन्नों के व्यञ्जनों से बने हुये अनेक प्रकार के [illegible]पदार्थों से वह सप्ताहपर्यन्त पहले कहे गये देवताओं को बलि प्रदान करे।।४३।।

सप्तम[illegible]ह्नि तु रेभन्तं पूजयेत् तोरणान्तरे ।
सूर्यपुत्रं महाबाहुं द्विभुजं कवचोज्ज्वलम् ।।४६।।
ज्वलन्तं शुक्लवस्त्रेण केशानुद्ग्रथ्य वाससा ।
कशां वामकरे बिभ्रद् दक्षिणं तु करं पुनः ।।४७।।
स खड्गं न्यस्य वामायां सितसैन्धवसंस्थि[illegible] ।
एवं विधं तु रेभन्तं प्रतिमायां घटेऽपि वा ।
सूर्यपूजाविधानेन पूजयेत तोरणान्तरे ।।४८।।

सातवें दिन दूसरे तोरण पर, सूर्य के पुत्र, महाबाहु रेभन्त का, जो दो भुजाओं से युक्त, उज्ज्वलकवचधारण किये हुये, श्वेतवस्त्र से प्रकाशितस्वरूप कर, वस्त्रों से केश को बाँधे हुये एवं बायें हाथ में चाबुक तथा दाहिने हाथ में खड्ग धारण किये हैं एव जिनके बाईं ओर सफेद घोड़ा स्थित है। ऐसे रेभन्तदेव का प्रतिमा या कलश पर पूजन करे। यह पूजन, अन्य वेदी पर सूर्यभगवान् के पूजाविधान से ही करे॥४६-४८॥

पूजयित्वा तु रेभन्तं द्विरदं तुरगं तथा ।
अहताम्बरसंवीतं स्रक्चन्दनसमन्वितम् ।।४९।।
सुवर्णविद्धनिस्त्रिंशं विचित्रं कवचादिभिः ।
युक्तं तु होमकुण्डस्य ऐशान्यामश्ववेदिकाम् ।।५०।।
पूर्वकृतां नयेदश्वगजपालौ पृथक् पृथक् ।।५१।।

रेभन्त की पूजा के पश्चात् हाथी और घोड़े को नये वस्त्र, माला और चन्दन से युक्त कर, स्वर्ण (आभूषणों) से युक्त, निर्मम (अभेद्य) और विचित्र कवचादि से सज्जित कर, होमकुण्ड के ईशानकोण में, पहले से बनाई अश्ववेदी पर, हाथीपाल और अश्वपाल, अलग-अलग ले आयें॥४९-५१॥

नीयमाने गजे चाश्वे पूर्वोक्तं तु निमित्तकम् ।
यत्नाद् वीक्षेत नृपतिः फलं चैवावधारयेत् ।।५२।।

घोड़े एवं हाथी को लाये जाते समय राजा, पहले बताये निमित्तों का यत्नपूर्वक निरीक्षण कर, वैसे ही फलों की अवधारणा करे॥५२॥

होमकुण्डस्योत्तरस्यां वैयाघ्रे चर्मणि स्थितः ।
वेदविदा चाश्वविदा सहितो वीक्ष्य सैन्धवम् ।।५३।।

होमकुण्ड की उत्तरदिशा में व्याघ्र के चर्म पर स्थित हो, राजा, वेद के ज्ञाता और अश्व के ज्ञाता के साथ घोड़े का निरीक्षण करे ॥५३॥

नीताय तुरगायाशु भक्तपिण्डीं सुगन्धिनीम् ।
दद्यात् पुरोहितस्तत्र संमन्त्र्य शान्तिमन्त्रकैः ।।५४।।
भक्षणाद् यदि जिघ्रेत् तदश्नीयाद् वा हयः स च ।
तदा स्यात् सर्वकल्याणं विपरीतमतोऽन्यथा ।।५५।।

लाये गये घोड़े को पुरोहित, शीघ्र ही चावल (भात) की पिण्डी जो सुगन्धित हो, शान्तिमन्त्रों के साथ, उसे प्रदान करे। घोड़ा उसे खाने लगे या खाने के पहले उस भोज्यपदार्थ को सूँघे, तब खाये तो सब प्रकार का कल्याण समझना चाहिये अन्यथा उल्टा ही फल जाने॥५४-५५॥

शाखामौदुम्बरीमाम्रीं सकुशां च घटोदके ।
आप्लाव्याप्लाव्य तुरगान् गजान् भूपं च सैनिकान् ।।५६।।
रथांश्च संस्पृशेन्मन्त्रैः शान्तिकैः पौष्टिकैस्तथा ।
सेचयेत् सहितैर्विप्रैश्चतुरङ्गं पुरोहितः ।।५७।।

तब पुरोहित, गूलर और आम की टहनियों, कुशाओं को, कलश के जल में बार-बार डुबाकर उससे हाथी, घोड़े, राजा, रथ और सैनिकों का स्पर्श करे। उस समय वह ब्राह्मणों के सहित शान्ति तथा पुष्टिकर मन्त्रों से चतुरंग का अभिषेक करे।।५६-५७।।

दिक्पालानां ग्रहाणां च मन्त्रैश्च वैष्णवैस्तथा ।
बहुधा चाभिषिच्याथ ततः सौवर्ण दर्पणम् ।।५८।।
वीक्षयित्वा नृपं चर्त्विक् ततो मन्त्रिणमेव च ।
राजपुत्रं तथामात्यानन्यानपि च सैनिकान् ।।५९।।
कम्पयन् द्विजशार्दूलः सर्वानेव तु दर्शयेत् ।
चतुरंगस्य स्वस्यापि कृत्वैवं शान्तिपौष्टिके ।।६०।।

दिक्पालों, ग्रहों के मन्त्रों तथा वैष्णवमन्त्रों से, बहुत प्रकार से अभिषेक करने के पश्चात् ऋत्विक्, राजा को सोने का बना दर्पण दिखावे तत्पश्चात् द्विजों में शार्दूल के समान श्रेष्ठ, पुरोहित, उस दर्पण को घुमाता हुआ, मन्त्री, राजकुमार, अमात्य या अन्य सैनिकों आदि, सभी को दिखावे। अपनी चतुरंगिणी सेना का भी इसीप्रकार से शान्ति एवं पौष्टिककर्म सम्पन्न करे।।५८-६०।।

मृन्मय शात्रवं कृत्वा चाभिचारिकमन्त्रकैः ।
हृदि शूलेन विध्वा तं शिरं खड्गेन छेदयेत् ।।६१।।

शत्रु की मिट्टी की मूर्ति बनाकर, अभिचारिकमन्त्रों से, उसके हृदय में शूल से भेदकर, खड्ग से उसका गला काट दे।।६१।।

आचार्यः कविकां पश्चादभिमन्त्र्य हयाय वै ।
ऐन्द्रैः प्रभाकरैर्मन्त्रैर्दद्याद् वक्त्रे स्वयं पुनः ।।६२।।

तत्पश्चात् आचार्य कविका (लगाम) को इन्द्र और सूर्य के मन्त्रों से अभिमन्त्रित करके स्वयं घोड़े के मुँह में दे।।६२।।

तमनेन तु मन्त्रेण समारुह्य नृपस्तदा ।
गच्छेदुत्तरपूर्वां तु दिशं सर्वैर्बलैर्युतः ।।६३।।

तब राजा इन्हीं मन्त्रों से उस घोड़े पर सवार होकर, सभी बलों से युक्त हो, उत्तर-पूर्वदिशा, ईशानकोण में जाय।।६३।।

ऋत्विक् पुरोहिताचार्याः सर्व एव नृपं तदा ।
अनुगच्छेयुरन्यानि निमित्तानि विलोकितुम् ।।६४।।

तब ऋत्विक, पुरोहित, आचार्य, सभी, निमित्तों को देखने के लिए राजा का अनुगमन करें।।६४।।

वादित्रघोषैस्तुमुलैरातपत्रैर्वृतस्तथा ।
गच्छेन्नीराजने राजा दारयन्निव मेदिनीम् ।।६५।।
मणिविद्रुममुक्तादि स्वर्ण-रत्नैरलङ्कृतः ।
क्रोशमात्रं ततो गत्वा पूर्वद्वारेण पार्थिवः ।
स्वपुरं प्रविशेद् विप्रैर्यज्ञं यायात् पुरोहितः ।।६६।।

राजा, मणि, मूँगा, मोती, स्वर्ण आदि रत्नों से अलङ्कृत हो, बाजे, तुमुलघोष, छत्र आदि से घिर कर, पृथ्वी को चीरता हुआ, नीराजनहेतु, एक कोश तक जाकर पूर्वीद्वार से अपने नगर में प्रवेश करे। उस समय पुरोहित, ब्राह्मणों द्वारा यज्ञ का आयोजन करे।।६५-६६।।

तत्र गत्वा दक्षिणां तु हिरण्यं गां तथा तिलम् ।
दत्त्वा पश्चाद् द्विजेभ्यस्तु दद्याद् दानानि शक्तितः ।।६७।।

वहाँ जाकर दक्षिणा, सोना, गौ और तिल का दान करने के पश्चात् वह, ब्राह्मणों को शक्ति के अनुसार, दान करे।।६७।।

एवं नीराजनं कृत्वा बलानां च महीक्षितः ।
प्रेत्येह सुस्थिरां लक्ष्मीं नृपतिः प्राप्नुयात् तथा ।।६८।।

इस प्रकार से अपनी सेना का नीराजन कर राजा, इस लोक और परलोक में स्थिरलक्ष्मी प्राप्त करता है।।६८।।

त्वमश्वामृतसञ्जात सागरोद्भव सैन्धव ।
येन सत्वेन वहसे शक्रं तेनेह मां वह ।।६९।।
येन सत्वेन रेभन्तं येन सत्वेन भास्करम् ।
वहसे तेन सत्येन विजयाय वहस्व माम् ।।७०।।
आभ्यां तु भूपमन्त्राभ्यामश्वारोहणमाचरेत् ।
आरुह्याग्रे महिष्यास्तु शुद्धान्ते लम्बयेत् ततः ।।७१।।

त्वमश्वामृत....माम्। इन दोनों मन्त्रों से राजा, घोड़े पर सवार होये तब वह महारानी के अन्तःपुर में जाये। **मन्त्रार्थ–** हे अश्व ! तुम अमृत से उत्पन्न हुए हो, हे घोड़े ! तुम समुद्र से उत्पन्न हो, जिस बल से तुम इन्द्र को ढोते हो, उसी से मुझे भी ढोओ। जिस सत्व से तुम रेभन्त और सूर्य को वहन करते हो, उसी से मुझे भी विजयहेतु वहन करो।।६९-७१।।

महिषी च ततो भूपं पर्यङ्कोपरि संस्थितम् ।
दूर्वाक्षतैः ससिद्धार्थः स्त्रीभिः सह तमर्चयेत् ।।७२।।

तब महारानी भी दूब-अक्षत, सिद्धार्थ (सरसों) से स्त्रियों के सहित पर्यङ्कस्थित राजा का पूजन करे ।।७२।।

कृते तु भूमिग्रहणे तृतीयायां निराजने ।
सूतकं यदि जायेत तत्र दुष्यति केवलम् ।।७३।।

तृतीया की नीराजनहेतु भूमिग्रहण के पश्चात् यदि सूतक पड़ जाय तो केवल दोष ही होता है। सूतक नहीं होता।।७३।।

सूतकी मृतकी वापि पार्थिवस्तु यथा तथा ।
बलनीराजनं कुर्यात् तन्मात्रं च विशेषतः ।।७४।।

सूतक का दोष हो या मृतक का, जैसे भी हो राजा सेना का नीराजनमात्र ही विशेषरूप से करे।।७४।।

सद्यः शौचं भवेद्राज्ञो व्यवहारविलोकने ।
तथाधिवासने यज्ञे परराष्ट्रविमर्दने ।।७५।।

व्यवहारविलोकन (राजव्यवस्था संचालन) के लिए तथा अधिवासन, यज्ञ, परराष्ट्र के दमन आदि के लिए, राजा शीघ्र ही शुद्ध हो जाता है।।७५।।

अयं ते कथितो राजन्नीराजनक्रमो मया ।
पुष्यस्नानविधानं तु पार्थिव शृणु साम्प्रतम् ।।७६।।

।। इति श्रीकालिकापुराणे नीराजनविधिर्नाम पञ्चाशीतितमोऽध्यायः ।।८५।।

हे राजन् ! यह तुमसे नीराजन की पद्धति, मेरे द्वारा कही गई, अब तुम पुष्य-स्नान की विधि सुनो।।७६।।

श्रीकालिकापुराण में नीराजनविधिनामक पच्चासीवाँ अध्याय सम्पूर्ण हुआ ।।८५।।



षडशीतितमोऽध्यायः

पुष्यस्नानविधिः

।। और्व उवाच ।।

शृणु राजन् प्रवक्ष्यामि पुष्यस्नानविधिक्रमम् ।
येन विज्ञानमात्रेण विघ्नाः नश्यन्ति सन्ततम् ।।१।।

और्व बोले— हे राजाओं में श्रेष्ठ ! मैं अब तुम से उस पुष्यस्नान के विधान का वर्णन करूँगा जिसके जाननेमात्र से ही विघ्न, निरन्तर नष्ट हो जाते हैं।।१।।

पौषे पुष्यर्क्षगे चन्द्रे पुष्यस्नानं नृपश्चरेत् ।
सौभाग्यकल्याणकरं दुर्भिक्षमरणापहम् ।।२।।

पूस के महीने में जब चन्द्रमा पुष्यनक्षत्र पर स्थित हो तो, राजा को पुष्यस्नान का आचरण करना चाहिये। यह सौभाग्य और कल्याण करने वाला तथा दुर्भिक्ष एवं मृत्यु को दूर करने वाला होता है।।२।।

विष्ट्यादिदुष्टकरणे व्यतीपाते च वैधृतौ ।
वज्रे शूले हर्षणादौ योगे तु यदि लभ्यते ।।३।।
तृतीयायुक्तपुष्यर्क्षे रविशौरिकुजेऽहनि ।
तदा समस्तदोषाणां तत् स्नानं हानिकारकम् ।।४।।

यदि विष्टि (भद्रा) आदि दूषित करण, व्यतीपात, वैधृति, वज्र, शूल, हर्षण आदि योग पड़ें, या तृतीया तिथियुक्त पुष्यनक्षत्र, रवि, शनि तथा मङ्गलवार को पड़े तब वह स्नान, समस्त दोषों का नाश करने वाला होता है।।३-४।।

ग्रहदोषाश्च जायन्ते यदि राज्येषु चेतयः ।
तदा पुष्ये तु नक्षत्रे कुर्यान्मासान्तरेऽपि च ।।५।।

यदि राज्यों में ग्रहदोष उत्पन्न हो और ईति (दैवी आपत्तियाँ) आ जायँ तो अन्य मासों के पुष्यनक्षत्रों में ही उपर्युक्त स्नान करना चाहिये।।५।।

इयं तु ब्रह्मणा शान्तिरुद्दिष्टा गुरवे पुरा ।
शक्रादिसर्वदेवानां शान्त्यर्थं च जगत्पतिः ।।६।।

यह शान्तिप्रकरण प्राचीनकाल में जगत्पति ब्रह्मा द्वारा इन्द्रादि सभी देवताओं की शान्ति (कल्याण) के लिए, देवगुरु बृहस्पति से कहा गया था।।६।।

तुषकेशास्थिवल्मीक-कीटदेशादिवर्जिते ।
शर्करा कृमि कूष्माण्ड बहुकृष्ट विवर्जिते ।।७।।
काकोलूकैश्च कङ्कैश्च काकोलैर्गृध्रशौनकैः ।
वर्जिते कण्टकिवने विभीतकविवर्जिते ।।८।।

शिग्रुश्लेष्मातकाभ्यां तु जलौकाद्यैर्विवर्जिते ।
स्वस्थाने चम्पकाशोक-वकुलादिविराजिते ।।९।।
हंसकारण्डवाकीर्णे सरस्तीरेथवा शुचौ ।
पुष्यस्नानाय नृपतिर्गृह्णीयात् स्थानमुत्तमम् ।।१०।।

भूसा, केश, हड्डी, बाँबी, कीड़े, कङ्कण, कीटाणु, कूष्माण्ड बहुत जुताई आदि स्थानदोष, कौए, उल्लू, कङ्क (बगुला), काकोल (पहाड़ी कौआ), गीध, शौनक आदि पक्षियों, कण्टकि (कटहल) के तथा विभीतक (बहेड़ा) के वन से, शिग्रु (सहजन), श्लेष्मातक (लिसोड़ा) और जोंक आदि से रहित, चम्पक, अशोक, वकुल, आदि से सुशोभित, हंस, कारण्डव आदि से युक्त, सरोवर के किनारे अथवा पवित्रस्थान में राजा पुष्यस्नानहेतु, उत्तमस्थान का चयन करे॥७-१०॥

ततः पुरोहितो राजा नाना वादित्रनिःस्वनैः ।
प्रदोषसमये गच्छेत् तत् स्थानं पूर्ववासरे ।।११।।

तब पुरोहित और राजा अनेक प्रकार के वाद्यों की ध्वनि के साथ, पुष्यस्नान के पहले दिन, प्रदोषबेला में उस स्थान पर जाये॥११॥

तस्य स्थानस्य कौवेर्यां दिशि स्थित्वा पुरोहितः ।
सुगन्धचन्दनैः पानैः कर्पूराद्यधिवासितैः ।।१२।।
गोरोचनाभिः सिद्धार्थैरक्षतैः सफलादिभिः ।
गन्धद्वारेत्यादिर्मन्त्रैः सर्वाधिसिक्तकैः ।।१३।।
अधिवास्य तु तत् स्थानं पूजयेत् तत्र देवताः ।
गणेशं केशवं शक्रं ब्रह्माणं चापि शङ्करम् ।।१४।।

उस स्थान से उत्तरदिशा में स्थित हो पुरोहित, सुगन्धितचन्दन, कर्पूर आदि से अधिवासित पेयपदार्थों, गोरोचन, सरसों, अक्षत, फल आदि से अधिसिक्त कर, उस स्थान को अधिवासित कर, वहाँ गणेश, विष्णु, इन्द्र, ब्रह्मा और शङ्कर नामक देवताओं का पूजन करे॥१३-१४॥

उमया सहितं देवं सर्वाश्च गणदेवताः ।
मातृश्च पूजयेत् तत्र नृपतिः सपुरोहितः ।।१५।।

पुरोहित के सहित राजा, पार्वती के सहित महादेव, सभी गणदेवताओं एवं मातृकाओं का भी वहीं पूजन करे॥१५॥

मङ्गलान् कलशान् कृत्वा नाना नैवेद्यसञ्चयान् ।
प्रदद्यात् पायसं स्वादुफलं मोदकायावकौ ।।१६।।

मङ्गलकलशों को स्थापित कर, खीर, मोदक, हलवे, स्वादिष्टफल आदि अनेकप्रकार के नैवेद्यसमूहों को अर्पित करे॥१६॥

अधिवास्य च तत् स्थानं दूर्वासिद्धार्थकाक्षतैः ।
तत्स्थानाच्चापि भूतानि सारयेन्मन्त्रमीरयन् ।।१७।।

उस स्थान को दूर्वा, सरसो और अक्षतों से अधिवासित कर, नीचे लिखे **अपसर्पन्तु...म्ह्मम्।** को बोलता हुआ, उस स्थान से भूतों का अपसारण करे॥१७॥

।। भूतापसारणमन्त्र ।।

अपसर्पन्तु ते भूता ये भूता भूमिपालकाः ।
भूतानामविरोधेन स्नानकर्मकरोम्यहम् ।।१८।।

मन्त्रार्थ–जो इस भूमि का पालन करने वाले प्राणी हैं वे यहाँ से दूर हट जायँ। मैं उन प्राणियों के अविरोध (सहयोग) से स्नानकर्म करता हूँ।।१८।।

ततः करौ पुटीकृत्य मन्त्रेणानेन पार्थिवः ।
आवाहयेदिमान् देवान् पूज्यान् पुष्याभिषेकतः ।।१९।।

तब हाथों को अन्जली की तरह करके, राजा, इस मन्त्र से इन पुष्याभिषेक से पूजेजानेवाले देवताओं का आवाहन करे।।१९।।

।। आवाहनमन्त्र ।।

आगच्छन्तु सुराः सर्वे येऽत्र पूजाभिलाषिणः ।
दिशो हि पालकाः सर्वे ये चान्येऽप्यंशभागिनः ।।२०।।

आवाहनमन्त्र–**आगच्छन्तु....भागिनः** है। **मन्त्रार्थ**–वे सभी देवता यहाँ पधारें जो मुझसे पूजे जाने की अभिलाषा रखते हैं। सभी दिग्पाल और अन्य देवता भी, जो इस पूजा में अपने अंश के अधिकारी हों वे भी पधारें।।२०।।

ततः पुष्पाञ्जलिं दत्त्वा पुनर्मन्त्रं पठेदिमम् ।
अद्य तिष्ठन्तु विबुधाः स्थानमासाद्य मामकम् ।
स्वपूजां प्राप्य पातारो दत्त्वा शान्तिं महीभुजे ।।२१।।

तत्पश्चात् पुष्पाञ्जलि देकर पुनः **अद्य-महीभुजे** इस मन्त्र को पढ़े, मन्त्रार्थ-यहाँ आज सभी देवता मेरे स्थान पर आकर, अपने आसनों को ग्रहण कर, स्थित हों। वे सभी रक्षक, अपनी पूजाप्राप्त कर राजा को शान्तिप्रदान करें।।२।।

ततस्तां नृपती रात्रिं नयेत् तु सपुरोहितः ।
स्वप्ने शुभाशुभं विद्यान्नृपस्तु सपुरोहितः ।।२२।।

तब राजा पुरोहित के सहित, उस रात्रि को व्यतीत करे तथा स्वप्न में शुभाशुभ फल को जाने।।२२।।

कृत्वा पूजां तु देवानां रात्रौ स्थाने नृपः स्वपेत् ।
शुभाशुभफलं स्वप्ने ज्ञेयं दोषज्ञसम्मते ।।२३।।

देवताओं का पूजन कर राजा, रात्रि में उस स्थान पर शयन करे। दोष को जानने वाले की सम्मति से, शुभ या अशुभ फल को स्वप्न में जाने।।२३।।

।। स्वप्नविचार ।।

दुःस्वप्नदर्शनं चेत् स्यात् तदा पुष्याभिषेचने ।
होमं चतुर्गुणं कुर्याद् दत्त्वा चापि गवां शतम् ।।२४।।

यदि दुःस्वप्न दिखाई दे तो पुष्याभिषेक के समय में चौगुना होम करे तथा सौ गायों का दान करे।।२४।।

।। स्वप्न-विमर्श ।।

गोवाजिकुंजराणां तु प्रासादस्य गिरेस्तरोः ।
आरोहणं शुभकरं राज्यश्रीवृद्धिकारकम् ।।२५।।

गौ, घोड़े, हाथी, महल, पर्वत और वृक्ष पर चढ़ना शुभकारक एवं राज्य तथा श्री को बढ़ानेवाला होता है ॥२४॥

दधिदेवसुवर्णानां ब्राह्मणस्य प्रदर्शनम् ।
वीणादूर्वाक्षतफल पुष्पच्छत्रविलेपनम् ।।२६।।
शीतांशु चक्रशंखानां पद्मस्य सुहृदस्तथा ।
लाभाः क्षयकराः शत्रौ रत्नाकरस्य भूभृतः ।।२७।।

दधि, देवता, सुवर्ण, ब्राह्मण, वीणा, दूर्वा, अक्षत, फल, पुष्प, छत्र, चन्दन, चन्द्रमा और शङ्ख, कमल तथा मित्रों, राजा और रत्नाकर का स्वप्न में दिखाई देना, राजा को लाभ तथा उसके शत्रुओं को हानि पहुँचाने वाला होता है॥२६-२७॥

दर्शनं चोपरागस्य निगडेन च बन्धनम् ।
मांसस्य भोजनं चैव पर्वतस्य विवर्तनम् ।।२८।।
नाभिमध्ये तरुत्पत्तिर्मृतं प्रत्यनुरोदनम् ।
अगम्यागमनं कूपपङ्कगर्भावतीर्णता ।।२९।।
पर्वतस्य तथा नद्याः स्रोतसां लङ्घनं तथा ।
स्वपुत्रमरणं चैव पानं रुधिरमद्ययोः ।।३०।।
भोजनं पायसस्यापि मनुष्यारोहणं तथा ।
कल्याणसुखसौभाग्य-राज्य-शत्रुक्षयं तथा ।।३१।।
एते स्वप्नाः प्रकुर्वन्ति नृपस्य नृपसत्तम ।।३२।।

स्वप्न में ग्रहण का दर्शन, हथकड़ी से बन्धन, मांसभोजन, पर्वत से लुढ़कना, नाभि के बीच से वृक्ष की उत्पत्ति, मृत्यु और तत्पश्चात् विलाप, अगम्यों के साथ गमन, कुआँ और कीचड़ से निकलना, पर्वत, नदी-नालों का डांकना, अपने पुत्र का मरण, रुधिर और मद्य का पीना, खीरखाना, मनुष्य पर सवारी करना, उपर्युक्त स्वप्न, राजा के लिए कल्याण, सुख-सौभाग्य, राज्य तथा शत्रुक्षय कारक होते हैं॥२८-३२॥

खरोष्ट्रमहिषाणां च आरोहो राज्यनाशनः ।
नृत्यं गीतं तथा हास्यं पाठश्चाप्यशुभप्रदः ।।३३।।

स्वप्न में गदहा, ऊँट और भैंसे पर चढ़ना, नाचना, गाना, हँसना, पढ़ना भी राज्यनाशक, अशुभप्रदान करने वाला होता है॥३३॥

रक्तवस्त्रपरिधानं रक्तमालानुलेपनम् ।
रक्तां कृष्णां स्त्रियं चैव कामयन् मृत्युमाप्नुयात् ।।३४।।

स्वप्न में लालवस्त्र पहनना, लालमाला, लालचन्दन, धारण करने से तथा लाल या काली स्त्री की कामना से, मृत्यु प्राप्त होती है॥३४॥

कूपान्तरे प्रवेशः स्याद् दक्षिणाशागतिस्तथा ।
पङ्के निमज्जनं स्नानं भार्यापुत्रविनाशनम् ।।३५।।

कुएँ में प्रवेश, दक्षिणदिशा में गमन, कीचड़ में डूबना या स्नान करना दीखना, स्त्री एवं पुत्र का नाश करने वाला होता है ॥३५॥

लाभस्तस्य भवेत् स्वप्नेऽप्युरुत्पत्तिर्नृपस्य च ।
आदाय गर्भनाडीं तु शकुनो याति खञ्जनम् ।
स तु राज्यान्तरं प्राप्त महाकल्याणमाप्नुयात् ।।३६।।

स्वप्न में यदि राजा अपनी उत्पत्ति देखे तो उसे लाभ होता है। यदि गर्भनाडी लेकर प्राप्त कर जाता हुआ खञ्जन पक्षी को देखे तो वह दूसरा राज्य एवं महान् कल्याण को प्राप्त करता है।।३६।।

दीर्घं विंशतिहस्तं तु हस्तषोडशविस्तृतम् ।
कुर्यात् तु लक्षणोपेतं यज्ञमण्डलमुत्तमम् ।।३७।।
ततोऽपरेऽह्नि पूर्वाह्ने मातृणां पूजनं चरेत् ।
कुड्यलग्नां वसोर्धारां वृद्धिश्राद्धं तथैव च ।।३८।।

बीसहाथ लम्बा और सोलहहाथ चौड़ा, सभी लक्षणों से युक्त, उत्तम, यज्ञमण्डल बनाकर दूसरे दिन पूर्वाह्न में वहाँ मातृकापूजन, कुड्यलग्ना (दीवार से लगी) वसोर्धारा का पूजन तथा वृद्धिश्राद्ध, नान्दीमुखश्राद्ध सम्पन्न करे।।३७-३८।।

चन्दनागुरुकस्तूरीधूमकर्पूरचूर्णकैः ।।३९।।
सम्पूज्य मण्डलस्थानं तस्मिन् ह्रौं शम्भवे नमः ।
अस्त्राय हुं फडित्येव लिखेन्मन्त्रद्वयं बुधः ।।४०।।

चन्दन, अगुरु, कस्तूरी के धुयें तथा कपूर के चूर्ण से मण्डलस्थान की पूजा करके उस पर विद्वान्साधक **ह्रौं शम्भवे नमः** एवं **अस्त्राय हुं फट्** इन दो मन्त्रों को लिखे।।३९-४०।।

मन्त्रविन्मण्डलज्ञश्च सूत्रैः कम्बलसम्भवैः ।
कौशेयैर्वा स्वस्तिकाख्यं प्रथमं मण्डलं लिखेत् ।।४१।।

मन्त्रवेत्ता जो मण्डल के रहस्य को जानने वाला है, वह सर्वप्रथम कम्बल (ऊन) के बने सूत्रों अथवा रेशमीसूत्रों से स्वस्तिक नामक मण्डल बनाये।।४१।।

चतुर्हस्तप्रमाणं तु मण्डलं विलिखेत् ततः ।
हस्तप्रमाणं पद्मं तु मण्डलस्य प्रकीर्तितम् ।।४२।।

इस हेतु चारहाथ मान का मण्डल लिखकर, उस पर एकहाथ मान का, कमल बनाने को कहा गया है।।४२।।

द्वाराणि सार्धहस्तानि कर्णिकाकेशरोज्ज्वलम् ।
सितं रक्तं च पीतं च कृष्णं हरितमेव च ।।४३।।
शालिचूर्णैश्च कौसुम्भैर्हारिद्रैर्हरिदुद्भवैः ।
कुर्यात् तथाञ्जनैश्चूर्णै राजा मण्डलवृद्धये ।।४४।।

मण्डल के विकास हेतु, डेढ़ हाथ के द्वारों तथा केशर से सुशोभित कर्णिकाएँ श्वेत, लाल, पीले, हरे, काले रङ्ग के चूर्ण, क्रमशः चावल, लालपुष्प, हल्दी, हरित वनस्पतियों तथा काजलचूर्ण से, राजा बनाये।।४३-४४।।

पद्मान्ततः समारभ्य तालं पश्चिमगामिनम् ।
पश्चिमद्वारमध्ये च शतपत्रं विनिर्दिशेत् ।।४५।।

कमल के भीतर से प्रारम्भ कर पश्चिमदिशा में पश्चिमद्वार के मध्य में एक तल (बित्ते) मान का एक कमल बनाये॥४५॥

प्रत्येकं द्वारमध्ये तु पद्मं चैवाष्टपत्रकम् ।
कुर्यान्मण्डलभागज्ञश्चूर्णैरेव पृथक् पृथक् ॥४६॥

मण्डलभाग का ज्ञाता, इसी प्रकार प्रत्येक द्वार के मध्य में, चूर्ण से अलग-अलग, अष्टदलकमल बनाये॥४६॥

चूर्णस्तु मण्डलं कृत्वा सूत्राण्युत्सारयेत् ततः ।
उत्सार्य सूत्रं प्रथमं मण्डलं पूजयेत् ततः ॥४७॥

चूर्णों से मण्डल बनाकर, सूत्रों को वहाँ से हटाये। ऐसा करते हुये पहले सूत्रों को हटाये, तब मण्डल का पूजन करे॥४७॥

भवनाथनमः इति ततो हस्तं वियोजयेत् ।
सव्यावलम्बहस्तं तु रजःपात्रं समाचरेत् ॥४८॥

भवनाथनमः कहकर दोनों हाथों को विशेषरूप से मिलाये, बायें हाथ का अवलम्बन ले, रजपात्र की व्यवस्था करे॥४८॥

मध्यमानामिकाङ्गुष्ठेरुपरिष्टाद् यथेच्छया ।
अधोमुखाङ्गुलीः कृत्वा पातयेच्च विचक्षणः ॥४९॥

बुद्धिमान् साधक, मध्यमा अनामिका अंगुलियों को अँगूठे के ऊपर करके उन्हें नीचे अङ्गुलियों वाला करके रज कण गिराये॥४९॥

समारेखा तु कर्तव्या विच्छिन्ना पुष्परञ्जिता ।
अङ्गुष्ठपर्वनैपुण्यात् समा कार्या विजानता ॥५०॥

बिखरे हुए पुष्पों से ही सुसज्जित समाननाप की रेखाएँ विशेषज्ञान से बनानी चाहिये तथा अँगूठे के मूल से उन्हें, समतल करना चाहिये॥५०॥

संसक्तविषमं स्थूलं विच्छिन्नं कृसराकृतम् ।
पर्यन्तमर्पितं ह्रस्वमालिखेन्न कदाचन ॥५१॥

मण्डलनिर्माण में कभी भी आपस में मिली हुई, विषम, मोटी, टूटी-फूटी, पतली, सीमाओं में ही लुप्त, अत्यन्तछोटी रेखायें न बनाये ॥५१॥

संसक्ते कलहं विद्यादूर्ध्वरेखे तु विग्रहम् ।
अतिस्थूले भवेद् व्याधिर्नित्यं पीडाविमिश्रिते ॥५२॥
बिन्दुभिर्भयमाप्नोति शत्रुपक्षान्न संशयः ।
कृशायां चार्थहानिः स्याच्छिन्नायां मरणं ध्रुवम् ।
वियोगो वा भवेत् तस्य इष्टद्रव्यसुतस्य वा ॥५३॥

रेखाओं के संसक्त होने पर कलह जाने, ऊँची रेखाओं से विग्रह, अधिक मोटी होने पर रोग, मिली जुली होने पर अत्यन्त पीड़ा, बिन्दुओं से युक्त होने पर शत्रुपक्ष से भय होता है इसमें कोई सन्देह नहीं है। पतली रेखाओं से अर्थ-हानि और टूटी-फूटी रेखाओं से निश्चितरूप से मरण अथवा उसके अभीष्टद्रव्य या पुत्रादि का वियोग होता है॥५२-५३॥

अविदित्वा लिखेद् यस्तु मण्डलं तु यथेच्छया ।
सर्वदोषानवाप्नोति ये दोषाः पूर्वमीरिताः ।।५४।।
सितसर्षपदूर्वायाः रेखाः कार्या विजानता ।।५५।।

जो साधक मण्डल के इन रहस्यों को बिना जाने, मनमाने ढंग से मण्डल बनाता है वह, पहले कहे गये उपर्युक्त सभी दोषों को प्राप्त करता है । इसलिए भलीभाँति जानकारी करके, सफेद (पीला) सरसों एवं दूब से रेखाओं का निर्माण करना चाहिये॥५४-५५॥

विमलं विजयं भद्रं विमानं शुभदं शिवम् ।
वर्धमानं च देवं च शताक्षं कामदायकम् ।।५६।।
रुचिकं स्वस्तिकं चैव द्वादशैते तु मण्डलाः ।
यथास्थानं यथायज्ञं योजनीया विचक्षणैः ।।५७।।

बुद्धिमान् मनुष्यों द्वारा विमल, विजय, भद्र, विमान, शुभद, शिवम्, वर्धमान, देव, शताक्ष, कामदायक, रुचिक, स्वस्तिक इन बारह प्रकार के मण्डलों का यज्ञों के अनुरूप, यथास्थान, निर्माण किया जाना चाहिये॥५६-५७॥

सागरे समथ्यमाने तु पीयूषार्थं सुरोत्करैः ।
पीयूषधारणार्थाय निर्मतां विश्वकर्मणा ।।५८।।
कलां कलां तु देवानामसित्वा ते पृथक्-पृथक् ।
यतः कृतास्तु कलशास्ततस्ते परिकीर्तिताः ।।५९।।

देवताओं के समूह द्वारा अमृतप्राप्ति हेतु समुद्रमन्थन किये जाते समय, उस अमृत को रखने के लिए विश्वकर्मा द्वारा देवताओं की अलग-अलग कलाओं से युक्त कर निर्मित होने के कारण ही अमृतपात्र, कलश कहे गये हैं॥५८-५९॥

नवैव कलशाः प्रोक्ता नामतस्तान्निबोधत ।
गोह्योपगोह्यो मरुतो मयूखश्च तथापरः ।।६०।।
मनोहाचार्यभद्रश्च विजयस्तनुदूषकः ।
इन्द्रियघ्नोऽथ विजयो नवमः परिकीर्तितः ।।६१।।

जो नवप्रकार के कलश कहे गये हैं, अब आप उनके नामों को सुनो—गोह्य, उपगोह्य, मरुत, मयूख, मनोहर, आचार्यभद्र, विजयतनुदूषकः, इन्द्रियघ्न और नौवाँ विजय कहा गया है॥६०-६१॥

तेषामेव क्रमाद् भूप नव नामानि यानि तु ।
शृणु तान्यपराण्येव शान्तिदानि सदैव हि ।।६२।।

हे राजन् ! अन्य क्रमशः सुनो। उनके ही सदैव शान्ति देने वाले अन्यनामों को भी क्रमशः सुनो॥६२॥

क्षितीन्द्रः प्रथमः प्रोक्तो द्वितीयो जलसम्भवः ।
पवनाग्नी ततो द्वे तु यजमानस्ततः परः ।।६३।।
कोषसम्भवनाभ्यां तु षष्ठः स परिकीर्तितः ।
सोमस्तु सप्तमः प्रोक्त आदित्यस्तु तथाष्टमः ।।६४।।

विजयो नाम कलशो योऽसौ नवम उच्यते ।
स तु पंचमुखः प्रोक्तो महादेवस्वरूपधृक् ।।६५।।

उनमें क्षितीन्द्र पहला कहा गया है, द्वितीय जलसम्भव, उसके बाद क्रमशः दो पवन एवं अग्नि तत्पश्चात् यजमान, नाभिकोष से उत्पन्न जो कलश है वह छठा कहा गया है। सोम सातवाँ, आदित्य आठवाँ है । विजय नामवाला जो नौवाँ कहा गया है वह महादेव का स्वरूपधारण करने के कारण पंचमुख कहा जाता है।।६३-६५।।

घटस्य पञ्चवक्त्रेषु पञ्चवक्त्रः स्वयं तथा ।
यथाकाष्ठां स्थितः सम्यग्वामदेवादिनामतः ।।६६।।

इस घट के पाँच मुखों में स्वयं पञ्चवक्त्रशिव यथोचित दिशाओं में अपने वामदेव आदि नामों से भलीभाँति स्थित हैं।।६६।।

मण्डलस्य तु पद्मान्तः पञ्चवक्त्रः स्वयं तथा ।
क्षितीन्द्रं पूर्वतो न्यस्य पश्चिमे जलसम्भवम् ।।६७।।

मण्डल पर बने कमल के मध्य में पञ्चवक्त्रघट की स्थापना करे । उसके पूर्व की ओर क्षितीन्द्रघट का न्यास करके पश्चिम में जलसम्भव नामक घट की स्थापना करे।।६७।।

वायव्ये वायवं न्यस्य आग्नेये ह्यग्निसम्भवम् ।
नैर्ऋत्ये यजमानं तु ऐशान्यां कोषसम्भवम् ।।६८।।
सोममुत्तरतो योज्यं सौरं दक्षिणतो न्यसेत् ।
न्यस्यैवं कलशांश्चैव तेषु चैतान् विचिन्तयेत् ।।६९।।

वायव्यकोण में वायु (पवन) का न्यास कर आग्नेयकोण में अग्नि की, नैर्ऋत्य में यजमान की तो ऐशान्य में कोषसम्भव नाम के घट की, उत्तर में सोम की योजना कर, दक्षिण में सौर (आदित्य) कलश की स्थापना करे । इस प्रकार उपर्युक्त रीति से कलशों की स्थापना करके, उन कलशों पर इन (नीचे लिखे) देवों का ध्यान करे।।६८-६९।।

कलशानां मुखे विष्णुर्ग्रीवायां शङ्करः स्थितः ।
मूले तु संस्थितो ब्रह्मामध्ये मातृगणाः स्थिताः ।।७०।।

कलशों के मुख में भगवान् विष्णु, गले में भगवान् शङ्कर स्थित हैं, उनके मूल में ब्रह्मा तथा मध्य में मातृगण (मातृकाएँ) स्थित हैं।।७०।।

दिक्पाला देवताः सर्वाः वेष्टयन्ति दिशोदशः ।
कुक्षौ तु सागराः सप्त सप्तद्वीपाश्च संस्थिताः ।।७१।।

दिशाओं के स्वामी इन्द्रादि देवगण, सभी दशों दिशाओं से इन्हें घेरे रहते हैं, इनकी कुक्षि में सातोंसमुद्र तथा सातोंद्वीप स्थित रहते हैं।।७१।।

नक्षत्राणि ग्रहाः सर्वे तथैव कुलपर्वताः ।
गङ्गाद्याः सरितः सर्वाःवेदाश्चत्वार एव च ।
कलशे संस्थिताः सर्वे तेषु तानि, विचिन्तयेत् ।।७२।।

सभी नक्षत्र, ग्रह तथा कुलपर्वत, गङ्गादि सभी नदियाँ, चारों वेद, कलश में ही स्थित हैं, उनका वैसा ही ध्यान करे॥७२॥

रत्नानि सर्वबीजानि पुष्पाणि च फलानि च।
वज्रमौक्तिकवैदूर्यमहापद्मेन्द्रस्फाटिकैः ॥७३॥
सर्वधाममयं बिल्वं नागरोदुम्बरं तथा।
बीजपूरकजम्बीरकाश्मीराम्रातदाडिमम् ॥७४॥
यवं शालिं च नीवारं गोधूमं सितसर्षपम्।
कुङ्कुमागुरुकर्पूरमदनं रोचनं तथा ॥७५॥
चन्दनं च तथा मांसीमेलां कुष्ठं तथैव च।
कस्तूरीपत्रचूर्णं च जलनिर्यासकाम्बुदम् ॥७६॥
शैलेयं बदरं जातीपत्रपुष्पे तथैव च।
कालशाकं तथा पृक्का देवीपर्णकमेव च ॥७७॥
वचां धात्रीं समञ्जिष्ठां तुरुष्कं मङ्गलाष्टकम्।
दूर्वां मोहनिकां भद्रां शतमूली शतावरीम् ॥७८॥
वर्णानां सरलां क्षुद्रां सहदेवीं गजाह्वयाम्।
पूर्णकोषां सितां पीठां गुञ्जां शिरसिकानलौ ॥७९॥
व्यामकं गजदन्तं च शतपुष्पं पुनर्नवाम् ॥८०॥
ब्राह्मीं देवीं शिवां रुद्रां सर्वसन्धानिकां तथा।
समाहृत्य शुभानेतान् कलशेषु निधापयेत् ॥८१॥

सब प्रकार के रत्न, बीज, पुष्प, फल, वज्र (हीरा), मोती, मूँगा, महापद्म, इन्द्र (नील), स्फटिकों से, सर्वधाममय, बेल, नागर, गूलर, बीजपूर, जम्बीर, काश्मीर (केशर), आम, अनार, जौ, धान, गेहूँ, श्वेतसरसो, नीवार, गोरोचन, चन्दन, जटामांसी, मेला (सुरमा), कुष्ठ (कूट), कस्तूरी, पत्रचूर्ण, जलनिर्मित काम्बुदशैलेय (राल), बदर (बेर), जाती पुष्प के पत्र और कालशाक, पृक्का, देवीपर्ण, वचा, आँवला, मजीठ, तुरुष्क, मङ्गलाष्टक दूब, मोहनिका, भद्रा, शतमूली, शतावरी, वर्णाना, छुद्रा, सहदेवी, गजा, सरला (विरोजा), पूर्णकोषा, सिता (मिश्री), पीठा, गुञ्जा, शिरसिका और अनल, व्यापक, गजदन्त, शतपुष्प, पुनर्नवा, ब्राह्मी, देवी, शिवा, रुद्रा तथा सर्वसन्धानिका इन सब शुभ पदार्थों (सर्वौषिधि) को लाकर उन कलशों में छोड़े॥७२-८१॥

कलशस्य यथादेशं विधिं शम्भुं गदाधरम्।
यथाक्रमं पूजयित्वा शम्भुं मुख्यतया यजेत् ॥८२॥
प्रासादेन तु मन्त्रेण शम्भुं तन्त्रेण शङ्करम्।
प्रथमं पूजयेन्मध्ये नाना नैवेद्यवेदनैः ॥८३॥

कलश के शुभस्थानों पर क्रमशः ब्रह्मा, शिव और विष्णु का पूजन करके विशेषरूप से शिव का पूजन करे। इस हेतु प्रासादमन्त्र और शम्भुतन्त्र (शिवपूजा पद्धति) से अनेक प्रकार के नैवेद्य निवेदित कर, मध्यभाग में सर्वप्रथम भगवान् शङ्कर का पूजन करे॥८२-८३॥

दिक्पालानां घटेष्वेव दिक्पालानपि पूजयेत् ।
पूर्वं बहिः स्थापितेषु ग्रहाणां कलशेषु च ।
नवग्रहान् पूजयेत् तु मातृर्मातृघटेषु च ।।८४।।

दिक्पालों के घटपर दिक्पालों का तथा मातृकाघटों पर मातृकाओं का पूजन करे। पहले बाहर स्थापित ग्रहों के कलशों पर नवग्रहों का तब मातृकाओं का मातृकाघट पर पूजन करे।।८४।।

सर्वे देवा घटे पूज्या घटास्तेषां पृथक् पृथक् ।
नवैव तत्र पूर्वोक्ताः स्मृता मुख्यतया नृप ।।८५।।

इस प्रकार सभी देवताओं घर पर ही पूजे जाने चाहिये और उनके घट भी अलग-अलग होने चाहिये। हे राजन् ! उनमें नव ही मुख्यरूप से बताये गये हैं।।८५।।

भक्ष्यैर्भोज्यैश्च पेयैश्च पुष्पैर्नानाविधैः फलैः ।।८६।।
यावकैः पायसैश्चैव यथासम्भवयोजितैः ।
पुष्यस्नानाय नृपतिः पूजयेत् सकलान् सुरान् ।।८७।।

इनका भक्ष्य, भोज्य और पेय पदार्थों, अनेक प्रकार के पुष्पों, फलों, हलुआ, खीर जो यथासम्भव (सामर्थ्य के अनुसार) जुटाये गये हों, उनसे पुष्यस्नान के निमित्त राजा, सब देवताओं का पूजन करे।।८६-८७।।

दक्षिणे मण्डलस्याथ कुण्डं निर्माय पायसैः ।
समिद्भिः शलिसिद्धार्थैर्घृतैर्दूर्वाक्षतैस्तथा ।।८८।।
केवलैश्च तथैवाज्यैः पूजितान् सकलान् सुरान् ।
होमेन तोषयेद् वृद्ध्यै नृपः ऋत्विक् पुरोहितः ।।८९।।

राजा अपनी वृद्धि हेतु, मण्डल के दक्षिण में कुण्ड बनाकर खीर, समिधा, चावल, सरसो, घी, दूब, या केवल अक्षत और घी से ऋत्विक पुरोहित के साथ, सभी पूजे गये देवताओं को होम द्वारा सन्तुष्ट करे।।८८-८९।।

होमान्ते मण्डलोदीच्यां वेदिकायां सपट्टकम् ।
रोचनाख्यमलंकारांस्तथा सर्वान् नियोजयेत् ।।९०।।

होम के अन्त में मण्डल के उत्तरभाग में वस्त्रयुक्तवेदिका पर अलङ्कार तथा रोचना आदि को व्यवस्थित करे।।९०।।

वृद्धावङ्गुलमङ्गुल्या षड्विंशाङ्गुलिकावधि ।
वृत्तं वा चतुरस्रं वा पद्मं त्रिकोणसंज्ञकम् ।।९१।।

एक-एक अङ्गुल बढ़ाते हुए क्रमशः २६ अङ्गुल तक वृत्ताकार, चौकोर, कमल के आकार की या त्रिकोण वेदी बनाये।।९१।।

रत्नेशान् पद्ममध्ये तु गोमुष्टिकविनायकैः ।
श्रीश्रीवृक्षवरारोहामुमादेवीं शुभान्विताम् ।।९२।।
रत्नैः सर्वैरलङ्कारैः पट्टं कार्यं द्विहस्तकम् ।
हस्तविस्तारमुच्छ्रायं नवहस्तं दशाङ्गुलम् ।।९३।।
स्नानार्थं सार्धहस्तं च पट्टं वृत्तं गुणान्वितम् ।

कमल के मध्य में उत्तम रत्न, गौ, स्वस्तिक, गणेश, लक्ष्मी, श्रीवृक्ष (बेल के पेड़) सब प्रकार के रत्नों और आभूषणों से,के लिए दोहाथ चौड़ा, नौहाथ लम्बा, दश अङ्गुल ऊँचा पीठ को स्थापित करे, शुभदायिनी उत्तम जंघों वाली उमादेवी॥९२-९३॥

शय्या चतुर्गुणा दीर्घा धनुर्मानं तु पीठकम् ।।९४।।
गजसिंहकृताटोपं हेमरत्नविभूषितम् ।
सिंहाख्यं सार्धविस्ताराद् दण्डासनमथापि वा ।।९५।।

उनके स्नान हेतु डेढ़ हाथ का वृत्ताकार, गुणों से युक्त, शय्या के लिए इसका चौगुना लम्बा, धनुष के मान का पीठ बनावे। अथवा हाथी या सिंह के मुख के आकार की स्वर्ण एवं रत्नों से विभूषित, सिंह नामक अथवा डेढ़ हाथ चौड़ी दण्डासनरूप की शय्या बनावे॥९४-९५॥

व्याघ्रचित्रकपट्टैर्वा उपधानानि कारयेत् ।
अन्यैर्वा निर्मितां चर्ममृदुतूलकपूरिता ।।९६।।

बाघ के चित्रांकित वस्त्रों से अन्य मुलायम, चमड़े, रुई आदि से निर्मित तकिये बनाने चाहिये॥९६॥

शय्या दीर्घार्धविस्तीर्णा चतुर्हस्ता सुलक्षणा ।
वितस्त्यधिकमिच्छन्ति नृपस्य गुरुविद्यया ।।९७।।

गुरु के उपदेशानुसार उत्तम शय्या, चारहाथ लम्बी और उसकी आधी, दो हाथ, चौड़ी बताई गई है। राजा की शय्या इससे एक बित्ता अधिक बताई गई है॥९७॥

अर्धचन्द्रसमं कुर्यादासनं चतुरस्रकम् ।
उपधानानि शय्यायाः कर्णादिमूलभेदतः ।
षोडशैवात्र कार्याणि वर्णचित्रयुतानि च ।।९८।।

अर्धचन्द्र के समान चौकोर सिंहासन और कर्ण आदि मुख्य भेदों के आधार पर शय्या के सोलह प्रकार के रङ्ग-बिरङ्गे उपधान बनाने चाहिये॥९८॥

यानं सिंहासनं पट्टं शय्योपकरणादिकम् ।
राज्ञो नूतनयोग्यं तद् वेद्या उत्तरतो न्यसेत् ।।९९।।

राजा के लिए जो भी नये वाहन, सिंहासन, वस्त्र, शय्या, उपकरण आदि हों, उन सबको वेदी के उत्तर में रखे॥९९॥

तेषां तु पश्चिमे स्वर्णरत्नौघखचिते वरे ।
पर्यङ्के यज्ञदार्वौघनिर्मिते महदास्तरे ।।१००।।
अर्धाच्छादनसंयुक्ते चर्मावृतचतुष्टये ।
वृषभस्य तथोर्णायाः सिंहशार्दूलयोरपि ।।१०१।।
पादपीठे रत्नयुते पादावारोप्य पार्थिवः ।।१०२।।

उनके पश्चिम में सोने और रत्नों से जड़े, यज्ञकाष्ठ से बने, महान अस्तर से युक्त, अर्ध आच्छादन से सुशोभित, बैल, ऊन, सिंह और शार्दूल के चार प्रकार के चमड़ों से ढके हरे, श्रेष्ठ पलङ्ग, तथा रत्नजटित, पादपीठ पर पैर रखकर, राजा विराजमान हो॥१००-१०२॥

तस्मिन् पर्यङ्कपीठस्थे चर्मावृतचतुष्टये ।
नानालङ्कारभूषाढ्यं नृपतिं रत्नशालिनम् ।।१०३।।
स्नापयेद् ब्राह्मणैः सार्धं राजानं सुखसङ्गतम् ।
संवीतकम्बलं कृष्णं 'बहुवस्त्रैश्च स्नापयेत् ।
कलशैर्वलिपुष्पाद्यैः शालिचूर्णैश्च स्नापयेत् ।।१०४।।

उस पर्यंकपीठ पर, चार प्रकार के चमड़ों से ढके, अनेक प्रकार के अलङ्कारों से अलंकृत, रत्नों से सम्पन्न ब्राह्मणों के साथ सुखपूर्वक विराजित, काले कम्बलों के समूह व बहुत से वस्त्रों से शोभायमान, राजा को, कलशों के समूह, बलि पुष्प, चावल के चूर्ण (उबटन) आदि से स्नान कराये॥१०३-१०४॥

अष्टौ षोडश विंशाष्टशतमधिकं च वा ।
कलशानां समाख्याता अधिकस्योत्तरोत्तरम् ।।१०५।।

अभिषेक के निमित्त कलशों की आठ, सोलह, बीस या एक सौ आठ संख्या उत्तरोत्तर अधिकश्रेष्ठ बताई गई है ॥१०५॥

जयकल्याणदैर्मन्त्रैर्मङ्गलोत्थैश्च शाम्भवैः ।
वैष्णवैरथ दिक्पालैर्ग्रहमन्त्रैश्च मातृकैः ।।१०६।।

उपर्युक्त कलशों से विजय दिलाने वाले, कल्याण करने वाले, शिव, विष्णु, दिक्पालों, ग्रहों तथा मातृकाओं के मन्त्रों के द्वारा अभिषेक करे॥१०६॥

आज्यं तेजः समुदृष्टमाज्यं पापहरं परम् ।
आज्यं सुराणामाहार आज्ये लोकाः प्रतिष्ठिताः ।।१०७।।
भौमान्तरिक्षं दिव्यं वा यत् ते कल्मषमागतम् ।
सर्वं तदाज्यसंस्पर्शात् प्रणाशमुपगच्छत ।।१०८।।

आज्यम्...मुपगच्छत, मन्त्रार्थ–घी, तेज प्रदान करने वाला है, वह पाप को दूर करने वाला परम साधन है, वह देवताओं का भोजन है तथा उसी में लोक प्रतिष्ठित हैं। पृथ्वी सम्बन्धी, अन्तरिक्ष सम्बन्धी, दैवी जो भी दोष आ गये हों वे सब घी के सम्यक स्पर्श से दूर हो जायँ। इन मन्त्रों को पढ़ता हुआ घी लगाये॥१०७-१०८॥

ततोऽपनीयगात्रात् तु कम्बलं वस्त्रमेव च ।
कलशैः स्नापयेद् भूपं पुष्पस्नानीयपूरितैः ।।१०९।।
एभिमन्त्रैर्नरश्रेष्ठ तनुतत्त्वार्थसाधकैः ।।११०।।

तब शरीर से वस्त्र कम्बल आदि को हटाकर, पुष्प और स्नानीयजल से भरे कलशों से, शरीर के तत्त्व और अर्थसिद्ध करने वाले इन मन्त्रों द्वारा राजा को स्नान कराये॥१०९-११०॥

॥ अभिषेकमन्त्र ॥

सुरास्त्वामभिषिञ्चन्तु ये च सिद्धाः पुरातनाः ।
ब्रह्मा विष्णुश्च रुद्राश्च साध्याश्च समरुद्गणाः ।
आदित्या वसवो रुद्रा अश्विनौ यौ भिषग्वरौ ॥१११॥

हे राजन् ! पुराने सिद्ध, ब्रह्मा, विष्णु, शिव, मरुत्गणों के सहित साध्यगण, आदित्य, वसु, रुद्र, श्रेष्ठचिकित्सक अश्विनीकुमार आदि जो देवगण हैं, वे सब आपका अभिषेक करें॥१११॥

अदितिर्दिवमाता च स्वाहा लक्ष्मीः सरस्वती ।
कीर्तिर्लक्ष्मीधृतिः श्रीश्च सिनीवाली कुहूस्तथा ॥११२॥
दितिश्च सुरसा चैव विनता कद्रुरेव च ।
देवपत्न्यश्च याः प्रोक्ता देवमातर एव च ॥११३॥
सर्वास्त्वामभिषिञ्चन्तु सिद्धाश्चाप्सरसां गणाः ॥११४॥

देवमाता अदिति, स्वाहा, लक्ष्मी, सरस्वती, कीर्ति, (कमला) धृति, श्री, सिनी- वाली, कुहू, दिति, सुरसा, विनिता, कद्रु आदि जो देवपत्नियाँ व देवमातायें कही गई हैं, वे सभी तथा सिद्धों और अप्सराओं के समूह, आपका अभिषेक करें॥११२-११४॥

नक्षत्राणि मुहूर्ताश्च पक्षाहोरात्रसन्धयः ।
संवत्सराः निमेषाश्च कलाः काष्ठाः क्षणा लवाः ।
सर्वे त्वामभिषिञ्चन्तु कालस्यावयवस्तथा ॥११५॥

नक्षत्र, मुहूर्त, पक्ष, अहोरात्र की सन्ध्यायें, संवत्सर, निमेष, कला, काष्ठा, क्षण, लव जो भी काल के अवयव हैं, वे सभी आपका अभिषेक करें॥११५॥

वैमानिकाः सुरगणाः मनवः सागरैः सह ।
सरितश्च महानागा नागाः किंपुरुषास्तथा ॥११६॥
वैखानसा महाभागा द्विजा वैहायसाश्च ये ।
सप्तर्षयः सदाराश्च ध्रुवस्थानानि यानि तु ॥११७॥
मरीचिरत्रिः पुलहः पुलस्त्यः क्रतुरङ्गिराः ।
भृगुः सनत्कुमारश्च सनकश्च सनन्दनः ॥११८॥
सनातनश्च दक्षश्च जैगीषव्योऽभिनन्दनः ।
एकतश्च द्वितश्चैव त्रितो जावालिकाश्यपौ ॥११९॥
दुर्वासा दुर्विनीतश्च कण्वः कात्यायनस्तथा ।
मार्कण्डेयो दीर्घतमाः शुनःशेपो विदूरथः ॥१२०॥
और्वः संवर्तकश्चैव च्यवनोऽत्रिः पराशरः ।
द्वैपायनो यवक्रीतो देवरातः सहात्मजः ॥१२१॥
एते चान्ये च बहवो वेदव्रतपरायणाः ।
सशिष्यास्तेऽभिषिञ्चन्तु सदाराश्च तपोधनाः ॥१२२॥

विमान पर विराजमान देवगण, चौदह मनु, सागरों के सहित नदियाँ, महान

पर्वत, नाग, किंपुरुष (किन्नर), महाभाग वैखानस जो वैहायस हैं, वे तथा ध्रुवस्थान पर स्थित जो मरीचि, अत्रि, पुलह, पुलस्त्य, क्रतु, अङ्गिरा, पत्नी के सहित वशिष्ठ आदि सप्तर्षि, भृगु, सनत्कुमार, सनक, सनन्दन, सनातन, दक्ष, जैगीषव्य, अभिनन्दन, जाबालि और काश्यप, दुर्वासा, दुर्विनीत, कण्व, कात्यायन, मार्कण्डेय, दीर्घतमा, शुनःशेप, विदूरथ, और्व, संवर्तक, च्यवन, अत्रि, पराशर, द्वैपायन, यवक्रीत, अपने पुत्र के सहित देवरात, ये सभी और दूसरे भी बहुत से वेदव्रतपरायण, तपस्वी ऋषिगण, अपनी पत्नियों और शिष्यों के सहित, अकेले, दो-दो, तीन-तीन के समूहों में, अवस्थित हो आपका अभिषेक करें॥११६-१२२॥

पर्वतास्तरवो नद्यः पुण्यान्यायतनानि च।
प्रजापतिः क्षितिश्चैव गावो विश्वस्य मातरः ॥१२३॥
वाहनानि च दिव्यानि सर्वे लोकाश्चराचराः।
अग्नयः पितरस्तारा जीमूताः खं दिशो जलम् ॥१२४॥
एते चान्ये च बहवः पुण्यसंकीर्तनाः शुभाः।
तोयैस्त्वामभिषिञ्चन्तु सर्वोत्पातनिवर्हणैः ॥१२५॥

सभी पर्वत, वृक्ष, नदियाँ, पुण्यतीर्थक्षेत्र, प्रजापति, पृथ्वी, विश्व की मातायें (मातृकायें), गौवें, दिव्यवाहन, चराचरलोक, अग्नियाँ, पितर, तारा, बादल, आकाश, दिशायें एवं जल, ये सब, बहुत से, जिनका स्मरण शुभदायक एवं पुण्य स्मरणीय है और सभी अन्य, उत्पातों को दूर करने के लिए जल से आपका अभिषेक करें॥१२३-१२५॥

इत्येवं शुभदैरेतैर्दिव्यैर्मन्त्रैस्तथापरैः ॥१२६॥
सौरैर्नारायणै रौद्रैर्ब्रह्मशक्रसमुद्भवैः।
आपोहिष्ठा हिरण्येति सम्भवेति सुरेति च ॥१२७॥
मानस्तोकेति मन्त्रेण गन्धद्वारैत्यनेन च।
सर्वमंगलमाङ्गल्ये श्रीश्च ते ग्रहयोगिभिः ॥१२८॥

सुरा.....निवर्हणैः। इन उपर्युक्त शुभदायी एवं दिव्यमन्त्रों (जिनके अर्थ उनके नीचे लिखे हैं) से तथा अन्य सूर्य, विष्णु, शिव, ब्रह्मा, इन्द्र से सम्बन्धित मन्त्रों-आपोहिष्ठा, हिरण्य, सम्भवाय, सुर, मानस्तोके, गन्धद्वारा, सर्वमंगलमाङ्गल्ये, श्रीश्चते, ग्रह और योगिनी आदि मन्त्रों से अभिषेक करे॥१२६-१२८॥

इत्येवं स्नानमासाद्य गात्रमावृत्य कम्बलैः।
सर्वमंगलमन्त्रेण वस्त्रं कार्पासकं ध्रियात् ॥१२९॥

इस प्रकार स्नानसम्पन्न करके राजा कम्बल से अपने शरीर को ढक कर, सर्वमङ्गलमंत्र से सूतीवस्त्र धारण करे॥१२९॥

आचम्य च ततो देवान् गुरुं विप्रांश्च पूजयेत्।
ध्वजच्छत्रं चामरं च घण्टां चाश्वान् गजांस्तथा।
मन्त्रं जप्त्वा धारयेत् तु ततो गच्छेधुताशनम् ॥१...॥

आचमन करे, तत्पश्चात् देवताओं, ब्राह्मणों का पूजन करे। तब मन्त्रजप-पूर्वक ध्वज, छत्र, चामर, घण्टा, हाथी, घोड़े से युक्त हो, राजा अग्निशाला में जाये।।१३०।।

तत्र गत्वा वह्निमध्ये वह्नेः श्रीर्वीक्ष्य पार्थिवः ।
निमित्तान्यनिमित्तानि लक्षयेत् तत्र बिन्दुभिः ।।१३१।।

राजा वहाँ जाकर अग्नि के मध्य उसकी शोभा को देखे तथा उसके स्फुलिङ्गों के आधार पर, निमित्त और अनिमित्तों का विचार करे।।१३१।।

दैवज्ञकञ्चुक्यमात्यवन्दिपौरजनैर्वृतः ।
वादित्रघोषैस्तुमलैस्तथा तौर्यत्रिकैः शुभैः ।।१३२।।
कृत्वा शेषे पुनः शान्तिमाशीर्वाच्य च वै द्विजान् ।
पूर्णा विधाय विधिवद् दक्षिणां कनकान्विताम् ।।१३३।।
धान्यानि चाथ वासांसि दत्त्वा कुर्याद् विसर्जनम् ।।१३४।।

ज्योतिषी, कञ्चुकी, अमात्य, वन्दि, नागरिकों से घिरा हुआ, बाजे गाजे, तूर्यत्रिक आदि शुभ वाद्यों के तुमुलघोष सहित, अन्त में ब्राह्मणों द्वारा पुनः शान्तिपाठ और आशीर्वचन कराकर, पूर्णाहुति कर, द्विजों को स्वर्णमयीदक्षिणा, अन्न और वस्त्र प्रदान कर, राजा विसर्जनकार्य सम्पन्न करे।।१३२-१३४।।

ततः शेषजलैः सर्वानमात्यादीन् पुरोहितः ।
सेचयेच्चतुरङ्गं च बलं चापि सराष्ट्रकम् ।।१३५।।

तब पुरोहित, शेष जल से राष्ट्र और बल के सहित, सभी अमात्यादि का, चतुरङ्गिणी सेना का भी सिंचन करे।।१३५।।

एवं कृत्वा नृपः पश्चात् त्रिरात्रं संयतो भवेत् ।
मांसमैथुनहीनश्च कुर्यान्माङ्गल्यसेवनम् ।।१३६।।

इस प्रकार से पुष्यस्नान करने के पश्चात् राजा, तीनरात्रिपर्यन्त मांस-मैथुन से रहित हो, माङ्गल्य का सेवन करता हुआ, संयतभाव से रहे।।१३६।।

पुष्यनक्षत्रयुक्ता तु तृतीया यदि लभ्यते ।
तस्यां पूज्या सदा देवी चण्डिका शंकरेण ह ।।१३७।।
पाञ्चालिकाविहाराद्यैः शिशूनां कौतुकैस्तथा ।
वैवाहिकेन विधिना मोहयेच्चण्डिकां शिवाम् ।।१३८।।

पुष्यनक्षत्र से युक्त तृतीयातिथि जब भी पड़े उसमें शङ्कर के साथ पार्वती देवी का सदैव पूजन कर, पाञ्चालिकविहार आदि, बच्चों के कौतुक और विवाहादि विधि से वह शिवा, चण्डिका को प्रसन्न करे।।१३७-१३८।।

चतुष्पथेषु सर्वेषु देवदेवीगृहेषु च ।
पताकाभिरलंकुर्यादेवं कुर्वन्न सीदति ।।१३९।।

सभी चौराहों, देवी-देवताओं के मन्दिरों को पताकाओं आदि से अलंकृत करे। ऐसा करके राजा कष्ट नहीं पाता ॥१३९॥

एवं कृत्वा शान्तियागं तथा पुष्याभिषेचनम् ।
चतुरङ्गैः समं राजा भार्याभिस्तु नरैः सह ।
राज्यमण्डलसंयुक्तः परत्रेह न सीदति ॥१४०॥

इस प्रकार से शान्तियाग और पुष्याभिषेक करके राजा, अपनी चतुरङ्गिणी सेना, पत्नियों और प्रजा के सहित राज्यमण्डल से युक्त होकर, इस लोक और परलोक में कहीं भी कष्ट नहीं पाता॥१४०॥

नातः परतरो यज्ञो नातः परतरोत्सवः ।
नातः परतरा शान्तिर्नातः परतरं शिवम् ॥१४१॥

इससे श्रेष्ठ न कोई यज्ञ है, न उत्सव है, न कोई शान्तिविधान है और न कोई कल्याणकारी कार्य ही है॥१४१॥

अनेनैव विधानेन नृपतेरभिषेचनम् ।
युवराज्याभिषेकं च कुर्याद्राजपुरोहितः ॥१४२॥

तथा इसी विधि से राजपुरोहित, राजा और युवराज का अभिषेक करे॥१४२॥

नृपाभिषेककरणमादौ यदि समाचरेत् ।
अनेनैव विधानेन स्थिरः स्यान्नृपतिस्तदा ॥१४३॥

यदि राज्याभिषेकके प्रकरण का प्रारम्भ, इस विधान से किया जाय तो राजा स्थायित्व को प्राप्त होता है॥१४३॥

अयं यज्ञः समुद्दिष्टः शक्रार्थं ब्रह्मणा पुरा ।
एवं यज्ञं नृपः कृत्वा परत्रेह न सीदति ॥१४४॥

॥ इति श्रीकालिकापुराणे पुष्यस्नानविधिर्नाम षडशीतितमोऽध्याय: ॥८६॥

प्राचीनकाल में यह यज्ञविधान, ब्रह्मा द्वारा इन्द्र से कहा गया था। इस प्रकार से यज्ञ करके राजा, इस लोक और परलोक में कहीं भी कष्ट नहीं पाता है ॥१४४॥

श्रीकालिकापुराण में पुष्यस्नानविधिनामक छियासीवाँ अध्याय सम्पूर्ण हुआ ॥८६॥



सप्ताशीतितमोऽध्यायः

इन्द्रध्वजपूजनम्

।। और्व उवाच ।।

अथातः शृणु राजेन्द्र शक्रोत्थानं ध्वजोत्सवम् ।
यत् कृत्वा नृपतिर्याति न कदाचित् पराभवम् ।।१।।

और्व बोले—हे राजाओं में इन्द्र के समान श्रेष्ठ ! अब तुम उस शक्रोत्थान नामक ध्वजोत्सव के विषय में सुनो जिसे करके राजा, कभी भी पराभव को नहीं प्राप्त करता।।१।।

रवौ हरिस्थे द्वादश्यां श्रवणेन विडौजसम् ।
आराधयेन्नृपः सम्यक् सर्वविघ्नोपशान्तये ।।२।।

राजा, सभी विघ्नों की शान्ति के लिए, सूर्य के सिंह राशि में स्थित होने तथा श्रवणनक्षत्रयुक्त द्वादशी तिथि के योग में, इन्द्र की भलीभाँति आराधना करे।।२।।

राजोपरिचरो नाम वसुनामापरस्तु यः ।
नृपस्तेनायमतुलो यज्ञः प्रावर्तितः पुरा ।।३।।

राजा उपरिचर जिसका दूसरा नाम वसु था, जो एक राजा था, उसने प्राचीन-काल में इस अतुलनीययज्ञ को प्रवर्तित किया था।।३।।

प्रावृट्काले च नभसि द्वादश्यामसितेतरे ।
पुरोहितो बहुविधैर्वाद्यैस्तूर्यैः समन्वितः ।।४।।
प्रथमं शक्रकेत्वर्थं वृक्षमामन्त्र्य वर्धयेत् ।
संवत्सरो वार्धकिश्च कृतमङ्गलकौतुकः ।।५।।

वर्षाऋतु में नभसमास (श्रावणमास) की शुक्लपक्ष की द्वादशीतिथि को पुरोहित, बहुत प्रकार के वाद्य, तूर्य आदि से युक्त हो, सर्वप्रथम इन्द्रध्वजहेतु वृक्ष को आमन्त्रित कर उसे बढ़ाये, तब एक वर्ष के बढ़े हुए उस वृक्ष को मङ्गलउत्सवपूर्वक काटे।।४-५।।

।। इन्द्रध्वजहेतुवर्ज्यवृक्ष ।।

उद्याने देवतागारे श्मशाने मार्गमध्यतः ।
ये जातास्तरवास्तांस्तु वर्जयेद् वासवध्वजे ।।६।।

उद्यान में, देवता के मन्दिर में, श्मशान में, मार्ग के मध्य में जो वृक्ष उगे हों, उन्हें इन्द्रध्वज के लिए न चुने ।।६।।

बहुवल्लीयुतं शुष्कं बहुकण्टकसंयुतम् ।
कुब्जं वृक्षादनीयुक्तं लताच्छन्नतरुं त्यजेत् ।।७।।

बहुत सी वल्लियों, बहुत अधिक काटों, वृक्ष आदि तथा लताओं से ढके, सूखे, कुबड़े, वृक्ष के समूह से युक्तवृक्ष का इस निमित्त, त्याग करे ।।७।।

पक्षिवाससमाकीर्णं कोटरैर्बहुभिर्युतम् ।
पवनानलविध्वस्तं तरुं यत्नेन वर्जयेत् ।।८।।

जहाँ पक्षियों के घोसले हों, जहाँ बहुत से खोखले हों, जो आग और पानी से ध्वस्त हो, ऐसे वृक्ष को भी प्रयत्नपूर्वक छोड़ दे ।।८।।

नारीसंज्ञाश्च ये वृक्षा अतिह्रस्वा अतिकृशाः ।
तान् सदा वर्जयेद् धीरः सर्वदा शक्रपूजने ।।९।।

जो वृक्ष स्त्रीनाम वाले हों, जो बहुत छोटे या बहुत पतले हों, धीरपुरुष सदा, सब प्रकार से इन्द्र के पूजन में उन वृक्षों का, त्याग करे।।९।।

अर्जुनौऽप्यश्वकर्णश्च प्रियको वट एव च ।
औदुम्बरश्च पंचैते केत्वर्थे ह्युत्तमाः स्मृताः ।।१०।।

इन्द्रध्वजहेतु अर्जुन, अश्वकर्ण, प्रियक (नीम), वट, और गूलर ये पाँच वृक्ष, उत्तम बताये गये हैं।।१०।।

अन्ये च देवादार्वाद्याः शालाद्यास्तरवस्तथा ।
प्रशस्तास्तु परिग्राह्या नाप्रशस्ताः कदाचन ।।११।।

अन्य देवदारु, शाल आदि के वृक्ष यदि प्रशस्त (ठीक) हों तो उन्हें लेना चाहिये अन्यथा कभी नहीं लेना चाहिये ।।११।।

धृत्वा वृक्षं ततो रात्रौ स्पृष्ट्वा मन्त्रमिमं पठेत् ।
यानि वृक्षेषु भूतानि तेभ्यः स्वस्ति नमोऽस्तु वः ।।१२।।
उपहारं गृहीत्वेमं क्रियतां वासवध्वजम् ।
पार्थिवास्त्वां वरयते स्वस्ति तेऽस्तु नगोत्तम ।
ध्वजार्थं देवराजस्य पूजेयं प्रतिगृह्यताम् ।।१३।।

तब वृक्ष का चयन कर, रात्रि में उसका स्पर्श कर इन **यानि.....प्रतिगृह्यताम्।** मन्त्रों को पढ़े। **मन्त्रार्थ-**इस वृक्ष पर जो प्राणी स्थित हैं, उन सबका कल्याण हो, तुम सब को नमस्कार है। तुम इस उपहार को स्वीकार करो और इन्द्रध्वज के निर्माण में सहायक हों, राजा ने इन्द्रध्वजनिर्माणहेतु तुम्हें चुना है। हे नगों (वृक्षों) में उत्तम! तुम्हारा कल्याण हो, कृपया इस पूजा को स्वीकार करो।।१२-१३।।

ततोऽपरेऽह्नि तं छित्त्वा मूलमष्टांगुलं पुनः ।।१४।।
जले क्षिपेत् तथाग्रस्य च्छित्वैव चतुरङ्गुलम् ।
ततो नीत्वा पुरद्वारं केतुं निर्माय तत्र वै ।।१५।।
शुक्लाष्टम्यां भाद्रपदे केतुं वेदीं प्रवेशयेत् ।

तत्पश्चात् दूसरे दिन उसे काटकर उसके जड़ के आठअङ्गुल भाग को जल में छोड़ दे तथा अगले चारअङ्गुल भाग को काटकर उस वृक्ष को नगर के द्वार देश

पर लाकर, वहीं इन्द्रध्वज का निर्माण कर, भादों के शुक्लपक्ष की अष्टमी तिथि को उसे वेदी पर प्रवेश (प्रतिष्ठित) कराये॥१४-१५॥

द्वाविंशद्धस्तमानस्तु अधमः केतुरुच्यते ।
द्वात्रिंशत् तु ततो ज्यायान् द्वाचत्वारिंशदेव च ।।१६।।
ततोऽधिकः समाख्यातो द्वापञ्चाशत् तथोत्तमः ।।१७।।

बाईसहाथ नाप का ध्वज अधम, उससे अच्छा बत्तीसहाथ का तथा उससे अच्छा बयालीस हाथ का कहा गया है किन्तु बावनहाथ का ध्वज उत्तमकोटि का कहा जाता है॥१६-१७॥

कुमार्यः पञ्च कर्त्तव्याः शक्रस्य नृपसत्तम ।
शालमय्यस्तु ताः सर्वा अपराः शक्रमातृकाः ।।१८।।
केतोः पादप्रमाणेन कार्याः शक्रकुमारिकाः ।
मातृकार्धप्रमाणां तु यन्त्रहस्तद्वयं तथा ।।१९।।

हे राजाओं में श्रेष्ठ ! ध्वजनिर्माण के साथ ही इन्द्र की पाँच कुमारियाँ बनानी चाहिये । गुड़िया के रूप में इन्हें बनाना चाहिये । ध्वज के एक चौथाई प्रमाण के बराबर ही इन शक्रकुमारिकाओं को बनाना चाहिये। इसी प्रकार अन्य पाँच शक्रमातृकाएँ भी कुमारियों के आधे मान की बनानी चाहिये तथा साधक के दो हाथ मान का यन्त्र होना चाहिये॥१८-१९॥

एवं कृत्वा कुमारीश्च मातृकाः केतुमेव च ।
एकादश्यां सिते पक्षे यष्टिं तामधिवासयेत् ।।२०।।

इस प्रकार से कुमारी, मातृका और ध्वज का निर्माण कर शुक्लपक्ष की एकादशी को उस यष्टि का अधिवासन करे॥२०॥

अधिवास्य ततो यष्टिं गन्धद्वारादिमन्त्रकैः ।
द्वादश्यां मण्डलं कृत्वा वासवं विस्तृतात्मकम् ।।२१।।

गन्धद्वारा—आदि मन्त्रों से यष्टि का अधिवासन कर, द्वादशी को इन्द्र देवता का विस्तृतमण्डल बनावे ॥२१॥

अच्युतं पूजयित्वा तु शक्रं पश्चात् प्रपूजयेत् ।
शक्रस्य प्रतिमां कुर्यात् काञ्चनीं दारवीं च वा ।
अन्यतैजससम्भूतां सर्वाभावे तु मृन्मयीम् ।।२२।।

तत्पश्चात् सर्वप्रथम विष्णु का पूजन करे तदनन्तर इन्द्र का पूजन करे । इस पूजन हेतु स्वर्ण की, लकड़ी की अथवा अन्य किसी धातु की, सबके अभाव में मिट्टी से बनी, इन्द्रप्रतिमा बनानी चाहिये॥२२॥

तां मण्डलस्य मध्ये तु पूजयित्वा विशेषतः ।
ततः शुभे मुहूर्ते तु केतुमुत्थापयेन्नृपः ।।२३।।

उस प्रतिमा को मण्डल के मध्य में विशेषरूप से पूजन कर राजा, शुभ, मुहूर्त में उस ध्वज को उठाये॥२३॥

वज्रहस्त सुरारिघ्न बहुनेत्र पुरन्दर ।
क्षेमार्थं सर्वलोकानां पूजेयं प्रतिगृह्यताम् ।।२४।।

एह्योहि सर्वामरसिद्धसङ्घैरभिष्टुतो वज्रधरामरेश ।
समुत्थितस्त्वं श्रवणाद्यपादे गृहाण पूजां भगवन्नमस्ते ।।२५।।

वज्रहस्त.....नमस्ते। **मन्त्रार्थ**–हे हाथ में वज्र धारण करने वाले, हे देवशत्रुओं का नाश करने वाले, हे बहुतसे नेत्रों वाले, हे पुरन्दर! सभी लोकों के कल्याण के लिए आप इस पूजा को स्वीकार करें। हे सभी देवताओं और सिद्धों के समूहद्वारा पूजित, हे वज्रधाकारी, हे देवताओं के राजा ! आप यहाँ पधारें । श्रवण नक्षत्र के इस प्रथम चरण में ध्वजरूप से उत्थित हुये आप, इस पूजा को ग्रहण करें । हे भगवन् ! आपको नमस्कार है।।२४-२५।।

एवमुत्तरतन्त्रोक्तैर्दहनप्लवनादिभिः ।
इति मन्त्रेण तन्त्रेण नाना नैवेद्यवेदनैः ।।२६।।
अपूपैः पायसैः पानैर्गुडैर्धानाभिरेव च ।
भक्ष्यैर्भोज्यैश्च विविधैः पूजयेच्छ्रीविवृद्धये ।।२७।।

इस प्रकार कहकर, उत्तरतन्त्र में वर्णित, मन्त्र-तन्त्रों से दहन-प्लवन आदि विधियों, पूआ, खीर, पेयपदार्थों, गुड़, धान (चूर्ण), भक्ष्य, अनेक प्रकार के भोज्यपदार्थों के नैवेद्यों से, श्रीवृद्धिहेतु पूजन करे।।२६-२७।।

घटे तु दशदिक्पालान् ग्रहांश्च परिपूजयेत् ।
साध्यादीन् सकलान् देवान् मातृः सर्वा अनुक्रमात् ।।२८।।

घटों पर दशोदिक्पाल तथा ग्रहों का एवं क्रमशः साध्य आदि सभी देवताओं और मातृकाओं का पूजन करे ।।२८।।

ततः शुभे मुहूर्ते तु ज्ञानी वर्धकिसंयुतः ।
केतूत्थापनभूमिं तु या वेद्यास्तु पश्चिमे ।
विप्रैः पुरोहितैः सार्धं गच्छेद्राजा सुमंगलैः ।।२९।।

तब शुभमुहूर्त में ज्ञानी बढ़ई के साथ, यज्ञ-वेदी के पश्चिमभाग में ध्वज उत्थापनहेतु निर्धारितभूमिपर राजा सुमंगल वाद्यों, चिह्नों, ब्राह्मणों तथा पुरोहितों के सहित जाये।।२९।।

रज्जुभिः पंचभिर्बद्धं यन्त्रश्लिष्टं समातृकम् ।
कुमारीभिस्तु संयुक्तं दिक्पालानां च पट्टकैः ।।३०।।
बृहद्भिरतिकान्तैश्च नानाद्रव्यैः सुपूरितैः ।
यथावर्णैर्यथादेशे योजितैर्वस्त्रवेष्टितैः ।।३१।।
युक्तं तं किङ्किणीजालैर्वृहद्घण्टौघचामरैः ।
भूषितं मुकुरैरुच्चैर्माल्यैर्बहुविधैस्तथा ।।३२।।
बहुपुष्पैः सुगन्धैश्च भूषितं रत्नमालया ।
चित्रमाल्याम्बरैश्चैव चतुर्भिरपि तोरणैः ।।३३।।
उत्थापयेन्महाकेतुं राजकीयैः शनैः शनैः ।।३४।।

पाँच प्रकार की डोरियों से बँधे तथा यन्त्र से जुड़े, मातृकाओं और कुमारियों व दिक्पालों के सहित, बड़े-बड़े अत्यन्त सुन्दर वस्त्रों, अनेक पदार्थों से पूरित, यथोचित

रङ्गों के यथोचित स्थानों पर लिपटे वस्त्रों, छोटी-छोटी घण्टियों और बड़े घण्टों तथा चामरों, ऊँचे दर्पणों, बहुत प्रकार की मालाओं, बहुत से पुष्पों, सुगन्धित पदार्थों, रत्नों की माला, रंग बिरङ्गे माला व वस्त्रों से सुशोभित, चारो तोरणों से युक्त उस विशाल, ध्वज को राज्यकर्मियों की सहायता से धीरे-धीरे उठाये ॥३०-३४॥

तमुत्थाय महाकेतुं पूजितं मण्डलान्तरे ।
प्रतिमां तां नयेन्मूलं केतोः शक्रं विचिन्तयन् ॥३५॥

उस महान्ध्वज को उठाकर पूजा करे, अन्य मण्डल में ध्यान के साथ पूजी-गई, इन्द्र की प्रतिमा को ध्वज के मूल में ले आये॥३५॥

यजेत् तं पूर्ववत् तत्र शचीं मातलिमेव च ।
जयन्तं तनयं तस्य वज्रमैरावतं तथा ॥३६॥
ग्रहांश्चाप्यथ दिक्पालान् सर्वांश्च गणदेवताः ।
अपूपाद्यैः पूजयेत् तु बलिभिः पायसादिभिः ॥३७॥

उसका पहले की भाँति पूजन करे, वहीं उनकी पत्नी शची, पुत्र जयन्त, आयुध वज्र, वाहन ऐरावत तथा ग्रहों, दिक्पालों एवं सभी गणदेवताओं का भी पूआ, खीर, बलि आदि से, पहले की ही भाँति पूजन करे॥३६-३७॥

पूजितानां च देवानां शश्वद्धोमं समाचरेत् ।
होमान्ते तु बलिं दद्याद् वासवाय महात्मने ॥३८॥

तत्पश्चात् पूजे गये देवताओं का भलीभाँति होम करे। होम के पश्चात् महात्मा-इन्द्र को बलि प्रदान करे॥३८॥

तिलं घृतं चाक्षतं च पुष्पं दूर्वां तथैव च ।
एतैस्तु जुहुयाद् देवान् स्वैः स्वैर्मन्त्रैर्नरोत्तम ॥३९॥

हे मनुष्यों में उत्तम ! तिल, घी, अक्षत, पुष्प, दूब इनसे देवताओं का, उनके अपने-अपने मन्त्रों से होम करे॥३९॥

ततो होमावसाने तु भोजयेद् ब्राह्मणानपि ।
एवं सम्पूजयेन्नित्यं सप्तरात्रं दिने दिने ।
ब्राह्मणैः सहिता राजा वेदवेदांगपारगैः ॥४०॥

तब होम की समाप्ति के बाद ब्राह्मणों को भोजन भी कराये। इस प्रकार राजा सात दिनों तक नित्य, प्रतिदिन, वेद के पारङ्गत ब्राह्मणों के साथ पूजन करे ॥४०॥

सर्वत्र शक्रपूजासु यज्ञेषु परिकीर्तितः ।
त्रातारमिति मन्त्रोऽयं वासवस्य प्रियः परः ॥४१॥

सब जगह इन्द्रपूजा सम्बन्धी यज्ञों में **त्रातारमिन्द्रं**—यह इन्द्र का श्रेष्ठ और प्रियमन्त्र कहा गया है॥४१॥

एवं कृत्वा दिवाभागे शक्रोत्थापनमादितः ॥४२॥
श्रवणर्क्षयुताया तु द्वादश्यां पार्थिवः स्वयम् ।
अन्तपादे भरण्यां तु निशि शक्रं विसर्जयेत् ॥४३॥

इस प्रकार श्रवणनक्षत्रयुक्त द्वादशी को दिन के आदिभाग में राजा स्वयं इन्द्र

का स्थापन और इन्द्रध्वज का उत्थापन करे तथा भरणीनक्षत्र के अन्तिमचरण में, रात्रि में उसको विसर्जित करे॥४२-४३॥

सुप्तेषु सर्वलोकेषु यथा राजा न पश्यति ।
षण्मासान्मृत्युमाप्नोति राजा दृष्ट्वा विसर्जनम् ।
शक्रस्य नृपशार्दूल तस्मान्नेक्षेत तन्नृपः ।।४४।।

हे नृप शार्दूल ! राजा जैसे सबके सो जाने पर उन्हें नहीं देखता। उसी प्रकार राजा, इन्द्र का विसर्जन भी न देखे क्योंकि विसर्जन को देखकर राजा छः महीने के भीतर मृत्यु को प्राप्त करता है॥४४॥

विसर्जनस्य मन्त्रोऽयं पुराविद्भिरुदीरितः ।।४५।।
सार्धं सुरासुरगणैः पुरन्दरः शतक्रतोः ।
उपहारं गृहीत्वेयं महेन्द्रध्वज गम्यताम् ।।४६।।

पुराणवेत्ताओं ने विसर्जन का यह मन्त्र बताया है-**सार्धं-गम्यताम्। मन्त्रार्थ–** हे पुरन्दर! हे शतक्रतु ! महेन्द्रध्वज ! सभी देवताओं और असुरों के सहित इस भेंट को स्वीकार करके आप पधारें॥४५-४६॥

सूतके तु समुत्पन्नने वारे भौमस्य वा शनैः ।
भूमिकम्पादिकोत्पाते वासवं न विसर्जयेत् ।।४७।।

सूतक पड़ जाने पर, मङ्गल अथवा शनिवार या भूकम्प आदि उत्पात के समय इन्द्र का विसर्जन न करे॥४७॥

उत्पाते सप्तरात्रं तु तथोप्लवदर्शने ।
व्यतीत्य शनिभौमौ च ह्यन्यर्क्षेऽपि विसर्जयेत् ।।४८।।

उत्पात होने या विप्लव दिखाई देने पर सातरात्रि के पश्चात भी शनि एवं भौमवार को छोड़कर, अन्य नक्षत्रों में भी विसर्जन करे॥४८॥

सूतके त्वथ संप्राप्ते व्यतीते सूतके पुनः ।
यस्मिन् तस्मिन् दिने चैव सूतकान्ते विसर्जयेत् ।।४९।।

जब सूतक उपस्थित हो तो सूतक के बीत जाने पर जिस किसी दिन भी विसर्जन करे॥४९॥

तथा केतुं नृपो रक्षेत् पतन्ति शकुना यथा ।
न केतौ नृपशार्दूल यावन्नहि विसर्जनम् ।।५०।।

हे नृपशार्दूल ! जब तक विसर्जन न हो जाय तब तक ध्वज की ऐसे रक्षा करे कि उस पर पक्षी आदि न बैठें॥५०॥

शनैः शनैः पातयेत् तु यथोत्थापनमादितः ।
कृतं तथा यथा भग्ने केतौ मृत्युमवाप्नुयात् ।।५१।।

प्रारम्भ में धीरे-धीरे ध्वज को जिस प्रकार उठाया था, उसी प्रकार धीरे-धीरे गिराये। ऐसा करे जिससे वह टूटे नहीं, ध्वज के टूट जाने पर राजा, मृत्यु को प्राप्त करता है॥५१॥

विसृष्टं शक्रकेतुं तु सालङ्कारं तथा निशि ।
क्षिपेदनेन मन्त्रेण त्वगाधे सलिले नृप ।।५२।।

हे राजन् ! अलङ्कारों के सहित विसर्जित किये, उस इन्द्रध्वज को रात्रि में इस **तिष्ठ--विनाशक**—मन्त्र के साथ गहरे जल में डुबो दे।।५२।।

तिष्ठ केतो महाभाग यावत् संवत्सरं जले ।
भवाय सर्वलोकानामन्तराय विनाशक ।।५३।।

मन्त्रार्थ—हे महाभाग ! हे केतु (पताके) ! वर्षपर्यन्त, आप इस जल में सभी लोकों के विघ्नों के विनाशक होकर, निवास करें।।५३।।

उत्थापयेत् तूर्यरवैः सर्वलोकस्य वै पुरः ।
रहो विसर्जयेत् केतुं विशेषो यः प्रपूजने ।।५४।।

तूर्यघोषों के साथ सभी जनसमूह के सामने ध्वज स्थापित करे किन्तु जो विशेष पूजन की रीति है, उसके अनुसार, एकान्त में उसका विसर्जन करे।।५४।।

एवं यः कुरुते पूजां वासवस्य महात्मनः ।
स चिरं पृथिवीं भुक्त्वा वासवं लोकमाप्नुयात् ।।५५।।

इस प्रकार से जो महात्माइन्द्र की पूजा करता है, वह चिरकाल तक पृथ्वी के राज्यसुख को भोग कर, अन्त में इन्द्रलोक को प्राप्त करता है।।५५।।

न तस्य राज्ये दुर्भिक्षं नाधयो व्याधयः क्वचित् ।
स्थास्यन्ति मृत्युर्नाकाले जनानां तत्र जायते ।।५६।।

उसके राज्य में कभी दुर्भिक्ष, आधि-व्याधि नहीं होती। वहाँ लोगों की मृत्यु भी अकाल में नहीं होती।।५६।।

तत्तुल्यः कोऽपि नान्योऽस्ति प्रियः शक्रस्य पार्थिव ।
तस्य पूजा सर्वपूजा केशवाद्याश्च तत्रगाः ।।५७।।

हे राजन् । उस (राजा) के समान इन्द्र को कोई प्रिय नहीं होता । उसकी पूजा से सबकी पूजा हो जाती है तथा केशव आदि सभी देवता उसके वश में हो जाते हैं।।५७।।

सकलकलुषहारि व्याधिदुर्भिक्षनाशं
सकलभवनिवेशं सर्वसौभाग्यकारि ।
सुरपतिगृहगाभिर्वार्चनं शक्रकेतोः
प्रतिशरदमनेकैः पूजयेच्छ्रीविवृद्धये ।।५८।।

।। इति श्रीकालिकापुराणे इन्द्रध्वजपूजननाम सप्ताशीतितमोऽध्यायः ।।८७।।

यह सभी प्रकार के दोषों का नाश करने वाला, व्याधि और दुर्भिक्ष का नाश करने वाला, समस्त संसार का आश्रय, सब प्रकार का सौभाग्य करने वाला है । इन्द्रलोक जाने की इच्छा रखने वालों को प्रत्येक शरद-ऋतु में श्रीवृद्धि हेतु अनेक इन्द्रध्वज का पूजन करना चाहिये ।।५८।।

श्रीकालिकापुराण में इन्द्रध्वजपूजननामक सत्तासीवाँ अध्याय सम्पूर्ण हुआ ।।८७।।



अष्टाशीतितमोऽध्यायः

विष्णुपूजनविधिः

।। और्व उवाच ।।

ज्येष्ठ दशहरायां तु विष्णोरिष्टिं नृप शृणु ।
येन वा विधिना कुर्यादिष्टिं विष्णोर्नृपः सदाः ।।१।।

और्व बोले– हे राजन् ! अब ज्येष्ठमास की दशमीतिथि को होने वाले विष्णुयज्ञ के विषय में सुनो । राजा को सदैव जिस विधि से उस विष्णुयज्ञ को करना चाहिये, वह मैं तुमसे कहता हूँ।।१।।

प्रत्यब्दं पार्थिवः कुर्यात् प्रतिमां काञ्चनी हरेः ।
अन्यतेजोमयी वापि दारवीं वा शिलामयीम् ।।२।।

राजा प्रतिवर्ष भगवान् विष्णु की सोना या अन्य धातु की, लकड़ी या पत्थर की मूर्ति बनवाये ।।२।।

तां प्रतिष्ठाप्य विधिना मानोन्मानैस्तु शिल्पिभिः ।
प्रतिष्ठां विधिवत् तस्याः कुर्याद् विप्रैः पुरोहितैः ।।३।।

उसकी शिल्पियों के मान और माप के अनुसार प्रतिष्ठा (स्थापना) करके ब्राह्मण एवं पुरोहितों द्वारा विधिवत् उसकी प्राणप्रतिष्ठा करे।।३।।

तां संस्थाप्य सुरागारे स्वयं वा यत्नतः कृते ।
वासुदेवस्य बीजेन पूर्वोक्तविधिना तथा ।
सर्वोपचारैर्भक्त्या तु वासुदेवं प्रपूजयेत् ।।४।।

उसे देवालय में स्वयं प्रयत्नपूर्वक, वासुदेव के बीजमन्त्र से पहले बताई गई विधि के अनुसार, सभी उपचारों से, भक्तिपूर्वक, भगवान् विष्णु का पूजन करे।।४।।

पूजान्ते संस्कृते वह्नौ कुण्डमध्ये स्थितो द्विजः ।
आज्यैः सहस्रं जुहुयादाहुतीनां हरेः प्रियम् ।।५।।

ब्राह्मण पूजा के पश्चात्, कुण्ड के मध्य में स्थित, संस्कारित अग्नि में घी से भगवान् विष्णु को प्रिय लगने वाली हजार आहुतियाँ, हवन करे।।५।।

संपूज्य वासुदेवं तु होमं कृत्वा ततो द्विजः ।
नृपस्यानुमते तां तु प्रतिमां मण्डलं नयेत् ।।६।।

तब द्विज वासुदेव की पूजा और होम करके राजा की अनुमति से उस प्रतिमा को मण्डल में स्थापित करे॥६॥

प्रतिमायाः कपोलौ द्वौ स्पृष्ट्वा दक्षिणपाणिना ।
प्राणप्रतिष्ठां कुर्वीत तस्यां देवस्यवै हरेः ॥७॥

प्रतिमा के दोनों गालों का दाहिने हाथ से स्पर्श करके, उसमें भगवान् विष्णु की प्राणप्रतिष्ठा करे॥७॥

कृतायां तु प्रतिष्ठायां प्राणानां नृपसत्तम ॥८॥
विष्णुप्राणास्तां प्रतिमामायान्ति नियतं स्वयम् ।
प्राणेष्वथागतेष्वस्यां देवत्वं नियतं भवेत् ॥९॥

हे राजाओं में श्रेष्ठ ! प्राणों की प्रतिष्ठा करने से विष्णु के प्राण, उस प्रतिमा में स्वयं आकर स्थित हो जाते हैं। प्राणों के आ जाने पर देवत्व भी उसमें स्थायी हो जाता है॥८-९॥

अकृतायां प्रतिष्ठायां प्राणानां प्रतिमासु च ।
यथापूर्वं तथा भावः स्वर्णादीनां न विष्णुता ॥१०॥

प्रतिमाओं में प्राणों की प्रतिष्ठा न किये जाने से इन प्रतिमाओं में पहले की भाँति, स्वर्णादि मूल धातुओं का ही भाव रहता है, उसमें भगवान् विष्णु का भाव नहीं आ पाता॥१०॥

अन्येषामपि देवानां प्रतिमास्वपि पार्थिव ।
प्राणप्रतिष्ठा कर्तव्या तस्या देवत्वसिद्धये ॥११॥

हे राजन् ! अन्य प्रतिमाओं में भी देवत्वसिद्धि के लिए देवताओं की प्राणप्रतिष्ठा करनी चाहिये॥११॥

सुवर्णं तु सुवर्णः स्याच्छिला दारु तथा शिला ।
अन्यच्च स्वस्वरूपं स्यात् प्राणस्थानमृते सदा ॥१२॥

प्राणस्थापन के बिना प्रतिमा का स्वर्ण, स्वर्ण, लकड़ी, लकड़ी और शिला, शिला, मूर्तिनिर्माण के अन्य पदार्थ, अपने मूलरूप में सदैव रहते हैं॥१२॥

वासुदेवस्य बीजेन तद् विष्णोरित्यनेन च ।
तथैवाङ्गाङ्गिमन्त्राभ्यां प्रतिष्ठामाचरेद्धरेः ॥१३॥

वासुदेव के बीज मन्त्र या **तद् विष्णोः**—इस मन्त्र से या उसी प्रकार विष्णु के अङ्ग और अङ्गि मन्त्रों से भगवान् विष्णु की प्राणप्रतिष्ठा सम्पन्न करे॥१३॥

तथैव हृदयेऽङ्गुष्ठं दत्त्वा शश्वच्च मन्त्रवित् ।
एभिर्मन्त्रैः प्रतिष्ठाप्य हृदयेऽपि समाचरेत् ॥१४॥

उसी प्रकार हृदय पर अँगूठा रखकर मन्त्रवेत्ता निरन्तर इस मन्त्र से प्रतिमा के हृदय में प्राणप्रतिष्ठा सम्पन्न करे॥१४॥

अस्यै प्राणाः प्रतिष्ठन्तु अस्यैः प्राणाः क्षरन्तु यत् ।
असौ देवत्वसंख्यायै स्वाहेति यजुरुच्चरन् ।।१५।।
अङ्गमन्त्रैरङ्गिमन्त्रैर्वैदिकैरित्यनेन च ।
प्राणप्रतिष्ठां सर्वत्र प्रतिमासु समाचरेत् ।।१६।।

मन्त्रार्थ–इसके प्राण प्रतिष्ठित एवं सञ्चारित होवें, वे देवत्व संख्यान के निमित्त होवें। देवत्व की प्रतिष्ठार्थ अस्यैः **प्राणाः-स्वाहा** इस यजुष का उच्चारण करके अङ्ग और अङ्गि मन्त्रों तथा वैदिकमन्त्रों से प्रयत्नपूर्वक सभी प्रतिमाओं में प्राण-प्रतिष्ठा सम्पन्न करे॥१५-१६॥

प्रतिमापूजने कुर्यादात्मन्यपि च मन्त्रवित् ।
प्राणप्रतिष्ठां प्रथमं पूजाभागविशुद्धये ।।१७।।

मन्त्रवेत्ता प्रतिमापूजन के अवसर पर पहले अपने में ही पूजाभाग की शुद्धि के लिए प्राणप्रतिष्ठा करे॥१७॥

अस्मिन् प्राणप्रतिष्ठा तु प्रतिमापूजनादृते ।
न कश्चित् तु बुधः कुर्यात् कृत्वा मृत्युमवाप्नुयात् ।।१८।।

किन्तु अस्मिन् प्राणप्रतिष्ठामन्त्र का प्रतिमापूजन के अतिरिक्त अन्यत्र प्रयोग न करे, करने से मृत्यु को प्राप्त होता है॥१८॥

विष्णोरिष्टिमिमां कृत्वा दशम्यां पार्थिवोत्तमः ।
तस्यामेव तू पूर्णायां प्रतिमां स्थापयेत् ततः ।।१९।।

श्रेष्ठ राजा दशमीतिथि को विष्णु की इस इष्टि को करके, उसी पूर्णिमा के दिन प्रतिमा की स्थापना करे॥१९॥

एवं दशहरायां तु कृत्वेष्टिं पार्थिवो हरेः ।
सर्वान् कामानवाप्नोति निर्विघ्नोऽपि स जायते ।।२०।।

इस प्रकार से दशमी को भगवान् विष्णु का पूजन करके राजा, सभी कामनाओं को प्राप्त करता है तथा वह विघ्नरहित हो जाता है॥२०॥

श्रीपंचम्यां श्रियं देवीं कुन्दैः संपूजयेत्सदा ।
वासवं गजराजस्थमुपहारैस्तथोत्तमैः ।।२१।।

श्रीपञ्चमी को सदैव कुन्द से श्री (लक्ष्मी) की पूजा तथा गजराज ऐरावत पर स्थित इन्द्र की पूजा, उत्तम उपहारों से करनी चाहिये ॥२१॥

लक्ष्म्यास्तन्त्रं महामन्त्रं वासवस्य पुरोदितम् ।
अत्रापि पूजने ग्राह्यं मण्डलादि यथाक्रमम् ।।२२।।

लक्ष्मी का पूजनविधान, महामन्त्र और इन्द्र का पूजनविधानादि जो पहले ही कहा गया है, यहाँ पूजन में क्रमानुसार उन्हीं मण्डल आदि को ग्रहण करना चाहिये।।२२।।

एवं कृते पूजने तु श्रीपंचम्यां विशेषतः ।
श्रीयुतो नृपतिर्भूयान्न श्रीहानिमवाप्नुयात् ।।२३।।

इस प्रकार पूजन करने, विशेष कर श्रीपञ्चमी के दिन पूजन करने से, राजा श्री से युक्त होता है, वह श्री की हानि को प्राप्त नहीं होता है।।२३।।

सदाचारविशेषोऽयं कथितस्तव पार्थिव ।
निषेधे तु विशेषांश्च शृणु येन श्रियेष्यते ।।२४।।

हे राजन्! यह विशेष सदाचार तुमसे कहा गया। अब उन न करने योग्य विशेषों को सुनो, जिनके पालन से लक्ष्मी की प्राप्ति होती है ।।२४।।

असंपूज्य तथा विष्णुं शिवमग्निं पुरन्दरम् ।
अदत्त्वा च तथा दानं न भुञ्जीत नृपः क्वचित् ।।२५।।

राजा कभी भी शिव, अग्नि, विष्णु और इन्द्र की पूजा किये तथा दान दिये बिना भोजन न करे ।।२५।।

हावयेदग्निहोत्रं तु नित्यमेव पुरोहितैः ।
अकृत्वा चाग्निहोत्रं तु भुञ्जन्नरकमाप्नुयात् ।।२६।।

वह नित्य ही पुरोहितों द्वारा अग्निहोत्र कराये। बिना अग्निहोत्र किये जो भोजन करता है, वह नरक को प्राप्त करता है।।२६।।

नारक्षिते गृहे राजा रत्नदीपविवर्जिते ।
स्वपेत् तथा स्त्रिया सार्धं न कदाचन संविशेत् ।।२७।।

राजा कभी भी रक्षा से हीन, रत्नदीप से हीन, घर में न सोये और न तो वह अकेले स्त्रियों के साथ ही रहे।।२७।।

भुक्त्वान्नं श्रीफलं नाद्यात् तथा धात्रीफलं नृपः ।
बुद्धिक्षयकरा ह्येता माष आसवमृत्तिकाः ।।२८।।

अन्न खाकर राजा नारीयल और आँवला न खाये। ऊर्द, आसव तथा मिट्टी, बुद्धि का नाश करने वाली होती हैं।।२८।।

निम्बाटरूपच्युताश्च बुद्धिवृद्धिकरा मताः ।
बुद्धिक्षयकरां नित्यं त्यजेद्राजा च भोजने ।।२९।।

नीम, अट्रुष (अडूस), च्युत (आम) ये बुद्धि को बढ़ाने वाले बताये गये हैं। राजा को अपने भोजन में बुद्धिनाश करने वाले पदार्थों का त्याग करना चाहिये।।२९।।

भक्षयेदन्वहं बुद्धिवृद्धिहेतुं नृपोत्तमः ।
न पर्यायविहीनं तु प्रारोहेदासनं नृपः ।।३०।।

उत्तम राजा, प्रतिदिन बुद्धिवृद्धि कारक पदार्थों का सेवन करे। वह कभी भी जाँचे-परखे बिना आसन पर न चढ़े।।३०।।

न यानं न गजं नाश्वमारोहेद्धीनमासनैः ।
नैकस्तु विचरेद्राजा कदाचिदपि निर्जने ।।३१।।

राजा आसन से रहित वाहन, हाथी, घोड़े आदि पर न चढ़े, वह कभी भी निर्जनस्थान में अकेले विचरण न करे ।।३१।।

मदहेतुं न भुंजीयात् कदाचिदपि भोजने ।
कदाचिन्नापि सेवेत ह्यष्टम्यां मांसमैथुने ।।३२।।

भोजन में मद बढ़ाने वालापदार्थ वह कभी भी न खाये तथा अष्टमी को मधु और मांस का भोजन वह कभी भी न करे।।३२।।

दर्शश्राद्धं गयाश्राद्धं तिलैस्तर्पणमेव च ।
न जीवत्पितृको भूप कुर्यात् कृत्वाघमाप्नुयात् ।।३३।।

राजा अपने पिता के जीवित रहते, अमावस्याश्राद्ध, गयाश्राद्ध, तिल से तर्पण न करे। ऐसा करने पर वह पाप को प्राप्त करता है।।३३।।

न क्षेत्रजादींस्तनयान् राज्ये राजाभिषेचयेत् ।
पितृणां शुद्धये नित्यमौरसे तनये सति ।।३४।।

औरसपुत्र के रहते पितरों की शुद्धि के लिए क्षेत्रज आदि अन्यपुत्रों को राज्य में वह राज्याभिषिक्त न करे।।३४।।

औरसः क्षेत्रजश्चैव दत्तः कृत्रिम एव च ।
गूढोत्पन्नोऽपविद्धश्च भागार्हास्तनया इमे ।।३५।।

औरस, क्षेत्रज, दत्त, कृत्रिम, गूढ़ोत्पन्न, अपविद्ध, ये छः पुत्र भागग्रहण करने वाले कहे गये हैं।।३५।।

कानीनश्च सहोढश्च क्रीतः पौनर्भवस्तथा ।
स्वयंदत्तश्च दासश्च षडेते पुत्रपांसुलाः ।।३६।।

कानीन, सओढ़, क्रीत, पौनर्भव, स्वयंदत्त, दास ये छः पांसुलपुत्र कहे गये हैं।।३६।।

अभावे पूर्वपूर्वेषां परान् समभिषेचयेत् ।
पौनर्भवं स्वयंदत्तं दासं राज्ये न योजयेत् ।।३७।।

पहले वालों के अभाव में बादवाले का अभिषेक करे । किन्तु पुनर्भूपत्नी से उत्पन्न पुत्र, स्वयंदत्त, तथा दासपुत्र को राज्य में नियोजित न करे।।३७।।

दत्ताद्याश्चापि तनया निजगोत्रेण संस्कृताः ।
आयान्ति पुत्रतां सम्यगन्यबीजसमुद्भवाः ।।३८।।

दत्त आदि पुत्र भी अन्य के गर्भ से उत्पन्न होने के बाद भी भलीभाँति अपने गोत्र से संस्कृत होकर, पुत्रत्व को प्राप्त करते हैं।।३८।।

पितुर्गोत्रेण यः पुत्रः संस्कृतः पृथिवीपते ।
आचूडान्तं न पुत्रः स पुत्रता याति चान्यतः ।।३९।।

पिता के गोत्र से जो पुत्र राजा के संस्कारों से युक्त हो, वही पुत्रता को प्राप्त करता है व चूडान्त (मुण्डन) संस्कार तक वह पुत्र नहीं होते जो अन्य से पुत्रता को प्राप्त करते हैं।।३९।।

चूडान्ता यदि संस्कारा निजगोत्रेण संस्थिताः ।
दत्ताद्यास्तनयास्ते स्युरन्यथा दास उच्यते ।।४०।।

यदि चूडान्तसंस्कार अपने गोत्र में स्थित होकर हो तो वे दत्त आदि पुत्र भी पुत्रत्व को प्राप्त करते हैं अन्यथा वे दास कहे जाते हैं।।४०।।

ऊर्ध्वं तु पंचमाद् वर्षाद् दत्ताद्यांश्च सुतान्नृप ।
गृहीत्वा पंचवर्षीयं पुत्रेष्टिं प्रथमं चरेत् ।।४१।।

हे राजन् ! दत्त आदि पुत्र यदि पाँचवर्ष के ऊपर की अवस्था के हों तो पहले पाँचवर्ष की अवस्था होने पर ही उन्हें ग्रहण कर पुत्रेष्टियज्ञ करना चाहिये।।४१।।

पौनर्भवं तु तनयं जातमात्रं समानयेत् ।
कृत्वा पौनर्भवष्टोमं जातमात्रस्य तस्य वै ।।४२।।
एकोद्दिष्टं पितुः कुर्यान्न श्राद्धं पार्वणादिकम् ।
सर्वांस्तु कुर्यात् संस्कारान् जातकर्मादिकान्नरः ।
कृतेपौनर्भवष्टोमे सुतःपौनर्भवः स्मृतः ।।४३।।

पुनर्भू से उत्पन्न पुत्र के उत्पन्न होते ही, व्यक्ति उसे अपने घर ले आवे तथा उत्पन्न होते ही उसके लिए पौनर्भव नामक ष्टोमयज्ञ करे। तत्पश्चात् उस बालक के जातकर्म आदि सभी संस्कारों को करे। पौनर्भवष्टोम किये जाने पर ही वह पुत्र पौनर्भव कहा गया है। ऐसा पुत्र, पिता का एकोदिष्ट श्राद्ध करे, वह पार्वण आदि श्राद्ध न करे।।४२-४३।।

क्रीता या वनिता मूल्यैः सा दासीति निगद्यते ।
तस्यां तस्यां यो जायते पुत्रो दासः पुत्रस्तु स स्मृतः ।।४४।।

जो स्त्री मूल्य देकर खरीदी जाती है उसे दासी कहते हैं। उससे जो पुत्र उत्पन्न होता है, वह दासपुत्र कहा गया है।।४४।।

न राज्ञो राज्यभाक् स स्याद् विप्राणां नापि श्राद्धकृत् ।
अधमः सर्वपुत्रेभ्यस्तं तस्मात् परिवर्जयेत् ।।४५।।

राजाओं के राज्य का न तो वह अधिकारी होता है और न ब्राह्मणों के श्राद्ध का ही उसे अधिकार होता है । वह सब प्रकार के पुत्रों में अधमश्रेणी का पुत्र है। अतः उसे छोड़ ही दे।।४५।।

पुराणं धर्मशास्त्राणि संहिताश्च मुनीरिताः ।
नाध्यापयेन्नृपः शूद्रैर्विहितानि यदृच्छया ।।४६।।
यस्य राज्ये सदा शूद्राः पुराणं संहिता तथा ।
पठन्ति स्यात् स हीनायुः राजा राष्ट्रेण सान्वयः ।।४७।।

राजा मुनियों द्वारा कहे गये धर्मशास्त्र और संहिता ग्रन्थों को शूद्रों (अयोग्यजनों) द्वारा मनमाने ढंग से न पढ़वाये क्योंकि जिस राजा के राज्य में शूद्र सदा पुराण व संहिता पढ़ते हैं, वह अपने राष्ट्र तथा राज्याङ्गों सहित हीन-आयु वाला होता है।।४६-४७।।

मोहाद् वा कामतः शूद्रः पुराणं संहिता स्मृतिम् ।
पठन्नरकमाप्नोति पितृभिः सह पापकृत् ।।४८।।

मोहवश या इच्छानुसार जो शूद्र, पुराण, संहिता और स्मृति ग्रन्थों को पढ़ता है, वह पापकर्ता होता है तथा पिता के सहित, नरक को प्राप्त करता है।।४८।।

शूद्रेभ्यो विहितं यत् तु यश्च मन्त्र उदाहृतः ।
तद्विप्रवचनाद् ग्राह्यं द्वयं शूद्रैः सदैव हि ।।४९।।

शूद्रों द्वारा जो मन्त्र (परामर्श) दिया जाय उसे शूद्रों के साथ ही दो ब्राह्मणों के वचनों से अनुमोदित कराकर ग्रहण करना (उपयोग में लाना) चाहिये।।४९।।

न योजयेन्नृपः शूद्रं व्यवहारस्य दर्शने ।।५०।।
नियोज्य तत्र तं भूपस्तामिस्त्रे तेन पच्यते ।
हीनायुश्च भवेल्लोको राजा वापि सहायजः ।।५१।।

राजा शूद्रों को व्यवहार के दर्शन (न्याय-व्यवस्था) में न नियुक्त करे । उनको उसमें नियुक्त कर राजा तामिस्त्र नरक भोगता है या अपने सहायकों के सहित वह राजा लोक में हीनआयु को प्राप्त करता है।।५०-५१।।

काणं व्यङ्गमपुत्रं वा नाभिज्ञमजितेन्द्रियम् ।
न ह्रस्वं व्याधितं वापि नृपः कुर्यात् पुरोहितम् ।।५२।।

काने, विकलाङ्ग, पुत्रहीन, अज्ञानी, अजितेन्द्रिय, बहुत छोटे या दीर्घरोगी व्यक्ति को राजा, अपना पुरोहित न नियुक्त करे।।५२।।

कृपणस्य धनं राजा न गृह्णीयात् कदाचन ।
न द्विजानां तथा दद्याद् धनानि विपुलान्यपि ।।५३।।

राजा न तो कभी कृपण का धन ही ग्रहण करे और न द्विजों को (ब्राह्मणों या याचकों को) बहुत अधिक दान ही करे।।५३।।

नारोहेत् कामुकोन्मत्तगजं राजा कदाचन ।
आरुह्य कामुकस्तं तु परत्रेह विषीदति ।।५४।।

राजा कभी भी कामुक या उन्मत्त हाथी (या घोड़े) पर सवार न हो, यदि वह कामुक वाहन पर आरोहण करता है तो वह इस लोक और परलोक दोनों ही स्थानों पर कष्ट पाता है।।५४।।

अनायुष्यं न कुर्यात् तु कर्म भूपः कदाचन ।
यतेत चायुषो वृद्ध्यै यतेत सकलैर्धनैः ।।५५।।

राजा कभी भी आयु-कम करने वाले कार्य न करे। उसे अपने समस्तधन के सहित, आयुवृद्धि के लिए प्रयत्न करते रहना चाहिये ।।५५।।

न क्रूरवारे नाष्टम्यां न षष्ठयां च नृपोत्तमः ।
अञ्जनाभ्यञ्जने कुर्यात् ताम्बूलस्यापि भोजनम् ।।५६।।

उत्तम राजा को रवि-शनि-भौम आदि क्रूरवार, अष्टमी-षष्ठी आदि तिथियों में अञ्जन लगाने और पान खाने का कार्य नहीं करना चाहिये ।।५६।।

अतिसूक्ष्मं तथा पूर्णग्रहणं चन्द्रसूर्ययोः ।
नालोकयेत् स्वयं राजा रक्तं सूर्य तथैव च ।।५७।।

राजा चन्द्रमा और सूर्य के बहुतसूक्ष्म या पूर्णग्रहण को स्वयं न देखे। उसी प्रकार वह लालसूर्य (उगते या डूबते सूर्य) को भी न देखे।।५७।।

उत्पातं जायते यत्तु दिव्यं भौमं च नाभसम् ।
नेक्षेत यत्नान्नृपतिर्दृष्ट्वा नाद्यात् त्र्यहं पुनः ।।५८।।

जो दैवी, पृथ्वीसम्बन्धी और आकाशीय उत्पात होते हैं, राजा उन्हें प्रयत्न पूर्वक न देखे। यदि किसी प्रकार से देख ले तो वह प्रायश्चितस्वरूप तीनदिन भोजन न करे।।५८।।

सर्वदा मङ्गलं रत्नं धारयेत् सह दूर्वया ।
अवस्त्राच्छदितं गात्रं न विप्रेभ्यः प्रदर्शयेत् ।।५९।।

वह दूर्वा के सहित सदैव मङ्गलमय रत्नों को धारण करे तथा ब्राह्मणों को कभी भी वस्त्रसे नढका (नङ्गा) शरीर न दिखाये।।५९।।

न तोयेषु मुखं पश्येन्नाद्यान्मांसानि पर्वसु ।
नारोहयेत् खरं चोष्ट्रं न वामामपि गुर्विणीम् ।।६०।।

वह न कभी जल में अपना मुख देखे, न पर्वों पर मांस भक्षण करे, न गदहा, ऊँट पर चढ़े, या गर्भिणी स्त्री का ही सेवन करे॥६०॥

एवं नययुतो राजा चतुरङ्गं विवर्धयन् ।
आत्मानं सततं रक्षन् सदा वीर्यं विवर्धयेत् ॥६१॥

इस प्रकार से नीतियों से युक्त हो राजा, अपने चारो अङ्गों की वृद्धि करे, वह निरन्तर अपनी रक्षा करे तथा अपनी शक्ति को बढ़ाता रहे ॥६१॥

वीजक्षयकरन्नित्यं भक्ष्यं भोज्यं च पानकम् ।
वर्जयेत् क्षारशाकाद्यान् बह्वमलं बहुतिक्तकम् ॥६२॥

वह बीज (वीर्य) नाश करने वाले भक्ष्य, भोज्य और पेय, पदार्थों, क्षार, शाक, बहुत खट्टे या बहुत तीते खाद्यपदार्थों को छोड़ दे॥६२॥

कांस्य-राजतपात्रस्थं तोयं नद्याश्च वर्धनम् ।
मूत्रवृद्धिकरं वीर्यक्षयकारि विवर्जयेत् ॥६३॥

कांसे और चाँदी के पात्रों में स्थित जल, नदियों की बाढ़का जल, मूत्र बढ़ाने वाले तथा वीर्यनाश करने वाले पदार्थों को छोड़ दे॥६३॥

ताम्रायः स्वर्णशीसानां पात्रस्थं फलचर्मणोः ।
शुक्रवृद्धिकरं तोयं तदुपासीत यत्नतः ॥६४॥

ताम्बा, लोहा, सुवर्ण, राँगा, फल (नारियल), चमड़े के पात्र में रखा जल, शुक्रवृद्धि करने वाला होता है अतः उसका प्रयत्नपूर्वक सेवन करे॥६४॥

सर्वमूलेषु कृत्येषु सदाचारेषु तिष्ठतः ।
भुक्त्वेह विविधान् भोगानैन्द्रं स्थानं व्रजेत् परम् ॥६५॥

सभी मौलिककार्यों तथा सदाचार में रहते हुये, इस लोक के विविध भोगों को भोग कर राजा, इन्द्रलोक के परमस्थान को प्राप्त करता है॥६५॥

॥ मार्कण्डेय उवाच ॥

एवमौर्वस्तु सगरं शशास मुनिपुङ्गवः ।
शास्त्राणि चैव सर्वाणि सदाचारांश्च गृह्यकान् ॥६६॥
बहुशः कथयामास सगराय महात्मने ।
तन्नास्ति यत् पुरौर्वेण कथितं सगराय न ॥६७॥

मार्कण्डेय बोले– मुनियों में श्रेष्ठ, और्व मुनि ने राजा सगर को सदाचारों की शिक्षा दे इस प्रकार से अनुशासित किया। उन्होंने सभी शास्त्रों, ग्रहण करने योग्य सदाचारों को महात्मा सगर से बहुत प्रकार से कहा। पहले का ऐसा कुछ भी नहीं बचा जो और्व मुनि द्वारा सगर से न कहा गया हो॥६६-६७॥

राजनीतिः सतां नीतिर्यच्चान्यच्छास्त्रसम्भवम् ।
संहितासु पुराणेषु यच्चागमचये स्थितम् ।
सर्वं शुश्राव सगरो मुखादौर्वस्य धीमतः ।।६८।।

राजनीति, सज्जनों की नीति और जो कुछ भी अन्यशास्त्रों, संहिताग्रन्थों, पुराणों, आगमसमूहों में स्थित था, सगर ने बुद्धिमान् और्व मुनि से, वह सब कुछ भली-भाँति सुनो।।६८।।

तेषां तु कथितं किंचिदुद्धृत्य द्विजसत्तमाः ।।६९।।
विष्णुधर्मोत्तरे पूर्वं मया रहसि भाषितम् ।
राजनीतिं सदाचारं वेदवेदाङ्गसङ्गतम् ।।७०।।

हे द्विजों में श्रेष्ठ जनों ! उसमें से कुछ लेकर मेरे द्वारा पहले ही विष्णुधर्मोत्तर-पुराण में वेदवेदाङ्गसम्मत राजनीति और सदाचार के विषय में रहस्यरूप से कहा गया है।।६९-७०।।

रहस्यं सततं विष्णोर्वीक्षध्वं द्विजसत्तमाः ।
यच्चानुदितमन्यत्र गदितं वा ससंशयम् ।
संशयच्छेदनं तेषु युष्मभ्यं कथितं द्विजाः ।।७१।।

हे द्विजों ! इन विषयों में यदि कोई सन्देह हो या जो अन्यत्र न कहा गया हो, उस संशय को दूर करने के लिए, उस विष्णु (धर्मोत्तर) के रहस्य को, आपलोग इस पुराण में विशेषरूप से दर्शन करें। जिसे आपसे कहा गया है।।७१।।

अनुक्तसंशयच्छेदि पुराणं कालिकाह्वयम् ।
योऽभ्यसेत् सततं विप्रः स वेदानां फलं लभेत् ।।७२।।

।। इति श्रीकालिकापुराणे विष्णुपूजनविधिनाम अष्टाशीतितमोऽध्यायः ।।८८।।

यह कालिका नामक पुराण बिना बताये संशय का भी नाश करने वाला है जो विप्र, निरन्तर इसका अभ्यास करता है, वह वेदों के अभ्यास का फल प्राप्त करता है।।७२।।

श्रीकालिकापुराण में विष्णुपूजनविधिनामक अट्ठासीवाँ अध्याय सम्पूर्ण हुआ।।८८।।



एकोनननवतितमोऽध्यायः
भैरववंशवर्णनम्

।। ऋषय ऊचुः ।।

संक्षेपतः सदाचारो विशेषो राजनीतिषुः ।
श्रुतस्त्वद् वचनादौर्वः सगराय यथोक्तवान् ।।१।।

ऋषिगण बोले—और्व ने राजा सगर से सदाचार और राजनीति के भेदो के विषय में जैसा कहा था आपके वचनानुसार वैसा हम लोगों ने सुना।।१।।

विष्णुधर्मोत्तरे तन्त्रे बाहुल्यं सर्वतः पुनः ।
द्रष्टव्यस्तु सदाचारो द्रष्टव्यास्ते प्रसादतः ।।२।।

वे विष्णुधर्मोत्तरतन्त्र में अधिकता से तथा सब जगह किञ्चित पुनः देखे जाने योग्य हैं। ऐसे सदाचार आपकी कृपा से देखेजानेयोग्य हैं।।२।।

भूयो नः संशयो योऽस्ति तदनुक्तं त्वया पुरा ।
छिन्धि विप्रेन्द्र पृच्छामः परं कौतूहलं हि नः ।।३।।

हे ब्राह्मणों में श्रेष्ठ ! अब भी हमे जो संशय है, जो आपसे पहले हम लोगों द्वारा नहीं कहा गया है, उसे हम आपसे पूछते हैं, उसे आप दूर कीजिये । इस विषय में हमें परम कौतुहल (जिज्ञासा) है।।३।।

अपुत्रस्य गतिर्नास्ति श्रूयते वेदलोकयोः ।
वेतालभैरवौ यातौ पुरा वै तपसे गिरिम् ।
पूर्वस्त्वकृतदारौ तौ तयोः पुत्रा न च श्रुताः ।।४।।

वेद और लोक दोनों में यही सुना जाता है कि अपुत्र की गति नहीं होती। प्राचीनकाल में वेताल और भैरव दोनों बिना पत्नीग्रहण (विवाह) किये ही तपस्या करने चले गये थे । उन दोनों के पुत्रों के विषय में हम लोगों द्वारा कुछ नहीं सुना गया।।४।।

न जाता अथवा जाता यदि नाना द्विजोत्तम ।
तेषां तु सम्यगिच्छामि श्रोतुं संस्थानमुत्तमम् ।।५।।

हे द्विजों में श्रेष्ठ ! यदि नहीं हुए या बहुतसे हुये तो उनके उत्तम स्थानप्राप्ति तथा पुत्रों के विषय में हम भली-भाँति सुनना चाहते हैं ।।५।।

।। मार्कण्डेय उवाच ।।

अपुत्रस्य गतिर्नास्ति निश्चितं चेति सत्तमाः ।
स्वपुत्रैर्भ्रातृपुत्रैर्वा पुत्रवन्तो हि स्वर्गताः ।।६।।

मार्कण्डेय बोले—हे द्विजसत्तमों ! यह निश्चित है कि बिना पुत्रवाले की गति नहीं होती। किन्तु अपने पुत्रों से या भाई के पुत्रों से भी पुत्रवान् होकर, लोग स्वर्ग गये हैं।।६।।

जातापत्यौ च तौ विप्रा धीरौ वेतालभैरवौ ।
तयोर्वंशान् प्रवक्ष्यामि शृण्वन्तु च महर्षयः ।।७।।

हे महर्षियों ! हे विप्रों ! उन दोनों धैर्यशाली, वेताल और भैरव को पुत्र उत्पन्न हुये थे। मैं उनके वंश के विषय में कहता हूँ, उसे अब आप सुनें।।७।।

सम्यक् सिद्धिमवाप्यैव यदा वेतालभैरवौ ।
हरस्य मन्दिरं प्राप्तौ कैलासं प्रतिहर्षितौ ।।८।।

जब भलीभाँति सिद्धि प्राप्त करके वेताल और भैरव प्रसन्नतापूर्वक भगवान् शिव के निवासस्थान, कैलाशपर्वत पर चले गये।।८।।

तदा हरस्य वचनान्नन्दी तौ रहसि द्विजाः ।
प्राहेदं वचनं तथ्यं सान्त्वयन्निवं बोधकृत् ।।९।।

हे द्विजों ! भगवान् शिव के कथनानुसार तब नन्दि ने उन दोनों को सान्त्वना देते हुये, इन बोधकारक, तथ्यपूर्ण वचनों को एकान्त में कहा-।।९।।

।। नन्द्युवाच ।।

अपुत्रौ पुत्रजनने भवन्तौ शङ्करात्मजौ ।
यततां जातपुत्रस्य सर्वत्र सुलभा गतिः ।।१०।।

नन्दि बोले—हे भगवान् शङ्कर के दोनों पुत्रों! तुम दोनों पुत्र हीन हो। पुत्रवान् की गति सर्वत्र सुलभ है, इसलिए तुम दोनों पुत्रजन्म के लिए प्रयत्न करो।।१०।।

पुन्नाम नरकं पुत्रविहीनः परिपश्यति ।
न तपोभिर्न धर्मेण तन्मोचयितुमीश्वरः ।।११।।

पुत्रविहीनपुरुष पुन्न नामक नरक में जाता है। तपस्या एवं धर्माचरण से ईश्वर भी मुक्ति नहीं दिला सकता।।११।।

केवलात् पुत्रजननात् तस्मान्मोक्षः प्रजायते ।
तदुत्पादयतां पुत्रं भवन्तौ देवयोनिषु ।।१२।।

केवल पुत्र उत्पन्न करने पर ही उससे मोक्षप्राप्त होता है। इसलिए आप दोनों देवयोनियों में पुत्र उत्पन्न करें।।१२।।

अमर्त्यता तु युवयोः क्षीरपानादजायत ।
कात्यायन्यास्ततः पुत्रानमर्त्याः स्वसमा यतः ।।१३।।

भगवान् शिव के द्वारा दूध पीने से तुम दोनों में देवत्व आ गया है, इसलिए तुम दोनों कात्यायनि से अपने समान देव-पुत्र उत्पन्न करने का प्रयत्न करो।।१३।।

तस्माद् यथा तथा पुत्रानुत्पाद्य सुरयोनिषु ।
प्रियौ भवन्तौ शिवयोर्भवनं न चिरादिति ।।१४।।

इसलिए जैसे-तैसे हो देवयोनि के पुत्र उत्पन्न करके, भगवान् शिव के प्रिय, आप दोनों, शीघ्र ही शिवलोक में वापस आयेंगे।।१४।।

।। मार्कण्डेय उवाच ।।

तस्येति वचनं श्रुत्वा नन्दिनं प्रीतमानसौ ।
एवमेव करिष्यावो नन्दिनं चेत्यभाषताम् ।।१५।।

मार्कण्डेय बोले— उन नन्दि के वचन को सुनकर, वे दोनों, प्रसन्न होते हुये नन्दि से ऐसा बोले—हम दोनों ऐसा ही करेंगे।।१५।।

ततस्तौ सततं कृत्वा नन्दिनौ वचनं हृदि ।
अचेष्टतां स्वपुत्रार्थे व्रजन्तौ तावितस्ततः ।।१६।।

तब नन्दि के वचन को हृदय में स्थायीरूप से धारण करके, अपने पुत्रप्राप्ति की इच्छा से, प्रयत्न किये बिना ही, वे दोनों इधर-उधर घूमने लगे।।१६।।

अथैकदा भैरवोऽसौ उर्वशीमप्सरोवराम् ।
हिमवत्-पर्वतप्रस्थे ददर्श सुमनोहराम् ।।१७।।
अथ तां कामुको भूत्वा ययाचे सुरतोत्सवम् ।
वेश्याभावाच्च सुप्रीता सा यथेच्छमुवाच तम् ।।१८।।

तत्पश्चात् भैरव ने हिमालय-पर्वत के शिखर पर एक बार उर्वशी नाम की श्रेष्ठ सुन्दरी-अप्सरा को देखा और कामुक होकर उससे सुरतोत्सव की याचना की, तब वेश्या-भाव के कारण वह उर्वशी भी प्रसन्न होकर, उसकी इच्छानुसार, उससे बोली।।१७-१८।।

ततस्तस्यां भैरवस्तु चकार सुरतोत्सवम् ।
प्रीतायामुर्वशीदेव्यां सुप्रीतोऽभूच्च केलिभिः ।।१९।।
सुप्रीतायामथोर्वश्यां तेजोभिर्भैरवस्य तु ।
सद्योजातोऽभवत् पुत्रो बालसूर्यसमप्रभः ।।२०।।

तब भैरव ने उस उर्वशी के साथ सुरतोत्सव किया, उर्वशी देवी के प्रसन्न हो जाने पर, वह भी केलि से प्रसन्न हो गया। प्रसन्न हुई उर्वशी में भैरव के वीर्य से बालसूर्य के समानआभावाला एक पुत्र, तत्काल उत्पन्न हो गया।।१९-२०।।

तं तु पुत्रं परित्यज्य ययौ स्वस्थानमुर्वशी ।
आदाय तनयं पश्चाद् भैरवः स्वपदं ययौ ।।२१।।

उस पुत्र को छोड़कर उर्वशी अपने स्थान को चली गई, तत्पश्चात् भैरव भी पुत्र को लेकर अपने स्थान पर चले गये ।।२१।।

संस्कृत्य तनयं तं तु भैरवो मोदसंयुतः ।
सुवेशमिति तन्नाम चकार सगणाधिपः ।।२२।।

उस पुत्र को संस्कारित कर, उस गणों के स्वामी भैरव ने, प्रसन्नता से युक्त हो, उसका सुवेश, यह नामकरण किया।।२२।।

अथ तं जातवयसं शक्रसूर्यसमप्रभम् ।
विद्याधराधिपत्ये तु सुवेशमभ्यषेचयत् ।।२३।।

इसके बाद वयस्क हो जाने पर, इन्द्र और सूर्य के समान आभावाले उस सुवेश को, विद्याधरों के अधिपति के रूप में अभिषिक्त किया।।२३।।

स तु विद्याधराध्यक्षस्तनयामतिसुन्दरीम् ।
येमे गन्धर्वराजस्य धृतराष्ट्राह्वयस्य च ।।२४।।

उस विद्याधरों के प्रधान (सुवेश) ने धृतराष्ट्र नामक गन्धर्वराज की अति-सुन्दरी कन्या से विवाह किया।।२४।।

तस्यां तस्य सुतो जज्ञे रुरुर्न्नाम मनोहरः ।
रुरोस्तु तनयो बाहुर्मैनाक्यामभ्यजायत ।।२५।।

उस सुन्दरी से उसे रुरु नामक एक सुन्दरपुत्र उत्पन्न हुआ। रुरु के मैनाकी से बाहु नामक पुत्र, उत्पन्न हुआ।।२५।।

बाहोस्तु पुत्राश्चत्वारस्तपनोऽङ्गद ईश्वरः ।
कुमुदोऽभूत् कनीयांस्तु चार्वत्यां तु मनोहरः ।।२६।।

बाहु के चार्वती से तपन, अङ्गद, ईश्वर और कुमुद नामक चार-पुत्र उत्पन्न हुये जिनमें कुमुद सबसे छोटा और सुन्दर था।।२६।।

कुमदस्य सुतो जज्ञे देवसेनो महाबलः ।
स देवसेनः पृथिवीमवतीर्य मनोहरः ।।२७।।
मान्धातुर्यौवनाश्वस्य तनयां केशिनीं मुहुः ।
वरयामास भार्यार्थे मृद्वङ्गीमप्सरः समाम् ।।२८।।

कुमुद ने देवसेन नामक एक महान् बलशाली, सुन्दर, पुत्र उत्पन्न किया। उस देवसेन ने पृथ्वी पर अवतरित हो, युवनाश्व के पुत्र मान्धाता की पुत्री, केशिनी, जो अप्सरा के समान कोमल अङ्गों वाली थी, का पत्नी के रूप में वरण किया।।२७-२८।।

यौवनाश्वोऽपि मान्धाता शक्रस्य वचनाद् ददौ ।
केशिनीं तनयां स्वीयां देवसेनाय वाञ्छया ।।२९।।

युवनाश्व के पुत्र मान्धाता ने इन्द्र के वचनों को मानते हुये अपनी पुत्री केशिनी को, उसकी इच्छानुसार, देवसेन को प्रदान कर दिया।।२९।।

केशिनीमुपयम्याथ देवसेनस्तया सह ।
वाराणस्यां शम्भुपुर्यां हरमाराधयच्छिवम् ।।३०।।

केशिनी से विवाह करके, देवसेन ने उसके साथ, शिव की नगरी, वाराणसी में रहकर, हर (भगवान् शिव) की आराधना की।।३०।।

आराधितो हरः प्रीतस्तस्येष्टं प्रददौवरम् ।
सोऽप्याददे हरात् तस्मादिष्टमेव वरत्रयम् ।।३१।।

उसकी आराधना से प्रसन्न होकर भगवान् शिव ने उसे अभीष्टवर प्रदान किया। उस देवसेन ने भी उनसे तीन अभीष्टवर माँगे।।३१।।

यावच्च सूर्यो भविता तावत् स्थास्यति संततिः ।
अस्यामेव नगर्यां ये मद्वंशस्यापि राजता ।
प्रसन्नो मम वंशे त्वं नित्यमेव भविष्यसि ।।३२।।

उनको वर था कि जब तक सूर्य रहें तब तक मेरी सन्तानें, स्थिर रहें और तब तक मेरे ही वंशज इस नगरी में राज करते रहें । आप मेरे वंशवालों पर नित्य ही प्रसन्न रहें।।३२।।

इत्यादाय वरं सोऽपि देवसेनो महाकृती ।
शङ्करस्य प्रसादेन चिरं तां बुभुजे पुरीम् ।।३३।।

इस प्रकार का वरप्राप्त कर महान्यशस्वी देवसेन ने शिव के प्रसाद से, बहुत समय तक उस नगरी का भोग किया।।३३।।

देवसेनोऽथ केशिन्यां जनयामास पुत्रकान् ।
यूयं शृणुत सप्तैतान्नामतः कीर्तितांस्तथा ।।३४।।
सुमना वसुदानश्च ऋतुधृग् यवनः कृती ।
नीलो विवेकी ह्येते वै सर्वशास्त्रविशारदाः ।।३५।।
सर्वे वंशकराः पुत्रा देवसेनस्य सत्तमाः ।।३६।।

हे श्रेष्ठजनों ! देवसेन ने केशिनी से जिन सात पुत्रों को उत्पन्न किया, आप मेरे द्वारा बताये गये, उनके नामों को सुनें—वे सुमना, वसुदान, ऋतुधृक्, यवन, कृती, नील और विवेकी थे। देवसेन के उपर्युक्त सातों श्रेष्ठपुत्र सभी शास्त्रों में निपुण व वंशचलाने वाले थे।।३४-३६।।

अथ काले तु संप्राप्ते देवसेनोऽपि भार्यया ।
पुत्रेषु राज्यं निःक्षिप्य यातो विद्याधरक्षयम् ।।३७।।

तब समय आने पर, पुत्रों को राज्य सौंप कर, वह विद्याधर, देवसेन, अपनी पत्नी के सहित, क्षय (मृत्यु) को प्राप्त हुआ।।३७।।

ततस्ते तस्य तनयाः कृत्वा सुमनसं नृपम् ।
वसुदानादयः सर्वे बुभुजुश्चोत्तमां श्रियम् ।।३८।।

तब उसके वसुदानादि सभी पुत्रों ने सुमना को राजा बनाकर उत्तमशोभा का भोग किया।।३८।।

जाताः सुमनसः पुत्रास्त्रयः शूरा महाबलाः ।
सुमतिश्च विरूपश्च सत्यः शास्त्रार्थपारगाः ।।३९।।

सुमना के सुमति, विरूप और सत्य नामक शास्त्रार्थ में पारङ्गत, शूर-वीर एवं महाबली तीन पुत्र उत्पन्न हुये।।३९।।

सुमतेरभवत् कन्या सुतः सत्यस्य डिण्डिमः ।
विरूपस्याभवद् गाधिर्गाधेर्मित्रोऽभवत् सुतः ।।४०।।

इनमें से सुमति को एक कन्या, सत्य को डिण्डिम नाम का पुत्र और विरूप से गाधि नाम वाला पुत्र हुआ । गाधि से मित्र नामवाला पुत्र उत्पन्न हुआ ।।४०।।

तेषां कल्पोऽभवद्राजा कल्पातु तु विजयोऽभवत् ।
यो विजित्य क्षितिं सर्वां पार्थिवान् भूरितेजसः ।।४१।।

उससे कल्प नामक राजा हुआ, कल्प से विजय हुआ जो अत्यन्त तेजस्वी था। उसने सभी राजाओं और पृथ्वी को जीत लिया था।।४१।।

शक्रस्यानुमते चक्रे खाण्डवं शतयोजनम् ।
यत् सव्यसाची ह्यदहत् पाण्डुपुत्रः प्रतापवान् ।
आवहत् परमां प्रीतिं ज्वलनस्य महात्मनः ।।४२।।

इन्द्र की अनुमति से उसने सौयोजन विस्तार के खाण्डववन का निर्माण किया था, जिसे पाण्डु के प्रतापीपुत्र, सव्यसाची (अर्जुन) ने जलाकर, महात्माअग्नि की परमप्रसन्नता को प्राप्त किया था।।४२।।

।। ऋषय ऊचुः ।।

कथं स खाण्डवं चक्रे विजयः शतयोजनम् ।
तद् वयं श्रोतुमिच्छामः कथयस्व तपोधन ।।४३।।

ऋषिगण बोले— हे तपस्या के धनी ! विजय ने सौ योजन विस्तृत खाण्डवन को क्यों बनाया? हम सब वह सुनना चाहते हैं। आप हमसे कहें।।४३।।

।। मार्कण्डेय उवाच ।।

सोमवंशेऽभवद्राजा महाबलपराक्रमः ।
धीरः सुदर्शनो नाम चारुरूपः प्रतापवान् ।।४४।।

मार्कण्डेय बोले– चन्द्रवंश में सुन्दररूप, महान्‌बल और पराक्रम तथा धैर्य से युक्त, सुदर्शन नामक एक राजा हुआ॥४४॥

स वै हिमवतो नातिदूरे भङ्क्त्वा महावनम् ।
सिंहान् व्याघ्रान् समुत्सार्य क्वचिच्चापि तपोधनान् ॥४५॥
खाण्डवीं नाम नगरीमकरोत् तत्र शोभनाम् ।
त्रिंशद्योजनविस्तीर्णामायतां शतयोजनाम् ॥४६॥

उसने हिमालय के समीप एक महान् वन को नष्ट कर, वहाँ के सिंहों, बाघों और कुछ तपस्वियों को भी वहाँ से हटाकर, वहाँ सौयोजन लम्बी तथा तीसयोजन चौड़ी, खाण्डवी नाम की एक सुन्दर नगरी बसाई॥४५-४६॥

उच्चप्राकारसंयुक्तां साट्टालम्बुदतोरणाम् ।
निम्नाभिरतिदीर्घाभिः परिखाभिः समावृताम् ॥४७॥

वह नगरी ऊँची चहारदिवारियों से युक्त, बादलों को छूते, ऊँचे, तोरणद्वारों-वाली, गहरी व लम्बी खाइयों से घिरी हुई थी॥४७॥

अघृष्यामपरैर्वीरैर्नानाजनसमावृताम् ।
दीर्घिकाभिश्चोपवनैर्बहुभिश्चाप्सरोगणैः ।
आकीर्णां च तथारामैरुत्तमैरपि मानवैः ॥४८॥

जो, शत्रुओं के वीरों द्वारा न जीते जानेयोग्य, अनेक प्रकार के लोगों से घिरी हुई, लम्बी वाटिकाओं एवं बहुत सी अप्सराओं, उत्तम बगीचों और मनुष्यों से भरी हुई थी॥४८॥

सोत्सवाः सततं यत्र जनाः देवान् दिवि स्थितान् ।
स्पर्धन्ते स्म मुदा युक्ता आद्या-भोगसमन्विताः ॥४९॥

जहाँ के लोग निरन्तर उत्सवों में रत, प्रसन्नता से भरे, आद्य (यथार्थ) भोगों से सम्पन्न हो, स्वर्गस्थित देवताओं से प्रतिस्पर्धा करते थे॥४९॥

स वै सुदर्शनो राजा खात्वा भूमिं विदार्य च ।
गङ्गां कनखलां देवीं वाहयामास खाण्डवीम् ॥५०॥

उसी सुदर्शन नाम के राजा ने पृथ्वी को खोद कर तथा चीर कर, कनखल में स्थित गङ्गादेवी को खाण्डवी नगरी तक ले आया॥५०॥

संप्लाव्याखाण्डवीमध्यं तेन खातैश्च वर्त्मभिः ।
वक्रानुवक्रगा भूत्वा याति सीतां नदीं प्रति ॥५१॥

जो मध्य से खाण्डवी को आप्लावित करती हुई, उसी खाई के टेढ़े-मेढ़े रास्ते से होती हुई, सीता नामक नदी में मिलती है॥५१॥

स जित्वा सकलान् भूपान् वित्तान्याहृत्य भूरिशः ।
वशीचकार खाण्डव्यां मध्ये रत्नैरनेकशः ॥५२॥

वह राजा, सभी राजाओं को जीतकर तथा उनसे बहुत अधिक धनलाकर अनेक प्रकार के रत्नों से सम्पन्न हो, उस खाण्डवी पुरी में रहने लगा॥५२॥

अन्येषां नगरेभ्यस्तु जनानानीय भूपतिः ।
खाण्डव्यां वासयामास हठादपि सुदर्शनः ॥५३॥
देवदानवगन्धर्वाञ् जित्वा जित्वा युधा कृती ।

देववृक्षं देवरत्नं देवीं चापि तथौषधिम् ।।५४।।
खाण्डव्यां रोपयामास स भूपालः सुदर्शनः ।।५५।।

उस यशस्वी राजा सुदर्शन ने अन्य नगरों से भी लोगों को बलपूर्वक लाकर उन्हें खाण्डवपुरी में बसाया तथा युद्ध से देवताओं और गन्धर्वों को जीत कर, देववृक्ष (कल्पतरु), देवरत्न (कौस्तुभ), देवी तथा औषधियों को खाण्डवीपुरी में स्थापित किया।।५३-५५।।

जिष्णुस्तोऽपि वै विष्णुर्नृपतिं तं सुदर्शनम् ।
कृतापकारं च बहुधा देवानां च तथा नृणाम् ।।५६।।
वाराणसीपतिं वीरं विजयं जयशालिनम् ।
युद्धाय कृतसाचिव्यं तद्वैरे समयोजयत् ।।५७।।

विष्णु ने उस जीतने की इच्छा रखने वाले राजा सुदर्शन को, जिसने बहुत उपायों से देवता और मनुष्यों का अपकार किया था, से विजय की इच्छा रखने वाले वाराणसी के स्वामी, विजय नामक वीर राजा को, परामर्श देकर वैर के लिए समायोजित किया।।५६-५७।।

विजयो विवरं प्राप्य महाबलपराक्रमः ।
सुदर्शनस्य नृपतेरवस्कन्दमथाकरोत् ।।५८।।

महाबल और पराक्रम से युक्त विजय ने छिद्र (भेद) पाकर, राजा सुदर्शन पर आक्रमण कर दिया।।५८।।

नासहत् स ह्यवस्कन्दं विजयस्य सुदर्शनः ।
चतुरङ्गबलेनाशु युद्धायाभिमुखोऽभवत् ।।५९।।

वह सुदर्शन भी विजय के आक्रमण को न सहते हुये, शीघ्र ही अपनी चतुरङ्गिणीसेना के साथ, युद्ध के लिए उद्यत हुआ।।५९।।

विजयो रथमारुह्य नियोज्य चतुरङ्गिणीम् ।
ततः सुदर्शनं योद्धुं सम्मुखोऽभवदञ्जसा ।।६०।।

तब विजय भी रथ पर सवार हो, अपनी चतुरङ्गिणी सेना को साथ ले, क्रोध से भरकर सुदर्शन से युद्ध के लिए सामने आया।।६०।।

तदा महायुद्धमासीद्विजयेन महात्मना ।
सुदर्शनस्य नृपतेर्वृत्रवासवयोर्यथा ।।६१।।

तब सुदर्शन का महात्माराजा विजय से वैसा ही महान् युद्ध हुआ जैसा कि वृत्रासुर का इन्द्र के साथ हुआ था।।६१।।

सुदर्शनस्य सेनानी रुमण्वान्नाम वीर्यवान् ।
कांचनं रथमारुह्य विजयसंमुखोऽभ्ययात् ।।६२।।

सुदर्शन का रुमण्वान् नाम का पराक्रमीसेनापति, सोने के रथ पर सवार हो, विजय के सम्मुख आया।।६२।।

अक्षौहिण्यस्तु सप्तास्य परिवार्य समन्ततः ।
व्यधमत्तां शत्रुसेनां यावतीमुद्यतायुधः ।।६३।।

उसने अपनी सात अक्षौहिणी सेना के साथ, हाथ में आयुध ले, उद्यत, शत्रु की उतनी ही सेना को सब ओर से घेर कर आक्रमण किया।।६३।।

विजयस्य च सेनानीः सञ्जयः स रिपुञ्जयः ।
नागानीकेन जग्राह रुमण्वन्तं ससैनिकम् ।।६४।।

विजय का शत्रुओं को जीतने में समर्थ, सञ्जय नाम का एक सेनापति था, जिसने हाथियों की सेना की सहायता से सैनिकों के सहित रुमण्वन्त को पकड़ लिया।।६४।।

तयोर्महदभूद् युद्धं सेनान्योर्वीरयोर्महत् ।
ववर्ष शरवर्षेण रुमण्वानथ संजयम् ।।६५।।

तब उन दोनों महान् और वीर सेनापतियों के मध्य एक महान् युद्ध हुआ जिसमें रुमण्वान् ने बाणों की वर्षा करके संजय को ढक दिया।।६५।।

कुर्वंश्चापि महानादं गजं दृष्ट्वैव केशरी ।
रुमण्वानथ विंशत्या बाणैर्विध्वाथ सञ्जयम् ।
क्षुरप्रेण धनुस्तस्य चिच्छेद कृतहस्तवत ।।६६।।

जैसे हाथी को देखकर सिंह गर्जना करता है उसी प्रकार महान् गर्जना करते हुए रुमण्वान् ने, संजय को बीस बाणों से वेध दिया, उस समय क्षुरप्र नामक बाणों से उसने सञ्जय के धनुष को काट कर, उसके हाथ में रख दिया।।६६।।

सोऽपि कार्मुकमादाय तदाऽन्यत् संजयस्त्रिभिः ।
बाणैर्विव्याध भल्लेन धनुश्चिच्छेद तत्क्षणात् ।।६७।।

तब दूसरे धनुष को लेकर उस संजय ने भी तीन बाणों से वेध दिया। उसने उसीक्षण भल्ल से धनुष को काट दिया।।६७।।

शतान्यष्टौ च नागानां सहस्राणि च पञ्चषट् ।
पत्तीनां वाजिनां त्रीणि सहस्राणि समन्ततः ।।६८।।
संजयो निर्जघानाशु बाणवर्षैः सुदारुणैः ।।६९।।

उसने शीघ्रतापूर्वक भयानक बाणवर्षा करके, आठ सौ हाथियों, पैंसठ हजार पत्तियों (पैदलों), तीन हजार घोड़ों को एक साथ ही मार दिया।।६९।।

अथान्यद् धनुरादाय रुमण्वान् कुपितो भृशम् ।
भल्लेन सारथेरस्य शिरः कायादपाहरत् ।।७०।।

तब रुमण्वान् ने भी बहुत अधिक क्रोधित हो, दूसरा धनुष लेकर उसके सारथी का सिर, धड़ से अलग कर दिया।।७०।।

हयांश्चास्य चतुर्भिस्तु बाणैर्निन्ये यमक्षयम् ।
चतुरः पंचभिर्बाणैरविध्यच्चापि सञ्जयम् ।।७१।।

चार बाणों से घोड़ों को यमलोक में पहुँचा दिया और चार-पाँच बाणों से सञ्जय को भी वेध दिया।।७१।।

संजयोऽप्यतिवेगेन गदामादाय तत्क्षणात् ।
अवतीर्य रथोपस्थाद्रुमण्वन्तमधावत ।।७२।।

सञ्जय भी उसी क्षण, अत्यन्तवेग से गदा लेकर रथ के उपस्थ से उतर कर रुमण्वन्त की ओर दौड़ पड़ा।।७२।।

स धावन्तं सञ्जयं तं रुमण्वान् द्रुतहस्तवत् ।
शरवर्षेण सञ्छाद्य वारयामास संजयम् ।।७३।।

रुमण्वान ने दौड़ते हुये संजय को हाथ की तेजी से शरवर्षा करके, ढक कर, रोक दिया।।७३।।

गदायाः भ्रामणेनासौ निवार्य शरवर्षणम् ।
आससाद् रुमण्वन्तं केसरीव महागजम् ।।७४।।

जैसे सिंह हाथी पर टूटता है, उसी तरह उसने गदा के भ्रमण से शरवर्षा को रोककर रुमण्वन्त पर गदा को फेंका।।७४।।

आसाद्य तां गदां गुर्वीमाविध्यातीव सञ्जयः ।
एकेनैव प्रहारेण सरथं तं व्यपोथयत् ।।७५।।

उस भारी गदा को फेंक कर संजय ने अत्यन्त घायल कर, एक ही प्रहार में रथ के सहित उस रुमण्वान् को मार डाला।।७५।।

स पपात् महावीरः पृथिव्यां गदया हतः ।
वज्रहतो यथा शालः प्रफुल्लो वनमध्यगः ।।७६।।

बिजली के आघात से वन में जिस प्रकार खिला हुआ शाल का वृक्ष गिर जाता है, उसी प्रकार गदा के प्रहार से मारा गया वह महावीर (रुमण्वान्) पृथ्वी पर गिर गया।।७६।।

रुमण्वन्तं निपतितं दृष्ट्वा राजा सुदर्शनः ।
शोक-कोपसमाविष्टः सधूम इव पावकः ।।७७।।
जज्वालाकुलदेहोऽपि क्रोधेनातीव संयुतः ।
आरुह्य जवनैरश्वैर्युक्तं वैयाघ्रकृत्तिना ।।७८।।
रथं कांचन-चित्रांगं सिंहध्वज-विभूषितम् ।
आमुक्तो धनुरादाय विस्फार्य च पुनः पुनः ।
ससैन्यः सञ्जयं राजा समाद्रवत वेगवान् ।।७९।।
अथास्य निशितैः शस्त्रैः सेनामग्रगतां भृशम् ।।८०।।

रुमण्वन्त को मारा गया देख कर राजा सुदर्शन, शोक और क्रोध से युक्त हो, धुएँ से युक्त अग्नि की भाँति शोभायमान हुए। वे राजा अत्यन्तक्रोध से युक्त ज्वाला से व्याकुलशरीर होकर, वैयाघ्रचर्म और हाथी के चमड़े से ढके, स्वर्णरचित, यूनानी घोड़ों से युक्त, सिंह की ध्वजा से सुशोभित रथ पर चढ़कर, कवच धारण कर, धनुष लेकर बार-बार टंकार करते हुए, सेना के सहित, बड़े वेग से सञ्जय की ओर चल पड़े।।७७-८०।।

न्यहनत् सकलां राजा मृगानिव मृगाधिपः ।
एकामक्षौहिणीमग्रगामिनीं विपुलौजसाम् ।।८१।।

उस समय राजा ने अपने तीव्र बाणों से सेना के अग्रभाग में स्थित, बहुतअधिक-पराक्रमशालिनीएक अक्षौहिणी सेना को उसी प्रकार मार दिया जैसे सिंह अन्य मृगों को मार देता है।।८१।।

क्रोशद्वयेन न्यहनत् तमांसीव दिवाकरः ।
हत्वा चाक्षौहिणीमेकामासाद्य संजयं नृपः ।
बाणैः षष्ट्या तु विव्याध ध्वजमेकेन चिच्छिदे ।।८२।।

जैसे सूर्य अन्धकार को नष्ट कर देता है उसी प्रकार दोकोशक्षेत्र में विस्तृत

एक अक्षौहिणी सेना को मारकर वह राजा, सञ्जय के निकट पहुँचा तथा छः बाणों से सञ्जय को वेधा एवं एक से उसके ध्वज को काट डाला॥८२॥

संजयोऽप्यथ विंशत्या हृदि विद्ध्वा सुदर्शनम् ।
ललाटे त्वेकबाणेन प्राविध्यत् कृतहस्तवत् ।।८३।।
क्षुरप्रेणास्य कोदण्डं छित्त्वा राज्ञः प्रतापवान् ।
सारथिं दशभिर्बाणैः पुनर्विव्याध सञ्जयः ।।८४।।

संजय ने भी बीस बाणों से राजा सुदर्शन के हृदय में प्रहार किया। ललाट में एक बाण से वेधा तथा क्षुरप्र से उस प्रतापी राजा का धनुष काट कर, उसे हाथ में धनुष पकड़े की भाँति कर दिया तत्पश्चात् उनके सारथि को भी उसने दशबाण मारे॥८३-८४॥

कोदण्डमन्यमादाय तदा राजा सुदर्शनः ।
शरवर्षेण तीव्रेण ववर्षातीव सञ्जयम् ।।८५।।
तयोर्महदभूद्युद्धं मुनिविस्मयकारकम् ।
शस्त्रैरस्त्रैर्भृशं तीक्ष्णैर्बलिवासवयोरिव ।।८६।।

तब राजा सुदर्शन दूसरा धनुष लेकर तीव्र बाणवर्षा से सञ्जय पर बरस पड़ा। उस समय उन दोनों में अत्यधिक तीखे शस्त्रास्त्रों से मुनियों को भी विस्मय में डालने वाला, बलि और इन्द्र के युद्ध की भाँति महान् युद्ध हुआ॥८५-८६॥

ततः सुदर्शनो राजा भल्लेनास्य दृढं धनुः ।
चिच्छेद सारथिं चास्य जघान निशितैः शरैः ।।८७।।

तब राजा सुदर्शन ने भल्ल नामक बाण से उसके दृढ़धनुष को काट दिया तथा अपने तीखे बाणों से सारथी को भी मार दिया॥८७॥

स्वयं संयम्य वाहान् स सञ्जयः परवीरहा ।
धनुरन्यत् समादाय परिवार्य सुदर्शनम् ।।८८।।
विव्याध दशभिर्बाणैर्धनुरप्यच्छिनद् दृढम् ।।८९।।

तब शत्रुओं को कष्ट देने वाले संजय ने, स्वयं घोड़ों को संयमित कर, दूसरा धनुष लेकर सुदर्शन को बाणों से ढक दिया तथा उसे दश बाणों से वेध दिया और उसके मजबूत धनुष को भी काट दिया॥८८-८९॥

शरासनान्तरं राजा समादाय सुदर्शन ।
सञ्जयस्य चतुर्वाहाञ्छरैर्निन्ये यमक्षयम् ।
मुष्टौ धनुश्च चिच्छेद तं च विव्याध पंचभिः ।।९०।।

तब राजा सुदर्शन ने दूसरा धनुष लेकर संजय के चार घोड़ों को यमलोक पहुँचा दिया, मुठिया पर से धनुष को काटकर पाँचबाणों से उसे भी वेध दिया॥९०॥

विरथश्छिन्नवाहश्च सञ्जयः खड्गचर्मणी ।
आदाय सम्मुखं राज्ञोऽभ्यद्रवत् कुपितो भृशम् ।।९१।।

तब सञ्जय रथ से रहित हो, घोड़ों के मारे जाने पर, खड्ग और ढाल लेकर, बहुत अधिक क्रोधित हो, राजा सुदर्शन की ओर सामने से दौड़ा॥९१॥

तस्य चापं ततः खड्गं क्षुरप्रेणसुदर्शनः ।
द्विधा चिच्छेद भल्लेन चर्म चाप्यच्छिनत्तदा ।।९२।।

तब सुदर्शन ने क्षुरप्र से उसके धनुष एवं खड्ग को दो भागों में काट दिया तथा भल्ल से उसके ढाल को भी काट दिया।।९२।।

अथ द्रुतं तदोपेत्य सञ्जयः स्यन्दनोत्तमम् ।
सुदर्शनस्य सूतं तु कराभ्यां पातयत् क्षितौ ।।९३।।

इसके बाद सञ्जय ने तेजी से सुदर्शन के उत्तमरथ पर पहुँच कर, उसके सारथि को हाथों से पृथ्वी पर गिरा दिया।।९३।।

रथाभ्याशे गतस्यास्य सञ्जयस्य सुदर्शनः ।
शिरश्चिच्छेद खड्गेन ततोऽसौ न्यपतद् भुवि ।।९४।।
स पपात तदा तस्य रथाभ्याशे महाबलः ।
कृत्तः परशुनाऽरण्ये पुष्पितः शालवृक्षवत् ।।९५।।

सुदर्शन ने सञ्जय के रथ के निकट आ जाने पर उसके शिर को खड्ग से काट दिया। तब वह धरती पर गिर गया। उस समय वह महाबली, उस सुदर्शन के रथ के निकट वैसे ही गिर गया जैसे जंगल में फरसे से काटे जाने पर खिले हुए पुष्पों से युक्त शाल का पेड़ गिर पड़ता है।।९४-९५।।

सञ्जयं पतितं दृष्ट्वा विजयः क्रोधमूर्च्छितः ।
महता शङ्खनादेन नादयंस्तु नभःस्थलम् ।।९६।।
रथेन स्वर्णचित्रेण व्याघ्रचर्मविराजिना ।
केतुना वृषभेणाथ योजनार्धोच्छ्रितेन च ।।९७।।
नादयन् ककुभः सर्वा रथौघपरिवेष्टितः ।
विमुञ्चञ्छरवर्षाणि ससाद च सुदर्शनम् ।।९८।।

सञ्जय को रणभूमि में गिरा हुआ देखकर विजय क्रोध से मूर्च्छित सा हो गया और अपने महान् शंखनाद से आकाश को गुँजाता हुआ, स्वर्णचित्रित, व्याघ्रचर्म से सुशोभित रथ से, जिस पर आधे योजन तक विस्तृत, वृषभ के चिन्ह का ध्वज फहरा रहा था, सभी दिशाओं को रथों के घेरे से ध्वनित करता हुआ, बाणों की वर्षा करता हुआ, वह, सुदर्शन के समीप पहुँच गया।।९६-९८।।

आसाद्य तं नृपं भूपो विजयः परवीरहा ।
हृदि विद्ध्वा त्रिभिर्बाणैस्तिष्ठतिष्ठेति चाब्रवीत् ।।९९।।

उस राजा सुदर्शन के समीप पहुँच कर शत्रुपक्ष के वीरों को मारने वाले राजा विजय ने ठहरो-ठहरो कहते हुये, उसके हृदय को तीन बाणों से वेध दिया।।९९।।

सुदर्शनोऽपि विजयं नदन्तं कुंजरोपमम् ।
दशभिर्निशितैर्बाणैर्विद्ध्वा चिच्छेद तद् धनुः ।।१००।।

सुदर्शन ने भी श्रेष्ठ हाथी के समान ध्वनि करते हुए, विजय को अपने दश तीखे बाणों से वेध कर, उसके धनुष को भी काट दिया।।१००।।

अथैनं छिन्नधन्वानं जत्रुदेशे त्रिभिः शरैः ।
निर्भिद्याथ महानादं ननाद स सुदर्शनः ।।१०१।।

तब इस प्रकार से कटे हुए धनुष वाले उसके, जत्रुदेश (पसलियों) में तीन बाणों से भेदकर सुदर्शन, महान् नाद करता हुआ, गरजा।।१०१।।

सोऽन्यद्धनुः समादाय कंकपत्रैस्त्रिभिः शरैः ।
विव्याध हृदये वीरो विजयोऽपि सुदर्शनम् ।।१०२।।

उस वीर विजय ने भी दूसरा धनुष लेकर कंकपत्रयुक्त तीन बाणों से सुदर्शन के हृदय को वेध दिया।।१०२।।

ततस्तन्नृपमुद्दिश्य महाशक्तिं सुदीपिताम् ।
नागकन्यां कोपयुक्तां लेलिहानामिवातुलाम् ।।१०३।।
स्वर्णदण्डां सुतीक्ष्णाग्रां तैलधौतां सुनिर्मलाम् ।
समुद्यम्याथाचिक्षेप विजयः शात्रवं प्रति ।।१०४।।
सुदर्शनस्य हृदयं सा शक्तिः प्रविवेश ह ।।१०५।।

तब उस राजा को लक्ष्य करके क्रोधित हो, जीभ लप-लपाती, अतुलनीय नागकन्या के समान, सुन्दर चमकती हुई, सोने के दण्डवाली, सुन्दर और तीखे अग्रभागवाली, तैल में डुबोई गई, सुन्दर, निर्मल, महाशक्ति को उठाकर, विजय ने अपने शत्रु के प्रति फेंका और वह शक्ति, सुदर्शन के हृदय में प्रवेश कर गई।।१०३-१०५।।

स विह्वलो रथोपस्थे ह्यधोवक्त्र उपाविशत् ।
तस्मिन् मोह-समापन्ने नृपतौ च सुदर्शने ।।१०६।।
तस्याग्रतस्तथा पार्श्वे ये स्थितास्तत्र सैनिकाः ।
तान् सर्वानहनद्राजा क्षणमात्राद् द्विजोत्तमाः ।।१०७।।

हे द्विजों में श्रेष्ठजनों ! वह राजा सुदर्शन, उस शक्ति के प्रहार से विह्वल हो, रथ के पिछलेभाग में नीचे मुँह करके बैठ गया। उस राजा सुदर्शन के मोहग्रस्त हो मूर्च्छित हो जाने पर, उसके आगे तथा पार्श्वभाग में जो सैनिक स्थित थे, राजा विजय ने उन सबको क्षणभर में ही मार डाला।।१०६-१०७।।

रथान् दशसहस्राणि तावन्त्येव च दन्तिनाम् ।
पंचविंशसहस्राणि वाजिनां च तरस्विनाम् ।
लक्षद्वयं तु पत्तीनां क्षणमात्रादपोथयत् ।।१०८।।

उसने दशहजार रथों और उतने ही हाथियों, पच्चीस हजार तीव्रगति वाले घोड़ों तथा दो लाख पत्तियों (पैदलों) को क्षणभर में ही नष्ट कर दिया।।१०८।।

स तु लब्ध्वा ततः संज्ञां धनुरादाय वै दृढम् ।
शरवर्षेण विजयं ववर्ष स सुदर्शनः ।।१०९।।

तब उस सुदर्शन ने भी संज्ञा (चेतना) प्राप्त कर, हाथ में दृढ़धनुष लेकर शरवर्षा से विजय को भर दिया।।१०९।।

निवार्य शरवर्षेण विजयं तु सुदर्शनः ।
भल्लेन कार्मुकं सज्यं तस्य चिच्छेद तत्क्षणात् ।।११०।।
सारथेस्तु शिरः कायाद् भल्लेनापाहरत् ततः ।
हयांश्च चतुरश्चास्य प्रेषयामास मृत्यवे ।।१११।।

तब अपनी बाणवर्षा से विजय को घेरकर सुदर्शन ने भल्ल नामक बाण को धनुष पर सजाकर, तत्काल उसके सारथि के सिर को भल्ल द्वारा धड़ से अलग कर दिया और चारों घोड़ों को भी मृत्यु के निकट भेज दिया।।११०-१११।।

अथैवं विरथं भूपं दशभिः कङ्कपत्रिभिः ।
विव्याध हृदये भूयो ननाद च सुदर्शनः ।।११२।।

इस प्रकार रथहीन हुये राजा विजय के हृदय को सुदर्शन ने दश कंकपत्र वाले बाणों से वेध दिया तथा पुनः गर्जना किया।।११२।।

स च्छिन्नधन्वा विरथो गदामादाय वेगवान् ।
विजयो विजयाकाङ्क्षी सुदर्शनमधावत् ।।११३।।

और वह धनुष कट जाने से पर रथहीन हुआ, विजय की आकांक्षा रखने वाला विजय, गदा लेकर बड़ी तेजी से सुदर्शन की ओर दौड़ा।।११३।।

आपतन्तं महावीरं बाणवर्षैः सुदर्शनः ।
ववर्ष वर्षासु यथा वारिदः पृथिवीधरम् ।।११४।।

उस आते हुये महावीर पर सुदर्शन ने बाणों की ऐसी वर्षा की जैसी वर्षाऋतु में पर्वतों पर, बादल वर्षा करता है।।११४।।

विजयः शरवृष्टिं तां प्राच्छाद्य स्वशरेण वै ।
गदया तं रथारूढमाससाद तु तत्क्षणात् ।।११५।।

विजय ने उस बाणवर्षा को अपने बाणों से ढककर, रथ पर आरुढ़, उस सुदर्शन पर तत्काल गदा से प्रहार किया।।११५।।

आसाद्य तं महावीर्यं विजयोऽथ सुदर्शनम् ।
शीर्षं प्रहृत्य गदया पातयामास भूतले ।।११६।।

विजय ने उस महाबलशाली सुदर्शन के निकट पहुँच कर, उसके सिर पर गदा से प्रहार कर, उसे धरती पर गिरा दिया।।११६।।

गिरेः शृङ्गं यथा तुङ्गं वज्राशनिविदारितम् ।
तथा सुदर्शनो राजा दारितो गदयाऽपतत् ।।११७।।

जैसे ऊँचा पर्वतशिखर वज्र और बिजली से विदीर्ण होकर ढहता है, उसी प्रकार राजासुदर्शन गदा से विदीर्ण होकर गिर गया।।११७।।

तस्मिन्निपतिते वीरे सेनाभिस्तस्य सैनिकाः ।
भयात् संप्राद्रवंस्तस्माद् दिशश्च प्रदिशस्तथा ।।११८।।

उस वीर के गिर जाने पर उस घटना से भयभीत हो, उसके सैनिक, सेना के सहित, दिशाओं और प्रदिशाओं में भाग गये।।११८।।

नष्टेषु तस्य सैन्येषु विजयः खाण्डवीं पुरीम् ।।११९।।
प्रविश्य ददृशे तत्र राशीभूतान् गिरीनिव ।
सुवर्णानां च रत्नानां संचयान् बहुशः पुनः ।।१२०।।

उस सुदर्शन की बहुत सी सेना के नष्ट हो जाने पर, विजय ने खाण्डवीपुरी में प्रवेश करके, सोने और रत्नों के बहुत प्रकार के, पर्वत की भाँति इकट्ठे हुए संग्रहों को देखा।।११९-१२०।।

दृष्ट्वा सरांसि तत्रैष प्रफुल्लकमलानि च ।
हंसकारण्डवानादैर्नादितानि समन्ततः ।।१२१।।

राशीन् सुवर्णरत्नानां पर्वतानिव विस्तृतान् ।
पुष्पितान् देववृक्षांश्च भ्रमद्भ्रमरभूषितान् ।।१२२।।
प्रासादान् विपुलाञ्छुभ्रान् कैलाससदृशान् गजान् ।
प्रस्फुटांश्च सुगन्धाढ्यान् प्रतिगेहे व्यवस्थितान् ।।१२३।।
उत्फुल्लनयनो राजा विजयः परवीरहा ।
मेनेऽमरावतीं तां तु पुरीम् क्षितिगतामिव ।।१२४।।

वहाँ खिले हुए कमलों से सुशोभित और हंसकारण्डवों के आवाज से सब ओर गुंजायमान सरोवरों, पर्वतों के समान विस्तृत हुई स्वर्णराशियों, घूमते हुये भौरों से युक्त पुष्पों से खिले हुये देववृक्षों, विस्तृतश्वेतमहलों, कैलाशपर्वत के सदृश ऊँचे हाथियों, सुगन्ध से युक्त प्रत्येक घरों में व्यवस्थित प्रस्फुटों (खिले हुए पुष्पों) को देखकर शत्रुवीरों को नष्ट करने वाले राजा विजय ने, उस पुरी को पृथ्वी पर उतरी हुई, अमरावतीपुरी माना।।१२१-१२४।।

तं वीक्षन्तं नरपतिं नगरीं तां सुरेश्वरः ।
समेत्य विजयं प्राह सान्त्वयन् श्लक्ष्णया गिरा ।।१२५।।

उस समय, उस नगरी को देखकर विस्मित हुये राजा विजय के समीप आकर, उसे अपनी मधुरवाणी से सान्त्वना देते हुये, देवराजइन्द्र ने कहा-।।१२५।।

।। इन्द्र उवाच ।।

राजन् महावनमिदमासीद् देवगणावृतम् ।
तच्च गन्धर्वयक्षाणां मुनीनां च मनोहरम् ।।१२६।।
सर्वानुत्सार्य देवादीन् मम चाप्यप्रियेरतः ।
भङ्क्त्वा वनमिदं गुह्यमुत्साद्य च तपोधनम् ।।१२७।।
खाण्डवीं नगरीं चक्रे हठाद्राजा सुदर्शनः ।
तदिदं पुनरेव त्वं वनं कुरु नरोत्तम ।।१२८।।

इन्द्र बोले– हे नरों में श्रेष्ठ राजा ! पहले यह स्थान देवगण, गन्धर्व, यक्ष और मुनियों से घिरा हुआ, एक महान (विशाल) और सुन्दर वन था किन्तु राजा सुदर्शन ने मेरा अप्रिय करते हुए, यहाँ के गुह्यों एवं तपश्वीजनों को यहाँ से बलपूर्वक निकाल कर, इस वन को नष्ट कर दिया और यहाँ खाण्डवी नाम की नगरी स्थापित की थी। इसलिए हे राजन् ! पुनः तुम इसे वन बना दो।।१२६-१२७।।

तत्राहं विहरिष्यामि तक्षकेण समं रहः ।
मुनीनां च तपः स्थानमतुलं ते प्रसादतः ।
भविष्यति च यक्षाणां किन्नराणां च पार्थिव ।।१२९।।

हे राजन् ! वहाँ मैं तक्षक के साथ एकान्त में विहार करूँगा । तुम्हारी प्रसन्नता से यह यक्षों, किन्नरों तथा मुनियों की तपस्या का अतुलनीय स्थान हो जायेगा।।१२९।।

।। मार्कण्डेय उवाच ।।

एतच्छ्रुत्वा वचस्तस्य शक्रस्य विजयस्तदा ।
वनमेवाकरोत् तान्तं खाण्डवीं शक्रगौरवात् ।।१३०।।

मार्कण्डेय बोले—तब देवराज, इन्द्र के उन वचनों को सुनकर विजय ने इन्द्र के उपर्युक्तकथन को गौरव देते हुये, उस नगरी को पुनः एक वन बना दिया।।१३०।।

गच्छन्तु भो यथास्थानं प्रजाः सर्वा यथेच्छया ।
येषां वाञ्छास्ति लोकानां मद्राज्यगमने पुनः ।
वाराणसीं ते गच्छन्तु मयैव प्रतिपालिताम् ।।१३१।।

"हे प्रजाजनों ! आप सब अपनी इच्छानुसार अपने-अपने स्थानों को चले जाओ किन्तु जिनकी मेरे राज्य में जाने की इच्छा हो, वे मेरे द्वारा प्रतिपालित वाराणसीपुरी में चले जायँ" ऐसा उसने प्रजाजनों से कहा।।१३१।।

ततस्तस्य वचः श्रुत्वा जनाः केचिन्निजास्पदम् ।
जग्मुर्वाराणसीं केचिद् विजयेनाभिपालिताम् ।।१३२।।

तब उसके वचन को सुनकर कुछ लोग अपने स्थानों पर चले गये तो कुछ, राजा विजय द्वारा सब ओर से पाली गई, वाराणसीपुरी में चले गये।।१३२।।

ततो धनानां तान् राशीन् रत्नानां च पृथक् पृथक् ।।१३३।।
मणीनां कनकानां च कुप्यानां विजयस्तथा ।
विविधैर्वारयामास पुरीं वाराणसीं प्रति ।।१३४।।

तब वहाँ के अनेक प्रकार के धन और रत्नों के समूह को सोने और देवमणिओं के कुप्पों के आकर्षण ने राजा को अलग-अलग वाराणसी जाने से रोका।।१३३-१३४।।

गन्धर्वाणां च देवानां यदानीतं हठात् पुरा ।
रत्नदार्वादिकं यत् तु विजयं तत् प्रसाद्य च ।
तैस्तैर्नीतं च खाण्डव्याः स्वस्थानं प्रतिहर्षितैः ।।१३५।।

राजा सुदर्शन ने देवताओं और गन्धर्वों से जो-जो रत्न वृक्षादि बलपूर्वक पहले लाया था। उनके द्वारा वे विजय को प्रसन्न करके खाण्डवी से अपने स्थानों को ले जाये गये।।१३५।।

त्रिंशद् योजन विस्तीर्णा शतयोजनमायताम् ।
तां पुरीं विजयश्चक्रे नचिरादेव वै वनम् ।।१३६।।

तीस योजन चौड़ी और सौ योजन फैली हुई उस खाण्डवी नगरी को विजय ने शीघ्र ही वन बना दिया।।१३६।।

तस्मिञ्छक्रस्य सम्मत्या तक्षकः सहितो गणैः ।
उवास सुचिरं तत्र ततोऽभून्निर्जनं वनम् ।।१३७।।
तत्र देवाः सगन्धर्वाः क्रीडन्तेऽप्सरसां गणाः ।
आशंसन्तश्च विजयं रणेषु विजयावहम् ।।१३८।।

उसमें इन्द्र की सम्मति से बहुत समय तक तक्षक, अपने गणों के साथ सुख से रहा, तब वह निर्जन वन हो गया। वहाँ देवता, गन्धर्वों के सहित अप्सराओं के साथ क्रीड़ा करते हुए, विजय के युद्ध में विजयप्राप्ति की अभिलाषा करते रहे।।१३७-१३८।।

प्राप्तेऽष्टाविंशतितमे युगे द्वापरशेषतः ।
वह्निर्ब्राह्मणरूपेण भिक्षां जिष्णुमयाचत ।।१३९।।

अट्ठाइसवें युग (चतुर्युगी) के द्वापरयुग का अन्तिम समय प्राप्त होने पर अग्निदेवता ने ब्राह्मणरूप धारण कर अर्जुन से भिक्षा माँगी।।१३९।।

दातुमङ्गीकृते भिक्षां तदा पाण्डुसुतेन वै ।
वह्निः स्वरूपमास्थाय जिष्णुं वचनमब्रवीत् ।।१४०।।

तब पाण्डुपुत्रअर्जुन द्वारा भिक्षा देना स्वीकार कर लिये जाने पर अग्नि अपने यथार्थरूप में आकर अर्जुन से बोले-।।१४०।।

।। अग्निरुवाच ।।

अहमग्निः पाण्डुपुत्र यज्ञभागातिभोजनात् ।
व्याधितोऽहं ततो व्याधिं मम त्वं नाशयाधुना ।।१४१।।

अग्नि बोले–हे पाण्डु के पुत्र अर्जुन ! मैं अग्नि हूँ, बहुत अधिक यज्ञभाग के भोजन से मैं रोगी हो गया हूँ। अतः आप इस समय मेरे रोग को नष्ट करें।।१४१।।

खाण्डवं नाम विपिनं सपत्रिमृगराक्षसम् ।
यदि त्वं मां भोजयितुं शक्नोषि श्वेतवाहन ।।१४२।।
तदा मम ह्यसौ व्याधिरपयास्यति नो चिरात् ।।१४३।।

हे श्वेतवाहन! यदि आप पशु-पक्षी और राक्षसों से युक्त, खाण्डववन का मुझे भोजन करा सको तो शीघ्र ही मेरी यह महाव्याधि दूर हो जायेगी।।१४२-१४३।।

पुरा तु विजयो राजा खाण्डवीं नाम तां पुरीम् ।
भङ्क्त्वा वन यतश्चक्रे तेन तत् खाण्डवं वनम् ।।१४४।।
मदर्थं देवविहितं वनं तु श्वेतवाहन ।
विरोधात् तत् तु शक्रस्य न स्वयं भोक्तुमुत्सहे ।।१४५।।

हे श्वेतवाहन ! प्राचीनकाल में विजय नामक राजा ने खाण्डवी नामक नगरी को नष्ट कर, वहाँ वन बना दिया था। इसीलिए वह, खाण्डव वन कहा जाता है। देवताओं ने वह वन मेरे लिए निर्धारित किया था किन्तु इन्द्र के विरोध के कारण मैं स्वयं उसका भोग नहीं कर सकता।।१४४-१४५।।

तस्मात् त्राहि महाभाग वने तस्मिन्नियोजय ।
यथाहं सकलं भोक्तुं शक्नोमि त्वत्प्रसादतः ।।१४६।।

इसलिए हे महाभाग ! आप मेरी रक्षा करें और मुझे उस वन में नियोजित करें, जिससे आपके सहयोग से मैं सब कुछ भोग सकूँ।।१४६।।

।। मार्कण्डेय उवाच ।।

तस्य तद्वचनं श्रुत्वा सव्यसाची महाबलः ।
दाहयामास विपिनं तत्सर्वं प्राणिसंयुतम् ।।१४७।।

मार्कण्डेय बोले–उस (अग्नि) के उस (उपर्युक्त) वचन को सुनकर महाबली सव्यसाची (अर्जुन) ने प्राणियों से युक्त, उस सम्पूर्ण वन को जला दिया।।१४७।।

देवकीतनयेनासौ वासुदेवेन पालितः ।
खाण्डवं दाहयामास ज्वलनस्य हिते रतः ।।१४८।।

देवकीपुत्रकृष्ण से सुरक्षित हो, अग्निदेव के हित में लगे अर्जुन ने, खाण्डववन को जला दिया।।१४८।।

सुप्रीतः प्रददौ तस्मादर्जुनाय महात्मने ।
वह्निर्धनुश्च गाण्डीवं वारुणं देवनिर्मितम् ।।१४९।।
अक्षय्ये चेषुधी दिव्ये रूपाढ्यांश्चतुरो हयान् ।
हनूमताधिष्ठितं तु महान्तं वानरध्वजम् ।।१५०।।
खड्गं च त्रिशिखं तीक्ष्णं दहनः सव्यसाचिने ।
नीरोगश्चाभवद् वह्निस्तथा जिष्णुप्रसादतः ।।१५१।।

तब अर्जुन की कृपा से, अग्नि स्वस्थ हो गये तथा उन्होंने प्रसन्न होकर महात्मा अर्जुन को, अपना गाण्डीव धनुष, वरुण देवता का देवनिर्मित अक्षय तरकस, दिव्य रूपवान चार घोड़े, हनुमान से अधिष्ठित, वानरध्वजावाला महान् रथ, तीक्ष्णखड्ग, तीक्ष्ण त्रिशूल प्रदान किया।।१४९-१५१।।

तैर्बाणैस्तेन धनुषा तेन खड्गेन केतुना ।
तदश्वस्यन्दनेनापि विजिग्ये फाल्गुनो रिपून् ।।१५२।।

उन अग्निप्रदत्त बाणों, उस धनुष, खड्ग, ध्वजा, घोड़े, रथ से युक्त हो, अर्जुन ने शत्रुओं को जीत लिया।।१५२।।

एवं भैरववंशेषु सञ्जातो विजयो नृपः ।
खाण्डवं नाम विपिनं चकार सुमहाकृती ।।१५३।।

इस प्रकार का महान्यशस्वी और सुन्दर, विजय नामवाला राजा, भैरववंश में उत्पन्न हुआ, जिसने खाण्डव वन बसाया।।१५३।।

विजयस्य सुता जातास्त्रयोदश महाबलाः ।
द्युतिमान् सौम्यदर्शी च भूरिः प्रद्युम्न एव च ।।१५४।।
क्रतुस्तुण्डो विरूपाक्षो विक्रान्तोऽथ धनंजयः ।
प्रहर्षः प्रबलः केतुस्तथोपरिचरोऽपरः ।।१५५।।

विजय के द्युतिमान, सौम्यदर्शी, भूरि, प्रद्युम्न, क्रतु, तुण्ड, विरूपाक्ष, विक्रान्त, धनंजय, प्रहर्ष, प्रबल, केतु और उपरिचर (द्वितीय) ये तेरह पुत्र उत्पन्न हुये।।१५४-१५५।।

एषां राजाऽभवद् वीरः शेषोपरिचरस्तु यः ।
वाराणस्यां नगर्यां यो यज्ञलक्षं पुराऽकरोत् ।।१५६।।

इनमें अन्तिम उपरिचर नामक वीरपुरुष, राजा हुआ जिसने प्राचीनकाल में वाराणसी नगरी में लक्षयज्ञ किया था।।१५६।।

लक्षयज्ञकरः कोऽपि नासीन्नापि भविष्यति ।
राजा क्षितौ महाभागो यथोपरिचरस्तथा ।।१५७।।

राजा उपरिचर ने जैसा लक्षयज्ञ किया वैसा यज्ञ करने वाला इस पृथ्वी पर न कोई हुआ है, न होगा।।१५७।।

एषां सूतिप्रसूतैश्च व्याप्तं सर्वमिदं जगत् ।
चिरेण तान् कः संख्यातुं शक्नोति भुवि मानुषः ।
क्रमाद् भैरववंशेन व्याप्तं लोकत्रयं त्विदम् ।।१५८।।

इनकी संतानों तथा उन सन्तानों की सन्तानों से ही यह समस्तसंसार व्याप्त है। पृथ्वी पर कौन सा मनुष्य है जो शीघ्रता से इनकी गणना कर सके? अर्थात् कोई नहीं है। क्रमशः भैरव के वंश से यह तीनों लोक व्याप्त हो गया।।१५८।।

एतद् वः कथितं विप्राः सन्तानं भैरवस्य तु ।
येषां श्रुत्वा कथामात्रं नापुत्रो जायते नरः ।।१५९।।

हे ब्राह्मणों! आप लोगों से यह भैरव की सन्तानों का वर्णन किया गया, जिसकी कथा के सुननेमात्र से पुत्रहीन मनुष्य भी पुत्रवान् हो जाता है, उसके अपुत्र होने की बात कथामात्र रह जाती है।।१५९।।

इदं यः कीर्तयेत् पुण्यं चरितं विजयस्य तु ।
सततं विजयस्तस्य जायते न पराभवः ।।१६०।।

इस प्रकार से जो राजाविजय के इस पवित्रचरित्र का पाठ करता है, निरन्तर उसकी विजय होती है, कभी भी उसका पराभव नहीं होता ।।१६०।।

एकाग्रमनसा यस्तु शृणुयादिदमुत्तमम् ।
तस्य वंशस्य विच्छेदो न कदाचिद् भविष्यति ।।१६१।।

।। इति श्रीकालिकापुराणे भैरववंशवर्णननाम एकोननवतितमोऽध्यायः।।८९।।

एकाग्रमन से जो इस उत्तमवर्णन को सुनेगा उसके वंश का नाश, कभी भी नहीं होगा।।१६१।।

श्रीकालिकापुराण में भैरववंशवर्णननामक नवासीवाँ अध्याय सम्पूर्ण हुआ।।८९।।



नवतितमोऽध्यायः
वेतालवंशवर्णनम्

।। मार्कण्डेय उवाच ।।

वेतालस्य च सन्तानं श्रृण्वन्तु मुनिसत्तमाः ।
यच्छ्रुत्वा सर्वपापेभ्यस्तत्क्षणादेव हीयते ।।१।।

मार्कण्डेय बोले—हे मुनियों में श्रेष्ठजनों ! अब आपसब वेताल की उन सन्तानों के विषय में सुनें। जिसे सुनकर मनुष्य, उसी क्षण सभी पापों से मुक्त हो जाता है।।१।।

दक्षस्य तनया चाभूत् सुरभिर्नाम नामतः ।
गवां माता महाभागा सर्वलोकोपकारिणी ।।२।।
तस्यां तु तनया जज्ञे कश्यपात् तु प्रजापतेः ।
नाम्ना सा रोहिणी शुभ्रा सर्वकामदुघा नृणाम् ।।३।।

दक्षप्रजापति की सुरभि नाम की एक कन्या थी जो महाभागा गौवों की माता तथा समस्तलोकों का उपकार करने वाली थी । उसकी प्रजापति कश्यप से रोहिणी नाम की, मनुष्यों की सब प्रकार की, सभी कामनाओं को प्रदान करने वाली, एक श्वेतपुत्री उत्पन्न हुई।।२-३।।

तस्यां जज्ञे शुनःशेपान्मुनेरतितपोधनात् ।
कामधेनुरिति ख्याता सर्वलक्षणसंयुता ।।४।।
सा सिताभ्रप्रतीकाशा चतुर्वेदचतुष्पदा ।
स्तनैश्चतुर्भिर्धर्मार्थकामप्रसवकारिणी ।।५।।

उसमें अति तपस्वी शुनःशेप मुनि से सभी लक्षणों से युक्त, श्वेतबादल के समान आभावाली, चारों पैरों के रूप में चारों वेदों को धारण करने तथा अपने चारो स्तनों से धर्म, अर्थ, काम प्रस्त्रवितकरने (बहाने) वाली कामधेनु नाम की कन्या उत्पन्न हुई।।४-५।।

सा सुवर्णशरीरा तु कालेन महतासती ।
निर्मलं यौवनं प्राप कामधेनुर्मनोहरम् ।।६।।

उस कामधेनु नाम की महान् सती ने समय आने पर, स्वर्णिमशरीर से युक्त हो, सुन्दर, स्वच्छ, युवावस्था को प्राप्त किया ।।६।।

तां चरन्तीं मेरुपृष्ठे चारुरूपां सुलक्षणाम् ।
ददर्श स तु वेतालः कामुकश्चाभ्यपद्यत ।।७।।

एक समय जब वह सुन्दर रूपवाली, सुन्दर लक्षणों से युक्त, कामधेनु, मेरुपृष्ठ पर चर रही थी, उस समय वेताल ने उसे देखा और वह कामासक्त हो गया।।७।।

तं कामुकं च वेतालं विदित्वा कामधेनुका ।
पशुधर्मात् स्वयं भेजे तं पुत्रं शशभृद्भृतः ।।८।।

उस वेताल को कामुक जानकर कामधेनु ने स्वयं शिव के उस पुत्र के साथ पशुधर्म से सम्पर्क किया।।८।।

सोऽवाप तस्यां परममामोदं शङ्करात्मजः ।
सा चापि परमां तस्मिन् मुदमापातिहर्षिता ।।९।।

शङ्कर के उस पुत्र ने भी उसके साथ परमप्रसन्नता को प्राप्त किया तथा वह कामधेनु भी उसके सम्पर्क में परमप्रसन्नता को प्राप्त कर, अत्यन्त हर्षित हुई ।।९।।

तयोः प्रवृत्ते सुरते तस्यां गर्भोऽभवत् तदा ।
काले प्राप्ते तु सुषुवे कामधेनुर्महावृषम् ।।१०।।

तब उन दोनों के सुरति में प्रवृत्त होने से, उस कामधेनु को गर्भ रह गया और उसने समय आने पर एक महान् वृषभ को जन्म दिया।।१०।।

सोऽचिरेणैव कालेन सुमहान् वृषभोऽभवत् ।
महाककुदसंयुक्तश्चारुशृङ्गसमन्वितः ।।११।।

कुछ समय पश्चात् शीघ्र ही वह एक महान वृषभ हो गया जो महान् ककुद (डील) और सुन्दरसींग से युक्त था।।११।।

उत्क्षिप्य विचलत्-कर्णयुगलो दीर्घबालधिः ।
ककुदेन च शृङ्गाभ्यां कर्णाभ्यां स सिताभ्रवत् ।।१२।।
विचलन् ददृशे देवैः शृङ्गैरिव सिताचलः ।
वेतालस्त्वकरोत् तस्य नाम शृङ्ग इति द्विजाः ।।१३।।

हे द्विजों ! चञ्चल, दोनों कानों को उठाकर, अपनी बालवाली लम्बी पूँछ, अपने ककुद, सींग और दोनों कानों से युक्त हो चलते हुये, श्वेतबादल की भाँति वह देवताओं द्वारा शृंगों से युक्त श्वेतपर्वत की भाँति देखा गया । जिससे वेताल ने उसका नाम शृंग रखा।।१२-१३।।

स तु शृङ्गो ज्ञानशाली समाराधयदीश्वरम् ।
सोऽपि तुष्टो वरं तस्मै ददाविष्टं हरः प्रभुः ।।१४।।

वह शृङ्ग ज्ञानवान था । उसने ईश्वर, शिव की आराधना की। वे भगवान् शिव भी उसकी तपस्या से प्रसन्न हो उसे, अभीष्ट वरदान दिये।।१४।।

तमेव वाहनं चक्रे कृत्वा देवतनुं वृषम् ।
सुचिरायुश्च बलवान् पृथिवीधारणे क्षमः ।।१५।।

उस वृषभ को देवशरीरप्रदान कर, उन्होंने उसे सुन्दर, दीर्घायु, बलवान्, पृथ्वी को धारण करने में समर्थ बनाकर, उसे ही अपना वाहन बना लिया।।१४-१५।।

शृङ्गो नाम महातेजाः केतुः सोऽप्यभवत् प्रभोः ।
शृङ्गो भूत्वा मतो यस्माच्छङ्करस्य महात्मनः ।
अतः शृङ्ग इति ख्यातिमथ प्राह महेश्वरः ।।१६।।

वह महान् तेजस्वी शृङ्ग नामक वृषभ, महात्माशङ्कर का शृङ्ग (शिखर) होकर प्रभु शिव की ध्वजा में विराजमान हुआ। इसलिए भगवान् शिव ने भी उसे शृङ्ग नाम से प्रसिद्धि दी।।१६।।

स तु शृङ्गो महादेवे ध्यानासक्ते क्वचित् क्वचित् ।।१७।।
वरुणस्य गृहं गत्वा सुरभेस्तनयास्तु याः ।
रूपयौवनसम्पन्ना भेजेऽलं सुरतेन ताः ।।१८।।

वह शृङ्ग अधिकतर महादेवशिव के ध्यान में ही निमग्न रहता था किन्तु कभी-कभी वरुण के घर जाकर सुरभी की, जो रूप और यौवन से सम्पन्न कन्यायें थीं । उनके साथ सुरतिभाव से रमण किया करता था।।१७-१८।।

वरुणस्य गृहे गावः सर्वलक्षणसंयुताः ।
तिष्ठन्ति सततं विप्रास्तासु तासु सुताः पुनः ।।१९।।
वह्व्यस्तु च समुत्पन्नास्तेषां सूतिप्रसूतिभिः ।
सर्वं जगदिदं व्याप्तं तेभ्यो यज्ञं प्रवर्तते ।।२०।।

हे ब्राह्मणों ! वरुण के घर में सभी लक्षणों से युक्त बहुत सी गायें, निरन्तर निवास करती हैं, उनसे उसकी बहुत सी कन्यायें उत्पन्न हुईं। उसकी सन्तानों और सन्तानों की सन्तानों से यह संसार व्याप्त है तथा उन्हीं के कारण यज्ञ भी सम्पादित होते हैं।।१९-२०।।

आज्येन देवास्तुष्यन्ति यज्ञा आज्ये प्रतिष्ठिताः ।
यज्ञाधीनमिदं सर्वं जगत् स्थावरजङ्गमम् ।।२१।।
तदाज्यं तु गवाधीनं ततः सर्वं गवि स्थितम् ।
तदिदं सकलं विश्वं गवाधीनं द्विजोत्तमाः ।।२२।।

हे उत्तम द्विजों ! घी से देवता सन्तुष्ट होते हैं । घी में ही यज्ञ, प्रतिष्ठित हैं। यह समस्त स्थावर और जङ्गम संसार, यज्ञ के ही अधीन है । उस यज्ञ का आधार घी, गायों के अधीन है, इसीलिये सब कुछ गायों में ही स्थित है । अतएव सकल विश्व ही गायों के आधीन है।।२१-२२।।

वेतालस्य च ता गावो वंश्याः सर्वप्रियाः सदा ।
य इदं शृणुयान्नित्यं वेतालस्य महात्मनः ।।२३।।
वंशानां जन्म विप्रेन्द्राः स सुखी बलवान् भवेत् ।
न गावो नापि विभवास्तस्य नश्यन्ति वै क्वचित् ।।२४।।

हे इन्द्र के समान श्रेष्ठ ब्राह्मणों ! वे गायें वेताल की वंशज हैं तथा सदैव सबको प्रिय हैं । जो महात्मावेताल के वंश में जन्म लेने वालों के इस वृत्तान्त को नित्य सुनता है वह सुखी और बलवान् होता है। उसकी न तो गौवें कभी नष्ट होती है और न उसका वैभव ही नष्ट होता है।।२३-२४।।

न च भूतपिशाचाद्यास्तं पश्यन्ति कदाचन ।
वेतालः सततं तस्य रक्षामाचरति स्वयम् ।।२५।।

उसे कभी भूत-पिशाच आदि भी नहीं देखते। स्वयं वेताल उसकी रक्षा करते हैं।।२५।।

इति वः कथितं विप्रा यथा वेतालभैरवौ ।
जनयामासतुः पुत्रान् विच्छिन्नाः संशयाश्च वः ।।२६।।

हे ब्राह्मणों ! यह मेरे द्वारा तुम लोगों से कहा गया कि, किस प्रकार से वेताल और भैरव ने अपने पुत्रों को जन्म दिया । इस सम्बन्ध में तुम्हारे संशयों को भी नष्ट कर दिया गया है।।२६।।

यथा च कालिका देवी मोहयामास शंकरम् ।
यथोत्पन्ना शरीरार्धं कृतं शम्भोर्यथा तथा ।।२७।।

जिस प्रकार कालिका देवी ने भगवान् शङ्कर को मोहित किया, जैसे वे उत्पन्न हुईं, जैसे उन्होंने शिव के शरीरार्ध को प्राप्त किया, वह सब भी तुम लोगों से कहा गया है।।२७।।

कालिकायै नमस्तुभ्यमिति यो भाषते स्वयम् ।
तस्य हस्ते स्थिता मुक्तिस्त्रिवर्गस्तु वशानुगः ।।२८।।

"**कालिकायै नमस्तुभ्यम्**" कालिका देवी को नमस्कार है" ऐसा जो स्वयं कहता है उसके हाथ में मुक्ति, स्थित रहती है तथा अर्थ, धर्म व काम का त्रिवर्ग सदैव उसके वश में रहता है।।२८।।

।। माहात्म्य कथन ।।

इति वः कथितं पुण्यं पुराणं कालिकाह्वयम् ।
मन्त्रयन्त्रमयं शुद्धं ज्ञानदं कामदं परम् ।।२९।।

यह कालिका नामक अत्यन्त पवित्रपुराण, जो मन्त्रों और यन्त्रों से युक्त, शुद्ध, ज्ञानप्रदान करने एवं कामनाओं को देने की दृष्टि से सर्वश्रेष्ठ है, आप लोगों से कहा गया।।२९।।

इति गुह्यतमं लोके वेदेषु च तथा द्विजाः ।
देवगन्धर्वसिद्धाद्यैः स्पृहणीयमिदं सदा ।।३०।।

हे द्विजों ! यह लोक और वेद में अत्यन्त गोपनीय है तथा देवता, गन्धर्व, सिद्ध आदि श्रेष्ठजन भी सदैव इसके श्रवण की स्पृहा (ललक) रखते हैं॥३०॥

अधीतं च श्रुतं मत्तो वसिष्ठेन महात्मना ।
इदं पुराणममृतं कालिकाह्वयमुत्तमम् ।।३१।।

यह कालिका नामक उत्तम, अमृततुल्य पुराण, मुझसे महात्मा वशिष्ठ द्वारा पढ़ा और सुना गया॥३१॥

तेन गुप्तमिदं सर्वं कामरूपेसुरालये ।
तमिदानीं समाख्यातं व्यक्तीकृत्यमहर्षयः ।।३२।।

हे महर्षियों ! उन वशिष्ठमुनि द्वारा यह सब देवताओं के निवास, कामरूप में छिपा दिया गया था। इससमय उसी को प्रकट करके मैंने आप सबसे कहा है॥३२॥

युस्माभिरपि नो देयं गोप्यं लोकेषु सर्वदा ।
शठाय चलचित्ताय नास्तिकायाजितात्मने ।
भक्तिश्रद्धाविहीनाय न दातव्यं कदाचन ।।३३।।

आप लोगों द्वारा भी इस गोपनीय पुराण को संसार में सर्वदा किसी शठ, चञ्चलचित्त, नास्तिक, जिसने अपने आपको न जीता किया (नियन्त्रित) हो, जो श्रद्धा-भक्ति से हीन हो ऐसे व्यक्ति को, कभी भी नहीं दिया जाना चाहिये॥३३॥

इदं सकृत् पठेद् यस्तु पुराणं कालिकाह्वयम् ।
स कामानखिलान् प्राप्य शेषेऽमृतमाप्नुयात् ।।३४।।

इस कालिका नामक पुराण को जो एक बार भी पढ़ता है, वह अपनी समस्त कामनाओं को प्राप्त कर, मरने पर अमृत (देवत्व) को प्राप्त करता है॥३४॥

मन्दिरे लिखितं यस्य पुराणमिदमुत्तमम् ।
सदा तिष्ठति नो तस्य विघ्नः संजायते द्विजाः ।।३५।।

हे द्विजों ! जिसके घर में यह उत्तमपुराण सदैव लिखितरूप में स्थित रहता है, उसे कोई विघ्न नहीं होते॥३५॥

योऽधीतेऽहन्यहन्येतद् गुह्यं तन्त्रमिदं परम् ।
अधीताः सकला वेदास्तेनेह द्विजसत्तमाः ।।३६।।

हे श्रेष्ठद्विजों ! जो इस सर्वश्रेष्ठ, गोपनीयतन्त्र को प्रतिदिन पढ़ता है, मानो उसके द्वारा सभी वेदों का अध्ययन कर लिया गया है॥३६॥

तस्मान्नैवाधिकोऽन्योऽस्ति कृतकृत्यो विचक्षणः ।।३७।।
स सुखी बल्लवाँल्लोके दीर्घायुरपि जायते ।।३८।।

उससे अधिक अन्य कृतकृत्य नहीं होता है और विचक्षण बुद्धिमान्, वह संसार में बलवान्, सुखी तथा दीर्घायु भी होता है॥३७-३८॥

यो लोकमीशः सततं बिभर्ति
यः पालयत्यन्तकरस्तथान्ते ।
इदं समस्तं भ्रममभ्रमं वा
यदीयरूपं च नमोऽस्तु तस्मै ।।३९।।

जो ईश्वर, लोक को सदैव धारण करता है, जो पालन करता है, जो अन्त में नाश करने वाला है, यह समस्त जगत् जो भ्रम (अयथार्थ) या अभ्रम (यथार्थ) रूप में, जिसका रूप है, उस परमात्मा को नमस्कार है।।३९।।

प्रधानपुरुषो यस्य प्रपञ्चो योगिनां हृदि ।
यः पुराणाधिपो विष्णुः प्रसीदतु स वःशिवः।।४०।।

जो प्रधान पुरुष हैं, जिसका प्रपञ्च योगियों के हृदय में स्थित रहता है, जो पुराणों के अधिपति हैं वे विष्णु आप लोगों पर प्रसन्न हो, कल्याणकारी होंवें।।४०।।

यो हेतुरुग्रः पुरुषः पुराणः
सनातनः शाश्वत ईश्वरः परः ।
पुराणकृद् वेदपुराणवेद्यः
प्रस्तौमि तन्नौमि पुराणशेषे ।।४१।।

जो सबके हेतु, उग्र, पुराणपुरुष, सनातन, निरन्तर, स्थायी (अविनाशी), सबके स्वामी, सर्वश्रेष्ठ, पुराणों के कर्ता तथा वेद-पुराणों द्वारा जानने योग्य हैं। पुराण की समाप्ति पर मैं उनकी स्तुति करता हूँ, उन्हें नमस्कार करता हूँ।।४१।।

इति सकलजगद् बिभर्ति यासां
मधुरिपुमोहकरी रमास्वरूपा ।
रमयति च हरं शिवास्वरूपा
वितरतु वो विभवं शुभानि माया ।।४२।।

।। इति श्रीकालिकापुराणे वेतालवंशवर्णननाम नवतितमोऽध्यायः ।।९०।।

।। कल्याणीहिन्दीटीकयोपेतं सम्पूर्णोऽयं कालिकाह्वयं पुराणम् ।।

इस प्रकार से जो समस्त जगत् को अपने में धारण करती हैं। जो लक्ष्मी रूप से मधु नामक दैत्य के शत्रु, भगवान् विष्णु को भी मोहने वाली हैं । जो शिवा (काली) के स्वरूप में शिव के साथ रमण करती हैं, वे माया (योगमाया) आप सबको वैभव एवं शुभ प्रदान करें।।४२।।

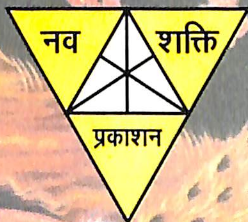
श्रीकालिकापुराण में वेतालवंशवर्णननामक नब्बेवाँ अध्याय सम्पूर्ण हुआ।।९०।।

कल्याणीहिन्दीटीका सहित यह कालिकापुराण सम्पूर्ण हुआ।।

।। कालिकायै नमस्तुभ्यम् ।।



हमारे प्रकाशन



नवशक्ति प्रकाशन, चौकाघाट, वाराणसी